॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

४२



प्राकृत साहित्य का इतिहास

(ईसवी सन् के पूर्व पाँचवी शताब्दी से ईसवी सन् की अठारहवी शताब्दी तक)

डॉक्टर जगदीशचन्द्र जैन, एम ए, पी-एच डी.

(भूतपूर्व प्रोफेसर, प्राकृत जैन विद्यापीठ, मुजफ्फरपुर-बिहार)

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रामनारायण रुइया कॉलेज, बंबई



चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

THE

VIDYABHAWAN RAS'TRABHASHA GRANTHAMALA

42

HISTORY OF PRAKRIT LITERATURE

(From 500 B. C To 1800 A D.)

By

DR JAGADISH CHANDRA JAIN, M A Ph D

(Sometime Professor at Vaishali Institute of Post graduate studies

in Prakrit, Gainology and Ahimsa, Muzaffarpur-Bihar)

HEAD OF THE DEPARTMENT OF HINDI

RAMNARAIN RUIA COLLEGE

BOMBAY

THE

CHOWKHAMBA VIDYA BHAWAN

VARANASI-1

1961] [Rs. 20-00

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०१८
मूल्य २०-००

Phone : 3076

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

POST BOX NO. 69, VARANASI-1

INDIA

1961

मुनि जिनविजय जी

और

मुनि पुण्यविजय जी

को

सादर समर्पित

भूमिका

भारत के अनेक विश्वविद्यालयो मे प्राकृत का पठन-पाठन हो रहा है लेकिन उसका जैसा चाहिये वैसा आलोचनात्मक क्रमबद्ध अध्ययन अभी तक नही हुआ। कुछ समय पूर्व हर्मन जैकोबी, वेबर, पिशल और शूब्रिंग आदि विद्वानो ने जैन आगमो का अध्ययन किया था, लेकिन इस साहित्य में प्रायः जैनधर्म सबधी विषयो की चर्चा ही अधिक थी इसलिये 'शुष्क और नीरस' समझ कर इसकी उपेक्षा ही कर दी गई। जर्मन विद्वान् पिशल ने प्राकृत साहित्य की अनेक पाडुलिपियों का अध्ययन कर प्राकृत भाषाओं का व्याकरण नामक खोजपूर्ण ग्रथ लिखकर इस क्षेत्र में सराहनीय प्रयत्न किया। इधर मुनि जिनविजय जी के सपादकत्व में सिंघी सीरीज में प्राकृत साहित्य के अनेक अभिनव ग्रथ प्रकाशित हुए। भारत के अनेक सुयोग्य विद्वान् इस दिशा में श्लाघनीय प्रयत्न कर रहे है जिसके फलस्वरूप अनेक सास्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रथ प्रकाश में आये है। लेकिन जैसा ठोस कार्य सस्कृत साहित्य के क्षेत्र में हुआ है वैसा प्राकृत साहित्य के क्षेत्र में अभी तक नही हुआ। इस दृष्टि से प्राकृत साहित्य के इतिहास को क्रमबद्ध प्रस्तुत करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है।

कलिकाल सर्वज्ञ के नाम से प्रख्यात आचार्य हेमचन्द्र के मतानुयायी विद्वानों की मान्यता है कि प्राकृत सस्कृत का ही अपभ्रष्ट रूप है। लेकिन रुद्रट के काव्यालंकार (२ १२) के टीकाकार नमिसाधु ने इस संबध में स्पष्ट लिखा है—"व्याकरण आदि के सस्कार से विहीन समस्त जगत् के प्राणियों के स्वाभाविक वचन व्यापार को प्रकृति कहते है; इसी से प्राकृत बना है। बालक, महिलाओं आदि की यह भाषा सरलता से समझ में आ सकती है और समस्त भाषाओं की यह मूलभूत है। जब कि मेघधारा के समान एकरूप और देशविशेष या संस्कार के कारण जिसने विशेषता प्राप्त

की है और जिसके सत् सस्कृत आदि उत्तर विभेद है उसे संस्कृत समझना चाहिये।" आचार्य पाणिनि ने वाङ्मय की भाषा को छन्दस् और लोकभाषा को भाषा कहा है, इससे भी प्राकृत की प्राचीनता और लोकप्रियता सिद्ध होती है। वैदिक काल से जनसामान्य द्वारा बोली जाती हुई इन्ही प्राकृत भाषाओं में बुद्ध और महावीर ने साधारण जनता के हितार्थ अपना प्रवचन सुनाया था।

बुद्ध और महावीर के पूर्व जनसामान्य की भाषा का क्या स्वरूप था, यह जानने के हमारे पास पर्याप्त साधन नही है। लेकिन इनके युग से लेकर ईसवी सन् की १८ वी शताब्दी तक प्राकृत साहित्य के विविध क्षेत्रो मे जो धार्मिक आख्यान, चरित, स्तुति, स्तोत्र, लोककथा, काव्य, नाटक, सट्टक, प्रहसन, व्याकरण, छद, कोष, तथा अर्थशास्त्र, सगीतशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र आदि शास्त्रीय साहित्य की रचना हुई वह भारतीय इतिहास और साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

सस्कृत सुशिक्षितो की भाषा थी जब कि जनसामान्य की भाषा होने से प्राकृत को बाल, वृद्ध, स्त्रियाँ और अनपढ सभी समझ सकते थे। ईसवी सन् के पूर्व ५वी शताब्दी से लेकर ईसवी सन् की ५वी शताब्दी तक जैन आगम साहित्य का सकलन और सशोधन होता रहा। तत्पश्चात् ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी से १६वी शताब्दी तक इस साहित्य पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकायें लिखकर इसे समृद्ध बनाया गया। अनेक लौकिक और धार्मिक कथाओ आदि का इस व्याख्या-साहित्य में समावेश हुआ।

ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से १७वी शताब्दी तक कथा-साहित्य सबधी अनेक महत्वपूर्ण ग्रथो की रचना हुई। ११वी १२वी शताब्दी का काल तो विशेष रूप से इस साहित्य की उन्नति का काल रहा। इस समय गुजरात में चालुक्य, मालवा में परमार तथा राजस्थान मे गुहिलोत और चाहमान राजाओ का राज्य था और इन राजाओ का जैनधर्म के प्रति विशेष अनुराग था। फल यह हुआ कि गुजरात में अणहिल्लपुर पाटण, खभात, और भडौच, राजस्थान

मे भिन्नमाल, जाबालिपुर और चित्तौड तथा मालवा मे उज्जैन, ग्वालियर और धारा आदि नगर जैन श्रमणों की प्रवृत्तियों के केन्द्र बन गये।

ईसवी सन् की पहली शताब्दी से लेकर १८वी शताब्दी तक प्रेम और शृगार से पूर्ण प्राकृत काव्य की रचना हुई। यह साहित्य प्राय॰ अजैन विद्वानों द्वारा लिखा गया। मुक्तक काव्य प्राकृत साहित्य की विशेषता रही है, और सस्कृत काव्यशास्त्र के पंडित आनन्द-वर्धन आदि विद्वानों ने तो मुक्तकों की रचना का प्रथम श्रेय सस्कृत को न देकर प्राकृत को ही दिया है। प्रेम और शृंगारप्रधान यह सरस रचना हाल की गाथासप्तशती से आरभ होती है। आगे चलकर जब दक्षिण भारत साहित्यिक प्रवृत्तियो का केन्द्र बना तो केरलदेश-वासी श्रीकंठ और रामपाणिवाद आदि मनीषियो ने अपनी रचनाओ से प्राकृत साहित्य के भडार को सपन्न किया।

ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से १८वी शताब्दी तक सस्कृत-नाटको की रचना का काल रहा है। इस साहित्य में उच्च वर्ग के पुरुष, राजा की पटरानियाँ, मंत्रियों की कन्यायें आदि पात्र सस्कृत मे, तथा स्त्रियाँ, विदूषक, धूर्त, विट और नौकर-चाकर आदि पात्र प्राकृत मे संभाषण करते है। कर्पूरमञ्जरी आदि सट्टक-साहित्य में तो केवल प्राकृत का ही प्रयोग किया गया। इससे यही सिद्ध होता है कि दर्शकों के मनोरंजन के लिये नृत्य के अभिनय मे प्राकृत का यथेष्ट उपयोग होता रहा।

सस्कृत की देखादेखी प्राकृत में भी व्याकरण, छन्द और कोषों की रचना होने लगी। ईसवी सन् की छठी शताब्दी से १८वी शताब्दी तक इस साहित्य का निर्माण हुआ। मालूम होता है कि वररुचि से पहले भी प्राकृत व्याकरण लिखे गये, लेकिन आजकल वे उपलब्ध नहीं है। आनन्दवर्धन, धनजय, भोजराज, रुय्यक, मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि काव्यशास्त्र के दिग्गज पंडितों ने प्राकृत भाषाओ की चर्चा करने के साथ-साथ, अपने ग्रंथों में प्रतिपादित रस और अलंकार आदि को स्पष्ट करने के लिये, प्राकृत काव्यग्रंथों

में से चुन चुनकर अनेक सरस उदाहरण प्रस्तुत किये। इससे प्राकृत काव्य-साहित्य की उत्कृष्टता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इन सरस रचनाओं में पारलौकिक चिंताओं से मुक्त इहलौकिक जीवन की सरल और यथार्थवादी अनुभूतियों का सरस चित्रण किया गया है।

इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, राजनीति, कामशास्त्र, निमित्तशास्त्र, अंगविद्या, ज्योतिष, रत्नपरीक्षा, संगीतशास्त्र आदि पर भी प्राकृत में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे गये। इनमें से अधिकाश लुप्त हो गये है।

इस प्रकार लगभग २५०० वर्ष के इतिहास का लेखा-जोखा यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इस दीर्घकाल में प्राकृत भाषा को अनेक अवस्थाओं से गुजरना पडा। प्राकृत के पैशाची, मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री आदि रूप सामने आये। जैसे प्राकृत संस्कृत की शैली आदि से प्रभावित हुई वैसे ही प्राकृत भी सस्कृत को बराबर प्रभावित करती रही। कालातर में प्राकृत भाषा ने अपभ्रश का रूप धारण किया और अपभ्रश भाषायें व्रज, अवधी, मगही, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, पजाबी आदि बोलियों के उद्भव में कारण हुई। इस दृष्टि से प्राकृत साहित्य का इतिहास भारतीय भाषाओं और साहित्य के अध्ययन में विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

सन् १९४५ में जब मैने 'जैन आगमों में प्राचीन भारत का चित्रण' नामक महानिबध (थीसिस) लिखकर समाप्त किया तभी से मेरी इच्छा थी कि प्राकृत साहित्य का इतिहास लिखा जाये। समय बीतता गया और मै इधर-उधर की प्रवृत्तियों में जुटा रहा। इधर सन् १९५६ से ही प्राकृत जैन विद्यापीठ मुजफ्फरपुर [बिहार] में मेरी नियुक्ति की बात चल रही थी। लगभग दो वर्ष बाद बिहार सरकार ने अपनी भूल का सशोधन कर अंततः अक्तूबर, १९५८ में प्राकृत जैन विद्यापीठ में मेरी नियुक्ति कर उदारता का परिचय दिया। यहाँ के शात वातावरण में कार्य करने का यथेष्ट समय मिला। भगवान् महावीर की जन्मभूमि वैशाली की इस पवित्र भूमि का आकर्षण भी

कुछ कम प्रेरणादायक सिद्ध नही हुआ। जैन श्रमणों को इस क्षेत्र में अपने सिद्धातों का प्रचार करने के लिये अनेक कष्टो का सामना करना पडा था। सचमुच बिहार राज्य की सरकार का मै अतीव कृतज्ञ हूँ जिसने यह सुअवसर मुझे प्रदान किया।

पूना की शिक्षण प्रसारक मण्डली द्वारा सचालित रामनारायण रुइया कालेज, बंबई के अधिकारियो का भी मै अत्यत आभारी हूँ जिन्होंने अवकाश प्रदानकर मुझे प्राकृत जैन विद्यापीठ में कार्य करने की अनुमति दी।

प्राकृत साहित्य का इतिहास जैसी पुस्तक लिखने के लिये एक अच्छे पुस्तकालय की कमी बहुत अखरती है। पुस्तकें प्राप्त करने के लिये अहमदाबाद आदि स्थानो मे दौडना पडा। आगम-साहित्य के सुप्रसिद्ध वेत्ता मुनि पुण्यविजय जी महाराज की लाइब्रेरी का पर्याप्त लाभ मुझे मिला। जैन आगम और जैन कथा संबंधी आदि अनेक विषयों पर चर्चा करके उन्होंने लाभान्वित किया। दुर्भाग्य से जैन आगम तथा अधिकाश प्राकृत साहित्य के जैसे आलोचनात्मक सस्करण होने चाहिये वैसे अभीतक प्रकाशित नही हुए, इससे पाठ शुद्धि आदि की दृष्टि से बडी कठिनाई का सामना करना पडा। इस पुस्तक के कथा, चरित, और काव्यभाग को प्राकृत के प्रकाण्ड पंडित मुनि जिनविजय जी को सुनाने का सुअवसर मिला। उनके सुझावों का मैने लाभ उठाया। सिघी जैन ग्रथमाला से प्रकाशित होनेवाले प्राकृत के बहुत से ग्रथों की मुद्रित प्रतिया भी उनके सौहार्द से प्राप्त हुई। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत दर्शन-शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् पंडित सुखलाल जी को भी इस पुस्तक के कुछ अध्याय भेज दिये थे। उन्होने अपना अमूल्य समय देकर उन्हें सुना और बहुमूल्य सुझाव दिये। प्राकृत जैन विद्यापीठ के डाइरेक्टर डाक्टर हीरालाल जैन का मुझ पर विशेष स्नेह रहा है। विद्यापीठ में उनका सहयोगी बन कर कार्य करने का सौभाग्य मुझे मिला, उन्होंने मुझे सदा प्रोत्साहित ही किया।

सस्कृत विद्या के केन्द्र वाराणसी में पुस्तक छपने और उसके प्रूफ देखे जाने के कारण कितने ही स्थानो पर प्राकृत के शब्दों में अनुस्वार के स्थान पर वर्ग का संयुक्त पंचमाक्षर छप गया है, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्राकृत विद्यापीठ के मेरे पी-एच० डी० के छात्र योगेन्द्रनारायण शर्मा, और एम० ए० के छात्र राजनारायण राय ने अलकार-ग्रन्थो में प्राकृत पद्यों की सूची बनाने मे सहायता की। चन्द्रशेखर सिह ने बडी तत्परता के साथ इस पुस्तक की पाडुलिपि को टकित किया। प्रोफेसर आद्याप्रसाद सिह और डॉक्टर देवेश ठाकुर ने अनुक्रमणिका तैयार करने मे सहायता की। चौखम्बा सस्थान के व्यवस्थापक बन्धुद्वय—मोहनदास एवं विट्ठलदास गुप्त—ने बडे उत्साहपूर्वक इस पुस्तक का प्रकाशन किया। इन सब हितैषी मित्रो को किन शब्दो मे धन्यवाद दूँ?

प्राकृत जैन विद्यापीठ
मुजफ्फरपुर
गाधी जयन्ती १९५९

जगदीशचन्द्र जैन

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

छठा अध्याय

सातवां अध्याय

आठवां अध्याय

नौवां अध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९	३	अट्ठाइस	अट्ठारस
४५	८	सामयिक	सामायिक
५१	२१	विभुक्ति	विमुक्ति
७९	६	महासमुछो	महासमुद्दो
८१	१३	स्कध	स्वद
९५	२	अगुत्तरो०	अणुत्तरो०
१०६	१६	मुसुढि	मुसुंढि
१११	१४	एक-एक	एक
१३५	१३	जिनदासमणि	जिनदासगणि
१६४	१२	हर्षकूल	हर्षकुल
१८९	२	कप्पसिअ	कप्पासिआ
१९५	१४	और शौर	और
२०५	८	पगू प	पंगू
२२३	२८	मैं खेद करता हूँ	तू खेद करती है
२२९	७	परातिक	पारांचिक
२४२	५	गिरिगिट	गिरगिट
२४६	४	शल्प	शिल्प
२५७	१९	वेयश्या	वेश्यया
२६८	६	जातककथा, सरित्सागर	जातक, कथासरित्सागर
२९५	७	व्यजन	व्यंजन
३४२	८	वि० स० १३२६ = ईसवी सन् १२६९	वि० स० १३२७ = ईसवी सन् १२७०
३७३	६	तरगलीला	तरगलोला
३७०	१३	तरगलीला	तरगलोला
४४५	१३	आद्रककुमार	आर्द्रककुमार
४५०	२०	सूरत	सुरत
४५४	२०	सम्प्राति	सम्प्रति
४८३	२७ (नोट)	सिंगोली	सिंगोली की पहचान उडियान के सभलपुर से की जा सकती है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८९	१२	सुसुमा	सुसुमा
४९७	२०	एडकक्षपुर	एडकाक्षपुर
५२६	१७	हरिभद्रशीलांक	हरिभद्र, शीलांक
५५७	१८	ऋषभमत्त	ऋषभदत्त
५७५	११	शर्ववर्मा	शिववर्मा
५७५	२७	दलपतराय	दलपतराम
६१०	४	अनिरूद्ध	अनिरुद्ध
६५२	७	सिंहहर्ष	श्रीहर्ष

पृष्ठ	गाथा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७०४	४	२	दसण	दसण
७०५	५	२	उणिअ मवऊढो	उणिअमवऊढो
७०९	३	१	माउअस्स	माउअस्स
७१०	६	२	हिअएतु	हिअएसु
७१२	५	२	मरिमो	भरिमो
७१३	१	२	सछहिमो	सद्दहिमो
७१३	२	२	रूप्पिणीअ	रुप्पिणीअ
७२२	३	२	विअसिअच्छ	विअसिअच्छ
७२२	३	२	घण्णा	धण्णा
७२८	४	१	तस्य	तस्स
७३१	४	२	पुपवड्ढदि	पवड्ढदि
७३६	६	२	वड्ढीइ त्थणआण	वड्ढीइत्थणआण
७४७	३	१	गेणहइ	गेण्हइ
७५१	१	२	पल्लव	पल्लवा
७५१	३	२	पडिधुम्मिरा	पडिघुम्मिरा
७६६	३	२	रूद्दस्स	रुद्दस्स
७६९	४	१	घअवडा	धअवडा
७७२	३	४ (अर्थ)	विष्णु	सूर्य
७७५	१	२	सुविअड्ढे	सुविअड्ढ
७७६	६	५ (अर्थ)	——	हटाने
७८०	१	१	विलिओणआओ	विलिअणयणाओ
७८०	७	२	घर गण	घरगण

—o—

प्राकृत साहित्य का इतिहास

पहला अध्याय

भाषाओं का वर्गीकरण

उपभाषाओ अथवा बोलियो को छोड़कर सारी दुनिया की भाषाओ की संख्या लगभग दो हजार कही जाती है। इनमें अधिकांश भाषाओं का तो अध्ययन हो चुका है, लेकिन अमरीका, अफ्रीका तथा प्रशांत महासागर के दुर्गम प्रदेशों में बोली जानेवाली भाषाओ का अध्ययन अभी नाममात्र को ही हुआ है। इन सब भाषाओ का वर्गीकरण चार खडों में किया गया है—अफ्रीका-खड, युरेशियाखड, प्रशान्तमहासागरीयखंड और अमरीका-खड। युरेशियाखड में सेमेटिक, काकेशस, यूराल-अल्टाइक, एकाक्षर, द्राविड़, आग्नेय, अनिश्चित और भारोपीय (भारत-यूरोपीय) नाम की आठ शाखाओ का अन्तर्भाव होता है। भारोपीय कुल की भाषाये उत्तर भारत, अफगानिस्तान, ईरान तथा प्रायः सम्पूर्ण यूरोप में बोली जाती है। ये भाषाये केंटुम् (लैटिन भाषा मे सौ के लिये केंटुम् शब्द का प्रयोग होता है) और शतम् (संस्कृत में सौ के लिये शतम् शब्द का प्रयोग होता है) नाम के. दो समूहों में विभक्त हैं। शतम् वर्ग में इलीरियन, बाल्टिक, स्लैवोनिक, आर्मेनियन और आर्यभाषाओ का समावेश होता है। आर्य अथवा भारत-ईरानी उपकुल की तीन मुख्य भाषाये हैं—ईरानी, दरद और भारतीय आर्यभाषा। पुरानी ईरानी के सब से प्राचीन नमूने पारसियों के धर्मग्रन्थ अवेस्ता में पाये जाते हैं, यह भाषा ऋग्वेद से मिलती-जुलती है। दरद भाषा का क्षेत्र पामीर और पश्चिमोत्तर पजाब के बीच में

है। संस्कृत साहित्य में काश्मीर के पास के प्रदेश के लिये दरद का प्रयोग हुआ है।

भारतीय आर्यभाषायें

भारतीय आर्यभाषाओ को तीन युगों में विभक्त किया जाता है। पहला युग प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का है जो लगभग १५०० ईसवी पूर्व से लेकर ५०० ईसवी पूर्व तक चलता है। इस युग में वेदो की भाषा, तत्कालीन बोलचाल की लोकभाषा पर आधारित संस्कृत महाकाव्यो की भाषा तथा परिष्कृत साहित्यिक संस्कृत का अन्तर्भाव होता है। दूसरा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का युग है जो ५०० ईसवी पूर्व से ११०० ईसवी सन् तक चलता है। यह युग प्राकृत भाषाओ का युग है जिसमें पालि तथा प्राकृत—जिसमे उस काल की सभी जन-साधारण की बोलियाँ आ जाती हैं जो कि ध्वनितत्त्व के परिवर्त्तन और व्याकरणसबधी भिन्नताये प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से जुदा एक नई भाषा को जन्म दे रही थी—का अन्तर्भाव होता है। तीसरा युग आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ का युग है जो ११०० ईसवी सन् से लगा कर आज तक चलता है। इसमें अपभ्रश और उसके उपभेदों का समावेश होता है।

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषायें

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं को भी तीन भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम भाग में पालि, शिलालेखों की प्राकृत, प्राचीनतम जैन आगमों की अर्धमागधी, तथा अश्वघोष के नाटकों की प्राचीन प्राकृत का अन्तर्भाव होता है। दूसरे भाग में जैनो का धार्मिक और लौकिक साहित्य, क्लासिकल सस्कृत नाटकों की प्राकृत, हाल की सत्तसई, गुणाढ्य की बृहत्कथा, तथा प्राकृत के काव्य और व्याकरणो की मध्यकालीन प्राकृत आती है। तीसरे भाग में अपभ्रंश का समावेश होता है जो ईसवी सन् की पाँचवीं-छठी शताब्दी से आरंभ हो जाता

है। अपभ्रंश अपने पूर्ण विकास पर तभी पहुँच सका जब कि मध्ययुगीन प्राकृत को वैयाकरणों ने जटिल नियमों में बाँध कर आगे बढ़ने से रोक दिया। पहले प्राकृत भाषायें भी इसी प्रकार अपनी उन्नति के शिखर पहुँची थी जब कि बोलचाल की भाषाओं ने साहित्यिक संस्कृत का रूप धारण कर लिया था। अस्तु, ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने अपने प्राकृतव्याकरण में जो अपभ्रंश के उदाहरण दिये हैं उनसे पता लगता है कि हेमचन्द्र के पूर्व ही अपभ्रंश भाषा अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी।

प्राकृत और संस्कृत

पहले कतिपय विद्वानों का मत था कि प्राकृत की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है[1] और प्राकृत संस्कृत का ही बिगड़ा हुआ (अपभ्रंश) रूप है, लेकिन अब यह मान्यता असत्य सिद्ध हो चुकी है। पहले कहा जा चुका है, आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप हमें ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलता है। दुर्भाग्य से आर्यों की बोलचाल का ठेठ रूप जानने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं है। लेकिन वैदिक आर्यों की यही सामान्य बोलचाल जो ऋग्वेद की संहिताओं की साहित्यिक भाषा से जुदा है, प्राकृत का मूलरूप है।[2]

---

१ देखिये हेमचन्द्र का प्राकृतव्याकरण (१.१ की वृत्ति)—
प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।

२ पिशल ने 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण', अनुवादक डॉक्टर हेमचन्द्र जोशी, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५८ (पृष्ठ ८-९) में प्राकृत और वैदिक भाषाओं की समानता दिखाई है—त्तण (वैदिक त्वन), स्त्रीलिंग षष्ठी के एकवचन का रूप आए (वैदिक आयै), तृतीया का बहुवचन रूप एहि (वैदिक एभि:), आज्ञावाचक होहि (वैदिक बोधि), ता, जा, एत्थ (वैदिक तात्, यात्, इत्था), अम्हे (वैदिक अस्मे), वग्गूहिं (वैदिक वग्नुभि:), सद्धिं (वैदिक

भाषा की प्रवृत्ति सरलीकरण की ओर रहती है। कठिन शब्दो की अपेक्षा मनुष्य सरलता से बोले जाने योग्य शब्दों का प्रयोग करना अधिक पसन्द करता है। बोलियो पर भौगोलिक परिस्थिति और आबहवा का असर पड़ता है। नगरो और कोर्ट-कचहरियो में आकर बोलियो का परिष्कार होता है। विदेशी भापाओ के शब्दो से भी मूल भाषा में परिवर्तन और परिवर्धन होता रहता है। इन्ही सब कारणो से प्राचीन वैदिक आर्यों द्वारा बोली जानेवाली लोकभाषा बराबर बदलती रही और स्थानभेद के कारण समय-समय पर भिन्न-भिन्न रूपो में हमारे सामने आई। यही भाषा प्राकृत अर्थात् जन-सामान्य की भाषा कहलाई। क्रमशः एक ओर आर्यों द्वारा बोली जानेवाली सामान्य भाषा उत्तरोत्तर समृद्ध होती रही, दूसरी ओर साहित्यिक भाषा परिमार्जित होती रही। वैदिक सहिताओ के पश्चात् ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना हुई, पदपाठ द्वारा वैदिक सहिताओ को पद के रूप में उपस्थित किया, तथा सधि और समासो के आधार पर वाक्य के शब्दों को अलग-अलग किया। प्रातिशाख्य द्वारा संहिताओं के परम्परागत उच्चारण को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया। तत्पश्चात् वैदिक भाषा के अपरिचित हो जाने पर निघटु में वैदिक शब्दों का संग्रह किया गया। यास्क (ईसवी पूर्व ८वीं शताब्दी) ने निघंटु की व्याख्या करते हुए निघटु के प्रत्येक शब्द को लेकर उसकी व्युत्पत्ति और अर्थ पर विचार किया। इस समय पाणिनि (५०० ई० पू०) ने वैदिककालीन भाषा को व्याकरण के नियमों में बाँधकर सुसस्कृत बनाया और प्राकृत का यह परिष्कृत, सुमज्जित और सुगठित रूप सस्कृत कहा जाने लगा। पतंजलि (१५० ई० पू०) ने वेदों की रक्षा के लिये व्याकरण का अध्ययन आवश्यक बताया है। इससे वर्णों के लोप, आगम और विकार का ज्ञान होना बताया गया है।

सध्रीम्), विऊ (वैदिक विदु), घिसु (वैदिक ग्रस), रुक्ख (वैदिक रुक्ष) आदि।

व्याकरण से शून्य पुरुष के सम्बन्ध मे कहा है कि वह देखता हुआ भी नही देखता और सुनता हुआ भी नही सुनता।[1] इससे मालूम होता है कि व्याकरण का महत्त्व बहुत बढ़ रहा था। फलत. एक ओर सस्कृत शिष्ट जनसमुदाय की भाषा बन रही थी, और दूसरी ओर अनपढ़ लोग जनसामान्य द्वारा बोली जानेवाली प्राकृत भाषा से ही अपनी आवश्यकताये पूरी कर रहे थे।[2] स्वय पाणिनि ने वाङ्मय की भाषा को छन्दस् और साधारणजनों की भाषा को भाषा कह कर उल्लिखित किया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि साहित्यक भाषा और जन-सामान्य की भाषा अलग-अलग हो गई थी। संस्कृत, प्राचीन

---

१. रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्णविकारज्ञो हि सम्यग्वेदान्परिपालयिष्यतीति।

उत त्व· पश्यन्त ददर्श वाचमुत त्व· श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।

महाभाष्य १-१-१, पृष्ठ २०,४४। पतंजलि ने (महाभाष्य, भार्गवशास्त्री, निर्णयसागर, बंबई, सन् १९५१, १, पृष्ठ ७६, ८५) में लिखा है कि बडे-बड़े विद्वान् ऋषि भी 'यद्वान.', 'तद्वान.' इन शुद्ध प्रयोगों के स्थान में 'यर्वाण.' 'तर्वाण.' के अशुद्ध प्रयोग करते थे। उस समय पलाश के स्थान पर पलाष, मचक के स्थान पर मजक और शश के स्थान पर षष आदि अशुद्ध शब्दों का व्यवहार किया जाता था।

२ रुद्रट के काव्यालकार (२ . १२) पर टीका लिखनेवाले नमिसाधु ने प्राकृत और सस्कृत का निम्न लक्षण किया है—सकलजगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो . वचनव्यापारः प्रकृति· तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्। प्राकृत बालमहिलादिसुबोधं सकलभाषानिबधनभूतं वचनमुच्यते। मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात्संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत्संस्कृताद्युत्तरविभेदानाप्नोति। —व्याकरण आदि के सस्कार से विहीन समस्त जगत् के प्राणियों के स्वाभाविक वचनव्यापार को प्रकृति कहते हैं। उसे ही प्राकृत कहा जाता है। बालक, महिला आदि की समझ में यह सरलता से आ सकती है, और समस्त भाषाओं की यह कारणभूत है। मेघधारा

भारतीय आर्यभाषाओं की कितनी ही बोलियों द्वारा समृद्ध हुई। ये बोलियाँ ऋग्वेद से लेकर पाणिनि और पतंजलि के काल तक शताब्दियों तक चलती रहीं। संस्कृत प्रातिशाख्य से लेकर पतंजलि के कालतक निरन्तर परिष्कृत होती रही और अन्त में वह अष्टाध्यायी और महाभाष्य के सूत्रों में निबद्ध होकर सिमट गई। उधर लोकभाषा का अत्रुटित अक्षय प्रवाह शताब्दियों से चला आ रहा था जिसके विविध रूप भिन्न-भिन्न क्षेत्र और काल के जनसाहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। महावीर और बुद्ध ने इसी लोकभाषा को अपनाया और इसमें अपना उपदेशामृत सुना कर जनकल्याण किया। वस्तुतः मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं का यह युग अत्यन्त समृद्ध कहलाया। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में जितनी उन्नति हुई उतनी प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के काल में कभी नहीं हुई। अब तक राजे-महाराजे और महान् नायकों के चरित्रों का शिष्टजनों की भाषा में चित्रण किया जाता था, लेकिन अब लोकभाषा में जन-जीवन का बहुमुखी चित्रण* किया जाने लगा जिससे जनसाहित्य की उत्तरोत्तर उन्नति हुई।

प्राकृत और अपभ्रंश

क्रमशः प्राकृत का भी परिष्कार हुआ और उसने भी साहित्यिक वेशभूषा धारण की। शिलालेखों, तथा क्लासिकल और व्याकरणसंबंधी प्राकृत-साहित्य का अध्ययन करने से इस बात का पता लगता है। बौद्धों के हीनयान सम्प्रदाय द्वारा मान्य त्रिपिटकों की पालि तथा जैन आगमों की अर्ध-प्राकृत (अर्ध-मागधी) प्राकृत बोलियों के ही साहित्यिक रूप हैं।

के समान एकरूप और देश-विशेष के कारण या संस्कार के कारण जिसने विशेषता प्राप्त की है और जिसके सत् संस्कृत आदि उत्तर विभेद हैं उसे संस्कृत कहते है। सरस्वतीकंठाभरण (२.८) और दशरूपक (२.६५) में प्राकृत को स्त्रियों की भाषा कहा है।

प्राकृत भाषाओ के साहित्य में अभिवृद्धि होने पर संस्कृत की भाँति प्राकृत को भी सुगठित बनाने के लिये वैयाकरणो ने व्याकरण के नियम बनाये। लेकिन प्राकृत बोलियाँ अपने अनेक भिन्न-भिन्न रूपों में लोक में प्रचलित थी। इससे जब वररुचि आदि वैयाकरणों ने पाणिनि को आदर्श मानकर प्राकृत व्याकरणो की रचना की तो संस्कृत की भाँति प्राकृत में एक-रूपता नही आ सकी। पहले तो प्राकृत भापाओ के प्रकार ही जुदा-जुदा थे। एक भाषा के लक्षण दूसरी भाषा के लक्षणो से भिन्न थे। फिर व्याकरण के नियमो का प्रतिपादन करते समय त्रिविक्रम और हेमचन्द्र आदि व्याकरणकारो ने जो 'प्राय.' 'बहुल', 'क्वचित्', 'वा' इत्यादि शब्दो का प्रयोग किया है इससे पता लगता है कि ये नियम किसी भाषा के लिये शाश्वत रूप से लागू नहीं होते थे। यश्रुति और ण-न-सबंधी आदि नियमों में एकरूपता नहीं थी। खलु के स्थान में कही हु, और कही खु, तथा अपि के स्थान में कही पि, कही वि, कही मि और कहीं अवि रूप का चलन था। प्राकृत भाषा की इस बहुरगी प्रवृत्ति के कई कारण थे। पहले तो यही कि जैसे-जैसे समय बीतता गया बोलियो में परिवर्त्तन होते गये, दूसरे, व्याकरण-संबधी नियमो को बनाते समय स्वयं वैयाकरण असदिग्ध नही थे; तीसरे, जिस साहित्य का उन्होने विश्लेषण किया वह साहित्य भिन्न-भिन्न काल का था। अवश्य ही इसमे पाडुलिपि के लेखको और प्राकृत ग्रथों के आधुनिक सम्पादको का दोष भी कुछ कम नही कहा जा सकता।[१]

जो कुछ भी हो, इससे एक लाभ अवश्य हुआ कि प्राकृत कुछ व्यवस्थित भाषा बन गई, लेकिन हानि यह हुई कि जन-जीवन से उसका नाता टूट गया। उधर जिन लोकप्रचलित

---

१. देखिये डा० पी० एल० वैद्य द्वारा लिखित त्रिविक्रम के प्राकृतशब्दानुशासन की भूमिका, पृष्ठ १७-२३।

बोलियों के आधार पर प्राकृत की रचना हुई थी, वे बोलियां नियमो में बाँधी नहीं जा सकी। इनका विकास बराबर जारी रहा और ये अपभ्रंश के नाम से कही जाने लगी। भाषाशास्त्र की शब्दावलि में कहेंगे अपभ्रंश अर्थात् विकास को प्राप्त भाषा। पहले, जैसे प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के साहित्यिक भाषा हो जाने से मध्ययुगीन भारतीय आर्यभापा प्राकृत को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला था, उसी प्रकार जब मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाये साहित्यिक रूप धारण कर जनसामान्य की भाषाओं से दूर हो गई तो आधुनिक भारतीय आर्यभाषा अपभ्रश को महत्त्व दिया गया; जनसाधारण की बोली की परपरा निरतर जारी रही। आगे चलकर जब अपभ्रश भाषा भी लोकभापा न रह कर साहित्यरूढ़ बनने लगी तो देशी भाषाओ-हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बगाली, सिंधी आदि-का उदय हुआ। वास्तव में प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषा, इन तीनो का आरम्भकाल में एक ही अर्थ था—जैसे-जैसे इनका साहित्यिक रूप बना, वैसे-वैसे उनका रूप भी बदलता गया।[1]

प्राकृत भाषायें

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं के अनेक रूप थे। ये श्वेताम्बर जैन आगमो की अर्धमागधी प्राकृत, दिगम्बर जैनो के प्राचीन शास्त्रों की शौरसेनी प्राकृत, जैनो की धार्मिक और लौकिक कथाओ की प्राकृत, संस्कृत नाटको में प्रयुक्त विविधरूपवाली प्राकृत, मुक्तक काव्यों की महाराष्ट्री प्राकृत, शिलालेखो की प्राकृत आदि के रूप में बिखरी हुई पड़ी थीं। इन सब भाषाओं को सामान्यतया प्राकृत के नाम से कहा जाता था, यद्यपि प्राकृत के व्याकरणकारों ने इनके

---

१. काव्यालंकार (पृष्ठ १५) के टीकाकार नमिसाधु ने 'प्राकृतमेवापभ्रंशः' लिखकर इसी कथन का समर्थन किया है।

अलग-अलग नाम दिये है। नाटककारों और अलंकारशास्त्र के पंडितों ने भी इन प्राकृतों के विविध रूप प्रदर्शित किये हैं। दर-असल प्राकृत बोलियों के बोलचाल की भाषा न रह जाने के कारण इन बोलियों का रूप नियत करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। विविध रूप में बिखरे हुए प्राकृत साहित्य को पढ़-पढ़ कर ही व्याकरणकार अपने सूत्रो की रचना करते थे। इससे वैयाकरणों ने प्राकृत की बोलियो का जो विवेचन किया वह बड़ा अस्पष्ट और अपूर्ण रह गया। इन व्याकरणो को पढ़ कर यह पता नहीं चलता कि कौन से ग्रन्थो का विश्लेषण कर के इन नियमों की रचना की गई है, तथा अश्वघोष के नाटक, खरोष्ट्री लिपि का धम्मपद, अर्धमागधी के जैन आगम आदि की प्राकृतों का वास्तव में क्या स्वरूप था। अवश्य ही अठारहवीं शताब्दी मे रामपाणिवाद आदि प्राकृत साहित्य के उत्तरकालीन लेखकों ने इन व्याकरणों का अध्ययन कर अपनी रचनाये प्रस्तुत की, लेकिन ऐसी रचनाये केवल उँगलियों पर गिनने लायक हैं।

भरतनाट्यशास्त्र (१७-४८) में मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या नाम की सात प्राकृत भाषाये गिनाई गई हैं, यद्यपि इनके सम्बन्ध में यहाँ विशेष जानकारी नही मिलती। आगे चल कर संस्कृत के नाटककारों ने अपने पात्रों के मुँह से भिन्न-भिन्न बोलियाँ कहलवाई हैं और व्याकरणकारो ने इन बोलियो का विवेचन किया है, लेकिन इससे प्राकृतो का भाषाशास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करने में जरा भी सहायता नहीं मिलती। व्याकरणकारों में प्राकृत बोलियों का विस्तृत विवेचन करनेवालों मे वररुचि का नाम सर्वप्रथम आता है। उनके अनुसार प्राकृत (जिसे आगे चल कर महाराष्ट्री नाम दिया गया है), पैशाची, मागधी और शौरसेनी ये चार प्राकृत भाषाये हैं।[1] इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात है कि

---

१. राजशेखर ने काव्यमीमांसा (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से सन् १९५४ में प्रकाशित, पृष्ठ १४) में सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और

वररुचि के प्राकृतप्रकाश के प्रथम आठ परिच्छेदों में केवल प्राकृत भाषा का ही विवेचन है, पैशाची, मागधी और शौरसेनी का नहीं। टीकाकारों ने इन प्रथम आठ या नौ परिच्छेदों पर ही टीकायें लिखी हैं जिन्हें वे वररुचिकृत मानते थे। इससे भी यही सिद्ध होता है कि प्रारंभिक व्याकरणकार सामान्यरूप से प्राकृत को ही मुख्य मानते थे, तथा साहित्यिक रचनाओं की यह भाषा समझी जाती थी।[1] शूद्रक के मृच्छकटिक के अनुसार सूत्रधार द्वारा बोली जानेवाली भाषा को प्राकृत कहा गया है, यद्यपि बाद के वैयाकरणो की शब्दावलि में यही भाषा शौरसेनी बन गई है।[2]

प्राकृत और महाराष्ट्री

वररुचि ने प्राकृतप्रकाश (१२-३२) में शौरसेनी के लक्षण बताने के पश्चात् 'शेष महाराष्ट्रीवत्' लिखा है, इसलिये कुछ लोगो का मानना है कि महाराष्ट्री को ही मुख्य प्राकृत स्वीकार करना चाहिये, तथा शौरसेनी इसी के बाद का एक रूप है। इसके सिवाय, दडी ने भी अपने काव्यादर्श (१. ३४) में महाराष्ट्र मे बोली जानेवाली महाराष्ट्री को उत्तम प्राकृत कहा है (महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्ट प्राकृत विदु.)। वररुचि के प्राकृतप्रकाश के

पैशाच नामकी भाषाये बताई है। इनमें सस्कृत को पुरुष का मुख, प्राकृत को बाहु, अपभ्रश को जघन और पैशाच को पाद कहा है। लाट देश के लोग संस्कृतद्वेषी होते थे और प्राकृत काव्यों का वे बड़े सुचारु रूप से पाठ करते थे (पृष्ठ ८३)।

१ राजशेखर ने बालरामायण (१ १०) में प्राकृत भाषा को श्रव्य, दिव्य और प्रकृतिमधुर कहा है, तथा अपभ्रश को सुभव्य और भूतभाषा (पैशाची) को सरसवचन बताया है।

२ एषोऽस्मि भोः कार्यवशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी सवृत्त. (अक १, ८वे श्लोक के बाद), डा० ए० एन० उपाध्ये, लीलावईकहा की भूमिका, पृष्ठ ७५ पर से।

१२वे परिच्छेद के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है कि इस पर भामह की टीका नही, इसलिये उसकी प्रामाणिकता पर विश्वास नही किया जा सकता। दडी की उक्ति के सबंध मे, जैसा कि पुरुषोत्तम के प्राकृतानुशासन की अपनी फ्रेंच भूमिका मे[1] नित्ती डौल्ची महोदया ने बताया है, दडी उक्त श्लोक द्वारा प्राकृत भाषाओ का वर्गीकरण नहीं करना चाहता, उसके कहने का तात्पर्य है कि महाराष्ट्र मे बोली जानेवाली महाराष्ट्री को इसलिये प्रकृष्ट भाषा कहा है क्योकि यह सूक्तिरूपी रत्नों का सागर है और इसमे सेतुबध आदि लिखे गये है। यह पूरा श्लोक इस प्रकार है—

> महाराष्ट्राश्रयां भाषा प्रकृष्टं प्राकृतं विदु ।
> सागर: सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम् ॥

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि शौरसेनी आदि प्राकृतो से भिन्न महाराष्ट्री सर्वश्रेष्ठ प्राकृत माने जाने के कारण प्राकृत नाम से कही जाने लगी थी।[2] वैसे पुरुषोत्तम ने अपने प्राकृतानुशासन (११ १) में महाराष्ट्री और शौरसेनी के ऐक्य का प्रतिपादन किया है। उद्योतनसूरि ने पाययभासा और मरहट्ठय-देसी (भाषा) को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया है। वररुचि ने भी जो प्राकृत के सम्बन्ध में नियम दिये हैं उनका हेमचन्द्र के नियमों से मेल नही खाता। इससे यही मालूम होता है कि व्याकरणकारों में प्राकृत भाषाशास्त्र के सम्बन्ध में मतैक्य नही है। दरअसल बाद में होनेवाले व्याकरणकारो ने केवल अपने से पूर्व उपलब्ध सामाग्री को ही महत्त्व नहीं दिया, बल्कि समय-

---

१. देखिये पिशल के 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' के आमुख में डाक्टर हेमचन्द्र जोशी द्वारा इस भूमिका के कुछ भाग का किया हुआ हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३।

२. देखिये डाक्टर ए० एन० उपाध्ये की लीलावईकहा की भूमिका पृष्ठ ७८।

समय पर जो साहित्य का निर्माण होता रहा उसका भी विश्लेषण उन्होंने किया। इससे प्राकृतों के जितने भी रूप व्याकरणकारो को साहित्य के आधार से उपलब्ध हुए उन्हें वे एकत्रित करते गये, बोलियों की विशेषताओ की ओर उनका ध्यान न गया। आगे चलकर जब इन एकत्रित प्रयोगो का विश्लेषण किया गया तो इस बात का पता लगना कठिन हो गया कि अमुक प्रयोग महाराष्ट्री का है और अमुक शौरसेनी का। उदाहरण के लिये, गाहाकोस (गाथासप्तशती) और गौडवहो को विद्वान् महाराष्ट्री प्राकृत की कृति मानते हैं, जब कि स्वयं ग्रन्थकर्ताओं के अनुसार (सप्तशती २, गौडवहो ६५,६२) ये रचनाये प्राकृत की हैं। सेतुबंध के कर्ता ने अपनी रचना के सम्बन्ध में कुछ नही कहा, लेकिन दंडी के कथन से मालूम होता है कि यह महाराष्ट्री प्राकृत की रचना है। लीलावतीकार ने अपनी रचना को मरहट्ठदेसी भाषा (महाराष्ट्री प्राकृत) मे लिखा हुआ कहा है। ऐसी हालत में डाक्टर आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये का कथन ठीक ही है कि जबतक प्राकृत की प्रामाणिक रचनाये उपलब्ध नही होतीं जिनमें कि उन बोलियो के सम्बन्ध में विशिष्ट उल्लेख हो, तबतक इन बोलियों के रूप का पता लगना कठिन है।[1]

प्राकृत भाषाओं के प्रकार

पालि और अशोक की धर्मलिपियाँ

बुद्धघोष ने बौद्ध त्रिपिटक या बुद्धवचन के सामान्य अर्थ में पालि (पालि=परियाय=मूलपाठ=बुद्धवचन) शब्द का प्रयोग किया है। इसे मागधी अथवा मगधभाषा भी कहा गया है।[2] मगध में बोली जानेवाली इसी भाषा मे बौद्धों के त्रिपिटक

---

१ वही पृष्ठ ७८-८०।

२. भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, वि० सं० २००८।

का संग्रह मिलता है। यह भाषा अपने शुद्ध साहित्यिक रूप में बढ़ते हुए प्रभाव के नीचे दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण में वृद्धि को प्राप्त हुई। दक्षिण-पश्चिम की अशोकी प्राकृत से इसकी काफी समानता है। मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओ के इस आरभिक काल में प्रियदर्शी अशोक के शिलालेखो और सिक्को पर खुदी हुई बोलियो का भी अन्तर्भाव होता है। ये लेख ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियो मे भारत मे और भारत के बाहर लका में उपलब्ध हुए हैं, जो संस्कृत में न होकर केवल प्राकृत में ही पाये जाते हैं। सम्राट् अशोक के बाद भी स्तंभो आदि के ऊपर ८०० वर्ष तक इस प्रकार के लेख उत्कीर्ण होते रहे।

भारतेतर प्राकृत

भारतेतर प्राकृत खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए प्राकृत धम्मपद[1] का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसमे १२ परिच्छेद हैं जिनमे २३२ गाथाओं में बुद्ध-उपदेश का संग्रह है। इसकी भाषा पश्चिमोत्तर प्रदेश की बोलियो से मिलती-जुलती है। इनसे अनुमान होता

---

१. एमिले सेनार ने इसके कुछ अवशेषों का सग्रह सन् १८९७ में प्रकाशित किया था। उसके पश्चात् बरुआ और मित्र ने युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता की ओर से सन् १९२१ मे नया सस्करण छपवाया।

पालि धम्मपद के साथ प्राकृत धम्मपद की तुलना की जा सकती है—

प्राकृत— य ज वषशत जतु अगि परियरे वने
चिरेन सपितेलेन दिवरात्र अतद्रितो।
एक जि भवितत्मन मुहुत विव पुअए
समेव पुयन षेभ य जि वषशत हुत॥

पालि— यो च वस्ससत जन्तु अग्गिं परिचरे वने
एकं च भावितत्तानम् मुहुत्तं अपि पूजये
सा येव पूजना सेय्यो यंचे वस्ससत हुतम्।

पृष्ठ ३५।

है कि खरोष्ठी धम्मपद का मूल रूप भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश मे ही लिखा गया। लिपि के आधार पर इसका समय ईसवी सन् २०० माना गया है।

खरोष्ठी के लेख चीनी तुर्किस्तान में भी मिले है[1] जिनका अनुसंधान औरल स्टाइन ने किया है। इन लेखो की भाषा का मूल स्थान पेशावर के आसपास पश्चिमोत्तर प्रदेश माना जाता है। इनमें राजा की ओर से जिलाधीशों को आदेश, क्रय-विक्रय-सबंधी पत्र आदि उपलब्ध होते हैं। इन लेखो की प्राकृत निया प्राकृत नाम से कही गई है, इस पर ईरानी, तोखारी और मगोली भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ये लेख ईसवी सन् की लगभग तीसरी शताब्दी में लिखे गये हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमें मध्ययुगीन प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं की आरंभ-कालीन प्राकृत के अन्तर्गत पालि अथवा अशोक के शिलालेखो की प्राकृत का विवेचन अपेक्षित नही है। हम उसके बाद की प्राकृतों का ही अध्ययन यहॉ करना चाहते हैं जो जैन आगमों की अर्धमागधी से आरभ होती है।

अर्धमागधी

जैसे बौद्ध त्रिपिटक की भाषा को पालि नाम दिया गया है वैसे ही जैन आगमो की भाषा को अर्धमागधी कहा जाता है। अर्धमागधी को आर्ष (ऋषियों की भाषा) भी कहा गया है। हेमचन्द्र ने अपने प्राकृतव्याकरण (१ ३) में बताया है कि उनके व्याकरण के सर्व नियम आर्ष भाषा के लिये लागू नही होते क्योंकि उसमें बहुत से अपवाद हैं (आर्षे हि सर्वे विधयो

१. ये लेख बोयेर, रैपसन और सेनार नाम के तीन विद्वानों द्वारा सपादित होकर सन् १९२० में क्लरेण्डन प्रेस, आक्सफोर्ड से छपे हैं। इनका अंग्रेजी अनुवाद बरो के द्वारा रायल एशियाटिक सोसायटी की जेम्स जी० फरलोंग सीरीज़ में सन् १९४० में लंदन से प्रकाशित हुआ है।

विकल्प्यन्ते)। त्रिविक्रम ने प्राकृतशब्दानुशासन में आर्ष और देश्य भाषाओं को रूढिगत (रूढत्वात्) मानकर उनकी स्वतंत्र उत्पत्ति बताते हुए उनके लिये व्याकरण के नियमों की आवश्यकता ही नही बताई। इसका यही अर्थ हुआ कि आर्ष भाषा की प्रकृति या आधार संस्कृत नही है, वह अपने स्वतंत्र नियमों का पालन करती है (स्वतंत्रत्वाच्च भूयसा)।[1] रुद्रट के काव्यालंकार पर टीका लिखते हुए नमिसाधु ने आर्ष भाषा को अर्धमागधी कहते हुए उसे देवो की भाषा बताया है।[2] बाल, वृद्ध और अनपढ़ लोगो पर अनुकम्पा करके उनके हितार्थ समदर्शियों ने इस भाषा में उपदेश दिया था,[3] और यह भाषा आर्य, अनार्य और पशु-पक्षियो तक की समझ में आ सकती थी।[4] इससे यही सिद्ध होता है कि जैसे बौद्धो ने मागधी भाषा को सब भाषाओ का मूल माना है,[5] वैसे ही जैनों ने

---

१ देश्यमार्षं च रूढत्वास्स्वतंत्रत्वाच्च भूयसा।
लक्ष्म नापेक्षते, तस्य सम्प्रदायो हि बोधक ॥ ७, पृ० २।

२ आरिसवयणे सिद्ध देवाणं अद्धमागहा वाणी (२ . १२)।

३ अम्ह इत्थिबालवुड्ढअक्खरअयाणमाणाण अणुकंपणत्थ सव्वसत्त-समदरसीहि अद्धमागहाए भासाते सुत्त उवदिट्ठ, त च अण्णेसिं पुरतो ण पगासिज्जंति (आचारांगचूर्णी, पृ० २५५)।

४ अद्धमागहा भासा भासिज्जमाणी तेसि सव्वेसिं आयरियमणाय-रियाण दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खिसरिसिवाण अप्पप्पणो भासत्ताए परिणमइ (समवायांग ३४), तथा देखिये ओवाइय ३४, पृ० १४६; पण्णवणा, १ . ३७। वाग्भट ने अलंकारतिलक (१ १) में लिखा है—'सर्वार्धमागधीम् सर्वभाषासु परिणामिणीम्। सार्वीयाम् सर्वतोवाचम्, सार्वज्ञीम् प्रणिदध्महे' अर्थात् हम उस वाणी को नमस्कार करते हैं जो सब की अर्धमागधी है, सब भाषाओं मे अपना परिणाम दिखाती है, सब प्रकार से पूर्ण है और जिसके द्वारा सब कुछ जाना जा सकता है।

५. देखिये विभंग-अट्ठकथा (३८७ इत्यादि)। यहाँ बताया है कि यदि बालकों को बचपन से कोई भी भाषा न सिखाई जाये तो वे

अर्धमागधी को अथवा वैयाकरणो ने आर्ष भाषा को मूल भाषा स्वीकार किया है जिससे अन्य भाषाओ और बोलियो का उद्गम हुआ। अर्धमागधी जैन आगमो की भाषा है, सस्कृत नाटको मे इसका प्रयोग नही हुआ।

यद्यपि ध्वनितत्त्व की अपेक्षा अर्धमागधी पालि से बाद की भाषा है, फिर भी शब्दावलि, वाक्य-रचना और शैली की दृष्टि से प्राचीनतम जैन सूत्रो की यह भाषा पालि के बहुत निकट है। पालि की भॉति अर्धमागधी भी संस्कृत से काफी प्रभावित है। इस सबध में हरमन जैकोबी ने जो आचाराग-सूत्र की भूमिका (पृष्ठ ८-१४) मे पालि और अर्धमागधी की तुलना करते हुए जैन प्राकृत का एक लघु व्याकरण दिया है वह पढ़ने योग्य है। पिशल ने अर्धमागधी के अनेक प्राचीन रूप दिये हैं।[1]

भरत ने नाट्यशास्त्र (१७ ४८) मे मागधी, आवंती, प्राच्या. शौरसेनी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या के साथ अर्धमागधी को सात भाषाओ मे गिनाया है।[2] निशीथचूर्णीकार (११, पृष्ठ

स्वयं ही मागधी भाषा बोलने लगते हैं। यह भाषा नरक, तिर्यंच, प्रेत, मनुष्य और देवलोक मे समझी जाती है।

१ खिप्पामेव (क्षिप्र एव) गोयमा इ (गोयमा इति), पडुच्च (प्रतीत्य), अहा (यथा), अण्णमण्णेहि (अन्यमन्यै), देवत्ताए (देवत्वाय), योगसा (योगेन), धम्मुणा (धर्मेण), आइक्खइ (आख्याति), पाउणइ (प्राप्नोति), कुव्वइ (करोति), कट्टु (कृत्वा), भुंजित्तु (भुक्त्वा), करित्ताणं (कृत्वा), भोच्चा (भुक्त्वा), आरुसियाण (आरुष्य) आदि, प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ३३।

२. यहाँ कहा है कि अर्धमागधी, नाटकों में नौकरों, राजपूतों और श्रेष्ठियों द्वारा बोली जानी चाहिये, यद्यपि संस्कृत नाटकों में अर्धमागधी नहीं बोली जाती।

७३३ साइक्लोस्टाइल प्रति) ने मगध के अर्ध भाग में बोली जानेवाली अथवा अठारह देशीभाषाओं[1] से नियत भाषा को (मगहद्धविसयभासानिबद्ध अद्धमागह, अहवा अट्ठाइसदेसीभासाणियत अद्धमागह) अर्धमागधी कहा है। नवागी टीकाकार अभयदेव के अनुसार इस भाषा में कुछ लक्षण मागधी के और कुछ प्राकृत के पाये जाते हैं, इसलिये इसे अर्धमागधी कहा जाता है (मागधभाषालक्षणं किंचित्, किंचिच्च प्राकृतभाषालक्षणं यस्यामस्ति सा अर्धमागध्या' इति व्युत्पत्त्या)।[2] हेमचन्द्र ने यद्यपि जैन आगमो के प्राचीन सूत्रों को अर्धमागधी मे लिखे हुए (पोराणमद्धमागहभासानिययं हवइ सुत्तं— प्राकृतव्याकरण ८,४,२८७ वृत्ति) बताया है, लेकिन अर्धमागधी के नियमो का उन्होंने अलग से विवेचन नही किया। मागधी के नियम बताते हुए प्रसगवश अर्धमागधी का भी एकाध नियम बता दिया है। जैसे कि मागधी मे र का ल और स का श हो जाता है, तथा पुल्लिग मे कर्ताकारक एकवचन एकारान्त होता है (जैसे कतरः-कतरे), अर्धमागधी में भी कर्ताकारक एकवचन मे ओ का ए हो जाता है,[3] लेकिन र और स में यहाँ कोई परिवर्तन नही होता। मार्कण्डेय के मत मे शौरसेनी के

---

१. मगध, मालव, महाराष्ट्र, लाट, कर्णाटक, द्रविड़, गौड, विदर्भ आदि देशों की भाषाओं को देशीभाषा नाम दिया गया है (बृहत्कल्पभाष्य, २, पृ० ३८२)। कुवलयमाला में १८ देशीभाषाओं का स्वरूप बताया गया है, देखिये इस पुस्तक का छठा अध्याय।

२. भगवती ५.४, ओवाइय टीका ३४।

३. पिशल ने प्राकृतभाषाओं का व्याकरण (पृ० २८-९) में बताया है कि अर्धमागधी और मागधी का संबंध अत्यन्त निकट का नहीं है। लेकिन उनके अनुसार तव शब्द का व्यवहार दोनों ही भाषाओं में षष्ठी के एकवचन के रूप में व्यवहृत होता है, यह रूप अन्य प्राकृत भाषाओं में नहीं मिलता।

पास होने से मागधी को ही अर्धमागधी कहा गया है।[1] देखा जाय तो अर्धमागधी का यही लक्षण ठीक मालूम होता है। यह भाषा शुद्ध मागधी नही थी, पश्चिम मे शौरसेनी और पूर्व मे मागधी के बीच के क्षेत्र में यह बोली जाती थी, इसीलिये इसे अर्धमागधी कहा गया है। महावीर जहाँ विहार करते, इसी मिली-जुली भाषा में उपदेश देते थे। शनैःशनैः और भी प्रान्तो की देशी भाषाओ का मिश्रण इसमे हो गया। जैन आगमो को संकलित करने के लिये स्कंदिलाचार्य की अध्यक्षता मे मथुरा में और देवर्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता मे वलभी में भरनेवाले साधु-सम्मेलनो के पश्चात् जैन आगमो की अर्धमागधी मे अवश्य ही इन स्थानीय प्राकृतो का रग चढ़ा होगा। हरिभद्रसूरि ने जैन आगमो की भाषा को अर्धमागधी न कह कर प्राकृत नाम से उल्लिखित किया है।[2] हरमन जैकोबी ने इसे जैन प्राकृत नाम दिया है, जो उचित ही है।

शौरसेनी

शौरसेनी शूरसेन (व्रजमंडल, मथुरा के आसपास का प्रदेश) की भाषा थी। इसका प्रचार मध्यदेश (गंगा-यमुना की उपत्यका) मे हुआ था। भरत (ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी) ने अपने नाट्यशास्त्र में शौरसेनी का उल्लेख किया है, जबकि महाराष्ट्री का नाम यहाँ नही मिलता। नाट्यशास्त्र (१७ ४६) के अनुसार नाटकों की बोलचाल में शौरसेनी का आश्रय लेना चाहिये, तथा (१७ ५१) महिलाओं और उनकी सहेलियो को इस भाषा में

---

१. शौरसेन्या अदूरत्वादियमेवार्धमागधी (१२ ३८) तुलना कीजिये क्रमदीश्वर के सक्षिप्तसार (५ . ९८) से जहाँ अर्धमागधी को महाराष्ट्री और मागधी का मिश्रण स्वीकार किया है।

२. बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः स्मृत.॥
(दशवैकालिकवृत्ति, पृ० २०३)

बोलना चाहिये। हेमचन्द्र ने आर्ष प्राकृत के पश्चात् शौरसेनी का ही उल्लेख किया है, उसके बाद मागधी और पैशाची का। साहित्यदर्पण (६ १५६,१६५) मे सुशिक्षित स्त्रियो के अलावा बालक, नपुंसक, नीच ग्रहों का विचार करनेवाले ज्योतिषी, विक्षिप्त और रोगियो को नाटको में शौरसेनी बोलने का विधान है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व (१० १) में शौरसेनी से ही प्राच्या का उद्भव बताया है (प्राच्यासिद्धिः शौरसेन्याः)। लक्ष्मीधर ने षड्भाषाचन्द्रिका (श्लोक ३४) में कहा है कि यह भाषा छद्मवेषधारी साधुओ, किन्ही के अनुसार जैनो तथा अधम और मध्यम लोगों के द्वारा बोली जाती थी। वररुचि ने संस्कृत को शौरसेनी का आधारभूत स्वीकार किया है (प्राकृतप्रकाश १२ २), और शौरसेनी के कुछ नियमो का विवेचन कर शेष नियमो को महाराष्ट्री के समान समझ लेने को कहा है (१२ ३२)।

ध्वनितत्त्व की दृष्टि से शौरसेनी मध्यभारतीय आर्यभाषा के विकास में संक्रमणकाल की अवस्था है, महाराष्ट्री का स्थान इसके बाद आता है।[1] दिगम्बर सम्प्रदाय के प्राचीन शास्त्रो की यह भाषा है जो प्रायः पद्य मे है, पिशल ने इसे जैन शौरसेनी

---

१ इस सम्बन्ध के वाद विवाद के लिये देखिये पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ १८-२५, ३९-४३, कोनो और लानमन, कर्पूरमजरी, पृष्ठ १३९ आदि, एम० घोष का जरनल ऑव डिपार्टमेण्ट ऑव लैटर्स, जिल्द २३, कलकत्ता, १९३३ मे प्रकाशित 'महाराष्ट्री शौरसेनी के बाद का रूप' नामक लेख; ए० एम० घाटगे का जरनल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव बबई, जिल्द ३, भाग ४ में 'शौरसेनी प्राकृत' नाम का लेख, एस० के० चटर्जी का जरनल ऑव डिपार्टमेण्ट ऑव लैटर्स, जिल्द २९, कलकत्ता, १९३६ में 'द स्टडी ऑव न्यू इण्डो-आर्यन' नाम का लेख, एम० ए० घाटगे का जरनल ऑव द यूनिवर्सिटी ऑव बबई, जिल्द ४, भाग ६ आदि में प्रकाशित 'महाराष्ट्री लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर' नाम का लेख, ए० एन० उपाध्ये, कसवहो की भूमिका, पृष्ठ ३९-४२।

नाम दिया है। पिशल के अनुसार बोलियो में जो बोलचाल की भाषायें व्यवहार मे लाई जाती हैं, उनमे शौरसेनी का स्थान सर्वप्रथम है (प्राकृतभाषाओ का व्याकरण, पृष्ठ ३६)। हर्मन जैकोबी ने इसे क्लासिकल-पूर्व (प्रीक्लासिकल) नाम दिया है। दुर्भाग्य से दिगम्बर सम्प्रदाय के प्राचीन शास्त्रो की भॉति सस्कृत नाटको के भी आलोचनात्मक सस्करण प्रकाशित नही हुए, फिर भी अश्वघोष (ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी) तथा भास (ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी) के नाटको के पद्यभाग में जो रूप मिलते है वे शौरसेनी के माने जाते है, महाराष्ट्री के नहीं। इसी प्रकार शूद्रक के मृच्छकटिक और मुद्राराक्षस के पद्यभाग में, और कर्पूरमंजरी मे भी शौरसेनी ही रूप उपलब्ध होते है।[1] इससे शौरसेनी की प्राचीनता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। संस्कृत से प्रभावित होने के कारण इसमे प्राचीन कृत्रिम रूपों की अधिकता पाई जाती है।[2]

व्याकरण के नियमानुसार शौरसेनी में त के स्थान मे द और थ के स्थान में ध हो जाता है (वररुचि १२ ३; हेमचन्द्र ४.२६७, मार्कण्डेय ६ २.२०,२४; रामशर्मा तर्कवागीश २ १ ५)। लेकिन जैकोबी आदि विद्वान् इस परिवर्त्तन को शौरसेनी की विशेषता नही स्वीकार करते। प्राकृत भाषाओं की प्रथम अवस्थाओ में इस परिवर्त्तन के चिह्न दृष्टिगोचर नही होते। अश्वघोष के नाटकों में शौरसेनी का प्राचीन रूप उपलब्ध

---

१. इस सम्बन्ध में डाक्टर मनोमोहन घोष द्वारा सपादित कर्पूरमजरी के नये सस्करण की विद्वत्तापूर्ण भूमिका देखने योग्य है।

२. शौरसेनी की विशेषता के द्योतक दाणम्मि (दाने), व्व (इव), जाणित्ता (ज्ञात्वा), भविय (भूत्वा), भोदूण (भूत्वा), किच्चा (कृत्वा), पावदि (प्राप्नोति), मुणदि (जानाति) आदि रूप पिशल ने प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ ३८-३९ में दिये हैं। शौरसेनी में कुछ अर्धमागधी के रूप भी मिलते हैं। संज्ञा शब्दों के कर्ता एकवचन का रूप यहाँ ओकारान्त होता है।

होता है, लेकिन यहाँ भी उक्त नियम लागू नहीं होता। भास के नाटकों में त के स्थान में द हो जाने के उदाहरण (जैसे भवति-भोदि) पाये जाते है, लेकिन कही त का लोप भी देखने में आता है (जैसे सीता-सीआ)। नाट्यशास्त्र के पद्यो में भी त के दोनो ही रूप मिलते हैं। इसी प्रकार दिगम्बरों के शौरसेनी के प्राचीन ग्रथो मे भी इति के स्थान में इदि तथा अतिशय के स्थान मे अइसय ये दोनों रूप दिखाई देते है। विद्वानो का मानना है कि शौरसेनी की उत्पत्ति होने के बाद अश्वघोष और प्राकृत शिलालेखो (ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी) के पश्चात् शौरसेनी भाषा के सबध मे उक्त नियम बना और आगे चलकर शौरसेनी का विकास रुक जाने पर वैयाकरणो ने इस नियम को शौरसेनी का प्रधान लक्षण स्वीकार कर लिया। शौरसेनी ही नही, महाराष्ट्री प्राकृत भी अपनी प्रथम अवस्था में इस नियम से प्रभावित हुई[1]।

---

१ डा० ए० एम० घाटगे, 'शौरसेनी प्राकृत', जरनल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव बबई, मई, १९३५, डाक्टर ए० एन० उपाध्ये, 'पैशाची, लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर', एनल्स ऑव भांडारकर ओरिंटिएल इंस्टिट्यूट, जिल्द २१, १९३९-४०, लीलावईकहा की भूमिका, पृष्ठ ८३।

डाक्टर घाटगे ने शौरसेनी के निम्न लक्षण दिये है :—

(क) द और ध का अपने मूल रूप में रहना (मार्कण्डेय के अनुसार शौरसेनी में द का लोप नहीं होता। अश्वघोष के नाटकों में द और ध पाये जाते है, जैसे हिदयेन, दम्भि। नाट्यशास्त्र के पद्यों में भी छादन्ता, विदारिदे आदि में द का रूप देखने मे आता है)। (ख) क्ष का क्ख, (ग) ऋ का इ, (घ) ऐ का ए, (ङ) औ का ओ हो जाता है। (च) सप्तमी के एक वचन में एकारान्त प्रत्यय, (छ) पचमी के एकवचन में आदो, (ज) द्वितीया के बहुवचन मे णि, (झ) भविष्यकाल में स्स, और (ञ) क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर इअ प्रत्यय लगता है, आदि।

इसके अतिरिक्त (क) न्य, ण्य और ज्ञ के स्थान में ञ होना,

महाराष्ट्री

भरत के नाट्यशास्त्र मे महाराष्ट्री प्राकृत का उल्लेख नही है। अश्वघोष और भास के नाटको में भी महाराष्ट्री के प्रयोग देखने मे नहीं आते। हेमचन्द्र, शुभचन्द्र और श्रुतसागर ने भी आर्ष प्राकृत का ही उल्लेख किया है, महाराष्ट्री का नही। वररुचि ने अपने प्राकृतप्रकाश मे शौरसेनी के लक्षण बताने के पश्चात् 'शेषं महाराष्ट्रीवत्' (१२.३२) लिखकर महाराष्ट्री को मुख्य प्राकृत स्वीकार किया है, लेकिन जैसा पहले कहा जा चुका है इस अध्याय पर भामह की टीका नही है, इसलिये इस अध्याय को प्रामाणिक नही कहा जा सकता। महाकवि दंडी ने महाराष्ट्र में बोली जानेवाली भाषा को उत्तम प्राकृत कहा क्योकि इसमे सूक्तिरूपी रत्नों का सागर है और सेतुबध[1] इसी में लिखा गया

(ख) त के स्थान मे द होना, (ग) क, ग, च, ज का लोप होना (अश्वघोष के नाटकों मे इनका लोप नहीं पाया जाता। भास के नाटकों और नाट्यशास्त्र मे दोनों रूप देखने में आते हैं। आगे चलकर इन व्यंजनों के लोप को शौरसेनी का लक्षण मान लिया गया। दिगंबरों के प्राचीन ग्रन्थों में भी इन व्यंजनों के सबंध में कोई निश्चित नियम नही पाया जाता)। (घ) ख, घ, फ, भ का लोप होना (इन व्यञ्जनों के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित नियम नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिये अश्वघोष में सखि आदि शब्द मिलते है)। (ङ) क्त्वा प्रत्यय के स्थान में दूण प्रत्यय लगना आदि नियमों में एकरूपता नहीं पाई जाती। इससे यही अनुमान होता है कि शौरसेनी भाषा क्रमशः विकास को प्राप्त हो रही थी। देखिये उपर्युक्त जरनल में घाटगे का लेख।

१ लेकिन सेतुबध के दा, दाव, उदू आदि रूप महाराष्ट्री के रूप न मानकर शौरसेनी के ही मानने चाहिये, देखिए डाक्टर ए० एन० उपाध्ये, एनल्स ऑव भाडारकर इंस्टिट्यूट १९३९–४० में 'पैशाची लैंग्वेज और लिटरेचर' नामक लेख, डाक्टर मनोमोहन घोष, कर्पूरमंजरी की भूमिका, पृष्ठ ७१।

है। इससे महाराष्ट्री प्राकृत के साहित्य की समृद्धता का सूचन होता है। संस्कृत नाटको में सर्वप्रथम कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल नाटक मे महाराष्ट्री के प्रयोग दिखाई देते है।[1] दडी को छोड़कर पूर्वकाल (ईसवी सन् १००० के पूर्व) के अलंकार-शास्त्र के पडित महाराष्ट्री से अनभिज्ञ थे।[2]

ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से महाराष्ट्री प्राकृत अत्यन्त समृद्ध है। डाक्टर पिशल के शब्दो में 'न कोई दूसरी प्राकृत साहित्य में कविता और नाटकों के प्रयोग मे इतनी अधिक लाई गई है और न किसी दूसरी प्राकृत के शब्दों में इतना अधिक फेरफार हुआ है।' तथा 'महाराष्ट्री प्राकृत मे संस्कृत शब्दो के व्यंजन इतने अधिक और इस प्रकार से निकाल दिये गये है[3] कि अन्यत्र कहीं यह बात देखने मे नहीं आती। ˙ ˙ ये व्यजन इसलिये हटा

---

१. प्रोफेसर जैकोबी ने महाराष्ट्री का समय कालिदास का समय (ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी) और डाक्टर कीथ ने चौथी शताब्दी के बाद स्वीकार किया है।

२. डाक्टर मनोमोहन घोष के अनुसार मध्यभारतीय-आर्यभाषा के रूप में महाराष्ट्री काफी समय बाद (ईसवी सन् ६००) स्वीकृत हुई, कर्पूरमंजरी की भूमिका, पृष्ठ ७६।

डा० ए० एन० उपाध्ये ने भी महाराष्ट्री को शौरसेनी का ही बाद का रूप स्वीकार किया है, देखिये चन्दलेहा की भूमिका। डाक्टर ए० एम० घाटगे उक्त मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार हेमचन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो प्राकृत का विवेचन किया है, उससे उनका तात्पर्य महाराष्ट्री प्राकृत से ही है, देखिये जरनल ऑव युनिवर्सिटी ऑव बम्बई, मई, १९३६ में 'महाराष्ट्री लैंग्वेज और लिटरेचर' नाम का लेख।

३ उदाहरण के लिये नीचे लिखे शब्दों पर ध्यान दीजिये—

कअ (कच, कृत), कइ (कति, कपि, कवि, कृति), काअ (काक, काच, काय), मअ (मत, मद, मय, मृग, मृत), सुअ (शुक, सुत, श्रुत)।

दिये गये कि इस प्राकृत का प्रयोग सबसे अधिक गीतों में किया जाता था, अधिकाधिक लालित्य लाने के लिये यह भाषा श्रुति-मधुर बनाई गई[1]।' हाल की सत्तसई और जयवल्लभ का वज्जालग्ग महाराष्ट्री प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ मुक्तक काव्य हैं जिनमें एक से एक बढ़कर कवियों की रचनाओं का संग्रह है। सेतुबंध और गउडवहो जैसे महाकाव्य भी महाराष्ट्री प्राकृत में ही लिखे गये हैं। डाक्टर हरमन जैकोबी ने इसे 'जैन महाराष्ट्री' नाम से उल्लिखित किया है। जैन महाराष्ट्री के संबंध में 'आवश्यक कथायें' नामक ग्रंथ का पहला भाग एर्नेस्ट लौयमान ने सन् १८९७ में लाइप्त्सिख से प्रकाशित कराया था। तत्पश्चात् हरमन जैकोबी ने 'औसगेवैल्ते एर्त्सैलुङ्गन इन महाराष्ट्रीत्सुर आइनफ्युरुङ्ग इन डास स्टूडिउम डेस प्राकृत ग्रामाटिक टैक्स्ट वोएरतरबुख' (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ प्राकृत के अध्ययन में प्रवेश कराने के लिये) सन् १८८६ में लाइप्त्सिख से प्रकाशित कराया। इसमें जैन महाराष्ट्री की उत्तरकालीन कथाओं का संग्रह किया गया।

हेमचन्द्र के समय तक शौरसेनी के बहुत से नियम महाराष्ट्री प्राकृत के लिये लागू होने लगे थे। वररुचि और हेमचन्द्र ने महाराष्ट्री प्राकृत के निम्न लक्षण दिये हैं—

(क) क, ग, च, ज, त, द, प, य और व का प्राय: लोप हो जाता है (वररुचि २ २, हेमचन्द्र १ १७.७)।

(ख) ख, घ, ध, थ, फ और भ के स्थान में ह हो जाता है (वररुचि २ २५; हेमचन्द्र १.१८७)।[2]

---

१. प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ १८।

२. अन्य नियमों के लिये देखिये वररुचि का प्राकृतप्रकाश (१–९ परिच्छेद), हेमचन्द्र का प्राकृतव्याकरण (८. १–४, सूत्र १ २५९), लक्ष्मीधर की षड्भाषाचन्द्रिका (पृ० १–२४६); मार्कण्डेय का प्राकृतसर्वस्व (१–८)।

लेकिन हस्तलिखित प्रतियो में इन नियमो का अक्षरशः पालन देखने मे नही आता। कतिपय आधुनिक सम्पादक विद्वानो ने सत्तसई और कर्पूरमजरी आदि के संस्करणो मे उक्त नियमो का अक्षरश' पालन करने का प्रयत्न किया है, लेकिन इससे लाभ के बदले हानि ही अधिक हुई है।

पैशाची

पैशाची एक बहुत प्राचीन प्राकृत बोली है जिसकी गणना पालि, अर्धमागधी और शिलालेखी प्राकृतो के साथ की जाती है। चीनी तुर्किस्तान के खरोष्ट्री शिलालेखो में पैशाची की विशेषताये देखने में आती है।[1] जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार पैशाची पालि का ही एक रूप है जो भारतीय आर्यभाषाओ के विभिन्न रूपो के साथ मिश्रित हो गई है। वररुचि ने प्राकृत-प्रकाश के दसवे परिच्छेद मे पैशाची का विवेचन करते हुए शौरसेनी को उसकी अधारभूत भाषा स्वीकार किया है। रुद्रट के काव्यालकार (२,१२) की टीका में नमिसाधु ने इसे पैशाचिक कहा है। हेमचन्द्र ने प्राकृतव्याकरण (४ ३०३-२४) मे पैशाची के नियमो का वर्णन किया है। त्रिविक्रम ने प्राकृत-शब्दानुशासन (३ २.४३) और सिंहराज ने प्राकृतरूपावतार के बीसवे अध्याय मे इस भाषा का उल्लेख किया है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व (पृष्ठ २) में काचीदेशीय, पाड्य, पाचाल, गौड, मागध, व्राचड, दाक्षिणात्य, शौरसेन, कैकय, शाबर और द्राविड़ नाम के ११ पिशाचज (पिशाच देश) बताये है। वैसे मार्कण्डेय ने कैकय, शौरसेन और पांचाल नाम की तीन पैशाची बोलियों का उल्लेख किया है। रामशर्मा तर्कवागीश ने प्राकृतकल्पतरु (३ ३) मे कैकेय, शौरसेन, पांचाल, गौड,

१. देखिये डाक्टर हीरालाल जैन का नागपुर युनिवर्सिटी जरनल, दिसम्बर १९४१ में प्रकाशित 'पैशाची ट्रेट्स इन द लैंग्वेज ऑव द खरोष्ट्री इंस्क्रिप्शन्स फ्रॉम चाइनीज़ तुर्किस्तान' नामक लेख।

मागध और ब्राचड पैशाच का विवेचन किया है। लक्ष्मीधर की षड्भाषाचन्द्रिका (श्लोक ३५) के अनुसार पैशाची और चूलिका पैशाची राक्षस, पिशाच और नीच व्यक्तियों द्वारा बोली जाती थी। यहाँ पांड्य, केकय, बाह्लीक, सिंह (? सह्य), नेपाल, कुन्तल, सुधेष्ण, भोज, गांधार, हैवक, (?) और कन्नौज की गणना पिशाच देशों में की गई है। इन नामो से पता चलता है कि पैशाची भारत के उत्तर और पश्चिमी भागों में बोली जाती रही होगी। भोजदेव ने सरस्वतीकंठाभरण (२, पृष्ठ १४४) में उच्च जाति के लोगो को शुद्ध पैशाची बोलने के लिये मना किया है। दंडी ने काव्यादर्श (१ ३८) में पैशाची भाषा को भूतभाषा बताया है।

पैशाची ध्वनितत्त्व की दृष्टि से संस्कृत, पालि और पल्लववंश के दानपत्रो की भाषा से मिलती-जुलती है। संस्कृत के साथ समानता होने के कारण इसमे श्लेषालंकार की बहुत सुविधा है। गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची की सबसे प्राचीन कृति है। दुर्भाग्य से आजकल यह उपलब्ध नही है। बुधस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी और सोमदेव के कथासरित्सागर से इसके संबंध मे बहुत सी बातो का परिचय प्राप्त होता है। प्राकृतव्याकरण और अलंकार के पंडितों ने जो थोड़े-बहुत उदाहरण या उद्धरण दिये है उनके ऊपर से इस भाषा का कुछ ज्ञान होता है।[1]

---

१ वररुचि ने प्राकृतप्रकाश के दसवे परिच्छेद में पैशाची के निम्न लक्षण दिये हैं —

(क) पैशाची में वर्ग के तृतीय और चतुर्थ अक्षरों के स्थान मे क्रमशः प्रथम और द्वितीय अक्षर हो जाते हैं (गगन–गकन, मेघ–मेख), (ख) ण के स्थान में न हो जाता है (तरुणी–तलुनी), (ग) ष्ट के स्थान में सट हो जाता है (कष्ट–कसट), (घ) स्न के स्थान में सन हो जाता है (स्नान–सनान), (ङ) न्य के स्थान में ञ्ञ हो जाता है (कन्या–कञ्ञा)।

चंड (प्राकृतलक्षण ३. ३८), हेमचन्द्र (प्राकृतव्याकरण

हेमचन्द्र, त्रिविक्रम और लक्ष्मीधर ने पैशाची के साथ चूलिका-पैशाची का भी विवेचन किया है।[1]

मागधी

मगध जनपद (बिहार) की यह भाषा थी। अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और पैशाची की भाँति इस प्राकृत में स्वतत्र रचनाये नही पाई जाती, केवल संस्कृत नाटको में इसके प्रयोग देखने में आते हैं। पूर्व और पश्चिम के वैयाकरणों में मागधी के सम्बन्ध में काफी मतभेद पाया जाता है। मार्कण्डेय ने प्राकृतसर्वस्व (पृष्ठ १०१) में कोहल का मत दिया है जिसके अनुसार यह प्राकृत राक्षस, भिक्षु, क्षपणक और

---

४. ३०३–२४) और नमिसाधु ने भी रुद्रट के काव्यालकार की टीका (पृष्ठ १४) मे पैशाची भाषा के नियम दिये हैं। कवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा (पृष्ठ १२४) में कहा है कि अवन्तिका, पारियात्र और दशपुर आदि के कवि भूतभाषा (पैशाची) का प्रयोग करते थे। कल्हण की राजतरगिणी में दर्दर और म्लेच्छों के साथ भोट्टों को गिनाया गया है। इन लोगों को पीतवर्ण का बताया है जिससे ये मंगोल नस्ल के जान पड़ते हैं। पैशाची की तुलना उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त में बोली जाने वाली पश्तो भाषा से की जा सकती है। देखिये डाक्टर हीरालाल जैन का उपर्युक्त लेख।

१ हेमचन्द्र के अनुसार इस भाषा में वर्ग के तीसरे और चौथे अक्षर के स्थान मे क्रमश वर्ग के पहले और दूसरे अक्षर हो जाते हैं (जैसे गिरि–किरि, धूली–थूली, भगवती–फकवती) और र के स्थान में ल हो जाता है (जैसे रुद्द–लुद्द, हरं–हल)। चूलिक, चूडिक अथवा शूलिकों का नाम तुखार, यवन, पह्लव और चीन के लोगों के साथ गिनाया गया है। बागची के अनुसार यह भाषा सोगडियन लोगों द्वारा उत्तर-पश्चिम में बोली जाती थी। देखिये, डाक्टर हीरालाल जैन का उपर्युक्त लेख।

चेटों आदि द्वारा बोली जाती थी। भरत के नाट्यशास्त्र (१७. ५०, ५५–५६) के कथनानुसार अन्तःपुर में रहनेवालों, सेंध लगानेवालों, अश्वरक्षकों और आपत्तिग्रस्तनायको द्वारा मागधी बोली जाती थी। दशरूपककार (२६५) का कहना है कि पिशाच और नीच जातियाँ इस भाषा का प्रयोग करती थी। शूद्रक के मृच्छकटिक में सवाहक, शकार का दास स्थावरक, वसन्तसेना का नौकर कुभीलक, चारुदत्त का नौकर वर्धमानक, भिक्षु तथा चारुदत्त का पुत्र रोहसेन ये छहों (टीकाकार पृथ्वीधर के अनुसार) मागधी मे बोलते है। शकुन्तला नाटक में दोनो प्रहरी और धीवर तथा शकुन्तला का छोटा पुत्र सर्वदमन इसी भाषा मे बात करते हैं। मुद्राराक्षस मे जैन साधु, दूत तथा चांडाल के वेश में अपना पार्ट खेलने वाले सिद्धार्थक और समिद्धार्थक मागधी में ही बोलते हैं। वेणीसंहार मे राक्षस और उसकी स्त्री इसी प्राकृत का प्रयोग करते हैं। पिशल के कथनानुसार सोमदेव के ललितविग्रहराजनाटक में जो मागधी प्रयुक्त की गई है वह वैयाकरणो के नियमों के साथ अधिक मिलती है। यहाँ भाट और चर मागधी में बात करते हैं।[1]

वररुचि और हेमचन्द्र ने मागधी के नियमों का वर्णन कर शेप नियम शौरसेनी की भाति समझ लेने का आदेश दिया है। जान पड़ता है शोरसेनी से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण ही इस प्राकृत का रूप बहुत अस्पष्ट हो गया।[2]

---

१ प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ४५।

२ पिशल का कहना है कि मागधी में सबसे अधिक सचाई के साथ हेमचन्द्र के ४. २८८ नियम का पालन हुआ है। इसके अनुसार स के स्थान में श और र के स्थान में ल (विलास–विलाश, नर–नल) हो जाता है। इसी तरह ४. २८७ नियम का भी पालन हुआ है। इसके अनुसार पुल्लिंग और नपुंसकलिंग अकारान्त शब्दों का कर्ता एकवचन में एकारान्त रूप होता है (नरः–नले)। इसके अतिरिक्त वररुचि (११. ९) और हेमचन्द्र (४. ३०१) के अनुसार मागधी में अह के

पुरुषोत्तम ने प्राकृतानुशासन (अध्याय १३-१५) मे मागधी भाषा के अन्तर्गत शाकारी, चाण्डाली और शाबरी भाषाओ का उल्लेख किया है। यहाँ शाकारी को मागधी की विभाषा,[1] चाण्डाली को मागधी की विकृति और शाबरी[2] को एक प्रकार की मागधी (मागधीविशेष) कहा गया है। चाण्डाली में ग्राम्योक्तियो की बहुलता पाई जाती है।

पिशल का कथन है कि मागधी एक भाषा नहीं थी, बल्कि इसकी बोलियाँ भिन्न-भिन्न स्थानो में प्रचलित थी। इसीलिये

स्थान पर हगे हो जाता है, कभी वय के स्थान पर भी हगे ही होता है। वररुचि (११ ४,७) तथा हेमचन्द्र (४ २९२) के अनुसार य जैसे का तैसा रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। द्य, र्य और र्ज के स्थान पर य्य होता है, लेकिन यह नियम ललितविग्रहराज के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ४५।

वररुचि (११वां परिच्छेद) और हेमचन्द्र (४ २०७–३०२) के अनुसार मागधी के कुछ नियम निम्न प्रकार से हैं —

(क) ज के स्थान में य हो जाता है (जायते-यायदे)।

(ख) र्य और र्ज के स्थान में य्य हो जाता है (कार्यम्-कय्ये, दुर्जनः-दुय्यणे)।

(ग) क्ष के स्थान में स्क हो जाता है (राक्षस-लस्कशे)।

(घ) न्य, ण्य, ज्ञ, ञ्ज, के स्थान में ञ्ञ हो जाता है (अभिमन्यु-अहिमञ्ञु, पुण्यवन्त-पुञ्ञवन्ते, प्रज्ञा-पञ्ञा, अञ्जली-अञ्ञली)।

(ङ) क्त्वा के स्थान में दाणि हो जाता है (कृत्वा-करिदाणि)।

१ मार्कण्डेय (पृष्ठ १०५) ने भी शाकारी को मागधी का ही रूप बताया है—मागध्याः शाकारी, सिध्यतीति शेषः।

२ मार्कण्डेय ने चांडाली को मागधी और शौरसेनी का मिश्रण स्वीकार किया है (पृष्ठ १०७)। शाबरी को उसने चांडाली से आविर्भूत माना है (पृष्ठ १०८)।

'क्ष के स्थान पर कहीं ह्क, कही श्क, र्थ के स्थान पर कही स्त और श्त, ष्क के स्थान पर कही स्क और कही श्क लिखा जाता है। इसलिये मागधी में वे सब बोलियाँ सम्मिलित करनी चाहिये जिनमे ज के स्थान पर य, र के स्थान पर ल, स के स्थान पर श लिखा जाता है और जिनके अ मे समाप्त होनेवाले सज्ञा शब्दों के अन्त में अ के स्थान पर ए जोड़ा जाता है।"[१]



१. प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ४८।

दूसरा अध्याय

जैन आगम साहित्य

जैन आगम (ईसवी सन् के पूर्व ५वी शताब्दी से लेकर ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी तक)

जैन आगमों को श्रुतज्ञान अथवा सिद्धांत के नाम से भी कहा जाता है। जैन परम्परा के अनुसार अर्हत भगवान् ने आगमों का प्ररूपण किया और उनके गणधरों ने इन्हें सूत्ररूप में निबद्ध किया।[1] आगमो की संख्या ४६ है।[2]

---

१ अत्थं भासइ अरहा, सुत्त गथंति गणहरा निउण।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्त पवत्तेइ॥
—भद्रबाहु, आवश्यकनिर्युक्ति ९२।

२ ८४ आगमों के नाम निम्न प्रकार से हैं (जैनग्रथावलि, श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, मुम्बई वि० सं० १९६५, पृ० ७२)—

११ अंग, १२ उपांग, ५ छेदसूत्र (पचकप्प को निकालकर), ५ मूलसूत्र (उत्तरज्झयण, दसवेयालिय, आवस्सय, नंदि, अणुयोगदार), ८ अन्य ग्रन्थ (कल्पसूत्र, जीतकल्प, यतिजीतकल्प, श्राद्धजीतकल्प, पाक्षिक, खामणा, वंदित्तु, ऋषिभाषित) और निम्नलिखित ३० प्रकीर्णकः—

१ चतु:शरण	११ अजीवकल्प	२१ पिंडनिर्युक्ति
२ आतुरप्रत्याख्यान	१२. गच्छाचार	२२ सारावलि
३ भक्तपरिज्ञा	१३ मरणसमाधि	२३ पर्यंताराधना
४. संस्तारक	१४ सिद्धप्राभृत	२४ जीवविभक्ति
५. तदुलवैचारिक	१५. तीर्थोद्धार	२५ कवच
६. चद्रवेध्यक	१६. आराधनापताका	२६. योनिप्राभृत
७ देवेन्द्रस्तव	१७. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति	२७ अगचूलिया
८ गणिविद्या	१८. ज्योतिष्करण्डक	२८ वंगचूलिया
९. महाप्रत्याख्यान	१९. अंगविद्या	२९. वृद्धचतुःशरण
१०. वीरस्तव	२०. तिथिप्रकीर्णक	३०. जंबूपयन्ना

१२ अंग—आयारंग, सूयगडग, ठाणांग, समवायांग, वियाहपण्णत्ति (भगवती), नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हवागरणाइ, विवागसुय, दिट्ठिवाय (विच्छिन्न)।

१२ उपांग—ओववाइय, रायपसेणइय, जीवाभिगम, पन्नवणा, सूरियपण्णत्ति, जबुद्दीवपण्णत्ति, चन्दपण्णत्ति, निरयावलियाओ, कप्पवडसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ।

---

१२ निर्युक्तियाँ-

१. आवश्यक	५. सूत्रकृताङ्ग	९ कल्पसूत्र
२. दशवैकालिक	६. बृहत्कल्प	१०. पिंडनिर्युक्ति
३ उत्तराध्ययन	७ व्यवहार	११. ओघनिर्युक्ति
४. आचाराग	८. दशाश्रुत	१२ ससक्तनिर्युक्ति

(सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति और ऋषिभाषितनिर्युक्ति अनुपलब्ध हैं)। ये सब मिलकर ८३ आगम होते हैं। इनमें जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण का विशेषावश्यक महाभाष्य जोड़ने से ८४ हो जाते हैं।

श्वेताम्बर स्थानकवासी ३२ आगम मानते हैं।

नन्दीसूत्र (४३ टीका, पृष्ठ ९०–९५) के अनुसार श्रुत के दो भेद बताये गये हैं—अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। प्रश्न पूछे बिना अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले श्रुत को अङ्गबाह्य, तथा गणधरों के प्रश्न करने पर तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित श्रुत को अंगप्रविष्ट कहते हैं। अंगबाह्य के दो भेद हैं—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त। सामयिक आदि आवश्यक के छह भेद हैं। आवश्यकव्यतिरिक्त कालिक और उत्कालिक भेद से दो प्रकार का है। जो दिन और रात्रि की प्रथम और अन्तिम पोरिसी में पढ़ा जाये उसे कालिक और जो किसी कालविशेष में न पढ़ा जाये उसे उत्कालिक कहते हैं। कालिक के उत्तराध्ययन आदि ३१ और उत्कालिक के दशवैकालिक आदि २८ भेद हैं। अंगप्रविष्ट के आचाराग आदि १२ भेद हैं। विस्तार के लिये देखिये मोहनलाल, दलीचन्द, देसाई, जैनसाहित्यनो इतिहास, श्रीजैन श्वेतांबर कॉन्फरेन्स, बम्बई, १९३३, पृष्ठ ४०-४५। आगमों के विशेष परिचय के लिये देखिये समवायांग,

१० पइन्ना—चउसरण, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, भत्तपरिण्णा, तदुलवेयालिय, सथारग, गच्छायार, गणिविज्जा, देविद्त्थय, मरणसमाही ।

६ छेयसुत्त—निसीह, महानिसीह, ववहार, दसासुयक्खंध (आयारदसाओ), कप्प (बृहत्कल्प), पचकप्प (अथवा जीयकप्प)।

४ मूलसुत्त—उत्तरज्झयण, दसवेयालिय, आवस्सय, पिड-निज्जुत्ति (अथवा ओहनिज्जुत्ति)।

नन्दी और अनुयोगदार ।

श्वेताबर और दिगबर दोनो ही सम्प्रदाय इन्हें आगम कहते हैं। अन्तर इतना ही है कि दिगबर सम्प्रदाय के अनुसार काल-दोष से ये आगम नष्ट हो गये है जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय इन्हें स्वीकार करता है।

प्राचीन काल मे समस्त श्रुतज्ञान १४ पूर्वों[1] मे अन्तर्निहित था। महावीर ने अपने ११ गणधरों को इसका उपदेश दिया। शनै शनै कालदोष से ये पूर्व नष्ट हो गये, केवल एक गणधर उनका ज्ञाता रह गया, और यह ज्ञान छह पीढ़ियो तक चलता रहा।

पक्खिय और नन्दिसूत्र । जिनप्रभसूरि ने काव्यमाला सप्तम गुच्छक में प्रकाशित 'सिद्धातागमस्तव' मे स्तवन के रूप में आगमों का परिचय दिया है। तथा देखिये प्रोफेसर वेबर, इण्डियन ऐंटीक्वेरी (१७-२१) में प्रकाशित 'सेक्रेड लिटरेचर ऑव द जैन्स' नामक लेख, प्रोफेसर हीरा-लाल, रसिकदास कापडिया, हिस्ट्री ऑव द कैनोनिकल लिटरेचर ऑव द जैन्स, आगमोनु दिग्दर्शन, जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन्स, पृष्ठ ३१-४३ ।

१. चौदह पूर्वों के नाम—उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यप्रवाद, अस्ति-नास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, समयप्रवाद, प्रत्या-ख्यानप्रवाद, विद्यानुप्रवाद, अवन्ध्य, प्राणावाय, क्रियाविशाल और बिन्दुसार ।

तीन वाचनायें

जैन परंपरा के अनुसार महावीरनिर्वाण[1] के लगभग १६० वर्ष पश्चात् (ईसवी सन् के पूर्व लगभग ३६७ में) चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में, मगध में भयकर दुष्काल पड़ा जिससे अनेक जैन भिक्षु भद्रबाहु के नेतृत्व में समुद्रतट की ओर प्रस्थान कर गये। बाकी बचे हुए स्थूलभद्र (स्वर्गगमन महावीरनिर्वाण के २१६ वर्ष पश्चात्) के नेतृत्व में वही रहे। दुष्काल समाप्त हो जाने पर स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में जैन श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया जिसमें श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने के लिये खंड-खंड करके ग्यारह अंगों का संकलन किया गया। लेकिन दृष्टिवाद किसी को याद नही था इसलिये पूर्वो का संकलन नहीं हो सका। चतुर्दश पूर्वधारी केवल भद्रबाहु थे, वे उस समय नेपाल मे थे। ऐसी हालत में सघ की ओर से पूर्वो का ज्ञान-सपादन करने के लिये कुछ साधुओ को नेपाल भेजा गया। लेकिन इनमे से केवल स्थूलभद्र ही टिक सके,* बाकी लौट आये। अब स्थूलभद्र पूर्वों के ज्ञाता तो हो गये किन्तु किसी दोष के प्रायश्चित्त-स्वरूप भद्रबाहु ने अन्तिम चार पूर्वों को किसी को अध्यापन करने के लिये मना कर दिया। इस समय से शनैःशनै पूर्वों का ज्ञान नष्ट होता गया। अस्तु, जो कुछ भी उपलब्ध हुआ उसे

---

१. महावीरनिर्वाण का काल मुनि कल्याणविजयजी ने बुद्ध-परिनिर्वाण के १४ वर्ष बाद ईसवी पूर्व ५२७ में स्वीकार किया है, 'वीर-निर्वाण संवत् और कालगणना', नागरीप्रचारिणी पत्रिका, जिल्द १०–११। तथा देखिये हरमन जैकोबी का 'बुद्ध उण्ड महावीराज़ निर्वाण' आदि लेख जिसका गुजराती अनुवाद भारतीय विद्या, सिंघी स्मारक में छपा है, तथा कीथ का बुलेटिन स्कूल ऑव ओरिएण्टेल स्टडीज़ ६, ८५९–८६६; शूब्रिंग, दी लेहरे डर जैनाज़, पृष्ठ ५, ३०; डॉक्टर हीरालाल जैन, नागपुर युनिवर्सिटी जरनल, दिसम्बर, १९४० में 'डेट ऑव महावीराज् निर्वाण' नामक लेख।

पाटलिपुत्र के सम्मेलन में सिद्धात के रूप में संकलित कर लिया गया। यही जैन आगमो की पाटलिपुत्र वाचना कही जाती है।[1]

कुछ समय पश्चात् महावीरनिर्वाण के लगभग ८२७ या ८४० वर्ष बाद (ईसवी सन् ३००–३१३ में) आगमों को सुव्यवस्थित रूप देने के लिये आर्यस्कंदिल के नेतृत्व में मथुरा मे एक दूसरा सम्मेलन हुआ। इस समय एक बड़ा अकाल पड़ा जिससे साधुओं को भिक्षा मिलना कठिन हो गया और आगमो का अभ्यास छूट जाने से आगम नष्टप्राय हो गये। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर इस सम्मेलन में जो जिसे स्मरण था उसे कालिक श्रुत के रूप में एकत्रित कर लिया गया। इसे माथुरी वाचना के नाम से कहा जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि दुर्भिक्ष के समय श्रुत का नाश नही हुआ, किन्तु आर्यस्कंदिल को छोड़कर अनेक मुख्य-मुख्य अनुयोगधारियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।[2]

इसी समय नागार्जुन सूरि के नेतृत्व में वलभी में एक और सम्मेलन भरा। इसमे, जो सूत्र विस्मृत हो गये थे उन्हें स्मरण करके सूत्रार्थ की सघटनापूर्वक सिद्धांत का उद्धार किया

---

१. आवश्यकचूर्णी २, पृष्ठ १८७। तथा देखिये हरिभद्र का उपदेशपद:—

जाओ अ तम्मि समये दुक्कालो दो य दसम वरिसाणि।
सव्वो साहुसमूहो गओ तओ जलहितीरेसु॥
तदुवरंमे सो पुणरवि पाडलिपुत्ते समागओ विहिया।
सघेणं सुयविसया चिंता किं कस्स अत्थेति॥
जं जस्स आसि पासे उद्देसज्झयणमाइसंघडिउ।
तं सव्वं एक्कारय अंगाइं तहेव ठवियाइं॥

२. नन्दीचूर्णी पृष्ठ ८।

गया। आगमों की इस वाचना को प्रथम वलभी वाचना कहते हैं।[1]

इन दोनो वाचनाओं का उल्लेख ज्योतिष्करडकटीका आदि ग्रंथो में मिलता है। ज्योतिष्करडकटीका के कर्त्ता आचार्य मलयागिरि के अनुसार अनुयोगद्वार आदि सूत्र माथुरी वाचना और ज्योतिष्करडक वलभी वाचना के आधार से सकलित किये गये हैं। उक्त दोनों वाचनाओ के पश्चात् आर्यस्कंदिल और नागार्जुन सूरि परस्पर नही मिल सके और इसीलिये सूत्रो मे वाचनाभेद स्थायी बना रह गया।[2]

तत्पश्चात् लगभग १५० वर्ष बाद, महावीरनिर्वाण के लगभग ६८० या ६६३ वर्ष पश्चात् (ईसवी सन् ४५३-४६६ में) वलभी मे देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में चौथा सम्मेलन बुलाया गया। इस सघसमवाय में विविध पाठान्तर और वाचनाभेद आदि का समन्वय करके माथुरी वाचना के आधार से आगमो को संकलित कर उन्हें लिपिबद्ध कर दिया गया। जिन पाठो का समन्वय नही हो सका उनका 'वायणान्तरे पुण', 'नागार्जुनीयास्तु एवं वदन्ति' इत्यादि रूप में उल्लेख किया गया।[3] दृष्टिवाद फिर भी उपलब्ध न हो सका, अतएव उसे व्युच्छिन्न घोषित कर दिया गया। इसे जैन आगमो की अंतिम और द्वितीय वलभी

---

१. कहावली, २९८, मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण और जैन-कालगणना, पृष्ठ १२० आदि, मुनि पुण्यविजय, भारतीय जैन श्रमण परंपरा अने लेखनकला, पृष्ठ १६ टिप्पण।

२ ज्योतिष्करंडकटीका, पृष्ठ ४१, गच्छाचारवृत्ति ३, जबूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र १७ टीका, पृष्ठ ८७।

३. देखिये मुनि कल्याणविजय, वीरनिर्वाण और जैन कालगणना, पृष्ठ ११२–११८।

वाचना कहते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान आगम इसी संकलना का परिणाम है।[1]

आगमों की भाषा

महावीर ने अर्धमागधी भाषा मे उपदेश दिया और गणधरों ने इस उपदेश के आधार पर आगमो की रचना की। समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति और प्रज्ञापना आदि सूत्रो मे भी आगमों की भाषा को अर्धमागधी कहा है। हेमचन्द्र ने इसे आर्ष प्राकृत अर्थात् प्राचीन प्राकृत नाम दिया है और इसे प्राचीन सूत्रो की भाषा माना है।[2] गणधरो द्वारा सगृहीत जैन आगमों की यह भाषा अपने वर्तमान रूप मे हमे महावीरनिर्वाण के लगभग १००० वर्ष बाद उपलब्ध होती है। दीर्घकाल के इस व्यवधान मे समय-समय पर जो आगमो की वाचनाये हुई उनमें आगम-ग्रन्थो में निश्चय ही काफी परिवर्तन हो गया होगा। आगम के टीकाकारो का इस ओर लक्ष्य गया है। टीकाकारो के विवरणो मे विविध पाठातरो का पाया जाना इसका प्रमाण है। उदाहरण के लिये राजप्रश्नीय के विवरणकार ने मूल पाठ से भिन्न कितने ही पाठातर उद्धृत किये हैं। शीलांकसूरि ने भी सूत्रकृताग की टीका में लिखा है कि सूत्रादर्शों में अनेक प्रकार के सूत्र उपलब्ध होते हैं, हमने एक ही आदर्श को स्वीकार कर यह विवरण लिखा है, अतएव यदि कही सूत्रो में विसवाद दृष्टिगोचर हो तो चित्त मे व्यामोह नही करना चाहिये।[3] ऐसी हालत में

---

१. बौद्ध त्रिपिटक की तीन सगीतियों का उल्लेख बौद्ध ग्रथों में आता है। पहली सगीति राजगृह मे, दूसरी वैशाली में और तीसरी सम्राट् अशोक के समय बुद्ध-परिनिर्वाण के २३६ वर्ष बाद पाटलिपुत्र में हुई। इसी समय से बौद्ध आगम लिपिबद्ध किये गये। देखिये कर्न, मैनुअल ऑव इण्डियन बुद्धिज़्म, पृष्ठ १०१ इत्यादि।

२. देखिये इसी पुस्तक का पहला अध्याय।

३. सूत्रकृतांग २,२–३९ सूत्र की टीका।

टीकाकारो को सूत्रार्थ स्पष्ट करने के लिये आगमो की मूल भाषा में काफी परिवर्त्तन और सशोधन करना पडा है। इन ग्रन्थों में प्राकृतव्याकरण के रूपो की विविधताये दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरण के लिये, कल्पसूत्र की प्राचीन प्रतियों में कही य श्रुति मिलती है (जैसे तित्थयर), कही नही भी मिलती है (जैसे आअअणं), कही य श्रुति के स्थान में 'इ' का प्रयोग देखने मे आता है (जैसे चय के स्थान पर चइ), कहीं ह्रस्व स्वर का प्रयोग (जैसे गुत्त), और कही ह्रस्व स्वर के बदले दीर्घ स्वर का प्रयोग देखा जाता है (जैसे गोत्त)। क, ग, च, ज, त, द, प, य और व का प्राय' लोप हो जाता है (सिद्धहेम, ८ १ १७७), तथा ख, घ, ध, और भ के स्थान मे ह हो जाता है (सिद्धहेम ८.१ १८७), इन नियमों का भी पालन प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों में देखने में नही आता।[1] कितनी ही बार बाद में होनेवाले आचार्यों ने शब्दो के प्रयोगो में अनेक परिवर्त्तन कर डाले। प्राचीन प्राकृत के साथ इनका सबंध कम हो गया, ऐसी हालत में अपने वक्तव्य को पाठको अथवा श्रोताओं को समझाने के लिये उन्हे भाषा में फेरफार करना पड़ा। अभयदेव और मलयागिरि आदि टीकाकारो की टीकाओ में भाषासम्बन्धी यह फेरफार स्पष्ट लक्षित होता है।[2] जैन आगमों की अर्धमागधी भाषा और बौद्धसूत्रों की पालिभाषा के एक ही प्रदेश और काल

---

१. मुनि पुण्यविजय जी से ज्ञात हुआ है कि भगवतीसूत्र आदि की हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों मे महावीरे के स्थान पर मधावीरे और देवेहिं के स्थान पर देवेभिं आदि पाठ मिलते हैं।

२. मुनि पुण्यविजयजी ने आगमों की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियों में भाषा और प्रयोग की प्रचुर विविधताये पाये जाने का उल्लेख बृहत्कल्पसूत्र, छठे भाग की प्रस्तावना, पृष्ठ ५७ पर किया है। तथा देखिये उनकी कल्पसूत्र (साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद) की प्रस्तावना पृष्ठ ४–६, उन्हीं की अगविज्जा की प्रस्तावना, पृष्ठ ८–११।

की उपज होते हुए भी दोनो में इतना अन्तर कैसे हो गया, यह एक बड़ा रोचक विषय है जिसका स्वतत्र रूप से अध्ययन करने की आवश्यकता है। जो कुछ भी हो, आचाराग, सूत्रकृताग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, निशीथ, व्यवहार और बृहत्कल्प-सूत्र आदि आगमो में भाषा का जो स्वरूप दिखाई देता है, वह काफी प्राचीन है। दुर्भाग्य से इन सूत्रों के सशोधित संस्करण अभीतक प्रकाशित नहीं हुए, ऐसी दशा में पाटन और जैसलमेर के प्राचीन भंडारो मे पाई जानेवाली हस्तलिखित प्रतियो में भाषा का जो रूप उपलब्ध होता है[1], वही जैन आगमों की प्राकृत का प्राचीनतम रूप समझना चाहिये।[2]

आगमों का महत्त्व

इसमें सन्देह नही कि महावीरनिर्वाण के पश्चात् १००० वर्ष के दीर्घकाल में आगम साहित्य काफी क्षतिग्रस्त हो चुका था। दृष्टिवाद नाम का बारहवॉ अग लुप्त हो गया था, दोगिद्धदसा, दीहदसा, बधदसा, संखेवितदसा और पण्हवागरण नाम की दशायें व्युच्छिन्न हो गई थीं, तथा कालिक और उक्कालिक श्रुत का बहुत सा भाग नष्ट हो गया था। आचाराग सूत्र का महापरिण्णा अध्ययन तथा महानिशीथ और दस प्रकीर्णको का बहुत-सा भाग विस्मृत किया जा चुका था।[3] जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति,

---

१. बृहत्कल्पभाष्य की विक्रम सवत् की १२वीं शताब्दी की लिखी हुई एक हस्तलिखित प्रति पाटण के भडार में मौजूद है। इस सूचना के लिये पुण्यविजय जी का आभारी हूँ।

२. विन्टरनीज़ आदि विद्वानों ने आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक आदि प्राचीन जैन सूत्रों की पद्यात्मक भाषा की धम्मपद आदि की भाषा से तुलना करते हुए, गद्यात्मक भाषा की अपेक्षा उसे अधिक प्राचीन माना है। देखिये प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ २९।

३. अनुपलब्ध आगमों की एक साथ दी हुई सूची के लिये देखिये, प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापड़िया, आगमोनुं दिग्दर्शन, पृष्ठ १९८ २०६।

प्रश्नव्याकरण, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, सूर्यप्रज्ञप्ति और चन्द्रप्रज्ञप्ति में आमूल परिवर्त्तन हो गया था, तथा ज्ञातृधर्मकथा, व्याख्याप्रज्ञप्ति और विपाकसूत्र आदि के परिमाण में ह्रास हो गया था। तात्पर्य यह है कि अनेक सूत्र गलित हो चुके थे, वृद्ध सम्प्रदाय और परम्परायें नष्ट हो गई थी तथा वाचनाओ में इतनी अधिक विषमता आ गई थी कि सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण कठिन हो गया था। आगमो के नामो और उनकी सख्या तक में मतभेद हो गये थे। रायपसेणइय को कोई राजप्रश्नीय, कोई राजप्रसेनकीय और कोई राजप्रसेनजित् नाम से उल्लिखित करते थे। सम्प्रदाय के विच्छिन्न हो जाने से टीकाकार वज्जी (वज्जी= लिच्छवी) का अर्थ इन्द्र (वज्र अस्य अस्तीति), काश्यप (महावीर का गोत्र) का अर्थ इक्षुरस का पान करनेवाले (काश उच्छु तस्य विकार· कास्य· रस· स यस्य पान स काश्यपः) और वैशालीय (वैशाली के रहनेवाले महावीर) का अर्थ विशालगुणसपन्न ('वेसालीए' गुणा अस्य विशाला इति वैशालीयाः) करने लगे थे। वर्णन-प्रणाली मे पुनरुक्ति भी यहाँ खूब पाई जाती है, 'जाव' (यावत्) शब्द से जहाँ-तहाँ इसका दिग्दर्शन कराया गया है।[1]

लेकिन यह सब होते हुए भी जो आगम-साहित्य अवशेष बचा है, वह किसी भी हालत में उपेक्षणीय नही है। इस विशालकाय साहित्य मे प्राचीनतम जैन परम्परायें, अनुश्रुतियाँ, लोककथायें, तत्कालीन रीति-रिवाज, धर्मोपदेश की पद्धतियाँ, आचार-विचार, सयम-पालन की विधियाँ आदि अनेकानेक विषय उल्लिखित हैं जिनके अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अवस्थाओ पर प्रकाश पड़ता है, तथा जैनधर्म के विकास की त्रुटित शृखलायें जोड़ी जा सकती हैं। उदाहरण के लिये, व्याख्याप्रज्ञप्ति मे महावीर का तत्त्वज्ञान, उनकी शिष्य-

---

१ पालि-त्रिपिटक में 'जाव' के स्थान में 'पेय्याल' (पातुं अलं) शब्द का प्रयोग किया गया है।

परंपरा, तत्कालीन राजे-महाराजे तथा अन्य तीर्थिकों के मत-मतान्तरो का विवेचन है। कल्पसूत्र में महावीर का विस्तृत जीवन, उनकी विहार-चर्या और जैन श्रमणो की स्थविरावली उपलब्ध होती है। कनिष्क राजा के समकालीन मथुरा के जैन शिलालेखो में इस स्थविरावली के भिन्न-भिन्न गण, कुल और शाखाओ का उल्लेख किया गया है। ज्ञातृधर्मकथा में निर्ग्रथ-प्रवचन की उद्बोधक अनेक भावपूर्ण कथा-कहानियों, उपमाओ और दृष्टान्तों का संग्रह है जिससे महावीर की सरल उपदेश-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। आचाराग, सूत्रकृताग, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्रो के अध्ययन से जैन मुनियो के सयम-पालन की कठोरता का परिचय प्राप्त होता है। डाक्टर विन्टरनीज ने इस प्रकार के साहित्य को श्रमण-काव्य नाम दिया है जिसकी तुलना महाभारत तथा बौद्धों के धम्मपद और सुत्तनिपात आदि से की गई है। राजप्रश्नीय, जीवाभिगम और प्रज्ञापना आदि सूत्रो मे वास्तुशास्त्र, सगीत, नाट्य, विविध कलाये, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान आदि अनेक विषयो का विवेचन मिलता है। छेदसूत्र तो आगमसाहित्य का प्राचीनतम महाशास्त्र है जिसमे निर्ग्रन्थ श्रमणो के आहार-विहार, गमनागमन, रोग-चिकित्सा, विद्या-मत्र, स्वाध्याय, उपसर्ग, दुर्भिक्ष, महामारी, तप, उपवास, प्रायश्चित्त आदि से सम्बन्ध रखनेवाली विपुल सामग्री भरी पडी है जिसके अध्ययन से तत्कालीन समाज का एक सजीव चित्र सामने आ जाता है। बृहत्कल्पसूत्र में उल्लेख है कि श्रमण भगवान् महावीर जब साकेत के सुभूमिभाग उद्यान में विहार कर रहे थे तो उन्होंने अपने भिक्षु-भिक्षुणियो को पूर्व दिशा मे अंग-मगध तक, दक्षिण में कौशांबी तक, पश्चिम में थूणा (स्थानेश्वर) तक तथा उत्तर में कुणाला (उत्तरकोसल) तक विहार करने का आदेश दिया। इतने ही क्षेत्र को उस समय उन्होंने जैन श्रमणो के विहार करने योग्य मान कर आर्य क्षेत्र घोषित किया था। निस्सन्देह इस सूत्र को महावीर जितना ही प्राचीन मानना चाहिये। भाषाशास्त्र की दृष्टि से भी प्राकृत

भाषा का यह प्राचीनतम साहित्य अत्यंत उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है।

आगमों का काल

महावीर ने अपने गणधरों को आगम-सिद्धात का उपदेश दिया, अतएव आगमों के कुछ अश को महावीरकालीन मानना होगा। अवश्य ही यह कहना कठिन है कि आगम का कौन-सा अश उनका साक्षात् उपदेश है और कौन सा नही। बहुत-कुछ तो मौलिक आधारो को सामने रखकर अथवा देश-काल की परिस्थिति को देखते हुए बाद में निर्मित किया गया होगा। आगमो का कोई आलोचनात्मक सस्करण न होने के कारण यह कठिनाई और बढ़ जाती है। वस्तुत आगमो का समय निर्धारित करने के लिये प्रत्येक आगम में प्रतिपादित विषय और उसकी वर्णन-शैली आदि का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। आगमो का अतिम सकलन ईसवी सन् की पाँचवी शताब्दी मे निर्धारित हुआ, अतएव इनका अतिम समय यही स्वीकार करना होगा। इस साहित्य में सामान्यतया अग, मूलसूत्र और छेदसूत्र विषय और भाषा आदि की दृष्टि से प्राचीन मालूम होते हैं, तत्पश्चात् उपांग, प्रकीर्णक, तथा नदी और अनुयोगद्वार का नामोल्लेख किया जा सकता है। ईसवी सन् की १७वीं शताब्दी तक इन ग्रन्थो पर अनेकानेक टीका-टिप्पणियाँ लिखी जाती रहीं।

द्वादशांग

जैन शास्त्रों में सबसे प्राचीन ग्रन्थ अंग हैं। इन्हें वेद भी कहा गया है[1] (ब्राह्मणों के प्राचीनतम शास्त्र भी वेद कहे जाते हैं)। ये अंग बारह हैं, इसलिये इन्हें द्वादशाग कहा जाता है। द्वादशांग का दूसरा नाम गणिपिटक है (बौद्धों के प्राचीनशास्त्र

१. दुवालसगं वा प्रवचनं वेदो (आचारांगचूर्णी, ५, १८५)।

को त्रिपिटक कहा गया है)। ये अंग महावीर के गणधर सुधर्मा स्वामीरचित माने जाते हैं। बारहवें अंग का नाम दृष्टिवाद है जिसमें चौदह पूर्वो का समावेश है। यह लुप्त हो गया है, इसलिये आजकल ग्यारह ही अंग उपलब्ध हैं। इन अंगों के विषयों का वर्णन समवायाग और नन्दीसूत्र में दिया हुआ है।

आयारंग (आचारांग)

आचारांग सूत्र[1] का द्वादश अगो में महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसलिये इसे अंगो का सार कहा है[2]। सामयिक नाम से भी इसका उल्लेख किया गया है।[3] निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों के आचार-विचार का इसमें विस्तार से वर्णन है। इसमें दो श्रुतस्कध हैं। प्रथम श्रुतस्कध में नौ अध्ययन है जो बंभचेर (ब्रह्मचर्य) कहलाते है। इनमें ४४ उद्देशक हैं। द्वितीय श्रुतस्कध में १६ अध्ययन हैं जो तीन चूलिकाओ मे विभक्त है। दोनो के विषय और वर्णनशैली देखकर जान पड़ता है कि पहला श्रुत-स्कध दूसरे की अपेक्षा अधिक मौलिक और प्राचीन है। मूल मे पहला ही श्रुतस्कध था, बाद मे भद्रबाहु द्वारा आचाराग पर निर्युक्ति लिखते समय इसमें आयारग्ग (चूलिका) लगा दिये गये। आचाराग की गणना प्राचीनतम जैन सूत्रो मे की जाती है। यह गद्य और पद्य दोनो में है; कुछ गाथाये अनुष्टुप् छद में है। इसकी भाषा प्राचीन प्राकृत का नमूना है। इस सूत्र पर भद्रबाहु ने निर्युक्ति, जिनदासगणि ने चूर्णी और शीलांक (ईसवी सन् ८७६) ने टीका लिखी है। शीलाक की टीका गंधहस्ति-कृत शस्त्रपरिज्ञा विवरण के अनुसार लिखी गई है। जिनहस

---

१. निर्युक्ति और शीलाक की टीका सहित आगमोदय समिति द्वारा सन् १९३५ में प्रकाशित। इसका प्रथम श्रुतस्कध वाल्टर शूब्रिंग द्वारा संपादित होकर लिप्ज़ग में सन् १९१० में प्रकाशित हुआ।

२. अंगाणं किं सारो? आयारो। आचारांग १·१ की भूमिका।

३. नायाधम्मकहाओ, अध्ययन ५।

ने इस पर दीपिका लिखी है। हर्मन जैकोबी ने सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट के २२वे भाग मे इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है और इसकी खोजपूर्ण प्रस्तावना लिखी है।

शस्त्रपरिज्ञा नाम के प्रथम अध्ययन में पृथ्वीकाय आदि जीवों की हिंसा का निषेध है। लोकविजय अध्ययन में अप्रमाद, अज्ञानी का स्वरूप, धनसंग्रह का परिणाम, आशा का त्याग, पापकर्म का निषेध आदि का प्रतिपादन है। मृत्यु से हर कोई डरता है, इस सम्बन्ध में उक्ति है :—

नत्थि कालस्स णागमो। सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पियवहा, पियजीविणो जीविउकामा। सव्वेसिं जीविय पिय।

—मृत्यु का आना निश्चित है। सब प्राणियों को अपना-अपना जीवन प्रिय है, सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नही चाहता, मरण सभी को अप्रिय है, सभी जीना चाहते हैं। प्रत्येक प्राणी जीवन की इच्छा रखता है, सबको जीवित रहना अच्छा लगता है।

शीतोष्णीय अध्ययन में विरक्त मुनि का स्वरूप, सम्यक्दर्शी का लक्षण और कषाय-त्याग आदि का प्रतिपादन है। मुनि और अमुनि के सम्बन्ध में कहा है :—

सुत्ता अमुणी, सया मुणिणो जागरंति।[1]

अर्थात् अमुनि सोते हैं और मुनि सदा जागते हैं।

---

१. मिलाइये थेरगाथा (१९३) के साथ—

न ताव सुपितुं होति रत्तिनक्खत्तमालिनी।
पटिजग्गितुमेवेसा रत्ति होति विजानता॥

—नक्षत्रों से भरी यह रात सोने के लिये नहीं। ज्ञानी के लिये यह रात जागकर ध्यान करने योग्य है।

इतिवुत्तक, जागरियसुत्त (४७) और भगवद्गीता (२-६९) भी देखिये।

रति और अरति में समभाव रखने का उपदेश देते हुए कहा है:—

का अरई ? के आणंदे ? इत्थपि अग्गहे चरे।
सव्वं हासं परिच्चज्ज आलीनगुत्तो परिव्वए॥

—क्या अरति है और क्या आनन्द है ? इनमें आसक्ति न रख कर संयमपूर्वक विचरण करे। सब प्रकार के हास्य का परित्याग करे, तथा मन, वचन और काया का गोपन करके सयम का पालन करे।

सम्यक्त्व अध्ययन में तीर्थंकरभाषितधर्म, अहिंसा, देहदमन, सयम की साधना आदि का विवेचन है। यहाँ देह को कृश करने, मांस और शोणित को सुखाने तथा आत्मा को दमन करने का उपदेश है।

लोकसार अध्ययन मे कुशील-त्याग, सयम मे पराक्रम, चारित्र, तप आदि का प्ररूपण है। बाह्य शत्रुओ से युद्ध करने की अपेक्षा अभ्यन्तर शत्रु से जूझना ही श्रेष्ठ बताया है। इन्द्रियों की उत्तेजना कम करने के लिये रूखा-सूखा आहार करना, भूख से कम खाना, एक स्थान पर कायोत्सर्ग से खड़े रहना और दूसरे गाँव में बिहार करने का उपदेश है। इतने पर भी इन्द्रियाँ यदि वश मे न हो तो आहार का सर्वथा त्याग कर दे, किन्तु स्त्रियों के प्रति मन को चंचल न होने दे।

धूत अध्ययन में परीषह-सहन, प्राणिहिंसा, धर्म में रति आदि विविध विषयों का विवेचन है। मुनि को उपधि का त्याग करने का उपदेश देते हुए कहा है कि जो मुनि अल्प वस्त्र रखता है अथवा सर्वथा वस्त्ररहित होता है, उसे यह चिन्ता नहीं होती कि उसका वस्त्र जीर्ण हो गया है, उसे नया वस्त्र लाना है। अचेल मुनि को कभी तृण-स्पर्श का कष्ट होता है, कभी गर्मी-सर्दी का और कभी दंशमशक का, लेकिन इन सब कष्टों को वह यही सोच कर सहन करता है कि इससे उसके कर्मों का भार हलका हो रहा है।

महापरिज्ञा नामक अध्ययन व्युच्छिन्न है, इसलिये उपलब्ध नही है। विमोक्ष अध्ययन में परीषह-सहन, वस्त्रधारी का आचार, वस्त्रत्याग में तप, संलेखना की विधि, समाधिमरण आदि का प्रतिपादन है। परीषह सहन करने का उपदेश देते हुए कहा है कि यदि शीत से कांपते हुए किसी साधु को देखकर कोई गृहस्थ पूछे—'हे आयुष्मन्! आपको काम तो पीड़ा नही देता?' तो उत्तर में साधु कहता है—'मुझे काम पीड़ा नही देता, लेकिन शीत सहन करने की मुझ मे शक्ति नही है।' ऐसी हालत मे यदि गृहस्थ उसके लिये अग्नि जलाकर उसके शरीर को उष्णता पहुँचाना चाहे तो साधु को अग्नि का सेवन करना योग्य नही। आहार करने के संबंध मे आदेश है कि भिक्षु-भिक्षुणी भोजन करते हुए आहार को बाये जबड़े से दाये जबड़े की ओर, और दांये जबड़े से बांये जबड़े की ओर न ले जाये, बल्कि बिना स्वाद लिये हुए ही उसे निगल जाये। यदि दंशमशक आदि जीव-जन्तु साधु के मांस और रक्त का शोषण करे तो साधु उन्हें रजोहरण आदि द्वारा दूर न करे। ऐसे समय यही विचार करे कि ये जीव केवल मेरे शरीर को ही हानि पहुँचाते हैं, मेरा स्वतः का कुछ नही बिगाड़ सकते।

उपधान-श्रुत अध्ययन में महावीर की कठोर साधना का वर्णन है। लाढ़ देश में जब वे वज्जभूमि और सुब्भभूमि नामक स्थानों में विहार कर रहे थे तो उन्हें अनेक उपसर्ग सहन करने पड़े—

लाढेहि तस्सुवस्सग्गा बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु निवइंसु॥
अप्पे जणे निवारेइ लूसणए सुणए दसमाणे।
छुच्छुकारिंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति॥

लाढ़ देश में विचरते हुए महावीर ने अनेक उपसर्ग सहे। वहाँ के निवासी उन्हें मारते और दाँतों से काट लेते। आहार

भी उन्हें रूखा-सूखा ही मिलता। वहाँ के कुत्ते उन्हें बहुत कष्ट देते।[1] कोई एकाध व्यक्ति ही कुत्तों से उन्हें बचाता। छू-छू करके वे कुत्तों को काटने के लिये महावीर पर छोड़ते।

फिर—

उवसंकमतमपडिन्नं गामन्तियम्मि अप्पत्तं।
पडिनिक्खमित्तु लूसिसु एयाओ परं पलेहित्ति॥
हयपुव्वो तत्थ दंडेण अदुवा मुट्ठिणा अदु कुन्तफलेण।
अदु लेलुणा कवालेण हन्ता हन्ता बहवे कंदिसु॥
मंसाणि छिन्नपुव्वाणि उट्ठंभिया एगया कायं।
परीसहाइं लुंचिंसु अदुवा पंसुणा उवकरिंसु॥
उच्चालिय निहणिंसु अदुवा आसणाउ खलइंसु।
वोसट्ठकाय पणयाऽसी दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने॥

—भोजन या स्थान के लिये आते हुए महावीर जब किसी ग्राम के पास पहुँचते तो ग्रामवासी गाँव से बाहर आकर उन्हें मारते और वहाँ से दूर चले जाने के लिये कहते। वे लोग डंडे, मुष्टि, भाले की नोंक, मिट्टी के ढेले अथवा कंकड़-पत्थर से मारते और बहुत शोर मचाते। कितनी ही बार वे उनके शरीर का मांस नोच लेते, शरीर पर आक्रमण करते और अनेक प्रकार के कष्ट देते। वे उनके ऊपर धूल बरसाते, ऊपर उछालकर उन्हें नीचे पटक देते और आसन से गिरा देते। लेकिन शरीर की ममता छोड़कर सहिष्णु महावीर अपने लक्ष्य के प्रति अचल रहते।

द्वितीय श्रुतस्कंध के पिंडैषणा अध्ययन में भिक्षु-भिक्षुणियों के आहार-संबंधी नियमों का विस्तृत वर्णन है। पितृभोजन, इन्द्र आदि महोत्सव अथवा संखडि (भोज)[2] के अवसर पर

१. आजकल भी छोटा नागपुर डिवीज़न और उसके आसपास के प्रदेशों में कुत्तों का बहुत उपद्रव है।

२. संखडि के लिये देखिये बृहत्कल्पभाष्य ३, ३१४८, पृष्ठ ८८१–८९१, जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया ऐज़ डिपिक्टेड

उपस्थित होकर साधुओं को भिक्षा ग्रहण करने का निषेध है। मार्ग में यदि स्थाणु, कंटक, कीचड़ आदि पड़ते हो तो भिक्षा के लिये गमन न करे। बहुत अस्थिवाले मास और बहुत काटेवाली मछली के भक्षण करने के संबंध मे चर्चा की गई है। शय्या अध्ययन में वसति के गुण-दोषो और गृहस्थ के साथ रहने में लगनेवाले दोषो का विवेचन है। ईर्या अध्ययन मे मुनि के विहारसंबधी नियमो का प्ररूपण है। भिक्षु-भिक्षुणी को देश की सीमा पर रहनेवाले अकालचारी और अकालभक्षी दस्यु, म्लेच्छ और अनार्यों आदि के देशों में विहार करने का निषेध है। जहाँ कोई राजा न हो, गणराजा ही सब कुछ हो, युवराज राज्य का संचालन करता हो, दो राजाओ का राज्य हो, परस्पर विरोधी राज्य हों, वहाँ गमन करने का निषेध है। नाव पर बैठकर नदी आदि पार करने के संबंध में नियम बताये हैं। नाव में यात्रा करते समय यदि यात्री कहे कि इस साधु से नाव भारी हो गई है, इसलिये इसे पकड़ कर पानी मे डाल दो तो यह सुनकर साधु अपने चीवर को अच्छी तरह बॉधकर अपने सिर पर लपेट ले। उनसे कहे कि आप लोग मुझे इस तरह से न फेके, मै स्वयं पानी में उतर जाऊँगा। यदि वे फिर भी पानी में डाल ही दे[1] तो रोष न करे। जल को तैर कर पार करने में असमर्थ हो तो उपधि का त्याग कर कायोत्सर्ग करे, अन्यथा किनारे पर पहुँच कर गीले शरीर से बैठा रहे। जल यदि जंघा से पार किया जा सकता हो तो जल को आलोडन करता हुआ न जाये। एक पैर को जल में रख और दूसरे को ऊपर उठाकर नदी आदि पार करे।

इन जैन कैनन्स, पृष्ठ २३९–२४०। मज्झिमनिकाय (१,४४८) में इसे संखति कहा है।

१. अवारिय जातक (३७६) पृष्ठ २३० इत्यादि में भी इस तरह के उल्लेख पाये जाते हैं।

भाषाजात अध्ययन में भाषासबंधी आचार-विचारों का वर्णन है। वस्त्रैषणा अध्ययन में मुनियों के वस्त्रसंबंधी नियमों का उल्लेख है। भिक्षु-भिक्षुणी को उन्ही वस्त्रों की याचना करना चाहिये जो फेकने लायक हैं तथा जिनकी श्रमण, ब्राह्मण, वनीपक[1] आदि इच्छा नही करते। पात्रैषणा अध्ययन में पात्रसंबंधी नियमो का विधान है। अवग्रहप्रतिमा अध्ययन में उपाश्रयसंबंधी नियम बताये है। आम, गन्ना और लहसुन के भक्षण करने के संबंध में नियमो का विधान है। ये सात अध्ययन प्रथम चूलिका (परिशिष्ट) के अंतर्गत आते हैं।

दूसरी चूलिका मे भी सात अध्ययन है। स्थान अध्ययन मे स्थानसंबंधी, निशीथिका अध्ययन मे स्वाध्याय करने के स्थान-संबंधी, और उच्चारण-प्रश्रवण अध्ययन में मल-मूत्र का त्याग करनेसबंधी नियमो का विधान है। तत्पश्चात् शब्द, रूप और परक्रिया (कर्मबंधजनक क्रिया) सबंधी नियमों का विवेचन है। यदि कोई गृहस्थ साधु के पैर साफ़ करे, पैर में से कॉटा निकाले, चोट लग जाने पर मलहम-पट्टी आदि करे तो साधु को सर्वथा उदासीन रहने का उपदेश है।

तीसरी चूलिका मे दो अध्ययन हैं। भावना अध्ययन मे महावीर के चरित्र और महाव्रत की पॉच भावनाओ का वर्णन है। महावीरचरित्र का उपयोग भद्रबाहु के कल्पसूत्र मे किया गया है। विमुक्ति अध्ययन में मोक्ष का उपदेश है।

सूयगडंग (सूत्रकृतांग)

सूत्रकृतांग को सूतगड, सुत्तकड अथवा सूयगड नाम से भी कहा जाता है।[2] स्वसमय और परसमय का भेद बताये जाने

---

१ आहार आदि के लोभी जो प्रिय भाषण आदि द्वारा भिक्षा माँगते हैं (पिंडनिर्युक्ति, ४४४–४४५), स्थानांग सूत्र (३२३ अ) में श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि और श्वान ये पॉच वनीपक बताये गये है।

२. निर्युक्ति तथा शीलांक की टीका सहित आगमोदय समिति, बबई द्वारा १९१७ में प्रकाशित। मुनि पुण्यविजयजी निर्युक्ति और चूर्णी सहित इसका सपादन कर रहे हैं।

के कारण (सूचा कृतम् इति स्वपरसमयार्थसूचक सूचा साऽस्मिन् कृतम् इति) इसे सूत्रकृतांग नाम से कहा गया है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं—पहले मे सोलह और दूसरे मे सात अध्ययन हैं। पहला श्रुतस्कध एक अध्ययन को छोड़कर पद्य में है और दूसरा गद्य-पद्य दोनो में। अनुष्टुप्, वैतालिक और इन्द्रवज्रा छन्दो का यहाँ प्रयोग किया गया है। सूयगड पर भद्रबाहु ने निर्युक्ति लिखी है, इस पर चूर्णी भी है। शीलाक ने वाहरिगणि की सहायता से टीका लिखी है। हर्षकुल और साधुरग ने दीपिकाओ की रचना की है। हर्मन जैकोबी ने सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट के ४५ वे भाग में इसका अग्रेजी अनुवाद किया है। भाषा और विषय-प्ररूपण की शैली को देखते हुए इस सूत्र की गणना भी प्राचीनतम सूत्रो में की जाती है।

प्रथम श्रुतस्कध के समय अध्ययन मे स्वसमय और पर-समय का निरूपण किया गया है। यहाँ पचभूतवादी, अद्वैतवादी, जीव और शरीर को अभिन्न स्वीकार करनेवाले, जीव को पुण्य-पाप का अकर्त्ता माननेवाले, पाँच भूतो के साथ आत्मा को छठा भूत स्वीकार करनेवाले तथा किसी क्रिया के फल में विश्वास न करनेवाले मतवादियो के सिद्धातो का विवेचन है। यहाँ नियतिवाद, अज्ञानवाद, जगत्कर्तृत्ववाद और लोकवाद का निरसन किया है। वैतालीय अध्ययन में शरीर की अनित्यता, उपसर्गसहन, काम-परित्याग और अशरणत्व आदि का प्ररूपण है। उपसर्ग अध्ययन में श्रमण धर्म को पालन करने मे आनेवाले उपसर्गों का विवेचन है—

एव सेहेवि अप्पुट्ठे भिक्खायरियाअकोविए।
सूरं मण्णति अप्पाणं जाव लूहं न सेवए॥
जया हेमंतमासंमि सीतं फुसइ सव्वगं।
तत्थ मदा विसीयंति रज्जहीणा व खत्तिया॥
पुट्ठे गिम्हाहिजावेण विमणे सुपिवासिए।
तत्थ मदा विसीयंति मच्छा अप्पोदए जहा॥

अप्पेगे खुधिय भिक्खु सुणी डसति लूसए।
तत्थ मदा विसीयति तेउपुट्ठा व पाणिणो ॥
अप्पेगे वइ जुजति नगिणा पिडोलगाहमा।
मुडा कडूविणट्ठगा उज्जला असमाहिता ॥
पुट्ठो य दसमसएहि तणफासमचाइया।
न मे दिटठे परे लोए जइ पर मरणं सिया ॥
अप्पेगे पलियते सि चारो चोरो त्ति सुव्वयं।
बधंति भिक्खुयं बाला कसायवयणेहि य ॥
तत्थ दडेण सवीते मुट्ठिणा अदु फलेण वा।
नातीणं सरती बाले इत्थी वा कुद्धगामिणी ॥

—भिक्षाचर्या मे अकुशल, परीषहों से अछूता अभिनव प्रव्रजित शिष्य अपने आपको तभीतक शूर समझता है जब तक कि वह संयम का सेवन नही करता। जब हेमत ऋतु में भयकर शीत सारे अंग को कँपाती है, तब मद शिष्य राज्यभ्रष्ट क्षत्रियो की भाँति विषाद को प्राप्त होते हैं। ग्रीष्म ऋतु के भीषण अभिताप से आक्रात होने पर वे विमनस्क और प्यास से व्याकुल हो जाते हैं। उस समय थोडे जल में तड़पती हुई मछली की भाँति वे विषाद को प्राप्त होते है यदि कोई कुत्ता आदि क्रूर प्राणी बुभुक्षित साधु को काटने लगे तो अग्नि से जले हुए प्राणी की भाँति सन्द शिष्य विषाद को प्राप्त होते है। कोई लोग इन के साधुओं को देखकर प्राय. तिरस्कारयुक्त वचन कहते हैं— 'ये नगे हैं, परपिड के अभिलाषी है, मुडित हैं, खुजली से इनका शरीर गल गया है, इनके पसीने से बदबू आती है और ये कितने बीभत्स है!" डाँस-मच्छर से कष्ट पाता हुआ और तृण-स्पर्श को सहन करने में असमर्थ साधु के मन मे कदाचित् यह विचार आ सकता है कि परलोक तो मैंने देखा नहीं, इसलिये इस यातना से छुटकारा पाने के लिये मरण ही श्रेयस्कर है। कुछ अज्ञानी पुरुष (अनार्य-देशवासी) भ्रमण करते हुए भिक्षुक को देखकर सोचते हैं— "यह गुप्तचर है, यह चोर है," और फिर उसे बाँध देते हैं, और

कटुवचन कहकर धिक्कारते हैं। डडे, घूँसे, तख्ते आदि से वे उसकी मरम्मत करते हैं, और तब क्रोध में आकर घर से निकल कर भागनेवाली स्त्री की भाँति उस भिक्षु को बार-बार अपने स्वजनों की याद आती है।

स्त्रीपरिज्ञा अध्ययन में बताया है कि साधुओ को किस प्रकार स्त्रीजन्य उपसर्ग सहन करना पडता है। कभी साधु के किसी स्त्री के वशीभूत हो जाने पर स्त्री उस साधु के सिर पर पादप्रहार करती है, और कहती है कि यदि तू मेरी जैसी सुन्दर केशोवाली स्त्री के साथ विहार नही करना चाहता, तो मै भी अपने केशो का लोंच कर डालूँगी। वह उसे अपने पैरो को रचाने, कमर दबवाने, अन्न-जल लाने, तिलक और आँखो में अजन लगाने के लिये सलाई तथा हवा करने के लिये पखा लाने का आदेश देती है। बच्चे के खेलने के लिये खिलौने लाने को कहती है, उसके कपड़े धुलवाती है, और गोद मे लेकर उसे खिलाने का आदेश देती है। नरकविभक्ति अध्ययन मे नरक के घोर दु'खो का वर्णन है। वीरस्तुति अध्ययन मे महावीर को हस्तियों में ऐरावण, मृगों में सिह, नदियों मे गगा और पक्षियों में गरुड़ की उपमा देते हुए लोक मे सर्वोत्तम बताया है। कुशील-परिभाषा अध्ययन में कुशील का वर्णन है। वीर्य अध्ययन में वीर्य का प्ररूपण है। धर्म अध्ययन मे मतिमान् महावीर के धर्म का प्ररूपण है। समाधि अध्ययन में दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप रूप समाधि को उपादेय बताया है। मार्ग अध्ययन में महावीरोक्त मार्ग को सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादन करते हुए अहिसा आदि धर्मों का प्ररूपण है। समवसरण अध्ययन में क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञानवाद का खण्डन है। याथातथ्य अध्ययन में उत्तम साधु आदि के लक्षण बताये हैं। ग्रथ अध्ययन में साधुओं के आचार-विचार का वर्णन है। जैसे पक्षी के बच्चे को ढंक आदि मांसाहारी पक्षी मार डालते हैं, उसी प्रकार गच्छ से निकले हुए साधु को पाखडी साधु उठाकर ले जाते हैं और अपने

में मिला लेते हैं। आदान अध्ययन में स्त्री-सेवन आदि के त्याग का विधान है। गाथा अध्ययन में माहण (ब्राह्मण), श्रमण, भिक्षु और निर्ग्रन्थ की व्याख्या है।

द्वितीय श्रुतस्कंध में सात अध्ययन हैं। पुण्डरीक अध्ययन में इस लोक को पुष्करिणी की उपमा देते हुए तज्जीवतच्छरीर, पंचमहाभूत, ईश्वर और नियतिवादियो के सिद्धांतों का खडन किया है। साधु को दूसरे के लिये बनाये हुए, उद्गम, उत्पाद और एषणा दोषो से रहित, अग्नि द्वारा शुद्ध, भिक्षाचरी से प्राप्त, साधुवेष से लाये हुए, प्रमाण के अनुकूल, गाड़ी को चलाने के लिये उसके धुरे पर डाले जानेवाले तेल की भाँति तथा घाव पर लगाये जानेवाले लेप के समान, केवल सयम के निर्वाह के लिये, बिल में प्रवेश करते हुए साँप की भाँति, स्वाद लिये बिना ही, अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को ग्रहण करना चाहिये। क्रियास्थान अध्ययन में तेरह क्रियास्थानों का वर्णन है। यहाँ भौम, उत्पाद, स्वप्न, अतरीक्ष, आग, स्वर, लक्षण, व्यजन, स्त्री-लक्षण[1] आदि शास्त्रों का उल्लेख है। अनेक प्रकार के दडो का विधान है। आहारपरिज्ञान अध्ययन मे वनस्पति, जलचर और पक्षियों आदि का वर्णन है। प्रत्याख्यानक्रिया अध्ययन में जीवहिसा हो जाने पर प्रत्याख्यान की आवश्यकता बताई गई है। आचारश्रुताध्ययन में साधुओ के आचार का प्ररूपण है। पाप, पुण्य, बन्ध, मोक्ष, साधु, असाधु, और लोक, अलोक आदि न स्वीकार करने को यहाँ अनाचार कहा है। छठे अध्ययन में गोशाल, शाक्यभिक्षु; ब्राह्मण, एकदडी और हस्तितापसो[2] के

---

१. दीघनिकाय (१, पृ० ९) में अग, निमित्त, उप्पाद, सुपिन और लक्खण आदि का उल्लेख है। मनुस्मृति (६-५०) में भी उत्पात, निमित्त, नक्षत्र और अगविद्या का नाम आता है।

२. ये लोग अपने बाण द्वारा हाथी को मारकर महीनों तक उसके मास से अपना पेट भरते थे। इनका कहना था कि इस तरह हम अन्य जीवों की हत्या से बच जाते हैं। देखिये सूत्रकृताग २·६। यहां टीका-

साथ आर्द्रक मुनि का सवाद है। वणिको (?वनीपको) के सबध में गोशाल के मुख से कहलाया गया है—

वित्तेसिणो मेहुणरापगाढा ते भोयणट्ठा वणिया वयंति।
वय तु कामेसु अज्झोववन्ना अणारिया पमरसेसु गिद्धा ॥

—वणिक् (वनीपक) धन के अन्वेषी, मैथुन मे अत्यन्त आसक्त और भोजन-प्राप्ति के लिये इधर-उधर चक्कर मारा करते हैं। हम तो उन्हें कामासक्त, प्रेमरस के प्रति लालायित और अनार्य कहते है।

सातवे अध्ययन का नाम नालन्दीय है। इस अध्ययन में वर्णित घटना नालन्दा में घटित हुई थी, इसलिये इसका नाम नालन्दीय पड़ा। गौतम गणधर नालन्दा मे लेप गृहपति के हस्तियाम नामक वनखड मे ठहरे हुए थे। वहाँ पार्श्वनाथ के शिष्य उदकपेढालपुत्र के साथ उनका वाद-विवाद हुआ और अन्त में पेढालपुत्र ने चातुर्याम धर्म[1] त्याग कर पच महाव्रत स्वीकार किये।

ठाणांग (स्थानांग)

स्थानांग सूत्र में अन्य आगमो की भाँति उपदेशों का सकलन नहीं, बल्कि यहाँ स्थान अर्थात् संख्या के क्रम से बौद्धो के अगुत्तरनिकाय की भाँति लोक मे प्रचलित एक से दस तक वस्तुएँ गिनाई गई हैं।[2] इस सूत्र में दस अध्ययनों में ७८३ सूत्र हैं। इसके टीकाकार हैं अभयदेवसूरि (ईसवी सन् १०६३),

---

कार ने बौद्ध साधुओं को हस्तितापस कहा है। ललितविस्तर (पृ० २४८) में हस्तिव्रत तपस्वियों का उल्लेख है।

१. दीघनिकाय (३, पृष्ठ ४८ इत्यादि) में चातुर्याम धर्म का उल्लेख है। मज्झिमनिकाय के चूलसकुलुदायिसुत्त में निगण्ठनाटपुत्त और उनके चातुर्याम संवर का उल्लेख मिलता है।

२. दूसरी आवृत्ति, सन् १९३७ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

जिन्होने आचारांग, सूत्रकृतांग और दृष्टिवाद को छोड़कर शेष नौ अंगो पर टीकायें लिखी हैं, इसलिये वे नवांगवृत्तिकार कहे जाते हैं। अभयदेव के कथन से मालूम होता है कि सम्प्रदाय के नष्ट हो जाने से, शास्त्रो के उपलब्ध न होने से, बहुत-सी बातो को भूल जाने से, वाचनाओ के भेद से, पुस्तक अशुद्ध होने से, सूत्रो के अति गभीर होने से तथा जगह जगह मतभेद होने के कारण विषयवस्तु के प्रतिपादन मे बहुत-सी त्रुटियाँ रह गई हैं।[1] फिर भी द्रोणाचार्य आदि के सहयोग से उन्होने इस ग्रथ की टीका रची है। नागर्षि ने इस पर दीपिका लिखी है।

प्रथम अध्ययन में एक सख्यावाली वस्तुओं को गिनाया है। आत्मा एक है (एगे आया)। दूसरे अध्ययन में श्रुतज्ञान के अगबाह्य और अगप्रविष्ट नामक दो भेदों का प्रतिपादन है। चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के स्वरूप का कथन है। जम्बूद्वीप अधिकार में जम्बूद्वीप का स्वरूप है। तीसरे अध्ययन में दास, भृतक और साझेदार (भाइल्लग) की गिनती जघन्य पुरुषो में की है। माता-पिता, भर्त्ता और धर्माचार्य के उपकारों का बदला देने को दुष्कर कहा है।[2] मगध, वरदाम और प्रभास नामक तीर्थों और तीन प्रकार की प्रव्रज्या का उल्लेख है। निर्ग्रथ और

---

१ सत्सप्रदायहीनत्वात् सदूहस्य वियोगत·।
सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे ॥
वाचनानामनेकत्वात् पुस्तकानामशुद्धित ।
सूत्राणामतिगाभीर्यान्मतभेदाच्च कुत्रचित् ॥
क्षूणानि संभवन्तीह, केवल सुविवेकिभि·।
सिद्धान्तेऽनुगतो योऽर्थः सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतर· ॥
—(पृष्ठ ४९९ अ आदि)

२. इस सबध में धम्मपद अट्ठकथा (२३. ३, भाग ४, पृ० ७–१३) में एक मार्मिक कथा दी है जिसके हिन्दी अनुवाद के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, प्राचीन भारत की कहानियाँ, पृ० ५–९।

निर्ग्रंथिनियों के तीन प्रकार के वस्त्र और पात्रों का उल्लेख है। वैदिक शास्त्रों में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद और कथाओं में अर्थ, धर्म और काम की चर्चा है। पंडक (नपुंसक), वातिक, क्लीब, ऋणपीडित, राजापकारी, दास आदि को दीक्षा के अयोग्य बताया है।[1] चौथे अध्ययन में सर्वप्राणातिपातवेरमण, सर्वमृषावादवेरमण, सर्वअदत्तादानवेरमण, सर्वबहिद्धादानवेरमण[2] को चातुर्याम धर्म कहा है। चार पन्नत्तियों में चंदपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, जबुद्दीवपन्नत्ती और दीवसागरपन्नत्ती का तथा चार प्रकार के हाथी,[3] चार नौकर,[4] चार विकथा (स्त्री, भक्त, देश, राज) और चार महाप्रतिपदाओं (चैत्र, आषाढ़, आश्विन और कार्तिक की प्रतिपदाओं) का उल्लेख है। आजीवकों के चार प्रकार के कठोर तप[5] का और चार हेतुओं में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम का उल्लेख है। तत्पश्चात् चार तीर्थिक, चार प्रव्रज्या, चार

---

१ विनयपिटक के अन्तर्गत महावग्ग में उपसपदा और प्रव्रज्या के प्रकरण मे नपुंसक, दास और ऋणधारी आदि को दीक्षा के अयोग्य कहा है।

२ बहिर्द्धा—मैथुन परिग्रहविशेष आदान च परिग्रह. तयोर्द्वन्द्वैकत्वमथवा आदीयत इत्यादान-परिग्राह्य वस्तु तच्च धर्मोपकरणमपि भवतीत्यत आह—बहिस्तात् धर्मोपकरणाद् बहिर्यदिति, इह च मैथुन परिग्रहेऽन्तर्भवति। ४. १ टीका।

३. हाथियों के लिये देखिये सम्मोहविनोदिनी अट्ठकथा, पृ० ३९७।

४. याज्ञवल्क्यस्मृति (प्रकरण १४, पृ० २४९) में अनेक प्रकार के दासों का उल्लेख है। ग्रियर्सन ने बिहार पेज़ेन्ट लाइफ (पृ० ३१५) में मजूर, जन, बनिहार, कमरिया, कमियाँ, चाकर, बहिया और चरवाह ये नौकरों के प्रकार बताये हैं।

५. उग्रतप, घोरतप, घृतादिरसपरित्याग (रसनिज्जूहणया), और जिह्वेन्द्रियप्रतिसलीनता। जैनों के तप से इनकी तुलना की जा सकती है। बौद्धों के नंगुट्ठजातक में भी आजीवकों की तपस्या का उल्लेख है।

कृषि, चार संघ, चार बुद्धि, चार नाट्य, गेय, माल्य और अलंकार आदि का कथन है। पाँचवें अध्ययन में पाँच महाव्रत और पाँच राजचिह्नों का उल्लेख है। जाति, कुल, कर्म, शिल्प और लिंग के भेद से पाँच प्रकार की आजीविका का प्ररूपण है। गंगा, यमुना, सरयू, एरावती (राप्ती) और मही[1] नामक महानदियों के पार करने का निषेध है, लेकिन राजभय, दुर्भिक्ष, नदी में फेंक दिये जाने पर अथवा अनार्यों का आक्रमण आदि होने पर इस नियम में अपवाद बताया है। इसी प्रकार वर्षाकाल में गमन का निषेध है, लेकिन अपवाद अवस्था में यह नियम लागू नहीं होता। अपवाद अवस्था में हस्तकर्म, मैथुन, रात्रिभोजन[2] तथा सागारिक और राजपिंड ग्रहण करने का कथन है। साधारणतया निर्ग्रंथ और निर्ग्रन्थिनियों को साथ में रहने का निषेध है, लेकिन निर्ग्रंथिनियों के क्षिप्तचित्त अथवा यक्षाविष्ट अवस्था को प्राप्त हो जाने पर इस नियम का उल्लंघन किया जा सकता है। इसी प्रकार निर्ग्रंथिनी यदि पशु, पक्षी आदि से संत्रस्त हो, गड्ढे आदि में गिर पड़े, कीचड़ में फँस जाये, नाव पर आरोहण करे या नाव पर से उतरे तो उस समय अचेल निर्ग्रंथ सचेल निर्ग्रंथिनी को अवलंबन दे सकता है। आचार्य या उपाध्याय द्वारा गण को छोड़कर जाने के सम्बन्ध में नियमों का उल्लेख है। निर्ग्रंथ और निर्ग्रंथिनियों के पाँच प्रकार के वस्त्र और रजोहरण का उल्लेख है। अतिथि, कृपण, ब्राह्मण, श्वान और श्रमण नाम के पाँच वनीपक गिनाये गये हैं। बाईस तीर्थंकरों में से वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमी, पार्श्व और महावीर के कुमार-

---

१. यह नदी सारन (बिहार) जिले में बहकर सोनपुर में गंडक में मिल जाती है। आठ महीने यह सूखी रहती है। विनयपिटक के चुल्लवग्ग (९. १. ४) तथा मिलिन्दपण्ह (हिन्दी अनुवाद, पृ० १४४, ४६८) में इन नदियों का उल्लेख है।

२. मज्झिमनिकाय के लकुटिकोपमसुत्त में विकाल भोजन का निषेध है।

प्रव्रजित होने का उल्लेख है।[1] यमुना, सरयू, आवी (एरावती अथवा अचिरावती), कोसी और मही नामक नदियाँ गगा में, तथा शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, एरावती (रावी) और चन्द्रभागा सिन्धु नदी में मिलती हैं। छठे अध्ययन में अबष्ठ, कलद, वेदेह, वेदिग, हरित, चुंचुण नामक छह आर्य जातियो, तथा उग्र, भोग. राजन्य, इक्ष्वाकु, णाय और कौरव नामक छह आर्यकुलो का उल्लेख है। सातवें अध्ययन मे कासव, गोतम, वच्छ, कोच्छ, कोसिय, मडव और वासिट्ठ इन सात मूल गोत्रो का कथन है। इन सातो के अवान्तर भेद बताये गये हैं।[2] सात मूल नय, सात स्वर, सात दडनीति और सात रत्नों आदि का उल्लेख है। महावीर वज्रर्षभनाराय सहनन और समचतुरस्र सस्थान से युक्त थे तथा सात रयणी (मुट्ठी बाँध कर एक हाथ का माप) ऊँचे थे। उनके तीर्थ मे जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गग, षडूलक, रोहगुप्त और गोष्ठामहिल नामक सात निह्नवो की उत्पत्ति हुई। आठवें अध्ययन मे आठ अक्रियावादी, आठ महानिमित्त

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति (२४३–२४४) में कथन है—

वीरं अरिट्ठनेमिं पास मल्लि च वासुपुज्ज च।
एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो॥
रायकुलेसु पि जाया विसुद्धवसेसु खत्तियकुलेसु।
न य इत्थियाभिसेया(?) कुमारवासंमि पव्वइया॥

मुनि पुण्यविजय जी अपने २०–९–१९४२ के पत्र में सूचित करते हैं कि यहां इच्छियाभिसेया पाठ है, अर्थात् इन तीर्थंकरों ने अभिषेक की इच्छा नहीं की। स्वय आचार्य मलयगिरि ने इसका अर्थ 'ईप्सित अभिषेक' किया है।

२ गोत्रों के लिये देखिये अगविज्जा (अध्याय २५), मनुस्मृति, (पृष्ठ ३९९, श्लोक ८–१९, ३२–९, ४७–६), याज्ञवल्क्यस्मृति (प्रकरण ४, पृष्ठ २८, श्लोक ९१–९५)।

और आठ प्रकार के आयुर्वेद[1] का उल्लेख है। महावीर द्वारा दीक्षित आठ राजाओ और कृष्ण की आठ अग्रमहिषियो का नामोल्लेख है। नौवें अध्ययन में नवनिधि और महावीर के नौ गणो—गोदास, उत्तरबलिस्सह, उद्देह, चारण, उद्दवातित, विस्सवातित, कामड्ढिय, माणव और कोडित के नाम हैं। दसवे अध्ययन मे दस प्रकार की प्रव्रज्या का प्ररूपण है। स्वाध्याय न करने के काल का निरूपण किया गया है। दस महानदियो, तथा चपा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, हस्तिनापुर, कांपिल्य, मिथिला, कौशांबी और राजगृह नामकी दस राजधानियो[2] के नाम गिनाये गये हैं। दस चैत्य वृक्षो मे आसत्थ, सत्तिवन्न, सामलि, उबर, सिरीस, दहिवन्न, वजुल, पलास, वप्प और कणियार को गिनाया है। दृष्टिवाद सूत्र के दस नाम गिनाये हैं। दस दशाओ मे कम्मविवाग, उवासग, अतगड, अणुत्तरोववाय, आयार, पण्हवागरण, बध, दोगिद्धि, दीह और सखेविय को गिनाया है, इन आगमो के अवान्तर अध्ययनो का नामोल्लेख है। अतगड, अणुत्तरोववाय, आचार, पण्हवागरण, दोगिद्धि तथा दीह आदि दशाओ में ये अध्ययन इसी रूप में उपलब्ध नहीं होते, जिसका मुख्य कारण टीकाकार ने आगमो में वाचना-भेद का होना बताया है। दस आश्चर्यों मे महावीर के गर्भहरण की घटना और स्त्री का तीर्थंकर होना गिनाया गया है।

समवायांग

जैसे स्थानाग में एक से लगाकर दस तक जीव आदि के स्थानो का प्ररूपण है, इसी प्रकार इस सूत्र में एक से लगाकर

---

१. कुमारभृत्य, कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्यहत्या, जगोली (विषविघाततत्र), भूतविद्या, क्षारतत्र (वाजीकरण), रसायन। तथा देखिये अगविज्जा, अध्याय ५०।

२. दीघनिकाय के महापरिनिब्बाण सुत्त में चंपा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाबी और वाराणसी नाम के महानगरों का उल्लेख है।

कोडाकोड़ि सख्या तक की वस्तुओ का सग्रह (समवाय) है।[1] बारह अग और चौदह पूर्वों के विषयों का वर्णन तथा ब्राह्मी आदि अठारह लिपियों का और नन्दिसूत्र का उल्लेख यहाँ मिलता है। मालूम होता है कि द्वादशाग के सूत्रबद्ध होने के पश्चात् यह सूत्र लिखा गया है। अभयदेव सूरि ने इस पर टीका लिखी है।

एक वस्तु में आत्मा, दो में जीव और अजीव राशि, तीन में तीन गुप्ति, चार में चार कषाय, पॉच में पच महाव्रत, छह में छह जीवनिकाय, सात में सात समुद्घात, आठ में आठ मद, नौ में आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के नौ अध्ययन, दस में दस प्रकार का श्रमणधर्म, दस प्रकार के कल्पवृक्ष, ग्यारह में ग्यारह उपासक प्रतिमा, ग्यारह गणधर, बारह मे बारह भिक्षु-प्रतिमा, तेरह में तेरह क्रियास्थान, चौदह में चतुर्दश पूर्व, चतुर्दश जीवस्थान, चतुर्दश रत्न, पन्द्रह मे पन्द्रह प्रयोग, सोलह मे सूत्रकृताग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कध के सोलह अध्ययन, सत्रह मे सत्रह प्रकार का असयम, सत्रह प्रकार का मरण, अठारह में अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य और अठारह लिपियों आदि का प्ररूपण किया गया है। अठारह लिपियों मे बभी (ब्राह्मी[2]), जवणी (यवनानी) दोसाउरिया, खरोट्टिया (खरोष्ठी[3]) खरसाविया (पुक्खरसारिया), पहराइया, उच्चत्तरिया, अक्खर-

---

१. अहमदाबाद से सन् १९३८ में प्रकाशित।

२. व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के आरम्भ में ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है। ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी ने इस लिपि को चलाया था। ईसवी पूर्व ५०० ३०० तक भारत की समस्त लिपियाँ ब्राह्मी के नाम से कही जाती थीं। मुनि पुण्यविजय, भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला, पृष्ठ ९।

३. ईसवी पूर्व ५वीं शताब्दी में यह लिपि अरमईक लिपि में से निकली है, मुनि पुण्यविजय, वही, पृष्ठ ८।

पुट्ठिया, भोगवयता, वेणइया, णिण्हइया, अंक, गणिय, गंधव्व, आदस्स, माहेसर, दामिली और पोलिंदी लिपियाँ गिनाई गई है।[1] उन्नीस वस्तुओं में नायाधम्मकहाओ के प्रथम श्रुतस्कध के उन्नीस अध्ययन गिनाये हैं। चौबीस तीर्थंकरो मे महावीर, नेमिनाथ, पार्श्व, मल्लि और वासुपूज्य को छोड़ कर शेष उन्नीस तीर्थकरों को गृहस्थ प्रव्राजित कहा है। तत्पश्चात् बीस असमाधि के स्थान, इक्कीस शबल चारित्र, बाईस परीषह, दृष्टिवाद के बाईस सूत्र आदि का प्ररूपण है। दृष्टिवाद के बाईस सूत्रों मे कुछ सूत्रो का त्रैराशिक[2] (गोशालमत) सूत्र परिपाटी के अनुसार किये जाने का उल्लेख है। सूत्रकृताग के द्वितीय श्रुतस्कध के तेईस अध्ययन, चौबीस देवाधिदेव (तीर्थंकर), पच्चीस भावनाये, सत्ताईस अनगार के गुण, उनतीस पापश्रुत प्रसंग आदि का प्ररूपण है। पापश्रुतों में भौम, उत्पात, स्वप्न, अतरीक्ष, आगं, स्वर, व्यजन और लक्षण इन अष्टांग निमित्तो को गिनाया है। सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से इन श्रुतों के चौबीस भेद बताये हैं।[3] इनमे विकथानुयोग, विद्यानुयोग, मत्रानुयोग, योगानुयोग और अन्य तीर्थिक-प्रवृत्तानुयोग के मिला देने से उनतीस भेद हो जाते है। तत्पश्चात्

---

१. लिपियों के लिये देखिये पन्नवणा (१. ५५ अ), विशेषावश्यकभाष्य (५. ४६४), हरिभद्र का उपदेशपद, लावण्यसमयगणि, विमलप्रबध (पृष्ठ १२३), लक्ष्मीवल्लभ उपाध्याय, कल्पसूत्र टीका, ललितविस्तर (पृ० १२५ इत्यादि), मुनि पुण्यविजय, चित्रकल्प, पृष्ठ ६; भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला, पृष्ठ ६–७, ललितविस्तर (पृष्ठ १२५) में ६४ लिपियों का उल्लेख है।

२. कल्पसूत्र के अनुसार आर्य महागिरी के शिष्य ने त्रैराशिक मत की स्थापना की थी।

३. इससे निमित्तसंबधी शास्त्र के विस्तृत साहित्य होने का पता लगता है। अष्टांग महानिमित्त शास्त्र को पूर्वों का अंग बताया है।

मोहनीय के तीस स्थान, इकतीस सिद्ध आदि गुण, बत्तीस योगसग्रह, तेतीस आशातना, चौंतीस बुद्धों (तीर्थंकरो) के अतिशय बताये गये हैं। अर्धमागधी भाषा का यहाँ उल्लेख है। यह भाषा आर्य, अनार्य तथा पशु पक्षियो तक की समझ में आ सकती थी। पैंतीस सत्य वचन के अतिशय, उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन, चवालीस ऋषिभाषित अध्ययन, दृष्टिवाद सूत्र के छियालीस मातृकापद, ब्राह्मी लिपि के छियालीस मातृका अक्षर, चौवन उत्तम पुरुष, अतिम रात्रि मे महावीर द्वारा उपदिष्ट पचपन अध्ययन, बहत्तर कला और भगवती सूत्र के चौरासी सहस्र पदों का यहाँ उल्लेख है। द्वादशांग मे वर्णित विषय का कथन किया है। दृष्टिवाद सूत्र मे आजीविक और त्रैराशिक सूत्र परिपाटी से उल्लिखित सूत्रो का कथन है जिससे आजीविक मतानुयायियो का जैन आचार-विचार के साथ घनिष्ठ सबध होने की सूचना मिलती है।[१] फिर तीर्थंकरो के चैत्यवृक्षों आदि का उल्लेख है।

---

१. मक्खलिगोशाल को बौद्धसूत्रों में पूरणकस्सप, अजितकेसकंबली, पकुधकच्चायन, संजय बेलट्ठिपुत्त और निगंठनाटपुत्त के साथ यशस्वी तीर्थंकरों में गिनाया गया है। गोशालमत के अनुयायी, जैनों की भाँति पंचेन्द्रिय जीव और छह लेश्याओं के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। वे लोग उदुंबर, पीपल, बड़ आदि फलों और कदमूल का भक्षण नहीं करते, तथा अगारकर्म, वनकर्म, शकटकर्म, भाटकर्म, स्फोटककर्म, दंतवाणिज्य, लाक्षावाणिज्य, केशवाणिज्य, रसवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीलनकर्म, निर्लांछनकर्म, दवाग्निदापन, सरोवरद्रह और तालाब का शोषण तथा असतीपोषण इन १५ कर्मादानों का त्याग करते हैं। जैन आगमों में गोशालक के अनुयायियों द्वारा देवगति पाये जाने का उल्लेख है। व्याख्याप्रज्ञप्ति के अनुसार गोशाल मर कर देवलोक में उत्पन्न हुआ तथा भविष्य में वह मोक्ष का अधिकारी होगा।

वियाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति)

व्याख्याप्रज्ञप्ति को भगवतीसूत्र भी कहा जाता है।[1] प्रज्ञप्ति का अर्थ है प्ररूपण। जीवादि पदार्थों की व्याख्याओं का प्ररूपण होने से इसे व्याख्याप्रज्ञप्ति कहा जाता है। ये व्याख्याये प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत की गई हैं। गौतम गणधर श्रमण भगवान् महावीर से जैनसिद्धांतविषयक प्रश्न पूछते है और महावीर उनका उत्तर देते हैं। इस सूत्र में कुछ इतिहास-संवाद भी हैं जिनमें अन्य तीर्थिकों के साथ महावीर का वाद-विवाद उद्धृत है। इस सूत्र के पढ़ने से महावीर की जीवन-सबधी बहुत-सी बातों का पता चलता है। महावीर को यहाँ वेसालिय (वैशाली के रहनेवाले) और उनके श्रावको को वेसालियसावय (वैशालीय अर्थात् महावीर के श्रावक) कहा गया है। अनेक स्थलों पर पार्श्वनाथ के शिष्यों के चातुर्याम धर्म का त्याग कर महावीर के पंच महाव्रतों को अंगीकार करने का उल्लेख है जिससे महावीर के पूर्व भी निर्ग्रन्थ प्रवचन का अस्तित्व सिद्ध होता है। गोशालक के कथानक से महावीर और गोशालक के घनिष्ठ सबध पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त आर्य स्कद, कात्यायन, आनद, माकदीपुत्र, वज्जी विदेहपुत्र (कूणिक) नौ मल्लकी और नौ लेच्छकी, उदयन, मृगावती, जयन्ती आदि महावीर के अनुयायियों के सबध में बहुत-सी बातों की जानकारी मिलती है। अग, वग, मलय, मालवय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ़, लाढ़, वज्जि, मोलि, कासी, कोसल, अवाह और सभुत्तर (सुह्मोत्तर) इन सोलह जनपदों का उल्लेख यहाँ मिलता है। इसके सिवाय अन्य अनेक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पौराणिक

---

1. अभयदेव की टीकासहित आगमोदय समिति द्वारा सन् १९२१ में प्रकाशित, जिनागमप्रचार सभा अहमदाबाद की ओर से वि० स० १९७९–१९८८ में पं० बेचरदास और प० भगवानदास के गुजराती अनुवादसहित चार भागों में प्रकाशित।

विषयों की चर्चा इस बृहत् ग्रन्थ में पाई जाती है। पन्नवणा, जीवाभिगम, ओववाइय, रायपसेणइय और नन्दी आदि सूत्रो का बीच-बीच में हवाला दिया गया है। विषय को समझाने के लिये उपमाओ और दृष्टान्तों का यथेष्ट उपयोग किया है। कही विषय की पुनरावृत्ति भी हो गई है। किसी उद्देशक का वर्णन बहुत विस्तृत है, किसी का बहुत सक्षिप्त। विषय के वर्णन में क्रमबद्धता भी नही मालूम होती, और कई स्थलों पर विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता। चूर्णीकार तक को अर्थ की सगति नहीं बैठती। सब मिलाकर इस सूत्र में ४१ शतक हैं, प्रत्येक शतक अनेक उद्देशको में विभक्त है। अभयदेवसूरि ने इसकी टीका लिखी है जिसे उन्होंने विक्रम संवत् ११२८ में पाटण में लिखकर समाप्त किया था। टीकाकार के काल में आगमों की अनेक परपराये विच्छिन्न हो चुकी थी, इसलिये चूर्णी[1] और जीवाभिगम-वृत्ति आदि की सहायता से संशयग्रस्त मन से उन्होने यह टीका लिखी। वाचना-भेद के कारण भी कम कठिनाई नही हुई। अभयदेव के अनुसार भगवतीसूत्र में ३६ हजार प्रश्न हैं और २ लाख ८८ हजार पद। लेकिन समवायांग और नन्दीसूत्र के अनुसार पदों की सख्या क्रम से ८४ हजार और १ लाख ४४ हजार बताई गई है। इस पर अवचूर्णी भी है। दानशेखर ने लघुवृत्ति की रचना की है।[2]

पहले शतक में दस उद्देशक हैं। इनमें कर्म, कर्मप्रकृति, शरीर, लेश्या, गर्भशास्त्र, भाषा आदि का विवेचन है, और तीर्थिकों के मतो का उल्लेख है। ब्राह्मी लिपि को यहाँ नमस्कार किया है।[3]

---

१. मुनि पुण्यविजयजी से पता लगा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति की एक अति लघु चूर्णी प्रकाशित होने वाली है।

२. भाषाशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से पिशल ने इस सूत्र की सज्ञा और धातुरूपों के अध्ययन को महत्त्वपूर्ण बताया है। प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृ० ३४।

३. बहुत संभव है कि जैन आगमों की यह लिपि रही हो।

महावीर और आर्यरोह में लोक-अलोक के संबंध में प्रश्नोत्तर होते हैं। अडे और मुर्गी मे पहले कौन पैदा हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि दोनों पहले भी हैं और पीछे भी। महावीर के शिष्य और पार्श्व के अनुयायी आर्य कालासवेसियपुत्त में प्रश्नोत्तर होते हैं और कालासवेसियपुत्त चातुर्याम धर्म का त्याग कर पंच महाव्रत स्वीकार करते हैं। दूसरे शतक में भी दस उद्देशक हैं। यहाँ कात्यायनगोत्रीय आर्यस्कंदक परिव्राजक के आचार-विचारों का विस्तृत वर्णन है। यह परिव्राजक चार वेदों का सांगोपांग वेत्ता तथा गणित, शिक्षा, आचार, व्याकरण छंद, निरुक्त और ज्योतिषशास्त्र का पंडित था। श्रावस्ती के वैशालिकश्रावक (महावीर के श्रावक) पिंगल और स्कंदक परिव्राजक के बीच लोक आदि के संबंध में प्रश्नोत्तर होते हैं। अन्त में स्कंदक महावीर के पास जाकर श्रमणधर्म में दीक्षा ले लेते हैं, और विपुल पर्वत पर सलेखना द्वारा देह त्याग करते हैं। तुंगिका नगरी के श्रमणोपासकों का वर्णन पढ़िये—

तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसति अड्ढा, दित्ता, वित्थिन्नविपुलभवण-सयणासण-जाण वाहणाइण्णा, बहुधण बहुजायरूव रयया, आयोग-पयोगसंपउत्ता, विच्छड्डियविपुलभत्त-पाणा, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया, बहुजणस्स अपरिभूया, अभिगयजीवाजीवा, उवलद्धपुण्ण-पावा, आसव-सवर-निज्जर किरिया ऽहिकरणबध-मोक्खकुसला, असहेज्जदेवासुरनाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरुस-गरुल-गंधव्व-महोरगाईएहि देवगणेहि निग्गथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे निस्संकिया, निक्कंखिया, निवितिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिजपेमाणुरागरत्ता, अयमाउसो! निग्गथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, असियफलिहा, अवगुयदुवारा, चियत्ततेउरघरप्पवेसा बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहो-ववासेहि-चाउद्दसट्ठमु-दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु परिपुण्ण पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा,

समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं, वत्थ-पडिग्गह कंबल-पायपुछणेण, पीठ-फलग-सेज्जासथारएणं, ओसह भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरति।

—तुंगिया नगरी में बहुत से श्रमणोपासक रहते थे। वे धनसम्पन्न और वैभवशाली थे। उनके भवन विशाल और विस्तीर्ण थे, शयन, आसन, यान, वाहन से वे सम्पन्न थे, उनके पास पुष्कल धन और चाँदी-सोना था, रुपया ब्याज पर चढ़ाकर वे बहुत-सा धन कमाते थे। अनेक कलाओं में निपुण थे। उनके घरो में अनेक प्रकार के भोजन-पान तैयार किये जाते थे, अनेक दास-दासी, गाय, भैंस, भेड़ आदि से वे समृद्ध थे। वे जीव-अजीव के स्वरूप को भला भाँति समझते और पुण्य-पाप को जानते थे, आस्रव, सवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बध और मोक्ष के स्वरूप से अवगत थे। देव, असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गधर्व, महोरग आदि तक उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से डिगा नहीं सकते थे। निर्ग्रन्थ प्रवचन में वे शकारहित, आकांक्षारहित और विचिकित्सारहित थे। शास्त्र के अर्थ को उन्होंने ग्रहण किया था, अभिगत किया था और समझ बूझकर उसका निश्चय किया था। निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति उनका प्रेम उनके रोम-रोम में व्याप्त था। वे केवल एक निर्ग्रन्थ प्रवचन को छोड़कर बाकी सबको निष्प्रयोजन मानते थे। उनकी उदारता के कारण उनका द्वार सबके लिये खुला था। वे जिस किसी के घर या अन्तःपुर में जाते वहाँ प्रीति ही उत्पन्न करते। शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, प्रोषध और उपवासो के द्वारा चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस और पूर्णमासी के दिन वे पूर्ण प्रोषध का पालन करते। श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक और ग्राह्य अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोंछन (रजोहरण), आसन, फलक (सोने के लिये काठ का तख्ता), शय्या, सस्तारक, औषध और भेषज से

प्रतिलाभित करते हुए वे यथा-प्रतिगृहीत तपकर्म द्वारा आत्म ध्यान मे लीन विहार करते थे।

प्रश्नोत्तर की शैली देखिये :—

तहारूव णं भंते! समण वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स वा किंफला पज्जुवासणा ?

गोयमा! सवणफला।

से णं भंते! सवणे किं फले ?

णाणफले।

से णं भंते! णाणे किं फले ?

विन्नाणफले।

से ण भंते! विन्नाणे कि फले ?

पच्चक्खाणफले।

से ण भंते! पच्चक्खाणे किं फले ?

संजमफले।

से ण भंते! संयमे कि फले ?

अणण्हयफले।

एवं अणण्हये ?

तवफले।

तवे ?

वोदाणफले।

से ण भंते! वोदाणे किं फले ?

(वोदाणे) अकिरियाफले।

से णं भंते! अकिरिया कि फला ?

सिद्धिपज्जवसाणफला पन्नत्ता गोयमा!

—"हे भगवन्! श्रमण या ब्राह्मण की पर्युपासना करने का क्या फल होता है ?"

"हे गौतम! (सत् शास्त्रों का) श्रवण करना उसका फल है।"

"श्रवण का क्या फल होता है ?"

"ज्ञान।"
"ज्ञान का क्या फल होता है?"
"विज्ञान।"
"विज्ञान का क्या फल होता है?"
"प्रत्याख्यान।"
"प्रत्याख्यान का क्या फल है?"
"सयम।"
"सयम का क्या फल है?"
"आस्रवरहित होना।"
"आस्रवरहित होने का क्या फल है?"
"तप।"
"तप का क्या फल है?"
"कर्मरूप मल का साफ करना।"
"कर्मरूप मल को साफ करने का क्या कल है?"
"निष्क्रियत्व।"
"निष्क्रियत्व का क्या फल है?"
"सिद्धि।"

इसी उद्देशक (२ ५) में राजगृह में वैभारपर्वत के महातपोपतीरप्रभ नामक उष्ण जल के एक विशाल -कुण्ड का उल्लेख है।[1]

तीसरे शतक में दस उद्देशक हैं। यहाँ ताम्रलिप्ति (तामलूक) के निवासी मोरियपुत्र तामली का उल्लेख है। उसने मुडित होकर प्राणामा प्रव्रज्या स्वीकार की। अन्त में पादोपगमन अनशन द्वारा देह का त्याग किया। सबर, बब्बर, टकण[2] आदि

१. बौद्ध साहित्य में इसे तपोदा कहा गया है (विनयपिटक ३, पृष्ठ १०८, दीघनिकाय अट्ठकथा १, पृष्ठ ३५)। आजकल यह तपोवन के नाम से प्रसिद्ध है।

२. टंकण म्लेच्छ उत्तरापथ के रहने वाले थे। ये बड़े दुर्जय थे और जब आयुध आदि से युद्ध नहीं कर पाते थे तो भागकर पर्वत की शरण

म्लेच्छ जातियो का यहाँ उल्लेख है। फिर पूरण गृहपति की दानामा प्रव्रज्या का वर्णन है। सलेखना द्वारा भक्त-पान का त्याग करके उसने देवगति प्राप्त की। इस प्रसग पर देवेन्द्र और असुरेन्द्र के युद्ध का वर्णन किया गया है। असुरेन्द्र भाग कर महावीर की शरण में गया और देवेन्द्र ने अपने वज्र का उपसंहार किया।[1] तीसरे उद्देशक मे समुद्र में ज्वार-भाटा आने के कारण पर प्रकाश डाला गया है। चौथे और पाँचवे शतकों में भी दस दस उद्देशक हैं। पाँचवे शतक में प्रश्न किया गया है कि क्या शक्रदूत हरिणेगमेषी गर्भहरण करने में समर्थ है? देवो द्वारा अर्धमागधी भाषा में बोले जाने का उल्लेख है। फिर उद्योत और अंधकार के कारण पर प्रकाश डाला गया है। सातवे शतक के छठे उद्देशक में अवसर्पिणी काल के दुषमा-दुषमा काल का विस्तृत वर्णन है। महाशिला कटक और रथमुशल सग्राम का उल्लेख है। इन सग्रामों में वज्जी विदेहपुत्र कूणिक की जीत हुई और १८ गणराजा हार गये। आठवे शतक के पाँचवें उद्देशक में आजीविकों के प्रश्न प्रस्तुत किये है। आजीविक सम्प्रदाय के आचार-विचार का यहाँ उल्लेख है। नौवें शतक के दूसरे उद्देशक मे चन्द्रमा के प्रकाश के सबध मे चर्चा है। बत्तीसवे उद्देशक मे वाणियगाम (बनिया) के गागेय नामक पार्श्वापत्य द्वारा पूछे हुए प्रश्नोत्तरो की चर्चा है। गांगेय अनगार ने अन्त में चातुर्याम धर्म का

लेते थे। तथा देखिये सूत्रकृतांग (२.२.१८), आवश्यकचूर्णी, पृष्ठ १२०, वसुदेवहिण्डी (इस पुस्तक का चौथा अध्याय), बृहत्कथाकोश (३२), महाभारत (२.२९.४४, ३.१४२.२४ इत्यादि), जरनल ऑव द यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, जिल्द १७, भाग १, पृष्ठ ३५ पर डाक्टर मोतीचन्द का लेख।

१. टीकाकार का इस संबध मे कथन है कि यहाँ कुछ भाग चूर्णीकार को भी अवगत नहीं, फिर वाचनाभेद के कारण भी अर्थ का निश्चय नहीं हो सका।

त्याग कर पाँच महाव्रत स्वीकार किये। तेतीसवें उद्देशक में माहण (बभण) कुडग्गाम के ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानदा ब्राह्मणी का उल्लेख है। महावीर के माहणकुडग्गाम में समवसरन होने पर ऋषभदत्त और देवानंदा उनके दर्शन के लिये गये। महावीर को देखकर देवानदा के स्तनों में से दूध की धारा बहने लगी। यह देखकर गौतम ने इस संबध में प्रश्न किया। महावीर ने उत्तर दिया कि देवानंदा उसकी असली माता है और वे उनके पुत्र हैं, पुत्र को देखकर माता के स्तनों में दूध आना स्वाभाविक है। अन्त में दोनों ने महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। माहणकुडग्गाम के पश्चिम में खत्तियकुंडग्गाम था। यहाँ महावीर की ज्येष्ठ भगिनी सुदर्शना का पुत्र और उनकी कन्या प्रियदर्शना का पति जमालि नाम का क्षत्रियकुमार रहता था। वह महावीर के दर्शन करने गया और उनके मुख से निर्ग्रंथप्रवचन का श्रवण कर माता-पिता की अनुमतिपूर्वक उसमें प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। कुछ समय बाद महावीर के साथ उसका मतभेद हो गया और उनसे अलग होकर उसने अपना स्वतंत्र मत स्थापित किया। ग्यारहवें शतक में अनेक वनस्पतियों की चर्चा है। इस शतक के नौवें उद्देशक में हस्तिनापुर के शिवराजर्षि का उल्लेख है। इन्होंने दिशाप्रोक्षक तापसों की दीक्षा ग्रहण की थी, आगे चलकर महावीर ने इन्हें अपना शिष्य बनाया। ग्यारहवें शतक में रानी प्रभावती के वासगृह का सुंदर वर्णन है। रानी स्वप्न देखकर राजा से निवेदन करती है। राजा अष्टांगनिमित्तधारी स्वप्नलक्षण-पाठक को बुलाकर उससे स्वप्नों का फल पूछता है। उसे प्रीतिदान से लाभान्वित करता है। तत्पश्चात् नौ मास व्यतीत होने पर रानी पुत्र को जन्म देती है। राज्य में पुत्रजन्म उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। बारहवें शतक के दूसरे उद्देशक में कौशाबी के राजा उदयन की माता मृगावती और जयंती आदि श्रमणोपासिकाओं का उल्लेख है। मृगावती और जयंती ने महावीर के पास उनका धर्मोपदेश श्रवण किया। जयंती ने महावीर से अनेक

प्रश्न किये। उसका प्रश्न था—सुप्तपना अच्छा है या जागृतपना ? भगवान् ने उत्तर में कहा—"कुछ लोगों का सुप्तपना अच्छा है, कुछ का जागृतपना।" छठे उद्देशक में राहु द्वारा चन्द्र के ग्रसित होने के संबध में प्रश्न है। दसवें शतक में आत्मा को कथचित् ज्ञानस्वरूप और कथचित् अज्ञानस्वरूप बताया है। तेरहवें शतक के छठे उद्देशक में वीतिभयनगर (भेरा, पंजाब मे) के राजा उद्रायण की दीक्षा का उल्लेख है। चौदहवे शतक के सातवे उद्देशक में केवलज्ञान की अप्राप्ति से खिन्न हुए गौतम को महावीर आश्वासन देते हैं। पन्द्रहवें शतक में गोशाल की विस्तृत कथा दी हुई है जो बहुत महत्त्व की है। यहॉ महावीर के ऊपर गोशाल द्वारा तेजोलेश्या छोड़े जाने का उल्लेख है जिसके कारण पित्तज्वर से महावीर को खून के दस्त होने लगे। यह देखकर सिंह अनगार को बहुत दु ख हुआ। महावीर ने उसे मेंढियग्रामवासी रेवती के घर भेजा, और कहा—"उसने जो दो कपोत तैयार कर रक्खे हैं; उन्हें मैं नहीं चाहता, वहॉ जो परसों के दिन अन्य मार्जारकृत कुक्कुटमांस रक्खा है, उसे ले आओ" (दुवे कावोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि)।[1] सत्रहवें शतक के पहले उद्देशक में

---

१. अभयदेवसूरि ने इस पर टीका करते हुए लिखा है—' इत्यादे. श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते (कुछ तो श्रूयमाण अर्थ अर्थात् मासपरक अर्थ को ही स्वीकार करते हैं)। अन्यं त्वाहु.—कपोतक.—पक्षिविशेषस्तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते—कूष्मांडे, ह्रस्वे कपोते कपोतके, ते च शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतकशरीरे, अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादेव कपोतशरीरे कूष्माडफले एव ते उपसस्कृते—सस्कृते (कुछ का कथन है कि कपोत का अर्थ यहाँ कूष्माड-कुम्हड़ा करना चाहिये)। 'तेहिं नो अट्ठो' त्ति बहुपापत्वात्। 'पारिआसिए'त्ति पारिवासितं ह्यस्तनमित्यर्थः। 'मज्जारकडए' इत्यादेरपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते ('मार्जारकृत' का भी कुछ लोग श्रूयमाण अर्थ ही मानते हैं)।

उदायी हस्ती का उल्लेख है। अठारहवें शतक के दसवे उद्देशक मे वाणिज्यग्राम के सोमिल नामक ब्राह्मण ने महावीर से प्रश्न किया कि सरसो (सरिसव) भक्ष्य है या अभक्ष्य ? महावीर ने उत्तर दिया—भक्ष्य भी है, अभक्ष्य भी। यदि सरिसव का अर्थ समान वयवाले मित्र लिया जाये तो अभक्ष्य है, और यदि धान्य लिया जाये तो भक्ष्य है। फिर आत्मा को एक रूप, दो रूप, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, तथा अनेक, भूत, वर्तमान और भावी परिणामरूप प्रतिपादित किया है। बीसवें शतक में कर्मभूमि, अकर्मभूमि आदि तथा विद्याचारण आदि की चर्चा है। पच्चीसवे शतक के छठे उद्देशक में निर्ग्रंथों के प्रकार बताये गये हैं। तीसवें शतक में क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी की चर्चा है।

नायाधम्मकहाओ (ज्ञातृधर्मकथा)

ज्ञातृधर्मकथा को णाहधम्मकहा अथवा णाणधम्मकहा भी कहा गया है।[1] इसमें उदाहरणों (नाय) के साथ धर्मकथाओ (धम्मकहा) का वर्णन है, इसलिये इसे नायाधम्मकहाओ कहा जाता है। ज्ञातृपुत्र महावीर की धर्मकथाओं का प्ररूपण होने से भी इस अंग को उक्त नाम से कहा है। ज्ञातृधर्मकथा जैन आगमों का एक प्राचीनतम अग है। इसकी वर्णनशैली एक विशिष्ट

अन्ये त्वाहु.—मार्जारो वायुविशेष. तदुपशमनाय कृत संस्कृतं मार्जारकृत (कुछ का कथन है कि मार्जार कोई वायुविशेष है, उसके उपशमन के लिये जो तैयार किया गया हो वह 'मार्जारकृत' है)। अपरे त्वाहुः—मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृतं–भावित यत्तत्तथा। किं तत् ? इत्याह कुर्कुटकमांस बीजपूरक कटाहम् (दूसरों के अनुसार मार्जार का अर्थ है विरालिका नाम की वनस्पति, उससे भावित बीजपूर-बिजौरा)। 'आहराहि'त्ति निरवद्यत्वात्। पृ० ६९२ अ। तथा देखिये रतिलाल एम शाह का भगवान् महावीर अने मासाहार (पाटण, १९५९), मुनि न्यायविजयजी, भगवान् महावीर नु औषधग्रहण (पाटण, १९५९)।

१. आगमोदय समिति द्वारा सन् १९१९ में प्रकाशित।

प्रकार की है। विभिन्न उदाहरणों, दृष्टान्तों और लोक मे प्रचलित कथाओ के द्वारा बड़े प्रभावशाली और रोचक ढग से यहाँ सयम, तप और त्याग का प्रतिपादन किया है। ये कथाये एक-एक बात को स्पष्ट समझाकर शनैः शनैः आगे बढ़ती है, इसलिये पुनरावृत्ति भी काफी हुई है। किसी वस्तु अथवा प्रसगविशेष का वर्णन करते हुए समासात पदावलि का भी उपयोग हुआ है जो सस्कृत लेखको की साहित्यिक छटा की याद दिलाता है। इसमें दो श्रुतस्कंध हैं। पहले श्रुतस्कंध में १६ अध्ययन है और दूसरे में १० वर्ग है। अभयदेव सूरि ने इस पर टीका लिखी है जिसे द्रोणाचार्य ने संशोधित किया है। इस अग की विविध वाचनाओ[1] का उल्लेख अभयदेव ने किया है।

पहला उत्क्षिप्त अध्ययन है। राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार राजमत्री के पद पर आसीन था। एक बार की बात है कि रानी धारिणी गर्भवती हुई। उसने एक शुभ स्वप्न देखा जो पुत्रोत्पत्ति का सूचक था। कुछ मास व्यतीत होने पर रानी को दोहद हुआ कि वह हाथी पर सवार होकर वैभार पर्वत पर विहार करे। दोहद पूर्ण होने पर यथासमय रानी ने पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम मेघकुमार रक्खा गया। नगर में खूब खुशियाँ मनाई गईं। बालक के जातकर्म आदि सस्कार संपन्न हुए। देश-विदेश की धात्रियो की गोद में पलकर बालक बड़ा होने लगा। आठ वर्ष का होने पर उसे कलाचार्य के पास पढ़ने भेजा गया और ७२ कलाओं[2] में वह निष्णात हो

१ किमपि स्फुटीकृतमिह स्फुटेऽप्यर्थंत ।
सकष्टमतिदेशतो विविधवाचनातोऽपि यत् ॥
नायाधम्मकहाओ की प्रशस्ति ।

२ ७२ कलाओं के लिये लिए देखिये समवायांग, पृष्ठ ७७ अ, ओवाइय सूत्र ४०, रायपसेणिय, सूत्र २११, जम्बुद्दीवपन्नत्ति टीका २, पृष्ठ १३६ इत्यादि, पडित बेचरदास, भगवान् महावीर नी धर्मकथाओ, पृष्ठ १९२ इत्यादि।

गया। युवा होने पर अनेक राजकन्याओ के साथ उसका पाणि-ग्रहण हुआ। एक बार, श्रमण भगवान् महावीर राजगृह में पधारे और गुणशिल चैत्य (गुणावा) में ठहर गये। मेघकुमार महावीर के दर्शनार्थ गया, और उनका धर्म श्रवण कर उसे प्रव्रज्या लेने की इच्छा हुई। मेघकुमार की माता ने जब यह समाचार सुना तो अचेत होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। होश मे आने पर उसने मेघकुमार को निर्ग्रंथ धर्म की कठोरता का प्रतिपादन करने वाले अनेक दृष्टांत देकर प्रव्रज्या ग्रहण करने से रोका, लेकिन मेघ-कुमार ने एक सुनी। आखिर माता-पिता को प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति देनी पड़ी। मेघकुमार ने पंचमुष्टि लोच किया और अब वे मुनिव्रतों का पालन करते हुए तप और संयम में अपना समय यापन करने लगे। साधु जीवन व्यतीत करते समय, कभी किसी अन्य साधु के आते-जाते हुए उन्हें हाथ-पैर सिकोड़ने पड़ते, और कभी किसी साधु का पैर उन्हें लग जाता, जिससे उनकी निद्रा मे बाधा होती। यह देखकर मेघकुमार को बहुत बुरा लगा। उन्होने अनगार धर्म छोड़कर गृहस्थ धर्म में वापिस लौट जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर महावीर भगवान् ने मेघकुमार के पूर्वभव की कथा सुनाई जिसे सुनकर वे धर्म में स्थिर हुए। अन्त में विपुल पर्वत पर आरोहण कर मेघकुमार ने संलेखना धारणा की और भक्त-पान का त्याग कर वे कालगति को प्राप्त हुए।

कथा के बीच में शयनीय, व्यायामशाला, स्नानगृह, उप-स्थानशाला, वर्षाऋतु, देश-विदेश की धात्रियाँ, राजभवन, शिविका और हस्तिराज आदि के साहित्यिक भाषा में सुदर वर्णन दिये हैं। इस प्रसंग पर मेघकुमार और उनकी माता के बीच जो संवाद हुआ, उसे सुनिये—

माता—नो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुञ्जाहि ताव जाया! विपुले माणुसस्स कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिण-

यवये वुड्ढियकुलवसततुकज्जंमि निरवएक्खे समणस्स अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मा-पियरो एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मो! जहेव णं तुमे ममं एवं वयह, 'तुमं सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते तं चेव जाव निरवएक्खे समणस्स जाव पव्वइस्ससि।' एवं खलु अम्मयाओ! माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसणसउवद्दवाभिभूए विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुयसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सब्भब्भरागसरिसे सुवि-णदसणोवमे सडणपडणविद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स-विप्पजहणिज्जे। से के ण जाणइ अम्मयाओ! के पुव्वि गमणाए के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भ-णुन्नाए समाणे समणस्स जाव पव्वइत्तए।

तए णं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

इमाओ ते जाया! सरिसियाओ सरित्तयाओ सरिव्वयाओ सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरिसेहितो रायकुलेहितो आणियल्लियाओ भारियाओ। त भुंजाहि णं जाया! एयाहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे। पच्छा भुत्तभोगे समणस्स जाव पव्वइस्ससिं।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरं एव वयासी—

तहेव णं अम्मयाओ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह— 'इमाओ ते जाया! सरिसियाओ जाव पव्वइस्ससि।' एवं खलु अम्म-याओ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वतासवा पित्ता-सवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरूव-मुत्तपुरीसपूयबहुपडिपुण्णा उच्चारपासवणखेलसिंघाणगवंतपित्त-सुक्कसोणियसंभवा अधुवा अणियत्ता असासया सडणपडणविद्धं-सणधम्मा पच्छा पुरं च णं अवस्सविप्पजहणिज्जा। से के णं अम्मयाओ! जाव पव्वइत्तए।

—माता—हे पुत्र! हम क्षणभर के लिये भी तुम्हारा वियोग

नही सह सकते। अतएव हे पुत्र! जब तक हम जीवित रहें, विपुल मानवीय कामभोगो का यथेष्ट उपभोग करो। तत्पश्चात् हमारी मृत्यु होने पर, परिणत वय मे, तुम्हारी वंश और कुल-परंपरा मे वृद्धि होने पर, संसार से उदासीन होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुंडित हो गृहस्थ धर्म को त्याग अनगार धर्म मे प्रव्रज्या ग्रहण करना।

मेघकुमार—तुमने कहा है कि संसार से उदासीन होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना, लेकिन हे माता! यह मनुष्य भव अध्रुव है, अनियत है, अशाश्वत है, सैकड़ो दुख और उपद्रवो से आक्रान्त है, विद्युत् के समान चंचल है, जल के बुद्बुदे के समान, कुश की नोक पर पड़े हुए जलबिंदु के समान, संध्या-कालीन राग के समान और स्वप्नदर्शन के समान क्षणभंगुर है, विनाशलील है, कभी न कभी इसका त्याग अवश्य ही करना पड़ेगा। ऐसी हालत में हे अम्मा! कौन जानता है कौन पहले मरे और कौन बाद में? अतएव आप लोगों की अनुमतिपूर्वक मैं श्रमण भगवान् महावीर के पादमूल मे प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं।

माता-पिता—देखो, ये तुम्हारी पत्नियाँ हैं। ये एक से एक बढ़कर लावण्यवती तथा रूप, यौवन और गुणों की आगार हैं, समान राजकुलों से ये आई हैं। अतएव इनके साथ विपुल कामभोगों का यथेष्ट उपभोग कर, उसके पश्चात् प्रव्रज्या ग्रहण करना।

मेघकुमार—आपने कहा है कि एक से एक बढ़कर लावण्यवती पत्नियों के साथ उपभोग करने के पश्चात् प्रव्रज्या ग्रहण करना, लेकिन हे माता-पिता! ये कामभोग अशुचि हैं, अशाश्वत हैं, वमन, पित्त, श्लेष्म, शुक्र, शोणित, मूत्र, पुरीप, पीप आदि से परिपूर्ण है, ये अध्रुव हैं, अनियत हैं, अशाश्वत हैं, तथा विनाशशील हैं, इसलिये कभी न कभी इनका त्याग अवश्य करना होगा। फिर हे माता-पिता! कौन जानता है कि पहले

कौन मरे और कौन बाद में ? अतएव आपकी अनुमतिपूर्वक मे प्रव्रज्या स्वीकार करना चाहता हूँ। आपलोग अनुमति दे।

निर्ग्रंथप्रवचन की दुर्धर्षता बताते हुए कहा है—

अहीव एगतदिट्ठीए, खुरो इव एगतधाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महानई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहि दुत्तरे, तिक्खं चकमियव्व, गरुअ लबेयव्व, असिधाराव्वय चरियव्व।

—इस प्रवचन में सर्प के समान एकांतदृष्टि और छुरे के समान एकांत धार रखनी होती है, लोहे के जौ के समान इसे चबाना पडता है। बालू के ग्रास के समान यह नीरस है, महानदी गंगा के प्रवाह के विरुद्ध तैरने तथा महासमुद्र को भुजाओ द्वारा पार करने की भाँति दुस्तर है, असिधाराव्रत के समान इसका आचरण दुष्कर है। (कायर, कापुरुष और क्लीबो का इसमे काम नही है)।

दूसरे अध्ययन का नाम संघाट है। राजगृह नगर में धन्य नामका एक सार्थवाह रहता था। भद्रा उसकी भार्या थी। देवदत्त उनका एक बालक था जिसे पंथक नामक दासचेट खिलाने के लिये बाहर ले जाया करता था। एक बार पथक राजमार्ग पर देवदत्त को खिला रहा था कि इतने में विजय चोर बालक को उठा ले गया। बहुत ढूँढ़ने पर भी जब बालक का पता न लगा तो नगर-रक्षकों को साथ ले धन्य ने नगर के पास के जीर्ण उद्यान मे प्रवेश किया। वहाँ पर बालक का शव एक कुँए में पड़ा मिला। नगर-रक्षको ने चोर का पीछा किया और उसे पकड़ कर जेल में डाल दिया। संयोगवश किसी अपराध के कारण धन्य को भी जेल हो गई और धन्य को भी उसी जेल में रक्खा गया। धन्य की स्त्री भद्रा अपने पति के वास्ते जेल में रोज़ खाने का डिब्बा (भोयणपिडग) भेजती, उसमें से विजय चोर और धन्य दोनों भोजन करते। कुछ समय बाद धन्य रिश्वत आदि देकर जेल से छूट गया और विजय चोर वहीं मर गया।

तीसरे अध्ययन का नाम अडक है। इसमें मयूरी के अंडों के दृष्टान्त द्वारा धर्मोपदेश दिया है। देवदत्ता नामकी गणिका का यहाँ सरस वर्णन है। मयूरपोषक मोर के बच्चों को नृत्य की शिक्षा दिया करते थे।

कूर्म नाम के चौथे अध्ययन मे दो कछुओ के दृष्टान्त द्वारा धर्मोपदेश दिया है।

पाँचवे अध्ययन का नाम शैलक है। इसमे मद्यपायी राजर्षि शैलक का आख्यान है। द्वारका नगरी के उत्तर-पश्चिम मे स्थित रैवतक पर्वत का वर्णन है। इस पर्वत के समीप नदन नामका एक सुन्दर वन था जहाँ सुरप्रिय नामका यक्षायतन था। भगवान् अरिष्टनेमि का आगमन सुनकर कृष्ण वासुदेव अपने दल-बल-सहित उनके दर्शन के लिये चले। थावच्चापुत्त ने अरिष्टनेमि का धर्म श्रवण कर दीक्षा ग्रहण की। उधर सोगधिया नगरी में शुक नामका एक परिव्राजक रहता था जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, षष्टितत्र और साख्यसिद्धांत का पंडित था। शौचमूलक धर्म का वह उपदेश देता था। इस नगरी का सुदर्शन श्रेष्ठि शुक परिव्राजक का अनुयायी था। बाद मे उसने शुक का शौचमूलक धर्म त्याग कर थावच्चापुत्त का विनय-मूलक धर्म अगीकार कर लिया। शुक परिव्राजक और थावच्चापुत्त में वाद-विवाद हुआ और शुक भी थावच्चापुत्त के धर्म का अनुयायी बन गया। कुछ समय बाद सेलगपुर के शैलक राजा ने अपने मंत्रियो के साथ शुक के समीप जाकर श्रमणदीक्षा ग्रहण की। लेकिन रूखा-सूखा, ठढा-बासी और स्वादरहित विकाल भोजन करने के कारण उसके सुखोचित सुकुमार शरीर में असह्य वेदना हुई। इस समय अपने पुत्र का आमंत्रण पाकर वह उसकी यानशाला में जाकर रहने लगा। वैद्य के उपदेश से उसने मद्य का सेवन किया। अन्त में बोध प्राप्त कर के पुंडरीक पर्वत पर तप करते हुए उसने सिद्धि पाई।

छठे अध्ययन में तुंबी के दृष्टान्त से जीव की ऊर्ध्वगति का निरूपण किया है।

सातवे अध्ययन का नाम रोहिणी है। राजगृह नगर के धन्य सार्थवाह के चार पतोहुएँ थी जिनके नाम थे—उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी। एक बार धन्य ने उनकी परीक्षा ली और उनकी योग्यतानुसार उन्हें घर का काम-काज सौंप दिया। उज्झिका को घर के झाड़ने-पोछने, भोगवती को घर की रसोई बनाने, रक्षिता को घर के माल-खजाने की देखभाल करने का काम सौंपा और रोहिणी को सारे घर की मालकिन बना दिया।[1]

आठवें अध्ययन में मल्ली की कथा है। मल्ली विदेहराजा की कन्या थी। पूर्व जन्म में उसने स्त्री नामगोत्र और तीर्थंकर नामगोत्र कर्म का बंध किया था जिससे उसे तीर्थंकर पद की प्राप्ति हुई। यहाँ तालजंघ पिशाच का विस्तृत वर्णन किया गया है। लोग इन्द्र, स्कध, रुद्र, शिव, वैश्रमण, नाग, भूत, यक्ष, अज्जा, और कोट्टकिरिया[2] की पूजा-उपासना किया करते थे। यहाँ सुवर्णकार श्रेणी और चित्रकार श्रेणी का उल्लेख है। चोक्खा नाम की परिव्राजिका शौचमूलक धर्म का उपदेश देती थी। अगडदर्दुर (कूपमंडूक) और समुद्रदर्दुर का सरस संवाद दिया गया है। मल्ली ने पंचमुष्टि लोच करके श्रमण-दीक्षा स्वीकार की और संमेदशैल (आधुनिक पारसनाथ हिल) शिखर पर पादोपगमन धारण कर सिद्धि पाई।

नौवे अध्ययन में जिनपालित और जिनरक्षित नामके माकंदीपुत्रो की कथा है। आँधी-तूफान आने पर समुद्र में जहाज के डूबने का उत्प्रेक्षाओ से पूर्ण सुन्दर वर्णन है। नारियल के

१. प्रोफेसर लॉयमन ने अपनी जर्मन पुस्तक 'बुद्ध और महावीर' (नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल द्वारा गुजराती में अनूदित) में बाइबिल की मेथ्यू और ल्यूक की कथा के साथ इसकी तुलना की है।

२. विस्तार के लिए देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ २१५–२२५।

तेल का उल्लेख है। रत्नद्वीप में अश्वरूप-धारी एक यक्ष रहता था।[1]

दसवें अध्ययन में चन्द्रमा की हानि-वृद्धि का दृष्टान्त देकर जीवों की हानि-वृद्धि का प्ररूपण किया है।

ग्यारहवें अध्ययन का नाम दावद्दव है। दावद्दव एक प्रकार के सुन्दर वृक्षों का नाम है जो समुद्रतट पर होते थे। झंझावात चलने पर इस वृक्ष के पत्ते झड़ जाते थे। वृक्ष के दृष्टान्त द्वारा श्रमणों को उपदेश दिया गया है।

बारहवें अध्ययन में परिखा के जल के दृष्टान्त से धर्म का निरूपण किया है। चातुर्याम धर्म का यहाँ उल्लेख है।

तेरहवें अध्ययन मे दर्दुर (मेंढक) की कथा है। राजगृह नगर में नंद नामका एक मणिकार (मनियार) श्रेष्ठी रहता था। उसने वैभार पर्वत के पास एक पुष्करिणी[2] खुदवाई और उसके चारों ओर चार बगीचे लगवाये। पूर्व दिशा के बगीचे में उसने एक चित्रसभा, दक्षिण दिशा के बगीचे में एक महानसशाला (रसोईशाला), पश्चिम दिशा के बगीचे मे एक चिकित्सालय और उत्तर दिशा के बगीचे में एक अलंकारियसभा (जहाँ नाई हजामत आदि बनाकर शरीर का अलकार करते हों—सैलून) बनवाई। अनेक राहगीर, तृण ढोने वाले, लकड़ी ढोनेवाले, अनाथ, भिखारी आदि इन शालाओं से पर्याप्त लाभ उठाते। एक बार नंद श्रेष्ठी बीमार पड़ा और अनेक औषधोपचार करने पर भी अच्छा न हुआ। मर कर वह उसी पुष्करिणी में मेंढक हुआ। कुछ दिन बाद राजगृह में महावीर का समवशरण आया और यह मेंढक उनके दर्शनार्थ चला। लेकिन मार्ग में

१ मिलाइये वलाहस्स जातक (१९६) के साथ। दिव्यावदान में भी यह कथा आती है।

२ बिहार का प्रदेश आजकल भी पुष्करिणियों (पोखरों) से सम्पन्न है, पोखर खुदवाना यहाँ परम धर्म माना जाता है।

राजा श्रेणिक के एक घोड़े के पाँव के नीचे आकर कुचला गया। मर कर वह स्वर्ग मे गया।

चौदहवे अध्ययन का नाम तेयली है। तेयलिपुर में तेयलिपुत्र नामका एक मंत्री रहता था। उसी नगर मे मूषिकारदारक नाम का एक सुनार था। पोट्टिला नामकी उसकी एक सुन्दर कन्या थी। तेयलिपुत्र और पोट्टिला का विवाह हो गया। कुछ समय बाद तेयलिपुत्र को अपनी पत्नी प्रिय न रही और वह उसके नाम से भी दूर भागने लगा। एक बार तेयलिपुर मे सुव्रता नामकी एक आर्या का आगमन हुआ। पोट्टिला ने उससे किसी वशीकरण मत्र अथवा चूर्ण आदि की याचना की, लेकिन आर्या ने अपने दोनो कानो को अपनी उँगलियो से बन्द करते हुए पोट्टिला को इस तरह की बात भी ज़बान पर न लाने का आदेश दिया। पोट्टिला ने श्रमणधर्म मे प्रव्रज्या ग्रहण कर देवगति प्राप्त की।

पन्द्रहवे अध्ययन का नाम नंदीफल है। अहिच्छत्रा नगरी (आधुनिक रामनगर, बरेली जिला) में कनककेतु नाम का राजा राज्य करता था। एक बार वह विविध प्रकार का माल-असबाब अपनी गाड़ियो मे भर कर अपने सार्थ के साथ बनिज-व्यापार के लिये रवाना हुआ। मार्ग में उसने नदीफल वृक्ष देखे। कनककेतु ने सार्थ के लोगो को उन वृक्षों से दूर ही रहने का आदेश दिया। फिर भी कुछ लोग इसकी परवा न कर उन वृक्षो के पास गये और उन्हे अपने जीवन से वचित होना पड़ा।

सोलहवे अध्ययन का नाम अवरकंका है। चंपा नगरी में तीन ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रियो के नाम थे क्रमशः नागसिरी, भूयसिरी और जक्खसिरी। एक बार नागसिरी ने धर्मघोष नाम के स्थविर को कडुवी लौकी का साग बना कर उनके भिक्षापात्र में डाल दिया जिसे भक्षण कर उनका प्राणान्त हो गया। जब उसके घर के लोगो को यह ज्ञात हुआ तो नागसिरी पर बहुत डाट-फटकार पड़ी और उसे घर से निकाल दिया गया। मर कर वह

नरक में गई। अगले जन्म मे उसने चम्पा के एक सार्थवाह के घर जन्म ग्रहण किया। सुकुमालिया उसका नाम रक्खा गया। बडी होने पर जिनदत्त के पुत्र सागर से उसका विवाह हो गया और सागर घर-जमाई बन कर रहने लगा। लेकिन कुछ ही समय बाद सागर सुकुमालिया के अगरपर्श को सहन न कर सकने के कारण उसे छोड़ कर चला गया। अन्त मे सुकुमालिया ने गोपालिका नामकी आर्या के समक्ष उपस्थित होकर प्रव्रज्या अगीकार कर ली। कालक्रम से सुकुमालिया मना किये जाने पर भी अपने संघ से अलग रहने लगी। वह पुन पुन अपने हाथ, पॉव, मुँह, सिर आदि धोने मे समय-यापन करती। मर कर वह स्वर्ग में देवी हुई। अगले जन्म मे वह द्रुपद राजा के घर द्रौपदी के रूप में पैदा हुई। उसका स्वयवर रचाया गया और पॉच पॉडवो के साथ उसका विवाह हुआ। उसने पंडुसेन को जन्म दिया। अत में द्रोपदी ने प्रव्रज्या ग्रहण की और ग्यारह अगो का अध्ययन करती हुई, तप-उपवास मे समय व्यतीत करने लगी।

सत्रहवे अध्ययन में कालियद्वीप के[1] सुंदर अश्वों का वर्णन है। अश्व के दृष्टांत द्वारा धर्मोपदेश देते हुए कहा है कि साधु स्वच्छन्दविहारी अश्वो के समान विचरण करते हैं। जैसे शब्द आदि से आकृष्ट न होकर अश्व पाशबधन मे नही पकड़े जाते, उसी तरह विपयो के प्रति उदासीन साधु भी कर्मों द्वारा नही बँधते।

अठारहवें अध्ययन में सुसुमा की कथा है। एक बार विजय-नामक चोर-सेनापति सुसुमा को उठाकर ले गया। नगर-रक्षको ने उसका पीछा किया। लेकिन चोर ने सुसुमा का सिर काटकर उसे कुएँ में फेक दिया और स्वय जगल मे भाग गया। सुसुमा का पिता भी अपने पुत्रों के साथ नगर-रक्षको के साथ आया

---

१ डॉक्टर मोतीचन्द ने इसकी पहचान जजावार से की है, सार्थवाह, पृ० १७२।

था। भूख-प्यास के कारण जब वह अत्यंत व्याकुल होने लगा और चलने तक में असमर्थ हो गया तो अपनी मृत पुत्री के मांस का भक्षण कर उसने अपनी क्षुधा शान्त की[1]।

उन्नीसवे अध्ययन में पुडरीक राजा की कथा है। पुंडरीक के छोटे भाई का नाम कंडरीक था। कडरीक ने स्थविरो से धर्मोपदेश सुना और प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। लेकिन कडरीक रूखा-सूखा भोजन करने और कठोर व्रत पालने के कारण अनगारधर्म में न टिक सका, और उसने पुन· गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया।

उवासगदसाओ (उपासकदशा)

उपासकदशा के दस अध्ययनो मे महावीर के दस उपासको के आचार का वर्णन है, इसलिये इसे उवासगदसाओ भी कहा जाता है।[2] वर्णन मे विविधता कम है। धर्म में उपासकों की श्रद्धा-भक्ति रखने के लिये इस अग की रचना की गई है। अभयदेव ने इस पर टीका लिखी है।

पहले अध्ययन मे वाणियगाम[3] के धनकुबेर आनद उपासक की कथा है। वाणियगाम के उत्तरपश्चिम मे कोल्लाक संनिवेश (आधुनिक कोल्हुआ) था जहॉ आनन्द के अनेक सगे-सबधी रहा करते थे। एक बार वाणियगाम में महावीर का आगमन हुआ। आनन्द ने उनकी वदना कर बारह व्रत स्वीकार किये। उसने धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, खाद्य· गध, वस्त्र आदि

---

१ संयुत्तनिकाय (२, पृ० ९७) में भी मृत कन्या के मास को भक्षण करके जीवित रहने का उल्लेख है।

२. आगमोदयसमिति बबई द्वारा १९२० में प्रकाशित। होएर्नल ने इसे बिब्लोथिका इंडिका, कलकत्ता से १८८५-८८ में अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया है।

३. इसकी पहचान मुज़फ्फरपुर जिले में बसाढ (वैशाली) के पास के बनिया नामक गाँव से की जाती है।

अनेक वस्तुओं के भोगोपभोग का किंचित् परिमाण किया, तथा अंगारकर्म, वनकर्म, दंतवाणिज्य, विषवाणिज्य, यंत्रपीडनकर्म आदि पन्द्रह कर्मदानों का त्याग किया।[1] अन्य तीर्थिकों का सम्मान करना और भिक्षा आदि से उनका सत्कार करना छोड़ दिया। अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुंब का भार सौंपकर वह कोल्लाक सन्निवेश की ज्ञातृक्षत्रियों की पौषधशाला में जाकर श्रमण भगवान् महावीर के धर्म का पालन करने लगा। तपश्चर्या के कारण उसका शरीर कृश हो गया और भक्त-पान का प्रत्याख्यान करके संलेखनापूर्वक वह समय यापन करने लगा। गृहस्थ अवस्था में ही आनन्द को अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई। मर कर वह स्वर्ग में देव हुआ।

दूसरे अध्ययन में कामदेव उपासक की कथा है। यहाँ एक पिशाच का विस्तृत वर्णन है जिसने कामदेव को अपने व्रत से डिगाने के लिये अनेक प्रकार के उपद्रव किये। जब वह अपने उद्देश्य में सफल न हुआ तो कामदेव की स्तुति करने लगा। महावीर भगवान् ने भी कामदेव की प्रशंसा की और उन्होंने श्रमण निर्ग्रंथों को बुलाकर उपसर्गों को शांतिपूर्वक सहन करने का आदेश दिया।

---

१. आजीविक मतानुयायियों के लिये भी इनके त्याग का विधान है। इस सम्प्रदाय की विशेष जानकारी के लिये देखिये होएर्नल का एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन एण्ड एथिक्स (जिल्द १, पृ २५९-६८) में 'आजीविकाज़' नामक लेख, डॉक्टर बी एम बरुआ, 'द आजीविकाज़', 'प्री-बुद्धिस्ट इण्डियन फिलासफी' पृष्ठ २९७ ३१८, डॉक्टर बी सी लाहा, हिस्टौरिकल ग्लीनींग्ज़, पृष्ठ ३७ इत्यादि, ए एल बाशम, हिस्ट्री एण्ड डॉक्ट्रीन्स ऑव द आजीविकाज़, जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड इन जैन कैनन्स, पृष्ठ २०७-११, जगदीशचन्द्र जैन, संपूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रंथ में 'मंखलिपुत्र गोशाल और ज्ञातृपुत्र महावीर' नामक लेख।

तीसरे अध्ययन में वाराणसी के चुलणीपिता गृहपति की कथा है। चुलणीपिता को भी देवजन्य उपसर्ग सहन करना पड़ा। चुलणीपिता अपना ध्यान भग कर उस पिशाच को पकड़ने के लिये दौड़ा। इस समय उसकी माता ने उसे समझाया और भग्न व्रतो का प्रायश्चित्त करके फिर से धर्मध्यान में लीन होने का उपदेश दिया।

चौथे अध्ययन में सुरादेव गृहपति की कथा है। यहाँ भी देव उपसर्ग करता है।

पाँचवें अध्ययन में चुल्लशतक की कथा है।

छठे अध्ययन में कुंडकोलिक श्रमणोपासक की कथा है। मखलिगोशाल की धर्मप्रज्ञप्ति को महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया गया, लेकिन कुंडकोलिक ने इस बात को स्वीकार न किया।

सातवे अध्ययन में पोलासपुर के आजीविकोपासक सद्दालपुत्र कुभकार की कथा है। नगर के बाहर सद्दालपुत्र की पाँच सौ दुकाने थी। वह महावीर के दर्शनार्थ गया और उसने उन्हें निमत्रित किया। गोशाल के नियतिवाद के संबंध में दोनों में चर्चा हुई जिसके फलस्वरूप सद्दालपुत्र ने आजीविकों का धर्म त्यागकर महावीर का धर्म स्वीकार कर लिया। सद्दालपुत्र की भार्या ने भी महावीर के बारह व्रतो को अगीकार किया। बाद में मखलिगोशाल ने महावीर से भेट की। महावीर को यहाँ महाब्राह्मण, महागोप, महासार्थवाह, महाधर्मकथक और महानियमिक शब्दो द्वारा सबोधित किया है।

आठवे अध्ययन में महाशतक गृहपति की कथा है। महाशतक के अनेक पत्नियाँ थी। रेवती उनमें मुख्य थी। रेवती अपनी सौतों को मार डालने के षड्यत्र में सफल हुई। वह बड़ी मासलोलुप थी। महाशतक का धर्मध्यान में समय बिताना उसे बिलकुल पसन्द न था, इसलिये वह प्रायः उसकी धर्म-

प्रवृत्तियों में विघ्न उपस्थित किया करती। लेकिन महाशतक अन्ततक अपने व्रत से न डिगा।

नौवे अध्याय में नंदिनीपिता और दसवे में सालिहीपिता की कथा है।

अन्तगडदसाओ (अन्तकृद्दशा)

संसार का अन्त करनेवाले केवलियों का कथन होने से इस अग को अन्तकृद्दशा कहा गया है।[1] जैसे उपासकदशा में उपासकों की कथाये हैं, वैसे ही इसमें अर्हतो की कथाये हैं। इस अंग की कथाये भी प्राय एक जैसी शैली में लिखी गई हैं। कथा के कुछ अंश का वर्णन कर शेष को 'वण्णओ जाव' (वर्णक. यावत्) आदि शब्दों द्वारा व्याख्याप्रज्ञप्ति अथवा ज्ञातृधर्मकथा आदि की सहायता से पूर्ण करने के लिये कहा गया है। कृष्ण-वासुदेव की कथा यहाँ आती है। अर्जुनक माली की कथा रोचक है। उपासकदशा की भाँति इस अंग मे भी दस अध्ययन होने चाहिये, लेकिनहैं इसमें आठ वर्ग (अध्ययनो के समूह)। स्थानांगसूत्र मे इस अग के विषय का जो वर्णन दिया है उससे प्रस्तुत वर्णन बिलकुल भिन्न है। अभयदेवसूरि ने इस पर टीका लिखी है।

पहले वर्ग में दस अध्ययन हैं, जिनमें गोयम, समुद्द, सागर आदि का वर्णन है। पहले अध्ययन मे सिद्धि प्राप्त करनेवाले गोयम की कथा है। द्वारका नगरी के उत्तर-पूर्व मे रैवतक नाम का पर्वत था, उसमें सुरप्रिय नामक एक यक्षायतन था। द्वारका

---

१. एम डी. बारनेट ने इसे और अनुत्तरोववाइय को १९०७ में अंग्रेजी अनुवाद के साथ लदन से प्रकाशित किया है, एम. सी. मोदी का अनुवाद अहमदाबाद से १९३२ मे प्रकाशित हुआ है। अखिलभारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन शास्त्रोद्धारक समिति राजकोट से १९५८ में हिन्दी-गुजराती अनुवाद सहित इसका एक और सस्करण निकला है।

में कृष्णवासुदेव राज्य करते थे। अंधगवण्ही भी यहीं रहते थे। उनके गोयम नाम का पुत्र हुआ जिसने अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण कर शत्रुञ्जय पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की।

दूसरे वर्ग में आठ अध्ययन हैं। तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में अणीयस का आख्यान है। भद्रिलपुर नगर (हजारीबाग जिले में कुलुहा पहाडी के पास भदिया नाम का गॉव) में नाग गृहपति की सुलसा नामक भार्या से अणीयस का जन्म हुआ था। शत्रुंजय पर्वत पर जाकर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। नौवे अध्ययन में हरिणगमेषी द्वारा सुलसा के गर्भपरिवर्तन किये जाने का उल्लेख है। देवकी के गजसुकुमाल नामक पुत्र का जन्म हुआ। उसने सोमिल ब्राह्मण की सोमश्री कन्या से विवाह किया। कुछ समय बाद गजसुकुमाल ने अरिष्टनेमि से श्रमणदीक्षा ग्रहण कर ली। सोमिल ब्राह्मण को यह अच्छा न लगा। एक बार गज-सुकुमाल जब श्मशान में ध्यानावस्थित हो कायोत्सर्ग मे खड़े थे तो सोमिल ने क्रोध में आकर उनके शरीर को जला दिया। इससे गजसुकुमाल के शरीर में अत्यन्त वेदना हुई, किन्तु बड़े शान्तभाव से उन्होंने उसे सहन किया। केवलज्ञान प्राप्त करके उन्होने सिद्ध गति पाई।

चौथे और पॉचवे वर्गों में दस-दस अध्ययन हैं। पॉचवे वर्ग के पहले अध्ययन मे पद्मावती की कथा है। द्वीपायन ऋषि के कोप के कारण द्वारका नगरी के विनष्ट हो जाने पर जब कृष्ण-वासुदेव दक्षिण मे पाडुमथुरा (आधुनिक मदुरा) की ओर प्रस्थान कर रहे थे, तो मार्ग मे जराकुमार के बाण से आहत होने पर उनकी मृत्यु हो गई और मर कर वे नरक में गये।[1] रानी पद्मावती ने अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ग्रहण की।

छठे वर्ग मे सोलह अध्ययन है। राजगृह में अर्जुनक नाम का एक मालाकार रहता था। उसकी भार्या का नाम बन्धुमती था।

---

१ घटजातक में वासुदेव, बलदेव, कण्हदीपायन और द्वारवती की कथा आती है।

नगर के बाहर पुष्पो का एक सुन्दर बगीचा था, जहाँ मोग्गरपाणि (मुद्गर हाथ में लिये हुए) यक्ष का एक आयतन था। इसमें हाथ में लोहे की एक मुद्गर धारण किये हुए मोग्गरपाणि यक्ष की काष्ठमय प्रतिमा थी। अर्जुनक प्रतिदिन पुष्पाराम से सुन्दर पुष्प चुनकर अपनी टोकरी में लाता। सबसे पहले वह यक्षायतन मे जाकर पुष्पों द्वारा यक्ष की अर्चना करता, फिर राजमार्ग पर बैठ कर पुष्पो को बेचता। एक बार वह अपनी भार्या के साथ बगीचे में पुष्प चुन रहा था कि नगर की गोष्ठी के छह गुण्डो (गोट्ठिल) ने उसकी भार्या को पकड लिया और उसके साथ दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गये। अर्जुनक को जब यह पता लगा तो उसे बडा दुख हुआ कि मोग्गरपाणि यक्ष की मौजूदगी में मेरी स्त्री के साथ ऐसा दुष्कृत्य किया गया। उसे यक्ष के ऊपर बड़ा गुस्सा आया। वह यक्ष को लकड़ी का ठूँठमात्र कहकर उसका अपमान करने लगा। उसके बाद यक्ष अर्जुनक के शरीर मे प्रविष्ट हो गया और अर्जुनक नगरवासियो को अपनी लोहे की मुद्गर से मारता-पीटता भ्रमण करने लगा। अन्त मे अर्जुनक ने श्रमण भगवान् महावीर के पास पहुँचकर प्रव्रज्या अंगीकार कर सिद्धि पाई। अइमुत्त-कुमार ने बाल्य अवस्था में प्रव्रज्या ग्रहण की। आठवे वर्ग मे अनेक व्रत, उपवास और तपों का उल्लेख है।

अणुत्तरोववाइयदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशा)

अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होनेवाले विशिष्ट पुरुषो का आख्यान होने के कारण इस अग को अनुत्तरोपपातिकदशा कहा है। उपासकदशा और अन्तकृद्दशा की भाँति इसमें भी प्राचीन काल में दस अध्याय थे, लेकिन अब कुल तीन वर्ग रह गये हैं। सर्वत्र एक ही शैली मे प्राय: पादोपगमन द्वारा किसी पर्वत पर देह त्यागकर सिद्धि पाने का उल्लेख है। ये उक्त तीनों ही आगम साहित्य आदि की दृष्टि से सामान्य कोटि में आते हैं। अभयदेव ने इस पर टीका लिखी है। पहले वर्ग मे दस, दूसरे

मे तेरह और तीसरे में दस अध्ययन हैं। तीसरे वर्ग के प्रथम अध्याय में धन्य अनगार की तपस्या का वर्णन है—

धण्णो ण अणगारे ण सुक्केण पायजघोरुणा, विगयतडिकरालेणं कडिकडाहेण पिट्ठिमस्सिएणं उदरभायणेणं, जोइज्जमाणेहि पासुलियकडाएहि, अक्खसुत्तमाला विव गणेज्जमाणेहि पिट्ठिकरंडगसधीहि, गगातरंगभूएण उरकडगदेसभाएण, सुक्कसप्पसमाणेहि बाहाहि, सिढिलकडाली विव लबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कपमाणवाइए विव वेवमाणीए सीसघडीए, पव्वायवयणकमले उब्भडघडमुहे, उब्बुड्डणयणकोसे, जीवंजीवेण गच्छइ, जीवंजीवेण चिट्ठइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलाइ, से जहानामए इगालसगडिया इ वा (जहा खंदओ तहा) (जाव) हुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णे तवेणं तेएणं तवतेएसिरीए उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

—उसके पाद, जघा और ऊरु सूखकर रूक्ष हो गये थे, पेट पिचक कर कमर से जा लगा था और दोनों ओर से उठा हुआ विकराल कढ़ाई के समान हो गया था, पसलियाँ दिखाई दे रही थी, पीठ की हड्डियाँ अक्षमाला की भाँति एक-एक करके गिनी जा सकती थी, वक्षःस्थल की हड्डियाँ गंगा की लहरो के समान अलग-अलग दिखाई पड़ती थीं, भुजाये सूखे हुए सर्प की भाँति कृश हो गई थीं, हाथ घोड़े के मुँह पर बाँधने के तोबरे की भाँति शिथिल होकर लटक गये थे, सिर वातरोगी के समान काँप रहा था, मुख मुरझाये हुए कमल की भाँति म्लान हो गया था और घट के समान खुला हुआ होने से बड़ा विकराल प्रतीत होता था, नयनकोश अन्दर को धँस गये थे, अपनी आत्मशक्ति से ही वह उठ-बैठ सकता था, बोलते समय उसे मूर्च्छा आ जाती थी, राख से आच्छन्न अग्नि की भाँति अपने तप और तेज द्वारा वह शोभित हो रहा था।[1]

---

१ मज्झिमनिकाय के महासीहनादसुत्त में बुद्ध भगवान् ने इसी प्रकार की अपनी पूर्व तपस्याओं का वर्णन किया है, तथा देखिये बोधिराजकुमारसुत्त, दीघनिकाय, कस्सपसीहनादसुत्त।

पण्हवागरणाइं (प्रश्नव्याकरण)

प्रश्नव्याकरण को पण्हवागरणदसा अथवा वागरणदसा के नाम से भी कहा गया है।[1] प्रश्नों के उत्तर (वागरण) रूप में होने के कारण इसे पण्हवागरणाइं नाम दिया गया है, यद्यपि वर्तमान सूत्र में कहीं भी प्रश्नोत्तर नहीं हैं, केवल आस्रव और संवर का वर्णन मिलता है। स्थानांग और नन्दीसूत्र में जो इस आगम का विषय-वर्णन दिया है, उससे यह बिलकुल भिन्न है। नन्दी के अनुसार इसमें प्रश्न, अप्रश्न, प्रश्नाप्रश्न और विद्यातिशय आदि की चर्चा है जो यहाँ नहीं है। स्पष्ट है कि मूल सूत्र विच्छिन्न हो गया है। इसमें दो खंड हैं। पहले में पाँच आस्रवद्वार और दूसरे में पाँच संवरद्वारों का वर्णन है। अभयदेव ने इस पर टीका लिखी है जिसका संशोधन निर्वृतिकुल के द्रोणाचार्य ने किया था। नयविमल ने भी इस पर टीका लिखी है।

पहले खण्ड के पहले द्वार में प्राणवध का स्वरूप बताया है। त्रस-स्थावर जीवों का वध करने से या उन्हें कष्ट पहुँचाने से हिंसा का पाप लगता है। हिंसकों में शौकरिक (सूअर का शिकार करनेवाले), मच्छबंध (मच्छीमार), शाकुनिक (चिड़ीमार), व्याध, वागुरिक (जाल लगाकर जीव-जन्तु पकड़नेवाले) आदि का उल्लेख है। शक, यवन, बब्बर, मुरुंड, पक्कणिय, पारस, दमिल, पुलिंद, डोंब, मरहट्ठ आदि म्लेच्छ[2] जातियों के नाम गिनाये हैं। फिर आयुधों के नाम हैं। दूसरे द्वार में मृषावाद का विवेचन है। मृषावादियों में जुआरी, गिरवी रखनेवाले, कपटी, वणिक्, हीन-अधिक तोलनेवाले, नकली

---

१ अभयदेव की टीका के साथ १९१९ में आगमोदय समिति द्वारा बंबई से प्रकाशित; अमूल्यचन्द्रसेन, ए क्रिटिकल इन्ट्रोडक्शन टु द पण्हवागरणम्, वुर्जबर्ग, १९३६।

२. इन जातियों के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेंट इंडिया ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन्स, पृष्ठ ३५८-६६।

मुद्रा बनानेवाले, और कपटी साधुओ आदि का उल्लेख है। यहाँ नास्तिकवादी, वामलोकवादी, असद्भाववादी आदि के मतों का विवेचन है। तीसरे अदत्तादान नामक द्वार मे बिना दी हुई वस्तु के ग्रहण करने का विवेचन है। हस्तलाघव (हाथ की सफाई) को अदत्तादान का एक प्रकार कहा गया है। चोरी करनेवालो में तस्कर, साहसिक, ग्रामघातक, ऋणभजक (ऋण नही चुकानेवाले), राजदुष्टकारी, तीर्थभेदक, गोचोरक आदि का उल्लेख है। सग्राम तथा अनेक प्रकार के आयुधो के नाम गिनाये गये हैं। परद्रव्य का अपहरण करनेवाले जेलो में विविध बधनो आदि द्वारा किस प्रकार यातना भोगते है,[1] इसका विस्तृत वर्णन है। चौथे द्वार मे अब्रह्म का विवेचन है। इसे ग्रामधर्म भी कहा है। अब्रह्मसेवन करनेवाले विषयभोगो की तृप्ति हुए बिना ही मरणधर्म को प्राप्त करते हैं। यहाँ भोगोपभोग-सबधी हाथी, घोड़ा, बहुमूल्य वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, आभूषण, वाद्य, मणि, रत्न आदि राजवैभव का वर्णन है। तत्पश्चात् माडलिक राजा व युगलिको का वर्णन किया गया है। सीता, द्रौपदी, रुक्मिणी, पद्मावती, तारा, काचना (कुछ लोग रानी चेलना को ही काचना कहते है), रक्तसुभद्रा, अहल्या आदि स्त्रियो की प्राप्ति के लिये युद्ध किये जाने का उल्लेख है। पाँचवे द्वार में परिग्रह का कथन है। परिग्रह का सचय करने के लिये लोक अनेक प्रकार के शिल्प और कलाओं का अध्ययन करते हैं, असि, मसि, वाणिज्य, अर्थशास्त्र और धनुर्विद्या का अभ्यास करते हैं और वशीकरण आदि विद्याये सिद्ध करते हैं। लोभ परिग्रह का मूल है।

दूसरे खंड के पहले द्वार मे अहिसा का विवेचन है। अहिसा को भगवती कहा है। यहाँ साधु के योग्य निर्दोष भिक्षा के

---

१. मज्झिमनिकाय के महादुक्खखध में दड के अनेक प्रकार बताये हैं।

नियम बताये गये हैं। अहिंसाव्रत की पाँच भावनाओं का विवेचन है। दूसरे द्वार में सत्य की व्याख्या है। सत्य के प्रभाव से मनुष्य समुद्र को पार कर लेता है और अग्नि भी उसे नही जला सकती। सत्यव्रत की पाँच भावनाओ का विवेचन है। तीसरे द्वार से दत्त-अनुज्ञात नामके तीसरे सवर का विवेचन है। पीठ, पाट, शय्या आदि ग्रहण करने के सबध में साधुओं के नियमो का उल्लेख है। व्रत की पाँच भावनाओ का विवेचन है। दशमशक के उपसर्ग के संबंध मे कहा है कि दशमशक के उपद्रव से साधुओ को क्षुब्ध नही होना चाहिए और डॉस-मच्छरो को भगाने के लिये धूआँ आदि नही करना चाहिये। चौथे द्वार में ब्रह्मचर्य का विधान है। इस व्रत का भग होने पर व्रती विनय, शील, तप और नियमो से च्युत हो जाता है, और ऐसा लगता है जैसे कोई घडा भग्न हो गया हो, दही को मथ दिया गया हो, आटे का बुरादा बन गया हो, जैसे कोई कॉटों से बिध गया हो, पर्वत की शिला टूटकर गिर पड़ी हो और कोई लकड़ी कटकर गिर गई हो। ब्रह्मचर्य का प्रतिपादन करने के लिये बत्तीस प्रकार की उपमाये दी गई हैं। ब्रह्मचर्य व्रत की पॉच भावनाओ का विवेचन है। स्त्रियो के ससर्ग से सर्वथा दूर रहने का विधान है। पॉचवे द्वार मे अपरिग्रह का विवेचन है। साधु को सर्व पापों से निवृत्त होकर मान-अपमान और हर्ष-विषाद मे समभाव रखते हुए कॉसे के पात्र की भॉति स्नेहरूप जल से दूर, शख की भॉति निर्मल-चित्त, कछुए की भॉति गुप्त, पोखर मे रहनेवाले पद्मपत्र की भॉति निर्लेप, चन्द्र की भॉति सौम्य, सूर्य की भॉति प्रदीप्त और मेरु पर्वत की भॉति अचल रहने का विधान है।

विवागसुय (विपाकश्रुत)

पाप और पुण्य के विपाक का इसमें वर्णन होने से इसे विपाकश्रुत कहा गया है।[1] स्थानाग सूत्र में इसे कम्मविवाय-

१ अभयदेव की टीका सहित वि. सं १९२२ में बड़ौदा से प्रकाशित

दसाओ नाम से कहा है। स्थानागसूत्र के अनुसार उवासगदसाओ, अतगडदसाओ, अगुत्तरोववाइयदसाओ और पण्हवागरणदसाओ की भाँति इसमे भी दस अध्ययन होने चाहिये, लेकिन है इसमें बीस। इसमे दो श्रुतस्कध है—दुखविपाक और सुखविपाक। दोनो मे दस-दस अध्ययन हैं। गौतम गणधर बहुत से दुखी लोगों को देखकर उनके सबध में महावीर से प्रश्न करते हैं और महावीर उनके पूर्वभवो का वर्णन करते हैं। अभयदेव सूरि ने इस पर टीका लिखी है। प्रद्युम्नसूरि की भी टीका है।

प्रथम श्रुतस्कंध के पहले अध्ययन में मियापुत्त की कथा है। मियापुत्त विजय क्षत्रिय का पुत्र था जो जन्म से अन्धा, गूँगा और बहरा था, उसके हाथ, पैर, कान, आँख और नाक की केवल आकृतिमात्र दिखाई देती थी। उसकी माँ उसे भौंतले में भोजन खिलाती थी। एक बार गौतम गणधर महावीर की अनुज्ञा लेकर मियापुत्त को देखने के लिये उसके घर गये। तत्पश्चात् गौतम के प्रश्न करने पर महावीर ने मियापुत्त के पूर्वभव का वर्णन किया। पूर्वजन्म मे मियापुत्त इक्काई नाम का रट्ठकूड (राठौर) था जो ग्रामवासियो से बड़ी क्रूरता से कर आदि वसूल कर उन्हें कष्ट देता था। एक बार वह व्याधि से पीड़ित हुआ। एक से एक बढ़कर अनेक वैद्यों ने उसकी चिकित्सा की, किन्तु कोई लाभ न हुआ। मर कर उसने विजय क्षत्रियँ के घर जन्म लिया।

दूसरे अध्ययन में उज्झिय की कथा है। उज्झिय वाणियगाम के विजयमित्र सार्थवाह का पुत्र था। गौतम गणधर वाणियगाम में भिक्षा के लिये गये। वहाँ उन्होने हाथी, घोड़े और बहुत से पुरुषों का कोलाहल सुना। पता लगा कि राजपुरुष किसी की मुश्के बाँध कर उसे मारते-पीटते हुए लिये जा रहे हैं। गौतम के

प्रोफेसर ए. टी. उपाध्ये ने अंग्रेजी अनुवाद किया है जो बेलगाँव से १९३५ में प्रकाशित हुआ है।

प्रश्न करने पर महावीर ने उसके पूर्वभव का वर्णन किया। हस्तिनापुर में भीम नाम का एक कूटग्राह (पशुओं का चोर) था। उसके उत्पला नाम की भार्या थी। उत्पला गर्भवती हुई और उसे गाय, बैल आदि का मास भक्षण करने का दोहद हुआ। उसने गोत्रास नामक पुत्र को जन्म दिया। यही गोत्रास वाणिय-गाम में विजयमित्र के घर उज्झिय नाम का पुत्र हुआ। उज्झिय जब बड़ा हुआ तो उसके माता-पिता मर गये और नगर-रक्षकों ने उसे घर से निकाल कर उसका घर दूसरो को दे दिया। ऐसी हालत में वह द्यूतगृह, वेश्यागृह और पानागारो (मद्यगृहो) में भटकता हुआ समय यापन करने लगा। कामज्झया नाम की वेश्या के घर वह आने-जाने लगा। यह वेश्या राजा को भी प्रिय थी। एक दिन उज्झिय वेश्या के घर पकड़ा गया और राजपुरुषो ने उसे प्राणदण्ड दे दिया।

तीसरे अध्ययन में अभग्गसेण की कथा है। पुरिमताल (आधुनिक पुरुलिया, दक्षिण विहार) में शालाटवी चोरपल्ली में विजय नाम का एक चोर-सेनापति रहता था। उसकी खन्दसिरी नाम की स्त्री ने अभग्गसेण को जन्म दिया। पूर्वभव में वह निन्नय नाम का एक अंडों का व्यापारी था। वह कबूतर, मुर्गी, मोरनी आदि के अंडों को आग पर तलता, भूनता और उन्हें बेच कर अपनी आजीविका चलाता। कालक्रम से विजय चोर के मर जाने पर अभग्गसेण को सेनापति के पद पर बैठाया गया। अभग्गसेण पुरिमताल और उसके आसपास गाँवों को लूट-खसोट कर निर्वाह करने लगा। नगर के राजा ने उसे पकड़ने की बहुत कोशिश की मगर अभग्गसेण हाथ न आया। एक बार राजा ने अपने नगर में कोई उत्सव मनाया। इस अवसर पर उसने अभग्गसेण को भी निमत्रण दिया और धोखे से पकड़कर उसे मार डाला।

चौथे अध्याय में सगड की कथा है। सगड साहजणी के सभद्र नामक सार्थवाह का पुत्र था। पहले भव में वह छणिय

नाम का एक गडरिया (छागलिय) था। माता-पिता की मृत्यु हो जाने पर राजपुरुषो ने उसे घर से निकाल दिया और उसका घर दूसरों को दे दिया। सगड़ एक अवारे का जीवन बिताने लगा। सुसेण मत्री ने उसे प्राणदण्ड की आज्ञा दी।

पॉचवे अध्ययन में बहस्सइदत्त की कथा है। बहस्सइदत्त कौशाबी के सोमदत्त पुरोहित का पुत्र था। पूर्वभव में वह महेश्वरदत्त नाम का पुरोहित था जो राजा की बल-वृद्धि के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो के बालकों को मारकर शान्तिहोम करता था। महेश्वरदत्त को राजा के अन्त पुर में आने-जाने की छूट थी। किसी समय रानी से उसका सम्बन्ध हो गया। दुश्चरित्र का पता लगने पर राजा ने उसके वध की आज्ञा दी।

छठे अध्ययन मे नन्दिवद्धण की कथा है। वह श्रीदाम राजा का पुत्र था। पूर्वभव में वह राजा का चारगपालय (जेलर) था। जेल में चोर, परदारसेवी, गॅठकतरे, राजापकारी, कर्ज़दार, बालघातक, जुआरी आदि बहुत से लोग रहते थे। वह उन्हें अनेक प्रकार की यातनायें दिया करता था। नन्दिवद्धण अपने पिता को मारकर स्वयं राज-सिंहासन पर बैठना चाहता था। उसने किसी नाई (अलकारिय) के साथ मिलकर एक षड्यंत्र रचा। पता लग जाने पर नन्दिवद्धण को प्राणदण्ड की आज्ञा दी गई।

सातवे अध्ययन में उम्बरदत्त की कथा है। वह सागरदत्त सार्थवाह का पुत्र था। पूर्वभव मे वह अष्टाग आयुर्वेद में कुशल एक सुप्रसिद्ध वैद्य था। रोगियो को मत्स्य-मांस के भक्षण का उपदेश देता हुआ वह उनकी चिकित्सा करता था। अनेक रोगो से पीड़ित हो उसने प्राणो का त्याग किया।

आठवे अध्ययन में सोरियदत्त की कथा है। सोरियदत्त समुद्रदत्त नाम के एक मछुए का पुत्र था। पूर्वभव में वह किसी राजा के घर रसोइये का काम करता था। वह अनेक पशु-पक्षी और मत्स्य आदि का स्वादिष्ट मांस तैयार करता और राजा को

खिलाता। एक बार मत्स्य का भक्षण करते हुए सोरियदत्त के गले में मछली का कांटा अटक गया और वह मर गया।

नौवे अध्ययन में देवदत्ता की कथा है। देवदत्ता दत्त नाम के एक गृहपति की कन्या थी। वेसमणदत्त राजा के पुत्र पूसनन्दि के साथ उसका विवाह हो गया। पूसनन्दि बड़ा मातृभक्त था। वह तेल की मालिश आदि द्वारा अपनी माता की सेवा-शुश्रूषा में सदा तत्पर रहता था। देवदत्ता को यह बात पसन्द न थी। एक दिन रात्रि के समय उसने अपनी सोती हुई सास की हत्या कर दी। राजा ने देवदत्ता के वध की आज्ञा दी।

दसवे अध्ययन में अंजू की कथा है। अजू धनदेव सार्थवाह की कन्या थी। विजय नाम के राजा से उसका विवाह हुआ। एक बार वह किसी व्याधि से पीड़ित हुई और जब कोई वैद्य उसे अच्छा न कर सका तो वह मर गई।

दूसरे श्रुतस्कध मे सुखविपाक की कथाये हैं जो लगभग एक ही शैली मे लिखी गई है।

दिट्ठिवायं (दृष्टिवाद)

दृष्टिवाद द्वादशाग का अन्तिम बारहवॉ अंग है जो आजकल व्युच्छिन्न है।[1] विभिन्न दृष्टियों (मत-मतांतरों) का प्ररूपण

---

१. दिगम्बर आम्नाय के अनुसार दृष्टिवाद के कुछ अंशों का उद्धार षट्खडागम और कषायप्राभृत में उपलब्ध है। अग्रायणी नामक द्वितीय पूर्व के १४ अधिकार (वस्तु) बताये गये हैं जिनमें पाँचवें अधिकार का नाम च्यवनलब्धि है। इस अधिकार का चौथा पाहुड कम्मपयडी या महाकम्मपयडी कहा जाता है। इसी का उद्धार पुष्पदंत और भूतबलि ने सूत्ररूप से षट्खंडागम मे किया है। इसी तरह ज्ञानप्रवाद नाम के पाँचवे पूर्व का उद्धार गुणधर आचार्य ने किया है। ज्ञानप्रवाद के १२ अधिकारों में १०वे अधिकार के तीसरे पाहुड का नाम 'पेज्ज', 'पेज्जदोस' या 'कसायपाहुड' है। इसका गुणधर आचार्य ने १८० गाथाओं में विवरण किया है। देखिये डॉक्टर हीरालाल जैन, षट्खंडागम की प्रस्तावना २, पृष्ठ ४१-६८।

होने के कारण इसे दृष्टिवाद कहा गया है। विशेषनिशीथचूर्णि के अनुसार इस सूत्र में द्रव्यानुयोग[1], चरणानुयोग, धर्मानुयोग और गणितानुयोग का कथन होने के कारण, छेदसूत्रों की भाँति इसे उत्तम-श्रुत कहा है। तीन वर्ष के प्रव्रजित साधु को निशीथ और पाँच वर्ष के प्रव्रजित साधु को कल्प और व्यवहार का उपदेश देना बताया गया है, लेकिन दृष्टिवाद के उपदेश के लिये बीस वर्ष की प्रव्रज्या आवश्यक है।[2] स्थानांगसूत्र (१० ७४२) में दृष्टिवाद के दस नाम गिनाये हैं—अणुजोगगत (अनुयोगगत), तच्चावात (तत्त्ववाद), दिट्ठिवात (दृष्टिवाद), धम्मावात (धर्मवाद), पुव्वगत (पूर्वगत), भासाविजत (भाषाविजय), भूयवात (भूतवाद), सम्मावात (सम्यग्वाद), सव्वपाणभूतजीवसत्तसुहावह (सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वसुखावह) और हेउवात (हेतुवाद)।

दृष्टिवाद के व्युच्छिन्न होने के सम्बन्ध में एक से अधिक परंपरायें जैन आगमो में देखने में आती हैं। एक बार पाटलिपुत्र में १२ वर्ष का दुष्काल पडा। भिक्षा के अभाव में साधु लोग समुद्रतट पर जाकर रहने लगे। सुभिक्ष होने पर फिर से सब पाटलिपुत्र में एकत्रित हुए। उस समय आगम का जो कोई उद्देश या खंड किसी को याद था, सब ने मिलकर उसे सग्रहीत किया, और इस प्रकार ११ अग सकलित किये गये। लेकिन दृष्टिवाद किसी को याद नही था। उस समय चतुर्दश पूर्वधारी भद्रबाहु नैपाल में विहार करते थे। संघ ने एक सघाटक (साधुयुगल) को उनके पास दृष्टिवाद का अध्ययन करने के लिये भेजा। संघाटक ने नैपाल पहुँचकर संघ का प्रयोजन

---

१ कहीं पर दृष्टिवाद में केवल द्रव्यानुयोग की चर्चा को प्रधान बताया गया है। अन्यत्र इस सूत्र में नैगम आदि नय और उसके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा मुख्य बताई गई है (आवश्यकनिर्युक्ति ७६०)।

२. बृहत्कल्पभाष्य ४०४।

निवेदन किया। लेकिन भद्रबाहु ने उत्तर दिया—दुर्भिक्ष के कारण मै महाप्राण का अभ्यास नही कर सका था, अब कर रहा हूँ, इसलिये दृष्टिवाद की वाचना देने में असमर्थ हूँ। यह बात संघाटक ने पाटलिपुत्र लौटकर सघ से निवेदन की। संघ ने फिर से सघाटक को भद्रबाहु के पास भेजा और पुछवाया कि संघ की आज्ञा उल्लघन करनेवाले को क्या दड दिया जाए? अन्त में निश्चय हुआ कि किसी मेधावी को भद्रबाहु के पास भेजा जाये और वे उसे सात वाचनाये दे।[1] स्थूलभद्र को बहुत से साधुओ के साथ भद्रबाहु के पास भेजा गया। धीरे-धीरे वहाँ से सब साधु खिसक आये, अकेले स्थूलभद्र रह गये। महाप्राण व्रत किंचित् अवशेप रह जाने पर एक दिन आचार्य ने स्थूलभद्र से पूछा—"कोई कष्ट तो नही है?" स्थूलभद्र ने उत्तर दिया—"नही।" उन्होने कहा—"तुम थोड़े दिन और ठहर जाओ, फिर मै तुम्हें शेष वाचनाये एक साथ ही दे दूँगा।" स्थूलभद्र ने प्रश्न किया—"कितना और बाकी रहा है?" आचार्य ने उत्तर दिया—"अठासी सूत्र।" उन्होने स्थूलभद्र को चिन्ता न करने का आश्वासन दिया और कहा कि थोड़े ही समय मे तुम इसे समाप्त कर लोगे। कुछ दिन पश्चात् महाप्राण समाप्त हो जाने पर स्थूलभद्र ने भद्रबाहु से नौ पूर्व और दसवे पूर्व की दो वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे पाटलिपुत्र चले गये। आगे चलकर भद्रबाहु ने उन्हें शेष चार पूर्व इस शर्त पर पढ़ाये कि वे इनका ज्ञान और किसी को प्रदान न करे। उसी समय से दसवे पूर्व की अन्तिम दो वस्तुएँ तथा बाकी के चार पूर्व व्युच्छिन्न हुए माने जाते हैं।[2]

---

१. १ भिक्षाचर्या से आये हुए को, २ दिवसार्ध की कालवेला में, ३ सञ्ज्ञा का उत्सर्ग करके आये हुए को, ४ विकाल में, ५-८ आवश्यक की तीन प्रतिपृच्छा।

२ आवश्यकसूत्र, हरिभद्रटीका, पृष्ठ ६९६ अ–६९८; हरिभद्र, उपदेशपद और उसकी टीका, पृष्ठ ८९।

दूसरी परपरा के अनुसार आर्यरक्षित जब पाटलिपुत्र से सांगोपाग चार वेदो और चतुर्दश विद्यास्थानो[1] का अध्ययन कर के दशपुर लौटे तो वहाँ उनका बहुत जोरशोर से स्वागत किया गया। जब वे अपनी माता के पास पहुँचे तो उसने पूछा—"बेटा! तुमने दृष्टिवाद का भी अध्ययन किया या नहीं?" आर्यरक्षित ने उत्तर दिया—"नही।" उनकी माँ ने कहा, "देखो, हमारे इक्षुगृह मे तोसलिपुत्र आचार्य ठहरे हुए हैं। तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हें पढ़ा देगे।" यह सुनकर आर्यरक्षित इक्षुघर में पहुँचे। वे सोचने लगे—मुझे दृष्टिवाद के नौ अंग तो पढ़ ही लेने चाहिये, दसवाँ तो समस्त उपलब्ध है नही। उसके बाद वे आचार्य तोसलिपुत्र के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने पूछा—"क्यों आये हो?" आर्यरक्षित ने उत्तर दिया—"दृष्टिवाद का अध्ययन करने।" आचार्य ने कहा—"लेकिन बिना दीक्षा दिये दृष्टिवाद हम नही पढ़ाते।" आर्यरक्षित ने उत्तर दिया—"दीक्षा ग्रहण करने के लिये मै तैयार हूँ।" फिर उन्होंने कहा—"यह सूत्र परिपाटी से ही पढ़ना पडता है।" आर्यरक्षित ने उत्तर दिया—"उसके लिये भी मेरी तैयारी है।" तत्पश्चात् आर्यरक्षित ने आचार्य से अन्यत्र चलकर रहने की प्रार्थना की। वहाँ पहुँच कर आर्यरक्षित ने दीक्षा ग्रहण की और ग्यारह अगो का अध्ययन किया। तोसलिपुत्र को जितना दृष्टिवाद का ज्ञान था उतना उन्होने पढ़ा दिया। उस समय युगप्रधान आर्यवज्र (वज्रस्वामी) उज्जयिनी में विहार कर रहे थे। पता चला कि वे दृष्टिवाद के बड़े पडित हैं। आर्यरक्षित उज्जयिनी के लिये रवाना हो गये। आर्यवज्र के पास पहुँचकर उन्होने नौ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त किया। दसवाँ उन्होने आरंभ किया ही था कि इतने में आर्यरक्षित के लघु भ्राता फल्गुरक्षित उन्हें लिवाने आ गये। आर्यरक्षित ने फल्गुरक्षित को दीक्षित कर लिया और वह भी वही रहकर

१. शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, कल्प (छह अंग), चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र।

अध्ययन करने लगा। एक दिन पढ़ते-पढ़ते आर्यरक्षित ने आर्यवज्र से प्रश्न किया—"महाराज! दसवें पूर्व का अभी कितना भाग बाकी है?" आर्यवज्र ने उत्तर दिया—"अभी केवल एक बिंदुमात्र पूर्ण हुआ है, समुद्र जितना अभी बाकी है।" यह सुनकर आर्यरक्षित को बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगे कि ऐसी हालत में क्या मैं इसका पार पा सकता हूँ? तत्पश्चात् आर्यरक्षित वहाँ से यह कहकर चले आये कि मेरा लघु भ्राता आ गया है, अब कृपा करके उसे पढ़ाइये। आर्यवज्र ने सोचा कि मेरी थोड़ी ही आयु अवशेष है और फिर यह शिष्य लौट कर आयेगा नहीं, इसलिये शेष पूर्वों का मेरे समय से ही व्युच्छेद समझना चाहिये। आर्यरक्षित दशपुर चले गये और फिर लौटकर नहीं आये।[1] नन्दीसूत्र में दृष्टिवाद के पाँच विभाग गिनाये हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत (१४ पूर्व[2]), अनुयोग और चूलिका। परिकर्म के द्वारा

---

१. आवश्यकसूत्र, हरिभद्रटीका, पृष्ठ ३००-३०२।

२. पूर्व दृष्टिवाद का ही एक भाग है। दशाश्रुतस्कन्धचूर्णी के अनुसार भद्रबाहु ने दृष्टिवाद का उद्धार असमाधिस्थान नामक प्राभृत के आधार से किया है। आवश्यकभाष्य के अनुसार आचार्य महागिरि के शिष्य कौंडिन्य और उनके शिष्य, दूसरे निह्नव के प्रतिष्ठाता, अश्वमित्र विद्यानुवाद नामक पूर्व के अन्तर्गत नैपुणिक वस्तु में पारङ्गत थे। पूर्वों में से अनेक सूत्र तथा अध्ययन आदि उद्धृत किये जाने के उल्लेख आगमों की टीकाओं में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, आत्मप्रवादपूर्व में से दशवैकालिक सूत्र का धम्मपण्णत्ति (षड्जीवनिकाय), कर्मप्रवाद में से पिंडेसणा, सत्यप्रवाद में से वक्कसुद्धी नामक अध्ययन तथा शेष अध्ययन प्रत्याख्यानपूर्व की तृतीय वस्तु से उद्धृत हैं। ओघनिर्युक्ति, बृहत्कल्प, दशाश्रुतस्कन्ध, निशीथ और व्यवहार को भी प्रत्याख्यानप्रवाद में से उद्धृत बताया है। उत्तराध्ययन के टीकाकार वादिवेताल शांतिसूरि के अनुसार उत्तराध्ययन का परिषह नामक अध्ययन दृष्टिवाद से लिया गया है। महाकल्पश्रुत भी इसी से उद्धृत माना जाता है।

सूत्रों को यथावत् समझने की योग्यता प्राप्त की जाती है। इसके सात भेद हैं। समवायाग के अनुसार इनमें से प्रथम छः भेद स्वसमय अर्थात् अपने सिद्धांत के अनुसार है और सातवाँ भेद (च्युताच्युतश्रेणिका) आजीविक सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार है। जैन चार नयों को स्वीकार करते हैं इसलिये वे चतुष्कनयिक कहलाते हैं, जब कि आजीविक सम्प्रदायवाले वस्तु को त्रि-आत्मक (जैसे जीव, अजीव, जीवाजीव) मानने के कारण त्रैराशिक कहे जाते हैं। परिकर्मशास्त्र अपने मूल और उत्तरभेदों सहित नष्ट हो गया है। सूत्र विभाग में तीर्थिको के मत-मतांतरों का खंडन है। इसके छिन्नच्छेद, अच्छिन्नछेद, त्रिक और चतुर् नाम के चार नयों की अपेक्षा बाईस सूत्रों के अठासी भेद होते हैं। चार नयों में अच्छिन्नच्छेद और त्रिकनय परिपाटी आजीविको की, तथा छिन्नच्छेद और चतुर्नय परिपाटी जैनो की कही जाती थी। इन चार नयों का स्वरूप नन्दी और सम-वायागसूत्र की टीका में समझाया गया है। पूर्व विभाग में उत्पादपूर्व आदि चौदह पूर्वग्रथो का समावेश होता है। तीर्थ-प्रवर्तन के समय तीर्थकर अपने गणधरो को सर्वप्रथम पूर्वगत सूत्रार्थ का ही विवेचन करते हैं, इसलिये इन्हें पूर्व कहा जाता है। 'पूर्वधर' नाम से प्रख्यात विक्रम की लगभग पाँचवीं शताब्दी के आचार्य शिवशर्मसूरि ने कम्मपयडि (कर्मप्रकृति) और सयग (शतक) की रचना की है। अनुयोग अर्थात् अनुकूल सबंध। सूत्र द्वारा प्रतिपादित अर्थ के अनुकूल सबध को अनुयोग कहा जाता है। इसके दो भेद हैं—मूल प्रथमानुयोग और गंडिका-नुयोग। मूल प्रथमानुयोग में तीर्थंकर आदि महान् पुरुषों के पूर्वभवो का वर्णन है। चूलिका अर्थात् शिखर। दृष्टिवाद का जो विषय परिकर्म, सूत्र, पूर्व और अनुयोग मे नहीं कहा जा सका, उसका संग्रह चूलिका मे किया है। प्रथम चार पूर्वों की ही चूलाये बताई गई हैं। ये सब मिलकर बत्तीस होती हैं।

बृहत्कल्पनिर्युक्ति (१४६) में तुच्छ स्वभाववाली, बहु

अभिमानी, चंचल इन्द्रियोंवाली और मन्द बुद्धिवाली सब स्त्रियो को दृष्टिवाद (भूयावाय) पढ़ने का निषेध किया है।[1]

द्वादश उपांग

वैदिक ग्रंथो में पुराण, न्याय और धर्मशास्त्र को उपाग कहा है। चार वेदो के भी अग और उपाग होते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छद, निरुक्त और ज्योतिष ये छह अग हैं, तथा पुराण, न्याय, मीमासा और धर्मशास्त्र उपाग। बारह अंगो की भॉति बारह उपागो का उल्लेख भी प्राचीन आगम ग्रंथो में उपलब्ध नही होता। नंदीसूत्र (४४) में कालिक और उत्कालिक रूप में ही उपांगो का उल्लेख मिलता है। अगों की रचना गणधरो ने की है और उपागों की स्थविरो ने, इसलिये भी अंगो और उपांगों का कोई संबंधविशेष सिद्ध नही होता। यद्यपि कुछ आचार्यों ने अगो और उपांगो का संबंध जोड़ने का प्रयत्न किया है, लेकिन विषय आदि की दृष्टि से इनमें कोई संबंध प्रतीत नहीं होता।

उववाइय (ओववाइय-औपपातिक)

उपपात अर्थात् जन्म—देव-नारकियो के जन्म, अथवा सिद्धि-गमन का इस उपांग में वर्णन होने से इसे औपपातिक कहा है।[2] विन्टरनीज़ के अनुसार इसे औपपातिक न कहकर उप-

---

१ प्रश्न किया गया है कि यदि दृष्टिवाद में सब कुछ अन्तर्गत हो जाता है तो फिर उसीका प्ररूपण किया जाना चाहिये, अन्य आगमों का नहीं। उत्तर में कहा है कि दुर्बुद्धि, अल्पायु तथा स्त्रियों आदि को लक्ष्य करके अन्य आगमों का प्ररूपण किया गया है। दृष्टिवाद की भाँति अरुणोपपात और निशीथ आदि के अध्ययन की भी स्त्रियों को मनाई है। देखिये आवश्यकचूर्णी १, पृ० ३५; बृहत्कल्पभाष्य १,१४६, पृ०४६।

२. इस ग्रथ का पहला सस्करण कलकत्ते से सन् १८८० में प्रकाशित हुआ था। फिर आगमोदय समिति, भावनगर ने इसे प्रकाशित

पादिक ही कहना अधिक उचित है। इसमें ४३ सूत्र है। अभयदेवसूरि ने प्राचीन टीकाओ के आधार पर वृत्ति लिखी है, जिसका संशोधन अणहिलपाटण के निवासी द्रोणाचार्य ने किया। ग्रंथ का आरंभ चम्पा के वर्णन से होता है—

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया आइण्णजणमणुस्सा हलसयसहस्ससंकिट्ठविकिट्ठलट्ठपण्णत्तसेउसीमा कुक्कुडसंडेअगामपउरा उच्छुजवसालिकलिया गोमहिसगवेलगप्पभूता आयारवंतचेइयजुवइविविहसण्णिविट्ठबहुला उक्कोडियगायगंठिभेयगभडतक्करखंडरक्खरहिया खेमा णिरुवद्दवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकुडुंबियाइण्णणिव्वुयसुहा णडणट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबयकहगपवगलासगआइक्खगलखमंखतूणइल्लतुंबवीणियअणेगतालायराणुचरिया आरामुज्जाणअगडतलागदीहियवप्पिणिगुणोववेया नंदणवणसन्निभप्पगासा। उव्विद्धविउलगंभीरखायफलिहा चक्कगयमुसुंढिओरोहसयग्घिजमलकवाडघणदुप्पवेसा धणुकुडिलवकपागारपरिक्खित्ता कविसीसयवट्टरइयसंठियविरायमाणा अट्टालयचरियदारगोपुरतोरणउण्णयसुविभत्तरायमग्गा छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला। विवणिवणिच्छेत्तसिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरपणियावणविविहवत्थुपरिमंडिया सुरम्मा नरवइपविइण्णमहिवइपहा अणेगवरतुरगमत्तकुंजररहपहकरसीयसदमाणीयाइण्णजाणजुग्गा विमउलणवणलिणिसोभियजला पंडुरवरभवणसण्णिमहिया उत्ताणणयणपेच्छणिज्जा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

—उस काल मे, उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। वह ऋद्धियुक्त, भयवर्जित और धन-धान्य आदि से समृद्ध थी। यहाँ

किया। तीसरा संस्करण पंडित भूरालाल कालिदास ने वि० सं० १९१४ में सूरत से प्रकाशित किया। अखिलभारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैनशास्त्रोद्धारसमिति, राजकोट से सन् १९५९ में हिन्दी-गुजराती अनुवाद सहित इसका एक और संस्करण निकला है।

के लोग बड़े आनन्दपूर्वक रहते थे। जनसमूह से यह आकीर्ण थी। यहाँ की सीमा सैकड़ों-हजारों हलों से खुदी हुई थी, और बीज बोने योग्य थी। गाँव बहुत पास-पास थे। यहाँ ईख, जौ और धान की प्रचुर खेती होती थी। गाय, भैंस, और भेड़ प्रचुर संख्या में थीं। यहाँ सुंदराकार चैत्य और वेश्याओं के अनेक सन्निवेश थे। रिश्वतखोर, गँठकटे, चोर, डाकू और कर लेनेवाले शुल्कपालों का अभाव था। यह नगरी उपद्रवरहित थी, यहाँ पर्याप्त भिक्षा मिलती थी और लोग विश्वासपूर्वक आराम से रहते थे। यहाँ अनेक कौटुंबिक बसते थे। इस नगरी में अनेक नट, नर्तक, रस्सी पर खेल करनेवाले, मल्ल, मुष्टि से प्रहार करने-वाले, विदूषक, तैराक, गायक, ज्योतिषी, बाँस पर खेल करनेवाले, चित्रपट दिखाकर भिक्षा माँगनेवाले, तूणा बजानेवाले, वीणा-वादक और ताल देनेवाले लोग बसते थे। यह नगरी आराम, उद्यान, तालाब, बावडी आदि के कारण नंदनवन के समान प्रतीत होती थी। विशाल और गंभीर खाई से यह युक्त थी। चक्र, गदा, मुंसुढि, उरोह (छाती को चोट पहुँचानेवाला), शतघ्नी तथा निश्छिद्र कपाटों के कारण इसमे शत्रु प्रवेश नही कर सकता था। यहाँ वक्र प्राकार बने हुए थे। यह गोल कपिशीर्षक (कँगूरे), अटारी, चरिका (घर और प्राकार के बीच का मार्ग), द्वार, गोपुर, तोरण आदि से रम्य थी। इस नगर की अर्गला (मूसल) और इन्द्रकील (ओट) चतुर शिल्पियो द्वारा निर्मित किये गये थे। यहाँ के बाजार और हाट शिल्पियो से आकीर्ण थे। शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर बिक्री के योग्य वस्तुओ और दूकानो से मंडित थे। राजमार्ग राजाओ के गमनागमन से आकीर्ण थे। अनेक सुदर घोड़े, हाथी, रथ, पालकी, गाड़ी आदि यहाँ की परम शोभा थी। यहाँ के तालाब कमलिनियों से शोभित थे। अनेक सुन्दर भवन यहाँ बने हुए थे। चम्पा नगरी बड़ी प्रेक्षणीय, दर्शनीय और मनोहारिणी थी।

चम्पा नगरी के उत्तर पूर्व मे पूर्णभद्र नाम का एक सुप्रसिद्ध

चैत्य था जो एक वनखंड से शोभित था। इस वनखंड में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे थे। चंपा में राजा भंभसार (बिंबसार) का पुत्र कूणिक (अजातशत्रु) राज्य करता था। एक बार श्रमण भगवान् महावीर अपने शिष्यसमुदाय के साथ विहार करते हुए चंपा में आये और पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे। अपने वार्ता-निवेदक से महावीर के आगमन का समाचार पाकर कूणिक बहुत प्रसन्न हुआ और अपने अन्तःपुर की रानियो आदि के साथ महावीर का धर्म श्रवण करने के लिये चल पड़ा। महावीर ने निर्ग्रंथ प्रवचन का उपदेश दिया।

उस समय महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम इन्द्रभूति वहीं पास में ध्यान में अवस्थित थे। महावीर के समीप उपस्थित हो उन्होंने जीव और कर्म के संबध मे अनेक प्रश्न किये। इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए महावीर ने दण्ड के प्रकार, विधवा स्त्रियो, व्रती और साधुओं, गंगातट पर रहनेवाले वानप्रस्थी तापसों, श्रमणों, ब्राह्मण और क्षत्रिय परिव्राजकों, अम्मड परिव्राजक और उसके शिष्यों, आजीविक तथा अन्य श्रमणों और निह्नवो का विवेचन किया। जन्म-संस्कारों और ७२ कलाओ का उल्लेख भी यहाँ किया गया है। अन्त मे सिद्धशिला का वर्णन है।

रायपसेणइय (राजप्रश्नीय)

राजप्रश्नीय की गणना प्राचीन आगमों मे की जाती है[1]। इसके दो भाग हैं जिनमे २१७ सूत्र हैं। मलयगिरि (ईसवी

---

१. नन्दीसूत्र में इसे रायपसेणिय कहा गया है। मलयगिरि ने रायपसेणीअ नाम स्वीकार किया है। डाक्टर विंटरनीज़ के अनुसार मूल में इस आगम में राजा प्रसेनजित् की कथा थी, बाद में प्रसेनजित् के स्थान में पएस लगाकर प्रदेशी से इसका सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की गयी। आगमोदयसमिति ने इसे १९२५ में प्रकाशित किया था। गुजराती अनुवाद के साथ इसका सम्पादन पंडित बेचरदास जी ने किया है जो वि० सवत् १९९४ में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

सन् की १२वी शताब्दी) ने इसकी टीका लिखी है। पहले भाग में सूर्याभदेव के विमान का विस्तृत वर्णन है। सूर्याभदेव अपने परिवारसहित महावीर के दर्शनार्थ जाता है, उनके समक्ष उपस्थित होकर नृत्य करता है और नाटक रचाता है। दूसरे भाग में पार्श्वनाथ के प्रमुख शिष्य केशीकुमार और श्रावस्ती के राजा प्रदेशी के बीच आत्मासबधी विशद चर्चा की गई है।[1] अन्त में प्रदेशी केशीकुमार के मत को स्वीकार कर उनके धर्म का अनुयायी बन जाता है।

औपपातिक सूत्र की भाँति इस ग्रन्थ का आरभ आमलकप्पा नगरी के वर्णन से होता है। इस नगरी के उत्तर-पूर्व में आम्रशालवन नाम का चैत्य था, जिसके चारों ओर एक सुदर उद्यान था।

चपा नगरी में सेय नाम का राजा राज्य करता था। एक बार महावीर अनेक श्रमण और श्रमणियों के साथ विहार करते हुए आमलकप्पा पधारे और आम्रशालवन में ठहर गये। राजा सेय अपने परिवारसहित महावीर के दर्शनार्थ गया। महावीर ने धर्मोपदेश दिया।

सौधर्म स्वर्ग में रहनेवाले सूर्याभदेव को जब महावीर के आगमन की सूचना मिली तो वह अपनी पटरानियों आदि के साथ विमान में आरूढ़ हो आमलकप्पा जा पहुँचा। सूर्याभदेव ने महावीर से कुछ प्रश्न किये और फिर उन्हें ३२ प्रकार के नाटक दिखाये। विमान की रचना के प्रसंग मे यहाँ वेदिका, सोपान, प्रतिष्ठान, स्तभ, फलक, सूचिंका, तथा प्रेक्षागृह, वाद्य और नाटको के अभिनय आदि का वर्णन है जो स्थापत्यकला, सगीतकला और नाट्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।[2] इस

---

१. मिलाइये दीघनिकाय के पायासिसुत्त के साथ।

२. यहाँ वर्णित ईहामृग, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, शरभ, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता के मोटिफ़ (अभिप्राय) ईसवी सन् की पहली-दूसरी शताब्दी की मथुरा की

प्रसंग में यहाँ पुस्तकसंबंधी डोर, गाँठ, दावात (लिप्पासन), ढक्कन, श्याही, लेखनी और पुट्ठे (कंबिया) का उल्लेख है।

दूसरे भाग में राजा प्रदेशी और कुमारश्रमण केशी का सरस संवाद आता है। सेयविया नगरी में राजा प्रदेशी नाम का कोई राजा राज्य करता था। उसके सारथी का नाम चित्त था। चित्त शाम, दाम, दण्ड और भेद में कुशल था, इसलिये प्रदेशी उसे बहुत मानता था। एक बार चित्त सारथी श्रावस्ती के राजा जितशत्रु के पास कोई भेंट लेकर गया। वहाँ उसने पार्श्वनाथ के अनुयायी केशी नामक कुमारश्रमण के दर्शन किये। केशी-कुमार ने चातुर्याम धर्म (प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण और बहिद्धादानविरमण) का उपदेश दिया। कुछ समय बाद जब चित्त सारथी सेयविया लौटने लगा तो उसने केशीकुमार को सेयविया पधारने का निमत्रण दिया।

समय बीतने पर केशीकुमार विहार करते हुए श्रावस्ती से सेयविया पधारे। अवसर पाकर चित्त सारथी किसी बहाने से राजा प्रदेशी को उनके दर्शन के लिये लिवा ले गया। राजा प्रदेशी ने जीव और शरीर को एक सिद्ध करने के लिये बहुत-सी युक्तियाँ दी, केशीकुमार ने उनका निराकरण कर जीव और शरीर को भिन्न सिद्ध किया—

तए णं केसी कुमारसमणे पएसि रायं एव वयासी—

"पएसी, से जहानामए कूडागारसाला सिया दुहओलित्ता गुत्ता, गुत्तदुआरा निवायगंभीरा। अहं ण केइ पुरिसे भेरिं च दण्डं च गहाय कूडागारसालाए अन्तो अन्तो अणुपविसइ। अणुपवि-

स्थापत्य कला मे चित्रित है। वाद्यों के सम्बन्ध में काफी गड़बड़ी मालूम होती है। मूलपाठ में इनकी संख्या ४९ कही गई है, लेकिन वास्तविक संख्या ५९ है। बहुत से वाद्यों का स्वरूप अस्पष्ट है। टीकाकार के अनुसार नाट्यविधियों का उल्लेख चौदह पूर्वों के अन्तर्गत नाट्यविधि नामक प्राभृत में मिलता है, लेकिन यह प्राभृत विच्छिन्न है।

सित्ता तीसे कूडागारसालाए सव्वओ समन्ता घणनिचियनिरन्तर-निच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेइ। तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए ठिच्चा त भेरिं दण्डएण महया-महया सद्देण तालेज्जा। से नूण पएसी, से सद्दे ण अन्तोहिंतो बहिया निग्गच्छइ ?"

"हन्ता निग्गच्छइ।"

"अत्थि ण पएसी, तीसे कूडागारसालाए केइ छिड्डे वा जाव राई वा जओ ण से सद्दे अन्तोहितो बहिया निग्गए ?"

"नो इणट्ठे समट्ठे।"

"एवामेव, पएसी, जीवे वि अप्पडिहयगई पुढवि भिच्चा सिलं पव्वय भिच्चा अन्तोहितो बहिया निग्गच्छइ। त सद्दहाहि ण तुमं, पएसी, अन्नो जीवो अन्न सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं।"

—कुमारश्रमण केशी ने राजा प्रदेशी से कहा—

"प्रदेशी! कल्पना करो कोई कूटागारशाला दोनो ओर से लिपी-पुती है, और उसके द्वार चारो ओर से बन्द हैं, जिससे उसमें वायु प्रवेश न कर सके। अब यदि कोई पुरुष भेरी और बजाने का डडा लेकर उसके अन्दर प्रवेश करे, और प्रवेश करने के बाद द्वारो को खूब अच्छी तरह बन्द कर ले, फिर उसमें बैठकर ज़ोर-ज़ोर से भेरी बजाये, तो क्या हे प्रदेशी! वह शब्द बाहर सुनाई देगा ?"

"हाँ, वह शब्द बाहर सुनाई देगा।"

"क्या कूटागारशाला में कोई छिद्र है जिससे शब्द निकल कर बाहर चला जाता है ?"

"नही, ऐसी बात नही है।"

"इसी प्रकार, हे प्रदेशी! जीव की गति कोई नही रोक सकता। वह पृथ्वी, शिला और पर्वत को भेदकर बाहर चला जाता है। इसलिये तुम्हें इस बात पर विश्वास करना चाहिये कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, तथा जीव और शरीर एक नहीं हो सकते।"

यहाँ कंबोजदेश के घोड़ों, क्षत्रिय, गृहपति, ब्राह्मण और ऋषि नाम की चार परिषद्, कला, शिल्प और धर्म आचार्य नाम के तीन आचार्य, शास्त्र, अग्नि, मंत्र और विष द्वारा मारण के उपाय तथा ७२ कलाओं का उल्लेख है।

जीवाजीवाभिगम

पक्खिय और नंदीसूत्र में जीवाजीवाभिगम की गणना उक्कालिय सूत्रों में की गई है। इसमें गौतम गणधर और महावीर के प्रश्न-उत्तर के रूप में जीव और अजीव के भेद-प्रभेदों का विस्तृत वर्णन है।[1]

प्राचीन परंपरा के अनुसार इसमें बीस विभाग थे। मलयगिरि ने इस पर टीका लिखी है। उनके अनुसार इस उपांग में अनेक स्थलों पर वाचनाभेद हैं और बहुत से सूत्र विच्छिन्न हो गये हैं। हरिभद्र और देवसूरि ने इस पर लघु वृत्तियाँ लिखी हैं। इस सूत्र पर एक-एक चूर्णी भी है जो अप्रकाशित है। प्रस्तुत सूत्र में नौ प्रकरण (प्रतिपत्ति) हैं जिनमें २७२ सूत्र हैं। तीसरा प्रकरण सबसे बड़ा है जिसमें देवों तथा द्वीप और सागरों का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकरण में रत्न, अस्त्र, धातु, मद्य,[2] पात्र,

---

१ मलयगिरि की टीका सहित देवचन्द लालभाई, निर्णयसागर, बम्बई से सन् १९१९ में प्रकाशित।

२ यहाँ चन्द्रप्रभा (चन्द्रमा के समान रंगवाली), मणिशलाका, वरसीधु, वरवारुणी, फलनिर्यासासार (फलों के रस से तैयार की हुई), पत्रनिर्यासासार, पुष्पनिर्यासासार, चोयनिर्यासासार, बहुत द्रव्यों को मिला कर तैयार की हुई, संध्या के समय तैयार हो जानेवाली, मधु, मेरक, रिष्ठ नामक रत्न के समान वर्णवाली, दुग्धजाति (पीने में दूध के समान लगनेवाली), प्रसन्ना, नेल्लक, शतायु (सौ बार शुद्ध करने पर भी जैसी की तैसी रहनेवाली), खजूरसार, मृद्वीकासार (द्राक्षासव), कापिशायन, सुपक्व और क्षोदरस (ईख के रस को पकाकर तैयार की हुई) नामक मद्यों के प्रकार बताये गये हैं। रामायण और महाभारत

आभूषण, भवन, वस्त्र, मिष्टान्न, दास, त्योहार, उत्सव, यान, कलह और रोग आदि के प्रकारों का उल्लेख है। जम्बूद्वीप के वर्णन-प्रसंग में पद्मवरवेदिका की दहलीज़ (नेम), नीव (प्रतिष्ठान), खभे, पटिये, साँधे, नली, छाजन आदि का उल्लेख किया है जो स्थापत्यकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसी प्रसग में उद्यान वापी, पुष्पकरिणी, तोरण, अष्टमगल, कदलीघर, प्रसाधनघर, आदर्शघर, लतामडप, आसन, शालभंजिका,[1] सिहासन और सुधर्मा सभा आदि का वर्णन है।

पन्नवणा (प्रज्ञापना)

प्रज्ञापना में ३४६ सूत्र हैं जिनमें प्रज्ञापना, स्थान, लेश्या, सम्यक्त्व, समुद्धात आदि ३६ पदो का प्रतिपादन है।[2] ये पद गौतम इन्द्रभूति और महावीर के प्रश्नोत्तरो के रूप मे प्रस्तुत किये गये है। जैसे अगों मे भगवतीसूत्र, वैसे ही उपांगो मे प्रज्ञापना सबसे बड़ा है। इसके कर्ता वाचकवंशीय पूर्वधारी आर्यश्याम हैं जो सुधर्मा स्वामी की तेइसवी पीढ़ी में हुए और महावीर-निर्वाणके ३७६ वर्ष बाद मौजूद थे। हरिभद्रसूरि ने इस पर विषम पदों की व्याख्या करते हुए प्रदेशव्याख्या नाम

में मद्य के प्रकारों का उल्लेख है। मनुस्मृति (११-९४) में नौ प्रकार के मद्य बताये गये हैं। देखिये आर० एल० मित्र, इण्डो-आर्यन, जिल्द १, पृ० ३९६ इत्यादि, जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृ० १२४-२६। सम्मोहविनोदिनी अट्ठकथा (पृ० ३८१) मे पाँच प्रकार की सुरा बताई गई है।

१. अवदानशतक (६, ५२, पृष्ठ ३०२) में श्रावस्ती में शाल-भजिका त्योहार मनाने का वर्णन है।

२ मलयगिरि की टीकासहित निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९१८–१९१९ में प्रकाशित। पंडित भगवानदास हर्षचन्द्र ने मूल ग्रन्थ और टीका का गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से वि० सवत् १९९१ में तीन भागों में प्रकाशित किया है।

की लघुवृत्ति लिखी है।[1] उसी के आधार पर मलयगिरि ने प्रस्तुत टीका लिखी है। कुलमडन ने इस पर अवचूरि की रचना की है। यहाँ पर भी अनेक पाठभेदो का उल्लेख है। टीकाकार ने बहुत से शब्दो की व्याख्या न करके उन्हें 'सम्प्रदायगम्य' कहकर छोड़ दिया है। पहले पद मे पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा वृक्ष, बीज, गुच्छ, लता, तृण, कमल, कद, मूल, मगर, मत्स्य,[2] सर्प, पशु, पक्षी आदि का वर्णन है। अनार्यों में शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर आदि म्लेच्छ जातियो का उल्लेख है। आर्य क्षेत्रों में २५½[3] देशो का, जाति-आर्यों मे अबष्ठ, विदेह

---

१ ऋषभदेव केशरीमल सस्था की ओर से सन् १९४७ में रतलाम से प्रकाशित।

२ यहाँ सूत्र ३३ में सण्ह, खवल्ल (आधुनिक केवइ), जुग, (झिगा), विज्झडिय, हलि, मगॅरि (मगूरी), रोहिय (रोहू), हलीसागरा, गागरा, वडा, वडगरा (बुल्ला), गब्भया, उसगारा, तिमितिमिंगिला (बरारी), णक्का, तदुला, कणिक्का (कनई), सालिसत्थिया, लभण, पडागा और पडागाइपडागा मछलियों के नाम दिये हैं। मच्छखल का उल्लेख आचाराग (२, १, १, ४) में मिलता है। इसे धूप में सुखाकर भोज आदि के अवसर पर काम में लेते थे। उत्तराध्ययन (१९.६४) तथा विपाकसूत्र (८, पृष्ठ ४७) मे मछली पकड़ने के अनेक प्रकारों का उल्लेख है। अगविज्जा (अध्याय ५०, पृष्ठ २२८) भी देखिये। धनपाल ने पाइअलच्छीनाममाला (६०) में सउला (सउरी), सहरा, मीणा, तिमी, झसा और अणमिसा का उल्लेख किया है। खासकर उत्तर बिहार में मछलियों की सैकड़ों किस्में पाई जाती हैं जिनमें रोहू, बरारी, नैनी, भकुरा, पटया आदि मुख्य हैं।

३ १ मगध (राजगृह), २ अग (चम्पा), ३ वग (ताम्रलिप्ति), ४ कलिग (कांचनपुर), ५ काशी (वाराणसी), ६ कोशल (साकेत), ७ कुरु (गजपुर), ८ कुशावर्त (शौरिपुर), ९ पांचाल (कांपिल्यपुर), १० जांगल (अहिच्छत्रा), ११ सौराष्ट्र (द्वारवती), १२ विदेह (मिथिला),

आदि का ; कुल-आर्यों में उग्र, भोग, आदि का, कर्म-आर्यों में कपास, सूत, कपड़ा आदि बेचनेवालों का, और शिल्प-आर्यों मे बुनकर, पटवे, चित्रकार, मालाकार आदि का उल्लेख किया गया है। अर्धमागधी बोलनेवालो को भाषा-आर्य कहा है। इसी प्रसग में ब्राह्मी, यवनानी, खरोष्ट्री, अकलिपि, आदर्शलिपि आदि का उल्लेख है।

भाषा नाम के ग्यारहवे पद का विवेचन उपाध्याय यशोविजय जी ने किया है, जिसका गुजराती भावार्थ पडित भगवानदास हर्षचन्द्र ने प्रज्ञापनासूत्र द्वितीय खड मे दिया है।

सूरियपन्नत्ति (सूर्यप्रज्ञप्ति)

सूर्यप्रज्ञप्ति[1] पर भद्रबाहु ने निर्युक्ति लिखी थी जो कलिकाल के दोष से आजकल उपलब्ध नही है। इस पर मलयगिरि ने टीका लिखी है। इस ग्रन्थ मे सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति आदि का १०८ सूत्रो मे, २० प्राभृतों में विस्तारसहित वर्णन है। बीच-बीच में ग्रन्थकार ने इस विषय की अन्य मान्यताओ का भी

---

१३ वत्स (कौशांबी), १४ शांडिल्य (नन्दिपुर), १५ मलय (भद्रिलपुर), १६ मत्स्य (वैराट), १७ वरणा (अच्छा), १८ दशार्ण (मृत्तिकावती), १९ चेदि (शुक्ति), २० सिन्धु-सौवीर (वीतिभय), २१ शूरसेन (मथुरा), २२ भंगि (पापा), २३ वट्टा (मासपुरी ?), २४ कुणाल (श्रावस्ति), २५ लाढ (कोटिवर्ष), २५½ केकयीअर्ध (श्वेतिका)। इनकी पहचान के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ २५०-५६।

१. यह ग्रन्थ मलयगिरि की टीकासहित आगमोदयसमिति, निर्णयसागर प्रेस, बबई १९१९ में प्रकाशित हुआ है। बिना टीका के मूल ग्रन्थ को समझना कठिन है। वेबर ने इस पर 'उबेर डी सूर्यप्रज्ञप्ति' नामक निबन्ध सन् १८६८ में प्रकाशित किया था। डॉक्टर आर० शामशास्त्री ने इस उपांग का संक्षिप्त अनुवाद 'ए ब्रीफ़ ट्रान्सलेशन ऑव महावीराज़ सूर्यप्रज्ञप्ति' नाम से किया है, यह देखने में नहीं आ सका।

उल्लेख किया है। पहले प्राभृत मे दो सूर्यों का उल्लेख है।[1] जब सूर्य दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशाओ मे घूमता है तो मेरु के दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्ववर्ती प्रदेशो मे दिन होता है। भ्रमण करते हुए दोनो सूर्यों मे परस्पर कितना अतर रहता है, कितने द्वीप-समुद्रो का अवगाहन करके सूर्य भ्रमण करता है, एक रात-दिन में वह कितने क्षेत्र मे घूमता है आदि का वर्णन इस प्राभृत में किया गया है। दूसरे प्राभृत में सूर्य के उदय और अस्त का वर्णन है। इस संबध मे अन्य अनेक मान्यताओ का उल्लेख है। तीसरे प्राभृत मे चन्द्र-सूर्य द्वारा प्रकाशित द्वीप-समुद्रों का वर्णन है। चौथे प्राभृत में चन्द्र-सूर्य के आकार आदि का प्रतिपादन है। छठे प्राभृत में सूर्य के ओज का कथन है। दसवे प्राभृत मे नक्षत्रों के गोत्र आदि का उल्लेख है। इनमें मौद्गल्यायन, साख्यायन, गोतम, भारद्वाज, वासिष्ठ, काश्यप, कात्यायन आदि गोत्र मुख्य है। कौन से नक्षत्र मे कौन सा भोजन लाभकारी होता है, इसका वर्णन है। पूर्वाफाल्गुनी मे मेढ़क का, उत्तराफाल्गुनी में नखवाले पशुओ का और रेवती में जलचर का मास लाभकारी बताया है। अठारहवे अध्याय में सूर्य-चन्द्र के परिभ्रमण का वर्णन है। बाईसवे अध्याय में नक्षत्रो की सीमा, विष्कभ आदि का प्रतिपादन है। तेरहवे प्राभृन मे चन्द्रमा की हानि-वृद्धि का उल्लेख है।

जम्बुद्दीवपन्नत्ति (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति)

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पर मलयगिरि ने टीका लिखी थी, लेकिन वह नष्ट हो गई। तत्पश्चात् इस पर कई टीकाये लिखी गईं।

---

1. भास्कर ने अपने सिद्धांतशिरोमणि और ब्रह्मगुप्त ने अपने स्फुट-सिद्धांत में जैनों की दो सूर्य और दो चन्द्र की मान्यता का खंडन किया है। लेकिन डॉक्टर थीबो ने बताया है कि ग्रीक लोगों के भारतवर्ष में आने के पहले जैनों का उक्त सिद्धांत सर्वमान्य था। देखिये जरनल ऑव द एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल, जिल्द ४९, पृष्ठ १०७ आदि, १८१ आदि, 'आन द सूर्यप्रज्ञप्ति' नामक लेख।

धर्मसागरोपाध्याय ने वि० स० १६३६ मे टीका लिखी जिसे उन्होंने अपने गुरु हीरविजय के नाम से प्रसिद्ध किया। पुण्यसागरोपाध्याय ने वि० सं० १६४५ में इसकी टीका की रचना की, यह टीका अप्रकाशित है। उसके बाद बादशाह अकबर के गुरु हीरविजय सूरि के शिष्य शान्तिचन्द्रवाचक ने वि० स० १६५० में प्रमेयरत्नमंजूषा नाम की टीका लिखी।[1] ब्रह्मर्षि ने एक दूसरी टीका लिखी, यह भी अप्रकाशित है। अनेक स्थानो पर त्रुटित होने के कारण प्रमेयरत्नमंजूषा टीका की पूर्ति जीवाजीवाभिगम आदि के पाठों से की गई है। यह ग्रन्थ दो भागों में विभाजित है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में चार और उत्तरार्ध में तीन वक्षस्कार हैं जो १७६ सूत्रों में विभक्त हैं। पहले वक्षस्कार में जम्बूद्वीपस्थित भरतक्षेत्र (भारतवर्ष) का वर्णन है जो अनेक दुर्गम स्थान, पर्वत, गुफा, नदी, अटवी, श्वापद आदि से वेष्टित है, जहाँ अनेक तस्कर, पाखंडी, याचक आदि रहते हैं और जो अनेक विप्लव, राज्योपद्रव, दुष्काल, रोग आदि से आक्रान्त है। दूसरे वक्षस्कार मे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का वर्णन करते हुए सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा और दुषमा-सुषमा नाम के छह कालों का विवेचन है। सुषमा-सुषमा काल मे दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन है जिनसे इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। सुषमा-दुषमा नाम के तीसरे काल में १५ कुलकरों का जन्म हुआ जिनमें नाभि कुलकर की मरुदेवी नाम की पत्नी से आदि तीर्थंकर ऋषभ उत्पन्न हुए। ऋषभ कोशल के निवासी थे, तथा वे प्रथम

---

१. यह ग्रन्थ शान्तिचन्द्र की टीका के साथ देवचन्द लालभाई ग्रन्थमाला में निर्णयसागर प्रेस, बबई मे १९२० में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ की चूर्णी देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थांक ११० में छप रही है। कुछ मुद्रित फर्मे मुनि पुण्यविजयजी की कृपा से देखने को मुझे मिले। दिगम्बर आचार्य पद्मनन्दिमुनि ने भी जम्बुद्दीवपण्णत्ति की रचना की है। देखिये आगे चौथा अध्याय।

राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मवरचक्रवर्ती कहे जाते थे। उन्होने ७२ कलाओ, स्त्रियो की ६४ कलाओ तथा अनेक शिल्पों का उपदेश दिया। तत्पश्चात् अपने पुत्रों का राज्याभिषेक कर श्रमणधर्म में दीक्षा ग्रहण की। तपस्वी-जीवन मे उन्होने अनेक उपसर्ग सहन किये। पुरिमताल नगर के उद्यान मे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई और वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहलाने लगे। अष्टापद (कैलाश) पर्वत पर उन्होने सिद्धि प्राप्त की। उनकी अस्थियों पर चैत्य और स्तूप स्थापित किये गये। दुषमा-सुषमा नाम के चौथे काल मे २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ६ बलदेव और ६ वासुदेवो ने जन्म लिया। दुषमा काल में धर्म और चारित्र के, तथा दुषमा-दुषमा नामक छठे काल में प्रलय होने पर समस्त मनुष्य, पशु, पक्षी और वनस्पति के नाश होने का उल्लेख है। तीसरे वक्षस्कार में भरत चक्रवर्ती और उसकी दिग्विजय का विस्तृत वर्णन है।[1] इस अवसर पर भरत और किरातो की सेनाओ मे घनघोर युद्ध का वर्णन किया गया है। अष्टापद पर्वत पर भरत चक्रवर्ती को निर्वाण प्राप्त हुआ। पाँचवे वक्षस्कार में तीर्थंकर के जन्मोत्सव का वर्णन है।

चन्दपन्नत्ति (चन्द्रप्रज्ञप्ति)

चन्द्रप्रज्ञप्ति का विषय सूर्यप्रज्ञप्ति से बिलकुल मिलता है।[2] इसमें २० प्राभृतों में चन्द्र के परिभ्रमण का वर्णन है। सूर्यप्रज्ञप्ति की भाँति इन प्राभृतों का वर्णन गौतम इन्द्रभूति और महावीर

---

१. तुलना के लिये विष्णुपुराण और भागवतपुराण (५) देखना चाहिये।

२ विंटरनीज़ के अनुसार मूलरूप में इस उपांग की गणना सूर्य-प्रज्ञप्ति से पहले की जाती थी और इसका विषय मौजूदा विषय से भिन्न था, हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर, भाग २, पृष्ठ ४५७।

के प्रश्नोत्तरो के रूप में किया गया है। बीच-बीच में अन्य मान्यताओ का उल्लेख है। इस पर मलयगिरि ने टीका लिखी है। श्रीअमोलक ऋषि ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है जो हैदराबाद से प्रकाशित हुआ है। स्थानागसूत्र में चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति को अंगबाह्य श्रुत मे गिना गया है।

निरयावलिया अथवा कप्पिया (कल्पिका)

निरवलिया श्रुतस्कंध में पॉच उपाग हैं—१. निरयावलिया अथवा कप्पिया (कल्पिका), २. कप्पवडंसिया (कल्पावतसिका), ३. पुप्फिया (पुष्पिका), ४. पुप्फचूलिया (पुष्पचूलिका), ५. वण्हिदसा (वृष्णिदशा)।[1] श्रीचन्द्रसूरि ने इन पर टीका लिखी है। पहले ये पाँचों उपांग निरयावलिसूत्र (निरय+आवलि=नरक की आवलिका का जिसमें वर्णन हो) के नाम से कहे जाते थे, लेकिन आगे चलकर १२ उपांगों और १२ अंगों का संबंध जोड़ने के लिये इन्हें अलग-अलग गिना जाने लगा। राजगृह में विहार करते समय सुधर्मा नामक गणधर ने अपने शिष्य आर्य जम्बू के प्रश्नोंका समाधान करने के लिये इन उपांगों का प्रतिपादन किया।

निरयावलिया सूत्र में दस अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में कूणिक (अजातशत्रु) का जन्म, कूणिक का अपने पिता श्रेणिक (बिंबसार) को जेल में डालकर स्वयं राज्यसिहासन पर बैठना, श्रेणिक की आत्महत्या, कूणिक का अपने छोटे भाई वेहल्लकुमार से सेचनक हाथी लौटाने के लिये अनुरोध, तथा कूणिक और वैशाली के गणराजा चेटक के युद्ध का वर्णन है—[2]

---

१ प्रोफेसर गोपाणी और चौकसी द्वारा सपादित, १९३८ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

२. दीघनिकाय के महापरिनिब्बाणसुत्त में वज्जियों के विरुद्ध अजातशत्रु के युद्ध का वर्णन है।

तए णं से कूणिए कुमारे अन्नया कयाइ सेणियस्स रन्नो अंतरं जाणइ, जाणित्ता सेणिय राय नियलबधण करेइ, करेत्ता अप्पाणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेइ। तए णं से कूणिए कुमारे राया जाए महया महया -। तए ण से कूणिए राया अन्नया कयाइ ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए चेल्लणाए देवीए पायवदए हव्वमागच्छइ। तए ण से कूणिए राया चेल्लण देविं ओहय० जाव झियायमाणिं पासइ, पासित्ता चेल्लणाए देवीए पायग्गहण करेइ, करेत्ता चेल्लण देविं एव वयासि—किं णं अम्मो, तुम्ह न तुट्ठी वा न ऊसए वा न हरिसे वा नाणंदे वा ? ज णं अहं सयमेव रज्जसिरि जाव विहरामि। तए णं सा चेल्लणा देवी कूणियं राय एवं वयासि—कहण्णं पुत्ता, ममं तुट्ठी वा उस्सए हरिसे वा आणंदे वा भविस्सइ ? जं ण तुमं सेणियं रायं पिय देवय गुरुजणगं अच्चतनेहाणुरागरत्तं नियलबधणं करित्ता अप्पाणं महया रायाभिसेएण अभिसिंचावेसि। तए णं से कूणिए राया चिल्लण देविं एव वयासी—घाएउकामे णं अम्मो, मम सेणिए राया, एव मारेउ बधिउं निच्छुभिउकामए णं अम्मो, मम सेणिए राया, त कहन्न अम्मो मम सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते ? तए णं सा चेल्लणा देवी कूणिय कुमारं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता, तुमंसि मम गब्भे आभूये समाणे तिण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं ममं अमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ जाव अगपडिचारियाओ निरवसेसं भाणियव्वं जाव जाहे वि य णं तुमं वेयणाए अभिभूए म्हया जाव तुसिणीए संचिट्ठसि एवं खलु तव पुत्ता, सेणिये राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते। तए ण कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चिल्लणं देविं एव वयासि—दुट्ठुं णं अम्मो, मए कयं, सेणिय राय पिय देवय गुरुजणगं अच्चतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करतेण, तं गच्छामि ण सेणियस्स रन्नो सयमेव नियलाणि छिंदामि त्ति कट्टु परसुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारित्थ गमणाए।

—इसके बाद कूणिक कुमार ने राजा के दोषों का पता लगाकर उसे बेड़ी में बँधवा दिया और बड़े ठाठ-बाट से अपना राज्याभिषेक किया। एक दिन वह स्नान कर और अलंकारों से विभूषित हो चेलना रानी के पाद-वंदन करने के लिये गया। उसने देखा कि चेलना किसी सोच-विचार में बैठी हुई है। कूणिक ने चेलना के चरणस्पर्श कर प्रश्न किया—"माँ, अब तो मैं राजा बन गया हूँ, फिर तुम क्यों सन्तुष्ट नहीं हो?" चेलना ने उत्तर दिया—'बेटे, तू ने मुझसे स्नेह करनेवाले देवतुल्य अपने पिता को जेल में डाल दिया है, फिर भला मुझे कैसे संतोष हो सकता है?" कूणिक ने कहा—"माँ, वह मेरी हत्या करना चाहता था, मुझे देशनिकाला देना चाहता था, फिर तुम कैसे कहती हो कि वह मुझसे स्नेह करता था?" चेलना ने उत्तर दिया—"बेटे, तू नहीं जानता कि जब तू गर्भ में आया तो मुझे तेरे पिता के उदर का मांस भक्षण करने का दोहद हुआ।[1] उस समय तेरे पिता को हानि पहुँचाये बिना अभयकुमार की कुशल युक्ति से मेरी इच्छा पूरी की गई। तेरे पैदा होने पर तुझे अपशकुन जान कर मैंने तुझे कूड़ी पर फिकवा दिया। वहाँ मुर्गे की पूँछ से तेरी उँगली में चोट लग जाने के कारण तेरी उँगली में वेदना होने लगी। उस समय तेरी वेदना शान्त करने के लिये तेरे पिता तेरी दुखती हुई उँगली को अपने मुँह में डालकर चूस लेते जिससे तेरा दर्द शान्त हो जाता। इससे तू समझ सकता है कि राजा तुझे कितना प्यार करता था।" यह सुनकर कूणिक को अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप हुआ, और वह हाथ में कुठार ले अपने पिता के बंधन काटने के लिये जेल की ओर चल दिया।[2]

---

१. बौद्धों के अनुसार राजा के दाहिने घुटने का रक्तपान करने का दोहद रानी को हुआ था (दीघनिकाय अट्ठकथा, १, पृष्ठ १३३ इत्यादि)।

२. बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अजातशत्रु ने अपने पिता को तापन-गेह में रक्खा था, केवल उसकी माता ही उससे मिलने जा सकती थी।

कप्पवडंसिया (कल्पावतंसिका)

कल्पावतसिका (कल्पावतस अर्थात् विमानवासी देव) मे दस अध्ययन हैं। इनमें राजा श्रेणिक के दस पौत्रो का वर्णन है।

पुप्फिया (पुष्पिका)

पुष्पिका मे भी दस अध्ययन है। पहले और दूसरे अध्ययनो में चन्द्र और सूर्य का वर्णन है। तीसरे अध्ययन मे सोमिल ब्राह्मण की कथा है। इस ब्राह्मण ने वानप्रस्थ तपस्वियो की दीक्षा ग्रहण की थी। वह दिशाओ का पूजक था तथा भुजाये ऊपर उठाकर सूर्याभिमुख हो तप किया करता था। चौथे अध्ययन मे सुभद्रा नाम की आर्यिका की कथा है। सतान न होने के कारण सुभद्रा अत्यत दुखी रहती। उसने सुव्रता के पास श्रमणदीक्षा ग्रहण कर ली। लेकिन आर्यिका होकर भी सुभद्रा बालको से बहुत स्नेह करती थी। कभी वह उनका शृगार करती, कभी गोदी मे बैठाकर उन्हे खिलाती-पिलाती और उनसे क्रीड़ा किया करती थी। उसे बहुत समझाया गया लेकिन वह न मानी। दूसरे जन्म मे वह किसी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुई और बच्चो के मारे उसकी नाक में दम हो गया।[1]

वह अपने बालों मे भोजन छिपा कर ले जाने लगी, बाद मे उसने अपने शरीर पर सुगंधित जल लगाना शुरू किया जिसे चाटकर राजा अपनी क्षुधा शान्त कर लेता था। अजातशत्रु को जब इस बात का पता लगा तो उसने अपनी माता का मिलना बन्द कर दिया। अजातशत्रु ने गुस्से में आकर राजा के पैरों को काट कर उसे तेल और नमक मे तलवाया जिससे राजा की मृत्यु हो गई। इतने में अजातशत्रु को पुत्रजन्म का समाचार मिला। वह अपने पिता को तापनगेह से मुक्त करना चाहता था, लेकिन उसके तो प्राणों का अन्त हो चुका था। वही, पृष्ठ १२५ इत्यादि।

१. स्थानांगसूत्र के अनुसार इस अध्ययन में प्रभावती का वर्णन होना चाहिये था।

पुप्फचूला (पुष्पचूला)

इस उपांग में श्री, ह्री, धृति आदि दस अध्ययन हैं।

वण्हिदसा (वृष्णिदशा)

नन्दीचूर्णी के अनुसार यहाँ पर अंधग शब्द का लोप हो गया है, वस्तुतः इस उपांग का नाम अंधगवृष्णिदशा है। इसमें बारह अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में द्वारवती (द्वारका) नगरी के राजा कृष्ण वासुदेव का वर्णन है। अरिष्टनेमि विहार करते हुए रैवतक पर्वत पर आये। कृष्ण वासुदेव हाथी पर सवार हो अपने दल-बल सहित उनके दर्शन के लिये गये। वृष्णिवंश के १२ पुत्रों ने अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ग्रहण की।



दस पइण्णग (दस प्रकीर्णक)

नंदीसूत्र के टीकाकार मलयगिरि के अनुसार तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट श्रुत का अनुसरण करके श्रमण प्रकीर्णको की रचना करते हैं, अथवा श्रुत का अनुसरण करके वचनकौशल से धर्म-देशना आदि के प्रसंग से श्रमणो द्वारा कथित रचनायें प्रकीर्णक कही जाती हैं। महावीर के काल मे प्रकीर्णकों की संख्या १४,००० बताई गई है। आजकल मुख्यतया निम्नलिखित दस प्रकीर्णक उपलब्ध है—चउसरण (चतु.शरण), आउरपच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान), महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यान), भत्त-परिण्णा (भक्तपरिज्ञा), तन्दुलवेयालिय (तन्दुलवैचारिक), संथारग (संस्तारक), गच्छायार (गच्छाचार), गणिविज्जा (गणिविद्या), देविंदथय (देवेन्द्रस्तव) मरणसमाही (मरण-समाधि)।[1]

चउसरण (चतुःशरण)

चतुःशरण को कुसलाणुबंधि अज्झयण भी कहा है। इसमें ६३ गाथायें हैं। अरिहंत, सिद्ध, साधु और जिनदेशित धर्म को एकमात्र शरण माना गया है, इसलिये इस प्रकीर्णक को चतुःशरण कहा जाता है। यहाँ दुष्कृत की निन्दा और सुकृत के प्रति अनुराग व्यक्त किया है। इस प्रकीर्णक को त्रिसंध्य ध्यान करने योग्य कहा है। अन्तिम गाथा में वीरभद्र का उल्लेख होने

---

१. कुछ लोग मरणसमाही और गच्छायार के स्थान पर चन्दाविज्झय (चन्द्रावेध्यक) और वीरत्थव को दस प्रकीर्णकों में मानते हैं। अन्य देविंदथय और वीरत्थव को मिला देते हैं, तथा संथारग को नहीं गिनते और इनकी जगह गच्छायार और मरणसमाही का उल्लेख करते हैं। चउसरण आदि दस प्रकीर्णक आगमोदय समिति की ओर से १९२७ में प्रकाशित हुए हैं।

से यह रचना वीरभद्रकृत मानी जाती है। इस पर भुवनतुग की वृत्ति और गुणरत्न की अवचूरि है।

आउरपच्चक्खाण (आतुरप्रत्याख्यान)

इसे बृहदातुरप्रत्याख्यान भी कहा है। इसमें ७० गाथाये है। दस गाथाओ के बाद का कुछ भाग गद्य मे है। यहाँ बालमरण और पण्डितमरण के सम्बन्ध मे विस्तृत विवेचन है। प्रत्याख्यान को शाश्वत गति का साधक बताया है। इसके कर्ता भी वीरभद्र माने जाते हैं।[1] इस पर भी भुवनतुङ्ग ने वृत्ति और गुणरत्न ने अवचूरि लिखी है।

महापच्चक्खाण (महाप्रत्याख्यान)

इसमें १४२ गाथाये हैं जिसमें से कुछ अनुष्टुप् छन्द में हैं। यहाँ दुष्चरित्र की निन्दा की गई है। एकत्व भावना, माया का त्याग, संसार-परिभ्रमण, पंडितमरण, पुद्गलो से अतृप्ति, पाँच महाव्रत, दुष्कृतनिन्दा, वैराग्य के कारण, व्युत्सर्जन, आराधना आदि विविध विषयो पर यहाँ विचार किया गया है। प्रत्याख्यान के पालन करने से सिद्धि बताई है।

भत्तपरिण्णय (भक्तपरिज्ञा)

इसमें १७२ गाथाये हैं। अभ्युद्यत मरण द्वारा आराधना होती है। इस मरण को भक्तपरिज्ञा, इंगिनी और पादोपगमन के भेद से तीन प्रकार का बताया है। दर्शन को मुख्य बताते हुए कहा है कि दर्शन से भ्रष्ट होनेवालो को निर्वाण की प्राप्ति नही होती। घोर कष्ट सहन कर सिद्धि पानेवालों के अनेक दृष्टान्त दिये हैं। मन को बंदर की उपमा देते हुए कहा है कि जैसे बंदर एक क्षण भर के लिये भी शान्त नही बैठ सकता, वैसे ही मन कभी निर्विषय नहीं होता। स्त्रियो को भुजंगी की उपमा देते हुए

---

1. इस प्रकीर्णक की कुछ गाथायें मूलाचार में पाई जाती हैं।

उन्हें अविश्वास की भूमि, शोक की नदी, पाप की गुफा, कपट की कुटी, क्लेशकरी, दु:ख की खानि आदि विशेषणो से संबोधित किया है। उदासीन भाव क्यो रखना चाहिये—

छलिआ अवयक्खता निरावयक्खा गया अविग्घेण।
तम्हा पवयणसारे निरावयक्खेण होअव्वं॥

—अपेक्षायुक्त जीव छले जाते है, निरपेक्ष निर्विघ्न पार होते हैं। अतएव प्रवचनसार मे निरपेक्ष भाव से रहना चाहिये।

इस प्रकीर्णक के कर्ता भी वीरभद्र माने जाते हैं। गुणरत्न ने इस पर अवचूरि लिखी है।

तन्दुलवेयालिय (तन्दुलवैचारिक)[1]

इसमें ५८६ गाथाये हैं, बीच-बीच में कुछ सूत्र हैं। यहाँ गर्भ का काल, योनि का स्वरूप, गर्भावस्था मे आहारविधि, माता-पिता के अङ्गो का उल्लेख, जीव की बाल, क्रीड़ा, मद आदि दस दशाओ का स्वरूप और धर्म मे उद्यम आदि का विवेचन है। युगलधर्मियो के अग-प्रत्यगो का साहित्यिक भाषा मे वर्णन है जो सस्कृत काव्य-ग्रन्थो का स्मरण कराता है। सहनन और सस्थानो का विवेचन है। तदुल की गणना, काल के विभाग—श्वास आदि का मान, शिरा आदि की संख्या का—प्रतिपादन है। काय की अपवित्रता का प्ररूपण करते हुए कामुको को उपदेश दिया है। स्त्रियो को प्रकृति से विषम, प्रियवचनवादिनी, कपटप्रेम-गिरि की तटिनी, अपराधसहस्र की गृहिणी, शोक उत्पन्न करनेवाली, बल का विनाश करनेवाली, पुरुषो का वधस्थान' वैर की खानि, शोक का शरीर, दुश्चरित्र का स्थान, ज्ञान की

---

१. सौ वर्ष की आयुवाला पुरुष प्रति दिन जितना तन्दुल—चावल-खाता है, उसकी संख्या के विचार के उपलक्षण से यह सूत्र तन्दुल-वैचारिक कहा जाता है, मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन साहित्य नो इतिहास, पृष्ठ ८०।

स्खलना, साधुओं की वैरिणी, मत्त गज की भाँति काम के परवश, बाघिन की भाँति दुष्टहृदय, कृष्ण सर्प के समान अविश्वसनीय, वानर की भाँति चचल-चित्त, दुष्ट अश्व की भाँति दुर्दम्य, अरतिकर, कर्कशा, अनवस्थित, कृतघ्न आदि विशेपणो से सबोधित किया है। नारी के समान पुरुषो का और कोई अरि नही है (नारीसमा न नराणं अरीओ नारीओ) इसलिये उन्हें नारी, अनेक प्रकार के कर्म और शिल्प आदि के द्वारा पुरुषो को मोहित करने के कारण महिला (नाणाविहेहि कम्मेहि सिप्पइयाएहि पुरिसे मोहंति ति महिलाओ), पुरुपो को मदयुक्त करने के कारण प्रमदा (पुरिसे मत्ते करंति त्ति पमयाओ), महान् कलह उत्पन्न करने के कारण महिलिया (महंतं कलि जणयंति त्ति महिलियाओ), पुरुषों को हावभाव आदि के कारण रमणीय प्रतीत होने के कारण रामा (पुरिसे हावभावमाइएहि• रमति ति रामाओ), पुरुपो के अगो मे राग उत्पन्न करने के कारण अंगना (पुरिसे अगाणुराए करिति त्ति अंगणाओ), अनेक युद्ध, कलह, संग्राम, अटवी, शीत, उष्ण, दुःख, क्लेश आदि उपस्थित होने पर पुरुषो का लालन करने के कारण ललना (नाणाविहेसु जुद्धभडणसंगामाडवीसु मुहारणगिण्हणसीउण्हदुक्खकिलेससमाइएसु पुरिसे लालति त्ति ललणाओ), योग-नियोग आदि द्वारा पुरुषो को वश करने के कारण योषित् (पुरिसे जोगनिओएहिं वसे ठाविति त्ति जोसियाओ), तथा पुरुषों का अनेक प्रकार के भावो द्वारा वर्णन करने के कारण वनिता (नाणाविहेहिं भावेहिं वण्णिंति त्ति वणिआओ) कहा है।[1] विजयविमल ने इस पर वृत्ति लिखी है।

---

१ सयुत्तनिकाय के सळायतन-वग्ग के अन्तर्गत मातुग्गामसयुत्त में बुद्ध भगवान् ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक दुःखभागिनी माना है। उन्हें पाँच कष्ट होते हैं—बाल्यकाल में माता-पिता का घर छोड़ना पड़ता है, दूसरे के घर जाना पड़ता है, गर्भधारण करना पड़ता है, प्रसव करना पड़ता है, पुरुष की सेवा करनी पड़ती है। भरतसिंह उपाध्याय, पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६८।

संथारग (संस्तारक)

इसमें १२३ गाथाये हैं। इसमें अन्तिम समय में आराधना करने के लिये सस्तारक (दर्भ आदि की शय्या) के महत्त्व का वर्णन है। जैसे मणियो में वैडूर्य, सुगंधित पदार्थों मे गोशीर्ष चन्दन और रत्नो मे वज्र श्रेष्ठ है, वैसे ही संस्तारक को सर्वश्रेष्ठ बताया है। तृणो का संस्तारक बनाकर उस पर आसीन हुआ मुनि मुक्तिसुख को प्राप्त करता है। संस्तारक पर आरूढ होकर पडितमरण को प्राप्त होनेवाले अनेक मुनियो के दृष्टात यहाँ दिये गये हैं। सुबंधु, चाणक्य आदि गोबर के उपलो की अग्नि मे प्रदीप्त हो गये और उन्होने परमगति प्राप्त की।[1] इस पर भी गुणरत्न ने अवचूरि लिखी है।

गच्छायार (गच्छाचार)

इसमें १३७ गाथाये हैं, कुछ अनुष्टुप् छंद मे हैं और कुछ आर्या मे। इस पर आनन्दविमलसूरि के शिष्य विजयविमलगणि की टीका है। महानिशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्रो की सहायता से साधु-साध्वियो के हितार्थ यह प्रकीर्णक रचा गया है। इसमे गच्छ में रहनेवाले आचार्य तथा साधु और साध्वियो के आचार का वर्णन है। आचारभ्रष्ट, आचार-भ्रष्टो की उपेक्षा करनेवाला तथा उन्मार्गस्थित आचार्य मार्ग को नाश करनेवाला कहा गया है। गच्छ मे ज्येष्ठ साधु कनिष्ठ साधु के प्रति विनय, वैयावृत्य आदि के द्वारा बहुमान प्रदर्शित करते है, तथा वृद्ध हो जाने पर भी स्थविर लोग आर्याओ के साथ वार्तालाप नहीं करते। आर्याओ के संसर्ग को अग्निविष के समान बताया है। संभव है कि स्थविर का चित्त स्थिर हो, फिर भी अग्नि के समीप रहने से जैसे घी पिघल जाता है, वैसे ही स्थविर के संसर्ग से आर्या का चित्त

---

१. डाक्टर ए० एन० उपाध्याय ने बृहत्कथाकोश की भूमिका (पृष्ठ २६-२९) में भत्तपरिन्ना, मरणसमाही और संथारग की कथाओं को एक साथ दिया है।

पिघल सकता है। ऐसे समय यदि स्थविर अपना सयम खो बैठे तो उसकी ऐसी ही दशा होती है जैसे श्लेष्म (कफ) मे लिपटी हुई मक्खी की। इसलिये साधु को बाला, वृद्धा, नातिन, दुहिता और भगिनी तक के शरीर के स्पर्श का निषेध किया है।[1] गच्छाचार की टीका (६३-६६) मे वराहमिहिर को भद्रबाहु का भाई बताया है। चदसूरपन्नत्ति आदि शास्त्रो का अध्ययन करके वराहमिहिर ने वाराहीसहिता की रचना की, ऐसा उल्लेख यहाँ मिलता है।

गणिविज्जा (गणिविद्या)

इसमें ८२ गाथायें हैं। यह ज्योतिप का ग्रन्थ है। यहाँ दिवस-तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रह-दिवस, मुहूर्त, शकुन-बल, लग्न-बल और निमित्त-बल का विवेचन है। होरा शब्द का यहाँ प्रयोग हुआ है।

देविंदथय (देवेन्द्रस्तव)

इसमें ३०७ गाथाये हैं। यहाँ कोई श्रावक चौबीस तीर्थकरो का वन्दन करके महावीर का स्तवन करता है। इस प्रसंग पर श्रावक की पत्नी अपने पति से इन्द्र आदि के संबध में प्रश्न पूछती है। प्रश्न के उत्तर में श्रावक ने कल्पोपन्न और कल्पातीत देवों आदि का वर्णन किया है। इस प्रकीर्णक के रचयिता वीरभद्र माने जाते हैं।

मरणसमाही (मरणसमाधि)

मरणसमाधि प्रकीर्णको में सबसे बड़ा है। इसमे ६६३ गाथाये हैं। मरणविभक्ति, मरणविशोधि, गुणरत्न, मरणसमाधि, संलेखना श्रुत, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और आराधना इन श्रुतो के आधार से मरणविभक्ति अथवा

1. मिलाइये मनुस्मृति (२–२१५) के साथ—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

मरणसमाधि की रचना की गई है। आरम्भ में शिष्य प्रश्न करता है कि समाधिपूर्वक मरण किस प्रकार होता है? इसके उत्तर में आराधना, आराधक, तथा आलोचना, संलेखना, क्षामणा, काल, उत्सर्ग, अवकाश, संस्तारक, निसर्ग, वैराग्य, मोक्ष, ध्यानविशेष, लेश्या, सम्यक्त्व और पादोपगमन इन चौदह द्वारो का विवेचन किया है। आचार्य के गुणो आदि का प्रतिपादन है। अनशन तप का लक्षण और ज्ञान की महिमा बताई गई है। यहाँ संलेखना की विधि और पंडितमरण आदि का विवेचन है। धर्म का उपदेश देने के लिये अनेक श्रेष्ठी आदि के दृष्टान्त दिये हैं। परीषह-सहन कर पादोपगमन आदि तप के द्वारा सिद्धगति पानेवालो के दृष्टात उल्लिखित हैं। अंत में बारह भावनाओ का विवेचन है।

उक्त दस प्रकीर्णको के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकीर्णकों की रचना हुई।[1] इसमें ऋषिभाषित, तीर्थोद्गार (तित्थुग्गालिय), अजीवकल्प, सिद्धपाहुड, आराधनापताका, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या, योनिप्राभृत आदि मुख्य हैं।

तित्थोगालियपयन्नु (तीर्थोद्गार)

यह ग्रन्थ श्रुत से उद्धृत किया गया है, इसमें १२३३ गाथाये हैं। इसकी विक्रम संवत् १४५२ की लिखी हुई एक ताड़पत्र की प्रति पाटण के भडार में मौजूद है। इसमे पाटलिपुत्र की वाचना का विस्तृत वर्णन है। यहाँ कहा गया है कि पालक के ६०, नन्दो के १५०, मौर्यों के १६०, पुष्यमित्र के ३५, बलमित्र-भानुमित्र के ६०, नहसेण के ४० और गर्दभिल्ल के १०० वर्ष समाप्त होने पर शक राजाओ का राज्य स्थापित हुआ। इस ग्रन्थ मे वलभी नगर के भग होने का उल्लेख मिलता है।[2] मुनि कल्याणविजय

---

१ जैन श्वेतांम्बर कान्फरेन्स, मुम्बई द्वारा वि० स० १९६५ में प्रकाशित जैनग्रन्थावलि में पृष्ठ ७२ पर प्रकीर्णकों की तीन भिन्न-भिन्न सूचिया दी हुई हैं।

२. मेरुतुङ्ग के प्रबन्धचिंतामणि (पृ० १०९) के अनुसार विक्रम काल के ३७५ वर्ष बाद वलभी का भग हुआ। प्रभावकचरित (पृष्ठ

जी ने अपने 'वीरसंवत् और जैनकालगणना' (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, जिल्द १०-११ मे प्रकाशित) नामक निबध में तित्थोगालिय का कुछ अंश उद्धृत किया है। मुनि जी के कथनानुसार इस प्रकीर्णक की रचना विक्रम की चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवी शताब्दी के आरम्भ मे हुई होनी चाहिये।

अजीवकल्प

इसमें ४० गाथाये हैं। इसकी एक अति जीर्ण त्रुटित प्रति पाटण के भण्डार में मौजूद है। इसमे आहार, उपधि, उपाश्रय, प्रस्रवण, शय्या, निषद्या, स्थान, दण्ड, परदा, अवलेखनिका, दन्तधावन आदिसम्बन्धी उपघातों का वर्णन है।

सिद्धपाहुड (सिद्धप्राभृत)

इसमें ११६ गाथाओं में सिद्धो के स्वरूप आदि का वर्णन है।[1]

इस पर एक टीका भी है। अग्रायणी नामके दूसरे पूर्व के आधार से इसकी रचना हुई है।

आराधनापताका

यह ग्रन्थ भी अभीतक अप्रकाशित है, इसकी हस्तलिखित प्रति पाटण भण्डार में मौजूद है। इसके कर्ता वीरभद्र हैं

---

७४) के अनुसार वीरनिर्वाण के ८४५ वर्ष पश्चात् किसी तुरुष्क के हाथ से वलभी का नाश हुआ परन्तु जिनप्रभसूरि के तीर्थकल्प में कहा है कि गज्जणवइ (गज़नी का बादशाह) हम्मीद द्वारा वि० सं० ८४५ में वलभी का भग हुआ। मोहनलाल दलीचन्द देसाई तीर्थकल्प के उल्लेख को ही अधिक विश्वसनीय मानते हैं, जैन साहित्य नो इतिहास, पृष्ठ १४५ फुटनोट।

१. आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर की ओर से सन् १९२१ में प्रकाशित।

जिन्होने वि० स० १०७८ में इस प्रकीर्णक की रचना की। इसमें ६६० गाथायें हैं।

द्वीपसागरप्रज्ञप्ति

इसमें २८० गाथाये हैं जिनमें द्वीप सागर का कथन है। यह भी अप्रकाशित है।

जोइसकरंडग (ज्योतिष्करंडक)

पूर्वाचार्यरचित यह आगम वलभी वाचना के अनुसार संकलित है।[1] इस पर पादलिप्तसूरि ने प्राकृत टीका की रचना की थी। इस टीका के अवतरण मलयगिरि ने इस ग्रन्थ पर लिखी हुई अपनी संस्कृत टीका में दिये हैं। यहाँ सूर्यप्रज्ञप्ति के विषय का संक्षेप में कथन किया गया है। इसमें २१ प्राभृत हैं जिनमें कालप्रमाण, घटिकादि कालमान, अधिकमासनिष्पत्ति, तिथिसमाप्ति, चन्द्र-नक्षत्र आदि संख्या, चन्द्रादि-गति-गमन, दिन-रात्रि-वृद्धि-अपवृद्धि आदि खगोल सम्बन्धी विषय का कथन है।

अंगविज्जा (अंगविद्या)

इसके सम्बन्ध में इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में लिखा जायेगा।

पिंडविसोहि (पिंडविशुद्धि)

इसके कर्ता जिनवल्लभगणि हैं जो विक्रम संवत् की १२वीं शताब्दी में मौजूद थे।[2] पिंडनिज्जुत्ति के आधार पर उन्होंने

---

१ ऋषभदेवकेशरीमल संस्था, रतलाम की ओर से सन् १९२८ में प्रकाशित।

२. विजयदान सूरीश्वर जी जैनग्रंथमाला, सूरत द्वारा सन् १९३९ में प्रकाशित।

इसकी रचना की है। इस ग्रन्थ पर श्रीचन्द्रसूरि, यशोदेव आदि आचार्यों ने वृत्ति, अवचूरि, और दीपिका की रचना की है।

तिथिप्रकीर्णक

कोई तिथिप्रकीर्णक की भी गिनती प्रकीर्णकों में करते हैं।

सारावलि

इसमें ११६ गाथाये हैं। आरभ में पंच परमेष्ठियो की स्तुति है।

पज्जंताराहणा (पर्यंताराधना)

इसे आराधनाप्रकरण या आराधनासूत्र भी कहते हैं। इसमें ६६ गाथाये हैं।[1] इसके कर्ता सोमसूरि हैं। इसमे अन्तिम आराधना का स्वरूप समझाया गया है।

जीवविभक्ति

इसमे २५ गाथायें हैं। इसके कर्ता जिनचन्द्र हैं।

कवचप्रकरण

इसके कर्ता जिनेश्वरसूरि के शिष्य नवांग-वृत्तिकार अभयदेव-सूरि के गुरु जिनचन्द्रसूरि थे। इसमें १२३ गाथायें हैं।

जोणिपाहुड

इसके सम्बन्ध में इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में लिखा जायेगा।

कोई अगचूलिया, वंगचूलिया (वग्गचूलिया) और जंबुपयन्ना को भी प्रकीर्णकों में गिनते हैं।



१. अवचूरि और गुजराती अनुवाद सहित श्रीबुद्धि-वृद्धि कपूर-ग्रथमाला की ओर से वि० स० १९८४ में प्रकाशित।

छेदसूत्र

छेदसूत्र जैन आगमो का प्राचीनतम भाग होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन सूत्रो मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो के प्रायश्चित्त की विधि का प्रतिपादन है। ये सूत्र चारित्र की शुद्धता स्थिर रखने में कारण हैं, इसलिये इन्हें उत्तमश्रुत कहा है (जम्हा एत्थ सपायच्छित्तो विधी भण्णति, जम्हा य तेण चरणविसुद्धी करेति, तम्हा त उत्तमसुतं—निशीथ, १६ उद्देशक, ६१८४ भाष्यगाथा की चूर्णी, (पृ० २५३)। छेदसूत्रो में जैन भिक्षुओ के आचार-विचारसंबधी नियमो का विवेचन है जिसे भगवान महावीर और उनके शिष्यो ने देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार श्रमण सम्प्रदाय के लिये निर्धारित किया था। बौद्धो के विनयपिटक से इनकी तुलना की जा सकती है। छेदसूत्रों के गंभीर अध्ययन के बिना कोई आचार्य अपने संघाड़े (भिक्षु सम्प्रदाय) को लेकर ग्रामानुग्राम विहार नहीं कर सकता, गीतार्थ नही बन सकता तथा आचार्य और उपाध्याय जैसे उत्तरदायी पदो का अधिकारी नही हो सकता। निशीथ के भाष्यकर्ता ने छेदसूत्रो को प्रवचन का रहस्य प्रतिपादित कर गुह्य बताया है।[1] जैसे कच्चे घडे मे रक्खा हुआ जल घडे को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार इन सूत्रों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का रहस्य अल्प सामर्थ्यवाले व्यक्ति के नाश का कारण होता है। छेदसूत्र संक्षिप्त शैली में लिखे गये हैं। इनकी सख्या छह है—निसीह (निशीथ), महानिसीह (महानिशीथ),

---

१ बौद्धों के विनयपिटक को भी छिपाकर रखने का आदेश है जिससे अपयश न हो। देखिये मिलिन्दपण्ह (हिन्दी अनुवाद, पृ० २३२)।

ववहार (व्यवहार),[1] दसासुयक्खंध (दशाश्रुतस्कंध), कप्प (बृहत्कल्प), पंचकप्प (पंचकल्प अथवा जीयकप्प—जीतकल्प) ।

निसीह (निशीथ)

छेदसूत्रो में निशीथ का स्थान सर्वोपरि है,[2] और यह सबसे बड़ा है। इसे आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध की पाँचवी चूला मानकर आचारांग का ही एक भाग माना जाता है। इसे निशीथचूला अध्ययन कहा गया है। इसका दूसरा नाम आचारप्रकल्प है। निशीथ का अर्थ है अप्रकाश (अधकार-रात्रि[3])। जैसे रहस्यसूत्र-विद्या, मंत्र और योग—अपरिपक्व लोगों के समक्ष प्रकट नही किये जाते, उसी प्रकार निशीथसूत्र को रात्रि के समान अप्रकाशधर्म-रहस्यरूप-स्वीकार कर गोपनीय बताया गया है। यदि कोई निर्ग्रन्थ कदाचित् निशीथसूत्र

---

१. कहीं दसा और कल्पको एक मानकर अथवा कल्प और व्यवहार को एक मानकर पचकल्प और जीतकल्प को अलग-अलग माना गया है। सम्भवत आगे चलकर छह की संख्या पूरी करने के लिये पञ्चकल्प के स्थान पर जीतकल्प को स्वीकार कर लिया गया। स्थानकवासी सम्प्रदाय में निसीह, कप्प, ववहार और दसासुयक्खंध नाम के चार छेदसूत्र माने गये हैं।

२. यह महत्वपूर्ण सूत्र भाष्य और चूर्णी के साथ अभी हाल में उपाध्याय कवि श्री अमरमुनि और मुनि श्री कन्हैयालाल 'कमल' द्वारा सम्पादित होकर सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से सन् १९५७–५८ में तीन भागों में प्रकाशित हुआ है। चौथा भाग प्रकाशित हो रहा है। प्रोफेसर दलसुख मालवणिया ने 'निशीथ : एक अध्ययन' नाम से इसकी महत्वपूर्ण प्रस्तावना लिखी है।

३. जं होति अप्पगासं, त तु निसीहं ति लोगससिद्ध।
ज अप्पगासधम्मं, अण्णं पि तय निसीधं ति॥
(निशीथसूत्र-भाष्य ६९)

भूल जाये तो वह जीवनपर्यंत आचार्यपद का अधिकारी नहीं हो सकता। निशीथसूत्र में निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो के आचार-विचारसंबधी उत्सर्ग और अपवादविधि का प्ररूपण करते हुए प्रायश्चित्त आदि का सूत्म विवेचन है। जान पड़ता है प्राचीनकाल से ही निशीथसूत्र के कर्तृत्व के संबंध मे मतभेद चला आता है। निशीथ-भाष्यकार के अनुसार चतुर्दश पूर्वधारियो ने इस प्रकल्प की रचना की[1] और नौवे प्रत्याख्यान नामक पूर्व के आधार पर यह सूत्र लिखा गया।[2] पंचकल्प-चूर्णी में भद्रबाहु निशीथ के कर्ता बताये गये हैं।[3] इस सूत्र मे २० उद्देशक है और प्रत्येक उद्देशक में अनेक सूत्र निबद्ध हैं। सूत्रो के ऊपर निर्युक्ति, सूत्र और निर्युक्ति के ऊपर संघदासगणि का भाष्य तथा सूत्र, निर्युक्ति और भाष्य पर जिनदासगणि महत्तर की सारगर्भित विशेषचूर्णी (विसेसनिसीह-चुण्णि) है। निशीथ पर लिखा हुआ बृहद्भाष्य उपलब्ध नहीं है। प्रद्युम्नसूरि के शिष्य ने इस पर अवचूर्णी की भी रचना की है।

पहले उद्देशक में ५८ सूत्र हैं। इन पर ४९७-८१५ गाथाओ का भाष्य है। सर्वप्रथम भिक्षु के लिये हस्तमैथुन (हत्थकम्म[4])

---

१. कामं जिणपुव्वधरा, करिंसु सोधिं तहा वि खलु एण्हिं।
चोद्दसपुव्वणिबद्धो, गणपरियट्टी पकप्पधरो॥ (वही ६६७४)

२. प्रत्याख्यान पूर्व में बीस वस्तु (अधिकार) हैं। उनमें तीसरे अधिकार का नाम आचार है, उसमें बीस प्राभृत हैं। बीसवें प्राभृत को लेकर निशीथ की रचना हुई।

३ मुनिपुण्यविजय, बृहत्कल्पभाष्य की प्रस्तावना, पृष्ठ ३। चूर्णीकार जिनदासगणि महत्तर के अनुसार परम पूज्य सुप्रसिद्ध विसाह-गणि महत्तर ने अपने शिष्य-प्रशिष्यों के हितार्थ निशीथसूत्र की रचना की।

४. विनयपिटक (३, पृष्ठ ११२, ११७) में भी इसका उल्लेख है।

वर्जित कहा गया है। काष्ठ, उँगली अथवा शलाका आदि से अगादान (पुरुषेन्द्रिय) के संचालन का निषेध किया है। अगादान को तेल, घी, नवनीत आदि से मर्दन करने, शीत अथवा उष्ण जल से प्रक्षालन करने तथा ऊपर की त्वचा को हटा कर उसे सूँघने आदि का निषेध है। (इस सबध मे भाष्यकार ने सिंह, आशीविष, व्याघ्र और अजगर आदि के दृष्टान्तो द्वारा बताया है कि जैसे सोते हुए सिह आदि को जगा देने से वे जीवन का अन्त कर देते हैं, उसी प्रकार अगादान के सचालित करने से तीव्र मोह का उदय होता है जिससे चारित्र भ्रष्ट हो जाता है)। तत्पश्चात् शुक्रपात और सुगधित पुष्प आदि सूँघने का निषेध है। पदमार्ग (सोपान) और दगवीणिय (पतनाला), छीका, रज्जु, चिलिमिलि[1] (कनात) आदि के निर्माण को वर्जित कहा है। कैंची (पिप्पलग), नखछेदक, कर्णशोधक, पात्र, दण्ड, यष्टि, अवलेखनिका (वर्षाऋतु में कीचड़ हटाने का बॉस का बना उपकरण) तथा बॉस की सुई (वेणूसूइय) के सुधरवाने का निषेध है। वस्त्र मे थेगली (पडियाणिया) लगाना वर्जित है। (यहाँ भाष्यकार ने जंगिय, भंगिय, सणय, पोत्तय, खोमिय और तिरीडपट्ट नामके वस्त्रों का उल्लेख किया है)।[2] वस्त्र को बिना विधि के सीने का निषेध

---

१. चुल्लवग्ग (६,२,६) इसे चिलिमिका कहा गया है।

२. जंगिय अथवा जाविक ऊन का बना वस्त्र होता था। भंगिय का उल्लेख विनयवस्तु के मूल सर्वास्तिवाद (पृष्ठ ९२) में किया गया है। भाग वृक्ष से तैयार किया हुआ वस्त्र कुमाऊँ (उत्तरप्रदेश) जिले में अभी भी मिलता है। बृहत्कल्पभाष्य (२–३६६१) में रुई से बने कपड़े को पोत्तग कहा है। सन के बने कपड़े को खोमिय कहते हैं। तिरीडवट्ट सम्भवतः सिर पर बाँधने की एक प्रकार की पगड़ी थी। देखिये स्थानांग-सूत्र १७०, बृहत्कल्पभाष्य ४, ३०१७; विशेष के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ १२८–२९।

है। (यहा भाष्यकार ने गग्गरग, दडि, जालग, दुखील, एक्क, गोमुत्तिग , तथा भसकट और विसरिगा नामकी सीने की विधियाँ बतायी हैं)।[1]

दूसरे उद्देशक में ५६ सूत्र हैं जिन पर ८१६-१४३७ गाथाओ का भाष्य है। पहले सूत्र में काष्ठ के दंडवाले रजोहरण (पायपुंछण) रखने का निषेध किया है। परुष वचन बोलने का निषेध है (चूर्णिकार ने टक्क (टंक), मालव और सिन्धु-देश के वासियो को स्वभाव से परुष-भाषी कहा है)। भिक्षुओ को चर्म रखना निषिद्ध है (इस प्रसग पर भाष्यकार ने एगपुड, सकलकसिण, दुपड, कोसग, खल्लग, वग्गुरी, खपुसा, अद्धजघा और जघा नामके जूतों का उल्लेख किया है।[2] (यहाँ अपवाद

---

१ गग्गरसिव्वणा जहा सजतीणं। डडिसिव्वणी जहा गारत्थाण। जालगसिव्वणी जहा वरक्खाइसु एगसरा, जहा सजतीण पयालणीकमा-सिव्वणी णिब्भगे वा दिज्जति। दुक्खीला सधिज्जते उभओ खीला देति। एगखीला एगतो देति। गोमुत्तासधिज्जते इओ इओ एक्कसि वत्थ विंधइ। एसा अविधिविधिझसकटासा सघणे भवति, एक्कनो वा उक्कुइते सम्भवति। विसरिया सरडो भण्णति (१ ७८२ की चूर्णी, पृष्ठ ६०)।

२. एक तले के जूते को एगपुड और दो तलों के जूते को दुपड कहा जाता था। सकलकसिण (सकलकृत्स्न) जूते कई प्रकार के होते थे। पाँव की उगलियों के नखों की रक्षा के लिये कोसग का उपयोग होता था। सर्दी के दिनों में पाँव की बिवाई से रक्षा के लिये खल्लक काम में लाते थे। महावग्ग (५, २, ३) में इसे खल्लकबन्ध कहा है। जो उँगलियों को ढक कर ऊपर से पैरों को ढक लेना था, उसे वग्गुरी कहते थे। खपुसा घुटनों तक पहना जाता था। इससे सर्दी, साँप, बर्फ और काटों से रक्षा हो सकती थी। अद्धजघा आधी जघा को और जघा समस्त जघा को ढकने वाले जूते कहलाते थे। देखिये बृहत्कल्पभाष्य ४, १०५९ इत्यादि। विनयपिटक के चर्मस्कन्धक में भी जूतों का उल्लेख मिलता है।

मार्ग के अनुसार मार्गजन्य कंटक, सर्प और शीत के कष्टों से बचने के लिये, रुग्ण अवस्था में अर्श की व्याधि से पीड़ित होने पर, सुकुमार राजा आदि के निमित्त, पैर में फोड़ा आदि हो जाने पर, ऑंखे कमजोर होने पर, बाल-साधुओं के निमित्त, आर्यों के निमित्त तथा कारणविशेष उपस्थित होने पर जूते धारण करने का विधान है)। तत्पश्चात् प्रमाण से अतिरिक्त वस्त्र रखने और बहुमूल्य वस्त्र धारण करने का निषेध है (इस प्रसंग पर भाष्यकार ने साहरक[1], रूपग और नेलक आदि सिक्को का उल्लेख किया है)। भिक्षु को अखण्ड वस्त्र धारण करने का विधान है। सागारिक (साधु को रहने का स्थान देनेवाला गृहस्थ) के दिये हुए भोजन ग्रहण करने का निषेध है। शय्या-सस्तारक रखने के सम्बन्ध में नियमो का उल्लेख किया है। जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक की उपधि का वर्णन है।

तीसरे उद्देशक मे ८० सूत्र हैं जिन पर १४३८–१५५४ भाष्य की गाथाये है। पहले सूत्र मे आगंतगार (धर्मशाला, मुसाफिरखाना आदि), आरामागार या गृहपति के कुल आदि में जोर-जोर से चिल्लाकर आहार आदि माँगने का निषेध है। गृहपति के मना करने पर भिक्षा के निमित्त प्रवेश करने का निषेध है। संखडि (भोज) के स्थान पर उपस्थित होकर अशन-पान ग्रहण करने का निषेध है। पैरों के प्रमार्जन, परिमर्दन, प्रक्षालन आदि का निषेध है। शरीर के प्रमार्जन, सवाहन, परिमर्दन आदि का निषेध है। फोड़े आदि के उपचार करने का निषेध है। लम्बे बढ़े हुए बाल, नख आदि के काटने का निषेध है। दॉत, ओष्ठ आदि के प्रमार्जन अथवा धोने आदि का निषेध है। शरीर के स्वेद, जल्ल, मल्ल आदि अथवा ऑख की ढीढ़, कान का मैल आदि के साफ करने का निषेध है। वशीकरणसूत्र (तावीज) बना कर देने का निषेध है। यहॉ मृतकगृह (भाष्यकार

---

१. एक इस्लाम-पूर्व सिक्का, जो सेबियन (Sabean) सिक्के के नाम से कहा जाता था।

और चूर्णीकार के अनुसार म्लेच्छ जाति के लोग अपने घर के भीतर मृतक को गाड़ देते हैं, उसे जलाते नही), मृतकस्तूप, मृतकलेण, तथा उदंबर, न्यग्रोध, असत्थ (अश्वत्थ–पीपल), इक्षु, शालि, कपास, चंपा, चूत (आम्र) आदि का उल्लेख किया गया है।

चौथे उद्देशक में ११२ सूत्र हैं जिन पर १५५५-१८६४ गाथाओ का भाष्य है। आरम्भ मे राजा, राजरक्षक, नगररक्षक, निगमरक्षक आदि को वश में करने तथा उनकी पूजा-अर्चना करने का निषेध है। भिक्षु को निर्ग्रन्थिनियो के उपाश्रय में विना विधि के प्रवेश करने का निषेध है। निर्ग्रन्थिनी के आगमनपथ मे दंड, यष्टि, रजोहरण, मुखपत्ती आदि उपकरण रखने का निषेध है। खिलखिला कर हँसने का निषेध है। पार्श्वस्थ, कुशील और संसक्त आदि संघाड़े के साधुओ के साथ सम्बन्ध रखने का निषेध है। सस्निग्ध हस्त आदि से अशन-पान ग्रहण करने का निषेध है। परस्पर पाद, काय, दन्त, ओष्ठ आदि के प्रमार्जन, प्रक्षालन आदि का निषेध है। उच्चार (टट्टी) और प्रश्रवण (पेशाब) की स्थापना-विधि के नियम बताये गये हैं।

पाँचवें उद्देशक में ७७ सूत्र हैं जिन पर १८६५-२१६४ गाथाओ का भाष्य है। सर्वप्रथम सचित्त वृक्ष के नीचे बैठकर आलोचना, स्वाध्याय आदि करने का निषेध है। अपनी संघाटी को अन्य तीर्थिकों आदि से सिलवाने का निषेध है। पिचुमन्द (नीम), पलाश, बेल, आदि के पत्रो को उपयोग मे लाते हुए आहार करने का निषेध है। पादप्रोञ्छन, दण्ड, यष्टि, सुई आदि लौटाने योग्य वस्तुओं को नियत अवधि के भीतर लौटा देने का विधान है। सन, कपास आदि कातने का निषेध है। दारुदंड, वेलुदण्ड, वेतदंड आदि ग्रहण करने का निषेध है। मुख, दन्त, ओष्ठ, नासिका आदि को वीणा के समान बजाने का निषेध है। अलाबुपात्र, दारुपात्र, मृत्तिकापात्र आदि को तोड़ने-फोड़ने का निषेध है। रजोहरण के सम्बन्ध में नियम बताये हैं।

छठे उद्देशक में ७७ सूत्र हैं जिन पर २१९५–२२८६ गाथाओं का भाष्य है। यहाँ मैथुन-सेवा की इच्छा से किसी स्त्री (माउग्गाम[1]) की अनुनय-विनय करने का निषेध है। मैथुन की इच्छा से हस्तकर्म करने, अगादान को मर्दन, सवाहन, प्रक्षालन आदि करने, कलह करने, पत्र लिखने, जननेन्द्रिय को पुष्ट करने और चित्र-विचित्र वस्त्र धारण करने का निपेध किया है।

सातवें उद्देशक में ९१ सूत्र हैं जिन पर २२८७–२३४० भाष्य की गाथायें हैं। यहाँ भी मैथुनसंबधी निषेध बताया गया है। मैथुन की इच्छा से माला बनाने और धारण करने, लोहा, ताँबा आदि संग्रह करने, हार, अर्धहार आदि धारण करने, अजिन, कबल आदि धारण करने, परस्पर पाद आदि प्रमार्जन और परिमर्दन आदि करने, सचित्त पृथ्वी पर सोने, बैठने, परस्पर चिकित्सा आदि करने, तथा पशु-पक्षी के अगोपागों को स्पर्श आदि करने का निषेध किया है। इस प्रसग मे विविध प्रकार की माला, हार, वस्त्र, कबल आदि का उल्लेख है जिनका चूर्णीकार ने स्पष्टीकरण किया है।

आठवें उद्देशक में १८ सूत्र हैं जिन पर २३४१–२४९५ गाथाओं का भाष्य है। आगंतगार, आरामागार आदि स्थानो में स्त्री के साथ अकेले विहार, स्वाध्याय, अशन-पान, उच्चार-प्रश्रवर्ण एवं कथा करने का निषेध है। उद्यान, उद्यान-गृह आदि में स्त्री के साथ अकेले विहार आदि करने आदि का निषेध है। स्वगच्छ अथवा परगच्छ की निर्ग्रन्थिनी के साथ विहार आदि करने का निषेध है। क्षत्रिय और मूर्धाभिषिक्त राजाओ के यहाँ किसी समवाय अथवा मह (उत्सव) आदि के अवसर पर अशन-पान आदि ग्रहण करने का निषेध है। यहाँ इन्द्र, स्कंद, रुद्र, मुकुंद, भूत, यक्ष, नाग, स्तूप, चैत्य, वृक्ष, गिरि, दरि, अगड, तडाग,

---

१. भोजपुरी भाषा में मउगी का अर्थ पत्नी होता है।

ह्रद, नदी, सर, सागर, और आकर[1] नामक महों का उल्लेख किया गया है।

नौवें उद्देशक में २८ सूत्र हैं जिन पर २४९६–२६०५ गाथाओं में भाष्य लिखा गया है। भिक्षु के लिये राजपिंड ग्रहण करने का निषेध है। उसे राजा के अंतःपुर में प्रवेश करने की मनाई है (यहाँ पर भाष्यकार ने जीर्ण अन्तःपुर, नव अतःपुर और कन्या अन्तःपुर नाम के अंत पुरों का उल्लेख किया है। दंडधर, दंडारक्खिय, दौवारिक, वर्षधर, कचुकिपुरुष और महत्तर नामक राजकर्मचारी अन्तःपुर की रक्षा के लिये नियुक्त रहते थे)।[2] क्षत्रिय और मूर्धाभिषिक्त राजाओं का अशन-पान आदि ग्रहण करने का निषेध है। यहाँ पर चंपा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, कांपिल्य, कौशांबी, मिथिला, हस्तिनापुर और राजगृह नाम की दस अभिषिक्त राजधानियाँ गिनाई गई हैं जहाँ राजाओं का अभिषेक किया जाता था। अन्त में खुज्जा (कुब्जा), चिलाइया (किरातिका), वामणी (वामनी), वडभी (बड़े पेटवाली) बब्बरी, बउसी, जोणिया, पल्हविया, ईसणी, थारुगिणी, लउसी, लासिया, सिंहली, आरबी, पुलिंदी, सबरी, पारिसी नामक दासियों का उल्लेख है।[3]

दसवें उद्देशक में ४७ सूत्र हैं जिन पर २६०६–३२७५ गाथाओं का भाष्य है। भिक्षु को आचार्य (भदंत) के प्रति कठोर एवं कर्कश वचन नहीं बोलने चाहिये। आचार्य की आशातना (तिरस्कार) नहीं करनी चाहिये। अनन्तकाय-युक्त आहार का भक्षण नहीं करना चाहिये। लाभ-अलाभसंबंधी निमित्त के कथन का निषेध है। प्रव्रज्या आदि के लिये शिष्य के अपहरण करने का निषेध है। अन्यगच्छीय साधु-साध्वी

---

१. इन उत्सवों के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ २१५ २५।

२ विशेष के लिये देखिये वही पृष्ठ ५५-५६।

३. तथा देखिए व्याख्याप्रज्ञप्ति ९ ६, ज्ञातृधर्मकथा १।

को बिना पूछताछ के तीन रात्रि के उपरान्त रखने का निषेध है। प्रायश्चित्त ग्रहण करनेवाले के साथ आहार आदि ग्रहण करने का निषेध है। ग्लान (रोगी) की सेवा-शुश्रूषा करने का विधान किया है। प्रथम वर्षाकाल में ग्रामानुग्राम विहार करने का निषेध है। अपर्युषणा में पर्युषणा (यहाँ पज्जोसवणा, परिवसणा, पज्जुसणा, वासावास–वर्षावास–पढम समोसरण आदि शब्दों को भाष्यकार ने पर्यायवाची कहा है) करने एवं पर्युषणा में अपर्युषणा न करने से लगनेवाले दोषो का कथन है। (चूर्णीकार ने यहाँ कालकाचार्य की कथा दी है जिन्होने प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन के आग्रह पर भाद्रपद सुदी पचमी को इन्द्रमह-दिवस होने के कारण भाद्रपद सुदी चतुर्थी को पर्यूषण की तिथि घोषित की। इसी समय से महाराष्ट्र में श्रमणपूजा (समणपूय) नामक उत्सव मनाया जाने लगा)।

ग्यारहवें उद्देशक में ९२ सूत्र हैं जिन पर ३२७६–३९७५ गाथाओं का भाष्य है। लोहे, ताबे, सीसे, सीग, चर्म, वस्त्र आदि के पात्र रखने और उनमें आहार करने का निषेध है। धर्म के अवर्णवाद और अधर्म के वर्णवाद बोलने का निषेध है। घी, तेल आदि द्वारा अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के पैरों के प्रमार्जन, परिमर्दन आदि का निषेध है। अपने आप तथा दूसरे को भयभीत अथवा विस्मित करने का निषेध है। मुखवर्ण—मुँहदेखी स्तुति—करने का निषेध है। विरुद्धराज्य में गमनागमन का निषेध है। दिवाभोजन की निन्दा और रात्रिभोजन की प्रशंसा करने का निषेध है। मास, मत्स्य आदि के ग्रहण करने का निषेध है। नैवेद्य पिंड के उपभोग का निषेध है। स्वच्छंदाचारी की प्रशंसा करने का निषेध है। अयोग्य व्यक्तियों को प्रव्रज्या देने का निषेध है (यहाँ भाष्याकार ने बाल, वृद्ध, नपुंसक, दास, ऋणी आदि अठारह प्रकार के व्यक्तियों को प्रव्रज्या के अयोग्य कहा है। नपुंसक के सोलह भेद गिनाये गये हैं। दासों के भी भेद बताये हैं)। सचेलक और अचेलक

के निवास के संबध में विधि-निषेध का कथन है। अन्त मे विविध प्रकार के मरण गिनाये गये हैं।

बारहवे उद्देशक मे ४२ सूत्र है जिन पर ३९७६–४२५५ गाथाओं का भाष्य है। पहले सूत्र में करुणा से प्रेरित होकर त्रस जीवों को रस्सी आदि से बॉधने अथवा बधनमुक्त करने का निषेध है। बार-बार प्रत्याख्यान भंग करने का निषेध है। लोमवाला चर्म रखने का निषेध है। दूसरे के वस्त्र से आच्छादित तृणपीठक आदि पर बैठने का निषेध है। साध्वी की संघाटी अन्यतीर्थिक अथवा किसी गृहस्थ से सिलाने का निषेध है। पृथ्वीकाय आदि की विराधना का निषेध है। सचित्त वृक्ष पर चढ़ने का निषेध है। गृहस्थ के भाजन में भोजन करने का निषेध है। गृहस्थ के वस्त्र पहनने और उसकी शय्या पर सोने का निषेध है, उससे चिकित्सा कराने का निषेध है। वापी, सर, निर्भर, पुष्करिणी आदि का सौन्दर्य-निरीक्षण करने का निषेध है। सुंदर ग्राम, नगर, पट्टण आदि को देखने की अभिलाषा करने का निषेध है। अश्वयुद्ध, हस्तियुद्ध आदि में सम्मिलित होने का निषेध है। काष्ठकर्म, चित्रकर्म, लेपकर्म, दंतकर्म आदि देखने का निषेध है। विविध महोत्सवों में स्त्री-पुरुषो के गाते, नाचते और हँसते हुए देखने का निषेध है। दिन में गोबर इकट्ठा कर रात्रि के समय उसे शरीर पर लेप करने का निषेध है। गंगा, यमुना, सरयू, ऐरावती और मही नाम की नदियो को महीने में दो अथवा तीन बार पार करने का निषेध है।

तेरहवें उद्देशक में ७८ सूत्र हैं जिन पर ४२५६–४४७२ गाथाओं का भाष्य है। पहले सचित्त, सस्निग्ध, सरजस्क आदि पृथ्वी पर बैठने, सोने और स्वाध्याय करने आदि का निषेध किया गया है। देहली, स्नानपीठ, भित्ति, शिला, मच आदि पर बैठने का निषेध है। अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ आदि को शिल्प, श्लोक (वर्णना), अष्टापद (चूत), कला

आदि सिखाने का निषेध है। कौतुककर्म, भूतिकर्म, प्रश्न, प्रश्नाप्रश्न, निमित्त, लक्षण आदि के प्रयोग करने का निषेध है। अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ को मार्गभ्रष्ट होने पर रास्ता बताने का निषेध है। उन्हें धातुविद्या अथवा निधि बताने का निषेध है। पानी से भरे हुए पात्र, दर्पण, मणि, तेल, मधु, घी, आदि में मुँह देखने का निषेध है। वमन, विरेचन तथा बल आदि की वृद्धि के लिये औषध सेवन का निषेध है। पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारियो को वन्दन करने का निषेध है। धात्री, दूती, निमित्त, आजीविका, चूर्ण, योग आदि पिंड ग्रहण करने का निषेध है।

चौदहवे उद्देशक में ४५ सूत्र हैं जिन पर ४४७३–४६८६ गाथाओ का भाष्य है। यहाँ पात्र (पडिग्गह=पतद्ग्रह) के खरीदने, अदल-बदल करने आदि का निषेध है। लूले, लँगड़े, कनकटे, नककटे आदि असमर्थ साधु-साध्वियो को अतिरिक्त पात्र देने का विधान है। नवीन, सुरभिगंध अथवा दुरभिगंध पात्र को विशेष आकर्षक बनाने का निषेध है। गृहस्थ से पात्र स्वीकार करते समय उसमें से त्रसजीव, बीज, कन्द, मूल, पत्र, पुष्प आदि निकालने का निषेध है। परिषद् में से उठकर पात्र की याचना करने का निषेध है।

पन्द्रहवे उद्देशक में १५४ सूत्र हैं जिन पर ४६९०–५०६४ गाथाओं का भाष्य है। सचित्त आम्र, आम्रपेशी, आम्रचोयक आदि के भोजन का निषेध है। आगंतगार, आरामागार तथा गृहपतिकुलों में उच्चार-प्रश्रवण स्थापित करने की विधि बताई है। पार्श्वस्थ आदि को आहार, वस्त्र आदि देने अथवा उनसे ग्रहण करने का निषेध है। विभूषा के लिये अपने पैर, शरीर, दाँत, ओष्ठ आदि के प्रमार्जन, प्रक्षालन आदि का निषेध है।

सोलहवें अध्याय में ५० सूत्र हैं जिन पर ५०६५–५६०३ गाथाओं का भाष्य है। भिक्षु को सागारिक आदि की शय्या में प्रवेश करने का निषेध है। सचित्त ईख, गंडेरी आदि भक्षण

करने का निषेध है। अरण्य में साथ लेकर चलनेवाले आरण्यकों के अशन-पान के भक्षण का निषेध है। संयमी को असंयमी और असंयमी को संयमी कहने का निषेध है। लड़ाई-झगड़ा करनेवाले तीर्थिकों के अशन-पान आदि ग्रहण करने का निषेध (भाष्यकार ने यहाँ सात निह्नवो का प्रतिपादन किया है) है। दस्यु (क्रोध मे आकर जो अपने दाँतो से काट लेते हो—दसणेहि दसंति तेण दसू–भाष्यकार), अनार्य, म्लेच्छ (अस्फुट भाषा बोलनेवाले—मिलक्खूऽव्वत्तभासी—भाष्यकार) और प्रत्यत देश-वासियो के जनपदो मे विहार करने का निषेध (यहाँ मगध, कौशाबी, थूणा और कुणाला आदि को छोडकर बाकी देशों की गणना अनार्य देशों में की गई है) है। दुगुंछिय (जुगुप्सित) कुलों मे अशन, पान, वस्त्र, कंबल, आदि ग्रहण करने का निषेध है। अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थो के साथ भोजन ग्रहण करने का निषेध है। आचार्य-उपाध्याय की शय्या और सस्तारक को पैर लग जाने पर हाथ से बिना छुए नमस्कार न करने से भिक्षु दोष का भागी होता है। प्रमाण और गणना से अधिक उपधि रखने का निषेध है।

सत्रहवे उद्देशक में १५१ सूत्र हैं जिन पर ५९०४–५९९६ गाथाओं का भाष्य है। कौतूहल से त्रस जीवो को रस्सी आदि से बाँधने का निषेध है। यहाँ अनेक प्रकार की मालाओ, धातुओ, आभूषणों, विविध वस्त्र, कबलो आदि के उपभोग करने का निषेध किया गया है। निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी को अन्यतीर्थिक तथा गृहस्थ से पाद आदि परिमर्दन आदि कराने का निषेध है। भिक्षु को गाने, बजाने, नाचने और हँसने आदि का निषेध है। यहाँ वीणा आदि अनेक वाद्यों का उल्लेख किया गया है।

अठारहवे उद्देशक में ७४ सूत्र हैं जिन पर ५९९७–६०२७ गाथाओं का भाष्य है। निष्कारण नाव की सवारी करने का निषेध है। थल से जल में और जल से थल में नाव को

खीचकर ले जाने का निषेध है। नाव में रस्सी आदि बाँधकर खीचने और उसे खेने का निषेध है। नाव के छिद्र में से पानी आता देखकर उसे हस्त, पाद अथवा कुशपत्र आदि से ढॅकने का निषेध है। वस्त्र को खरीदकर पहनने आदि का निषेध है। दुरभिगंध वस्त्र को शीत जल आदि से प्रक्षालन आदि करने का निषेध है। वस्त्र द्वारा पृथिवीकाय आदि जीवो को हटाने का निषेध है।

उन्नीसवे उद्देशक में ४० सूत्र हैं जिन पर ६०२८–६२७१भाष्य की गाथाए है। मद्य (वियड) को खरीद कर पान करने का निषेध है। मद्य साथ लेकर गॉव-गॉव मे विहार करने का निषेध है। संध्या समय स्वाध्याय करने का निषेध (भाष्यकार के कथनानुसार संध्या के समय गुह्यक[1] देव-विचरण करते रहते हैं। इसलिये उनसे ठगे जाने की सभावना है) है। यहॉ कालिक श्रुत के तीन और दृष्टिवाद के सात प्रश्न पूछे जाने का उल्लेख है (भाष्यकार के अनुसार नयवाद, गणित और अष्टांगनिमित्त को लेकर सात प्रश्नो का कथन किया गया है)। इन्द्रमह, स्कंदमह, यक्षमह और भूतमह नामक चार महामहों के अवसर पर स्वाध्याय का निषेध है। अयोग्य सूत्र का पाठ करने और योग्य के पाठ न करने का निषेध है।

बीसवें उद्देशक में ५३ सूत्र हैं जिन पर ६२७२-६७०३ गाथाओं का भाष्य है। इस सूत्रों मे प्रथम २० सूत्र व्यवहारसूत्र से मिलते हैं। यहाँ प्रायश्चित्त आदि का वर्णन है। शालिभद्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि ने इस उद्देशक की सुबोधा नाम की व्याख्या की है।

महानिसीह (महानिशीथ)

छेदसूत्रो में महानिशीथ को कभी दूसरा और कभी छठा

1. गुह्यक के लिये देखिये हॉपकिन्स, इपिक माइथोलोजी, पृष्ठ १४७ इत्यादि।

छेदसूत्र माना जाता है।[1] इसे समस्त प्रवचन का परम सार कहा गया है। निशीथ को लघुनिशीथ और इस सूत्र को महानिशीथ कहा गया है, यद्यपि बात उल्टी ही है। वास्तव में मूल महानिशीथ विच्छिन्न हो गया है, उसे दीमको ने खा लिया है और उसके पत्र नष्ट हो गये है।[2] बाद मे हरिभद्रसूरि ने उसका सशोधन किया तथा सिद्धसेन, वृद्धवादि, यक्षसेन, देवगुप्त, यशवर्धन, रविगुप्त, नेमिचन्द्र और जिनदासगणि आदि आचार्यों ने इसे बहुमान्य किया। भाषा और विषय की दृष्टि से इस सूत्र की गणना प्राचीन आगमों में नही की जा सकती। इसमें तन्त्रसंबधी तथा जैन आगमो के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो के भी उल्लेख मिलते है।

महानिशीथ में छह अध्ययन और दो चूला है। सल्लुद्धरण नामके पहले अध्ययन मे पापरूपी शल्य की निन्दा और आलोचना करने के लिये १८ पापस्थानक बताये गये हैं। दूसरे अध्ययन में कर्मों के विपाक का विवेचन करते हुए पापो की

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति मुनिपुण्यविजय जी के पास है, यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इसे १९१८ में वाल्टर शूब्रिग ने जर्मन भाषा की प्रस्तावनासहित बर्लिन से प्रकाशित किया है। सोजित्रा के श्री नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल ने इसका गुजराती भावानुवाद किया है। मुनि पुण्यविजयजी की यह हस्तलिखित प्रति मुनि जिनविजयजी की कृपा से मुझे देखने को मिली।

२ एत्थ य जत्थ जत्थ पयपयेणाऽणुलग्गं सुत्तलावगं ण संपज्जइ तत्थ तत्थ सुयहरेहिं कुलिहियदोसो ण दायव्वो त्ति। किंतु जो सो एयस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूयस्स महानिसीहसुयक्खंधस्स पुव्वायरिसो आसि तहिं चेव खंडाखंडीए उद्देहिया एहिं हेऊहिं बहवे पण्णगा परिसडिया तहावि अच्चंतसमुहत्थाइसय ति इम महानिसीहसुयक्खध कसिण-पवयणस्स परमसारभूय पर तत्त महत्थं ति कलिऊण पवयणवच्छल्लत्तणेण। मुनिपुण्यविजयजी की हस्तलिखित प्रति पर से। तथा देखिये जिन-प्रभसूरि की विधिमार्गप्रपा; विविधतीर्थकल्प।

आलोचना करने का उल्लेख है। तीसरे और चौथे अध्ययन मे साधुओं को कुशील साधुओं का ससर्ग न करने का उपदेश है। यहाँ नवकारमंत्र, उपधान, दया और अनुकपा के अधिकारो का विवेचन है। वज्रस्वामी ने नवकारमंत्र का उद्धार करके उसे मूलसूत्र मे स्थान दिया, इसका यहाँ उल्लेख है।[1] कुशील का ससर्ग छोडकर आराधक बननेवाले नागिल की कथा दी हुई है। पॉचवे अध्ययन का नाम नवनीतसार है। इसमे गुरु शिष्य का सबध बताते हुए गच्छ का वर्णन किया गया है। गच्छाचार नाम के प्रकीर्णक को इसके आधार से रचा गया है। छठे अध्ययन मे प्रायश्चित्त के दस और आलोचना के चार भेदों का वर्णन है। आचार्य भद्र के एक गच्छ मे पॉच सौ साधु और बारह सौ साध्वियो के होने का उल्लेख है। भोजन की जगह शुद्ध जल ग्रहण करने का गच्छ का नियम था, जिससे एक साध्वी बीमार पड गई। लक्ष्मणादेवी जबूदाडिम और सिरिया की अन्तिम पुत्री थी। विवाह के थोड़े ही दिन पश्चात् वह विधवा हो गई। उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। एक दिन पक्षियो की सभोग-क्रीडा देखकर वह कामातुर हो गई। अगले जन्म मे वह किसी गणिका की दासी के रूप मे पैदा हुई। गणिका ने उसके नाक, कान आदि काटकर उसे कुरूप बनाना चाहा। दासी को किसी तरह इस बात का पता लग गया और वह उस स्थान से भाग गई। बाद मे किसी व्यक्ति से उसने विवाह कर लिया। लेकिन उसकी सौत उससे बहुत ईर्ष्या करती थी। उसकी मृत्यु होने पर उसके शव को पशु पक्षियों के खाने के लिये जगल मे फेंक दिया गया। चूलाओ मे सुज्झसिव, सुसढ और अजनश्री आदि की कथायें है। यहाँ सती होने का तथा राजा के अपुत्र होने के कारण उसकी विधवा कन्या को राजगद्दी पर बैठाने का

1 षट्खडागम के टीकाकार वीरसेन आचार्य के अनुसार आचार्य पुष्पदत णमोकारमत्र के आदि कर्त्ता माने गये हैं। देखिये डॉक्टर हीरालाल जैन की षट्खडागम भाग २ की प्रस्तावना पृष्ठ ३५ ४१।

उल्लेख मिलता है। कीमिया बनाने का उल्लेख भी पाया जाता है।

ववहार (व्यवहार)

व्यवहारसूत्र को द्वादशाग का नवनीत कहा गया है। तीन मुख्य छेदसूत्रो मे इसकी गिनती है,[1] शेष दो हैं निशीथ और बृहत्कल्प। इसके कर्ता श्रुतकेवली भद्रबाहु है जिन्होंने इस सूत्र पर निर्युक्ति भी लिखी है। व्यवहारसूत्र के ऊपर भाष्य भी है, लेकिन उसके कर्ता का नाम अज्ञात है। निर्युक्ति और भाष्य की गाथाये परस्पर मिल गई हैं। भाष्यकार ने व्यवहारसूत्रों पर भाष्य लिखने मे अपनी असमर्थता प्रकट की है। मलयगिरि ने भाष्य पर विवरण लिखा है। व्यवहारसूत्र पर बृहद्भाष्य भी था जो अनुपलब्ध है। इसकी चूर्णी* मिलती है जो प्रकाशित नही हुई। व्यवहारभाष्य पर अवचूरि भी लिखी गई है।

व्यवहारसूत्र निशीथ की अपेक्षा छोटा और बृहत्कल्प की अपेक्षा बडा है। इसमे दस उद्देशक है। पहले उद्देशक में ३४ सूत्र है। आरभ मे बताया है कि प्रमाद के कारण अथवा अनजाने मे यदि भिक्षु दोष का भागी हो जाये तो उसे आलोचना करनी चाहिये, आचार्य उसे प्रायश्चित्त देते है। यदि कोई साधु गण को छोड कर अकेला विहार करे और फिर उसी गण मे लौटकर आना चाहे तो उसे आचार्य, उपाध्याय आदि के समक्ष अपनी आलोचना, निन्दा, गर्हा आदि करके विशुद्धि प्राप्त करनी चाहिये। यदि कोई भी न मिले तो ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेड, कर्बट, मडब, पट्टण, द्रोणमुख आदि की पूर्व

---

1 यह ग्रन्थ भाष्य और मलयगिरि की टीकासहित सन् १९२६ में भावनगर से प्रकाशित हुआ है। कल्प, व्यवहार और निशीथ ये तीनों सूत्र वाल्टेर शूब्रिंग द्वारा सपादित होकर अहमदाबाद से प्रकाशित हुए हैं।

अथवा उत्तर दिशा मे अपने मस्तक पर दोनो हाथों की अजलि रख, 'मैने ये अपराध किये है' कहकर आलोचना करे।

दूसरे उद्देशक मे ३० सूत्र है। यहाँ परिहारकल्प मे स्थित रुग्ण साधु को गण से बाहर निकालने का निषेध है। यही नियम अनवरथाप्य और पारचिक प्रायश्चित्त मे स्थित तथा क्षिप्तचित्त, यक्षाविष्ट, उन्मादप्राप्त, उपसर्गप्राप्त, प्रायश्चित्तप्राप्त आदि भिक्षु के सबध मे भी लागू होता है। यदि दो साधर्मिक एकत्र विहार करते है और उनमे से कोई एक कोई अकृत्य कर्म करके आलोचना करता है तो यदि वह स्थापनीय है तो उसे अलग रखना चाहिये, और आवश्यकता पडने पर उसका वैयावृत्य करना चाहिये। परिहारकल्प स्थित भिक्षु को अशन-पान आदि प्रदान करने का निषेध है, स्थविरों की आज्ञा से ही उसे अशन पान दिया जा सकता है।

तीसरे उद्देशक मे २६ सूत्र है। यदि कोई भिक्षु गण का धारक बनना चाहे तो स्थविरो को पूछकर ही उसे ऐसा करना योग्य है। अन्यथा उसे छेद अथवा परिहार का भागी होना पडता है। तीन वर्ष की पर्यायवाला, आचार आदि मे कुशल, बहुश्रुतवेत्ता श्रमण निर्ग्रन्थ कम से-कम आचारप्रकल्प (निशीथ) धारी को, पॉच वर्ष की पर्यायवाला कम-से-कम दशा-कल्प और व्यवहारधारी को तथा आठ वर्ष की पर्यायवाला कम से कम स्थानाग और समवायागधारी को उपदेश दे सकने योग्य है। यदि कोई भिक्षु गण छोडकर मैथुन का सेवन करे तो तीन वर्ष तक वह आचार्यपद का अधिकारी नही हो सकता। यदि कोई गणावच्छेदक अपने पद पर रहकर मैथुनधर्म का सेवन करे तो जीवनपर्यन्त उसे कोई पद देना योग्य नहीं।

चौथे उद्देशक मे ३२ सूत्र है। आचार्य और उपाध्याय के लिये हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुओं मे अकेले विहार करने का निषेध किया गया है, वर्षाकाल मे दो के साथ विहार करने का विधान है। गणावच्छेदक को तीन के साथ विहार करना

योग्य है। बीमार हो जाने पर आचार्य उपाध्याय दूसरे से कहें कि मेरे कालगत हो जाने पर अमुक व्यक्ति को यह पद दिया जाये। लेकिन यदि वह व्यक्ति योग्य हो तो ही उसे वह पद देना चाहिये, अन्यथा नही। यदि बहुत से साधर्मिक एक साथ विचरने की इच्छा करे तो स्थविरो से बिना पूछे ऐसा नही करना चाहिये। यदि ऐसा करे तो छेद अथवा परिहार तप का प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिये।

पॉचवे उद्देशक मे २१ सूत्र है। हेमन्त और ग्रीष्म मे प्रवर्त्तिनी साध्वी को दो के साथ और गणावच्छेदिका को तीन के साथ विहार करना चाहिये। वर्षावास मे प्रवर्त्तिनी को तीन के साथ और गणावच्छेदिका को चार के साथ विहार करने का विधान है। कोई तरुण निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनी यदि आचारप्रकल्प (निशीथ) भूल जाये तो उसे जीवनपर्यन्त आचार्यपद अथवा प्रवर्त्तिनी पद देने का निषेध है। एक साथ भोजन आदि करने वाले निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनियो को एक दूसरे के समीप आलोचना करने का निषेध है। यदि रात्रि अथवा विकाल मे किसी निर्ग्रन्थ को सॉप (दीहपट्ठ) काट ले तो साध्वी से औषधोपचार कराने का विधान है।

छठे उद्देशक मे ११ सूत्र है। स्थविरों से बिना पूछे अपने सगे-सम्बन्धियो के घर भिक्षा के लिये जाने का निषेध है, अन्यथा छेद अथवा परिहार का विधान है। ग्राम आदि मे एक द्वारवाले स्थल मे बहुत से अल्पश्रुतधारी भिक्षुओं के रहने का निषेध है। आचारप्रकल्प के ज्ञाता साधुओं के साथ रहने का विधान है। जहॉ बहुत से स्त्री-पुरुष स्नान करते हों वहॉ यदि कोई श्रमण निर्ग्रन्थ किसी छिद्र की सहायता से अथवा हस्तकर्म का सेवन कर वीर्यपात करे तो उसके लिये एक मास के अनुद्घाती परिहार तप के प्रायश्चित्त का विधान है।

सातवें उद्देशक मे ११ सूत्र है। एक आचार्य की मर्यादा मे रहनेवाले निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनियो को पीठ पीछे व्यवहार बन्द

न कर के प्रत्यक्ष मे मिलकर, भूल आदि बताकर सभोग (एक साथ भोजन आदि करना) और विसभोग की विधि बताई है। किसी निर्ग्रन्थिनी को अपने वैयावृत्य के लिये प्रव्रजित आदि करने का निषेध है। अयोग्य काल मे स्वाध्याय का निषेध है। तीन वर्ष की पर्यायवाला श्रमण तीस वर्ष की पर्यायवाली श्रमणी का उपाध्याय, तथा पॉच वर्ष की पर्यायवाला श्रमण साठ वर्ष की पर्यायवाली श्रमणी का आचार्य बन सकता है।[1] ग्रामानुग्राम विहार करते समय यदि कोई भिक्षु कालधर्म को प्राप्त हो जाये तो प्रासुक निर्जीव स्थान को अच्छी तरह देखभाल कर के उसे वहाँ परिष्ठापन कर दे। सागारिक के घर मे रहने के पूर्व उसके पिता, भाई, पुत्र और उसी विधवा कन्या की अनुज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। राजा की अनुज्ञा लेकर वसति मे ठहरने का विधान है।

आठवे उद्देशक मे १६ सूत्र है। स्थाविरो के लिये दड, भाड, छत्र, मात्रक, यष्टि, वस्त्र ओर चर्म के उपयोग का विधान है। गृहपति के कुल मे पिडपात ग्रहण करने के लिये प्रविष्ट किसी निर्ग्रन्थ का यदि कोई उपकरण छूट जाये और कोई साधर्मी उसे देख ले तो उसे ले जाकर दे दे। यदि वह उपकरण उसका न हो तो उसे एकान्त मे ले जाकर रख दे। यहाँ कवलाहारी, अल्पाहारी और ऊनोदरी निर्ग्रन्थो का उल्लेख किया गया है।

नौवे उद्देशक मे ४२ सूत्र है। सागारिक के घर मे यदि कोई पाहुना, दास, नौकर चाकर आदि भोजन बनाये और भिक्षु को दे तो उसे ग्रहण न करना चाहिये। सागारिक की चक्रिशाला (तेल की दुकान), गोलियशाला (गुड की दुकान), दौषिकशाला (कपड़े की दुकान), गधियशाला (सुगधित पदार्थों की दुकान)

---

१ बौद्धों के विनयपिटक में कहा गया है—सौ वर्ष की उपसपदा पाई हुई भिक्षुणी को भी उसी दिन के सपन्न भिक्षु के लिये अभिवादन, प्रत्युत्थान, अञ्जलि जोड़ना आदि करना चाहिये। भरतसिंह उपाध्याय पालि साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३२१

आदि से वस्तु ग्रहण करने के सबध मे नियमों का प्रतिपादन किया है। यहाँ भिक्षुप्रतिमा और मोकप्रतिमा का विवेचन है।

दसवे उद्देशक मे ३४ सूत्र है। इसमे यवमध्यचन्द्रप्रतिमा और वज्रमध्यप्रतिमा का वर्णन है। आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत नाम के पॉच प्रकार के व्यवहार का उल्लेख है। चार प्रकार के पुरुष, चार आचार्य और चार अन्तेवासियों का उल्लेख है। स्थविर तीन प्रकार के होते है—जाति, श्रुत और पर्याय। साठ वर्ष का जातिस्थविर, श्रुत का धारक श्रुतस्थविर, तथा बीस वर्ष की पर्यायवाला साधु पर्यायस्थविर कहा जाता है। निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनी को दाढी-मूछ आने के पूर्व आचारप्रकल्प (निशीथ) के अध्ययन का निषेध है। तीन वर्ष का दीक्षाकाल समाप्त होने पर आचारप्रकल्प नामक अध्ययन, चार वर्ष समाप्त होने पर सूयगडग, पॉच वर्ष समाप्त होने पर दशा कल्प व्यवहार, आठ वर्ष समाप्त होने पर ठाणाग और समवायाग, दस वर्ष समाप्त होने पर वियाहपण्णत्ति, ग्यारह वर्ष सम्प्राप्त होने पर क्षुल्लिकाविमान प्रविभक्ति, महतीविमानप्रविभक्ति (यहाँ विमानो का विस्तृत वर्णन किया गया है), अगचूलिका (उपासकदशा आदि की चूलिका), वर्गचूलिका, और व्याख्याप्रज्ञप्तिचूलिका नाम के अध्ययन, बारह वर्ष समाप्त होने पर अरुणोपपात, गरुडोपपात,[1] वरुणोपपात, वैश्रमणोपपात, ओर वेलधरउपपात नामक अध्ययन, तेरह वर्ष समाप्त होने पर उत्थानश्रुत, समुत्थान-श्रुत, देवेन्द्रउपपास, नाग ओर परियापनिका, चौदह वर्ष समाप्त होने पर स्वप्नभावना अध्ययन, पन्द्रह वर्ष समाप्त होने पर चारणभावना अध्ययन, सोलह वर्ष समाप्त होने पर तेजोनिसर्ग अध्ययन, सत्रह वर्ष समाप्त होने पर आशीविषभावना अध्ययन, अठारह वर्ष समाप्त होने पर दृष्टिवाद नामक अग और बीस वर्ष समाप्त होने पर सर्व सूत्रो के पठन का अधिकारी होता है। यहाँ दस प्रकार के वैयावृत्य का उल्लेख है।

---

१ गुणचन्द्रगणि के कहारयणकोस में इस सूत्र का उल्लेख है।

दससुयक्खध (दशाश्रुतस्कंध)

दशाश्रुतस्कध जिसे दसा, आयारदसा अथवा दसासुय भी कहा जाता है, चौथा छेदसूत्र है।[1] कुछ लोग दसा के साथ कप्प को जोडकर ववहार को अलग मानते है, और कुछ दसा को अलग करके कल्प और व्यवहार को एक स्वीकार करते है। इससे इस सूत्र की उपयोगिता स्पष्ट है। दशाश्रुतस्कध के कर्ता भद्रबाहु माने जाते है। इस पर निर्युक्ति है। निर्युक्ति के कर्ता भद्रबाहु छेदसूत्रो के कर्ता भद्रबाहु से भिन्न जान पड़ते है। दशाश्रुतस्कध पर चूर्णी भी है। ब्रह्मर्षि पार्श्वचन्द्रीय ने इस पर वृत्ति लिखी है।

इस ग्रन्थ मे दस अध्ययन है, जिनमे आठवे और दसवे विभाग को अध्ययन और बाकी को दशा कहा गया है। पहली दशा मे असमाधि के बीस स्थान गिनाये है। दूसरी दशा मे शबल के इक्कीस स्थानो का उल्लेख है। इनमे हस्तकर्म, मैथुन, रात्रिभोजन, राजपिंडग्रहण, एक मास के भीतर एक गण छोडकर दूसरे गण मे चले जाना आदि स्थान मुख्य है। तीसरी दशा मे आशातना के तेईस प्रकारो का उल्लेख है। जो मुनि इनका सेवन करते है वे शबल हो जाते है। चौथी दशा में आठ प्रकार की गणिसपदा बताई गई है—आचारसपदा, श्रुतसपदा, शरीरसपदा, वचनसपदा, वाचनासपदा, मतिसपदा, प्रयोगसपदा और सग्रहसपदा। इन सपदाओ का यहाँ विस्तार से वर्णन है। पाँचवी दशा मे चित्तसमाधिस्थान का वर्णन है। इसके धर्मचिन्ता आदि दस भेद बताये है। छठी दशा मे उपासक की ११ प्रतिमाओं का विवेचन है। आरम्भ मे अक्रियावादी, क्रियावादी आदि मिथ्यात्व का प्ररूपण करते हुए उनकी क्रियाओं के फल का वर्णन किया है। कापाय वस्त्र, दातौन, स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द,

---

[1] पन्यास मणिविजयगणिवरग्रन्थमाला में वि० स० २०११ में प्रकाशित।

स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला, अलकार आदि से नास्तिकवादी की निर्वृति नही होती। यहाँ बन्धन के अनेक प्रकार बताये है। दसवी प्रतिमा मे क्षुरमुडन कराने अथवा शिखा धारण करने का विधान है। सातवी दशा मे १२ प्रकार की भिक्षुप्रतिमा का वर्णन है। भावप्रतिमा पाँच प्रकार की है—समाधि, उपधान, विवेक, पडिसलीण और एकल्लविहार। इनके भेद प्रभेदों का वर्णन किया गया है।

आठवें अध्ययन मे श्रमण भगवान् महावीर का च्यवन, जन्म, सहरण, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष का विस्तृत वर्णन है। कही काव्यमय भाषा का प्रयोग भी हुआ है। इसी का दूसरा नाम पज्जोसणाकप्प अथवा कल्पसूत्र है।[1] जिनप्रभ, धर्मसागर, विनय-विजय, समयसुन्दर, रत्नसागर, सघविजय, लक्ष्मीवल्लभ आदि अनेक आचार्यों ने इस पर टीकाये लिखी है।[2] इसे पर्यूषण के दिनो मे साधु लोग अपने व्याख्यानो मे पढते है।[3] महावीर पहले माहणकुडग्गाम के ऋषभदत्त की पत्नी देवानदा ब्राह्मणी के गर्भ मे अवतरित हुए, लेकिन क्योंकि अरहत, चक्रवर्ती, बलदेव तथा वासुदेव भिक्षुक और ब्राह्मण आदि कुलों मे जन्म धारण नही

---

१ समयसुन्दरगणि की टीकासहित सन् १९३९ में बम्बई से प्रकाशित। हर्मन जैकोबी द्वारा लिप्जिग से सन् १८७९ में सम्पादित, जैकोबी ने सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट के २२वें भाग में अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है। सन् १९५८ में राजकोट से हिन्दी गुजराती अनुवाद सहित इसका सस्करण निकला है।

२ देखिये, जैनग्रन्थावलि, श्री जैन श्वेतांबर कान्फरेन्स, मुबई, वि० स० १९६५, पृष्ठ ४८ ५२।

३ छेदग्रन्थों में इसका अन्तर्भाव होने के कारण पहले इस सूत्र को सभा में नहीं पढ़ा जाता था। बाद में वि० स० ५२३ में आनन्दपुर के राजा ध्रुवसेन के पुत्र की मृत्यु हो जाने से इसे व्याख्यानों में पढ़ा जाने लगा।

करते,[1] इसलिये इन्द्र ने उन्हें खत्तियकुडग्गाम के गणराजा काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ की पत्नी वशिष्ठगोत्रीय त्रिशला के गर्भ मे परिवर्तित कर दिया। कौण्डिन्यगोत्रीय यशोदा से उनका विवाह हुआ। महावीर ३० वर्ष की अवस्था तक गृहवास मे रहे, और माता पिता के कालगत हो जाने पर अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की अनुज्ञा लेकर ज्ञातृखड नामक उद्यान मे उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। साधुकाल मे उन्हें अनेक उपसर्ग सहन करने पडे। १२ वर्ष उन्होंने तप किया और जभियग्राम के बाहर उज्जुवालिया नदी के किनारे तप करते हुए उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। अट्ठियग्गाम, चम्पा, पृष्ठचम्पा, वैशाली, वाणियगाम, नालन्दा, मिथिला, भद्दिया, आलभिया, श्रावस्ति, पणियभूमि और मज्झिमपावा मे उन्होंने चातुर्मास व्यतीत करते हुए ३० वर्ष तक विहार किया। तत्पश्चात् ७२ वर्ष की अवस्था मे उन्होने निर्वाणलाभ किया। इस शुभ अवसर पर काशी कोशल के नौ मल्लकि और नौ लिच्छवी नामक १८ गणराजाओं ने सर्वत्र प्रकाश कर बडा उत्सव मनाया। महावीरचरित्र के पश्चात् पार्श्व, नेमी, ऋषभदेव तथा अन्य तीर्थकरों का चरित्र लिखा गया है। कल्पसूत्र के दूसरे भाग मे स्थविरावली के गण, शाखा और कुलों का उल्लेख है, जिनमे से कई मथुरा के ईसवी सन् की पहली शताब्दी के शिलालेखों मे उत्कीर्ण है। तीसरे भाग मे सामाचारी अर्थात् साधुओं के नियमो का विवेचन है।

नौवीं दशा मे महामोहनीय कर्मबन्ध के तीस स्थानो का प्ररूपण हैं। इस प्रसग पर महावीर चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य मे समवसृत होते है और उनके व्याख्यान के समय राजा कूणिक (अजातशत्रु) अपनी रानी धारिणी के साथ उपस्थित रहता है। दसवे अध्ययन मे नौ निदानो का वर्णन है। महावीर के राजगृह

---

१ ललितविस्तर (पृष्ठ २०) में भी कहा है कि बोधिसत्व नीच कुलों में उत्पन्न नहीं होते।

नगर के गुणशिल चैत्य मे समवसृत होने पर राजा श्रेणिक महारानी चेलना के साथ दर्शनार्थ उपस्थित होते है।

कप्प (कल्प अथवा बृहत्कल्प)

कल्प अथवा बृहत्कल्प को कल्पाध्ययन भी कहते है[1] जो पर्यूपणकल्पसूत्र से भिन्न है। जैन श्रमणों के प्राचीनतम आचारशास्त्र का यह महाशास्त्र है। निशीथ और व्यवहार की भाँति इसकी भाषा काफी प्राचीन है, यद्यपि टीकाकारों ने अन्य आगमो की भाँति यहाँ भी बहुत सा हेरफेर कर डाला है। इससे साधु साध्वियो के सयम के साधक (कल्प–योग्य) अथवा बाधक (अकल्प–अयोग्य) स्थान, वस्त्र, पात्र आदि का विस्तृत विवेचन है, इसलिये इसे कल्प कहते है। इसमे छह उद्देशक है। मलयगिरि के अनुसार प्रत्याख्यान नामके नौंवे पूर्व के आचार नामक तीसरी वस्तु के बीसवे प्राभृत मे प्रायश्चित्त का विधान किया गया है, कालक्रम से पूर्व का पठन पाठन बन्द हो जाने से प्रायश्चित्तों का उच्छेद हो गया जिसके परिणाम स्वरूप भद्रबाहुस्वामी ने कल्प और व्यवहार की रचना की और इन दोनो छेदसूत्रो पर सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति लिखी। कल्प के ऊपर सघदासगणि क्षमाश्रमण ने लघुभाष्य की रचना की है। मलयगिरि के कथनानुसार भद्रबाहु की निर्युक्ति और सघदासगणि की भाष्य की गाथाये परस्पर मिल गई है, और इनका पृथक् होना असभव है। भाष्य के ऊपर हेमचन्द्र आचार्य के समकालीन मलयगिरि ने अपूर्ण विवरण लिखा है जिसे लगभग सवा दो सौ वर्ष बाद सवत् १३३२ मे क्षेमकीर्तिसूरि ने पूर्ण किया है। कल्प के ऊपर बृहद्भाष्य भी है जो केवल तीसरे उद्देश तक ही मिलता है। इस पर विशेषचूर्णी भी लिखी गई है।

---

१ सघदासगणि के भाष्य तथा मलयगिरि और क्षेमकीर्ति की टीकाओं के साथ मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सुसम्पादित होकर आत्मानद जैनसभा भावनगर से १९३३ १९४२ में प्रकाशित।

पहले उद्देशक मे ५१ सूत्र है। पहले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो के कच्चे ताल और प्रलम्ब भक्षण करने का निषेध बताया है।[1] ग्राम, नगर, खेट, कर्वटक, मडब, पत्तन, आकर, द्रोणमुख, निगम, राजधानी, आश्रम, निवेश, सबाध, घोप, अशिका, पुटभेदन, और सकर[2] आदि स्थानो का प्रतिपादन किया है। एक बडे और एक दरवाजे वाले ग्राम, नगर आदि मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को एक साथ नही रहने का विधान है। जिस उपाश्रय के चारो ओर अथवा बाजू मे दूकानें हों या आसपास मे रास्ते हो, वहाँ निर्ग्रन्थिनियो को रहना योग्य नही। उन्हें द्वाररहित खुले उपाश्रय मे नही रहना चाहिये। ऐसी हालत मे परदा (चिलिमिलिका) रखने का विधान है। निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को नदी आदि के किनारे रहने और चित्रकर्म से युक्त उपाश्रय मे रहने का निषेध है। वर्षावास मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को विहार करने का निषेध है, हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुओ मे ही वे विहार कर सकते है। वैराज्य अथवा विरुद्धराज्य के समय गमनागमन का निपेध है। रात्रि के समय अथवा विकाल मे अशन पान ग्रहण करने और मार्ग मे गमन करने का निषेध है। साकेत के पूर्व मे अग मगध तक, दक्षिण मे कौशाबी तक, पश्चिम मे थूणा (स्थानेश्वर) तक और उत्तर में कुणालविषय (उत्तर कौशल) तक गमन करने का विधान है, इन्हीं क्षेत्रों को आर्यक्षेत्र कहा गया है।

दूसरे उद्देशक मे बताया है कि जिस उपाश्रय में शालि, व्रीहि, मूग आदि फैले पडे हों, सुरा, सौवीर आदि मद्य के घडे

१ जान पड़ता है दुर्भिक्ष के समय उत्तर बिहार, उड़ीसा और नैपाल आदि देशों में जैन साधुओं को ताड़ के फल खाकर निर्वाह करना पड़ता था।

२ विवेचन के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन का नागरीप्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ५९, सम्वत् २०११ अङ्क ३ ४) में 'जैन आगम ग्रन्थों की महत्त्वपर्ण शब्द सचियाँ' नामक लेख।

रक्खे हों, अग्नि जल रही हो, दीपक का प्रकाश हो रहा हो, पिंड, क्षीर, दही आदि बिखरे पडे हो, वहाँ रहना योग्य नहीं। आगमनगृह (सार्वजनिक स्थान), खुले हुए घर, वशीमूल (घर के बाहर का चौतरा), वृक्षमूल आदि स्थानों मे निर्ग्रन्थिनियो के रहने का निषेध है। पाँच प्रकार के वस्त्र और रजोहरण धारण करने का विधान है।

तीसरे उद्देशक मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को एक दूसरे के उपाश्रय मे आने जाने की मर्यादा का उल्लेख करते हुए वहाँ सोने, बैठने, आहार, स्वाध्याय और ध्यान करने का निषेध किया है। रोग आदि की दशा मे चर्म रखने का विधान है। कृत्स्न और अकृत्स्न वस्त्र रखने की विधि का उल्लेख है। प्रव्रज्या ग्रहण करते समय उपकरण ग्रहण करने का विधान है। वर्षाकाल तथा शेष आठ मास मे वस्त्रव्यवहार करने की विधि बताई है। घर के अन्दर अथवा दो घरों के बीच मे बैठने, सोने आदि का निषेध है। विहार करने के पूर्व गृहस्थ की शय्या, सस्तारक आदि लौटाने का विधान है। ग्राम, नगर आदि के बाहर यदि राजा की सेना का पडाव हो तो वहाँ ठहरने का निषेध है।

चौथे उद्देशक मे प्रायश्चित्त और आचारविधि का उल्लेख है। हस्तकर्म, मैथुन और रात्रिभोजन का सेवन करने पर अनुद्घातिक अर्थात् गुरु प्रायश्चित्त का विधान है। पारचिक और अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के योग्य स्थान बताये गये है। षण्डक (नपुसक), वातिक और क्लीब को प्रव्रज्या लेने का निषेध है। दुष्ट, मूढ और व्युद्ग्राहित (भ्रान्त चित्तवाला) को उपदेश और प्रव्रज्या आदि का निषेध है। सदोष आहार सम्बन्धी नियम बताये है। एक गण छोड़कर दूसरे गण मे जाने के सम्बन्ध मे नियमों का उल्लेख है। रात्रि के समय अथवा विकाल मे साधु के कालगत होने पर उसके परिष्ठापन की विधि बताई है।[1]

---

1 मृतक के क्रिया कर्म के लिये देखिये रामायण (४ २५ १६ इत्यादि), तथा बी० सी० लाहा, इण्डिया डिस्क्राइब्ड, पृ० १९३।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियों मे झगडा (अधिकरण) आदि होने पर भिक्षाचर्या का निषेध है। गगा, यमुना, सरयू, कोसी, और मही नदियो मे से कोई भी नदी एक मास के भीतर एक बार से अधिक पार करने का निषेध है। कुणाला मे एरावती नदी को पार करते समय एक पॉव जल मे रख कर दूसरे पॉव को ऊँचा उठाकर पार करने का निषेध है। ऋतुबद्धकाल और वर्षा ऋतु मे रहने लायक उपाश्रयो का वर्णन है।

पॉचवे उद्देशक मे सूर्योदय के पूर्व और सूर्योदय के पश्चात भोजन पान के सम्बन्ध मे नियम बताये है। निर्ग्रन्थिनी को पिडपात आदि के लिये गृहपति के कुल मे अकेले जाने तथा रात्रि अथवा विकाल मे उसे पशु पक्षी आदि को स्पर्श करने का निषेध है। निर्ग्रन्थिनी को अचेल और बिना पात्र के रहने का निषेध है। सूर्याभिमुख होकर एक पग आदि से खडी रह कर तपश्चर्या आदि करने का निषेध है। रात्रि अथवा विकाल के समय सर्प से दष्ट किये जाने के सिवाय सामान्य दशा मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को एक दूसरे का मूत्रपान करने का निषेध है।[1] उन्हें एक दूसरे के शरीर पर आलेपन द्रव्य की मालिश आदि करने का निषेध है।

छठे उद्देशक मे निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को छह प्रकार के दुर्वचन बोलने का निषेध किया गया है। साधु के पैर मे यदि कांटा आदि लग गया है तो और साधु स्वय निकालने मे असमर्थ हों तो नियम के अपवाद रूप मे निर्ग्रन्थिनी उसे निकाल सकती है। निर्ग्रन्थिनी यदि कीचड़ आदि मे फस गई हो तो निर्ग्रन्थ उसे सहारा दे सकता है। क्षिप्तचित्त अथवा यक्षाविष्ट निर्ग्रन्थिनी को निर्ग्रन्थ द्वारा पकड़ कर रखने का विधान है। छह प्रकार के कल्पो का उल्लेख किया गया है।

---

१. विनयपिटक के भैषज्यस्कन्धक में यह विधान पाया जाता है।

पंचकप्प (पंचकल्प)

पचकल्पसूत्र और पचकल्पमहाभाष्य दोनों एक है। जिस प्रकार पिडनिर्युक्ति दशवैकालिकनिर्युक्ति का, और ओघनिर्युक्ति आवश्यकनिर्युक्ति का ही पृथक् किया हुआ एक अश है, वैसे ही पचकल्पभाष्य बृहत्कल्पभाष्य का अश है। मलयगिरि और क्षेमकीर्तिसूरि ने इसका उल्लेख किया है। इस भाष्य के कर्ता सघदासगणि क्षमाश्रमण है।[1] इस पर चूर्णी भी है जो अभीतक प्रकाशित नही हुई है।

जीयकप्पसुत्त (जीतकल्पसूत्र)

कहीं जीतकल्प की गणना छेदसूत्रो मे की जाती है।[2] इसमे जैन श्रमणों के आचार (जीत)[3] का विवेचन करते हुए उनके लिये दस प्रकार के प्रायश्चित्त का विधान है जो १०३ गाथाओं मे वर्णित है। जीतकल्प के कर्ता विशेपावश्यकभाष्य के रचयिता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण है जिनका समय ६४५ विक्रम सवत् माना जाता है। जिनभद्रगणि ने जीतकल्पसूत्र के ऊपर भाष्य भी लिखा है जो बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, पचकल्पभाष्य, पिडनिर्युक्ति आदि ग्रन्थो की गाथाओं का सग्रहमात्र है। सिद्धसेन आचार्य ने इस पर चूर्णी की रचना की है जिस पर श्रीचन्द्रसूरि ने वि० स० १२२७ मे विषमपदव्याख्या टीका लिखी है। तिलकाचार्य की वृत्ति भी इस पर मौजूद है।

इस सूत्र मे प्रायश्चित्त का माहात्म्य प्रतिपादन कर उसके

---

१ देखिये मुनि पुण्यविजयजी की बृहत्कल्पसूत्र छठे भाग की प्रस्तावना, पृ० ५६।

२ मुनि पुण्यविजय द्वारा सम्पादित वि० स० १९९४ में अहमदाबाद से प्रकाशित , चूर्णि और टीका सहित मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित, वि० स० १९८३ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

३ आयारजीदकप्प का वट्टकेर के मूलाचार (५ १९०) और शिवार्य की भगवतीआराधना (गाथा १३०) में उल्लेख है।

निम्नलिखित दस भेद बताये हैं—आलोचना, प्रतिक्रमण, मिश्र (आलोचना और प्रतिक्रमण), विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य, पारंचिक। फिर प्रत्येक प्रायश्चित्तविधि का विधान किया है। भद्रबाहु के पश्चात् अन्तिम दो प्रायश्चित्तों का व्युच्छेद बताया गया है।

यतिजीतकल्प और श्राद्धजीतकल्प भी जीतकल्प के ही अन्दर गिने जाते हैं। यतिजीतकल्प में यतियों का आचार है। इसके कर्त्ता सोमप्रभसूरि हैं, इस पर साधुरत्न ने वृत्ति लिखी है। श्राद्धजीतकल्प में श्रावकों का आचार है। इसके रचयिता धर्मघोष हैं, सोमतिलक ने इस पर वृत्ति लिखी है।



मूलसूत्र

बारह उपांगो की भाँति मूलसूत्रों का उल्लेख भी प्राचीन आगम ग्रन्थो मे देखने मे नहीं आता।[1] इन ग्रन्थों मे साधु जीवन के मूलभूत नियमो का उपदेश है, इसलिये इन्हें मूलसूत्र कहा है। कुछ लोग उत्तराध्ययन, आवश्यक और दशवैकालिक सूत्रों को ही मूलसूत्र मानते है, पिंडनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति को मूलसूत्रों मे नहीं गिनते। इनके अनुसार पिंडनिर्युक्ति दशवैकालिकनिर्युक्ति का, और ओघनिर्युक्ति आवश्यकनिर्युक्ति का ही एक अंश है। कुछ विद्वान् पिंडनिर्युक्ति को मूलसूत्रों मे सम्मिलित कर मूलसूत्रो की संख्या चार मानते है, और कुछ पिंडनिर्युक्ति के साथ ओघनिर्युक्ति को भी शामिल कर लेते है। कहीं पक्खियसुत्त का नाम भी लिया जाता है। आगमो मे मूलसूत्रों का स्थान कई दृष्टियों से बहुत महत्त्व का है। इनमे उत्तराध्ययन और दशवैकालिक जैन आगमो के प्राचीनतम सूत्रो मे गिने जाते है, और इनकी तुलना सुत्तनिपात, धम्मपद आदि प्राचीन बौद्धसूत्रो से की जाती है।

उत्तरज्झयण (उत्तराध्ययन)

उत्तराध्ययन मे महावीर के अन्तिम चातुर्मास के समय उनसे बिना पूछे हुए ३६ विषयों के उत्तर संगृहीत है, इसलिये

---

१ सब से पहले भावसूरि ने जैनधर्मवरस्तोत्र (श्लोक ३०) की टीका (पृ० ९४) में निम्नलिखित मूलसूत्रों का उल्लेख किया है—अथ उत्तराध्ययन १, आवश्यक २, पिण्डनिर्युक्ति तथा ओघनिर्युक्ति ३, दशवैकालिक ४ इति चत्वारि मूलसूत्राणि—प्रो० एच० आर० कापडिया, द कैनोनिकल लिटरेचर ऑव द जैन्स, पृ० ४३ फुटनोट।

इसे उत्तराध्ययन कहते[1] हैं। धार्मिक काव्य की दृष्टि से यह आगम बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें उपमा, दृष्टांत, और विविध संवादों द्वारा काव्यमय मार्मिक भाषा में त्याग, वैराग्य और संयम का उपदेश है। डॉक्टर विंटरनीज ने इस प्रकार के साहित्य को श्रमण काव्य की कोटि में रख कर महाभारत, धम्मपद और सुत्तनिपात आदि के साथ इस सूत्र की तुलना की है। भद्रबाहु ने इस पर निर्युक्ति और जिनदासगणि महत्तर ने चूर्णी लिखी है। थारापद्रगच्छीय वादिवेताल शान्तिसूरि (मृत्यु सन् १०४० में) ने शिष्यहिता नाम की पाइय टीका और नेमिचन्द्रसूरि (पूर्व नाम देवेन्द्रगणि) ने शांतिसूरि के आधार पर सुखबोधा (सन् १०७३ में समाप्त) टीका लिखी है। इसी प्रकार लक्ष्मी वल्लभ, जयकीर्ति, कमलसंयम, भावविजय, विनयहंस, हर्षकुल आदि अनेक विद्वानों ने भी टीकायें लिखी हैं। जॉर्ल शार्पेण्टियर ने अंग्रेजी प्रस्तावना सहित मूलपाठ का संशोधन किया है। हर्मन जैकोबी ने इसे सेक्रेड बुक्स ऑव द ईस्ट के ४५वें भाग में अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

उत्तराध्ययन में ३६ अध्ययन हैं[2], जिनमें नेमिप्रव्रज्या, हरिकेश-आख्यान, चित्त संभूति की कथा, मृगापुत्र का आख्यान, रथनेमी और राजीमती का संवाद, केशी और गौतम का संवाद

---

१ जिनदासगणि महत्तर की चूर्णी रतलाम से १९३३ में प्रकाशित हुई है, शान्तिसूरि की टीका सहित देवचंद लालभाई जैनपुस्तकोद्धार माला के ३३, ३६ और ४१ वें पुष्प में बंबई से प्रकाशित, नेमिचन्द्र की सुखबोधा टीका बंबई से सन् १९३७ में प्रकाशित। अखिल भारतीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैनशास्त्रोद्धार समिति राजकोट से सन् १९५९ में हिन्दी गुजराती अनुवाद सहित इसका एक नया संस्करण निकला है।

२ समवायांग सूत्र में उल्लिखित उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों से ये कुछ भिन्न हैं।

आदि वर्णित है। भद्रबाहु की निर्युक्ति (४) के अनुसार इस ग्रन्थ के ३६ अध्ययनो मे से कुछ अध्ययन जिनभाषित है, कुछ प्रत्येकबुद्धो द्वारा प्ररूपित है और कुछ सवादरूप मे कहे गये है। वादिवेताल शान्तिसूरि के अनुसार, इस सूत्र का दूसरा अध्ययन दृष्टिवाद से लिया गया है, द्रुमपुष्पिका नामक दसवा अध्ययन स्वय महावीर ने कहा है, कापिलीय नामक आठवा अध्ययन प्रत्येकबुद्ध कपिल ने प्ररूपित किया है और केशी गौतमीय नामक तेईसवा अध्ययन सवादरूप मे प्रस्तुत किया गया है।

पहले अध्याय मे विनय का वर्णन है—

मा गलियस्सेव कस, वयणमिच्छे पुणो पुणो।
कस व दट्ठुमाइन्ने, पावग परिवज्जए॥

जैसे मरियल घोडे को बार बार कोडे लगाने की जरूरत होती है, वैसे मुमुक्षु को बार बार गुरु के उपदेश की अपेक्षा न करनी चाहिये। जैसे अच्छी नस्ल का घोडा चाबुक देखते ही ठीक रास्ते पर चलने लगता है, उसी प्रकार गुरु के आशय को समझ कर मुमुक्षु को पापकर्म त्याग देना चाहिये।

दूसरे अध्ययन मे साधु के लिये परीषह[1]-जय को मुख्य बताया है। तप के कारण साधु की बाहु जघा आदि कृश हो जाये और उसके शरीर की नस-नस दिखाई देने लगे, फिर भी उसे सयम मे दीनवृत्ति नहीं करनी चाहिये। उसे यह नही सोचना चाहिये कि मेरे वस्त्र जीर्ण हो गये है और मैं कुछ ही

---

१ यहाँ २२ परीषहों का उल्लेख है। बौद्धों के सुत्तनिपात (३ १८) में भी शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, वात, आतप, दश (डास) और सरीसृप का सामना करने का उल्लेख है। आजकल भी उत्तर बिहार में वैशाली और मिथिला के आसपास का प्रदेश डाँस और मच्छरों से आक्रान्त रहता है, इससे जान पड़ता है कि खास कर इसी प्रदेश में इन नियमों की स्थापना की गई थी।

दिन मे अचेल (वस्त्ररहित) हो जाऊँगा, अथवा मेरे इन वस्त्रों को देखकर कोई मुझे नये वस्त्र देगा—

परिजुन्नेहिं वत्थेहि होक्खामि त्ति अचेलए ।
अदुवा सचेलए होक्ख, इति भिक्खू न चितए ॥

तीसरे अध्ययन मे मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा और सयम धारण करने की शक्ति, इन चार वस्तुओं को दुर्लभ कहा है । असस्कृत नामके चौथे अध्ययन का पहला सूत्र है—

असखय जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु णत्थि ताण ।
एय वियाणाहि जणे पमत्ते, कन्नू विहिसा अजया गहिति ॥

—टूटा हुआ जीवन तन्तु फिर से नही जुड सकता, इसलिये हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद न कर । जरा से ग्रस्त पुरुष का कोई शरण नही है, फिर प्रमादी, हिसक और अयत्नशील जीव किसकी शरण जायेंगे ?

एलग नाम के अध्ययन मे बताया है—

कुसग्गमेता इमे कामा, सन्निरुद्धम्मि आउए ।
कस्स हेउ पुराकाउ, जोगक्खेम न सविंदे ॥

—ये काम भोग कुश के अग्रभाग पर स्थित ओस की बूंद के समान हैं । ऐसी हालत मे आयु अल्प होने पर क्यो न कल्याणमार्ग को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय ?

कापिलीय अध्ययन मे लक्षणविद्या, स्वप्नविद्या और अगविद्या का उपयोग साधु के लिये वर्जित कहा है । नौवें अध्ययन मे नमिप्रव्रज्या का वर्णन है । नमि राजा मिथिला नगरी मे राज्य करते थे । अपनी सेना, अन्त पुर और सगे सबधियों को रोते-विलखते छोड़ वे तप करने चले गये ।[1] द्रुमपत्रक अध्ययन मे

---

1 मिलाइये महाजनक जातक (५३९) और महाभारत शांतिपर्व (१२ १७८) के साथ ।

एक क्षण के लिये भी प्रमाद न करने का उपदेश है। हरिकेशीय अध्ययन मे चाडाल कुल मे उत्पन्न हरिकेशबल नाम के भिक्षु का वर्णन है।[1] यह भिक्षु ब्राह्मणो की यज्ञशाला मे भिक्षा माँगने गया जब कि ब्राह्मणों ने उसका अपमान कर उसे वहाँ से भगा दिया। अत मे हरिकेशबल ने ब्राह्मणो को हिसामय यज्ञ-याग के त्याग करने का उपदेश दिया। तेरहवे अध्ययन मे चित्त और सभूति के नाम के चाडाल पुत्रों की कथा है।[2] इषुकारीय अध्ययन मे किसी ब्राह्मण के दो पुत्र अपने पिता को उपदेश देकर सन्मार्ग पर लाते है—

पिता—केण अब्भाहओ लोओ, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया! चिंतावरो हु मि॥

—यह लोक किससे पीडित है, किससे व्याप्त है? कौन से अमोघ शस्त्रों का प्रहार इस पर हो रहा है? हे पुत्रो, यह जानने के लिये मै चिन्तित हू।

पुत्र—मच्चुणऽब्भाहओ लोओ, जराए परिवारिओ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एव ताय! वियाणह॥

—हे पिता, यह लोक मृत्यु से पीडित है, जरा से व्याप्त है, और रात्रियाँ अमोघ प्रहार द्वारा इसे क्षीण कर रही है।

लिटरेचर इन ऐंशियेण्ट इण्डिया' नामक अध्याय, हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द २, पृ० ४६६ ७०, जार्ल शार्पेण्टियर, उत्तराध्ययन भूमिका, पृ० ४४ इत्यादि, ए० एम० घाटगे, एनेल्स ऑव भाडारकर ओरिण्टियल रिसर्च इस्टिट्यूट, जिल्द १७, १९३६ में 'ए फ्यू पैरेलल्स इन जैन एण्ड बुद्धिस्ट वर्क्स' नामक लेख।

१ मिलाइये चित्तसभूत जातक के साथ।

२ हरिकेश मुनि की कथा प्रकारान्तर से मातग जातक में दी हुई है। डॉक्टर आल्सडार्फ ने इस सबध में बेल्वेल्कर फेलिसिटेशन वॉल्यूम, दिल्ली, १९५७ में इस सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित किया है।

अपने पिता के प्रबुद्ध हो जाने पर अन्त मे उसके पुत्र कहते है—

जस्सऽत्थि मच्चुणा सक्ख, जस्स वऽत्थि पलायण।
जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कखे सुए सिया ॥

—जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता है, अथवा जो मृत्यु का नाश करता है, और जिसे यह विश्वास है कि वह मरनेवाला नही, वही आगामी कल का विश्वास करता है।

अन्त मे ब्राह्मण अपनी पत्नी और दोनो पुत्रो के साथ ससार का त्याग कर श्रमणधर्म मे दीक्षित हो जाता है।[1]

पन्द्रवें अध्ययन मे सद्भिक्षु के लक्षण बताये है। सतरहवे अध्ययन मे पाप-श्रमण के लक्षण कहे है। अठारहवें अध्ययन मे सजय राजा का वर्णन है जिसने मुनि का उपदेश श्रवण कर श्रमण धर्म मे दीक्षा ग्रहण की। यहाँ भरत आदि चक्रवर्ती तथा नमि, करकण्डू, दुर्मुख और नग्नजित्[2] प्रत्येकबुद्धो के दीक्षित होने का उल्लेख है। उन्नीसवे अध्ययन मे मृगापुत्र की दीक्षा का वर्णन है।[3] बीसवें अध्ययन मे अनाथी मुनि का जीवन-वृत्तान्त है। राजा श्रेणिक ने एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए किसी मुनि को देखकर उससे प्रश्न किया—

तरुणो सि अज्जो पव्वइओ, भोगकालम्मि सजया।
उवविट्ठोसि सामन्ते, एयमट्ठ सुणेमि ता ॥

—हे आर्य ! कृपाकर कहिये कि भोगो को भोगने योग्य इस तरुण अवस्था मे आपने क्या यह दीक्षा ग्रहण की है ?

मुनि—अणाहो मि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जई।
अणुकपग सुहि वा वि, कची णाभिसमेमऽह ॥

---

१ मिलाइये हत्थिपाल जातक के साथ।

२ मिलाइये सुत्तनिपात क पव्वज्जासुत्त क साथ।

—महाराज ! मै अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है। अनुकपा करनेवाला कोई मित्र आजतक मुझे नही मिला।

राजा—होमि नाहो भयताण, भोगे भुजाहि सजया।
मित्तनाईपरिवुडो, माणुरस खलु दुल्लह ॥

—आप जैसे ऋद्धिधारी पुरुष का यदि कोई नाथ नहीं है तो मै आपका नाथ होता हू। अपने मित्र और स्वजनो से परिवेष्टित ही आप यथेच्छ भोगों का उपभोग करे।

मुनि—अप्पणावि अणाहो सि, सेणिआ ! मगहाहिवा !
अप्पणा अणाहो सतो, कस्स णाहो भविस्ससि ॥

—हे मगधराज श्रेणिक ! तू स्वय ही अनाथ है, फिर भला दूसरों का नाथ कैसे बन सकता है ?

इसके बाद मुनि ने अपने जीवन का आद्योपान्त वृत्तान्त श्रेणिक को सुनाया और श्रेणिक निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक बन गया।

बाईसवे अध्ययन मे अरिष्टनेमि और राजीमती की कथा है। कृष्ण वासुदेव के सबधी अरिष्टनेमि जब राजीमती को ब्याहने आये तो उन्हें बाडो मे बॅधे हुए पशुओ का चीत्कार सुनाई दिया। पता चला कि पशुओ को मार कर बारातियों के लिये भोजन बनेगा, यह सुनकर अरिष्टनेमि को वैराग्य हो आया ओर वे रैवतक (गिरनार) पर्वत पर तप करने चल दिये ? बाद मे राजीमती ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और वह भी इसी पर्वत पर तप करने लगी। एक बार की बात है, वर्षा के कारण राजीमती के सब वस्त्र गीले हो गये। उसने अपने वस्त्रों को निचोड कर सुखा दिया और पास की एक गुफा मे खड़ी हो गई। सयोगवश उस समय वहाँ अरिष्टनेमि के भाई रथनेमि ध्यान मे अवस्थित थे। राजीमती को वस्त्ररहित अवस्था मे देखकर उनका मन चलायमान हो गया। राजीमती से वे कहने लगे—

रहनेमि अह भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणी !
मम भयाहि सुतणु ! न ते पीला भविस्सई।

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।
भुत्तभोगी पुणो पच्छा, जिणमग्गं चरिस्समो ॥

—हे भद्रे ! सुरूपे ! मंजुभाषिणी ! मैं रथनेमी हूं, तू मुझसे भयभीत मत हो। हे सुंदरी ! तुझे मुझसे कोई कष्ट न होगा। आओ, हम दोनों भोगों को भोगें। यह मनुष्य जन्म बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है। भोग भोगने के पश्चात् फिर हम जिनमार्ग का सेवन करेंगे।

राजीमती—

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूवरो ।
तहावि ते न इच्छामि, जइ सि सक्खं पुरंदरो ॥
धिरत्थु ते जसोकामी ! जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे[1] ॥
जइ तं काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥

—हे रथनेमि ! यदि तू रूप से वैश्रमण, चेष्टा से नलकूबर अथवा साक्षात् इन्द्र ही क्यों न बन जाय, तो भी मैं तुझे न चाहूंगी। हे यश के अभिलाषी ! तुझे धिक्कार है। तू जीवन के लिये वमन की हुई वस्तु का पुनः सेवन करना चाहता है, इससे तो मर जाना श्रेयस्कर है। जिस किसी भी नारी को देख कर यदि तू उसके प्रति आसक्तिभाव प्रदर्शित करेगा तो वायु के झोंके से इधर-उधर डोलनेवाले तृण की भाँति तेरा चित्त कहीं भी स्थिर न रहेगा।

तेइसवें अध्ययन में पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार और महावीर वर्धमान के शिष्य गौतम के ऐतिहासिक संवाद का उल्लेख है। पार्श्वनाथ ने चातुर्याम का उपदेश दिया है, महावीर

१ मिलाइये—

धिरत्थु तं विसं वन्तं यमहं जीवितकारणा ।
वन्तं पच्चावमिस्सामि मतम्मे जीवितां वरं ॥

ने पॉच महाव्रतो का, पार्श्वनाथ ने सचेल धर्म का प्ररूपण किया है और महावीर ने अचेल धर्म का। इस मतभेद का क्या कारण हो सकता है ? इस पर चर्चा करते हुए गौतम ने बताया है कि कुछ लोगो के लिए धर्म का समझना कठिन होता है, कुछ के लिए धर्म का पालना कठिन होता है और कुछ के लिये धर्म का समझना और पालना दोनों आसान होते है, इसलिये अलग अलग शिष्यों के लिये अलग-अलग रूप से धर्म का प्रतिपादन किया गया है। गौतम ने बताया कि बाह्यलिंग केवल व्यवहार नय से मोक्ष का साधन है, निश्चय नय से तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही वास्तविक साधन समझने चाहिये।

यज्ञीय नाम के पच्चीसवें अध्ययन मे जयघोष मुनि और विजयघोष ब्राह्मण का सवाद है। जयघोष मुनि को देखकर विजयघोष ने कहा—'हे भिक्षु ! मै तुझे भिक्षा न दूँगा। यह भोजन वेदों के पारगत, यज्ञार्थी, ज्योतिषशास्त्र और छह अगों के ज्ञाता केवल ब्राह्मणों के लिये सुरक्षित है'। यह सुनकर सच्चे ब्राह्मण का लक्षण बताते हुए जयघोष ने कहा—

जो लोए बभणो वुत्तो अग्गी वा महिओ जहा।
सदा कुसलसदिट्ठ, त वय बूम माहण ॥
न वि मुडिएण समणो, न ॐकारेण बभणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण तावसो ॥
समयाए समणो होइ, बभचेरेण बभणो।
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥
कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो होइ कम्मुणा ॥[1]

—इस लोक मे जो अग्नि की तरह पूज्य है, उसे कुशल पुरुष ब्राह्मण कहते है। सिर मुडा लेने से श्रमण नहीं होता, ओंकार का जाप करने से ब्राह्मण नहीं होता, जगल मे रहने से

१ मिलाइये धम्मपद के ब्राह्मणवग्ग तथा सुत्तनिपात, वसलसुत्त २१ २७, सेलसुत्त २१ २२ के साथ।

मुनि नही होता और कुश चीवर धारण करने से कोई तपस्वी नहीं कहा जाता। समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है। कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और अपने कर्म से ही मनुष्य शूद्र कहा जाता है।

शेष अध्ययनों मे मोक्षमार्ग, सम्यक्त्व पराक्रम, तपोमार्ग, चारित्रविधि, लेश्या, अनगार और जीवाजीवविभक्ति आदि का वर्णन है।

२ आवस्सय (आवश्यक)

आवश्यक अथवा आवस्सग (षडावश्यकसूत्र) मे नित्यकर्म के प्रतिपादक छह आवश्यक क्रियानुष्ठानों का उल्लेख है, इसलिये इसे आवश्यक कहा गया है[1]। इसमे छह अध्याय है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। इस पर भद्रबाहु की निर्युक्ति है। निर्युक्ति और भाष्य दोनो साथ छपे है। जिनभद्रगणि ने विशेषावश्यकभाष्य की रचना की है। आवश्यकनिर्युक्ति के साथ ही यह सूत्र हमे उपलब्ध होता है। इस पर जिनदासगणि महत्तर की चूर्णी है। हरिभद्रसूरि

१ जिनदासगणि महत्तर की चूर्णी १९२८ में रतलाम से प्रकाशित, हरिभद्रसूरि की शिष्यहिता टीका सहित आगमोदयसमिति, बबई, १९१६ में प्रकाशित, मलयगिरि की टीका आगमोदयसमिति, बबई, १९२८ में प्रकाशित, माणिक्यशेखर सूरि की निर्युक्तिदीपिका १९३९ में सूरत से प्रकाशित। अखिल भारतीय श्वेतांबर स्थानकवासी जैनशास्त्रोद्धार समिति राजकोट से सन् १९५८ में हिन्दी गुजराती अनुवाद सहित इसका एक नया सस्करण निकला है। जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् अर्न्स्ट लायमन ने आवश्यकसूत्र और उसकी टीकाओं आदि पर बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

ने शिष्यहिता नाम की टीका लिखी है। दूसरी टीका मलयगिरि की है। माणिक्यशेखर सूरि ने निर्युक्ति के ऊपर दीपिका लिखी है। हरिभद्रसूरि ने अपनी टीका मे उक्त छह प्रकरणों का ३५ अध्ययनो मे वर्णन किया है जिसमे अनेक प्राचीन प्राकृत और सस्कृत कथाओ का समावेश है। तिलकाचार्य ने भी आवश्यकसूत्र पर लघुवृत्ति लिखी है।

राग-द्वेष रहित समभाव को सामायिक कहते है। सामायिक करने वाला विचार करता है—'मै सामायिक करता हू, यावज्जीवन सब प्रकार के सावद्य योग का मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करता हू, उससे निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, अपने आपका परित्याग करता हू।' दूसरे आवश्यक मे चोबीस तीर्थंकरो का स्तवन है। तीसरे मे वदन स्तवन किया गया है। शिष्य गुरु के पास बैठकर गुरु के चरणो का स्पर्श कर उनसे क्षमा याचना करता है और उनकी सुखसाता के सबध मे प्रश्न करता है। चौथे आवश्यक मे प्रतिक्रमण का उल्लेख है। प्रमादवश शुभयोग से च्युत होकर, अशुभ योग को प्राप्त करने के बाद, फिर से शुभ योग को प्राप्त करने को प्रतिक्रमण कहते है। प्रतिक्रमण करनेवाले जीव ने यदि दस श्रमणधर्मों की विराधना की हो, किसी को कष्ट पहुँचाया हो, अथवा स्वाध्याय मे प्रमाद आदि किया हो तो उसके मिथ्या होने की प्रार्थना करता है और सर्वसाधुओं को मस्तक नमा कर वदन करता है। पाँचवे आवश्यक मे वह कायोत्सर्ग ध्यान के लिये शरीर की निश्चलता में स्थित रहना चाहता है। छठे आवश्यक मे प्रत्याख्यान—सर्व सावद्य कर्मों से निवृत्ति—की आवश्यकता बताई है। इसमे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का त्याग किया जाता है।

३ दसवेयालिय (दशवैकालिक)

काल से निवृत्त होकर विकाल मे अर्थात् सन्ध्या समय मे इसका अध्ययन किया जाता था, इसलिये इसे दशवैकालिक

कहा गया है।[1] इसके कर्ता शय्यंभव है।[2] ये पहले ब्राह्मण थे और बाद मे जैनधर्म मे दीक्षित हो गये। दीक्षा ग्रहण करने के बाद उनके मणग नाम का पुत्र हुआ। बड़े होने पर मणग ने अपने पिता के संबध मे जिज्ञासा प्रकट की और जब उसे पता लगा कि उन्होने दीक्षा ले ली है तो वह उनकी खोज मे निकल पड़ा। अपने पिता को खोजते खोजते वह चंपा मे पहुँचा जहाँ शय्यंभव विहार कर रहे थे। शय्यंभव को अपने दिव्य ज्ञान से पता चला कि उसका पुत्र केवल छह महीने जीवित रहनेवाला है। यह जानकर उन्होने दस अध्ययनो मे दशवैकालिक की रचना की। इस सूत्र के अन्त मे दो चूलिकायें है जो शय्यंभव की लिखी हुई नही मानी जाती। भद्रबाहु के अनुसार (निर्युक्ति १६–१७) दशवैकालिक का चौथा अध्ययन आत्मप्रवाद पूर्व मे से, पॉचवॉ कर्मप्रवाद पूर्व मे से, सातवॉ सत्यप्रवाद पूर्व मे से और शेष अध्ययन प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी वस्तु मे से लिये गये है। भद्रबाहु ने इस पर निर्युक्ति, अगस्त्यसिंह ने चूर्णी, जिनदासगणि महत्तर ने चूर्णी और हरिभद्रसूरि ने टीका लिखी है। इस पर तिलकाचार्य, सुमतिसूरि और विनयहंस आदि विद्वानों की वृत्तियॉ भी मौजूद है। यापनीयसंघीय अपराजितसूरि (अपर नाम विजयाचार्य) ने भी दशवैकालिक पर विजयोदया टीका लिखी है जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी भगवतीआराधना की टीका मे किया है। जर्मन विद्वान् वाल्टर शूब्रिंग ने भूमिका आदि सहित तथा लायमेन

---

१ सुधर्मा महावीर के गणधर थे, उनके बाद जम्बू हुए। जम्बू अन्तिम केवली थे, उनके समय से केवलज्ञान होना बन्द हो गया। जम्बूस्वामी के पश्चात् प्रभव नाम के तीसरे गणधर हुए। फिर शय्यंभव हुए, फिर यशोभद्र, संभूतिविजय, भद्रबाहु और उनके बाद स्थूलभद्र हुए। शय्यंभव की दीक्षा के लिये देखिये हरिभद्र, दशवैकालिकवृत्ति, पृ० २०-१।

२ जिनदासगणि महत्तर की चूर्णी सन् १९३३ में रतलाम से प्रकाशित, हरिभद्र की टीका बबई से वि० सं० १९९९ में प्रकाशित।

ने मूलसूत्र और निर्युक्ति के जर्मन अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया है। उत्तराध्ययन की भाँति पिशल ने इस सूत्र को भाषाशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। दशवैकालिक के पाठों की अशुद्धता की ओर उन्होंने खास तौर से लक्ष्य किया है।[1]

पहला अध्ययन द्रुमपुष्पित है। यहाँ साधु को भ्रमर की उपमा दी है—

जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रस।
न य पुप्फ किलामेइ सो य पीणेइ अप्पय॥[2]

—जैसे भ्रमर वृक्ष के पुष्पों को विना पीडा पहुँचाये उनका रसास्वादन कर अपने आपको तृप्त करता है, वैसे ही भिक्षु आहार आदि की गवेषणा मे रत रहता है।

दूसरा अध्ययन श्रामण्यपूर्वक है।[3] श्रामण्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इसके सबध मे कहा है—

कह नु कुज्जा सामण्ण जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयन्तो सकप्पस्स वस गओ[4]॥

१ प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ३५। दशवैकालिक के पद्यों की आचारांगसूत्र के साथ तुलना के लिये देखिये डॉक्टर ए० एम० घाटगे का न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द १, न० २ पृ० १३० ७) में 'पैरेलल पैसेजेज इन द दशवैकालिक एण्ड द आचारांग' नामक लेख।

२ मिलाइये—यथापि भमरो पुप्फ वण्णगध अहेठय।
पलेति रसमादाय एव गामे मुनी चरे॥
धम्मपद, पुप्फवग्ग ६।

३ इस अध्ययन की बहुत सी गाथायें उत्तराध्ययनसूत्र के २२वें अध्ययन से मिलती हैं।

४ मिलाइये—कति ह चरेय्य सामञ्ञ चित्त चे न निवारेय्य।
पदे पदे विसीदेय्य सकप्पान वसानुगो॥
सयुत्तनिकाय (१ २ ७)

—जो काम-भोगो का निवारण नहीं करता, वह सकल्प-विकल्प के अधीन होकर पद पद पर स्खलित होता है, फिर वह श्रामण्य को कैसे पा सकता है ?

वत्थगधमलकार इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छन्दा जे न भुजति न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥

—वस्त्र, गध, अलकार, स्त्री और शयन—इनका जो स्वेच्छा से भोग नही करता, वह त्यागी है ।

समाए पेहाए परिव्वयन्तो ।
सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ॥
न सा मह नो वि अह पि तीसे ।
इच्चेव ताओ विणएज्ज राग ॥

—सम भावना से सयम का पालन करते हुए कदाचित् मन इधर उधर भटक जाये तो उस समय यही विचार करना चाहिये कि न वह मेरी है और न मै उसका ।

क्षुल्लिकाचार कथा नामक तीसरे अध्ययन मे निर्ग्रन्थ महर्षियो के लिये उद्दिष्ट भोजन, स्नान, गध, दन्तधावन, राजपिड, छत्र-धारण, वमन, विरेचन आदि का निषेध है। षड्जीवनीकाय अध्ययन मे छह जीवनिकायो को मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदन से हानि पहुँचाने का निषेध किया है। फिर सर्व प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण और रात्रिभोजन विरमण का उल्लेख है। पाँचवे अध्ययन मे दो उद्देश्य है । यहाँ बताया है कि भिक्षाचर्या के लिये जाते समय और भिक्षाग्रहण करते समय साधु किन बातों का ध्यान रक्खे।[1] बहुत हड्डी (अस्थि) वाला

---

1 कोसिय जातक (२२६) में भी भिक्षु के लिये अकालगमन का निषेध है—

काले निक्खमणा साधु नाकाले साधुनिक्खमो ।
अकालेन हि निक्खम्म एककपि बहूजनो ॥

मास[1] (पुद्गल) और बहुत काटे वाली मछली (अणिमिस) ग्रहण न करे। भोजन करते समय यदि हड्डी, कॉटा, तृण, काष्ठ, ककर आदि मुँह मे आ जाय तो उन्हें मुँह से न थूक कर हाथ मे लेकर एक ओर रख दे। भिक्षु के लिये मदिरापान का निषेध बताया है।[2]

यत्नपूर्वक आचरण के लिये इतिवुत्तक (१२, पृ० १०) में उल्लेख है—

यत चरे यत तिट्ठे यत अच्छे यत सये।
यत सम्मिञ्जये भिक्खू यतमेन पसारये॥

१ हरिभद्रसूरि ने इस पर टीका (पृ० ३२६) करते हुए लिखा है—अय किल कालाद्यपेक्षया ग्रहणे प्रतिषेध, अन्ये त्वभिदधति—वनस्पत्यधिकारात्तथाविधफलाभिधाने।

चूर्णीकार ने लिखा है—

मस वा णेह कप्पइ साहूण, कचि काल देस पडुच्च इम सुत्तमागत (दशवैकालिकचूर्णी, पृ० १८४)।

इस सबध में आचाराग के टीकाकार ने कहा है—

बहुअट्ठियेण मसेण वा बहुकटएण मच्छेण वा उवनिमतिज्जा एयप्पगार निग्घोस सुच्चा नो खलु मे कप्पइ अभिकखसि मे दाउ जावइय तावइय पुग्गल दलयाहि मा य अट्ठियाइ—अर्थात् पुद्गल (मांस) ही दो, अस्थि नहीं। फिर भी यदि कोई अस्थियाँ ही पात्र में डाल दे तो मास मत्स्य का भक्षण कर अस्थियों को एकान्त में रख दे। टीका—एव मांससूत्रमपि नेय। अस्य चोपदान कचिल्लूताद्युपशमनार्थं सद्वैद्योपदेशतो बाह्यपरिभोगेन स्वेदादिना ज्ञानाद्युपकारकत्वात्फलव दृष्ट—आचारांग (२) १, १०, २८१ पृ० ३२३ ६ अववादुस्सग्गिय (अपवाद औत्सगिक)—'बहु अट्ठिय पोग्गल अणिमिस वा बहुकप्प।' एव अववादतो गिण्हतो भणाइ—मस दल, मा अट्ठिय'—विशेषनिशीथचूर्णी (साइक्लोस्टाइल्ड प्रति), १६ पृ० १०३४, आवश्यकचूर्णी, २, पृ० २०२।

२ ज्ञातृधर्मकथा (५) में शैलक ऋषि का मद्यपान द्वारा रोग शान्त होने का उल्लेख ऊपर आ चुका है। बृहत्कल्पभाष्य (९५४–५६) में ग्लान अवस्था में वैद्य के उपदेशपूर्वक मद्य (विकट) ग्रहण करने का उल्लेख है।

धर्मार्थकथा अथवा महाचारकथा नामक अध्ययन मे साधुओं के अठारह स्थानों का निरूपण है। अहिसा की आवश्यकता बताते हुए कहा है—

सव्वजीवा वि इच्छन्ति जीविउ न मरिज्जिउ।
तम्हा पाणवह घोर निग्गन्था वज्जयन्ति ण॥

—सब जीव जीने की इच्छा करते है मरना कोई नही चाहता, इसलिये निर्ग्रन्थ मुनि प्राणवध का त्याग करते है।

परिग्रह के सबध मे कहा है—

ज पि वत्थ व पाय वा कबल पायपुछण।
त पि सजमलज्जट्ठा धारेन्ति परिहरन्ति य॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्त महेसिणा॥

—वस्त्र, पात्र, कबल और पादप्रोछन जो साधु धारण करते हैं, वह केवल सयम और लज्जा के रक्षार्थ ही करते हैं। वस्त्र, पात्र आदि रखने को परिग्रह नही कहते, ज्ञातपुत्र महावीर ने मूर्च्छा-आसक्ति को परिग्रह कहा है।

सातवें अध्ययन मे वाक्यशुद्धि का प्रतिपादन है। आठवे अध्ययन मे आचार प्रणिधि का वर्णन है—

बहु सुणेइ कण्णेहिं, बहु अच्छीहिं पेच्छई।
न य दिट्ठं सुय सव्व, भिक्खू, अक्खाउमरिहई॥

—भिक्षु कानों से बहुत कुछ सुनता है, ऑखों से बहुत कुछ देखता है, लेकिन जो वह सुनता और देखता है उस सब को किसी के सामने कहना योग्य नहीं।

धर्माचरण का उपदेश—

जरा जाव न पीलेइ वाही जाव न वड्ढइ।
जाविन्दिया न हायन्ति ताव धम्म समाचरे॥

—बुढापा जब तक पीड़ा नहीं देता, व्याधि कष्ट नहीं पहुँचाती और इन्द्रियॉ क्षीण नहीं होतीं, तब तक धर्म का आचरण करे।

फिर—

> उवसमेण हणे कोह, माण मद्दवया जिणे।
> माय चज्जव भावेण, लोभ सतोसओ जिणे ॥

—क्रोध को उपशम से, मान को मृदुता से, माया को आर्जव से और लोभ को सतोष से जीते।

स्त्रियों से बचने का उपदेश—

> जहा कुक्कुडपोयस्स निच्च कुललओ भय।
> एव खु बभचारिस्स इत्थी विग्गहओ भय ॥
> चित्त भित्ति न निज्झाए नारिं वा सुअलकिय।
> भक्खर पिव दट्ठूण दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥
> हत्थपायपडिच्छिन्न कण्णवासविगप्पिय।
> अवि वाससइ नारिं• बभयारी विवज्जए ॥

—जैसे मुर्गी के बच्चे को बिलाडी से सदा भय रहता है, वैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्रियों के शरीर से भयभीत रहना चाहिये। स्त्रियों के चित्रों से शोभित भित्ति अथवा अलकारों से सुशोभित नारी की ओर न देखे। यदि उस ओर दृष्टि पड भी जाये तो जिस प्रकार हम सूर्य को देखकर दृष्टि सकुचित कर लेते है, वैसे ही भिक्षु को भी अपनी दृष्टि सकुचित कर लेनी चाहिये। जिसके हाथ पॉव और नाक कान कटे हुए हों अथवा जो सौ वर्ष की बुढिया हो, ऐसी नारी से भी भिक्षु को दूर ही रहना चाहिये।

विनय समाधि अध्ययन मे चार उद्देश हैं। यहॉ विनय को धर्म का मूल कहा है। सभिक्षु नाम के अध्ययन मे अच्छे भिक्षु के लक्षण बताये हैं[1]। अन्त मे दो चूलिकायें हैं, पहली रतिवाक्य और दूसरी विविक्तचर्या।

---

१ उत्तराध्ययन के पन्द्रहवें अध्ययन का नाम और विषय आदि भी यही है।

४ पिंडनिज्जुत्ति (पिंडनिर्युक्ति)

पिड का अर्थ है भोजन, इस ग्रथ मे पिडनिरूपण, उद्गम दोप, उत्पादन दोप, एपणा दोप और ग्रास एपणा दोपो का प्ररूपण किया गया है[1]। इसमे ६७१ गाथाये हैं, निर्युक्ति और भाष्य की गाथाये परस्पर मिल गई है, इसलिये उनका अलग पता नही चलता। पिडनिर्युक्ति के रचयिता भद्रबाहु है। दशवैकालिकसूत्र के पॉचवे अध्ययन का नाम पिडैपणा है। इस अध्ययन पर लिखी गई निर्युक्ति के विस्तृत हो जाने के कारण उसे पिडनिर्युक्ति के नाम से एक अलग ही आगम स्वीकार कर लिया गया। इसमे साधुओ की आहार विधि का वर्णन है[2]। इसलिये इसकी गणना छेदसूत्रो मे भी की जाती है। इस पर मलयगिरि की बृहद्वृत्ति और वीराचार्य की लघुवृत्ति मौजूद है।

पिडनिर्युक्ति मे आठ अधिकार है—उद्गम, उत्पादन, एषणा, सयोजना, प्रमाण, अगार, धूम और कारण। पिंड के नौ भेद है। इनमे सीपी, शख तथा सर्पदश का शमन करने के लिये दीमको के घर की मिट्टी, वमन को रोकने के लिये मक्खी की विष्टा, क्षुर आदि रखने के लिये चर्म, टूटी हुई हड्डी जोड़ने के लिये अस्थि, दॉत, नख, मार्गभ्रष्ट साधु को बुलाने के लिये सीग और कोढ़ आदि दूर करने के लिये गोमूत्र[3] आदि का उपयोग साधु के लिये बताया है। उद्गम दोप सोलह प्रकार का है।

---

१ इस पर मलयगिरि की टीका देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला में सूरत से सन् १९१८ में प्रकाशित हुई है। भाष्य भी साथ में छपा है।

२ वट्टकेर क मूलाचार (६ १–६२) की गाथायें पिंडनिर्युक्ति की गाथाओं से मिलती हैं।

३ मिलिन्दपण्ह (हिन्दी अनुवाद, पृ० २१२) में गोमूत्र पान का विधान है।

साधुओं के निमित्त अथवा उद्देश्य से बनाया हुआ, खरीद कर अथवा उधार लाया हुआ, किसी वस्तु को हटा कर दिया हुआ और ऊपर चढ कर लाया हुआ भोजन निषिद्ध कहा है। उत्पादन दोष के सोलह भेद है। दुर्भिक्ष आदि पडने पर साधुओ को भिक्षा प्राप्त करने मे बडी कठिनाइयाँ हुआ करती थीं। इसलिये जहाँ तक हो दोषों को बचाकर भिक्षा ग्रहण करने का विधान है। धाई का कार्य करके भिक्षा प्राप्त करना धात्रीपिंड दोष कहा जाता है। सगमसूरि इस प्रकार से भिक्षा-ग्रहण कर अपना निर्वाह करते थे, उन्हें प्रायश्चित का भागी होना पडा। कोई समाचार ले जाकर भिक्षा प्राप्त करना दूतीपिंड दोष है, धनदत्त मुनि का यहाँ उदाहरण दिया है। इसी प्रकार अनेक साधु भविष्य बताकर, जाति, कुल, गण, कर्म और शिल्प की समानता उद्घोषित कर, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि और श्वान के भक्त बन कर, क्रोध, मान, माया और लोभ का उपयोग करके, दाता की प्रशसा करके, चिकित्सा, विद्या, मत्र अथवा वशीकरण का उपयोग करके भिक्षा ग्रहण करते थे। इसे सदोष भिक्षा कहा है। एषणा (निर्दोष आहार) के दस भेद है। बाल, वृद्ध, उन्मत्त, कपित शरीर, ज्वर पीडित, अध, कुष्ठी, खडाऊ पहने, बेडी मे बद्ध आदि पुरुषों से भिक्षा ग्रहण करना निषिद्ध है। इसी प्रकार भोजन करती हुई, दही बिलोती हुई, आटा पीसती हुई, चावल कूटती हुई, रुई धुनती हुई, कपास ओटती हुई आदि स्त्रियों से भिक्षा नहीं लेने का विधान है। स्वाद के लिये भिक्षा में प्राप्त वस्तुओं को मिलाकर खाना सयोजना दोष है। आहार के प्रमाण को ध्यान मे रखकर भिक्षा नहीं ग्रहण करना प्रमाण दोष है। आग मे अच्छी तरह पकाये हुए भोजन मे आसक्ति दिखाना अगार दोष, और अच्छी तरह न पकाये हुए भोजन की निन्दा करना धूमदोष है। सयमपालन, प्राणधारण और धर्मचिन्तन आदि का ध्यान न रख कर गृध्रता के लिये भोजन करना कारण दोष है।

५ ओहनिज्जुत्ति (ओघनिर्युक्ति)

ओघ अर्थात् सामान्य या साधारण। विस्तार मे गये बिना इस निर्युक्ति मे सामान्य कथन किया गया है, इसलिये इसे ओघनिर्युक्ति कहा जाता है[1], यह सामान्य सामाचारी को लेकर लिखी गई है। इसके कर्ता भद्रबाहु है। इसे आवश्यकनिर्युक्ति का अश माना जाता है। पिडनिर्युक्ति की भॉति इसमे भी साधुओ के आचार विचार का प्रतिपादन है और अनेक उदाहरणों द्वारा विषय को स्पष्ट किया गया है। ओघनिर्युक्ति को भी छेदसूत्रों मे गिना गया है। इसमे ८११ गाथाये है, निर्युक्ति और भाष्य की गाथायें मिश्रित हो गई है। द्रोणाचार्य ने ओघनिर्युक्ति पर चूर्णी की भॉति प्राकृत-प्रधान टीका लिखी है। मलयगिरि ने वृत्ति की रचना की है। अवचूरि भी इस पर लिखी गई है। ओघनिर्युक्ति मे प्रतिलेखनद्वार, पिडद्वार, उपधिनिरूपण, अनायतनवर्जन, प्रतिसेवनाद्वार, आलोचनाद्वार और विशुद्धिद्वार का प्ररूपण है।

सयम पालने की अपेक्षा आत्मरक्षा करना आवश्यक है, इस विषय का ऊहापोह करते हुए कहा है—

सव्वत्थ सजम सजमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा।
मुच्चइ अइवायाओ पुणो विसोही न याविरई॥

—सर्वत्र सयम की रक्षा करनी चाहिये, लेकिन सयम पालन की अपेक्षा अपनी रक्षा अधिक आवश्यक है। क्योंकि जीवित रहने पर, सयम से भ्रष्ट होने पर भी, तप आदि द्वारा विशुद्धि

---

१ द्रोणाचार्य ने इस पर वृत्ति लिखी है, जो आगमोदयसमिति, बबई से १९१९ में प्रकाशित हुई है। भाष्य भी निर्युक्ति के साथ ही छपा है। मुनि मानविजय जी ने द्रोणाचार्य की वृत्ति के साथ इसे मगन से सन १९५७ में प्रकाशित किया है।

की जा सकती है। आखिर तो परिणामों की शुद्धता ही मोक्ष का कारण है।

फिर—

सजमहेउ देहो धारिज्जइ सो कओ उ तद्भावे ?
सजमफाइनिमित्त देहपरिपालणा इट्ठा।[1]

—सयम पालन के लिये ही देह धारण की जाती है, देह के अभाव मे सयम का कहॉ से पालन किया जा सकता है ? इसलिये सयम की वृद्धि के लिये देह का पालन करना उचित है।

यदि कोई साधु बीमार हो गया हो तो तीन, पॉच या सात साधु स्वच्छ वस्त्र धारण कर, शकुन देखकर वैद्य के पास गमन करे। यदि वह किसी के फोडे मे नश्तर लगा रहा हो तो उस

---

१ इस विषय को लेकर जैन आचार्यों में काफी विवाद रहा है। विशेषनिशीथचूर्णी में भी यही अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि जहाँ तक हो विराधना नहीं ही करनी चाहिये, किन्तु यदि कोई चारा न हो तो ऐसी हालत में विराधना भी की जा सकती है (जइ सकइ तो अविराहिंतेहिं, विराहिंतेहि वि ण दोसो, पीठिका, साइक्लोस्टाइल्ड प्रति, पृ० ९० । यहाँ बताया गया है कि जैसे मत्रविधि से विषभक्षण करने पर वह सदोष नहीं होता, इसी तरह विधिपूर्वक की हुई हिंसा दुर्गति का कारण नहीं होती—जहा विस विधीए मतपरिग्गहित खज्जमाण अदोसाय भवति, अविधीए पुण खज्जमाण मारग भवति, तहा हिंसा विधीए मतेहिं जण्णजापमादीहि कज्जमाणा ण दुग्गतिगमणाय भवति, तम्हा णिरवायता पस्सामो हिंसा विधीए कप्पति काउ, एव विट्ठतेण कप्पमकप्प कज्जति, अकप्प कप्प कज्जति। निशीथचूर्णी, साइक्लोस्टाइल्ड प्रति, १५, पृष्ठ ९५५। महाभारत, शातिपर्व (१२–१४१ आदि) में आपद्धर्म उपस्थित होने पर विश्वामित्र ऋषि को चोरी करने के लिये बाध्य होना पड़ा। 'जीवन् धर्मं चरिष्यामि' (यदि जीता रहा तो धर्म का आचरण कर सकेगा) का यहाँ समर्थन किया गया है।

समय उससे बात न करे। जब वह पवित्र स्थान में आकर बैठ जाये तो उसे रोगी का हाल कहें। फिर जो उपचार वह बताये उसे ध्यानपूर्वक सुने।[1]

ग्राम मे प्रवेश कर साधु लोग स्थान के मालिक (शय्यातर) से पूछकर वसति (ठहरने का स्थान) मे ठहरते है। चातुर्मास बीत जाने पर उससे पूछकर अन्यत्र गमन करते है। सध्या के समय आचार्य अपने गमन की सूचना देते है और चलने के पूर्व शय्यातर के परिवार को धर्म का उपदेश देते हैं। साधु लोग शकुन देखकर गमन करते है, रात्रि मे गमन नही करते, दूसरे स्थान मे पहुँचते-पहुँचते यदि रात हो जाये तो जगली जानवर, चोर, रक्षपाल, बैल, कुत्ते और वेश्या आदि का डर रहता है। ऐसे समय यदि कोई टोके तो कह देना चाहिये कि हम लोग चोर नहीं है। वसति मे पहुँचने पर यदि चोर का भय हो तो एक साधु वसति के द्वार पर खडा रहे और दूसरा मल मूत्र (कायिकी) का त्याग करे। यहाँ मल-मूत्र त्याग करने की विधि बताई है। कभी कोई विधवा, प्रोषितभर्तृका अथवा रोक कर रक्खी हुई स्त्री साधु को अकेला पाकर घर का द्वार बन्द कर दे, तो यदि साधु स्त्री की इच्छा करता है तो वह सयम से भ्रष्ट हो जाता है। यदि इच्छा नहीं करता तो स्त्री झूठमूठ उसकी बदनामी उडा सकती है। यदि कोई स्त्री उसे जबर्दस्ती पकड ले तो साधु को चाहिये कि वह स्त्री को धर्मोपदेश दे। यदि स्त्री फिर भी न छोडे तो गुरु के समीप जाने का बहाना बनाकर वहाँ से चला जाये। फिर भी सफलता न मिले तो व्रत भग करने के लिये वह कमरे मे चला जाय और उपायान्तर न देख रस्सी आदि से लटक कर प्राणान्त कर ले।

उपधि का निरूपण करते हुए जिनकल्पियों के निम्नलिखित बारह उपकरण बताये है—पात्र, पात्रबन्ध, पात्रस्थापन, पात्र-

---

1 इस वर्णन के लिए देखिये, सुश्रुतसहिता, (अ० २९, सूत्र १२, पृ० १७५ आदि)।

केसरिका (पात्रमुखवस्त्रिका), पटल,[1] रजस्त्राण, गोच्छक, तीन प्रच्छादक (वस्त्र), रजोहरण और मुखवस्त्रिका। इनमे मात्रक और चोलपट्ट मिला देने से स्थविरकल्पियों के चौदह उपकरण हो जाते हैं। उक्त बारह उपकरणो मे मात्रक, कमढग, उग्गहणतग (गुह्य अग की रक्षा के लिये), पट्टक (उग्गहणतग को दोनों ओर से ढकने वाला, जॉघिये की भॉति), अद्धोरुग (उग्गहणतग और पट्टक के ऊपर पहने जानावाला), चलनिका (घुटनों तक आनेवाला बिना सींया वस्त्र), अब्भितरनियसिणी (आधी जॉघो तक लटका रहनेवाला वस्त्र, वस्त्र बदलते समय साध्वियॉ इसका उपयोग करती थीं), बहिनियसिणी (घुट्टियो तक लटका रहनेवाला, डोरी के द्वारा इसे कटि मे बॉधा जाता था) नामक वस्त्र उल्लेखनीय है। इसके अलावा निम्न वस्त्र शरीर के ऊपरी भाग मे पहने जाते थे—कचुक (वक्षस्थल को ढकनेवाला वस्त्र), उक्कच्छिय (कचुक के समान ही होता था), वेकच्छिय (कचुक और उक्कच्छिय दोनों को ढकनेवाला वस्त्र), सघाडी, खधकरणी (चार हाथ लबा वस्त्र, वायु आदि से रक्षा करने के लिये पहना जाता था)। ये सब मिलाकर २५ उपकरण आर्याओं के लिये बताये गये है। यहॉ पात्र, दण्ड, यष्टि, चर्म, चर्मकोश, चर्मच्छेद, योगपट्टक, चिलमिली और उपानह आदि उपकरणों के धारण करने का प्रयोजन बताया है। साधु के उपकरणों मे यष्टि आदि रखने का विधान है। यष्टि आत्मप्रमाण, वियष्टि अपने से चार अगुल कम, दण्ड बाहुप्रमाण, विदण्ड कॉख (कक्षा) प्रमाण और नालिका अपने प्रमाण से चार अगुल

---

१ भोजन पात्र में पुष्प आदि न गिर जाये इसलिये साधारणतया यह वस्त्र काम में आता था, लेकिन इसके अलावा उस समय जो साधु नग्न अवस्था में विहार करते थे वे इस वस्त्र को अपने लिंग को सवरण करने के काम में लेते थे—लिंगस्स सवरणे वेदोदयरक्खणे पडला ॥ ७०२ ॥ इस उल्लेख की ओर मुनि पुण्यविजय जी ने मेरा ध्यान आकर्षित किया है, एतदर्थ मैं आभारी हूँ।

अधिक होती है। जल की थाह लेने के लिये नालिका, परदा बाँधने के लिये यष्टि, उपाश्रय के दरवाजे मे लगाने के लिये (उवस्सयबारघट्टणी) वियष्टि, भिक्षा के लिये भ्रमण करते समय आठ महीने रक्षा के लिये दड तथा वर्षाकाल मे विदण्ड का उपयोग किया जाता है। तत्पश्चात् लाठियो के भेद बताते हुए एक, तीन और सात पोरी आदि वाली लाठी को शुभ तथा चार, पॉच और छह पोरी वाली लाठी को अशुभ कहा है।

यहाँ (पृष्ठ १५२) 'चाणक्कए वि भणिय' कह कर निम्न अवतरण दिया गया है—"जइ काइय न वोसिरइ ततो अदोसो" (यदि मल-मूत्र का त्याग नही करता तो दोष नही है)।

पक्खियसुत्त (पाक्षिकसूत्र)

पाक्षिकसूत्र आवश्यकसूत्र मे गर्भित हो जाता है। जैन-धर्म मे पॉच प्रकार के प्रतिक्रमण बताये है —दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक। यहॉ पाक्षिक प्रतिक्रमण को लेकर ही पक्खियसुत्त की रचना हुई है। इस हिसाब से इसे आवश्यकसूत्र का अग समझना चाहिये। इस पर यशोदेवसूरि ने सुखविबोधा नाम की वृत्ति लिखी है।[1] इस सूत्र मे रात्रिभोजन को मिला कर छह महाव्रतों और उनके अतिचारों का विवरण है। क्षमाश्रमणों की वन्दना की गई है। २८ उक्कालिय, ३७ कालिय तथा १२ अगों के नामो की सूची यहाँ दी गई है।

खामणासुत्त (क्षामणासूत्र)

इसे पाक्षिकक्षामणासूत्र भी कहते हैं। कोई इसे पाक्षिक-सूत्र के साथ गिनते हैं, कोई अलग।

---

१ यशोदेवसूरि की टीका सहित देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, सूरत से सन् १९५१ में प्रकाशित।

वंदित्तुसुत्त

इसे श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र भी कहते है।[1] इसकी पहली गाथा 'वदित्तु सव्वसिद्धे' से आरम्भ होती है, इसलिए इसे वदित्तुसुत्त कहा जाता है। यह सूत्र गणधरों द्वारा रचित कहा गया है। इस पर अकलक, देवसूरि, पार्श्वसूरि, जिनेश्वरसूरि, श्रीचन्द्रसूरि, तिलकाचार्य, रत्नशेखरसूरि आदि आचार्यों ने टीकाएँ लिखी है। सबसे प्राचीन विजयसिह की चूर्णी है जो सवत् ११८३ (सन् ११२६) मे लिखी गई है।

इसिभासिय (ऋषिभाषित)

प्रत्येकबुद्धों द्वारा भाषित होने से इसे ऋषिभाषित कहा है।[2] इसमे नारद, अगरिसि, वॅल्कलचीरि, कुम्मापुत्त,[3] महा कासव, मखलिपुत्त, बाहुक, रामपुत्त, अम्मड, मायग, वारत्तय, इसिगिरि, अद्दालय, दीवायण, वेसमण[4] आदि ४५ अध्ययनों मे

---

१ पार्श्वसूरि, चन्द्रसूरि और तिलकाचार्य की वृत्तियों सहित विनयभक्ति सुन्दरचरणग्रन्थमाला में वि० स० १९९७ में प्रकाशित। रत्नशेखरसूरि की वृत्ति का अनुसरण करके किसी आचाय ने अवचूरि लिखी है जो वन्दनप्रतिक्रमणावचूरि के नाम से देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला में सन् १९५२ में प्रकाशित हुई है।

२ ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम द्वारा सन् १९२७ में प्रकाशित।

३ थेरगाथा (४) में कुम्मापुत्त स्थविर का उल्लेख है।

४ सूत्रकृतांग (३ ४-२, ३, ४, पृष्ठ ९४ अ-९५) में रामगुप्त राजर्षि, बाहुक, नारायणमहर्षि, असितदेवल, द्वीपायन, पराशर आदि महापुरुषों को सम्यक्चारित्र के पालन करने से मोक्ष की प्राप्ति बताई है। चउसरण की टीका (६४) में भी अन्यलिंग सिद्धों में वल्कलचीरी आदि तथा अजिन सिद्धों में पुडरीक, गौतम आदि का उल्लेख है।

प्रत्येकबुद्धों के चरित्र दिये हुए हैं। इसमे अनेक अध्ययन पद्य मे हैं। इस सूत्र पर निर्युक्ति लिखे जाने का उल्लेख है जो आजकल अनुपलब्ध है।

नन्दी और अनुयोगदार

नन्दी की गणना अनुयोगद्वार के साथ की जाती है। ये दोनों आगम अन्य आगमों की अपेक्षा अर्वाचीन हैं। नन्दी के कर्ता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक है। कुछ लोग देववाचक और देवर्धिगणि क्षमाश्रमण को एक ही मानते है। लेकिन यह ठीक नहीं है, दोनों की गच्छ परम्पराये भिन्न भिन्न है। जिनदासगणि महत्तर ने इस सूत्र पर चूर्णी तथा हरिभद्र और मलयगिरि ने टीकाये लिखी हैं।[1]

नन्दीसूत्र मे ६० पद्यात्मक गाथाये और ५६ सूत्र हैं। आरम्भ की गाथाओ मे महावीर, सघ और श्रमणों की स्तुति की गई है। स्थविरावली मे भद्रबाहु, स्थूलभद्र, महागिरि, आर्य श्याम, आर्य समुद्र, आर्य मगु, आर्य नागहस्ति, स्कदिल आचार्य, नागार्जुन, भूतदिन्न आदि के नाम मुख्य हैं। प्रथम सूत्र में ज्ञान के पॉच भेद बताये हैं। फिर ज्ञान के भेद-प्रभेदों का विस्तार से कथन है। सम्यक् श्रुत मे द्वादशाग गणिपिटक के आचाराङ्ग आदि १२ भेद बताये गए हैं। द्वादशाग सर्वज्ञ, सर्व-दर्शियों द्वारा भाषित माना है। मिथ्याश्रुत मे भारत (महाभारत)

---

१ चूर्णी सन् १९२८ में रतलाम से प्रकाशित; हरिभद्र की टीका सहित सन् १९२८ में रतलाम से और मलयगिरि की टीका सहित सन् १९२४ में बम्बई से प्रकाशित। इस आगम की कुछ कथाओं की तुलना कालिपाद मित्र ने इण्डियन हिस्टौरिकल क्वार्टर्ली (जिल्द १९, न० ३-४) में प्रकाशित 'सम टेल्स ऑव ऐंशिएण्ट इजराइल, देअर ओरिजिनल्स एण्ड पैरेलल्स' नामक लेख में अन्य कथाओं के साथ की है।

रामायण, भीमासुरक्ख[1], कौटिल्य[2], घोटकमुख[3], सगडभद्दिआ, कप्पसिअ, नागसुहुम, कनकसत्तरि[4], वइसेसिय (वैशेषिक), बुद्धवचन, त्रैराशिक, कापिलिक, लोकायत, षष्ठितंत्र माठर, पुराण, व्याकरण, भागवत, पातंजलि, पुस्सदेवय, लेख, गणित, शकुनरुत, नाटक आदि तथा ७२ कलायें और सांगोपांग चार वेदों की गणना की गई है।

नन्दीसूत्र के अनुसार श्रुत के दो भेद हैं—गमिक श्रुत और आगमिक श्रुत। गमिक श्रुत में दृष्टिवाद और आगमिक में कालिक का अन्तर्भाव होता है। अथवा श्रुत के दो भेद किये गये है—अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। टीकाकार के अनुसार अंगप्रविष्ट गणधरों द्वारा और अंगबाह्य स्थविरों द्वारा रचे जाते हैं। आचारांग, सूत्रकृतांग आदि के भेद से अंगप्रविष्ट के १२ भेद हैं। अंगबाह्य दो प्रकार का है—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त। आवश्यक सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान के भेद से छह प्रकार का है। आवश्यकव्यतिरिक्त के दो भेद है—कालिक (जो दिन और रात्रि की प्रथम और अंतिम पोरिसी में पढा जाता है) और उत्कालिक। कालिक के निम्नलिखित भेद बताये गये है—

---

१ व्यवहारभाष्य (१, पृष्ठ १३२) में माठर और कोडिन्न की दंडनीति के साथ भभीय और आसुरुक्ख का उल्लेख है। नेमिचन्द्र के गोम्मटसार जीवकांड (३०३, पृष्ठ ११७) में आभीय और आंसुरुक्ख तथा ललितविस्तर (पृष्ठ १५६) में आभीय और आसुर्य का नाम आता है। तथा देखिये मूलाचार (५–६१) टीका।

२ सूत्रकृतांगचूर्णी (पृष्ठ २०८) में चाणक्कोडिन्न और बौद्धों के चूलवस (६४–३) में कोटल्ल का उल्लेख है।

३ अर्थशास्त्र (पृष्ठ २८२) और कामसूत्र (पृष्ठ १८८) में घोटकमुख का उल्लेख है। मज्झिमनिकाय (२, पृष्ठ १५७ आदि) भी देखिये।

४ ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका।

उत्तरज्झयण, दसाओ, कप्प, ववहार, निसीह, महानिसीह, इसिभासिय, जंबुद्दीवपन्नत्ति, दीवसागरपन्नत्ति, चंदपन्नत्ति, खुड्डियाविमाणपविभत्ति, महल्लिआविमाणपविभत्ति, अंगचूलिका, वग्गचूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोववाय, वरुणोववाय, गरुलोववाय, धरणोववाय, वेसमणोववाय, वेलंधरोववाय, देविंदोववाय, उट्ठाणसुय, समुट्ठाणसुय, नागपरिआवणिआओ, निरयावलियाओ, कप्पिआओ, कप्पवडिंसियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ आदि। उत्कालिक के निम्नलिखित भेद हैं —दसवेआलिय, कप्पाकप्पिय, चुल्लकप्पसुअ, महाकप्पसुअ, उववाइअ, रायपसेणिअ, जीवाभिगम, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमाय, नंदी, अनुयोगदार, देविंदत्थअ, तंदुलवेआलिअ, चंदाविज्झय, सूरपण्णत्ति, पोरिसिमंडल, मंडलपवेस, विज्जाचरणविणिच्छअ, गणिविज्जा, झाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरागसुअ, संलेहणासुअ, विहारकप्प, चरणविही, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण आदि।

अनुयोगदार (अनुयोगद्वार)

यह आर्यरक्षित द्वारा रचित माना जाता है। विषय और भाषा की दृष्टि से यह सूत्र काफी अर्वाचीन मालूम होता है।[1] इस पर भी जिनदासगणि महत्तर की चूर्णी तथा हरिभद्र और अभयदेव के शिष्य मलधारि हेमचन्द्र की टीकायें हैं। प्रश्नोत्तर की शैली में इसमें प्रमाण—पल्योपम, सागरोपम, संख्यात, असंख्यात और अनंत के प्रकार, तथा निक्षेप, अनुगम और नय का प्ररूपण है। नाम के दस प्रकार, नव काव्य रस और उनके उदाहरण, मिथ्याशास्त्र, स्वरों के नाम, स्थान, उनके लक्षण, ग्राम, मूर्च्छना आदि का वर्णन किया है। कुप्रावचनिकों में चरक,

---

१ हरिभद्रसूरि की टीका सहित सन् १९२८ में रतलाम से और मलधारी हेमचन्द्र की टीका सहित सन् १९३६ में भावनगर से प्रकाशित।

चीरिक, चर्मखडिअ, भिक्खोण्ड, पाडुरग, गौतम, गोव्रतिक, गृहिधर्म, धर्मचिन्तक, विरुद्ध और वृद्धो[1] का उल्लेख है। अनुयोगद्वारचूर्णी मे इनकी व्याख्या की गई है। पाच प्रकार के सूत्रों मे अडय, बोंडय, कीडय, बालज, और किट्टिस के नाम गिनाये है। मिथ्याशास्त्रों मे नन्दी मे उल्लिखित महाभारत, रामायण आदि गिनाये गये है, एक वैशिक[2] अधिक है। आगम, लोप, प्रकृति और विकार का प्रतिपादन करते हुए व्याकरण सम्बन्धी उदाहरण दिये हैं। समास, तद्धित, धातु और निरुक्ति का विस्तृत विवेचन है। पाखण्डियों मे श्रमण, पाडुरग[3], भिक्षु, कापालिक, तापस और परिव्राजक का उल्लेख है। कर्मकारों[4] मे

---

१ इनके अर्थ के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ २०६–७।

२ सूत्रकृतांगटीका (४, १, २०, पृष्ठ १११) में वैशिक का अर्थ कामशास्त्र किया है जिसका अध्ययन करने के लिए लोग पाटलिपुत्र जाया करते थे। सूत्रकृतांगचूर्णी (पृष्ठ १४०) में वैशिक का एक वाक्य उद्धृत किया है—दुर्विज्ञेयो हि भाव प्रमदानाम्। निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत है—

एता हसति च रुदति च अर्थहेतो।
विश्वासयति च नर न च विश्वसति॥
स्त्रिय कृतार्था पुरुष निरर्थक।
निष्पीलितालक्तकवत् त्यजति॥

भरत के नाट्यशास्त्र में वैशिक नामका २३ वा अध्याय है। ललित विस्तर (पृष्ठ १५६) में भी वैशिक का उल्लेख है। दामोदर के कुट्टिनीमत (श्लोक ५०४) में दत्त को वैशिक का कर्त्ता बताया है।

३ निशीथचूर्णी, (पृष्ठ ८६५) के अनुसार गोशाल के शिष्य पांडुरभिक्षु कहे जाते थे। धम्मपद अट्ठकथा (४, पृष्ठ ८) में भी इनका उल्लेख है।

४ प्रज्ञापना (१, ३७) में कर्म और शिल्प,आर्यों का उल्लेख किया गया है।

तृण, काष्ठ और पत्र ढोनेवाले, कपड़ा बेचनेवाले (दोसिय), सूत बेचनेवाले (सोत्तिय), बर्तन बेचनेवाले (भडनेआलिअ) और कुम्हार (कोलालिअ), तथा शिल्पजीवियों में कपड़ा बुननेवाले (ततुवाय), पट्टकार, काष्ठकार, छत्रकार, चित्रकार, दंतकार, कोट्टिमकार आदि का उल्लेख है। गणों में मल्लों का नाम गिनाया है। प्रमाण के चार भेद हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम। अनुमान तीन प्रकार का है—पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्टसाधर्म्य।



तीसरा अध्याय

आगमो का व्याख्या-साहित्य

(ईसवी सन् की लगभग २सरी शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक)

पालि त्रिपिटक पर बुद्धघोष की अट्ठकथाओं की भाति आगम-साहित्य पर भी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, टीका, विवरण, विवृति, वृत्ति, दीपिका, अवचूरि, अवचूर्णी विवेचन, व्याख्या, छाया, अक्षरार्थ, पजिका, टब्बा. भाषाटीका, वचनिका आदि विपुल व्याख्यात्मक साहित्य लिखा गया है। इसमे से बहुत कुछ प्रकाश मे आ गया है और अभी बहुत कुछ भडारों मे पडा हुआ है। आगमों का विषय इतना गभीर और पारिभाषिक है कि व्याख्यात्मक साहित्य के बिना उसे समझना कठिन है। वाचना-भेद और पाठो की विविधता के कारण तथा अनेक वृद्ध सम्प्रदायों के विस्मृत हो जाने के कारण यह कठिनाई और बढ जाती है। आगमो के टीकाकारों ने इस ओर जगह जगह लक्ष्य किया है। प्राकृत साहित्य के इतिहास की अध्ययन की दृष्टि से इस व्याख्यात्मक साहित्य मे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी तथा कतिपय टीकाये प्राकृतबद्ध होने के कारण महत्वपूर्ण है। इन चार के साथ आगमो को मिला देने से यह साहित्य पचागी कहा जाता है। पचागी का अध्ययन प्राकृत साहित्य के क्रमिक विकास को समझने के लिए अत्यत उपयोगी है।

निज्जुत्ति (निर्युक्ति)

व्याख्यात्मक ग्रन्थों मे निर्युक्ति का स्थान सर्वोपरि है। सूत्र मे निश्चय किया हुआ अर्थ जिसमे निबद्ध हो उसे निर्युक्ति कहा है

(णिज्जुत्ता ते अत्था, ज बद्धा तेण होइ णिज्जुत्ती[1])। निर्युक्ति आगमो पर आर्या छद मे प्राकृत गाथाओ मे लिखा हुआ सक्षिप्त विवेचन है। इसमे विषय का प्रतिपादन करने के लिए अनेक कथानक, उदाहरण और दृष्टातो का उपयोग किया है, जिनका उल्लेख मात्र यहाँ मिलता है। यह साहित्य इतना साकेतिक और सक्षिप्त है कि बिना भाष्य और टीका के सम्यक् प्रकार से समझ मे नही आता। इसीलिए टीकाकारों ने मूल आगम के साथ साथ निर्युक्तियो पर भी टीकाये लिखी है। प्राचीन गुरु परम्परा से आगत पूर्व साहित्य के आधार पर ही निर्युक्ति साहित्य की रचना की गई जान पडती है। सक्षिप्त और पद्यबद्ध होने के कारण यह साहित्य आसानी से कठस्थ किया जा सकता था और धर्मोपदेश के समय इसमे से कथा आदि के उद्धरण दिये जा सकते थे। पिंडनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति आगमो के मूलसूत्रो मे गिनी गई है, इससे निर्युक्ति साहित्य की प्राचीनता का पता चलता है कि वलभी वाचना के समय, ईसवी सन् की पाचवी छठी शताब्दी के पूर्व ही, निर्युक्तियाँ लिखी जाने लगी थीं। नयचक्र के कर्त्ता मल्लवादी (विक्रम सवत् की ५ वीं शताब्दी) ने अपने ग्रन्थ मे निर्युक्ति की गाथा का उद्धरण दिया है, इससे भी उक्त कथन का समर्थन होता है।[2] आचाराग, सूत्रकृताग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प, दशाश्रुतस्कध उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित इन दस सूत्रों पर निर्युक्तियाँ लिखी गई है।[3] इनके लेखक परपरा के अनुसार भद्रबाहु माने जाते है जो सभवत छेदसूत्र के कर्त्ता अतिम

---

१ निर्युक्तानामेव सूत्रार्थानां युक्ति —परिपाट्या योजन। हरिभद्र, दशवैकालिक-वृत्ति, पृष्ठ ४।

२ देखिये मुनिपुण्यविजय जी द्वारा सपादित बृहत्कल्पसूत्र, भाग ६ का आमुख, पृष्ठ ६।

३ मुनि पुण्यविजयजी विक्रम की दूसरी शताब्दी निर्युक्तियों का रचनाकाल मानते हैं। (देखिये वही, पृष्ठ ५)।

श्रुतकेवलि भद्रबाहु से भिन्न है।[1] दुर्भाग्य से बहुत से आगमों की निर्युक्ति और भाष्य की गाथायें परस्पर इतनी मिश्रित हो गई है कि चूर्णीकार भी उन्हे पृथक् नही कर सके।[2] निर्युक्तियों मे अनेक ऐतिहासिक, अर्ध-ऐतिहासिक और पौराणिक परपरायें, जैनसिद्धात के तत्व और जैनों के परपरागत आचार विचार सन्निहित है।

भास (भाष्य)

निर्युक्तियों की भॉति भाष्य भी प्राकृत गाथाओ मे सक्षिप्त शैली मे लिखे गये है। बृहत्कल्प, दशवैकालिक आदि सूत्रों के भाष्य और निर्युक्ति की गाथाये परस्पर अत्यधिक मिश्रित हो गई है, इसलिये अलग से उनका अध्ययन करना कठिन है। निर्युक्तियों की भाषा के समान भाष्यों की भाषा भी मुख्यरूप से प्राचीन प्राकृत (अर्धमागधी) है, अनेक स्थलों पर मागधी और शौर शौरसेनी के प्रयोग भी देखने मे आते है, मुख्य छद आर्या है। भाष्यों का समय सामान्य तौर पर ईसवी सन् की लगभग चौथी पॉचवी शताब्दी माना जा सकता है। भाष्य साहित्य मे खासकर निशीथभाष्य, व्यवहारभाष्य और बृहत्कल्प भाष्य का स्थान अत्यत महत्व का है। इस साहित्य मे अनेक प्राचीन अनुश्रुतियॉ, लौकिक कथाये और परपरागत निर्ग्रंथो के प्राचीन आचार विचार की विधियो आदि का प्रतिपादन है।

---

१ अगस्त्यसिंह की दशवैकालिकचूर्णी में प्रथम अध्ययन की नियुक्ति गाथाओं की सख्या कुल ५४ है जब कि हरिभद्र की टीका में यह सख्या १५६ तक पहुँच गई है, इससे भी निर्युक्ति और भाष्य की गाथाओं में गड़बड़ी होने का पता चलता है (देखिये वही)।

२ इसिभासिय के ऊपर भी निर्युक्ति थी लेकिन सूर्यप्रज्ञप्ति की निर्युक्ति की भांति यह भी अनुपलब्ध है। महानिशीथ के अनुसार पचमगलश्रुतस्कध के ऊपर भी नियुक्ति लिखी गई थी। मूलाचार (५, ८२) में आराधनानिर्युक्ति का भी उल्लेख है।

जैन श्रमण संघ के प्राचीन इतिहास को सम्यक् प्रकार से समझने के लिये उक्त तीनों भाष्यों का गभीर अध्ययन आवश्यक है। हरिभद्रसूरि के समकालीन सघदासगणि क्षमाश्रमण, जो वसुदेवहिण्डी के कर्त्ता सघदासगणि वाचक से भिन्न है, कल्प, व्यवहार और निशीथ भाष्यों के कर्ता के रूप मे प्रसिद्ध है। निम्नलिखित ग्यारह सूत्रो के भाष्य उपलब्ध है—निशीथ, व्यवहार, कल्प, पचकल्प, जीतकल्प, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक, पिंडनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति।

आगमेतर ग्रथो मे चैत्यवदन, देववन्नादि और नवतत्त्व-गाथाप्रकरण आदि पर भी भाष्य लिखे गये है।

चुण्णि (चूर्णी)

आगमो के ऊपर लिखे हुए व्याख्या साहित्य मे चूर्णियों का स्थान बहुत महत्त्व का है। चूर्णियाँ गद्य मे लिखी गई है। सभवत पद्य मे लिखे हुए निर्युक्ति और भाष्य-साहित्य मे जैन-धर्म के सिद्धातो को विस्तार से प्रतिपादन करने के लिये अधिक गुनायश नही थी। इसके अलावा, चूर्णियाँ केवल प्राकृत मे ही न लिखी जाकर सस्कृतमिश्रित प्राकृत मे लिखी गई थीं, इसलिये भी इस साहित्य का क्षेत्र निर्युक्ति और भाष्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत था। चूर्णियों मे प्राकृत की प्रधानता होने के कारण इसकी भाषा को मिश्र प्राकृत भाषा कहना सर्वथा उचित ही है। चूर्णियो[1] मे प्राकृत की लौकिक, धार्मिक अनेक

---

१ निशीथ के विशेषचूर्णिकार ने चूर्णी की निम्न परिभाषा दी है—पागडो ति प्राकृत प्रगटो वा पदार्थो वस्तुभावो यत्र स:, तथा परिभाष्यते अर्थोऽनयेति परिभाषा चूर्णिरुच्यते। अभिधानराजेन्द्र-कोष में चूर्णी की परिभाषा देखिए—

अत्थबहुल महत्थ हेउनिवाओवसग्गगभीर।
बहुपायमवोच्छिन्न गमणयसुद्ध तु चुण्णपय॥

जिसमें अर्थ की बहुलता हो, महान् अर्थ हो, हेतु, निपात और

कथायें दी है, प्राकृत भाषा मे शब्दों की व्युत्पत्ति दी है तथा सस्कृत और प्राकृत के अनेक पद्य उद्धृत किये है। चूर्णियो मे निशीथ की विशेषचूर्णी तथा आवश्यकचूर्णी का स्थान बहुत महत्त्व का है। इनमे जैन पुरातत्त्व से सबध रखनेवाली विपुल सामग्री मिलती है। देश देश के रीति रिवाज, मेले त्योहार, दुष्काल, चोर लुटेरे, सार्थवाह, व्यापार के मार्ग, भोजन, वस्त्र आभूषण आदि विषयों का इस साहित्य मे वर्णन है जिससे जैन आचार्यों की जनसपर्क की वृत्ति, व्यवहारकुशलता और उनके व्यापक अध्ययन का पता लगता है। लोककथा और भाषाशास्त्र की दृष्टि यह साहित्य अत्यन्त उपयोगी है। वाणिज्य कुलीन कोटिकगणीय वज्रशाखीय जिनदासगणि महत्तर अधिकाश चूर्णियों के कर्ता के रूप मे प्रसिद्ध है, इनका समय ईसवी सन् की छठी शताब्दी के आसपास माना जाता है। निम्नलिखित आगमों पर चूर्णियाँ उपलब्ध हैं—आचाराग, सूत्रकृताग, व्याख्या-प्रज्ञप्ति, कल्प, व्यवहार निशीथ, पचकल्प, दशाश्रुतस्कध जीत-कल्प, जीवाभिगम, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार।

आगमेतर ग्रन्थों मे श्रावकप्रतिक्रमणसूत्र, सार्धशतक तथा कर्मग्रन्थों पर चूर्णियाँ लिखी गई है।

टीका

निर्युक्ति, भाष्य, और चूर्णियों की भाति आगमों के ऊपर विस्तृत टीकायें भी लिखी गई है जो आगम सिद्धान्त को

उपसर्ग से जो युक्त हो, गभीर हो, अनेक पदों से समन्वित हो, जिसमें अनेक गम (जानने के उपाय) हों और जो नयों से शुद्ध हो उसे चूर्णीपद समझना चाहिये।

बौद्ध विद्वान् महाकच्चायन निरुक्ति के कर्त्ता कहे गये हैं। निरुक्ति दो प्रकार की है, चूलनिरुक्ति और महानिरुक्ति, देखिए जी० पी० मलालसेकर, डिक्शनरी ऑव पाली प्रोपर नेम्स, जिल्द २, पृष्ठ ७९।

समझने के लिए अत्यत उपयोगी है। ये टीकाये सस्कृत मे है, यद्यपि कुछ टीकाओं का कथासबधी अश प्राकृत मे भी उद्धृत किया गया है। जान पडता है कि आगमो की अतिम वलभी वाचना के पूर्व ही आगमो पर टीकाये लिखी जाने लगी थी। विक्रम की तीसरी शताब्दी के आचार्य अगस्त्यसिंह ने अपनी दशवैकालिकचूर्णी मे अनेक स्थलो पर इन प्राचीन टीकाओ की ओर सकेत किया है। इसके अतिरिक्त, हिमवत थेरावली के अनुसार आर्य मधुमित्र के शिष्य तत्त्वार्थ के ऊपर महाभाष्य के लेखक आर्य गधहस्ती ने आर्यस्कदिल के आग्रह पर १२ अगो पर विवरण लिखा था। आचारागसूत्र का विवरण विक्रम सवत् के २०० वर्ष बाद लिया गया।[1] इससे आगमो पर लिखे गये व्याख्यात्मक साहित्य का समय काफी पहले पहुँच जाता है। टीकाकारो मे याकिनीसूनु हरिभद्रसूरि (७०५–७७५ ईसवी सन्) का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने आवश्यक, दशवैकालिक नन्दी और अनुयोगद्वार पर टीकाये लिखीं। प्रज्ञापना पर भी हरिभद्र ने टीका लिखी है। इन टीकाओ मे लेखक ने कथाभाग को प्राकृत मे ही सुरक्षित रक्खा है। हरिभद्रसूरि के लगभग १०० वर्ष पश्चात् शीलाकसूरि ने आचाराग और सूत्रकृताग पर सस्कृत टीकाये लिखीं। इनमे जैन आचार-विचार और तत्त्वज्ञानसबधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का विवेचन किया गया है।

हरिभद्रसूरि की भाति टीकाओं मे प्राकृत कथाओ को सुरक्षित रखनेवाले आचार्यों मे वादिवेताल शान्तिसूरि, नेमिचन्द्रसूरि और मलयगिरि का नाम उल्लेखनीय है। शान्तिसूरि और नेमिचन्द्र ईसवी सन् की ११वी शताब्दी मे हुए थे। शान्तिसूरि की तो टीका का नाम ही पाइय (प्राकृत) टीका है, इसे शिष्यहिता अथवा उत्तराध्ययनसूत्र बृहद्वृत्ति भी कहा गया है। नेमिचन्द्रसूरि ने इस टीका के आधार पर सुखबोधा नाम की

---

१ देखिये पुण्यविजयजी द्वारा सपादित बृहत्कल्पसूत्र भाग ६ का आमुख।

टीका लिखी है। शान्तिसूरि ने प्राकृत की कथाये उद्धृत करते हुए अनेक स्थलों पर वृद्धसम्प्रदाय, वृद्ध, वृद्धवाद अथवा 'अन्ने भणति' कहा है जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल से इन कथाओं की परपरा चली आ रही थी। उक्त दोनों टीकाओं में बभदत्त और अगडदत्त की कथायें तो इतनी लम्बी है कि वे एक स्वतत्र पुस्तक का विषय है। अन्य टीकाकारों मे ईसवी सन् की १२वीं शताब्दी के विद्वान् अभयदेवसूरि, द्रोणाचार्य मलधारि हेमचन्द्र, मलयगिरि, तथा क्षेमकीर्ति (ईसवी सन् १२७५), शान्तिचन्द्र (ईसवी सन् १५९३) आदि के नाम उल्लेखनीय है। वास्तव मे आगम सिद्धातों पर व्याख्यात्मक साहित्य का इतनी प्रचुरता से निर्माण हुआ कि वह एक अलग ही साहित्य बन गया। इस विपुल साहित्य ने अपने उत्तरकालीन साहित्य के निर्माण मे योगदान दिया जिसके परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का कथा साहित्य, चरित साहित्य, धार्मिक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य उत्तरोत्तर विकसित होकर अधिकाधिक समृद्ध होता गया।

निर्युक्ति-साहित्य

आचारागनिर्युक्ति

आचारागसूत्र पर भद्रबाहुसूरि ने ३५६ गाथाओं मे निर्युक्ति लिखी है। इन पर शीलाक ने महापरिण्णा अध्ययन की दस गाथाओं को छोडकर टीका लिखी है। द्वादशागु के प्रथम अग आचाराग को प्रवचन का सार और आचारधारी को गणियों मे प्रधान कहा गया है। कौन किसका सार है, इसका विवेचन करते हुए कहा है—

अगाण किं सारो? आयारो, तस्स हवइ किं सारो?
अणुओगत्थो सारो, तस्सवि य परूवणा सारो॥
सारो परूवणाए चरण, तस्सवि य होइ निव्वाण।
निव्वाणस्स उ सारो, अव्वाबाह जिणा बिंति॥

—अंगों का क्या सार है? आचारांग। आचारांग का क्या सार है? अनुयोगार्थ अर्थात् उसका विख्यात अर्थ। अनुयोगार्थ का सार प्ररूपणा है। प्ररूपणा का सार चारित्र है। चारित्र का सार निर्वाण है, और निर्वाण का सार अव्याबाध है—ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार मुख्य वर्ण बताते हुए अबष्ठ (ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न), उग्र (क्षत्रिय पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न), निषाद अथवा पाराशर (ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न), अयोगव (शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न), मागध (वैश्य पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न), सूत (क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न), वैदेह (वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न), और चाण्डाल (शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न) नामक नौ अवान्तर वर्णों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उग्र पुरुष और क्षत्ता स्त्री से उत्पन्न श्वपाक, विदेह पुरुष और क्षत्ता स्त्री से उत्पन्न वुक्कस तथा शूद्र पुरुष और निषाद स्त्री से उत्पन्न कुक्कुरक का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् दिशाओं का स्वरूप बताया है। फिर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजकाय, वनस्पतिकाय, त्रस तथा वायुकाय जीवों के भेद प्रभेद का कथन है। कषाय को समस्त कर्मों का मूल कहा है।

नीचे लिखी गाथाओं में विविध वादियों द्वारा 'सकुण्डलं वा वयणं न व त्ति' नाम की समस्यापूर्त्ति की गई है—

(१) परिव्राजक—

भिक्खं पविट्ठेण मएऽज्ज दिट्ठं, पमयामुहं कमलविसालनेत्तं।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नायं, सकुण्डलं वा वयणं न व त्ति॥

—भिक्षा के लिये जाते समय मैंने कमल के समान विशाल नेत्र वाली प्रमदा का मुँह देखा। विक्षिप्त चित्त होने के कारण मुझे पता नहीं लगा कि मुख कुण्डल-सहित था या कुण्डलरहित?

(२) तापस—

फलोदएण मि गिह पविट्ठो, तत्थासणत्था पमया मि दिट्ठा।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नाय सकुडल वा वयण न व त्ति ॥

—फल के उदय से घर मे प्रविष्ट करते समय मैंने वहाँ आसन पर बैठी हुई प्रमदा को देखा। विक्षिप्त चित्त होने के कारण मुझे यह पता नहीं लगा कि उसका मुख कुण्डल सहित था या नहीं ?

(३) शौद्धोदनि का शिष्य—

मालाविहारमि मएऽज्ज दिट्ठा, उवासिया कचणभूसियगी।
वक्खित्तचित्तेण न सुट्ठु नाय, सकुडल वा वयण न व त्ति ॥

—मालाविहार के समय आज मैंने सुवर्ण से भूषित अगवाली उपासिका को देखा। विक्षिप्त चित्त होने के कारण मुझे ठीक पता नहीं लगा कि उसका मुख कुडल सहित था या नहीं ?

(४) क्षुल्लक—

खतस्स दतस्स जिइदियस्स, अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स।
किं मज्झ एएण विचिंतिएण ? सकुडल वा वयण न व त्ति ॥

—क्षमाशील, दमयुक्त, जितेन्द्रिय और अध्यात्म योग मे दत्तचित्त मेरे द्वारा यह सोचने से क्या लाभ कि उसका मुख कुडल से भूषित था या नहीं ?

सातवे उद्देश मे मरण के भेद बताये गये है। तोसलि देश (आधुनिक धौलि, कटक जिले मे) तोसलि नाम के आचार्य को किसी मरखनी भैंस ने मार दिया था। उसके बाद सल्लेखना का विवेचन किया है।

द्वितीय श्रुतस्कध मे वल्गुमती और गौतम नाम के नैमित्तक की कथा आती है।

सूत्रकृतागनिर्युक्ति

सूत्रकृतागनिर्युक्ति मे २०५ गाथाये है। राजगृह नगर के बाहर नालन्दा के समीप मनोरथ नाम के उद्यान मे इन्द्रभूति

गणधर ने उदक नामक निर्ग्रन्थ के प्रश्न करने पर नालन्दीय अध्ययन का प्रतिपादन किया था। ये उदक निर्ग्रंथ पार्श्वनाथ के शिष्य (पासावच्चिज्ज = पार्श्वापत्य) थे और इन्होंने श्रावक के व्रतो के सबध मे प्रश्न किया था। आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर के निवासी थे तथा महावीर के समवशरण के अवसर पर उनका गोशालक, त्रिदडी और हस्तितापसो के साथ वाद-विवाद हुआ। ऋषिभाषितसूत्र का यहाँ उल्लेख है। यहाँ पर गोतम (गोव्रतिक), चडीदेवक (चक्रधरप्राया —टीका), वारिभद्रक (जलपान करनेवाले), अग्निहोत्रवादी तथा जल को पवित्र माननेवाले साधुओं का नामोल्लेख है। क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियों के भेद प्रभेद गिनाये गये हैं।[1] पार्श्वस्थ, अवसन्न और कुशील नामक निर्ग्रन्थ साधुओ के साथ परिचय करने का निषेध है।

सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति

भद्रबाहु ने सूर्यप्रज्ञप्ति के ऊपर निर्युक्ति की रचना की थी, लेकिन टीकाकार मलयगिरि के कथनानुसार कलिकाल के दोष से यह निर्युक्ति नष्ट हो गई है, इसलिये उन्होने केवल सूत्रों की ही व्याख्या की है।

बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथनिर्युक्ति

बृहत्कल्प और व्यवहारसूत्र के ऊपर भी भद्रबाहु ने निर्युक्ति लिखी थी। बृहत्कल्पनिर्युक्ति सघदासगणि क्षमाश्रमण के लघुभाष्य की गाथाओं के साथ और व्यवहार की निर्युक्ति व्यवहार भाष्य की गाथाओं के साथ मिश्रित हो गई है। निशीथ की निर्युक्ति का आचारागसूत्र का ही एक अध्ययन होने से आचाराग निर्युक्ति मे उसका समावेश हो जाता है। यह भी निशीथ भाष्य के साथ मिल गई है।

---

१ देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियण्ट इंडिया, पृष्ठ २११–५।

दशाश्रुतस्कंधनिर्युक्ति

दशाश्रुतस्कध जितना लघु है उतनी ही लघु उस पर निर्युक्ति लिखी गई है। आरभ मे प्राचीनगोत्रीय अतिम श्रुतकेवली तथा दशा, कल्प और व्यवहार के प्रणेता भद्रबाहु को नमस्कार किया है। दशा, कल्प और व्यवहार का यहाँ एक साथ कथन है। परिवसण, पज्जुसण, पज्जोसमण, वासावास, पढमसमोसरण, ठवणा आदि पर्यायवाची शब्द है। अज्ज मगू का यहाँ उल्लेख है।

उत्तराध्ययननिर्युक्ति

उत्तराध्ययन सूत्र पर भद्रबाहु ने ५५९ गाथाओं मे निर्युक्ति की रचना की है। शान्त्याचार्य ने उत्तराध्ययन सूत्र के साथ-साथ निर्युक्ति पर भी टीका लिखी है। निर्युक्ति-गाथाओ का अर्थ लिखकर उसका भावार्थ वृद्धसम्प्रदाय से अवगत करने का उल्लेख है और जहाँ कही टीकाकार को इस सम्प्रदाय की परपरा उपलब्ध नही हुई वहाँ उन्होंने निर्युक्ति की गाथाओं की टीका नही लिखी है (उदाहरण के लिये देखिये ३५५-५९ गाथाये)। इस निर्युक्ति मे गधार श्रावक, तोसलिपुत्र आचार्य स्थूलभद्र, स्कदकपुत्र, ऋषि पाराशर, कालक, तथा करकडू आदि प्रत्येकबुद्ध, तथा हरिकेश, मृगापुत्र आदि की कथाओं का उल्लेख किया है, आठ निह्नवो का विस्तार से विवेचन है। भद्रबाहु के चार शिष्यो द्वारा राजगृह मे वैभार पर्वत की गुफा मे शीत समाधि ग्रहण किये जाने, तथा मुनि सुवर्णभद्र के मच्छरों का घोर उपसर्ग (मशक परिपीत शोणित = मच्छर जिनके शोणित को चूस गये हों) सहन कर कालगत होने का कथन है। कबोज के घोड़ा का यहाँ उल्लेख है। कही-कही मनोरजक उक्तियों के रूप मे मागधिकायें भी मिल जाती हैं। किसी नायिका का पति कहीं अन्यत्र रात बिताकर आया है और दिन चढ जाने

पर भी नहीं उठा। यह देखकर नायिका एक मागधिका[1] पढ़ती है।

अइरुग्गयए य सूरिए, चेइयथूभगए य वायसे।
भित्ती गयए व आयवे, सहि ! सुहिओ हु जणो न बुज्झइ ॥

—सूर्य को निकले हुए काफी समय हो गया, कोवे चैत्य के खभो पर बैठकर कॉव कॉव करने लगे, सूर्य का प्रकाश दिवालों तक चढ आया, लेकिन हे सखि ! फिर भी यह मौजी पुरुष सोकर नही उठा।

एक सूक्ति देखिये—

राईसरिसवमित्ताणि परछिद्दाणि पाससि।
अप्पणो बिल्लमित्ताणि पासतोऽवि न पाससि ॥

—राई के समान तू दूसरे के दोषो को तो देखती है, किन्तु बेल के समान अपने स्वय के अवगुणो को देखकर भी नही देखती।

आवश्यकनिर्युक्ति

निर्युक्तियों मे आवश्यकनिर्युक्ति का स्थान बहुत महत्त्व का है।[2] माणिक्यशेखरसूरि ने इस पर दीपिका लिखी है। आवश्यकसूत्र मे प्रतिपादित छह आवश्यको का विस्तृत विवेचन भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति मे किया है। यहाँ भद्रबाहु द्वारा

---

१ हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन और उसकी टीका (पृष्ठ २५ अ, पंक्ति ३, निर्णयसागर, बम्बई १९१२) में मागधी का लक्षण निम्न प्रकार से दिया है—ओजे चौ युजि चचौ लद्कदान्तौ मागधी। अर्थात् इस [illegible] में विषम पंक्तियों में ४ + ४ + लघु + २ + लघु + २ और सम [illegible]क्तियों में ६ + ४ + लघु + २ + लघु + २ मात्रायें होती हैं।

२ मूलाचार में (७, १९३) में आवस्सयणिज्जुत्ति का उल्लेख है।

आवश्यक आदि दस निर्युक्तियाँ रचे जाने का उल्लेख है।[1] अनेक सूक्तियाँ कही गई है —

जहा खरो चदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चदणस्स।
एव खु नाणी चरणेण हीणो, नाणस्स भागी न हु सोग्गईए॥
हय नाण कियाहीण, हया अन्नाणओ किया।
पासतो पगुलो दड्ढो, धावमाणो अ अधओ॥
सजोगसिद्धीइ फल वयति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अधो य पगू प वणे समिचा, ते सपउत्ता नगर पविट्ठा॥

—जैसे चदन का भार ढोनेवाला गधा भार का ही भागी होता है, चन्दन का नहीं, उसी प्रकार चारित्र से विहीन ज्ञानी केवल ज्ञान का ही भागी होता है, सद्गति का नही। क्रियारहित ज्ञान और अज्ञानी की क्रिया नष्ट हुई समझनी चाहिये। (जगल मे आग लग जाने पर) चुपचाप खडा देखता हुआ पगु और भागता हुआ अधा दोनों ही आग मे जल मरते है। दोनों के सयोग से सिद्धि होती है, एक पहिये से रथ नही चल सकता। अधा और लगडा दोनो एकत्रित होकर नगर मे प्रविष्ट हुए।

निम्नलिखित गाथा मे सामायिक लाभ के दृष्टात उपस्थित करते हुए दृष्टान्तो के केवल नाममात्र गिनाये है—

पल्लयगिरिसरिउवला पिवीलिया पुरिसपहजरग्गहिया।
कुद्दवजलवत्थाणि य सामाइयलाभदिट्ठता॥

—पल्य, पहाडी नदी के पत्थर, पिपीलिका, पुरुष, पथ, ज्वर-गृहीत, कोद्रव, जल और वस्त्र ये सामयिक लाभ के दृष्टात समझने चाहिये (टीकाकार ने इन दृष्टातो का विस्तार से प्रतिपादन किया है)।

---

१ आवस्सगस्स दसकालिअस्स तह उत्तरज्झमायारे।
सूअगडे निज्जुत्तिं वोच्छामि तहा दसाण च।
कप्पस्स य निज्जुत्तिं ववहारस्सेव परमनिउणस्स॥
सूरिअपन्नत्तीए वुच्छ इसीभासिआण च॥

णमोकार मंत्र को सर्व पापों का नाशक कहा है—

अरिहंतनमुक्कारो सव्वपावपणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

योग्य-अयोग्य शिष्य का लक्षण समझाने के लिये गाय, चन्दन की भेरी, चेटी, श्रावक, बधिर, गोह और टंकण देश के वासी म्लेच्छ वणिकों आदि के दृष्टांत दिये गये हैं। तत्पश्चात् कुलकरों के पूर्वभव आदि का वर्णन है। ऋषभदेव का चरित विस्तार से कहा गया है। २४ तीर्थंकरों ने जिन नगरों में उपवास के पश्चात् पारणा किया उनका उल्लेख है। ऋषभदेव के बहली, अबड और इल्ला (?) आदि यवन देशों में विहार करने का उल्लेख है। तीर्थंकरों के गोत्रों और जन्मभूमि आदि का कथन है। महावीर के गर्भहरण से लेकर उनके निर्वाण तक की मुख्य घटनाओं का उल्लेख है। उनके उपसर्गों का विस्तार से वर्णन है। गणधरवाद में ग्यारह गणधरों की जन्मभूमि, गोत्र, उनकी प्रव्रज्या और केवलज्ञान प्राप्ति का उल्लेख है। आर्यवज्र (वइररिसि) और आर्यरक्षित के वृत्तान्त तथा निह्नवों के स्वरूप का प्रतिपादन है। आर्यवज्र पदानुसारी थे, और उन्होंने महापरिज्ञा अध्ययन से आकाशगामिनी विद्या का उद्धार किया था। सामायिक आदि का स्पष्टीकरण करने के लिये दमन्त, मेतार्य, कालक, चिलातीपुत्र, आत्रेय, धर्मरुचि, इलापुत्र और तेतलिपुत्र के उदाहरण दिये हैं। औत्पातिक, वैनयिक, कार्मिक और पारिणामिक इन चार प्रकार की बुद्धियों के अनेक मनोरंजक उदाहरण दिये हैं। रोहक की प्रत्युत्पन्नमति का कौशल दिखाने के लिये शिला, मेढा, कुक्कुट, तिल, बालू की रस्सी, हाथी, कूप, वनखंड, पायस (खीर) आदि के उदाहरण दिये हैं[1] जिनमें अनेक बुद्धिवर्धक पहेलियाँ और लौकिक कथा-

---

१ महाउम्मग्ग जातक में यहाँ की अनेक कथायें महोसधपंडित के नाम से उल्लिखित हैं। इन कहानियों के हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए जगदीशचन्द्र जैन, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ।

कहानियो का समावेश है। फिर पच परमेष्ठियों के स्वरूप का प्रतिपादन है।

वन्दना अध्ययन मे सगम स्थविर, आर्यवज्र, अग्निकापुत्र, उदायन ऋषि आदि मुनियों के जीवन वृत्तान्त है। ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट साधुओ को पार्श्वस्थ की सज्ञा दी है। मथुरा मे सुभिक्षा प्राप्त होने पर भी आर्यमगु आहार का कोई प्रतिबध नहीं रखते थे, इसलिये उन्हें पार्श्वस्थ कहा गया है।[1] प्रतिक्रमण अध्ययन मे नागदत्त का उदाहरण दिया है। तत्पश्चात् आलोचना आदि योगसग्रह के उदाहरण दिये है जिनमे परम्परागत अनेक कथाओं का उल्लेख है। इन कथाओ मे आर्य महागिरि, आर्य सुहस्थी स्थूलभद्र, धर्मघोष, वास्तक, सालिवाहन, गुग्गुल भगवान्, करकड्ड आदि प्रत्येकबुद्ध और आर्य पुष्पभूति आदि के वृत्तान्त कहे गये है। बाईस तीर्थंकरों के द्वारा सामायिक, तथा वृषभ और महावीर के द्वारा छेदोपस्थापना का उपदेश दिये जाने का उल्लेख है। कायोत्सर्ग अध्ययन मे अगबाह्य के अतर्गत कालिकश्रुत के ३६ भेद तथा उत्कालिक श्रुत के २८ भेद बताये है। यहाँ पर नन्दीसूत्र का उल्लेख है जिससे पता

---

१ भगवतीसूत्र के १५ वें शतक में कहा है कि एक बार जब २४ वर्ष की दीक्षावाला मखलि गोशाल आजीवक मत की उपासिका हाला हला कुम्हारी के घर श्रावस्ती में ठहरा हुआ था तो उसके पास शान, कलद, कणिकार, अछिद्र, अग्निवेश्यायन और गोमायुपुत्र अर्जुन नाम के छह दिशाचर आये। यहाँ टीकाकार अभयदेव ने दिशाचर का अर्थ 'भगवच्छिष्या पार्श्वस्थीभूता' अर्थात् पतित हुए महावीर के शिष्य किया है। चूर्णीकार ने इन्हें 'पासावच्चिज्ज' अर्थात् पार्श्वनाथ के शिष्य कहा है। ये लोग पूर्वगत अष्टांग महानिमित्त के ज्ञाता बताये गये हैं। पार्श्वस्थ निर्ग्रंथ साधुओं का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। क्या पार्श्वस्थ निग्रन्थों को ही तो पासावच्चिज्ज नहीं कहा? आजीवक मतानुयायी गोशाल का भी उनसे घनिष्ठ सबध मालूम होता है।

लगता है कि सभवत नन्दी के बाद मे आवश्यकनिर्युक्ति की रचना हुई।

दशवैकालिकनिर्युक्ति

दशवैकालिक के ऊपर भद्रबाहु ने ३७१ गाथाओ मे निर्युक्ति लिखी है।[1] इसमे अनेक लौकिक और धार्मिक कथानकों तथा सूक्तियों द्वारा सूत्रार्थ का स्पष्टीकरण किया गया है। हिंगुशिव, गधर्विका, सुभद्रा, मृगावती, नलदाम और गोविन्दवाचक आदि की अनेक कथाये यहाँ वर्णित है। जैसे कहा जा चुका है, इन कथाओं का प्राय नामोल्लेख ही निर्युक्ति-गाथाओं मे उपलब्ध होता है, इन्हें विस्तार से समझने के लिये चूर्णी अथवा टीका की शरण लेना आवश्यक है। गोविन्दवाचक बौद्ध थे, ज्ञानप्राप्ति के लिये उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की, आगे चल कर वे महावादी हुए। कूणिक (अजातशत्रु) गौतमस्वामी से प्रश्न करते है कि चक्रवर्ती मर कर कहाँ उत्पन्न होते है? उत्तर मे कहा गया—सातवें नरक मे। कूणिक ने फिर पूछा—मै मर कर कहाँ जाऊँगा? गौतम स्वामी ने उत्तर दिया—छठे नरक मे। प्रश्नोत्तर के रूप मे कहीं तार्किकशैली मे तत्त्वचर्चा की झलक भी दिखाई दे जाती है। शिष्य ने शका की कि गृहस्थ लोग क्यो न साधुओं के लिये भोजन बना कर रख दे। गुरु ने इसका निषेध किया—

वांसइ न तणस्स कए न तण वड्ढइ कए मयकुलाण।
न य रुक्खा सयसाला (? खा) फुल्लन्ति कए महुयराण॥

—तृणों के लिये पानी नहीं बरसता, मृगों के लिये तृण नहीं बड़े होते, और इसी प्रकार सौ शाखाओं वाले वृक्ष भौरों के लिये पुष्पित नहीं होते। (इसी तरह गृहस्थों को साधुओं के लिये आहार आदि नहीं बनाना चाहिये)।

---

१ प्रोफेसर लायमन ने इसका सम्पादन कर इसे ज़ेड० डी० एम० जी० (जिल्द ४६, पृष्ठ ५८१–६६३) में प्रकाशित किया है।

शिष्य की शका—

अग्गिम्मि हवीहूयइ आइच्चो तेण पीणिओ सतो।
वरिसइ पयाहियाए तेणोसहिओ परोहिति॥

—(उपर्युक्त कथन ठीक नही)। अग्नि मे घी का हवन किया जाता है उससे प्रसन्न होकर आदित्य प्रजा के हित के लिये बरसता है और उससे फिर ओषधियाँ पैदा होती है।

गुरु—

किं दुब्भिक्ख जायइ ? जइ एव अहभवे दुरिट्ठतु।
कि जायइ सव्वत्था दुब्भिक्ख अह भवे इदो ?
वासइ तो कि विग्घ निग्घायाईहि जायए तस्स।
अह वासइ उउसमये न वासइ तो तणट्ठाए॥

यदि सदा घी के हवन करने से ही वर्षा होती है तो फिर दुर्भिक्ष क्यों पडता है ? यदि कहा जाये कि खोटे नक्षत्रो के कारण ऐसा होता है तो भी सदा दुर्भिक्ष नहीं पडना चाहिये। यदि कहो कि इन्द्र वर्षा करता है तो बिजली के गिरने आदि से उसे कोई विघ्न नहीं होना चाहिये। यदि कहा जाय कि यथाकाल ऋतु मे जल की वृष्टि होती है तो फिर यही मानना होगा कि तृण आदि के लिये पानी नही बरसता।

आक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेगणी और निर्वेदनी नाम की चार कथाओ का यहाँ उल्लेख मिलता है।

संसत्तनिज्जुत्ति (ससक्तनिर्युक्ति)

यह निर्युक्ति किसी आगम ग्रन्थ पर न लिखी जाकर स्वतत्र है। चौरासी आगमों मे इसकी गणना की गई है। इसमे ६४ गाथाये है। चतुर्दश पूर्वधारी भद्रबाहु ने इसकी रचना की है।

गोविन्दणिज्जुत्ति (गोविन्दनिर्युक्ति)

यह भी एक स्वतत्र निर्युक्ति है। इसे दर्शनप्रभावक शास्त्र कहा गया है। एकेन्द्रिय जीवों की सिद्धि करने के लिये गोविन्द

ने इसकी रचना की थी। यह एक न्यायशास्त्र की कृति थी।[1] आजकल यह भी उपलब्ध नहीं है।

आराधनाणिज्जुत्ति (आराधनानिर्युक्ति)

वट्टकेर ने अपने मूलाचार मे मरणविभक्ति आदि सूत्रो के साथ आराधनानिर्युक्ति का उल्लेख किया है। इस नियुक्ति के सबध मे और कुछ ज्ञात नहीं है।



१ बृहत्कल्पभाष्य ५, ५४७३, १४५१, निशीथचूर्णी (साइक्लोस्टाइल प्रति पृष्ठ ६९९–७२९)। आवश्यकचूर्णी (पृष्ठ ३१) में 'तमि भणित' कहकर गोविन्दणिज्जुत्ति का उद्धरण दिया है—जस्स अहिसधारण पुव्विगा करणसत्थी अत्थि सो सन्नी लब्भति, अहिसधारणपुव्विया णाम मणसापुव्वापर सचितिऊण जा पवित्ती णिवत्ती वा सा अहिसधारण पुव्विगा करणसत्ती भण्णति, सा य जेसिं अत्थि ते जीवा ज सद्द सोऊण बुज्झति त हेउगोवएसेण सण्णिसुय भण्णति।

भाष्य-साहित्य

निशीथभाष्य

निशीथ, कल्प और व्यवहारभाष्य के प्रणेता हरिभद्रसूरि के समकालीन सघदासगणि माने जाते है जो वसुदेवहिण्डी के रचयिता सघदासगणिवाचक से भिन्न है। निशीथभाष्य की अनेक गाथाये बृहत्कल्पभाष्य और व्यवहारभाष्य से मिलती है जो स्वाभाविक ही है। पीठिका मे सस, एलासाढ, मूलदेव और खडा नाम के चार धूर्तों की मनोरजक कथा दी गई है जिसे हरिभद्रसूरि ने अपने कथा साहित्य मे स्थान देकर धूर्ताख्यान जैसे सरस ग्रथ की रचना की। भाष्य मे यह कथा अत्यत सक्षेप मे है—

सस एलासाढ मूलदेव खडां य जुण्णउज्जाणे।
सामत्थणे को भत्त, अक्खात जे ण सद्दहति॥
चोरभया गावीओ, पोट्टलए बधिऊण आणेमि।
तिलअइरूढकुहाडे, वणगय मलणा य तेल्लोदा॥
वणगयपाटणकुडिय, छम्मासा हत्थिलग्गण पुच्छे।
रायरयग मो वादे, जहि पेच्छइ ते इमे वत्था॥

सस, एलासाढ, मूलदेव और खडा एक जीर्ण उद्यान मे ठहरे हुए थे। प्रश्न उठा कि कौन सब को भोजन खिलाये? तय पाया कि सब अपने अपने अनुभव सुनाये, और जो इन अनुभवों पर विश्वास न करे वही भोजन का प्रबन्ध करे। सबसे पहले एलासाढ की बारी आई। एलासाढ ने कहा—"एक बार, मैं अपनी गाय लेकर किसी जगल मे गया। इतने मे वहाँ चोरों का आक्रमण हो गया। गायो को एक कबल मे छिपा अपनी पोटली बाँधकर मैं गाँव को लौट आया। थोडी देर मे चोर गाँव मे आ घुसे। यह देखकर गाँव के लोग एक फूट (वालुक) मे घुस गये। इस फूट को एक बकरी खा गई।

बकरी को एक अजगर निगल गया और उस अजगर को एक पक्षी खा गया। पक्षी उडकर वटवृक्ष के ऊपर जा बैठा। उस पक्षी का एक पॉव नीचे की ओर लटक रहा था। उस वृक्ष के नीचे राजा की सेना ने पडाव डाल रक्खा था। सेना का एक हाथी पक्षी के पॉव मे अटक गया। पॉव मे कुछ अटक जाने से वह पक्षी वहॉ से उडने लगा और उसके साथ-साथ हाथी भी उडने लगा। यह देखकर किसी शब्दवेधी ने अपने तीर से पक्षी को मार गिराया। राजा ने उसका पेट चिरवाया तो उसमे से बकरी निकली, बकरी मे से फूट निकली, और फूट मे से सारा गॉव का गॉव निकल पडा। अपनी गाये लेकर मै वहॉ से चला आया।"

सस ने दूसरा आख्यान सुनाया—"मै किसी खेत मे गया। वहॉ एक बहुत बडा तिल का झाड खडा था। मै जब तिल के झाड के पास घूम रहा था तो मुझे एक जगली हाथी दिखाई दिया। वह मेरे पीछे लग गया। हाथी से पीछा छुडाने के लिये मै उस तिल के झाड पर चढ गया। हाथी झाड के चारो ओर चक्कर काटने लगा जिससे तेल की एक नदी बह निकली। वह हाथी इस नदी मे गिर कर मर गया। मैंने उसकी खाल से एक मशक बनाई और उसे तेल से भर लिया। इस मशक को एक वृक्ष पर टाँग कर मै अपने घर चला आया। अपने लडके को मैंने यह मशक लाने को कहा। जब वह उसे दिखाई न पडी तो वह समूचे वृक्ष को उखाड लाया। अपने घर से घूमता-घामता मै यहॉ आया हू।"

मूलदेव ने अपना अनुभव सुनाया—"एक बार अपनी जवानी मे गगा को सिर पर धारण करने की इच्छा से छत्र और कमडल हाथ मे ले मै अपने स्वामी के घर गया। इतने मे मैंने देखा कि एक जगली हाथी मेरे पीछे लग गया है। मैं डर के मारे एक कमडल मे छिप गया।

कमडल की टोंटी मे से मै तो बाहर निकल आया, लेकिन हाथी की पूँछ टोटी मे अटकी रह गई। रास्ते में गगा नदी पडी जिसे पार करके मैं अपने स्वामी के घर पहुँचा। वहाँ से आप लोगों के पास आया हू।"

खडपाणा ने अपनी कहानी सुनाई—"मै एक धोबी की लडकी थी। एक बार मै अपने पिता जी के साथ कपडों की एक बडी गाडी भर कर नदी के किनारे कपडे धोने गई। जब कपडे धूप मे सूख रहे थे तो जोर की हवा चली और सब कपडे उड गये। यह देखकर राजा के भय से गोह का रूप धारण कर मै रात्रि के समय नगर के बगीचे मे गई। वहाँ मै आम की लता बन गई। तत्पश्चात् पटह का शब्द सुनकर मैने फिर से नया शरीर धारण किया। उधर कपडो की गाडी की रस्सियाँ (णाडगवरत्ता) गीदड और बकरे खा गये थे। ढूँढते-ढूँढते मेरे पिता जी को भैंसे की पूँछ मिली जिस पर वे रस्सियाँ लिपटी हुई थी। मेरे कपडे हवा मे उड गये थे और मेरे नौकर चाकरों का भी पता नहीं था। उनका पता लगाने के लिये मैं राजा के पास गई। वहाँ से घूमती-घामती यहाँ आई हूँ। तुम लोग मेरे नौकर हो और जो कपडे तुमने पहन रक्खे हैं वे मेरे है।"

और भी अनेक सरस लौकिक कथा कहानियाँ निशीथभाष्य मे जहाँ-तहाँ बिखरी पडी है।

साधुओं के आचार विचार सबधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन यहाँ उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिये, प्रायश्चित्तद्वार का वर्णन करते हुए साधु के वास्ते उड्डाह (प्रवचन की हँसी) से बचने के लिये, सयम के हेतु, बोधिक[1] चोरों से

---

१ ये मालवा की पर्वतश्रेणियों मे रहते और उज्जैनी के लोगों को भगाकर ले जाते थे। (विशेषनिशीथचूर्णी १६, पृष्ठ १११० साइक्लोस्टाइल प्रति)। महाभारत (६, ९, ३९) में भी बोधों का उल्लेख है।

अपनी रक्षा के लिये, प्रतिकूल क्षेत्र मे तथा नव प्रव्रजित साधु के निमित्त मृषा बोलने का विधान किया गया है। अदत्तादान के सबध मे भी यही बात है। ऐसे प्रसग उपस्थित होने पर कहा है—

जइ सव्वसो अभावो, रागादीण हवेज्ज णिद्दोसो।
जतणाजुतेसु तेसु, अप्पतर होइ पच्छित्त॥

—यदि सर्वप्रकार से राग आदि का अभाव है तो साधु निर्दोष ही रहता है। यतनापूर्वक कोई कार्य करने पर बहुत अल्प प्रायश्चित्त की आवश्यकता पडती है।

उक्त कथन का समर्थन करने के लिये एक कथा दी हुई है। किसी राजा के पुत्र न होने के कारण उसे बड़ी चिंता रहती थी। मत्री ने सलाह दी कि साधुओ को धर्मकथा के छल से अन्त पुर मे निमत्रित कर उनसे सतानोत्पत्ति कराई जाये[1]। पूर्व योजना के अनुसार किसी साधु को अन्त पुर मे बुलाया गया। लेकिन उसने कहा कि मै जलती हुई अग्नि मे गिर कर प्राण दे दूँगा, लेकिन अपने चिरसचित व्रत का भग न होने दूँगा। यह सुनकर कोपाविष्ट हो राजपुरुषों ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। तत्पश्चात् दूसरे साधुओं को बुलाया गया। उन्हें वह कटा हुआ सिर दिखाकर कहा गया कि यदि तुम भी हमारी आज्ञा का उल्लघन करोगे तो यही दशा होगी। ऐसी हालत मे कोई साधु प्रसन्न होकर विचार करता है कि चलो इस बहाने से स्त्री-सेवन का सुख तो मिलेगा, दूसरा भयभीत होकर सोचता है कि ऐसा न करने से मेरी भी यही गति होगी, तीसरा सोचता है कि इस तरह मरने से क्या लाभ ? जीवित रहने पर तो प्रायश्चित्त आदि द्वारा शुद्धि की जा सकती है, फिर मै दीर्घकाल तक सयम का पालन करूँगा।

---

1 देखिये आचारांग (२, २, १, २९४, पृष्ठ ३१२ इत्यादि); विनयपिटक (३, पृष्ठ १३४) में साधुओं से पुत्रोत्पत्ति कराने का उल्लेख है।

रात्रिभोजन के दोषों को गिनाते हुए कहा है कि रात्रि मे भोजन करने से मछली, बिच्छू, चींटी, पुष्प, बीज, विष और कटक आदि भोजन मे मिश्रित हो सकते है। इसके अतिरिक्त कुत्ते, गीदड और मकोडे आदि से काटे जाने तथा कॉटे आदि से बींधे जाने का भय रहता है।[1] उत्तरापथ आदि मे रात्रि-भोजन प्रचलित होने से साधुओ को वहॉ रात्रि मे भोजन करने के लिये बाध्य होना पडता था। बहुत से लोग दिवाभोजन को अप्रशस्त और रात्रि भोजन को प्रशस्त समझते थे—

आउ बल च वड्ढति, पीणेति य इदियाइ णिसिभत्त।
णेव य जिज्जति देहो, गुणदोसविवज्जओ चेव॥

—रात्रि-भोजन से आयु और बल की वृद्धि होती है, इन्द्रियॉ पुष्ट होती है और शरीर जल्दी ही जीर्ण नहीं होता। दिवाभोजन के सबध मे इससे उलटा समझना चाहिये।

साधुओ को साध्वियो का सपर्क न करने के सबध मे छेदसूत्रों मे अत्यन्त कठोर नियमों का विधान है, फिर भी, कभी उनमे प्रेमपूर्ण पत्र-व्यवहार चल जाता था—

काले सिहि-णदिकरे, मेहनिरुद्धम्मि अबरतलम्मि।
मित मधुर मजुभासिणि, ते धन्ना जे पियासहिता॥

—यह समय मयूरों को आनन्ददायी है, मेघ आकाश मे छाये हुए है। हे मित, मधुर और मजुभाषिणी! जो अपनी प्रिया के समीप है वे धन्य है।

प्रत्युत्तर—
कोमुति णिसा य पवरा, वारियवामा यदुद्धरो मयणो।
रेहति य सरयगुणा, तीसे य समागमो णत्थि॥

---

१ मार्ग में चोरों के, गड्ढे में गिर पड़ने के और व्यभिचारिणी स्त्रियों के भय से बुद्ध ने भी रात्रिभोजन के त्याग का विधान किया है। देखिये मज्झिमनिकाय, लकुटिकोपम तथा कीटागिरि सुत्तन्त।

—रात्रि मे सुन्दर चादनी छिटकी हुई है, वामा (स्त्री) का मार्ग निरुद्ध है, मदन (कामदेव) दुर्धर्ष है, शरद्ऋतु शोभित हो रही है, फिर भी समागम होने का कोई उपाय नही।

परस्पर-अनुरक्त स्त्री और पुरुप की आकृतियों का वर्णन भाष्यकार ने किया है—

काणच्छि रोमहरिसो, वेवहु सेओ वि दिट्ठमुहराओ।
णीसासजुता य कथा, वियभिय पुरिसआयारा॥

—कानी ऑख से देखना, रोमाचित हो जाना, शरीर मे कप होना, पसीना छूटने लगना, मुँह पर लाली दिखाई देने लगना, बार-बार निश्वास और जॅभाई लेना—ये स्त्री मे अनुरक्त पुरुप के लक्षण है।

स्त्री की दशा देखिये—

सकडक्खपेहण बाल सुवण कण्ण णास कडुयण।
छण्णगदसण घट्टणाणि उवगूहण बाले॥
णीयल्लयदुच्चरितागुकित्तण तरसुहीण य पससा।
पायगुट्ठेण मही विलेहण णिट्ठुभणपुव्व॥

—सकटाक्ष नयनो से देखना, बालों को सॅवारना, कान और नाक को खुजलाना, गुह्य अग को दिखाना, घर्षण और आलिंगन, तथा अपने प्रिय के समक्ष अपने दुश्चरितों का बखान करना, उसके-हीन गुणों की प्रशसा करना, पैर के अगूठे से जमीन खोदना और खखारना—ये पुरुप के प्रति आसक्त स्त्री के लक्षण समझने चाहिये।

निशीथभाष्य मे आचार विचार और रीति-रिवाजसबधी बहुत से विषयों का उल्लेख है। उदाहरण के लिये, पुलिंद आदि अनार्य जगल मे जाते हुए साधु को आर्य समझ कर मार डालते थे। विविध प्रकार का माल-असबाब लेकर सार्थवाह अपने सार्थ के साथ बनिज व्यापार के लिये दूर-दूर देशों मे भ्रमण करते थे। सखडी (भोज) धूमधाम से मनाई जाती थी। कवड्डग (कौड़ी), कागणी, दीनार और केवडिय आदि

सिक्के प्रचलित थे। तोसली मे तालोदक (तालाब)[1] और राजगृह मे तापोदक कुड प्रसिद्ध थे। तोसली की व्याघरणशाला (एक प्रकार का स्वयवर मडप) मे हमेशा एक अग्निकुड प्रज्वलित रहता था जहाँ बहुत से चेटक और एक चेटकी स्वयवर के लिये प्रविष्ट होते थे। यहाँ कप्प (बृहत्कल्प), नन्दिसूत्र तथा सिद्धसेन और गोविन्दवाचक का उल्लेख है। गोविंदवाचक १८ बार बाद मे हार गये, बाद मे एकेन्द्रिय जीव की सिद्धि के लिये उन्होने गोविन्दनिर्युक्ति की रचना की। आचाराग आदि को ज्ञान और गोविदनिर्युक्ति को दर्शन के उदाहरण रूप मे उपस्थित किया गया है।

व्यवहारभाष्य

निशीथ और बृहत्कल्पभाष्य की भाँति व्यवहारभाष्य भी परिमाण में काफी बड़ा है। मलयगिरि ने इस पर विवरण लिखा है। व्यवहारनिर्युक्ति और व्यवहारभाष्य की गाथाये परस्पर मिश्रित हो गई है। इस भाष्य मे साधु साध्वियों के आचार-विचार, तप, प्रायश्चित्त, और प्रसगवश देश देश के रीतिरिवाज आदि का वर्णन है।

शुद्ध भाव से आलोचना करना साधु के लिये मुख्य बताया है—

जह बालो जपेंतो कज्जमकज्ज च उज्जुय भणइ।
त तह आलोइज्जा मायामयविप्पमुक्को उ॥

—जैसे कोई बालक अच्छे या बुरे कार्य को सरल भाव से प्रकट कर देता है, उसी प्रकार माया और मद से रहित कार्य-अकार्य की आलोचना आचार्य के समक्ष कर देनी चाहिये।

---

१ हरितालक नाम के तालाब का भी यहाँ उल्लेख है (बृहत्कल्प भाष्य ३, ४२२३)। खारवेल के हाथीगुफा शिलालेख में इसका नाम आता है।

गण के लिये आचार्य की आवश्यकता बताई है। जैसे नृत्य बिना नट नही होता, नायक बिना स्त्री नहीं होती, गाडी के धुरे के बिना चक्र नहीं चलता, वैसे ही गणी अर्थात् आचार्य के बिना गण नही चलता। औपधि आदि द्वारा अपने गण की रक्षा करना आचार्य के लिये परमावश्यक है। जैसे बल, वाहन और रथ से हीन निर्बुद्धि राजा अपने राज्य की रक्षा नही कर सकता, वैसे ही सूत्र और औपधि से विहीन आचार्य अपने गच्छ की रक्षा करने मे समर्थ नही होता। पद पद पर साधुओं को स्त्रियो से सावधान रहने का उपदेश दिया गया है। मनु का अनुकरण करते हुए भाष्यकार भी स्त्रियों को स्वातन्त्र्य देने के पक्ष मे नही है—

जाया पितिव्वसा नारी, दत्ता नारी पतिव्वसा।
विहवा पुत्तवसा नारी, नत्थि नारी सयवसा॥

—बाल्यावस्था मे नारी पिता के, विवाहित होने पर पति के और विधवा होने पर वह अपने पुत्र के वश मे रहती है, वह कभी भी स्वाधीन नही रहती।

इन सब उपदेशों के बावजूद अनेक प्रसग ऐसे होते थे जब कि साधु अपने सयम से च्युत हो जाते, लेकिन प्रायश्चित्त द्वारा उन्हें शुद्ध कर लिया जाता था। बीमारी आदि फैल जाने पर देशान्तर जाने मे उन्हें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पडता। मार्ग मे उन्हें चोर, जगली जानवर, सर्प, गौल्मिक, आरक्षक, प्रत्यनीक (विद्वेष करनेवाले), कर्दम और कटक आदि का भय रहता। राजसभा मे वाद विवाद मे पराजित होने पर अपमानित होना पड़ता। ऐसे समय वे अन्य साधुओं द्वारा पीटे जाते, बॉध लिये जाते और उनका भोजन-पान तक बन्द कर दिया जाता। बहुत से देशों मे उन्हें पात्र मिलने मे कठिनाई होती। ऐसी हालत मे उन्हें नन्दी, पतद्ग्रह, विपद्ग्रह, कमढ़क, विमात्रक और प्रश्रवणमात्रक पात्रों को रखना पड़ता। वर्षाकाल मे निम्नलिखित स्थान साधुओं के लिये उत्कृष्ट बताये

गये है—जहाँ अधिक कीचड न हो, द्वीन्द्रियादि जीवो की बहुलता न हो, प्रासुक भूमि हो, रहने योग्य दो तीन बसतियाँ हों, गोरस की प्रचुरता हो, बहुत लोग रहते हो, कोई वैद्य हो, औषधियाँ मिलती हो, धान्य की प्रचुरता हो, राजा सम्यक् प्रकार से प्रजा को पालता हो, पाखडी साधु कम रहते हों, भिक्षा सुलभ हो, और स्वाध्याय में कोई विघ्न न होता हो। जहाँ कुत्ते अधिक हों वहाँ साधु को बिहार करने का निषेध है।

मथुरा का जैनों मे बडा माहात्म्य था। यहाँ स्तूपमह उत्सव मनाया जाता था। जैन मान्यता के अनुसार मथुरा मे देवताओं द्वारा रत्नमय स्तूप का निर्माण किया गया था,[1] जिसे लेकर जैन और बौद्धों मे बहुत विवाद चला। भरुयकच्छ (भडौंच) और गुणसिल चैत्य (राजगिर से तीन मील की दूरी पर आधुनिक गुणावा) का भी बड़ा महत्त्व बताया गया है। देश-देश के लोगों के सबध मे चर्चा करते हुए कहा है कि मगध के निवासी किसी बात को इशारेमात्र से समझ लेते, जब कि कौशल के लोग उसे देखकर, और पाचाल के निवासी आधी बात कहने पर समझते थे, और दक्षिणापथ के वासी तो उसे तब तक न समझ पाते जब तक कि वह बात साफ साफ कह न दी जाये। अन्यत्र आध्र देशवासियो को क्रूर, महाराष्ट्रियों को वाचाल तथा कोशल के वासियों को पापी कहा गया है।

तीन प्रकार के हीन लोग गिनाये गये है—जातिजुगित, कर्मजुगित और शिल्पजुगित। जातिजुगितों मे पाण, डोब, किणिक और श्वपच, कर्मजुगितो मे पोषक, सवर (टीकाकार ने इसका शोधक अर्थ किया है), नट, लख, व्याध, मछुए, रजक और वागुरिक तथा शिल्पजुगितों मे पट्टकार और नापितों का उल्लेख है। आर्यरक्षित, आर्यकालक, राजा सातवाहन, प्रद्योत, मुरुण्ड, चाणक्य, चिलातपुत्र, अवन्तिसुकुमाल और

---

१ मथुरा के ककाली टीले की खुदाई में इस स्तूप के सम्बन्ध में बहुत सी बातों का पता लगता है।

रोहिणेय चोर आदि की कथायें वर्णित है। आर्यसमुद्र और आर्यमगु का उल्लेख है। कुशिष्य को महाकल्पश्रुत पढाने का निषेध है। विप्लव, महामारी, दुर्भिक्ष, चोर, धन-धान्य और कोष की हानि तथा बलवान प्रत्यत राजा का उपद्रव—ये बाते राज्य के लिये हानिकारक कही गई है। राजा, युवराज, महत्तर, अमात्य, कुमार और रूपयक्ष[1] के लक्षण बताये गये है। तप, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल इन पॉच भावनाओं का विवेचन है।

बृहत्कल्पभाष्य

सघदासगणि क्षमाश्रमण इस भाष्य के रचयिता है। बृहत्कल्प की भाष्यपीठिका मे ८०५ गाथाये है जिनमे ज्ञानपचक, सम्यक्त्व, सूत्रपरिषद्, स्थडिलभूमि, पात्रलेप, गोचर्या, वसति की रक्षा, वस्त्रग्रहण, अवग्रह, विहार आदि का वर्णन है। स्त्रिया के लिये भूयावाद (दृष्टिवाद) पढने का निषेध है। श्रावकभार्या, साप्तपदिक, कोकणदारक, नकुल, कमलामेला, शब का साहस और श्रेणिक के क्रोध की कथाओ का वर्णन है। अपने शिष्यो के बोध के लिये आर्यकालक के उज्जैनी से सुवर्णभूमि (बरमा) के लिये प्रस्थान करने का उल्लेख है। अभिनव नगर बसाने के लिये भूमि आदि की परीक्षा करके, भूमि खोदकर, ईंटो की नींव रखकर, ईंटें चिनकर, और पीठक बनाकर प्रासाद का निर्माण करना चाहिये। शिष्यों को उपदेश देने के लिये ब्राह्मणो की कथा दी है—

अन्नो दुज्झिहि कल्ल, निरत्थय किं वहामि से चारिं।
चउचरणगवी य मया, अवण्णहाणी य मरुयाण ॥
मा मे हुज्ज अवन्नो, गोवज्झा मा पुणो य न दलिज्जा।
वयमवि दोज्झामो पुण, अणुग्गहो अन्नदूहे वि ॥

---

[1] जो भभीय, आसुरुक्ख, माठर के नीतिशास्त्र और कौण्डिन्य की दडनीति में कुशल हो और सत्य का पक्ष लेता हो उसे रूपयक्ष कहा है। मिलिन्दपण्ह (पृ० ३४४) में रूपदक्ख नाम मिलता है।

सीसा पडिच्छगाण, भरो त्ति ते वि य हु सीसगभरो त्ति ।
न करिति सुत्तहाणी, अन्नत्थ वि दुल्लह तेसिं ॥

—किसी व्यक्ति ने चतुर्वेदी ब्राह्मणों को एक गाय दान मे दी । ब्राह्मण गाय को बारी बारी से दुहते । जिसकी बारी होती वह सोचता कल तो मुझे दुहना नही, इसलिये इसे घास चारा ही देना व्यर्थ है । कुछ समय बाद गाय मर गई जिससे ब्राह्मणों को अपयश का भागी बनना पडा । कुछ समय बाद फिर से उन लोगों को एक गाय दान मे मिली । उन्होंने सोचा कि यदि अबकी बार भी हम गाय को घास चारा न देंगे तो वह मर जायेगी । लोग फिर हमारी निन्दा करेंगे, गोहत्या का हमे पाप लगेगा, और भविष्य मे हम दान से वचित रह जायेंगे । यह सोचकर वे गाय को घास चारा देने लगे ।

इस उदाहरण से शिष्यों को अपने आचार्यों की सेवा-शुश्रूषा मे रत रहने का उपदेश दिया गया है ।

कौमुदिकी, सग्रामिकी, दुर्भूतिका और अशिवोपशमिनी नाम की चार भेरियों, तथा जानती, अजानती और दुर्विदग्धा नाम की तीन परिषदों का उल्लेख है । लौकिक परिषद् के पॉच भेद हैं—पूरयन्ती, छत्रवती, बुद्धि, मत्री, और राहस्यिकी । साधुओ की वसति बनाने के लिये वल्लियों के ऊपर बॉस बिछाकर, उन्हें चारो ओर से चटाइयों से ढककर, उन्हें सुतलियों से बॉध कर ऊपर से घास बिछा देना चाहिये, फिर उसे गोबर से लीप देना चाहिये ।

दूसरे भाग मे प्रथम उद्देश्य के १–६ सूत्रों पर ८०६–२१२४ गाथाये है । इनमे प्रलम्बसूत्र की विस्तृत व्याख्या, अध्वद्वार, ग्लानद्वार, ग्राम, नगर, खेड, कर्वटक, मडब, पत्तन आदि की व्याख्या, जिनकल्पी का स्वरूप, समवसरणद्वार, प्रशस्त अप्रशस्त भावनाये, गमनद्वार, स्थविरकल्पी की स्थिति, प्रतिलेखनाद्वार, भिक्षाद्वार, चैत्यद्वार, रथयात्रा की यातनायें, वैद्य के समीप गमन करने की विधि, निर्ग्रंथनियों का विहार और वसतिद्वार आदि

का विवेचन है। उत्तानमल्लकाकार, अवाङ्मुखमल्लकाकार, सम्पुट-मल्लकाकार, उत्तानखंडमल्लक, अवाङ्मुखखंडमल्लक, सपुटखंड-मल्लक, भित्ति, पडालिका, वलभी, अक्षपाट, रुचक और काश्यप नामक ग्रामों की व्याख्या की गई है। पाषाण, ईंट, मिट्टी, काष्ठ (खोड), बाँस और काँटो के बने हुए प्राकारो का उल्लेख है। साधु को विभिन्न देशो की भाषाओ का ज्ञाता होना चाहिये। जनपद की परीक्षा करते हुए साधु को इस बात का ज्ञान होता है कि किस देश मे किस प्रकार से धान्य पैदा होता है। उदाहरण के लिये, लाट देश मे वर्षा से, सिन्ध मे नदी के जल से, द्रविड मे तालाब के जल से, उत्तरापथ मे कुँए के जल से तथा बन्नासा और डिभरेलक मे नदी के पूर से धान्य की पैदावार होती है, काननद्वीप मे नाव के द्वारा धान रोपा जाता है। कही सुभाषित भी दिखाई दे जाते है—

कत्थ व न जलइ अग्गी, कत्थ व चदो न पायडो होइ।
कत्थ वरलक्खणधरा, न पायडा होंति सप्पुरिसा॥
उदए न जलइ अग्गी, अब्भच्छिन्नो न दीसइ चदो।
मुक्खेसु महाभागा, विज्जापुरिसो न मायति॥

—अग्नि कहाँ प्रकाशमान नहीं होती? चन्द्रमा कहाँ प्रकाश नहीं करता? शुभ लक्षण के धारक सत्पुरुष कहाँ प्रकट नहीं होते?—अग्नि जल मे बुझ जाती है, चन्द्रमा मेघाच्छान्ति आकाश मे दिखाई नहीं देता और विद्यासपन्न पुरुष मूर्खों की सभा मे शोभा को प्राप्त नहीं होते।

साधुओं को कब विहार करना चाहिये—

उच्छू वोलिंति वइं, तुबीओ जायपुत्तभडाओ।
वसहा जायत्थामा, गामा पव्वायचिक्खल्ला॥
अप्पोदगा या मग्गा, वसुहा वि य पक्कमट्टिया जाया।
अन्नोकता पथा, विहरणकालो सुविहियाण॥

—जब ईख बाड़ों के बाहर निकलने लगें, तुंबियों में छोटे-छोटे तबक लग जायें, बैल ताक़तवर दिखाई देने लगें, गाँवों की

कीचड सूखने लगे, रास्तों का पानी कम हो जाये, जमीन की मिट्टी कडी हो जाये और जब पथिक परदेश जाने लगे तो साधुओं के विहार का समय समझना चाहिये।

चार प्रकार के चैत्य गिनाये गये है—साधर्मिक, मगल, शाश्वत और भक्ति। मथुरा मे नये घरों का निर्माण करने पर उनके उत्तरगों मे अर्हत् भगवान् की प्रतिमा स्थापित की जाती थी। रुग्ण साधु की वैद्य द्वारा चिकित्सा कराने का विस्तार से उल्लेख है। यहाँ पर टीकाकार ने दक्षिणापथ के काकिणी, भिल्लमाल के द्रम्म और पूर्वदेश के दीनार अथवा केतर (केवडिक) नाम के सिक्कों का उल्लेख किया है। निर्ग्रन्थिनियो के विहार का विस्तृत वर्णन है।

तीसरे भाग मे बृहत्कल्प सूत्र के प्रथम उद्देश के १०-५० सूत्र है जिन पर २१२५-३२८६ गाथाओं का भाष्य है। इनमे वगडा, आपणगृहादि, अपावृतद्वार उपाश्रय, घटीमात्रक, चिलिमिलिका, दकतीर, चित्रकर्म, सागारिकनिश्रा, सागारिकोपाश्रय, प्रतिबद्ध शय्या, गृहपतिकुलमध्यवास, व्यवशमन, चार, वैराज्य-विरुद्धराज्य, अवग्रह, रात्रिभक्त, रात्रिवस्त्रादिग्रहण, हरियाहडिया, अध्वगमन, सखडी, विचारभूमि-विहारभूमि और आर्यक्षेत्र की व्याख्या की गई है। काम की दस अवस्थाओं का वर्णन है। कोई साध्वी किसी साधु को दुर्बल देख कर उससे दुर्बलता का कारण पूछती है। साधु उत्तर देता है—

सदसणेण पीई, पीईउ रईउ वीसभो।
वीसभाओ पणओ, पचविह वड्ढए पिम्म ॥
जह जह करेसि नेह, तह तह नेहो मे वड्ढइ तुमम्मि।
तेण नडिओ मि बलिय, ज पुच्छसि दुब्बलतरो त्ति ॥

—दर्शन से प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति से रति, रति से विश्वास और विश्वास से प्रणय उत्पन्न होता है, इस तरह प्रेम पाँच प्रकार से बढता है। जैसे जैसे मैं स्नेह करता हूँ, वैसे वैसे

तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति बढती है। किन्तु इस स्नेह से मैं वंचित रहता हूं—यही मेरे दुर्बल होने का कारण है।

निर्ग्रंथो को स्त्रियों के संपर्क से दूर ही रहने का उपदेश है—

आसंकितो व वासो, दुक्खं तरुणा य सन्नियत्तेउ।
घंत पि दुब्बलासो, खुब्भइ वलवाण मज्झम्मि॥

—निवास स्थान मे स्त्रियो की आशंका सदा बनी रहती है। जैसे अत्यन्त दुर्बल अवस्था को प्राप्त घोडा भी घोडियो के बीच मे रहता हुआ क्षोभ को प्राप्त होता है, वही दशा स्त्रियो के बीच मे रहते हुए तपोनिष्ठ तरुण साधु की होती है।

भिक्षा के लिये जाती हुई आर्यिकायो की मजाक उडाते हुए कोई कहता है—

वंदामु खंति ! पडपंडुरसुद्धदंति !
रच्छाए जंति ! तरुणाण मणं हरंति॥

—क्षमाशील इस आर्यिका को हम प्रणाम करते है। उसके दॉतो की पंक्ति अत्यन्त शुभ्र हे, ओर मार्ग पर जाती हुई वह तरुण जनो के मन को हरती है।

इस सम्बन्ध मे दो मित्रों का वार्तालाप सुनिये—

पाणसमा तुज्झ मया, इमा या सरिसी सरिव्वया तीसे।
संखे खीरनिसेओ, जुज्जइ तत्तेण तत्तं च॥
सो तत्थ तीए अन्नाहि वा वि निब्भत्थिओ गओ गेहं।
खामिंतो किल सुढियो, अक्खुन्नहि अग्गहत्थेहि॥
पाएसु चेडरूवे, पाडेतु भणइ एस भे माता।
जं इच्छइ तं दिज्जह, तुम पि साइज्ज जायाइ॥

—हे मित्र ! तुम्हारी प्राणप्रिया मर गई है, लेकिन यह देखो रूप और अवस्था मे यह साध्वी उसी के समान है। जैसे शंख मे दूध भरने से वह उसी के रंग का हो जाता है, और तपा हुआ लोहा तपे हुए लोहे के साथ मिल जाता है, वैसे ही तुम्हारा भी इसके साथ सम्बन्ध हो सकता है। यह सुनकर वह

सयती अथवा अन्य सयतियॉ उस पुरुष को धिक्कारती है और वह पुरुष अपने मित्र के साथ अपने घर लौट आता है। एक दिन भिक्षा के लिये घर आई हुई उस सयती को देखकर उसके प्रति वह बहुमान प्रदर्शित करता है। वह उसके चरणो का स्पर्श करता है और अपनी पहली पत्नी के बच्चो से उसके पैर पडवा कर उनसे कहता है कि यह तुम्हारी मॉ है, और सयती से कहता है कि देखो यह तुम्हारे बच्चे है। तत्पश्चात् यथेच्छ वस्त्र, अन्न पान आदि से वह उसका सत्कार करता है।

वर्षाकाल मे गमन करने से वृक्ष की शाखा आदि का सिर पर गिर जाने, कीचड मे रपट जाने, नदी मे बह जाने अथवा कॉटा लग जाने आदि का डर रहता है, इसलिये निर्ग्रंथ और निर्ग्रन्थिनियों को वर्षाकाल मे गमन करने का निषेध है।[1] विरुद्धराज्य मे सक्रमण करने से बध, वध, आदि का डर रहता है। रात्रि अथवा विकाल मे भोजन करने से गड्ढे आदि मे गिरने, सॉप अथवा कुत्ते से काटे जाने, बैल से मारे जाने, अथवा कॉटा आदि लग जाने का भय रहता है। इस प्रसग पर कालोदाई नाम के एक भिक्षु की कथा दी है। यह भिक्षु रात्रि के समय किसी ब्राह्मणी के घर भिक्षा मॉगने गया था। वह ब्राह्मणी गर्भवती थी। अधेरा होने के कारण ब्राह्मणी को कील न दिखाई दी और कील पर गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गई।[2] विहार मार्ग के लिये उपयोगी तालिका, पुट, वर्ध्र, कोशक, कृत्ति, सिक्कन, कापोतिका आदि चर्म के उपकरणों और पिप्पलक, सूची, आरी, नखरदन आदि लोहे के

१ विशेषकर उत्तर बिहार मे बागमती, कोसी और गडक नदियों म बाढ आ जाने के कारण आवागमन बिलकुल ठप्प हो जाता है, इसीको ध्यान में रखकर भिक्षुओं के लिये चातुर्मास मे गमनागमन करने का निषेध किया मालूम होता है।

२ मज्झिमनिकाय के लकुटिकोपम सुत्त में भी स्त्री के गर्भपात की बात कही गई है।

उपकरणों का उल्लेख है। तीन सिंहों के घातक कृतकरण श्रमण का उदाहरण दिया है। सार्थवाह तथा संखडि (भोज) का वर्णन है। शैलपुर में ऋषितडाग, भड़ौंच में कुंडलमेण्ठ व्यन्तर की यात्रा तथा प्रभास, अर्बुदाचल, प्राचीनवाह आदि स्थानों का उल्लेख है। संखडी के प्रकार बताये गये हैं। उज्जैनी का राजा संप्रति आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ति (वीर निर्वाण के २९१ वर्ष बाद स्वर्गस्थ) का समकालीन था, उसके समय से साढ़े पच्चीस जनपदों की आर्यक्षेत्रों में गणना की जाने लगी।[1]

चतुर्थ भाग में द्वितीय उद्देश के १–२५ और तृतीय उद्देश के १–३१ सूत्र हैं। इन पर ३२८०–४८७६ गाथाओं का भाष्य है। इनमें उपाश्रय, सागारिकपारिहारिक, आहृतिकानिर्हृतिका, अंशिका, पूज्यभक्तोपकरण, उपधि, रजोहरण, उपाश्रयप्रवेश, चर्म, कृत्स्नाकृत्स्न वस्त्र, भिन्नाभिन्न वस्त्र, अवग्रहानन्तक अवग्रहपट्टक, निश्रा, त्रिकृत्स्न, समवसरण, यथारत्नाधिकवस्त्रपरिभाजन, यथारत्नाधिकशय्यासंस्तारकपरिभाजन, कृतिकर्म, अन्तरगृहस्थानादि, अन्तरगृहाख्यानादि, शय्यासंस्तारक, अवग्रहप्रकृत, सेनाप्रकृत और अवग्रहप्रमाण का विवेचन है। सदा जागृत रहने का उपदेश दिया है—

जागरह नरा! णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी।
जो सुवति ण सो धण्णो, जो जग्गति सो सया धण्णो॥[2]

—हे मनुष्यो! सदा जागृत रहो। जागृत मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है। जो जागता है वह सदा धन्य है।

अग्नि, पचन, व्याघरण, पणित और भंडशालाओं का उल्लेख है। जांगमिक, भांगिक, सानक पोतक और तिरीट नाम के

१. देखिये अध्याय दूसरा, पृ० ५२।

२. मिलाइये—जागरन्ता सुणाथे तं ये सुत्ता ते पबुज्झथ।
सुत्ता जागरितं सेय्यो नत्थि जागरतो भयं॥
इतिवुत्तक, जागरिय सुत्त ४७।

पाच प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख है। दूष्यो मे कोयवि (रुई से भरा वस्त्र), प्रावारक (कबल), दाढिगालि, पूरिका, विरलिका उपधान, तूली[1], आलिगनिका, गडोपधान और मसूरक[2] का उल्लेख है। तथा एकपुट, सकलकृत्स्न, द्विपुट, खल्लक, खपुसा, वागुरा, कोशर्क, जघा, अर्धजघा नामक जूतो का उल्लेख है। दक्षिणापथ के दो रूपको का मूल्य काचीपुर के एक नेलक के बराबर होता था, और काचीपुर के दो रूपक पाटलिपुत्र के एक रूपक के बराबर होते थे।[3] थूणा आदि देशो मे किनारी (दशा) कटे हुए वस्त्र धारण करन, तथा जिनकल्पी साधुओ को पात्र आदि बारह प्रकार की उपधि रखने का विधान है। शील और लज्जा को स्त्रियो का भूषण कहा है—

ण भूसण भूसयते सरीर विभूसण सीलहिरी य इत्थिए।
गिरा हि सखारजुया वि सती, अपेसला होइ असाहुवादिणी॥

—हार आदि आभूषणों से स्त्री का शरीर विभूषित नही होता, उसका भूषण तो शील और लज्जा ही है। सभा मे सस्कारयुत असाधुवादिनी वाणी प्रशस्त नही कही जाती।

विधिपूर्वक गोचरी के लिए भ्रमण करती हुई यदि कोई सयती किसी गृहस्थ द्वारा घर्षित कर दी जाये तो उसकी रक्षा करने का विधान है। यहाॅ पुरुष के सवास के विना भी गर्भ की सभावना बताई है। स्त्री को हर दशा मे सचेल रहने का विधान है। उज्जैनी, राजगृह और तोसलिनगर मे कुत्रिकापण (बडी दूकानें जहाॅ हर वस्तु मिलती है) होने का उल्लेख है। यदि वस्त्र का परिभाजन करते समय साधुओ मे परस्पर

---

१ दीघनिकाय (१, पृ० ७) में तूलिक का उल्लेख है।

२ महावग्ग (५ १० ३) और चुल्लवग्ग (६ २ ४) में विविध तकियों का उल्लेख मिलता है।

३ जैनागमों में वणित सिक्कों के सबध में देखिए डॉक्टर उमाकान्त शाह का राजेन्द्रसूरिस्मारक ग्रन्थ, १९५७ में लेख।

विवाद उपस्थित हो जाये तो किस प्रकार विवाद को शान्त करे—

अज्जो ! तुम चेव करेहि भागे, ततो णु घेच्छामो जहक्कमेण।
गिण्हाहि वा ज तुह एत्थ इट्ठ, विणासधम्मीसु हि कि ममत्त ॥

—हे आर्य ! लो तुम ही इसका विभाग करो। इसके बाद हम लोग यथाक्रम से ग्रहण करेंगे। जो तुम्हे अच्छा लगे वह तुम ले लो। वस्त्र आदि वस्तुएँ विनाशशील है, इसलिए उनमे ममत्व करना उचित नही।

आचार्य के अभ्युत्थानसबधी प्रायश्चित का वर्णन—

भग्गऽम्ह कडी अब्भुट्ठणेण वेड य अणुट्ठणे ण्णोही।
अनिरोहसुहो वासो, होहिइ णे इत्थ अच्छामो ॥

—पहले गच्छ मे आचार्य के लिए बार बार उठने बैठने से हमारी कमर टूट गई है। वहाँ यदि हम नही उठते थे तो प्रायश्चित्त का भागी होना पडता था और कठोर वचन सहन करने पडते थे लेकिन इस गच्छ मे प्रवेश करने के बाद बड़ा सुखकर जीवन हो गया है। इसलिए अब यही रहेंगे, लौटकर अपने गच्छ मे नहीं जायेंगे।

जिनशासन का सार क्या है—

ज इच्छसि अप्पणतो, ज च ण इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि या, एत्तियग जिणसासणय ॥

—जिस बात की अपने लिए इच्छा करते हो, उसकी दूसरे के लिए भी इच्छा करो, और जो बात अपने लिए नही चाहते हो उसे दूसरे के लिए भी न चाहो—यही जिनशासन है।

मृत्यु का भय सामने है, इसलिये जो करना है आज ही कर लो—

ज कल्ले कायव्व, णरेण अज्जेव त वर काउ।
मच्चू अकलुणहिअओ, न हु दीसइ आवयतो वि ॥
तूरह धम्म काउ, मा हु पमाय खणपि कुव्वित्था।
बहुविग्घो हु मुहुत्तो मा अवरण्ह पडिच्छाहि ॥

—जो कल करना है उसे आज ही कर डालना चाहिए, क्योंकि क्रूर यम आता हुआ दिखाई नही देता। धर्म का आचरण करने के लिए शीघ्रता करो। प्रत्येक मुहूर्त्त मे अनेक विघ्न उपस्थित होते है, अतएव अपराह्न काल की भी प्रतीक्षा न करो।

पाँचवे भाग मे चतुर्थ उद्देश के १ ३४ और पचम उद्देश के १–४२ सूत्र है। इन सूत्रो पर ४८७७–६०५६ गाथाओ का भाष्य है। इनमे अनुद्घातिक, पारातिक, अनवस्थाप्य, प्रव्राजनादि, वाचना, सज्ञाप्य, ग्लान, अनेषणीय, कल्पस्थित, अकल्पस्थित, गणान्तरापसपत्, विष्वग्भवन, अधिकरण, परिहारिक, महानदी, उपाश्रयविधि, ब्रह्मापाय, अधिकरण, सस्तृतनिर्विचिकित्सा, उद्गार, आहारविधि, पाकनविधि, ब्रह्मरक्षा, मोक, परिवासित और व्यवहार का विवेचन है। हस्तमैथुन, मैथुन, अथवा रात्रिभोजन का सेवन करने से गुरु प्रायश्चित का विधान किया है।

छठे भाग मे छठे उद्देश के १–२० सूत्र है जिन पर ६०६०–६४९० गाथाओं का भाष्य है। इनमे वचन, प्रस्तार, कटकादि उद्धरण, दुर्ग, क्षिप्तचित्त आदि, परिमथ और कल्पस्थिति सूत्रो का विवेचन है। मथुरा मे देवनिर्मित स्तूप का उल्लेख है। यदि कोई वणिक् बहुत सा धन जहाज मे भर कर जलयात्रा करे और जहाज के डूब जाने से उसका सारा धन नष्ट हो जाये, तो वह अपने ऋण को लौटाने के लिए बाध्य नही है, इसे वणिक् न्याय कहा गया है। जीर्ण, खडित अथवा अल्प वस्त्र धारण करनेवाले निर्ग्रंथ भी अचेलक कहे जाते है। आठ प्रकार के राजपिंड का उल्लेख है।

जीतकल्पभाष्य

जीतकल्पभाष्य के ऊपर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का स्वोपज्ञ भाष्य है। यह भाष्य वस्तुत बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य और पिडनिर्युक्ति आदि ग्रन्थों की गाथाओं का सग्रह है। इसमे पाँच ज्ञान, प्रायश्चित्तस्थान, भक्तपरिज्ञा की विधि,

इगिनीमरण और पादोपगमन का लक्षण, गुप्ति-समिति का स्वरूप, ज्ञान दर्शन चारित्र के अतिचार उत्पादना का स्वरूप, ग्रहणैपणा का लक्षण, दान का स्वरूप आदि विषयों का प्रतिपादन किया है।

उत्तराध्ययनभाष्य

शान्तिसूरि की पाइयटीका मे भाष्य की कुछ ही गाथायें उपलब्ध होती है। जान पडता है कि अन्य भाष्यो की गाथाओ की भाँति इस भाष्य की गाथायें भी निर्युक्ति के साथ मिश्रित हो गई है। इनमे बोटिक की उत्पत्ति तथा पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक नाम के जैन निर्ग्रन्थ साधुओ के स्वरूप का प्रतिपादन है।

आवश्यकभाष्य

आवश्यकसूत्र के ऊपर लघुभाष्य, महाभाष्य और विशेषावश्यक महाभाष्य लिखे गये है। इस सूत्र की निर्युक्ति मे १६२३ गाथाये है जब कि भाष्य मे कुल २५३ गाथाये उपलब्ध होती है। यहाँ भी भाष्य और निर्युक्ति की गाथाओ मे गड़बड़ी हुई है। विशेषावश्यकभाष्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने लिखा है। कालिकश्रुत मे चरण-करणानुयोग, ऋषिभाषित में धर्मकथानुयोग और दृष्टिवाद मे द्रव्यानुयोग के कथन है। महाकल्पश्रुत आदि का इसी दृष्टिवाद से उद्धार हुआ बताया गया है। कौंडिन्य के शिष्य अश्वमित्र को अनुप्रवादपूर्व के अन्तर्गत नैपुणिक वस्तु मे पारङ्गत बताया है। निह्नवों और करकण्डु आदि प्रत्येकबुद्धों के जीवन का यहाँ विस्तार से वर्णन है। यदि साधु की वसति मे अण्डा फूटकर गिर पड़ा हो तो स्वाध्याय का निषेध किया है।

दशवैकालिकभाष्य

दशवैकालिकभाष्य की कुल ६३ गाथायें हरिभद्र की टीका के साथ दी हुई हैं। इनमें हेतुविशुद्धि, प्रत्यक्ष परोक्ष तथा मूलगुण

और उत्तरगुणों का प्रतिपादन है। अनेक प्रमाणो से जीव की सिद्धि की गई है। लौकिक, वैदिक तथा सामयिक (बौद्ध) लोग जीव को किस रूप मे स्वीकार करते है—

लोगे अच्छेज्जभेज्जो वेए सपुरीसन्द्धगसियालो।
समएज्जहमासि गओ तिरिहो दिन्नाइससारो॥

—लौकिक लोग आत्मा को अच्छेद्य और अभेद्य मानते है। वेद मे कहा है—जो विष्ठा सहित जलाया जाता है, वह शृगाल की योनि मे जन्म लेता है, जो विष्ठा सहित जलाया जाता है उसकी सतति अक्षत होती है। (शृगालो वै एष जायते य सपुरीषो दह्यते, अथापुरीषो दह्यते आक्षोधुका अस्य प्रजा प्रादुर्भवन्ति)। तथा बुद्ध का वचन है कि मै पहले जन्म मे हाथी था—

(अह मास भिक्षवो हस्ती, षड्दन्त शखसनिभ।
शुक पजरवासी च शकुन्तो जीवजीवक॥)

इस प्रकार, देव, मनुष्य, और तिर्यच के भेद से ससार को तीन प्रकार का कहा है।

पिंडनिर्युक्तिभाष्य

पिडनिर्युक्ति पर ४६ गाथाओ का भाष्य है। यहाँ पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रगुप्त और उसके मत्री चाणक्य का उल्लेख है। एक बार की बात है कि जब पाटलिपुत्र मे दुर्भिक्ष पडा तो सुस्थित नाम के सूरि ने सोचा कि अपने समृद्ध नामक शिष्य को सूरि पद पर स्थापित कर किसी निरापद स्थान मे भेज देना ठीक होगा। उन्होंने उसे एकान्त मे योनिप्राभृत का उपदेश दिया जिसे दो क्षुल्लको ने किसी तरह छिपकर सुन लिया। इसमे ऑखो मे अजन ऑज कर अदृश्य होने की विधि बताई गई थी। समृद्ध सूरिपद पर स्थापित हो गये, लेकिन जो भिक्षा मिलती वह पर्याप्त न होती। नतीजा यह हुआ कि समृद्ध दिन पर दिन दुर्बल होने लगे। क्षुल्लकों को जब इस बात का

पता चला तो उन्होंने अपनी आँखों में अंजन आँज कर राजा चन्द्रगुप्त के साथ भोजन करने का निश्चय किया। दोनों प्रतिदिन अंजन लगा कर अदृश्य हो जाते और चन्द्रगुप्त के साथ भोजन करते। लेकिन इससे पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण चन्द्रगुप्त कृश होने लगे। चाणक्य ने इसका कारण जानने का प्रयत्न किया। उसने भोजनमण्डप में ईंटों का चूरा बिखेर दिया। कुछ समय बाद उसे मनुष्य के पगचिह्न दिखाई दिये। वह समझ गया कि दो आदमी आँख में अंजन लगा कर आते हैं। एक दिन उसने दरवाजा बन्द करके धूँआ कर दिया। धूँआ लगने से क्षुल्लकों की आँखों से पानी बहने लगा जिससे अंजन धुल गया। देखा तो सामने दो क्षुल्लक खड़े थे। चन्द्रगुप्त को बड़ी आत्मग्लानि हुई। खैर, चाणक्य ने बात संभाल ली। बाद में उसने वसति में जाकर आचार्य से निवेदन किया कि आपके शिष्य ऐसा काम करते हैं। दोनों शिष्यों को प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ा।

ओघनिर्युक्तिभाष्य

ओघनिर्युक्ति के भाष्य में ३२२ गाथायें हैं। धर्मरुचि आदि के कथानकों और बदरी आदि के दृष्टांतों द्वारा तत्त्वज्ञान को समझाया गया है। कुछ कथानक अस्पष्ट भी हैं जिसका उल्लेख वृत्तिकार द्रोणाचार्य ने किया है (देखिये ८ भाष्य की टीका)। बहुत से लोग प्रातःकाल साधुओं का दर्शन अपशकुन मानते थे। उनके लिंग (अहिहाण) को देखकर वे मजाक करते थे कि लो सुबह ही सुबह शीशे (उद्दाग) में मुँह देख लो! लोग कहते थे कि इन साधुओं ने केवल उदरपूर्त्ति के लिए प्रव्रज्या ग्रहण की है। कभी कोई विधवा स्त्री उन्हें एकांत में पा कर द्वार आदि बन्द कर परेशान करती थी। ज्योतिष आदि का प्रयोग भी साधु किया करते थे। लेपपिण्ड में बताया है कि जब वे अपने पात्र में लेप लगाते तो कभी उसे कुत्ता आकर चाट जाता था (जक्खुल्लिहण, यहाँ यक्ष का अर्थ टीकाकार ने

कुत्ता किया है)। शुभ और अशुभ तिथि, करण और नक्षत्र पर विचार करते हुए चक्रधर, पाडुरग, तच्चन्निय (बौद्ध) और बोटिक साधुओ का दर्शन अशुभ बताया है। कालधर्म को प्राप्त साधु के परिष्ठापन की विधि का प्रतिपादन करते हुए उनके शव को स्थडिल (प्रासुक जीव जन्तुरहित भूमि), देवकुल अथवा शून्यगृह आदि स्थानो मे रखने का विधान है। नदी मे यदि घुटनो तक (जघार्ध) जल हो तो एक पैर जल मे और दूसरा पैर ऊपर उठाकर नदी पार करे। यहाँ सघट्ट (जहाँ जघार्ध प्रमाण जल हो), लेप (नाभिप्रमाण जल) और लेपोपरि (जहाँ नाभि के ऊपर तक जल हो) शब्दों की परिभाषा दी है। आठ वर्ष के बालक, नौकर चाकर, वृद्ध, नपुसक, सुरापान से मत्त और लूले लगडे पुरुष से, तथा कूटती, पीसती, कातती और रुई पीजती हुई तथा गर्भवती स्त्री से भिक्षा स्वीकार करने का निषेध है। प्रकाश रहते हुए साधु को भोजन कर लेना चाहिये अधेरे मे भोजन करने की मनाई है। मालवा के चोर लोगों का अपहरण करके ले जाते थे। साधुओं को उनसे सतर्क रहने के लिये कहा है। कलिंग देश के काचनपुर नगर मे भयङ्कर बाढ आने का उल्लेख यहाँ मिलता है।



चूर्णी-साहित्य

आचारागचूर्णी

परपरा से आचाराग चूर्णी[1] के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते है। यहाँ अनेक स्थलो पर नागार्जुनीय वाचना की साक्षीपूर्वक पाठभेद प्रस्तुत करते हुए उनकी व्याख्या की गई है। बीच-बीच मे सस्कृत और प्राकृत के अनेक लौकिक पद्य उद्धृत है। प्रत्येक शब्द को स्पष्ट करने के लिए एक विशिष्ट शैली अपनाई गई है। मूअ, खुज्ज और वडभ आदि शब्दो के अर्थ को प्राकृत मे ही समझाया है—

वहिरत ण सुणेति, मूतो तिविहो—जलमूतओ, एलमूतओ मम्मणो त्ति। खुज्जो वामणो। वडभे त्ति जस्स वडभ पिट्ठीए णिग्गत। सामो कुट्ठी। सबलत्त सिति। सह पमादेण ति कारणे कज्जुवयारा भणित सकम्मेहि।

थुल्लसार का अर्थ—

थुल्लसार भेड एरडकट्ठ वा, जस्स वा ज सरीर थुल्ल ण किंचि विण्णाण अत्थि सो थुल्लसार एव। केवल भारसारो पत्थरो वइरा ति। मज्झसारो खइरो। देससारो अबो।

ग्राम आदि की परिभाषायें—

अट्ठारसण्ह करभराण गमो गमणिज्जो वा गामो, गसति वुद्धिमादिगुणे वा गामो। ण एत्थ करो विज्जतीति नगर। खेड पसुपागारबद्ध। कब्बड णाम थुल्लओ जस्स पागारो। मडब जस्स अड्ढाइज्जेहि गाउएहिं णत्थि गामो। पट्टण जलपट्टण थलपट्टण च। जलपट्टण जहा काणणदीवो, थलपट्टण जहा महुरा। आगरो

---

1 रतलाम की ऋषभदेव केशरीमलजी श्वेताम्बर सस्था द्वारा सन् १९४१ में प्रकाशित।

हिरण्णगारादी। गामो विज्जसण्णिविट्ठो दोहिं गम्मति जलेणा वि थलेणावि दोणमुह जहा भरुयच्छ तामलित्ती।

आगे चल कर विविध वस्त्रों और शाला आदि के लक्षण समझाये गये है।

निम्नलिखित कथा से चूर्णियों की लेखन शैली का पता चलता है—

एकम्मि गामे सुइवादी। तस्स गामस्स एगस्स गिहे केणइ च्छिप्पति। तो चउसट्ठीए मट्टियाहि स ण्हाति। अण्णदा यस्स गिहे बलदो मतो। कम्मारएहिं णिवेइय। तेण भणिय—सिद्धि नीणेध, त च ठाण पाणिएण धोवह। निप्फेडिए चडाला उवट्ठिता विगिचिय कुब्ज। तेहिं कम्मयरेहि सुइवादी पुच्छिओ—'चडालाण दिज्जउ?' तेण वुत्त—'मा, किंखु किंखु किंखुत्ति भणति। विकिंचतु सय। एवमेव मस दमयगाण देह। चम्मेण वइयाउ वलेह, सिंगाणि उच्छुवाडमज्झे कीरहि त्ति उज्झ पि खत्त भविरसइ, अट्ठिहि वि धूमो कज्जिहिति तउसीण, ण्हारुणा सत्थकडाण भविस्सइ।

—किसी गाँव मे एक शुचिवादी रहता था। वह किसी एक घर से भिक्षा मागकर खाता, और चौंसठ बार मिट्टी से स्नान करता था। एक बार की बात है कि नौकरों ने आकर निवेदन किया कि बैल मर गया है। घर के मालिक ने उन्हें आदेश दिया कि बैल को शीघ्र ही बाहर ले जाओ, और उस स्थान को पानी से धो डालो। बैल की खाल लेने के लिए चाण्डाल आ गये। नोकरों ने शुचिवादी से पूछा कि क्या बैल चाडालों को दे दे? शुचिवादी ने कहा—"तुम लोग स्वय ही उसकी खाल निकाल लो, मास भिखारियो को दे दो, चमडे की बाड बना लो, सींगो को ईख मे जलाकर उनसे खाद बना लो, हड्डियों का धूआ करके उसे बाडे की ककडियों मे दो और उसके स्नायुओ से बाण बना लो।"

एक लौकिक कथा पढ़िये—

एगम्मि गामे एक्को कोडुंबिओ धणमंतो बहुपुत्तो य। सो वुड्ढीभूतो पुत्तेसु भरं सणसति। तेहि य पत्तागयपुत्तभंडेहिं पुत्तेहिं भज्जाओ भणियाओ—एयं उव्वलणण्हाणोदग—भत्तपेज्जमाईहिं पडियारिज्जइ। ताओ य कंचि कालं पडियरिऊण पच्छा पुत्त भंडेहिं वड्ढमाणेहिं पच्छा सणियं सणियं उवयारं परिहावेउ-मारद्धाओ। कयायि देति, कयायि ण देति। सो सूरति। पुत्ता य ण पुच्छति। सो भणइ—पुव्वपुव्वुत्तं अगसुरसूस परिहायति। ताहे ते ताओ बहुगामो खिज्जति। पुणो पुणो निब्भत्थमाणीओ, पुणो अम्हे णिक्कज्जोवगरस थेरस्स एयस्स तणएण खलिया रिज्जामो ताहे ताओ रुट्ठाओ सुट्ठयर न करेति। पच्छा ताहि सपहारेऊण अपरोप्पर भणति पतिणो—अम्हे एयस्स करेमो विणयवत्तिं, एसो निण्हवति। कतिवि दिवसे पडियरिओ, पुच्छिओ किंचि—ते इदाणी करेंति? ताहे तेण पुव्विल्लगरोसेण भणइ—ण मे किंचिवि करेति। कइतवेण वा ताहे तेहि उच्चइ—विवरीतो भूतो एस थेरो। जइ वि कुव्वति तहवि परिवदति। एम कयग्घो। कीरमाणोवि णिण्हवति। अन्नेसिं पि णीयल्लगाण साहेति।

—किसी गाँव मे कोई धनवान कौटुंबिक रहता था। उसके बहुत से पुत्र थे। जब वह वृद्ध हुआ तो उसने अपने पुत्रों को सब भार सौंप दिया। उसके पुत्रों ने अपनी भार्याओं को आदेश दिया कि तुम लोग उबटन, स्नान, भोजन, शय्या आदि के द्वारा अपने श्वसुर की परिचर्या करना। कुछ समय तक तो वे परिचर्या करती रही, लेकिन जैसे जैसे उनके बाल बच्चे बढ़ने लगे, उनकी परिचर्या कम होती गई। कभी वे उसे भोजन देतीं, कभी न देतीं। वृद्धा यह देखकर बहुत चिंतित हुआ। अपने पुत्रों के पूछने पर उसने बताया कि अब वे पहले जैसी सेवा उसकी नहीं करतीं। यह सुनकर बहुओं को बहुत खीझ हुई। उन्हें अब बार बार डाट फटकार पड़ने लगी। उन्होंने सोचा कि अस्थिर चित्तवाले इस बूढ़े के पुत्रों द्वारा हमें बार-बार अपमानित होना पड़ता है।

इसलिए रुष्ट होकर अब उन्होने अपने श्वसुर की परिचर्या करना बिलकुल ही बन्द कर दिया। तत्पश्चात् आपस मे सलाह कर के उन्होने अपने पतियों से कहा—देखिये, हमलोग बराबर श्वसुरजी की सेवा शुश्रूषा करती है, लेकिन ये इस बात को आप लोगो से कभी नही कहते। इसके बाद वे कुछ दिन तक अपने श्वसुर की सेवा करती रही। एक दिन बूढे के पुत्रों ने अपने पिता जी से फिर पूछा। बूढे ने पहले जैसे ही बडे रोप के साथ कहा कि अरे भाई! वे तो कुछ भी नही करती यह सुनकर बहुएँ कहने लगी, "यह बूढा हमसे द्वेष रखता है। हमलोग इसकी इतनी सेवा करती है, फिर भी यह झूठ बोलता है। सचमुच यह बडा कृतघ्न है।

गोल्लदेश (गोदावरी के आसपास का प्रदेश) के रीति-रिवाजो का अनेक जगह उल्लेख किया गया है। गोल्ल मे चैत्र महीने मे शीत पडता है, यहॉ आम की फाक करके उन्हें धूप मे सुखाते है जिसे आम्रपान कहते है। कुभीचक्र को इस देश मे असवत्तअ कहा जाता है। कोकण देश का भी यहॉ उल्लेख है जहॉ निरन्तर वर्षा होती रहती है। मनुस्मृति (४ ८५) और महाभारत (१३ १४१ १६) के श्लोक यहॉ उद्धृत है।

सूत्रकृतांगचूर्णी

इस चूर्णि[1] मे नागार्जुनीय वाचना के जगह-जगह पाठातर दिये है। यहॉ अनेक देशो के रीति रिवाज आदि का उल्लेख है। उदाहरण के लिये, सिन्धु देश मे पण्णत्ती का स्वाध्याय करने की मनाई है। गोल्ल देश मे यदि कोई किसी पुरुप की हत्या कर दे तो वह किसी ब्राह्मणघातक के समान ही निन्दनीय समझा जाता है। ताम्रलिप्ति आदि देशो मे डासो की अधिकता

१ रतलाम से सन् १९४१ में प्रकाशित। मुनि पुण्यविजयजी इसे सशोधित करके पुन प्रकाशित कर रहे हैं। इसके कुछ मुद्रित फर्मे उनकी कृपा से मुझे देखने को मिले।

रहती है। मल्लों में रिवाज था कि यदि कोई अनाथ मल्ल मर जाये तो सब मल्ल मिलकर उसका देह-संस्कार करते थे। आर्द्रककुमार के वृत्तान्त में आर्द्रक को म्लेच्छ विषय का रहनेवाला बताया है। आर्यदेशवासी श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार से मित्रता करने के लिये आर्द्रक ने उसके लिये भेंट भेजी थी। बौद्धों के जातकों का यहाँ उल्लेख है। वैशिकतन्त्र का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत है—

एता हसन्ति च रुदन्ति च अर्थहेतोः
विश्वासयंति च परं न च विश्वसंति।
स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं
निष्पीडितालक्तकवत् त्यजंति॥

वीररस की एक गाथा देखिये—

तरितव्वा च पइण्णिया मरियव्वं वा समरे समत्थएणं।
असरिसजणउल्लावया ण हु सहितव्वा कुले पसूएणं॥

गणपालक अथवा गणयुक्ति से राज्यभ्रष्ट होनेवाले को क्षत्रिय कहा गया है। मालूम होता है वैशाली नगरी चूर्णीकार के समय में भुलाई जा चुकी थी, अतएव वैशालिक (वैशाली के रहनेवाले महावीर) का अर्थ ही बदल गया था—

विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा।
विशालं वचनं वास्य, तेन वैशालिको जिनः॥

यहाँ पर दूष्यगणि क्षमाश्रमण के शिष्य भट्टियाचार्य के नामोल्लेखपूर्वक उनके वचन को उद्धृत किया है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिचूर्णी

इस पर अतिलघु चूर्णी है जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

जम्बुद्वीपप्रज्ञप्तिचूर्णी

इस ग्रन्थ की चूर्णी देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रही है।

निशीथविशेषचूर्णी

निशीथ के ऊपर लिखी हुई चूर्णी को विसेसचुण्णि (विशेष चूर्णी)[1] कहा गया है। इसके कर्ता जिनदासगणि महत्तर है। निशीथचूर्णि अभी तक अनुपलब्ध है। इसमे पिंडनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति का उल्लेख मिलता है जिससे पता लगता है कि यह चूर्णी इन दोनो निर्युक्तियो के बाद लिखी गई है। साधुओ के आचार-विचार से सबध रखनेवाले अपवादसबधी अनेक नियमो का यहाँ वर्णन है। सुकुमालिया की कथा पढिये—

इहेव अड्ढभरहे वाराणसीणगरीए वासुदेवस्स जेट्ठभाओ जरकुमारस्स पुत्तो जियसत्तु राया। तस्स दुवे पुत्ता ससओ भसओ य, धूया य सुकुमालिया। असिवेण सव्वम्मि कुलवसे पहीणे तिण्णिवि कुमारगा पव्वतिता। सा य सुकुमालिया जोव्वण पत्ता। अतीव सुकुमाला रूपवती य। जतो भिक्खादिवियारे वच्चइ ततो तरुण जुआणा पिट्ठओ वच्चति। एव सा रूवदोसेण सपच्चवाया जाया।

त णिमित्त तरुणेहि आइण्णो उवस्सगो सेसिगाण रक्खणट्ठा गणिणी गुरूण कहेति। ताहे गुरुणा ते सस—भसगा भणिया सरक्खह एव भगिणि। ते घेत्तु वीसु उवस्सए ठिया। ते य बलव सहस्सजोहिणो। तासेगो भिक्ख हिंडति एगो त पयत्तेण रक्खति। जे तरुणा अहिवडति ते हयविहए काउ घाडेति। एव तेहिं बहुलोगो विराधितो।

भायणुकपाए सुकुमालिया अणसण पव्वज्जति। बहुदिण खीणा सा मोह गता। तेहि णाय कालगय त्ति। ताहे त एगो गेण्हति, बितिओ उपकरण गेण्हति। ततो सा पुरिसफासेण रातो य सीयलवातेण णिज्जती अप्पातिता सचेयणा जाया। तहावि तुण्हिक्का ठिता, तेहि परिट्ठविया, ते गया गुरुसगास। सा वि

---

1 विजय प्रेम सूरीश्वर जी ने वि० स० १९९५ में इसकी कई भागों में साइक्लोस्टाइल प्रति तैयार की थी। अभी हाल में उपाध्याय अमरमुनि और मुनि श्री कन्हैयालाल 'कमल' ने इसे चार भागों में सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प्रकाशित किया है।

आसत्था। इओ य अदूरेण सत्थो वच्चति। दिट्ठा या सत्थवाहेणं, गहिया, संभोतिया रूववती महिला कया। कालेण भातियागमो, दिट्ठा, अब्भुट्ठिया य दिण्णा भिक्खा। तहावि साधवो णिरक्खंता अच्छं, तीए भणियं—किं णिरक्खह ?

ते भणंति—अम्ह भगिणीए सारिक्खा हि, किंतु सा मता, अम्हेहिं चेव परिट्ठविया, अण्णहा ण पत्तियंता। तीए भणियं—पत्तियह, अहं चिय सा। सव्वं कहेति। वयपरिणया य तेहिं दिक्खिया।

—अर्धभरत में वाराणसी नगरी में वासुदेव का बड़ा भाई जराकुमार का पुत्र जितशत्रु राज्य करता था। उसके ससअ और भसअ नामके दो पुत्र और सुकुमालिया नामकी एक कन्या थी। महामारी आदि के कारण समस्त कुल के नष्ट हो जाने पर तीनों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। सुकुमालिया बड़ी होकर युवती हो गई। वह अत्यन्त सुकुमार और रूपवती थी। जब वह भिक्षा के लिये जाती तो बहुत से तरुण उसका पीछा करते। इस प्रकार अपने रूप के कारण वह अपने ही लिये बाधा हो गई।

तरुण उपाश्रय में घुस आते। ऐसी दशा में सुकुमालिया की रक्षा के लिये गणिनी ने गुरु से निवेदन किया। गुरु ने ससअ और भसअ को आदेश दिया कि वे अपनी बहन की रक्षा करें। वे उसे लेकर एक अलग उपाश्रय में रहने लगे, दोनों भाई बड़े बलवान् और सहस्रयोधी थे। उनमें से एक भिक्षा के लिए जाता तो दूसरा सुकुमालिया की रक्षा करता। जो तरुण छेड़खानी करने के लिए वहाँ आते उन्हें वह मार-पीटकर भगा देता। इस प्रकार उन दोनों ने बहुत सों को ठीक किया।

उधर अपने भाइयों पर अनुकंपा कर सुकुमालिया ने अनशन स्वीकार किया, और कुछ ही दिनों में क्षीण हो जाने के कारण वह अचेतन हो गई। भाइयों ने समझा कि वह मर गई है। एक ने उसे उठाया और दूसरे ने उसके उपकरण लिए। इस समय पुरुष के स्पर्श से और रात्रि में शीतल वायु के लगने से उसकी मूर्च्छा टूटी लेकिन फिर भी वह चुपचाप रही। दोनों भाई उसे एक स्थान में रख कर गुरु के पास चले गये। इस

बीच मे वह भी आश्वस्त हो गई। उस समय एक सार्थ वहाँ से गुजर रहा था। सार्थवाह ने सुकुमालिया को देखा और उसे अपनी स्त्री बना ली। कालक्रम से दोनों भाई उसके घर भिक्षा के लिये आये। सुकुमालिया ने उन्हें भिक्षा दी। भिक्षा लेने के बाद दोनों उसकी ओर देखते रहे। उसने पूछा—'आप लोग क्या देख रहे ह ?" उन्होने उत्तर दिया—"तुम हमारी भगिनी जैसी मालूम होती हो, लेकिन वह तो बेचारी मर गई है। हम लोगों ने स्वय उसका अत्यकर्म किया है।" सुकुमालिया ने कहा—'आप विश्वास करें, मै वही हूँ।" तत्पश्चात् उसने सारी कथा सुनाई। ससअ भसअ ने उसे फिर से दीक्षित कर लिया।

एक लौकिक कथा देखिये—

अरण्णमज्झे अगाहजल सर जलयोवसहिय वणसडमडिय। तत्थ य बहूणि जलचरखहचरथलचराणि य सत्ताणि आसिताणि। तत्थ य एग महल्ल हत्थिजूह परिवसति। अण्णता गिम्हकाले त हत्थिजूह पाणिय पाउ ण्हाउत्तिण्ण मज्झण्हदेसकाले सीयलरुक्ख छायासु सुहसुहेण पासुत्त चिट्ठति। तत्थ य अदूरे दो सरडा भडिउ-मारद्धा। वणदेवयाए उ ते दट्ठु सव्वेसि सभाए आघोसिय—

णागा जलवासीया, सुणेह तसथावरा।
सरडा जत्थ भडति, अभावो परियत्तई॥

देवयाए भणिय, मा एते सरडे भडते उवेक्खह, वारेह। तेहिं जलचरथलचरेहि चिंतिय—किम्ह एते सरडा भडत काहिति ? तत्थ य एगो सरडो भडतो भग्गो पेल्लितो सो धाडिज्जतो सुहसुत्तस्स हत्थिस्स बिल ति काउ णासावुड पविट्ठो। बितिओ वि पविट्ठो। ते सिरकवाले जुद्ध लग्गा। हत्थी विउलीभूतो महतीए असमाहीए वेयणट्टो य त वणसड चूरिय, बहवे तत्थ वासिणो सत्ता घातिता। जल च आडोहतेण जलचरा घातिता। तलागपाली भेदिता। तलाग विणट्ठ। जलचरा सव्वे विणट्ठा।

—किसी जगल मे मेघ के समान सुशोभित वनखड से मडित अगाध जलवाला एक तालाब था। वहाँ बहुत से जलचर,

नभचर और थलचर जीव रहा करते थे। हाथियों का एक बड़ा झुंड भी वहां रहता था। एक बार की बात है, ग्रीष्म-काल में हाथियों का वह झुंड तालाब में पानी पीकर और स्नान करके मध्याह्न के समय शीतल वृक्ष की छाया में आराम से सो गया। वहाँ पास ही में दो गिरगिट लड़ रहे थे। यह देखकर वनदेवता ने सभा में घोषणा की—

हे जल में रहनेवाले नाग और त्रस-स्थावरो! सुनो। जहाँ दो गिरगिट लड़ते हैं वहाँ अवश्य हानि होती है।

देवता ने कहा, इन लड़ते हुओं की उपेक्षा मत करो, लड़ने से इन्हें रोको। लेकिन जलचर और थलचरों ने सोचा, इनकी लड़ाई से हमारा क्या बिगड़ सकता है। इतने में एक गिरगिट लड़ते-लड़ते भाग कर आराम से सोए हुए एक हाथी की सूंड में जा घुसा। दूसरा भी उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँचा। बस हाथी के कपाल में युद्ध मच गया। इससे हाथी बड़ा व्याकुल हुआ और असमाधि के कारण वेदना के वशीभूत हो उसने उस वनखंड को चूर-चूर कर दिया। इससे वहाँ रहनेवाले बहुत से प्राणियों का घात हुआ। पानी में संघर्ष होने से जलचर जीव नष्ट हो गये। तालाब की पाल टूट गई। तालाब नष्ट हो गया और पानी में रहनेवाले सब जीव मर गये।

कहीं सरस संवाद भी निशीथचूर्णी में दिखाई पड़ जाते हैं। साधु-साध्वी का संवाद पढ़िये—

तेण पुच्छिता—किं ण गतासि भिक्खाए ?

सा भणति—अज्ज ! खमणं मे।

सो भणति—किं निमित्तं ?

सा भणति—मोहतिगिच्छं करेमि।

ताए वि सो पुच्छिओ भणति—अहं पि मोहतिगिच्छं करेमि।

कहं बोधि त्ति लद्धा ? परोप्परं पुच्छंति।

तेण पुच्छिता—कहं सि पव्वइया ?

सा भणति—भत्तारमरणेण तस्स वा अप्पियत्त—

त्ति तेण पव्वतिता ।

ताए सो पुच्छितो भणति—अह पि एमेव त्ति ।

—साधु (किसी साध्वी मे पूछता है)—आज तुम भिक्षा के लिये नही गई ?

साध्वी—आर्य ! मेरा उपवास है ।

"क्यो ?"

"मोह का इलाज कर रही हू, लेकिन तुम्हारा क्या हाल है ?"

"मै भी उसी का इलाज कर रहा हू ।"

फिर वे परस्पर बोधि की प्राप्ति के सबध मे एक दूसरे से प्रश्न करने लगे ।

साधु—"तुमने क्यो प्रव्रज्या ग्रहण की ?"

"पति के मर जाने से ।"

"मेरा भी यही हाल है (मैने पत्नी के मर जाने पर प्रव्रज्या ली है) ।"

आगे देखिये—

सो त णिद्धाए दिट्ठीए जोएति । ताए भण्णति—कि पेच्छसि ? सो भणाति—सारिच्छ, तुम मम भारियाते हसियजपिएण लडहत्तणेण य सव्वहा सारिच्छा । तुज्झ दसण मोह मे णेति, मोह करेति ।

सा भणति—जहाऽह तुज्झे मोह करेमि, तहा मज्झवि तहेव तुम करेसि ।

"केवल सा मम उच्छगे मया । जति सा परोक्खातो मरति देवाण वि ण पत्तियन्तो । जहा तुम सा ण भवसि त्ति ।"

—साधु उसे स्नेहभरी दृष्टि से देखता है । यह देखकर साध्वी ने प्रश्न किया—"क्या देख रहे हो ?"

"दोनों की तुलना कर रहा हू । हॅसने, बोलने और सुन्दरता मे तुम मेरी भार्या से बिलकुल मिलती-जुलती हो । तुम्हारा दर्शन मेरे मन मे मोह उत्पन्न करता है ।"

"जैसे तुम्हारे मन मे मेरा दर्शन मोह उत्पन्न करता है, वैसे ही तुम्हारा मेरे मन में करता है।"

"वह मेरी गोदी में सिर रख कर मर गई। यदि वह मेरी अनुपस्थिति मे मरती तो कदाचित् देवताओ को भी उसके मरने का विश्वास न होता। तुम वह कैसे हो सकती हो?"

कठिन परिस्थितियो मे जैन श्रमण अपने सघ की किस प्रकार रक्षा करते थे, इसे समझाने के लिये कोकण देश के एक साधु का आख्यान दिया है। एक बार, कोई आचार्य अपने शिष्य-समुदाय के साथ विहार करते हुए सध्या समय कोकण की अटवी के पास पहुँचे। उस अटवी मे सिंह आदि अनेक जगली जानवर रहते थे। आचार्य ने अपने सघ की रक्षा के लिए कोंकण के एक साधु को रात्रि के समय पहरा देने के लिये नियुक्त कर दिया, बाकी सब साधु आराम से सो गये। प्रात काल पता लगा कि पहरा देनेवाले साधु ने तीन सिंहों को मार डाला है। आचार्य ने प्रायश्चित्त देकर साधु की शुद्धि कर ली। दूसरी जगह राजभय से आचार्य द्वारा अपने राजपुत्र साधु-शिष्य को इमली के बीज उसके मुँह पर मल कर सयतियों के उपाश्रय मे छिपा देने का उल्लेख है।

यहाँ राजा सम्प्रति के राज्यशासन को चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार (२६८-२७३ ई० पू०) और अशोक (२७२-२३२ ई० पू०) तीनो की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा है। इसलिये मौर्य वश को यव के आकार का बताया है। जैसे यव दोनों ओर नीचा और मध्य मे उठा हुआ होता है, उसी प्रकार सम्प्रति को मौर्यवश का मध्य-भाग कहा गया है। राजा सम्प्रति ने अनेक देशों में अपने राजकर्मचारी भेजकर २५॥ देशों तथा आंध्र, द्रविड, महाराष्ट्र और कुडुक्क (कुर्ग) आदि प्रत्यत देशों को जैन साधुओं के विहार योग्य बनवाया था। कालकाचार्य की कथा विशेष निशीथ-चूर्णी मे विस्तार से कही गई है। उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल

ने जब कालकाचार्य की भगिनी को जबर्दस्ती उठाकर अपने अन्त पुर मे रख लिया तो कालकाचार्य बहुत क्षुब्ध हुए। उन्होंने राजा से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये वे पारसकूल (ईरान) गये[1] और वहाँ के शाहो को हिन्दुस्तान (हिंदुगदेस) लिवा लाये। आगे चल कर शक वश की उत्पत्ति हुई। कालक के अनुरोध पर शाहों ने राजा गर्दभिल्ल पर चढाई कर उसके वश का समूल नाश कर डाला। तत्पश्चात् कालक ने अपनी भगिनी को पुन सयम मे दीक्षित किया। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कथा यहाँ विरतार से दी है। इस प्रसङ्ग पर पुष्कर तीर्थ (आधुनिक पुष्कर, अजमेर के पास) की उत्पत्ति बताई गई है।

साधुओं के आचार विचार के वर्णन प्रसग मे यहाँ अनेक देशों मे प्रचलित रीति रिवाजो का उल्लेख है। उदाहरण के लिये, लाटदेश मे मामा की लडकी[2] से विवाह किया जा सकता था। मालव और सिधु देश के लोग कठोरभापी तथा महाराष्ट्र के लोग वाचाल माने जाते थे। महाराष्ट्र के जैन भिक्षु आवश्यकता पडने पर अपने लिंग मे अगूठी (वेटक) पहनते थे। लाट देश मे जिसे कच्छ कहते थे, महाराष्ट्र मे उसे भोयडा कहा जाता था। महाराष्ट्र की कन्याये विवाह होने के पश्चात् गर्भवती होने तक इसे पहनती थीं। महाराष्ट्र मे स्त्री को माउग्गाम कहा जाता था।

यहाँ हसतेल बनाने और फलों को पकाने की विधियाँ बताई गई है। गगा, प्रभास[3], प्रयाग, सिरिमाल आदि को कुतीर्थ, शाक्यमत, ईश्वरमत आदि को कुशास्त्र, मल्लगण, सारस्वतगण

---

१ इस सम्बन्ध में देखिये डॉक्टर उमाकान्त शाह का 'सुवर्णभूमि में कालकाचार्य' (जैन सस्कृतिसशोधन मण्डल, बनारस, सन् १९५६)।

२ जमालि का विवाह उसके मामा महावीर की कन्या प्रियदर्शना से हुआ था।

३ स्थानाग (सूत्र १४२) में मगध, वरदाम और प्रभास की

आदि को कुधर्म, गोव्रत, दिशाप्रोक्षित, पंचाग्नि तप, पञ्चगव्याशन आदि को कुव्रत, तथा भूमिदान, गोदान, अश्वदान, हस्तिदान, सुवर्णदान आदि को कुदान कहा गया है। चर्मकार, नाई (ण्हावित)[1], और रजक आदि को शिल्पजुंगित (शिल्प में हीन) की कोटि मे गिनाया है। तत्पश्चात् विविध प्रकार के वस्त्रो, मालाओं, आभूषणो, वाद्यो, शालाओं, आगारों, उत्सवों, साधु सन्यासियों, सिद्धपुत्र, मुडी आदि की परिभाषायें यहाँ दी हैं। (सिद्धपुत्र भार्या सहित भी रहते है और भार्यारहित भी। वे शुक्ल वस्त्र पहनते है। उस्तरे से सिर मुडाये रहते हे, शिखा रखते हैं, कभी नहीं भी रखते, दण्ड और पात्र वे धारण नही करते।) निर्ग्रंथ, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीवक इन पाँचो की श्रमणों मे गणना की गई है। श्वानो के सम्बन्ध मे बताया है कि कैलाश पर्वत (मेरु) पर रहनेवाले देव यक्षरूप मे (श्वान रूप मे) इस मर्त्यलोक मे रहते है। शक, यवन, मालव, तथा आन्ध्र दमिल का यहाँ उल्लेख है।

चूर्णीकार ने भाष्य की अनेक गाथाओं को भद्रबाहुकृत और अनेक को सिद्धसेनकृत बताया है। छेदसूत्रो की भांति दृष्टिवाद को उत्तमश्रुत बताते हुए कहा है कि द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, धर्मानुयोग और गणितानुसयोग का वर्णन होने से यह सूत्र सर्वोत्तम है। भाष्यकार द्वारा उल्लिखित कप्प और पकप्प पर चूर्णी लिखते हुए चूर्णीकार कप्प मे दसा, कप्प और व्यवहार, पकप्प मे णिसीह और तु शब्द से महाकप्प और महानिसीह को लेते है। विधिसूत्र मे आवश्यक के अन्तर्गत सामायिक निर्युक्ति, तथा जोणिपाहुड का उल्लेख है। परपरागत अनुश्रुति के अनुसार मत्रविद्या के इस ग्रन्थ की सहायता से सिद्धसेन ने अश्व बनाकर दिखाये थे। पादलिप्त के कालण्णाण

गणना तीन तीर्थों में की गई है। आवश्यकचूर्णि (२, पृ० १९७) में भी इन्हें सुतीर्थों में ही गिनाया गया है।

१ मराठी में न्हावी।

नामक ग्रथ[1] का उल्लेख यहाँ मिलता है। आख्यायिकाओ मे णरवाहणदतकथा, तरगवती, मलयवती, मगधसेना और आख्यानो मे धूर्ताख्यान, छलित काव्यो मे सेतु, तथा वसुदेवचरिय और चेटक्कथा आदि का उल्लेख है।

दशाश्रुतस्कंधचूर्णी

दशाश्रुतस्कध की निर्युक्ति की भाति इसकी चूणि भी लघु है। यहाँ भी अनेक श्लोक उद्धृत किये गये है। दशा, कल्प और व्यवहार को प्रत्याख्यान नामक पूर्व मे से उद्धृत बताया है। दृष्टिवाद का असमाधिस्थान नामक प्राभृत से भद्रबाहु ने उद्धार किया। आठवे कर्मप्रवादपूर्व मे आठ महानिमित्तों का विवेचन है। प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और आचार्य कालक की कथा यहाँ भी उल्लिखित है। सिद्धसेन का उल्लेख यहाँ मिलता है। गोशाल को भारियगोसाल कहा है, अर्थात् जो गुरु की अवहेलना करता है और उसके कथन को नही मानता। अगुष्ठ और प्रदेशिनी (तर्जनी) उगली मे जितने चावल एक बार आ सके उतने ही चावलों को भक्षण करने वाले आदि अनेक तापसो का उल्लेख किया है।

उत्तराध्ययनचूर्णी

उत्तराध्ययन चूर्णी[2] के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर है। नागार्जुनीय पाठ का यहाँ भी अनेक स्थलो पर उल्लेख है। बहुत से शब्दों की बडी विचित्र व्युत्पत्तियाँ दी हुई है जिससे ध्वनित होता है कि नई व्युत्पत्तियाँ गढी जा रही थीं। कासव (काश्यप गोत्र) की व्युत्पत्ति—काश—उच्छु तस्य विकार कास्य रस स यस्य पान काश्यप—उसभसामी तस्स जोगा जे जाता ते कासवा वद्धमाणो सामी कासवा।

---

१ मुनि पुण्यविजयजी के अनुसार ज्योतिष्करड का ही दूसरा नाम कालण्णाण है।

२ सन् १९३३ में रतलाम से प्रकाशित।

माता, पिता आदि शब्दो की व्युत्पत्तियाँ देखिये—

मानयति मन्यते वाऽसौ माता, मिमीने मिनोति वा पुत्र धर्मानिति माता। पाति बिभर्ति वा पुत्रमिति पिता। स्नेहाधिकत्वात् माता पूर्व, स्नेहेति श्रवन्ति वा तामिति स्नुषा। विभर्ति भयते वासौ भार्या। पुनातीति पुत्र। गच्छतीति गौ। अश्नुते अश्नाति वा अध्वानमित्यश्व। मद्यते मन्यते वा तमलकारमिति मणि। पश्यतीति पशु।

प्राकृत के साथ सस्कृत का भी सम्मिश्रण हुआ है—

एगो पसुपालो प्रतिदिन प्रतिदिन मध्याह्नगते रवौ अजासु महान्यग्रोधतरुसमाश्रितासु तत्थुत्ताणओ निवन्नो वे णुविदलेण अजोद्गीर्णकोलास्थिभि तस्य वटस्य छिद्रीकुर्वन् तिष्ठति। एव स वटपादप प्रायस छिद्रपत्रीकृत। अण्णदा य तत्थेगो राइयपुत्तो दाइयधाडितो त छाय समस्सितो। पेच्छते य तस्स वडपादवस्स सव्वाणि पत्ताणि छिदिताणि। तेण सो पसुपालतो पुच्छितो—केणेताणि पत्ताणि छिद्दीकताणि? तेण भण्णति—मया एतानि क्रीडापूर्वं छिद्रितानि, तेण सो बहुणा दव्वजातेण विलोभेउ भण्णति—सक्केसि जस्स अह भणामि तस्स अच्छीणि छिद्देउ? तेण भण्णति—वुड्ढब्भासत्थो होउ तो सक्केमि। तेण णगर णीतो। रायमग्गसनिकिट्ठे घरे ठवितो। तस्स य रायपुत्तस्स राया स तेण मग्गेण अस्सवाहणियाए णिज्जति। तेण भण्णति—एयस्स अच्छीणि फोडेहि। तेण गोलियधणुएण तस्सऽहिगच्छमाणस्स दोवि अच्छीणि फोडिताणि। पच्छा सो रायपुत्तो (राया) जातो।

—प्रतिदिन मध्याह्न के समय, जब बकरियाँ एक महान् वट के वृक्ष के पत्ते खाने लगतीं, तो बास की लकडी हाथ मे लेकर ऊपर मुँह किये बैठा हुआ कोई ग्वाला बकरियों द्वारा उगली हुई बेरों की गुठलियो से उस वृक्ष के पत्तों मे छेद करता रहता। इस तरह गुठलियाँ मार मार कर उसने सारे वृक्ष के पत्तों को छलनी कर दिया। एक दिन राजा द्वारा निष्कासित कोई राज-

पुत्र वहाँ आया और वृक्ष की छाया मे बैठ गया। वृक्ष के पत्तों को छिदे हुए देखकर उसने पूछा कि इन पत्तो मे किसने छेद किये है? ग्वाले ने उत्तर दिया—"मैने।" राजपुत्र ने उसे बहुत से धन का लोभ दिलाकर पूछा—"क्या तुम जिसकी मै कहूँ उसकी आँखे फोड सकते हो?" ग्वाले ने उत्तर दिया कि अभ्यास से सब सम्भव है। तत्पश्चात् राजपुत्र ने उसे राजमार्ग के पास एक घर मे बैठा दिया। राजा उस मार्ग से रोज अश्वक्रीडा के लिये जाता था। ग्वाले ने कमान मे गोलियाँ लगाकर राजा की आँखो का निशाना लगाया जिससे उसकी आँखे फूट गई। राजपुत्र को राजा का पद मिल गया।

आवश्यकचूर्णी

आवश्यकचूर्णी के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते है।[1] सूत्रकृताग आदि चूर्णियो की भाँति इस चूर्णी मे केवल शब्दार्थ का ही प्रतिपादन नही है, बल्कि भाषा और विषय की दृष्टि से निशीथचूर्णी की तरह यह एक स्वतन्त्र रचना मालूम होती है। यहाँ ऋषभदेव के जन्ममहोत्सव से लेकर उनकी निर्वाण प्राप्ति तक की घटनाओ का विस्तार से वर्णन है। जैन परम्परा के अनुसार उन्होंने ही सर्वप्रथम अग्नि का उत्पादन करना सिखाया और शिल्पो (कुभकार, चित्रकार, वस्त्रकार, कर्मकार और काश्यप ये पाँच मुख्य शिल्पी बताये गये है) की शिक्षा दी। उन्होंने अपनी कन्या ब्राह्मी को दाहिने हाथ से लिखना और सुदरी को बाये हाथ से गणित करना सिखाया, भरत को चित्रविद्या की शिक्षा दी तथा दण्डनीति प्रचलित की। कौटिल्य अर्थशास्त्र की उत्पत्ति भी इसी समय से बताई गई है। ऋषभ के निर्वाण के पश्चात् अष्टापद (कैलाश) पर्वत पर स्तूपों का

---

1 रतलाम से सन् १९२८ में दो भागों में प्रकाशित। प्रोफेसर अर्नेस्ट लॉयमन ने आवश्यकचूर्णी का समय ईसवी सन् ६००–६५० स्वीकार किया है।

निर्माण हुआ। भरत की दिग्विजय और उनके राज्याभिषेक का यहाँ विस्तार से वर्णन है। उन्होंने आर्यवेदों की रचना की जिनमें तीर्थंकरों की स्तुति, यति श्रावक धर्म और शांतिकर्म आदि का उपदेश था (सुलसा और याज्ञवल्क्य आदि द्वारा रचित वेदों को यहाँ अनार्य कहा है)। ब्राह्मणों (माहण) की उत्पत्ति बताई गई है।

ऋषभदेव की भाँति महावीर के जन्म, विवाह, दीक्षा और उपसर्गों का तथा दीक्षा के पश्चात् महावीर के देश देशान्तर में विहार का यहाँ ब्योरेवार विस्तृत वर्णन है[1], जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। महावीर के भ्रमणकाल में उनकी अनेक पार्श्वापत्यों से भेंट हुई। पार्श्वापत्य अष्टांगमहानिमित्त के पंडित होते थे। मुनिचन्द्र नामक पार्श्वापत्य सारंभ और सापरिग्रह थे, वे किसी कुम्हार की दूकान पर रहा करते थे। नंदिषेण स्थविर पार्श्वनाथ के दूसरे अनुयायी थे। पार्श्वनाथ की शिष्याओं का उल्लेख भी यहाँ मिलता है। चित्रफलक दिखाकर अपनी आजीविका चलानेवाला मंखलिपुत्र गोशाल नालंदा में आकर महावीर से मिला। उसके बाद दोनों साथ साथ विहार करने लगे। लाढ देश में स्थित वज्जभूमि और सुब्भभूमि में उन्होंने बहुत उपसर्ग सहे। वासुदेव आयतन, बलदेव प्रतिमा, स्कंदप्रतिमा, मल्लि की प्रतिमा तथा ढोढ सिवा आदि का उल्लेख यहाँ किया गया है। वैशाली से गंडक पार कर महावीर वाणियग्राम गये थे।

आगे चलकर वज्रस्वामी का वृत्तांत, दशपुर की उत्पत्ति, आर्यरक्षित, गोष्ठामहिल, जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढाचार्य, कौंडिन्य, त्रैराशिक और बोटिक आदि के कथा वृत्तांत का वर्णन है। वज्रस्वामी बाल्यावस्था में ही मुनिधर्म में दीक्षित हो गये थे। वे एक बड़े समर्थ और शक्तिशाली आचार्य थे। पाटलिपुत्र से उन्होंने उत्तरापथ में विहार किया और वहाँ दुर्भिक्ष होने के कारण वहाँ से पुरिम नगरी चले गये। आकाशगता विद्या

---

१ देखिये, जगदीशचन्द्र जैन भारत के प्राचीन जैन तीर्थ।

मे वे पारगत थे। एक बार जब वे दक्षिणापथ मे विचरण कर रहे थे, तो वहाँ दुर्भिक्ष पडा और अपनी विद्या के बल से पिड लाकर वे भिक्षुओ को खिलाने लगे। आर्यरक्षित को उन्होने दृष्टिवाद का अध्ययन कराया। उनके एक शिष्य का नाम वज्रसेन था जो विहार करते हुए सोपारय नगर (सोपारा, जिला ठाणा, बम्बई) मे आये। आर्यरक्षित ने मथुरा मे विहार किया था। दशार्णभद्र नगर का वर्णन यहाँ किया गया है।

तत्पश्चात् चेलना का हरण, कूणिक की उत्पत्ति, सेचनक हाथी की उत्पत्ति, और कूणिक का युद्ध, महेश्वर की उत्पत्ति आदि प्रसगो का वर्णन है। वैशाली को पराजित करने के लिए कूणिक को मागविया नाम की गणिका की सहायता लेनी पडी। चेटक पुष्करिणी मे प्रवेश करके बैठ गया। उसने कूणिक से कहा, जब तक मै पुष्करिणी से न निकलू, नगरी का ध्वस न करना। बाद मे महेश्वर ने वैशालीवासियों को नेपाल ले जाकर उनकी रक्षा की। यहाँ श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार की बुद्धिमत्ता की अनेक कथाये वर्णित है जो पालि साहित्य के महोसध पडित की कथाओं से मिलती है, और आगे चल कर मुगलकाल मे इन्ही कथाओं मे से अनेक कथाये बीरबल के नाम से प्रचलित हुई। कूणिक के पुत्र उदायी ने पाटलिपुत्र बसाया।[1] उसके कोई पुत्र नही था, इसलिए उसका राज्य एक नापितदास को मिला। वह नन्द नाम का राजा कहलाया। शकटाल और वररुचि का वृत्तात तथा स्थूलभद्र की दीक्षा आदि का यहाँ विस्तार से वर्णन किया गया है।

सयत की परिष्ठापना-विधि का विस्तार से प्रतिपादन है। इस सम्बन्ध की गाथायें बृहत्कल्पभाष्य और शिवकोटि आचार्य की भगवतीआराधना की गाथाओ से मिलती-जुलती है। लाट

---

१ पाटलिपुत्र की उत्पत्ति के लिए देखिए पेञ्जर द्वारा सपादित सोमदेव का कथासरित्सागर, जिल्द १, अध्याय ३, पृष्ठ १८ इत्यादि, महावग्ग पृष्ठ २२६–३०, उदान की अट्ठकथा, पृष्ठ ४०७ इत्यादि।

देश मे मामा की लडकी से, गोल्ल देश मे भगिनी से तथा विप्र लोगो मे विमाता (माता की सौत) से विवाह करने का रिवाज प्रचलित था।

आवश्यकचूर्णी की कुछ लौकिक कथाये यहाँ दी जाती है—

(१) किसी ब्राह्मणी के तीन कन्याये थीं। वह सोचा करती कि विवाह करके ये कैसे सुखी बनेगी। अपनी कन्याओ को उसने सिखा दिया कि विवाह के पश्चात् प्रथम दर्शन मे तुम पादप्रहार से पति का स्वागत करना। पहले सबसे जेठी कन्या ने अपनी माँ के आदेश का पालन किया। लात खाकर उसका पति अपनी प्रिया का पैर दबाते हुए कहने लगा—"प्रिये! कही तुम्हारे पैर मे चोट तो नहीं लग गई"। उसने अपनी माँ से यह बात कही। माता ने कहा—"जा, तू अपनी इच्छापूर्वक जीवन व्यतीत कर, तेरा पति तेरा कुछ नही कर सकता।" मझली लडकी ने भी ऐसा ही किया। उसके पति ने लात खाकर पहले तो अपनी पत्नी को भला बुरा कहा, लेकिन वह शीघ्र ही शात हो गया। लडकी की माँ ने कहा कि बेटी! तुम भी आराम से रहोगी। अब तीसरी लडकी की बारी आई। उसके पति ने लात खाकर उसे पीटना शुरू कर दिया और कहा कि क्या तुम नीच कुल मे पैदा हुई हो जो अपने पति पर प्रहार करती हो। यह कहकर पति को शात किया गया कि अपने कुलधर्म के अनुसार ही लडकी ने ऐसा किया है, इसलिए इसमे बुरा मानने की बात नही। यह सुनकर लड्की की माता ने कहा कि तुम देवता के समान अपने पति की पूजा करना और उसका साथ कभी मत छोडना।

(२) एक बार एक पर्वत और महामेघ मे झगडा हो गया। मेघ ने पर्वत से कहा—"मै तुझे केवल एक धार मे बहा सकता हूँ।"

पर्वत—यदि तू मुझे तिलभर भी हिला दे तो मेरा नाम पर्वत नही।

यह सुनकर मेघ को बहुत क्रोध आया। वह सात रात तक मूसलाधार पानी बरसाता रहा। उसके बाद उसने सोचा कि अब तो पर्वत के होश जरूर ठिकाने आ गये होंगे। लेकिन उधर पहाड उज्ज्वल होकर और चमक उठा। यह देखकर महामेघ लज्जित होकर वहाँ से चला गया।

(३) किसी नगर मे कोई वणिक् रहता था। उसने एक बार शर्त लगाई कि जो माघ महीने की रात मे पानी के अन्दर बैठा रहे उसे मैं एक हजार दीनारे दूगा। एक दरिद्र बनिया इसके लिये तैयार हो गया और वह रात भर पानी मे बैठा रहा। वणिक् ने पूछा—"तुम रात भर इतनी ठढ मे कैसे बैठे रहे, मरे नहीं ?" उसने उत्तर दिया—"नगर मे एक दीपक जल रहा था, उसे देखते हुए मै पानी मे बैठा रहा।" वणिक् ने कहा—"यदि ऐसी बात है तो हजार दीनारे मैं न दूगा, क्योंकि तुम दीपक के प्रभाव से पानी मे बैठे रहे।" बनिया निराश होकर अपने घर चला आया। उसने घर पहुँच कर सब हाल अपनी लडकी को सुनाया। लडकी ने कहा—"पिता जी ! आप चिन्ता न करे। आप उस वणिक् को उसकी जाति बिरादरी के लोगों के साथ भोजन के लिये निमन्त्रित करे। भोजन के समय पानी के लोटे को जरा दूर रख कर छोड दे, और भोजन करने के पश्चात् जब वह पानी मागे तो उससे कहें कि देखो यह रहा पानी, इसे देखकर अपनी प्यास बुझा लो। बनिये ने ऐसा ही किया। इस पर वणिक् बहुत झेपा और उसे एक हजार दीनरे देनी पडी।

(४) किसी सिद्धपुत्र के दो शिष्य थे। एक बार वे नदी के तट पर गये। वहाँ उन्हें एक बुढिया मिली। वह पानी का घडा लिये जा रही थी। बुढिया का लडका परदेश गया हुआ था। उसने इन लोगों को पण्डित समझ कर अपने लडके के वापिस लौटने के बारे मे प्रश्न किया। इतने मे बुढिया का

घडा नीचे गिर कर फूट गया। यह देखकर उनमे से एक ने निम्नलिखित गाथा पढी—

तज्जातेण य तज्जात, तण्णिभेण य तण्णिभ।
तारूवेण य तारूव सरिस सरिसेण णिद्दिसे॥

—जो जिससे उत्पन्न हुआ था, उसी मे मिल गया, वह जिसके समान था उसी के समान हो गया और वह जिसके रूप का था उसी के रूप मे पहुँच गया, सदृश सदृश के साथ मिल गया।

गाथा पढकर उसने उत्तर दिया—मा, तुम्हारा पुत्र मर गया है।

दूसरे शिष्य ने कहा—नही मा, तुम्हारा पुत्र वापिस आ गया है।

बुढिया ने घर आकर देखा तो सचमुच उसका पुत्र घर आया हुआ था। वह झट से एक जोडा और रुपये लेकर आइ और सगुन विचारनेवाले शिष्य को उसने भेट दी।

दोनो शिष्य जब लौटकर आये तो पहले ने गुरु जी से कहा—गुरु जी, आप मुझे ठीक नहीं पढाते। गुरु के पूछने पर उसने सारी बात कह सुनाई। गुरु ने दूसरे शिष्य से प्रश्न किया कि तुम्हें कैसे मालूम हो गया कि बुढिया का लडका घर आ गया है। शिष्य ने उत्तर दिया—"गुरुजी! फूटते हुए घडे को देखकर मैंने सोचा कि जैसे मिट्टी का घडा फूटकर मिट्टी मे मिल गया है, वैसे ही बुढिया का अपने पुत्र के साथ मिलाप होना चाहिये।"

यहाँ महावीर के केवलज्ञान होने के १३ वर्ष पश्चात् श्रावस्ती मे भयङ्कर बाढ आने का उल्लेख मिलता है।[१] भास के प्रतिज्ञा

१ पृ० ६०१, आवश्यक हरिभद्रटीका, पृ० ४६५, यहाँ आवश्यकचूर्णी की 'वरिस देव' आदि गाथा को मिलाइये मच्छजातक (७५) की निम्न गाथा के साथ—

यौगधरायण के एक श्लोक (३६) का उद्धरण भी यहाँ दिया गया है।[1]

दशवैकालिकचूर्णी

दशवैकालिकचूर्णी के कर्त्ता जिनदासगणि महत्तर माने जाते है।[2] लेकिन अभी हाल मे वज्रस्वामी की शाखा मे होनेवाले स्थविर अगस्त्यसिंह विरचित दशवैकालिकचूर्णी का पता लगा है जो जैसलमेर के भडार मे मिली है। अगस्त्यसिंह का समय विक्रम की तीसरी शताब्दी माना गया है, और सबसे महत्त्व की बात यह है कि यह चूर्णी वल्लभी वाचना के लगभग २००–३०० वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी।[3] दशवैकालिक पर जिनदासगणि विरचित कही जानेवाली चूर्णी को हरिभद्रसूरि ने वृद्धविवरण कहकर उल्लिखित किया है। अन्य भी किसी प्राचीन वृत्ति का उल्लेख यहाँ मिलता है। दशवैकालिक की कितनी ही गाथायें मूलसूत्र की गाथाये न मानी जाकर इस प्राचीन वृत्ति की गाथाये मानी जाती रही हैं, इस बात का उल्लेख चूर्णीकार अगस्त्यसिंह ने जगह जगह किया है।[4]

अभित्थनय पज्जुन्न ! विधि काकस्स नासय।
काक सोकाय रन्धेहि मञ्च सोका पमोचय ॥

दोनों मे एक ही परम्परा सुरक्षित है।

१ यहाँ महावीर की विहार चर्या में जो कबल-शबल का उल्लेख है उसकी तुलना ब्राह्मणों की हरिवंशपुराण के कबल और अश्वतर नागों के साथ की जा सकती है।

२ रतलाम से सन् १९३३ में प्रकाशित।

३ देखिये मुनि पुण्यविजयजी द्वारा बृहत्कल्पसूत्र, भाग ६ का आमुख।

४ यह चूर्णी मुनि पुण्यविजयजी प्रकाशित कर रहे हैं। इसके कुछ मुद्रित फर्मे उनकी कृपा से मुझे देखने को मिले।

जिनदासगणि की प्रस्तुत चूर्णी मे आवश्यकचूर्णी का उल्लेख मिलता है इससे पता लगता है कि आवश्यकचूर्णी के पश्चात् इसकी रचना हुई। यहाँ भी शब्दो की बडी विचित्र व्युत्पत्तिया दी गई है। द्रुम आदि शब्दों की व्युत्पत्ति देखिये—

दुमा नाम भूमीय आगासे य दोसु माया दुमा। पादेहिं पिबतीति पादपा, पाएसु वा पालीऽजतीति पादपा, पादा मूल भण्णति। रु त्ति पुहवी ख त्ति आगास तेसु दोसु वि जहा ठिया तेण रुक्खा, अहवा रु पुढवी त खायतीति रुक्खो।

प्रवचन का उड्डाह होने पर किस प्रकार प्रवचन की रक्षा करे, इसे समझाने के लिये हिंगुसिव नामक वानमन्तर की कथा दी है—

एगम्मि नगरे एगो मालागारो सण्णाइओ पुप्फे घेत्तूण वीहीए एइ। सो अतीव वच्चइओ। ताहे सो सिग्ध वोसिरिऊण सा पुप्फचितिया तस्सेव उवरि पल्लत्थिया। ताहे लोगो पुच्छइ—किमेय जेणेत्थ पुप्फाणि छड्डेसि ? ताहे सो भणइ—अह ओलो डिओ। एत्थ हिंगुसिवो णाम।

—किसी नगर मे कोई माली पुष्प तोड कर रास्ते मे जा रहा था। इतने मे उसे टट्टी की हाजत हुई। उसने जल्दी जल्दी टट्टी फिर कर उसे पुष्पो से ढक दिया। लोगों ने पूछा—यहाँ ये पुष्प क्यों डाल रक्खे है ? माली ने उत्तर दिया—मुझे प्रेतबाधा हो गई है, यह हिंगुसिव नामका व्यन्तर है।

इसी प्रकार यदि कभी प्रमादवश प्रवचन की हॅसी हो जाय तो उसकी रक्षा करे।

एक तच्चन्निक (बोद्ध) साधु का चित्रण देखिये—

तच्चण्णियो मच्छे मारेतो रण्णा दिट्ठो। ताहे रण्णा भणिओ—कि मच्छे मारेसि ? तच्चण्णिओ भणइ—अवीलकक[1] न सिक्केमि पातु।

---

1 विलक = व्यञ्जन।

'अरे, तुम मज्ज पियसि ?"

भणइ—महिलाए अत्थिओ न लहामि ठाउ।

"महिलावि ते ?"

भणइ—जायपुत्तभड कह छड्डेमि ?

"पुत्तावि ते ?"

भणइ—किं खु खत्ताइ खणामि ?"

"खत्तखाणओवि ते ?"

'अण्ण किं खोडिपुत्ताण कम्म ?'

"खोडिपुत्ताऽवि ते ?"

"किहइ कुलपुत्तओ बुद्धसासणे पव्वयइ[1] ?"

—किसी राजा ने एक तच्चन्निक (तत्क्षणिकवादी बौद्ध साधु) को मछली मारते हुए देखा। उसने प्रश्न किया—

"क्या तुम मछली मारते हो ?"

"बिना उसके पी नही सकता।"

"अरे ! क्या तुम मद्यपान भी करते हो ?"

"क्या करू, अपनी महिला के कहने पर करना पडता है।"

---

१ तुलना कीजिये—

कन्थाऽचार्यघना ते ? ननु शफरवधे जालमश्नासि मत्स्यान् ?
ते मे मद्योपदशान् पिबसि ? ननु युतो वेयश्या, यासि वेश्याम् ?
कृत्वाऽरीण गलेऽङ्घ्रि, क्व नु तव रिपवो ? येषु सधि छिनद्मि ?
चौरस्त्व ? द्यूतहेतो कितव इति कथ ? येन दासीसुतोऽस्मि ॥

दशवैकालिक, हरिभद्रवृत्ति, पृ० १०८।

तथा—

भिक्षो ! मासनिषेवण प्रकुरुषे ? किं तेन मद्य विना
किं ते मद्यमपि प्रिय ? प्रियमहो वारागनाभि सह।
वेश्या द्रव्यरुचि कुतस्तव धनम् ? द्यूतेन चौर्येण वा
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतो ? नष्टस्य काऽन्या गति ॥

—धनजय, दशरूपक, ४, पृ० २७८, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

"क्या तुम महिला भी रखते हो ?"

"अपने पुत्रो को कैसे अकेला छोड दूँ।"

"तो तुम्हारे पुत्र भी है ?"

"मै तो सेंध भी लगाता हू।"

"अरे, सेध भी लगाते हो ?"

"दासीपुत्र फिर क्या करेगे ?"

"अरे तुम दासीपुत्र हो ?"

"नही तो कुलपुत्र बुद्ध शासन मे कहॉ से प्रव्रज्या ग्रहण करने चले ?"

एक लौकिक कथा पढिये—

एगो मणूसो तउसाण भरिएण सगडेण नगर पविसइ। सो पविसतो धुत्तेण भण्णइ—जो य तउसाण सगड खाएज्जा तस्स तुम किं देसि ? ताहे सागडिएण सो धुत्तो भणिओ—तस्साह त मोदग देमि जो नगरद्दारेण न निप्फिडइ। धुत्तेण भण्णइ-ताहे एय तउरासगड खायामि। तुम पुण मोदग देज्जासि जो नगरदारेण न निस्सरइ। पच्छा सागडिएण अब्भुवगए धुत्तेण सक्खिणो कया। सगड अधिट्ठितो, तेसि तउसाण एक्केक्काउ खड खड अवणेत्ता पच्छा त सागडिय मोदग मग्गइ। ताहे सागडिओ भणइ–इमे तउसा न खइता तुमे। धुत्तेण भणइ—जइ न खइया तउसे अग्घवेहि तुम। अग्घविएसु कइया आगया। पासन्ति खडिया तउसा। ताहे कइया भणति—को एते खतिए किणत्ति ? ततो कारणे ववहारे जाओ। खत्तिय त्ति जितो सागडितो। ताहे धुत्तेण मोदग मग्गिज्जइ। अच्चइओ सागडिओ। जुत्तिकए ओलग्गिता। ते तुट्ठा पुच्छति। तेसिं जहावत सव्व कहइ। एव कहिए तेहि उत्तर सिक्खाविओ जहा तुम खड्डुलग मोयग नगरदारे ठावेत्ता भण—एस मोदगो न नीति णगरदारेण गिण्हति। जितो धुत्तो।

—एक आदमी ककडिया से अपनी गाड़ी भर कर उन्हे किसी नगर मे बेचने के लिए चला। किसी धूर्त ने उसे देख

लिया। उसने कहा—यदि मै तुम्हारी ये गाडीभर ककडियॉ खा लू तो क्या दोगे? ककडीवाले ने उत्तर दिया—मैं एक इतना बडा लड्डू दूगा जो इस नगर के द्वार से न निकल सके। धूर्त्त ने कहा—बहुत अच्छी बात है, मै इन सब ककडियो को अभी खा लेता हू। इसके बाद धूर्त्त ने कुछ गवाह वुला लिय। धूर्त्त ने ककडियों को थोडी थोडी सी चखकर वही वापिस रख दी, और वह लड्डू मागने लगा। ककडीवाले ने कहा—तुमने ककडियॉ खाई ही कहॉ है जो तुम्हें लड्डू दू। धूर्त्त ने जवाब दिया कि ऐसी बात है तो तुम इन्हे बेचकर देखो। इतने मे बहुत से ककडी खरीदनेवाले आ गये। कुतरी हुई ककडियॉ देखकर वे कहने लगे—ये तो खाई हुई ककडियॉ है, इन्हे क्यो बेचते हो? इसके बाद दोनो न्यायालय मे फैसले के लिए गये। धूर्त्त जीत गया। उसने लड्डू मागा। ककडीवाले ने उसको बहुत मनाया, लेकिन वह न माना। धूर्त्त ने जानकार लोगो से पूछा कि क्या करना चाहिए। उन्होंने ककडीवाले से कहा कि तुम एक छोटे से लड्डू को नगर के द्वार पर रख कर कहो कि यह लड्डू कहने से भी नहीं चलता है, फिर तुम इस लड्डू को धूर्त्त को दे देना।

सुबधु के आख्यान मे यहॉ चाणक्य के इगिनिमरण का वर्णन है। विद्या मत्रसबधी जोणीपाहुड नामक ग्रन्थ का उल्लेख है।

नन्दीचूर्णी

नन्दीचूर्णी मे माथुरी वाचना का उल्लेख आता है। बारह वर्ष का अकाल पडने पर आहार आदि न मिलने के कारण जैन भिक्षु मथुरा छोड कर अन्यत्र विहार करने गये थे। सुभिक्ष होने पर समस्त साधु समुदाय आचार्य स्कदिल के नेतृत्व मे मथुरा मे एकत्रित हुआ और जो जिसे स्मरण था उसे कालिकश्रुत के रूप मे सघटित कर दिया गया। कुछ लोगों का कथन है

कि दुर्भिक्ष के समय श्रुत नष्ट नही हुआ था, मुख्य मुख्य अनुयोग-धारी आचार्य मृत्यु को प्राप्त हो गए थे, अतएव स्कंदिल आचार्य ने मथुरा मे आकर साधुओ को अनुयोग की शिक्षा दी।

अनुयोगद्वारचूर्णी

यहाँ तलवर, कौटुबिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, वापी, पुष्करिणी, सारणी, गुजालिया, आराम, उद्यान, कानन, वन, गोपुर, सभा, प्रपा, रथ, यान, शिबिका आदि के अर्थ समझाये है। यहाँ सगीत सबधी तीन पद्य प्राकृत मे उद्धृत है जिससे पता लगता है कि सगीतशास्त्र पर भी कोई ग्रथ प्राकृत मे रहा होगा।



टीका-साहित्य

टीका ग्रथो मे आवश्यक पर हरिभद्रसूरि और मलयगिरि की, उत्तराध्ययन पर शातिचन्द्रसूरि और नेमिचन्द्रसूरि की तथा दशवैकालिक सूत्र पर हरिभद्र की टीकाये विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आवश्यकटीका मे[1] से कुछ लौकिक लघु कथायें यहॉ दी जाती है—

(१) कोई बन्दर किसी वृक्ष पर रहता था वर्षाकाल मे ठढी हवा से वह कॉप रहा था। उसे कापते देख सुदर घोसलेवाली एक चिडिया (बया) ने कहा—

वानर ! पुरिसो सि तुम निरत्थय वहसि बाहुदडाइ।
जो पायवस्स सिहरे न करेसि कुडि पडालि वा ॥

—हे बन्दर ! तुम पुरुप होकर भी व्यर्थ ही अपनी भुजाओ को धारण करते हो तुम क्यों वृक्ष के ऊपर कोई कुटिया या चटाई आदि की टट्टी नहीं बना लेते ?

यह सुनकर बन्दर चुप रहा, लेकिन बया ने वही बात दो तीन बार दुहराई। ईस पर बन्दर को बडा गुस्सा आया और जहॉ वह बया रहती थी, उस वृक्ष पर चढ गया। बया वहॉ से उड गई

---

१ 'आवश्यक कथाऍ' नामक ग्रन्थ का पहला भाग एर्नेस्ट लॉयमान ने सन् १८९७ में लाइप्त्सिख से प्रकाशित कराया था। इसके बाद हरमन जैकोबी ने औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री त्सुर आइन फ्युरुग इन डास स्टूडिउम डेस प्राकृत ग्रामाटिक टैक्स्ट वोएरतरबुख (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ प्राकृत के अध्ययन में प्रवेश कराने के लिए) सन् १८८६ में प्रकाशित कराया। इसमें जैन आगमों की उत्तरकालीन कथाओं का समावेश है। जैनागमों और टीकाओं से चुनी हुई कथाओं के लिए देखिए जगदीशचन्द्र जैन, दो हजार बरस पुरानी कहानियाँ।

और बन्दर ने उसके घोसले के तिनके कर कर के हवा मे उडा दिये। फिर वह कहने लगा—

नवि सि मम मयहरिया, नवि सि मम सोहिया व णिद्धावा।
सुघरे! अच्छसु विघरा जा वट्टमि लोगतत्तीसु॥

—तू न तो मेरी बडी है, न मुझे अच्छी लगती हे और न मैं तुझसे स्नेह ही करता हू। हे सुघरे! तू अब बिना घर के रह, दूसरों की तुझे बहुत चिन्ता है!

(२) किसी सीमाप्रान्त के ग्राम मे कुछ आभीर लोग रहते थे। साधुओ के पास जाकर वे धर्म श्रवण किया करते थे। अपने उपदेश मे साधुओं ने देवलोक का वर्णन किया। एक बार की बात है, इन्द्रमह के उत्सव पर वे लोग द्वारका गये। वहाँ उन्होने लोगो को वस्त्र और सुगधित पदार्थों आदि से सुसज्जित देखा। उन्होंने सोचा कि साधुओ के द्वारा वर्णित देवलोक यही है, अब यहाँ से वापिस जाना ठीक नही। कुछ समय बाद साधुओ के पास जाकर उन्होने निवेदन किया—महाराज! जिस देवलोक का वर्णन आपने किया था उसका हमने साक्षात् दर्शन कर लिया है।

(३) मथुरा मे जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसकी रानी धारिणी बडी श्रद्धालु थी। मथुरा मे भडीरवन[1] की यात्रा के लिए लोग जा रहे थे। राजा और रानी भी बडी सजधज के साथ यात्रा के लिए चले। इस समय किसी इभ्यपुत्र को यवनिका के बाहर निकला हुआ और महावर से रगा यान मे बैठी हुई रानी का सुन्दर पैर दिखाई दिया। उसने सोचा कि जब इसका पैर इतना सुदर है तो फिर वह कितनी सुदर होगी! घर पहुँच कर उसने रानी का पता लगाया। इभ्यपुत्र उसके घर के पास एक दूकान लेकर रहने लगा। उसकी दासियाँ जब कुछ खरीदने आतीं तो वह उन्हें दुगुनी चीज देता, उनका आदर सत्कार भी

---

१ वृन्दावन का प्रसिद्ध न्यग्रोध वृक्ष भडीर कहा जाता था (महाभारत ११ ५३ ८)।

बहुत करता। दासियों ने यह बात रानी से जाकर कही। रानी उसी की दुकान से सामान मगवाने लगी। एक दिन इभ्यपुत्र ने दासियो के सामने कुछ पुडिया मे रखते हुए कहा—"ऐसा कौन है जो इन बहुमूल्य सुगधित पदार्थो की पुडियाओ को खोल सके ?" दासियों ने उत्तर दिया—"हमारी रानी इन्हे खोल सकती है।" इभ्यपुत्र ने एक पुडिया मे भोजपत्र पर निम्नलिखित श्लोक लिख दिया—

काले प्रसुप्तस्य जनार्दस्य, मेघाधकारासु च शर्वरीषु।
मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ! ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ॥

—कामेमि ते (प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर मिलाकर) अर्थात् मैं तुझे चाहता हूँ। दासियाँ पुडियाओ को रानी के पास ले गईं। रानी ने श्लोक पढ कर विषयभोगों को धिक्कारा। प्रत्युत्तर मे उसने लिखा—

नेह लोके सुख किंचिच्छादितस्याहसा भृशम्।
मित च जीवित नृणा तेन धर्मे मति कुरु ॥

—नेच्छामि ते (प्रत्येक चरण का प्रथम अक्षर मिला कर) अर्थात् मैं तुझे नही चाहती।

(४) कोई वणिक् अपनी दो भार्याओं (यहाँ दूसरी कथा मे दो भाइयो के एक ही भार्या होने का भी उल्लेख है, पृ० ४२०) के साथ किसी दूसरे राज्य मे रहने के लिये चला गया। वहाँ जाकर उसकी मृत्यु हो गई। उसकी एक भार्या के पुत्र था लेकिन वह बहुत छोटा था। पुत्र को लेकर दोनो सौतों मे झगडा होने लगा। जब कोई निर्णय न हो सका तो मन्त्री ने कहा, रुपये पैसे की तरह लडके को भी आधा-आधा करके दो भागों मे बॉट दो। यह सुनकर लडके की असली मा कहने लगी—मेरा पुत्र इसी के पास रहे, उसे मारने से क्या लाभ ? अन्त मे वह पुत्र उसी को मिल गया।

(५) दो मित्रो को एक खजाना मिला। उन्होंने सोचा, कल किसी अच्छे नक्षत्र मे आकर इसे ले आयेगे। लेकिन उनमे से एक पहले ही वहाँ पहुँच कर खजाने को निकाल लाया और उसकी जगह उसने कोयले रख दिये। अगले दिन जब दोनों वहाँ आये तो देखा कोयले पड़े हुए हैं। यह देखकर धूर्त मित्र ने कहा—क्या किया जाये, हमलोग इतने अभागे हैं कि खजाने के कोयले हो गये ! दूसरा मित्र ताड गया, लेकिन उसने उस समय कुछ नही कहा। उसने उस धूर्त्त की एक मूर्त्ति बनाई और कही से वह दो बन्दर पकड लाया। वह उस मूर्त्ति के ऊपर खाना रख देता और बन्दर खाने के लिये मूर्त्ति के ऊपर चढ जाते। एक दिन भोजन तैयार करा कर वह अपने मित्र के दो पुत्रों को किसी बहाने से घर ले आया। उसने उन दोनों को छिपा दिया, और मित्र के पूछने पर कह दिया कि वे बन्दर बन गये हैं। जब धूर्त के लडके वापिस नहीं मिले तो वह स्वय अपने मित्र के घर आया। उसके मित्र ने उसे एक दिवाल के पास बैठाकर उसके ऊपर बन्दर छोड दिये। किलकारी मारते हुए बन्दर उसके सिर पर चढकर कूदने-फादने लगे। इन बन्दरों की ओर इशारा कर के धूर्त्त के मित्र ने कहा—ये ही तुम्हारे पुत्र है। धूर्त्त ने पूछा—लडके बन्दर कैसे बन गये ? उसने उत्तर दिया—जैसे खजाने का रुपया कोयला बन गया। यह सुनकर धूर्त्त ने खजाने का हिस्सा उसे दे दिया।

(६) किसी साधु के पास एक बहुत मूल्यवान कचोलक (एक पात्र) था। उसने कहा—जो कोई मुझे अनसुनी बात सुनायेगा, उसे मै यह कचोलक दे दूगा। यह सुनकर एक सिद्ध पुत्र ने गाथा पढी—

तुज्झ पिया मज्झ पिउणो धारेइ अणूणय सयसहस्स।
जइ सुयपुव्व दिज्जउ अह ण सुय खोरग देहि॥

—तेरे पिता को मेरे पिता का शतसहस्र से अधिक (कर्ज)

देना है। यदि तुमने यह बात पहले सुनी है तो शतशहस्र वापिस करो, अन्यथा अपना पात्र मुझे दो।

(७) किसी सिद्धपुत्र के दो शिष्य थे। उन्होंने निमित्तशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। एक बार वे घास लकडी लेने के लिये जगल मे गये। वहाँ उन्होने हाथी के पाव देखे। एक शिष्य ने कहा—ये तो हथिनी के पाव ह?

"तुमने कैसे जाना।"

"उसकी लघुशका से। और वह हथिनी एक आँख से कानी है।"

"कैसे पता लगा?'

"उसने एक तरफ की ही घास खायी है?"

शिष्य ने लघुशका देखकर यह भी पता लगा लिया कि उस हथिनी पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हुए थे। उसने कहा—

"और वह स्त्री गर्भवती थी।"

"कैसे जाना?"

"वह हाथों के बल उठी थी। और उसके पुत्र पैदा होगा।"

"कैसे पता लगा?"

"उसका दाहिना पाव भारी था। और वह लाल रग के वस्त्र पहने थी।"

"यह तुम्हे कैसे पता लगा?"

"लाल धागे आस-पास के वृक्षों पर लगे हुए थें।"

(८) किसी नगर मे कोई जुलाहा रहता था। उसकी शाला मे कुछ धूर्त्त कपडा बुना करते थे। उनमे से एक धूर्त्त बडे मधुर स्वर से गाया करता था। जुलाहे की लडकी उसका गाना सुनकर उस पर मोहित हो गई। धूर्त्त ने कहा, चलो कहीं भाग चले, नहीं तो किसी को पता लग जायेगा। जुलाहे की लडकी ने कहा—"मेरी सखी एक राजकुमारी है। हम दोनों ने तय कर रक्खा है कि हम किसी एक ही पुरुष से शादी करेंगी। उसके

बिना मैं कैसे जा सकती हू।" धूर्त्त ने कहा—"तो उसे भी बुला लो। जुलाहे की लडकी ने अपनी सखी के पास खबर भिजवाई। वह भी आ गई। तीनो बहुत सबेरे उठकर भाग गये। इतने मे किसी ने निम्न गाथा पढी—

जइ फुल्ला कणियारया चूयय ! अहिमासयमि पुट्ठमि।
तुह न खम फुल्लेउ जइ पच्चता करिति डमराइ ॥

—हे आम्र ! यदि कणेर के वृक्ष फूल गये है तो वसत के आगमन होने पर तू फूलने के योग्य नही है। यदि नीच लोग कोई अशोभन कार्य करे तो क्या तू भी वही करेगा ?

यह सुनकर राजकुमारी अपने मन मे सोचने लगी—"आम के वृक्ष को वसत उलाहना दे रही है कि सब वृक्षों मे कुत्सित समझा जानेवाला कणेर भी यदि फूलता है, तो फिर तुम्हारे जैसे उत्तम वृक्ष के फूलने से क्या लाभ ? क्या वसत की यह घोषणा मैंने नही सुनी ? अरे ठीक तो है, यदि यह जुलाहे की लडकी ऐसा काम करती है तो क्या मुझे भी उसका अनुकरण करना चाहिए ?" यह सोचकर वह अपनी रत्नों की पिटारी लेने के बहाने राजमहल मे लौट गई। उसके बाद किसी राजकुमार के साथ उसका विवाह हो गया और वह महारानी बन गई।

(६) किसी कन्या की एक साथ तीन स्थानों से मगनी आ गई। किसी को भी मना नही किया जा सकता था, इसलिये माता पिता ने तीनों की मगनी स्वीकार कर ली। तीनो वर बारात लेकर चढ आये। सयोग से उस रात को साँप के काटने से कन्या मर गई। उसका एक वर उसके साथ चिता मे जल गया। दूसरे ने अनशन करना आरभ कर दिया। तीसरे ने किसी देव की आराधना कर सजीवन मन्त्र प्राप्त किया और कन्या को जीवित कर दिया। कन्या के जीवित हो जाने पर तीनों वर उपस्थित होकर कन्या को माँगने लगे। बताइये कन्या किसे दी जाये ? एक को, दो को अथवा तीनों को ?

उत्तर—जिसने कन्या को जिलाया वह उसका पिता है, जिसके साथ वह जीवित हुई वह उसका भाई है, इसलिए जिसने अनशन किया था कन्या उसे ही दी जानी चाहिए।

दशवैकालिकसूत्र की वृत्ति मे भी हरिभद्र ने अनेक सरस लोककथाये, उदाहरण और दृष्टात आदि उद्धृत किये है। अभयदेवसूरि ने स्थानागसूत्र की टीका मे देश देश की स्त्रियो के स्वभाव का सुदर चित्रण किया है। यहाँ पर उन्होंने चौलुक्य की कन्याओं के साहस की और लाट देश की स्त्रियो की रमणीयता की प्रशसा की है, तथा उत्तरदेश की नारियो को धिक्कारा है—

अहो चौलुक्यपुत्रीणा साहस जगतोऽधिकम्।
पत्युर्मृत्यौ विशन्त्यग्नौ या प्रेमरहिता अपि॥
चन्द्रवक्त्रा सरोजाक्षी सद्गी पीनघनस्तनी।
किं लाटी नो मता साऽस्य देवानामपि दुर्लभा॥
धिङ्नारीरौदीच्या बहुवसनाच्छादितागलतिकत्वात्।
यद्यौवन न यूना चक्षुर्मोदाय भवति सदा॥

शीलाक ने सूत्रकृताग की टीका मे अपभ्रश की निम्न गाथा उद्धृत की है—

वरि विस खइय न विसयसुहु, इक्कसि विसिण मरति।
विसयामिस पुण घारिया, णर णरएहि पडति॥

—विष खाकर मरना अच्छा है, विषय सुख का सेवन करना अच्छा नहीं। पहले प्रकार के लोग विष खाकर मर जाते है, लेकिन दूसरे प्रकार के विषयासक्ति से पीडित हो मर कर नरक मे दुख भोगते है।

गच्छाचार की वृत्ति में भद्रबाहु और वराहमिहिर नाम के दो सगे भाइयों के वृत्तात का विस्तार से कथन है। वराह मिहिर चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति के ज्ञाता तथा अगोपाग और द्रव्यानुयोग मे पारगत थे। चन्द्रसूर्यप्रज्ञप्ति के आधार से उन्होंने वाराहीसहिता नामक ज्योतिष के ग्रन्थ की रचना की थी।

इस प्रकार आगम और उनकी व्याख्याओ के रूप मे लिखे गये इस विशाल साहित्य का अध्ययन करने से हमे कई बातो का पता चलता है। सबसे पहले तो यही कि लोक प्रचलित भारत की प्राचीन कथा कहानियो को जैन विद्वानो ने प्राकृत कथाओ के रूप मे सुरक्षित रक्खा। इन कथाओ मे से बहुत सी कथाएँ जातककथा, सरित्सागर, पचतत्र, हितोपदेश, शुकसप्तति आदि मे पाई जाती है, और ईसप की कहानियाँ, अरेबियन नाइट्स, कलेला दमना की कहानी आदि के रूप मे सुदूर देशो मे भी पहुँची है। जैन मुनियो ने अपने उपदेशो के दृष्टात रूप मे इन कहानियों का यथेष्ट उपयोग किया है। दूसरे प्रकार की कथाये पौराणिक कथाये है जिन्हे रामायण, महाभारत आदि ब्राह्मणों के ग्रथों से लेकर जैनरूप मे ढाला गया है। राम, कृष्ण, द्रौपदी, द्वीपायन ऋषि द्वारकादहन, गगा की उत्पत्ति आदि की कथाओ का इसी प्रकार की कथाओ मे अन्तर्भाव होता है। करकडू आदि प्रत्येकबुद्धो की कथाएँ बौद्ध जातको की कथाओ से मिलती-जुलती है। द्वीपायन ऋषि की कथा कण्हदीपायन-जातक, वल्कलचीरी की कथा बौद्धों की उदान-अट्ठकथा ओर कुणाल की कथा दिव्यावदान म आती है। अनेक कथाये मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु मे कही गई है। रोहक और कनक-मजरी की कथाएँ अत्यन्त मनोरजक और कल्पनाशक्ति की परिचायक है जिनकी तुलना क्रम से बौद्ध जातको के महोसध पडित और अरेबियन नाइट्स की शहरजादे से की जा सकती है। इसी प्रकार शकटाल, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, स्तेयशास्त्र के प्रवर्त्तक मूलदेव, मडित चोर, देवदत्ता गणिका और अगडदत्त आदि की कथाये विशेषरूप से उल्लेखनीय है। डाक्टर विन्टर-नीज के शब्दों मे कहा जाय तो "जैन टीका साहित्य मे भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अनेक उज्ज्वल रत्न विद्यमान है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते।"

चौथा अध्याय

दिगम्बर सम्प्रदाय के प्राचीन शास्त्र

(ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक)

दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदाय

पूर्वकाल मे श्वेताम्बर और दिगम्बरो मे कोई मतभेद नही था, दोनो ही ज्ञातृपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुयायी थे। महावीर के पश्चात् गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी को दोनों ही सम्प्रदाय स्वीकार करते है, आचार्य भद्रबाहु को भी मानते है।[1] ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी मे मथुरा मे जो जैन शिलालेख मिले है उनसे भी यही ज्ञात होता है कि उस समय तक श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय का आविर्भाव नहीं हुआ था।[2] इसके सिवाय दोनो सम्प्रदायो के उपलब्ध साहित्य में

---

१ दिगम्बर परम्परा में जम्बूस्वामी के पश्चात् विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु का नाम लिया जाता है, जब कि श्वेताम्बर परम्परा में प्रभवस्वामी, शय्यभवसूरि, यशोभद्रसूरि सभूतविजयसूरि और भद्रबाहुस्वामी का नाम है।

२ श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार महावीर निर्वाण के ६०९ वर्ष पश्चात् शिवभूति ने रथवीरपुर नगर में बोटिक (दिगम्बर) मत का स्थापना की (देखिये, आवश्यकभाष्य १४५ आदि , आवश्यकचूर्णी, पृष्ठ ४२७ आदि)। दिगम्बरों की मान्यता जुदी है। दिगम्बर आचार्य देवसेन के मतानुसार राजा विक्रमादित्य की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद

प्राचीन परम्परागत विषय और गाथाओ आदि की समानता पाई जाती है। उदाहरण के लिये, भगवती आराधना और मूलाचार का प्रतिपाद्य विषय और गाथाये सथारग, भत्तपरिण्णा, मरणसमाही, पिंडनिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति और बृहत्कल्पभाष्य आदि के विषय और गाथाओ के साथ अक्षरश मिलते है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि दोनों सम्प्रदायो का सामान्य स्रोत एक ही था। लेकिन आगे चलकर ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के आस पास, विशेष करके अचेलत्व के प्रश्न को लेकर[1], दोनो मे मतभेद हो गया। आगे चलकर आगमो को स्वीकार करने के सम्बन्ध मे भी दोनो की मान्यताये जुदी पड गई।[2]

वल्भी नगर में श्वेताम्बर सघ की उत्पत्ति हुई। इस सबध में एक दूसरी भी मान्यता है। उज्जैनी म चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में भद्रबाहु के शिष्य विशाखाचार्य अपने सघ को लेकर पुन्नाट चले गये, तथा रामिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य सिन्धुदेश मे विहार कर गये। जब सब लोग उज्जैनी लौटकर आये तो वहाँ दुष्काल पडा हुआ था। इस सघ के आचार्य ने नग्नत्व ढाकने के लिये अर्धफालक धारण करने का आदेश दिया। लेकिन दुष्काल समाप्त होने के पश्चात् इस की कोई आवश्यकता न समझी गई। फिर भी कुछ लोगों ने अर्धफालक का त्याग नहीं किया। इसी समय से श्वेताम्बर मत की उत्पत्ति हुई मानी जाती है। देखिये हरिषेण, बृहत्कथाकोष १३१, देवसेन, दर्शनसार, भट्टारक रत्ननन्दि, भद्रबाहुचरित। मथुरा शिलालेखों के लिये देखिये आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, जिल्द ३, प्लेटस १३ १४, बुहलर, द इण्डियन सैक्ट ऑव द जैन्स, पृ० ४२ ६०, वियना ओरिटिएल जरनल, जिल्द ३ और ४ मे बुहलर का लेख

१ श्वेताम्बरों आगमों में सचेलत्व और अचेलत्व दोनों मान्यतायें पाई जाती हैं।

२ मेघविजयगणि के युक्तिप्रबोध (रतलाम, वि० स० १९८४) में दिगम्बर और श्वेताम्बर के ८४ मतभेदों का वर्णन है।

दिगम्बर सम्प्रदाय मे श्वेताम्बर परम्परा द्वारा स्वीकृत ४५ आगमो को मान्य नही किया गया। दिगम्बरो के मतानुसार आगम साहित्य विच्छिन्न हो गया है। लेकिन दिगम्बर ग्रन्थो मे प्राचीन आगमो का नामोल्लेख मिलता है। जैसे श्वेताम्बरीय नन्दिसूत्र मे आगमो की गणना मे १२ उपागो का उल्लेख नही है वैसे ही दिगम्बर परम्परा मे भी उपागो को आगमों मे नही गिना गया है। श्वेताम्बरों की भाँति दिगम्बरो के द्वादशाग आगम की रचना भी गणधरो द्वारा अर्धमागधी मे की गई है। दोनों ही सम्प्रदाय बारहवे अग दृष्टिवाद के पाँच भेद स्वीकार करते है जिनमे १४ पूर्वों का अन्तर्भाव होता है। श्वेताम्बरो का आगम साहित्य अर्धमागधी मे लिखा गया है, जब कि दिगम्बरो के प्राचीन साहित्य की भाषा शौरसेनी मानी जाती है। आगमो की सख्या का विभाजन और उनके ह्रास आदि के सबध मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता पहले दी जा चुकी है। दिगम्बर मान्यता यहाँ दी जाती है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार आगमो के दो भेद है—अगबाह्य और अगप्रविष्ट। अगबाह्य के चौदह भेद है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प महाकल्प, पुडरीक, महापुडरीक और निषिद्धिका (णिसिहिय)।[1] अगप्रविष्ट के बारह भेद है—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्या-

१ षट्खडागम, भाग १, पृष्ठ ९६, तथा देखिये पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि (१ २०), अकलक, राजवार्तिक (१ २०), नेमिचन्द्र, गोम्मटसार, जीवकाड (पृष्ठ १२४ आदि)। इस विभाग में श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प, व्यवहार और निसीह जैसे प्राचीन सूत्रों का समावेश हो जाता है। सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना और प्रतिक्रमण का अन्तर्भाव आवश्यक में होता है।

प्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र ओर दृष्टिवाद। दृष्टिवाद के पॉच अधिकार है—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, और चूलिका। परिकर्म के पॉच भेद है—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति।[1] सूत्र अधिकार मे जीव तथा त्रैराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवाद का वर्णन है। प्रथमानुयोग मे पुराणों का उपदेश है। पूर्वगत अधिकार मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का कथन है, इनकी सख्या १४ है।[2] चूलिका के पॉच भेद है[3]—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता।

दिगम्बर परम्परा के अनुसार द्वादशाग आगम का उच्छेद हो गया है, केवल दृष्टिवाद का कुछ अश बाकी बचा है, जो षट्खडागम[4] के रूप मे मौजूद है। दिगम्बर सम्प्रदाय मे प्रकारान्तर से जैन आगम को चार भागो मे विभक्त किया गया है। १ प्रथमानुयोग मे रविषेण की पद्मपुराण, जिनसेन की

---

१ चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि प्रथम चार आगमों का श्वेताम्बर सम्प्रदाय के उपागों में अन्तर्भाव होता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति को पॉँचवा अग स्वीकार किया गया है।

२ ग्यारहवें पूर्व को श्वेताम्बर परम्परा में अवन्ध्य (अवध्य) और दिगम्बर परम्परा में कल्याणवाद कहा है। कहीं पूर्वों के अन्तर्गत वस्तुओं की सख्या में भी दोनों में मतभेद है।

३ श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार चूलिकाओं का पूर्वों में समावेश हो जाता है। दिगम्बरों के अनुसार उनका पूर्वों से कोई सम्बन्ध नहीं।

४ दिगम्बर परम्परा में षट्खडागम और कषायप्राभृत ही ऐसे ग्रंथ हैं जिनका सम्बन्ध सीधा महावीर की द्वादशाग वाणी से है, शेष समस्त श्रुतज्ञान क्रमश विलुप्त और छिन्न हुआ माना जाता है। विशेष के लिये देखिये, डाक्टर हीरालाल जैन, षट्खडागम की प्रस्तावना, भाग १।

हरिवंशपुराण, और आदिपुराण तथा जिनसेन के शिष्य गुणभद्र की उत्तरपुराण का अन्तर्भाव होता है, २ करणानुयोग मे सूर्यप्रज्ञप्ति, चद्रप्रज्ञप्ति और जयधवला का अन्तर्भाव होता है, ३ द्रव्यानुयोग मे कुन्दकुन्द की रचनाये (प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय, समयसार आदि), उमास्वामि का तत्वार्थसूत्र और उसकी टीकाये, समन्तभद्र की आप्तमीमासा और उसकी टीकाओं का समावेश होता है, ४ चरणानुयोग मे वट्टकेर का मूलाचार और त्रिवर्णाचार तथा समन्तभद्र के रत्नकरण्डश्रावकाचार का अन्तर्भाव होता है।[1]



---

1 श्वेताम्बर सम्प्रदाय में चरणकरणानुयोग में कालिकश्रुत, धर्मानुयोग में ऋषिभाषित, गणितानुयोग में सूर्यप्रज्ञप्ति और द्रव्यानुयोग में दृष्टिवाद आदि के उदाहरण दिये हैं, उत्तराध्ययन-चूर्णी, पृ० १।

षट्खडागम का महत्त्व

षट्खडागम को सत्कर्मप्राभृत, खडसिद्धान्त अथवा षट्-खडसिद्धान्त भी कहा गया है। भगवान् महावीर का उपदेश उनके गणधर गौतम इन्द्रभूति ने द्वादशाग के रूप मे निबद्ध किया। महावीर निर्वाण के ६८३ वर्ष बाद तक अगज्ञान की प्रवृत्ति जारी रही, तत्पश्चात् गुरु शिष्य परपरा से मौखिक रूप से दिया जाता हुआ यह उपदेश क्रमश विलुप्त हो गया। इस द्वादशाग का कुछ अश गिरिनगर (गिरनार, काठियावाड) की चन्द्रगुफा मे ध्यानमग्न आचाराग के पूर्ण ज्ञाता धरसेन आचार्य को स्मरण था। यह सोचकर कि कहीं श्रुतज्ञान का लोप न हो जाये धरसेन ने महिमा नगरी के मुनि सम्मेलन को पत्र लिखा जिसके फलस्वरूप आध्रदेश से पुष्पदन्त और भूतबलि नामक दो मुनि उनके पास पहुँच गये। धरसेन आचार्य ने अपने इन मेधावी शिष्यों को दृष्टिवाद के अन्तर्गत पूर्वों और विआह पन्नत्ति के कुछ अशों की शिक्षा दी। धरसेन मत्रशास्त्र के भी बडे पण्डित थे। उन्होंने जोणिपाहुड[1] नामक ग्रन्थ कूष्माडिनी देवी से प्राप्त कर उसे पुष्पदत और भूतबलि के लिए लिखा था। धरसेन का समय ईसवी सन् की पहली और दूसरी शताब्दी के बीच माना जाता है। आगे चलकर इन्हीं पुष्पदत और भूतबलि ने षट्खडागम की रचना की, पुष्पदत ने १७७ सूत्रों मे सत्प्ररूपणा और भूतबलि ने ६००० सूत्रों मे शेष ग्रथ लिखा। इस प्रकार चौदह पूर्वों के अतर्गत द्वितीय अग्रायणी पूर्व के कर्म-प्रकृति नामक अधिकार के आधार से षट्खडागम के बहुभाग का उद्धार किया गया।

---

१ इसका परिचय आगे चलकर 'शास्त्रीय प्राकृत साहित्य' नाम के ग्यारहवें अध्याय में दिया गया है।

षट्खंडागम की टीकाएँ

षट्खडागम जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ पर समय-समय पर अनेक टीकाएँ लिखी गई। इनमे कुदकुदाचार्यकृत परिकर्म, शामकुडकृत पद्धति, तुम्बुलूराचार्यकृत चूडामणि, समतभद्रस्वामीकृत टीका और बप्पदेवगुरुकृत व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक टीकाएँ मुख्य हैं, इन टीकाकारों का समय क्रमश ईसवी सन् की लगभग दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी शताब्दी माना जाता है। दुर्भाग्य से ये सभी टीकाएँ अनुपलब्ध हैं। षट्खडागम पर सबसे महत्त्वपूर्ण टीका धवला है जिसके रचयिता वीरसेन है। इनके गुरु का नाम आर्यनन्दि है, आदिपुराण के कर्ता सुप्रसिद्ध जिनसेन आचार्य इनके शिष्य थे। जिनसेन ने अपने गुरु की सर्वार्थगामिनी नैसर्गिक प्रज्ञा को बहुत सराहा है। वीरसेन ने बप्पदेवगुरु की व्याख्याप्रज्ञप्ति टीका के आधार से चूर्णियों के ढग की प्राकृत और सस्कृतमिश्रित ७२ हजार श्लोकप्रमाण धवला नाम की टीका लिखी। टीकाकार की लिखी हुई प्रशस्ति के अनुसार सन् ८१६ मे यह टीका वाटग्रामपुर मे लिखकर समाप्त हुई। धवला टीका के कर्ता वीरसेन बहुश्रुत विद्वान् थे और उन्होंने दिगम्बर और श्वेताम्बर आचार्यों के विशाल साहित्य का आलोडन किया था। सत्कर्मप्राभृत, कषायप्राभृत, सन्मतिसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्तिसूत्र, पचत्थिपाहुड, गृद्धपिच्छ आचार्य का तत्वार्थसूत्र, आचाराग (मूलाचार), पूज्यपादकृत सारसग्रह, अकलककृत तत्वार्थभाष्य, जीवसमास, छेदसूत्र, कर्मप्रवाद और दशकर्णीसग्रह आदि कितने ही महत्वपूर्ण सिद्धात-ग्रन्थों का उल्लेख वीरसेन की टीका मे उपलब्ध होता है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य आचाराग, बृहत्कल्पसूत्र, दशवैकालिक सूत्र, अनुयोगद्वार और आवश्यकनिर्युक्ति आदि की गाथायें भी इसमे उद्धृत हैं, बृहत्कल्पसूत्रगत (११) 'तालपलब' सूत्र का यहाँ उल्लेख है। इसके अतिरिक्त टीकाकार ने जगह-जगह उत्तर प्रतिपत्ति और दक्षिण-प्रतिपत्ति नाम की मान्यताओं का

उल्लेख करते हुए दक्षिण प्रतिपत्ति को ऋजु और आचार्य-परम्परागत, तथा उत्तर प्रतिपत्ति को अनृजु और आचार्य-परम्परा के बाह्य बताया है। सूत्र पुस्तकों के भिन्न भिन्न पाठो और मतभेदों का उल्लेख करते हुए यथाशक्ति उनका समाधान किया गया है। नागहस्ति के उपदेश को यहाँ पवाइज्जत अर्थात् आचार्य परम्परागत तथा आर्यमक्षु के उपन्देश को अपवाइज्ज-माण कहा है। इससे इन दोनों महान् आचार्यों के मतभेद का सूचन होता है।

षट्खंडागम के छः खंड

षट्खडागम के छ खड है। पहले खड का नाम जीवट्ठाण है। इसमे सत्, सख्या, चेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व ये आठ अनुयोगद्वार और नौ चूलिकाये है। इस खड का परिमाण १८ हजार है। पूर्वोक्त आठ अनुयोगद्वार और नौ चूलिकाओ मे गुणस्थानो और मार्गणाओ का वर्णन है। दूसरा खड खुद्दाबध (क्षुल्लकबध) है। इसके ग्यारह अधिकार है। यहाँ ग्यारह प्ररूपणाओ द्वारा कर्मबध करनेवाले जीव का कर्मबध के भेदों सहित वर्णन है। तीसरा खड बधस्वामित्वविचय है। यहाँ कर्मसम्बन्धी विषयों का कर्मबध करनेवाले जीव की अपेक्षा से वर्णन है। चौथा खड वेदना है। इसमे कृत और वेदना नाम के दो अनुयोगद्वार है, वेदना के कथन की यहाँ प्रधानता है। पाँचवे खड का नाम वर्गणा है। इस खड का प्रधान अधिकार बधनीय है जिसमे २३ प्रकार की वर्गणाओ का वर्णन है। छठे खड का नाम महाबध है। भूतबलि ने पुप्पदतरचित सूत्रों को मिलाकर, पाँच खडों के ६००० सूत्र रचने के पश्चात् महाबध की तीस हजार श्लोकप्रमाण रचना की। इसी ग्रन्थराज को महाधवल के नाम से कहा जाता है। यहाँ प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश बधों का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

वीरसेन आचार्य ने इन छहों खण्डो पर ७२ हजार श्लोक-प्रमाण धवला टीका की रचना की। आगे चलकर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने पट्खडागम के उक्त खण्डों के आधार से गोम्मटसार लिखा जिसे जीवकाण्ड और कर्मकाण्ड नाम के दो विभागों मे विभक्त किया गया।

रचना की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है। पहले पुप्पदन्ताचार्य के सूत्र, फिर वीरसेन आचार्य की धवला टीका, और फिर इस टीका मे उद्धृत गद्य और पद्यमय प्राचीन उद्धरण। पुप्पदन्त के सूत्रों की सख्या १७७ है जिनकी भापा प्राकृत है। धवला टीका का लगभग तीन चौथाई भाग प्राकृत मे और शेष भाग सस्कृत मे है। टीका की भाषा मुख्यतया शौरसेनी है। शैली इसकी परिमार्जित और प्रौढ है।

कसायपाहुड (कषायप्राभृत)

आचार्य धरसेन के समय के आसपास गुणधर नाम के एक और आचार्य हुए, उन्हें भी द्वादशाग श्रुत का कुछ ज्ञान था। इन्होंने कषायप्राभृत नामके द्वितीय सिद्धात ग्रन्थ की रचना की। आर्यमक्षु और नागहस्ति[1] ने इस ग्रन्थ का व्याख्यान किया, तथा आचार्य यतिवृषभ ने इस पर चूर्णिसूत्र लिखे। कषायप्राभृत के ऊपर भी वीरसेन ने टीका लिखी, किन्तु वे उसे २० हजार श्लोकप्रमाण लिखकर ही बीच मे स्वर्गवासी हो गये। इस महान् कार्य को उनके सुयोग्य शिष्य आचार्य जिनसेन ने ईसवी सन् ८३७ मे पूर्ण किया। यही टीका जयधवला के नाम से कही जाती है, सब मिलाकर यह ६० हजार श्लोकप्रमाण है। ज्ञान पडता है कषायप्राभृत के टीकाकार वीरसेन और जिनसेन के समक्ष आर्यमक्षु और नागहस्ति नामक दोनों

१ श्वेताम्बरों की नन्दिसूत्र की स्थविरावलि में पहले आर्यमङ्गु, फिर आर्यनन्दि और उसके बाद आर्य नागहस्ति का नाम आता है।

आचार्यों के अलग अलग व्याख्यान मौजूद थे, उन्होंने अनेक स्थलो पर उन दोनों के मतभेदो का उल्लेख किया है। आगे चलकर इस ग्रन्थ का विशेष परिचय दिया जायेगा।

षट्खंडागम का परिचय

पट्खडागम की प्रथम पुस्तक[1] के जीवस्थान के अन्तर्गत सत्प्ररूपण मे १७७ सूत्र है जिसमे चौदह गुणस्थानों और मार्गणाओ का प्ररूपण किया है। प्रथम सूत्र मे पच परमेष्ठियो को नमस्कार किया है, फिर मार्गणाओ का प्रयोजन बताया है। तत्पश्चात् आठ अनुयोगद्वारो से प्रथम सत्प्ररूपण का विवेचन आरम्भ होता है। चौदह गुणस्थानों के स्वरूप का प्रतिपादन है। फिर मार्गणाओं का विवेचन किया गया है।

टीकाकार वीरसेन ने दक्षिणापथवासी आचार्यों के पास पत्र भेजकर वहाँ से मुनियों को बुलवाने का वर्णन यहाँ किया है—

तेण वि सोरट्ठ विसयगिरिणयरपट्टणचदगुहाठिएण अट्ठगमहा- णिमित्तपारएण गन्थवोच्छेदो होहदित्ति जादभएण-पवयण- वच्छलेण दक्खिणावहाइरियाण महिमाए मिलियाण लेहो पेसिदो। लेहट्ठियधरसेणवयणमवधारिय तेहि वि आइरिएहि बे साहू गहणधारणसमत्था धवलामलबहुविहविणयविहूसियगा सीलमा- लाहरा गुरुपेसणासणतित्ता देसकुलजाइसुद्धा सयलकलापारया तिक्खुत्ता बुच्छियाइरिया अन्धविसयवेण्णायणादो पेसिदा।

—सौराष्ट्र देश के गिरिनगर नामक नगर की चन्द्रगुफा मे रहनेवाले अष्टाग महानिमित्त के पारगामी, और प्रवचनवत्सल धरसेनाचार्य ने अङ्गश्रुत के विच्छेद हो जाने के भय से महिमा नगरी मे सम्मिलित दक्षिणापथ के आचार्यों के पास एक लेख

---

१ यह ग्रथ सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जैन साहित्योद्धारक फड, अमरावती से डाक्टर हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित सोलह भागों में सन् १९३९–१९५८ में प्रकाशित हुआ है।

भेजा। लेख मे लिखे गये धरसेन के वचनो को धारण कर उन आचार्यों ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण और धारण करने मे समर्थ, विविध प्रकार से उज्ज्वल और निर्मल विनय से विभूषित, शील-रूपी माला के धारक, गुरुओ द्वारा प्रेषणरूपी भोजन से तृप्त, देश, कुल और जाति से शुद्ध, समस्त कलाओ के पारगामी और आचार्यों से तीन बार पूछकर आज्ञा लेनेवाले दो साधुओं को आन्ध्रदेश मे बेन्या नदी के तट से रवाना किया।

दूसरे सूत्र के व्याख्यान मे टीकाकार ने द्वादशाग श्रुत का परिचय कराते हुए द्वादशाग श्रुत से जीवस्थान के भिन्न-भिन्न अधिकारो की उत्पत्ति बताई है। टीकाकार की शैली शका-समाधान के रूप मे प्रस्तुत है जिसमे उदाहरणो, दृष्टातों, युक्तियों और तर्कों द्वारा विषय का स्पष्टीकरण किया गया है। आगम, केवलज्ञान, भूतबलि और पुष्पदन्त के वचनों मे विरोध, साधारण जीव, निगोद जीव आदि के विषय मे शकाये उपस्थित कर उनका आगमोक्त समाधान किया गया है। टीकाकार वीरसेन आगम को तर्क बाह्य स्वीकार करते हुए प्रत्यक्ष प्रमाण की भाँति आर्ष को भी स्वभावत प्रमाण स्वीकार करते है। स्त्रीमुक्ति के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर की शैली देखिये—

अस्मादेवार्षाद् द्रव्यस्त्रीणा निर्वृत्ति सिद्ध्येत् इति चेत्, न। सवाससत्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितताना सयमानुपपत्ते। भावसयमस्तासा सवाससामप्यविरुद्ध इति चेत्, न। तासा भावसयमोऽस्ति भावसयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्ते। कथ पुनस्तासु चतुर्दशगुणस्थानानीति चेत्, न। भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।

—शङ्का—तो फिर क्या इसी आर्ष प्रमाण से द्रव्य स्त्रियों की मुक्ति सिद्ध हो जायगी ?

समाधान—नहीं। क्योंकि वस्त्रसहित होने से उनके सयता-सयत होता है, इसलिये उनके सयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

शङ्का—लेकिन वस्त्रसहित होते हुए भी द्रव्य स्त्रियो के भाव-सयम होने मे तो कोई विरोध नहीं आना चाहिये ?

समाधान—ऐसी बात नहीं है। उनके भाव सयम नही है, क्योकि भाव-सयम के मानने पर, उनके भाव सयम का अविनाभावी वस्त्रादिक का ग्रहण नहीं बन सकता।

शङ्का—तो फिर स्त्रियो के चौदह गुणस्थान होते है, यह कथन कैसे ठीक हो सकता है ?

समाधान—भाव स्त्रीयुक्त मनुष्यगति मे चौदह गुणस्थान मान लेने से इसमे कोई विरोध नहीं आता।[1]

षट्खडागम की दूसरी पुस्तक भी जीवस्थान-सत्प्ररूपण है। सत्प्ररूपणा के प्रथम भाग मे गुणस्थानों और मार्गणाओ की चर्चा है। द्वितीय भाग मे पूर्वोक्त विवरण के आधार से ही वीरसेन आचार्य ने विपय का विशेष प्ररूपण किया है। इस प्ररूपण मे उन्होंने गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति आदि बीस प्ररूपणाओं द्वारा जीवो की परीक्षा की है। यहॉ विविध आलापो की अपेक्षा से गुणस्थानों व मार्गणाओं के अनेक भेद-प्रभेदों का विशिष्ट जीवों की अपेक्षा सामान्य, पर्याप्त व अपर्याप्त रूप का विवेचन है। प्रस्तुत भाग मे सूत्र नहीं लिखे गये है। सत्प्ररूपणा का जो ओघ और आदेश अर्थात् गुणस्थान और मार्गणाओं द्वारा १७७ सूत्रों मे प्रतिपादन किया जा चुका है, उसी का यहॉ बीस प्ररूपणाओं द्वारा विवेचन है। इस विभाग मे सस्कृत को बहुत कम स्थान मिला है, प्राकृत मे ही समस्त रचना लिखी गई है। साहित्यिक वाक्यशैली जैसी प्रथम भाग मे दिखाई पड़ती है, वैसी यहॉ नही है। शङ्का समाधान यत्र तत्र दिखाई दे जाते है।

---

१. इससे टीकाकार द्वारा स्त्रीमुक्ति का ही समर्थन होता है।

षट्खडागम की तीसरी पुस्तक जीवस्थान द्रव्य प्रमाणानुगम है, जीवस्थान नामक प्रथम खड का यह दूसरा भाग है। इस भाग मे जीव द्रव्य के प्रमाण का ज्ञान कराया गया है। समस्त जीवराशि कितनी है ओर उसमे भिन्न भिन्न गुणस्थानो व मार्गणास्थानों में जीव का क्या प्रमाण है, इस विषय का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा भूतबलि आचार्य ने १९२ सूत्रो मे विवेचन किया है। इन सूत्रों पर लिखी हुई धवला टीका मे आचार्य वीरसेन ने अनेक शङ्का-समाधान उपस्थित किये है। मिथ्यादृष्टियों की अनतानतप्रमाण राशि के सम्बन्ध मे प्रश्न किया है कि यह वचन असत्यता को क्यो प्राप्त नहीं होता? उत्तर मे कहा है कि ऐसी शङ्का करना ठीक नहीं क्योंकि ये वचन असत्य बोलने के कारणों से रहित जिनेन्द्र के मुखकमल से विनिर्गत हुए है (असच्चकारणुम्मुक्कजिणवयणकमलविणिग्गयत्तादो)। दूसरे स्थान पर प्रमत्तसयत जीवों का प्रमाण पाँच करोड तिरानवे लाख अठानवे हजार दो सौ छह बताया है। शङ्काकार को उत्तर देते हुए यहाँ भी आचार्यपरम्परागत जिनोपदेश को ही प्रमाण मान लिया गया है। कतिपय मतातरों का खडन कर किसी विशेष मत का मण्डन भी अनेक स्थलों पर धवलाकार ने किया है। तिर्यक्लोक के विस्तार और रज्जू के प्रमाण मे दो विभिन्न मतो का विवेचन करते हुए टीकाकार ने अपने मत के समर्थन मे कहा है कि यद्यपि यह मत पूर्वाचार्यसम्प्रदाय के विरुद्ध है, फिर भी तन्त्रयुक्ति के बल से हमने उसका प्ररूपण किया है (पृष्ठ ३८)। एक मुहूर्त्त मे कितने उच्छ्वास होते हैं, इस प्रश्न को लेकर जैन आचार्यों मे मतभेद है। एक मत के अनुसार एक मुहूर्त्त मे ७२० श्वासोच्छ्वास होते है, किन्तु धवलाकार ने इनकी सख्या ३७७३ बताई है। और भी अनेक मतभेदों की चर्चा टीका मे जहाँ तहाँ की गई है। टीकाकार आचार्य वीरसेन ने द्रव्यप्रमाणानुयोग का गणितशास्त्र से सबध बताया है और ग्रन्थ के प्रस्तुत भाग मे अपने गणित-

शास्त्र के अध्ययन का खूब उपयोग किया है।[1] (चौथी पुस्तक की प्रस्तावना मे इस सबध मे प्रोफेसर डाक्टर अवधेशनारायण सिंह का एक महत्त्वपूर्ण लेख भी छपा है)।

षट्खडागम की चौथी पुस्तक जीवस्थान के अन्तर्गत क्षेत्र-स्पर्शन-कालानुगम नाम से कही गई है जिसमे क्रम से ९२, १८५ और ३४२ सूत्र है, जीवस्थान के नाम के प्रथम खड का यह तीसरा, चौथा और पाँचवाँ भाग है। यहाँ जीवस्थानों की क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम और कालानुगम नाम की तीन प्ररूपणाओ का विवेचन है। क्षेत्रानुगम मे लोकाकाश का स्वरूप और प्रमाण बताया है। एक मत के अनुसार यह अपने तलभाग मे सात राजू व्यासवाला गोलाकार है। इस मत के अनुसार लोक का आकार ठीक अधोभाग मे वेत्रासन, मध्य मे झल्लरी और ऊर्ध्वभाग मे मृदग के समान हो जाता है। लेकिन वीरसेन आचार्य इस मत को प्रमाण नहीं मानते। उन्होंने लोक का आकार पूर्व पश्चिम दिशाओं मे ऊपर की ओर घटता बढता हुआ, किन्तु उत्तर-दक्षिण दिशाओ मे सर्वत्र सात राजू ही स्वीकार किया है। इस प्रकार उनके मतानुसार यह लोक गोलाकार न होकर समचतुरस्राकार हो जाता है, और दो दिशाओं में उसका आकार वेत्रासन, झल्लरी और मृदग के समान दिखाई देता है। इसी प्रकार स्वयभूरमण समुद्र के बाह्य पृथ्वी के अस्तित्व को सिद्ध करने की भी धवलाकार की अपनी निजी कल्पना है।

षट्खडागम की पाँचवीं पुस्तक में जीवस्थान के अन्तर्गत

---

१ धवलाकार ने परियम्मसुत्त (परिकर्मसूत्र) नाम के प्राकृत गद्यात्मक गणितसम्बन्धी ग्रथ के अनेक अवतरण अपनी टीका में दिये हैं। जैन करणानुयोग का यह कोई प्राचीन ग्रथ था जो आजकल उपलब्ध नहीं है। देखिये डॉक्टर हीरालाल जैन का जैन सिद्धान्त भास्कर (भाग ८, किरण २) में 'आठवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती गणितसम्बन्धी सस्कृत व प्राकृत ग्रथों की खोज' नामक लेख।

अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व का विवेचन किया है। इनमे क्रमश ३९७,९३ और ३८२ सूत्र है। पहले भागों की भाँति यहाँ भी शका-समाधान द्वारा विषय का स्पष्टीकरण किया है। पूर्व प्ररूपणाओ की भाँति अन्तर प्ररूपणा मे भी ओघ (गुणस्थान) और आदेश (मार्गणास्थान) की अपेक्षा बताया है कि जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थान के कम से कम और अधिक से अधिक कितने काल तक के लिये अन्तर को प्राप्त होता है। इसी प्रकार भाव प्ररूपणा मे ओघ और आदेश की अपेक्षा औद यिक आदि भावों का विवेचन है। गुणस्थानों और मार्गणास्थानों मे सभव पारस्परिक सख्याकृत हीनता और अधिकता का निर्णय अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार से होता है। यहाँ भी ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश की अपेक्षा अल्पबहुत्व का निर्णय किया गया है।

इस प्रकार जीवस्थान के प्रथम खण्ड की आठों प्ररूपणाओ का विवेचन समाप्त हो जाता है।

षट्खडागम की छठी पुस्तक जीवस्थान-चूलिका है। इसमे नौ चूलिकायें है—प्रकृतिसमुत्कीर्तन, स्थानसमुत्कीर्तन, तीन महा-दण्डक, उत्कृष्ट स्थिति, जघन्य स्थिति, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति। इनमे क्रमश ४६, ११७, २, २, २, ४४, ४३, १६ और २४३ सूत्र हैं। क्षेत्र, काल और अन्तर प्ररूपणाओं मे जो जीव के क्षेत्र व कालसबधी अनेक परिवर्तन बताये है वे विशेष कर्म-बध के द्वारा ही उत्पन्न हो सकते है, इन्हीं कर्मबधों का व्यवस्थित निर्देश प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक चूलिका मे किया है। प्रत्येक मूलकर्म की कितनी उत्तरप्रकृतियाँ एक साथ बाँधी जा सकती है और उनका बध कौन से गुणस्थानों मे सभव है, इस विषय का प्रतिपादन स्थानसमुत्कीर्तन चूलिका मे किया है। प्रथम महा दडक चूलिका में दो सूत्र है। यहाँ प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहण करने वाला जीव जिन प्रकृतियों को बाँधता है वे प्रकृतियाँ गिनाई गई है, मनुष्य या तिर्यंच को इन प्रकृतियों का स्वामी बताया

है। द्वितीय महादण्डक चूलिका मे प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख देव और प्रथमादि छ पृथिवियो के नारकी जीवों के योग्य प्रकृतियाँ गिनाई गई है। तृतीय महादण्डक चूलिका मे सातवी पृथिवी के नारकी जीवों के सम्यक्त्वाभिमुख होने पर बध योग्य प्रकृतियों का निर्देश है। उत्कृष्टस्थितिचूलिका मे कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और जघन्यस्थितिचूलिका मे कर्मों की जघन्य स्थिति का विवेचन है। सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका बहुत महत्वपूर्ण है। सूत्रकार ने यह विषय दृष्टिवाद के पॉच अगो मे से द्वितीय अग सूत्र पर से सग्रह किया है। धवलाकार ने कषायप्राभृत के चूर्णी सूत्रों के आधार से विषय का विवेचन किया है। गति-आगति-चूलिका का विषय सूत्रकार ने दृष्टिवाद के पॉच अगों मे प्रथम अग परिकर्म के चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि पॉच भेदों के अन्तिम भेद विआहपण्णत्ति से लिया है।

इस प्रकार छह खण्डों मे से प्रथम खण्ड जीवस्थान की समाप्ति हो जाती है।

इसके पश्चात् आठवी पुस्तक मे षट्खण्डागम का द्वितीय खण्ड आरम्भ होता है जिसका नाम खुद्दाबन्ध (क्षुद्रकबन्ध) है। इस खण्ड मे ग्यारह मुख्य तथा प्रास्ताविक व चूलिका इस तरह सब मिलाकर तेरह अधिकार है जिनमे कुल मिलाकर १५८९ सूत्र हैं। इन अनुयोगों का विषय प्राय वही है जो जीवस्थान खण्ड मे आ चुका है। अन्तर यही है कि यहाँ मार्गणास्थानों के भीतर गुणस्थानो की अपेक्षा रखकर प्ररूपण किया गया है। यहाँ जीवों की प्ररूपणा स्वामित्व आदि ग्यारह अनुयोगों द्वारा गुणस्थान विशेषण को छोडकर मार्गणास्थानों मे की गई है। इन ग्यारह अनुयोगो के नाम हैं—(१) एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, (२) एक जीव की अपेक्षा काल, (३) एक जीव की अपेक्षा अन्तर, (४) नाना जीवों की अपेक्षा भगविचय, (५) द्रव्यप्रमाणानुगम, (६) क्षेत्रानुगम, (७) स्पर्शनानुगम, (८) नाना जीवों की अपेक्षा काल, (९) नाना

जीवो की अपेक्षा अन्तर, (१०) भागाभागानुगम, और (११) अल्पबहुत्वानुगम। इन ग्यारह अनुयोगो के पूर्व प्रास्ताविकरूप से बन्धकों के सत्व की प्ररूपणा की गई है, और अन्त मे चूलिका रूप मे 'महादण्डक' दिया है। दृष्टिवाद के चतुर्थ भेद पूर्व के अन्तर्गत अग्रायणी पूर्व की पञ्चम वस्तु चयनलब्धि के छठे पाहुडबन्धन के बन्धक नामक अधिकार से इस खण्ड का उद्धार किया गया है।

नौवीं पुस्तक मे तीसरा खण्ड आता है जिसका नाम बध स्वामित्व विचय है। इसका अर्थ है बन्ध के स्वामित्व का विचार। यहाँ इस बात का विवेचन है कि कौन सा कर्मबन्ध किस गुणस्थान व मार्गणा मे सम्भव है। इस खण्ड मे ३२४ सूत्र है, प्रथम ४२ सूत्रों मे केवल गुणस्थान के अनुसार प्ररूपण किया गया है, शेष सूत्रों मे मार्गणा के अनुसार गुणस्थानो का प्ररूपण है।

नौवीं पुस्तक मे षट्खण्डागम का चतुर्थ खण्ड आता है जिसका नाम वेदनाखण्ड है, इसमे कृतिअनुयोगद्वार का स्पष्टीकरण किया है। इस खण्ड मे अग्रायणीय पूर्व की पाँचवीं वस्तु चयनलब्धि के चतुर्थ प्राभृत कर्मप्रकृति के चौबीस अनुयोगद्वारों मे से प्रथम दो—कृति और वेदना-अनुयोगद्वारो की प्ररूपणा है, जिसमे वेदना अधिकार अधिक विस्तार से प्रतिपादित किया गया है, इसलिये इस सम्पूर्ण खण्ड का नाम वेदना है। इस खण्ड के प्रारम्भ मे फिर से मगलाचरण किया है जो ४४ सूत्रों मे है। यही मगल धरसेनाचार्य के जोणिपाहुड मे गणधरवलय-मत्र के रूप मे पाया जाता है। इन सूत्रो मे जिन, अवधिजिन, परमावधिजिन, सर्वावधिजिन, अनतावधिजिन, कोष्ठबुद्धिजिन, बीजबुद्धिजिन, पदानुसारीजिन, सभिन्नश्रोताजिन, ऋजुमतिजिन, विपुलमतिजिन, दशपूर्वीजिन, चतुर्दशपूर्वीजिन, अष्टागमहानिमित्त-कुशलजिन, विक्रियाप्राप्तजिन, विद्याधर, चारण, प्रज्ञाश्रमण, आकाश गामी, आशीविष, दृष्टिविष, उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप,

घोरतप, घोरपराक्रम, घोरगुण, घोरगुणब्रह्मचारी, आमर्षौंषधिप्राप्त, खेलौंषधिप्राप्त, जल्लौषधिप्राप्त, विष्ठौषधिप्राप्त, सर्वौंषधिप्राप्त, मनोबली, वचनबली, कायबली, क्षीरस्रवी, सर्पिस्रवी, मधुस्रवी, अमृतस्रवी, अक्षीणमहानस, सर्वसिद्धायतन और वर्धमान बुद्ध ऋषि को नमस्कार किया है। टीकाकार ने अग, स्वर, व्यजन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष इन आठ महानिमित्तों के लक्षण समझाए है। यहाँ सूत्रकर्ता ने नाम, स्थापना, द्रव्य, गणन, ग्रथ, करण और भाव नामक सात कृतियों की सक्षिप्त प्ररूपणा की है।

वेदना महाधिकार मे १६ अनुयोगद्वार है, जिनमे से (१) वेदनानिक्षेप, (२) वेदनानयविभाषणता, (३) वेदनानाम विधान और (४) वेदनाद्रव्यविधान नाम के चार अनुयोगद्वारो का प्रतिपादन षट्खडागम की दसवी पुस्तक मे किया गया है।

षट्खडागम की ग्यारहवीं पुस्तक का नाम वेदना-क्षेत्रविधान वेदनाकाल विधान है। वेदना महाधिकार के अन्तर्गत वेदना निक्षेप आदि १६ अनुयोगद्वारो मे से ४ अनुयोगद्वारों का प्रतिपादन १० वीं पुस्तक मे किया जा चुका है। प्रस्तुत पुस्तक मे वेदना क्षेत्रविधान और वेदनाकालविधान नामक दो अनुयोगद्वारों का निरूपण है। वेदनाक्षेत्रविधान मे पदमीमासा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व का प्रतिपादन है। वेदनाद्रव्यविधान और क्षेत्रविधान के समान वेदनाकालविधान में भी पदमीमासा, स्वामित्व और अल्पबहुत्व नाम के तीन अनुयोगद्वार हैं। इसके अन्त मे दो चूलिकायें हैं। वेदनाक्षेत्रविधान मे ९९ और वेदनाकालविधान मे २७९ सूत्र है।

षट्खडागम की बारहवी पुस्तक मे वेदनाखड नाम का चौथा खड समाप्त हो जाता है। वेदना अनुयोगद्वार के १६ अधिकारों मे से निम्नलिखित दस अधिकारों का प्ररूपण प्रस्तुत भाग मे किया गया है—वेदनाभावविधान, वेदनाप्रत्ययविधान, वेदना

स्वामित्वविधान, वेदनावेदनाविधान, वेदनागतिविधान, वेदना अनन्तरविधान, वेदनासन्निकर्षविधान, वेदनापरिमाणविधान वेदनाभागाभागविधान और वेदनाअल्पबहुत्वविधान । इनमे क्रमश ३१४, १६, १५, ५८, १०, ११, ३२०, ५३, २० और २६ सूत्र है।

तेरहवीं पुस्तक मे वर्गणा नामका पॉचवॉ खड आरम्भ होता है, इसमे स्पर्श, कर्म और प्रकृति नामक तीन अनुयोगद्वारो का प्रतिपादन है। स्पर्श अनुयोगद्वार मे स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान आदि १६ अधिकारों द्वारा स्पर्श का विचार किया गया है। कर्म अनुयोगद्वार मे नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अध - कर्म, ईर्यापथकर्म, तप कर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म का प्ररूपण किया है। प्रकृतिअनुयोगद्वार मे प्रकृतिनिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारों का विवेचन है। इन तीनों अनुयोगद्वारों मे क्रमश ३३, ३१ और १४२ सूत्र है। प्रकृतिअनुयोगद्वार मे भाषाविषयक ऊहापोह करते हुए कीर, पारसीक, सिंघल और बर्बरीक आदि देशवासियों की भाषा को कुभाषा कहा है। फिर तीन कुरु, तीन लाढ, तीन महाराष्ट्र, तीन मालव, तीन गौड और तीन मगध देश की भाषाओं के भेद से अठारह प्रकार की भाषाऍ बताई गई है। श्रुतज्ञान का स्वरूप बताते हुए द्वादशाग वाणी की मुख्यता से उसके सख्यात भेद किये है। फिर अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान का स्वरूप प्रतिपादित है।

षट्खडागम की चौदहवी पुस्तक मे वर्गणा नाम के पॉचवें खड मे ७९८ सूत्रों मे बधन अनुयोगद्वार का वर्णन है। इसकी टीका में धवलाकार ने कर्मबध का अत्यत सूक्ष्म विवेचन किया है। बधन के चार भेद है—बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बधविधान। इस अनुयोगद्वार मे बध और बधनीय का विशेष विचार किया गया है। जीव से पृथग्भूत कर्म और नोकर्म स्कधों को बधनीय कहते है।

षट्खडागम की पन्द्रहवीं पुस्तक मे निबधन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय नाम के चार अनुयोगद्वारों का प्ररूपण है। अग्रायणी पूर्व के १४ अधिकारो मे पॉचवॉ चयनलब्धि नाम का अधिकार है। इसमे २० प्राभृत है, चतुर्थ प्राभृत का नाम कर्मप्रकृति-प्राभृत है। इस प्राभृत मे कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बधन, निबधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय आदि २४ अधिकार है। इनमे से वेदना नामक चतुर्थ खड मे कृति (नौवी पुस्तक), और वेदना (दसवी-ग्यारहवीं और बारहवी पुस्तक) तथा वर्गणा नाम के पॉचवे खड मे स्पर्श, कर्म और प्रकृति (तेरहवी पुस्तक) अधिकारों का प्ररूपण किया है। बन्धन नाम का अनुयोगद्वार बन्ध, बन्धनीय, बन्धक और बन्धविधान नामक चार अवान्तर अनुयोगद्वारों मे विभक्त है। इनमे से बन्ध और बन्धनीय अधिकारों की प्ररूपणा १४ वी पुस्तक मे की गई है। इस प्रकार पुष्पदन्त और भूतबलिकृत मूल षट्खडागम मे २४ अनुयोगद्वारो मे से प्रथम छह अनुयोगद्वारो के विषय का विवरण है। शेष निबधन आदि १८ अनुयोगद्वारो की प्ररूपणा मूल षट्खडागम मे नही है। इनकी प्ररूपणा वीरसेन ने अपनी धवला टीका मे की है। इन १८ अनुयोगद्वारो मे से निबधन, प्रक्रम, उपक्रम और उदय नाम के प्रथम चार अनुयोगद्वारों की प्ररूपणा पन्द्रहवी पुस्तक मे की गई है।

षट्खडागम की सोलहवीं पुस्तक मे मोक्ष, सक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सातासात, दीर्घ ह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्त, निधत्त-अनिधत्त, निकाचित अनिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कध और अल्पबहुत्व नामक शेष १४ अनुयोगद्वारों का परिचय कराया गया है।

इस प्रकार सोलह पुस्तकों मे षट्खण्डागम और उसकी धवला टीका समाप्त होती है।

महाबन्ध

महाबन्ध को महाधवल के नाम से भी कहा गया है। पहले कहा जा चुका है, यह ग्रन्थ षट्खण्डागम का ही छठा खण्ड है, जिसकी रचना आचार्य भूतबलि ने की है। इसका मगलाचरण भी पृथक् न होकर षट्खण्डागम के चतुर्थ खण्ड वेदना आदि मे उपलब्ध मगलाचरण से ही सम्बद्ध है। फिर भी यह महान् कृति स्वतन्त्र कृति के रूप मे उपलब्ध होती है। इसका एक तो कारण यह है कि यह पूर्वोक्त पॉच खण्डो से बहुत विशाल है, दूसरे इस ग्रथराज पर टीका लिखने की आवश्यकता नही समझी गई, इसलिये धवलाकार आचार्य वीरसेन ने इस पर टीका नहीं लिखी। इसकी रचना ४० हजार श्लोकप्रमाण है।

महाबन्ध सात भागों मे है।[1] प्रथम पुस्तक मे प्रकृतिबन्ध नाम के प्रथम अधिकार का सर्वबन्ध, नोसर्वबध, उत्कृष्टबध, अनुत्कृष्टबध आदि अधिकारों मे प्ररूपण किया गया है। दूसरी पुस्तक मे स्थितिबध अधिकार का प्ररूपण है। इसके दो मुख्य अधिकार है—मूलप्रकृतिस्थितिबध और उत्तरप्रकृतिस्थितिबध। मूलप्रकृतिस्थितिबध के मुख्य अधिकार चार है—स्थितिबध-स्थानप्ररूपणा, निषेकप्ररूपणा, आबाधकाडकप्ररूपणा और अल्प-बहुत्व। आगे चलकर अद्धाच्छेद, सर्वबध, नोसर्वबध, उत्कृष्टबध, अनुत्कृष्टबध आदि अधिकारों के द्वारा मूलप्रकृतिस्थितिबंध का विचार किया गया है। उत्तरप्रकृतिस्थितिबध का विचार भी इसी प्रक्रिया से किया है। तीसरी पुस्तक मे स्थितिबध के शेष भाग का प्ररूपण चालू है। बन्धसन्निकर्ष, नाना जीवों की अपेक्षा भगविचय, भागाभागप्ररूपणा, परिमाणप्ररूपणा, क्षेत्रप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा, कालप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, भावप्ररूपणा और अल्पबहुत्व नामक अधिकारों के द्वारा विषय का विवेचन किया गया है। चौथी पुस्तक में अनुभागबध अधिकार का प्ररूपण

---

१ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९४७–१९५८ में प्रकाशित।

किया है। मूलप्रकृतिअनुभागबध और उत्तरप्रकृतिअनुभाग-बध की अपेक्षा यह दो प्रकार का है। इनका निषेकप्ररूपणा, स्पर्धकप्ररूपणा आदि अधिकारों द्वारा विवेचन किया है। पॉचवीं पुस्तक मे अनुभागबध अधिकार के शेष भाग का प्ररूपण है। सन्निकर्ष, भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन आदि प्ररूपणाओं द्वारा इसका विवेचन किया है। छठी पुस्तक मे प्रदेशबध नामके अधिकार का विवेचन है। इसमे प्रत्येक समय मे बध को प्राप्त होनेवाले मूल और उत्तर कर्मों के प्रदेशों के आश्रय से मूलप्रकृतिप्रदेशबध और उत्तरप्रकृतिप्रदेशबध का विचार किया गया है। अनेक अनुयोगद्वारों के द्वारा इनका प्ररूपण किया है। महाबध की सातवीं पुस्तक मे प्रदेशबध अधिकार के शेषभाग का निरूपण है। इसमे क्षेत्रप्ररूपणा, स्पर्शनप्ररूपणा, कालप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा, भावप्ररूपणा, अल्पबहुत्वप्ररूपणा, भुजगारबन्ध, पदनिक्षेप, समुत्कीर्तना, स्वामित्व, अल्पबहुत्व, वृद्धिबध, अध्यवसान समुदाहार और जीवस-मुदाहार नामक अधिकारों के द्वारा विषय का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार सात पुस्तकों मे महाबध समाप्त होता है। महाबध के समाप्त होने से षट्खण्डागम के छहों खण्डों की समाप्ति हो जाती है।

कसायपाहुड (कषायप्राभृत)

षट्खडागम की भॉति कषायप्राभृत भी द्वादशाग का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस ग्रन्थ का उद्धार पॉचवे ज्ञानप्रवादपूर्व की दसवीं वस्तु के तीसरे पेज्जदोसपाहुड से किया गया है। अतएव कषायप्राभृत को पेज्जदोसपाहुड भी कहा जाता है। पेज्ज का अर्थ राग और दोस का अर्थ द्वेष होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में क्रोध आदि कषायों की राग द्वेष परिणति और उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशगत वैशिष्ट्य आदि का निरूपण किया गया है। कषायप्राभृत की रचना २३३ गाथा सूत्रों मे की गई है—ये सूत्र अत्यन्त सक्षिप्त और गूढार्थ लिये हुए है। इनके

कर्ता आचार्य गुणधर है, जिनका समय ईसवी सन् की दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जाता है। गुणधर आचार्य ने कषायप्राभृत की रचना करके आचार्य नागहस्ती और आर्यमक्षु को उसका व्याख्यान किया। उनके समीप इस ग्रन्थ का अध्ययन कर आचार्य यतिवृषभ ने ईसवी सन् की लगभग छठी शताब्दी मे इस पर छह हजार श्लोकप्रमाण चूर्णी सूत्रों की प्राकृत मे रचना की। तत्पश्चात् आचार्य यतिवृषभ से चूर्णी सूत्रो का अध्ययन कर उच्चारणाचार्य ने उन पर बारह हजार श्लोकप्रमाण उच्चारणसूत्रो की रचना की। उच्चारणाचार्य की यह टीका आजकल उपलब्ध नहीं है। मूल गाथा-सूत्रो और यतिवृषभ के चूर्णीसूत्रो को लेकर आचार्य वीरसेन ने सन् ८७४ मे अपनी जयधवला टीका लिखी जिसे राष्ट्रकूट के राजा अमोघवर्ष के गुरु जिनसेन आचार्य ने समाप्त किया।

कषायप्राभृत १५ अधिकारों मे विभाजित है।[१] पहला अधिकार पेज्जदोषविभक्ति है। अगले चौदह अधिकारों के नाम है—स्थितिविभक्ति, अनुभागविभक्ति, प्रदेशविभक्ति क्षीणाक्षीण-स्थित्यन्तिक, बधक, वेदक, उपयोग, चतु स्थान, व्यञ्जन, दर्शन-मोहोपशामना, दर्शनमोहक्षपणा, सयमासयमलब्धि, सयमलब्धि, चारित्रमोहोपशामना, चारित्रमोहक्षपणा। इनमे प्रारम्भ के आठ अधिकारों मे ससार के कारणभूत मोहनीयकर्म की, और अन्तिम सात अधिकारों मे आत्मपरिणामों के विकास से शिथिल होते हुए मोहनीय कर्म की विविध दशाओं का वर्णन है।

कसायपाहुड की पहली पुस्तक मे पेज्जदोषविभक्ति नाम के

---

१ यह ग्रथ भारत दिगम्बर जैनसघग्रथमाला से सन् १९४४ से १९५६ तक अभी तक पाँच पुस्तकों में प्रकाशित हुआ है। इसमे गुणधराचार्य के गाथा सूत्र, यतिवृषभ के चूर्णीसूत्र और वीरसेन की टीका गर्भित है। कसायपाहुडसुत्त यतिवृषभ के चूर्णीसूत्रों सहित वीरशासनसघ, कलकत्ता से सन् १९५५ मे पण्डित हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है।

अधिकार का वर्णन है। यहाँ श्रुतज्ञान के भेद, अगबाह्य और अगप्रविष्ट के भेद, केवलियो के कवलाहार का विचार, विपुलाचल पर भगवान् महावीर द्वारा धर्मतीर्थ का प्ररूपण, आचाराग आदि ११ अङ्गो के विषय का कथन, दिव्यध्वनि का स्वरूप, तीन सौ तरेसठ मतों का उल्लेख, १४ पूर्वों के विषय का कथन, नय का विवेचन, कषाय के सम्बन्ध मे विचार आदि का वर्णन किया गया है। दूसरी पुस्तक मे प्रकृतिविभक्ति का विवेचन है। प्रकृतिविभक्ति के दो भेद है-मूलप्रकृतिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिविभक्ति। यहाँ मोहनीय कर्म और उसकी उत्तरप्रकृतियो का वर्णन है। मूलप्रकृति से यहाँ मोहनीयकर्म और उत्तरप्रकृति से मोहनीय कर्म की उत्तरप्रकृतियाँ ली गई है। मूलप्रकृतिविभक्ति के वर्णन के लिये यतिवृषभ ने ८ और जयधवलाकार ने १७ अनुयोगद्वार रक्खे है। उत्तरप्रकृतिविभक्ति के दो भेद है—एकैकउत्तरप्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थानउत्तरप्रकृतिविभक्ति। पहले भाग मे मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियों का पृथक् पृथक् निरूपण है, दूसरे भाग मे मोहनीय कर्म के १५ प्रकृतिक स्थानों का कथन है। इनका अनेक अनुयोगद्वारों की अपेक्षा कथन किया गया है। कसायपाहुड की तीसरी पुस्तक में स्थितिविभक्ति का विवेचन है। स्थितिविभक्ति के भी दो भेद है—मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति। इनका अद्धाच्छेद, सर्वविभक्ति नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति आदि २४ अनुयोगद्वारों की अपेक्षा विवेचन किया गया है। चौथी पुस्तक मे स्थितिविभक्तिअधिकार नाम के शेषभाग का विवेचन है। यहाँ भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थितिसत्कर्मस्थान के अधिकारो को लेकर विषय का विवेचन किया है। कषायप्राभृत की पाँचवीं पुस्तक मे अनुभागविभक्ति का प्ररूपण है। इस अधिकार के भी दो भेद है—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति। आचार्य वीरसेन ने मूलप्रकृतिअनुभागप्रकृति का विशेष व्याख्यान सज्ञा, सर्वानुभागविभक्ति, नोसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्टानुभागविभक्ति, अनुत्कृष्टानुभाग-

विभक्ति आदि २३ अनुयोगद्वारो का अवलम्बन लेकर किया है। इसी प्रकार उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति मे सर्वानुभागविभक्ति, नोसर्वानुभागविभक्ति, उत्कृष्टअनुभागविभक्ति, अनुत्कृष्टअनुभाग-विभक्ति आदि अनुयोगद्वारों का अवलम्बन लेकर विषय का विवेचन है।

तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति)

कषायप्राभृत पर चूर्णीसूत्रों के रचयिता यतिवृषभ आचार्य की दूसरी रचना त्रिलोकप्रज्ञप्ति[1] है। करणानुयोग का यह प्राचीन ग्रथ प्राकृतभाषा मे लिखा गया है जो आठ हजार श्लोकप्रमाण है। इसमे त्रिलोकसबधी विषय का वर्णन है। यह ग्रथ दिगबर साहित्य के प्राचीनतम श्रुताग से सबध रखता है। धवलाटीका मे इस ग्रथ के अनेक उद्धरणों का उल्लेख है। ग्रथकर्ता को त्रिलोकप्रज्ञप्ति के विषय का ज्ञान आचार्यपरपरा से प्राप्त हुआ है। ग्रथ मे अग्रायणी, परिकर्म, लोकविभाग और लोकविनिश्चय नामक प्राचीन ग्रथों और उनके पाठातरों का उल्लेख मिलता है। अनेक मतभेदों का निर्देश यहाँ किया गया है। इस ग्रथ का विषय श्वेताबर आगमों के अन्तर्गत सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[2] तथा दिगम्बरीय धवला-जयधवला टीका और त्रिलोकसार आदि प्राकृत के ग्रथों से मिलता जुलता है। लोकविभाग, मूलाचार, भगवतीआराधना, पचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार आदि प्राचीन ग्रथों और तिलोयपण्णत्ति की बहुत सी गाथायें समान है।[3]

---

१ डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये और डॉक्टर हीरालाल जैन द्वारा सपादित, जीवराज जैन ग्रन्थमाला शोलापुर में सन् १९४३ और १९५१ मे दो भागों में प्रकाशित।

२ देखिये तिलोयपण्णत्ति, भाग २ की भूमिका, पृ० ३८–६२। इस प्रकार की गाथाओं को परपरागत ही मानना चाहिये।

३ तिलोयपण्णत्ति की प्रस्तावना (पृष्ठ ७४ आदि) में डॉक्टर

प्रस्तुत ग्रन्थ सामान्यलोक, नारकलोक, भवनवासीलोक, मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, देवलोक और सिद्धलोक नामक नौ महाधिकारों मे विभाजित है। मुख्यरूप से इन अधिकारो में भूगोल और खगोल का वर्णन है, प्रसगवश जैन सिद्धात, पुराण और इतिहास आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। प्रथम महाधिकार मे २८३ गाथाये और ३ गद्यभाग हैं। क्षेत्रमगल के उदाहरण मे पावा, ऊर्जयन्त और चपा आदि तीर्थों का उल्लेख है। अठारह श्रेणियो मे हस्ति, तुरग, रथ और इनके अधिपति, सेनापति, पदाति, श्रेष्ठी, दडपति, शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, महत्तर, प्रवर, गणराज, मन्त्री, तलवर (कोतवाल), पुरोहित, अमात्य और महामात्य के नाम गिनाये है। अर्थागम के कर्त्ता महावीर भगवान् के शरीर आदि का वर्णन करते हुए १८ प्रकार की महाभाषा और ७०० क्षुद्र भाषाओ का उल्लेख है। राजगृह में विपुल, ऋषिशैल, वैभार, छिन्न और पाडु नाम के पॉच[1] शैलो का उल्लेख है। त्रिलोक की मोटाई, चौडाई और ऊँचाई का वर्णन यहाँ दृष्टिवाद नामक सूत्र के आधार से किया है। दूसरे महाधिकार मे ३६७ गाथायें है जिनमे नरकलोक के स्वरूप का वर्णन है। तीसरे महाधिकार मे २४३ गाथायें है जिनमे भवनवासियों के लोक का स्वरूप बताया है। भवनवासी देवों के प्रासादों मे जन्मशाला, अभिषेकशाला, भूषणशाला, मैथुनशाला, परिचर्यागृह (ओलग्गशाला) और मत्रशाला आदि शालाओं, तथा सामान्यगृह, गर्भगृह, कदलीगृह, चित्रगृह, आसनगृह,

---

हीरालाल जैन ने तिलोयपण्णत्ति के विषय आदि की श्वेताम्बर आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के बृहत्क्षेत्रसमास और बृहत्सग्रहणी तथा नेमिचन्द्र के प्रवचनसारोद्धार के विषय आदि के साथ तुलना की है।

१ बौद्धों के सुत्तनिपात की अट्ठकथा (२, पृष्ठ ३८२) में पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल नाम के पाँच पर्वतों का उल्लेख है। महाभारत (२, २१, २) में वैहार वाराह, ऋषभ ऋषिगिरि और चैत्यक का उल्लेख है।

नादगृह और लतागृह आदि का वर्णन है। अश्वत्थ (पीपल), सप्तवर्ण, शाल्मलि, जबू, वेतस कदब, प्रियगु, शिरीप, पलाश, और राजद्रुम नाम के दस चैत्यवृक्षों का उल्लेख है। चौथा महाधिकार सब से बडा है, उसमे २९६१ गाथाओं मे मनुष्यलोक का स्वरूप प्रतिपादित है। यहाँ विजयार्ध दक्षिण और उत्तर श्रेणियो मे अवस्थित नगरियो का उल्लेख है। आठ मगल द्रव्यों मे भृगार (झारी), कलश, दर्पण, व्यजन, ध्वजा, छत्र, चमर और सुप्रतिष्ठ (एक पात्र) के नाम गिनाये गये है। भोगभूमि मे स्थित दश कल्पवृक्षो का वर्णन है। स्त्री और पुरुषों के आभूषणों का उल्लेख है। भोगभूमि मे उत्पन्न होनेवाले युगल नर-नारियों का वर्णन है। चौबीस तीर्थंकरो की जन्मभूमि, नक्षत्र, और उनकी आयु आदि का उल्लेख है। नेमि, मल्लि, महावीर, वासुपूज्य और पार्श्वनाथ द्वारा कुमार अवस्था मे, तथा शेष तीर्थंकरों द्वारा राज्य के अन्त मे तप स्वीकार करने का उल्लेख है।[1] महावीर भगवान् के निर्वाण प्राप्त करने पर गौतमस्वामी को, गौतम के निर्वाण प्राप्त करने पर सुधर्मस्वामी को, और सुधर्मस्वामी के निर्वाण प्राप्त करने पर जम्बूस्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। मुक्तिगामियो मे अन्तिम श्रीधर, चारण ऋषियो मे अन्तिम सुपार्श्वचन्द्र, प्रज्ञाश्रमणों में अन्तिम वज्रयश, अवधिज्ञानियो मे अन्तिम श्रीनामक और मुकुटधरों मे जिनदीक्षाधारको मे अन्तिम चन्द्रगुप्त का उल्लेख है। सामान्य भूमि का प्रमाण, सोपानों का प्रमाण, विन्यास, वीथि, धूलिशाल, चैत्य प्रासादभूमियाँ, नृत्यशाला, मानस्तभ, वेदी आदि ३१ अधिकारों मे समवसरण का वर्णन किया है। तीर्थंकरों के अतिशयों का प्रतिपादन है। यक्षों मे गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुबुरव, मातग, विजय, अजित, ब्रह्म, आदि तथा यक्षिणियों मे चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्राकुशा,

---

१ णेमी मल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य।
पासो वि य गहिदतवा सेसजिणा रज्जचरमम्मि॥

अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, ज्वालामालिनी, कूष्माडी आदि के नाम गिनाये है। आठ प्रकार की ऋद्धियाँ बताई है। चतुर्दश-पूर्वधारी, दशपूर्वधारी, एकादश अगधारी और आचारागधारियों का वर्णन है। क्वचित् सूक्तियाँ भी दिखाई दे जाती है—

अधो णिवडइ कूवे बहिरो ण सुणेदि साधु उवदेस।
पेच्छतो णिसुणतो णिरए ज पडइ त चोज्ज॥

—अधा कूप मे गिर जाता है और बहरा साधु का उपदेश नही सुनता, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य यही है कि यह जीव देखता और सुनता हुआ भी नरक मे जा पडता है।

पाँचवें महाधिकार मे ३२१ गाथाये है, इसमे गद्यभाग ही अधिक है। तिर्यग्लोक मे असख्यात द्वीप-समुद्र हैं। यहाँ जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखड, कालोदसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, नन्दीश्वरद्वीप, कुण्डलवरद्वीप, स्वयभूरमणद्वीप आदि के विस्तार, क्षेत्रफल आदि का वर्णन है। छठे महाधिकार मे १०३ गाथाये है जिनमे १७ अन्तराधिकारो के द्वारा व्यन्तर देवों के निवासक्षेत्र, उनके भेद, चिह्न, कुलभेद, नाम, इन्द्र, आयु, आहार आदि का प्ररूपण है। सातवें महाधिकार मे ६१६ गाथायें है। इसमे ज्योतिष देवों के निवासक्षेत्र, उनके भेद, सख्या, विन्यास, परिमाण, उत्सेध, अवधिज्ञान, शक्ति आदि का विस्तार से प्रतिपादन है। आठवें महाधिकार मे ७०३ गाथाये हैं जिनमे वैमानिक देवों के निवासक्षेत्र, विन्यास, भेद, नाम, सीमा, विमानसख्या, इन्द्र-विभूति, गुणस्थान आदि, सम्यक्त्वग्रहण के कारण आदि का वर्णन किया गया है। नौवे महाधिकार मे सिद्धों के क्षेत्र, उनकी सख्या, अवगाहना और सुख का प्ररूपण है।

लोकविभाग

तिलोयपण्णत्ति के कर्त्ता यतिवृषभ ने लोकविभाग का अनेक जगह उल्लेख किया है, लेकिन यह ग्रथ कब और किसके द्वारा रचा गया इसका कुछ पता नहीं लगता। सिंहसूरि के सस्कृत

लोकविभाग के अन्त मे दी हुई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सर्वनन्दि के प्राकृत ग्रन्थ की भाषा का परिवर्तन करके सिंहसूरि ने अपने सस्कृत लोकविभाग की रचना की। इस ग्रथ का ईसवी सन् की छठी शताब्दी से पूर्व होने का अनुमान किया जाता है।[1]

पचास्तिकाय प्रवचनसार-समयसार

दिगबर सप्रदाय मे भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्द का नाम लिया जाता है। इन्हें पद्मनदि, वक्रग्रीव, एलाचार्य और गृद्धपिच्छ के नाम से भी कहा है। लेकिन इनका वास्तविक नाम था पद्मनन्दि, और कोण्डकुण्ड के निवासी होने के कारण ये कुन्दकुन्द नाम से कहे जाते थे। इनका समय ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के आसपास माना गया है, ये तीसरी चौथी शताब्दी के जान पडते है।[2] कुन्दकुन्द के पचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार को नाटकत्रय अथवा प्राभृतत्रय के नाम से भी कहा गया है। ये द्रव्यार्थिक नयप्रधान आध्यात्मिक ग्रन्थ है, इनमे शुद्ध निश्चयनय से वस्तु का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द ने नियमसार, रयणसार, अष्टपाहुड और दशभक्ति की रचना की है।

पचास्तिकाय[3] मे पॉच अस्तिकायों का वर्णन है। इस पर अमृतचन्द्रसूरि और जयसेन आचार्य ने सस्कृत मे टीकायें लिखी है। पचास्तिकाय मे १७३ गाथाये हैं जो दो श्रुतस्कधों मे विभाजित है। पहले श्रुतस्कध मे षड्द्रव्य और पॉच अस्तिकायों

---

१ तिलोयपण्णत्ति की प्रस्तावना, पृ० ४६।

२ देखिये डॉ० उपाध्ये, प्रवचनसार की भूमिका, पृष्ठ १०-२२।

३ रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला में अमृतचन्द्र और जयसेन की सस्कृत टीकाओं सहित सन् १९०४ में बम्बई से प्रकाशित; सेक्रेड बुक्स ऑव द जैन्स, जिल्द ३ में प्रोफेसर ए० चक्रवर्ती के अंग्रेजी अनुवाद और भूमिका सहित सन् १९२० में आरा से प्रकाशित।

का व्याख्यान है। यहाँ द्रव्य का लक्षण, द्रव्य के भेद, सप्तभगी, गुण और पर्याय, काल द्रव्य का स्वरूप, जीव का लक्षण, सिद्धो का स्वरूप, जीव और पुद्गल का बध, पद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल के लक्षण का प्रतिपादन किया है। दूसरे श्रुतस्कध मे नौ पदार्थों के प्ररूपण के साथ मोक्षमार्ग का वर्णन है। पुण्य, पाप, जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष का यहाँ कथन है।

प्रवचनसार[1] आचार्य कुन्दकुन्द की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। इस पर भी अमृतचन्द्रसूरि और जयसेन आचार्य की सस्कृत मे टीकाये है। इस ग्रन्थ मे तीन श्रुतस्कध है। प्रथम श्रुतस्कध मे ज्ञान, द्वितीय श्रुतस्कध मे ज्ञेय और तृतीय श्रुतस्कध मे चारित्र का प्रतिपादन है। इसमे कुल मिलाकर २७५ गाथाये है। ज्ञान अधिकार मे आत्मा और ज्ञान का एकत्व और अन्यत्व, सर्वज्ञत्व की सिद्धि, इन्द्रिय और अतीन्द्रिय सुख, शुभ, अशुभ, और शुद्ध उपयोग तथा मोहक्षय आदि का प्ररूपण है। ज्ञेय अधिकार मे द्रव्य, गुण, पर्याय का स्वरूप, सप्तभगी, ज्ञान, कर्म और कर्मफल का स्वरूप, मूर्त और अमूर्त द्रव्यों के गुण, काल के द्रव्य और पर्याय, प्राण, शुभ और अशुभ उपयोग, जीव का लक्षण, जीव और पुद्गल का सबध, निश्चय और व्यवहार नय का अविरोध और शुद्धात्मा आदि का प्रतिपादन है। चारित्र अधिकार मे श्रामण्य के चिह्न छेदोपस्थापक श्रमण, छेद का स्वरूप, युक्त आहार, उत्सर्ग और अपवादमार्ग, आगमज्ञान का महत्व, श्रमण का लक्षण, मोक्ष तत्व आदि का प्ररूपण है। 'व्यवहारसूत्र'[2] मे कुशल श्रमण के पास जाकर आलोचना करने का विधान है (२१२)। हिंसा का लक्षण बताते हुए कहा है—

---

१ डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये द्वारा सपादित, रायचन्द्र जैन शास्त्र माला में सन् १९३५ में प्रकाशित।

२ यह सूत्र श्वेताम्बरों के यहाँ मिलता है, इसका परिचय पहले दिया जा चुका है।

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि बधो हिंसामेत्तेण समिदस्स ॥

—जीव मरे या जीये, अयत्नपूर्वक आचरण करनेवाले को हिसा का दोष निश्चित लगता है। प्रयत्नशील समितियुक्त जीव को केवल बहिरग हिसा कर देने मात्र से कर्म का बध नही होता।

समयसार[1] मे ४३७ गाथाये है। अमृतचन्द्र और जयसेन की इस पर टीकाये है। इसमे १० अधिकार है। पहले अधिकार में स्वसमय, परसमय, शुद्धनय, आत्मभावना और सम्यक्त्व का प्ररूपण है। दूसरे मे जीव-अजीव, तीसरे मे कर्म-कर्ता, चौथे मे पुण्य पाप, पॉचवे मे आस्रव, छठे मे सवर, सातवे मे निर्जरा, आठवे मे बध, नौवें मे मोक्ष और दसवे मे शुद्ध पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन है। समयसार का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए कहा है—

कम्म बद्धमबद्ध जीव एव तु जाण णयपक्ख।
पक्खादिक्कतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥

—जीव कर्म से बद्ध है या नहीं, यह नयों की अपेक्षा से ही जानना चाहिये। जो नयों की अपेक्षा से रहित है उसे समय का सार समझना चाहिये।

शुद्ध नय की अपेक्षा जीव को कर्मों से अस्पृष्ट माना गया है—

जीवे कम्म बद्ध पुट्ठ चेदि ववहारणयभणिद।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठ हवइ कम्म ॥

—व्यवहार नय की अपेक्षा जीव कर्मों से स्पृष्ट है, शुद्ध नय की अपेक्षा तो उसे अबद्ध और अस्पृष्ट समझना चाहिये।

कर्मभाव के नष्ट हो जाने पर कर्म का फिर से उदय नहीं होता—

---

१ रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला में अमृतचन्द्र और जयसेन की सस्कृत टीकाओं के साथ सन् १९१९ में बम्बई से प्रकाशित, सेक्रेड बुक्स आव द जैन्स, जिल्द ८ मे जे० एल० जैनी के अग्रेजी अनुवाद सहित सन् १९३० में लखनऊ से प्रकाशित।

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फल वज्झदे पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेइ॥

—जैसे पके फल के गिर जाने पर वह फिर अपने डंठल से युक्त नहीं होता, वैसे ही कर्मभाव के नष्ट हो जाने पर फिर से उसका उदय नहीं होता।

नियमसार

नियमसार[1] मे १८६ गाथायें हैं, जिन पर पद्मप्रभमलधारिदेव ने ईसवी सन् १००० के लगभग टीका लिखी है। पद्मप्रभ ने प्राभृतत्रय के टीकाकार अमृतचन्द्रसूरि की टीका के श्लोक नियमसार की टीका मे उद्धृत किये हैं। इसमे सम्यक्त्व, आप्त, आगम, सात तत्व, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के अन्तर्गत १२ व्रत, १२ प्रतिमा, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, परमसमाधि, परमभक्ति, निश्चय आवश्यक, शुद्ध उपयोग आदि का विवेचन है।

रयणसार

रयणसार मे १६७ गाथाये है। यहाँ सम्यक्त्व को रत्नसार कहा गया है। इस ग्रथ के पढने और श्रवण से मोक्ष की प्राप्ति बताई है। एक उक्ति देखिये—

विणओ भत्तिविहीणो महिलाण रोयण विणा णेह।
चागो वेरग्गविणा एदे दोवारिया भणिया॥

—भक्ति के बिना विनय, स्नेह के बिना महिलाओं का रोदन और वैराग्य के बिना त्याग ये तीनों विडबनायें है।

एक उपमा देखिये—

मक्खि सिलिम्मे पडिओ मुवइ जहा तह परिग्गहे पडिउ।
लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी॥

---

१ जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई से सन् १९१६ में प्रकाशित। इस पर पद्मप्रभमलधारिदेव ने संस्कृत में टीका लिखी है जिसका हिन्दी अनुवाद ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी ने किया है।

—जैसे श्लेष्म मे लिपटी हुई मक्खी तत्काल ही मर जाती है, उसी प्रकार परिग्रह से युक्त लोभी, मूढ और अज्ञानी मुनि कायक्लेश का ही भाजन होता है।

अष्टपाहुड

कुन्दकुन्द के षट्पाहुड[1] मे दसणपाहुड, चरित्तपाहुड, सुत्तपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड और मोक्खपाहुड नामके छह प्राभृतों का अन्तर्भाव होता है। इन पर आचार्य श्रुतसागर ने टीका लिखी है। श्रुतसागर विद्यानन्दि भट्टारक के शिष्य थे और वे कलिकालसर्वज्ञ, उभयभाषाचक्रवर्ती आदि पदवियो से विभूषित थे। दसणपाहुड की टीका मे श्रुतसागर आचार्य ने गोपुच्छिक, श्वेतवास, द्राविड, यापनीयक और निष्पिच्छ नामके पॉच जैनाभासो का उल्लेख किया है। सुत्तपाहुड मे आचार्य कुन्दकुन्द ने नग्नत्व को ही मोक्ष का मार्ग बताया है। भावपाहुड मे बाहुबलि, मधुपिङ्ग, वशिष्ठ मुनि, द्वीपायन, शिवकुमार, भव्यसेन और शिवभूति के उदाहरण दिये है। आत्महित को यहॉ मुख्य बताया है—

उत्थरइ जाण जरओ रोयग्गी जाण डहइ देहउडिं।
इदियबल न वियलइ ताव तुम कुणहि अप्पहिय॥

—जब तक जरावस्था आक्रान्त नहीं करती, रोग रूपी अग्नि देह रूपी कुटिया को नहीं जला देती, और इन्द्रियों की शक्ति क्षीण नहीं हो जाती, तब तक आत्महित करते रहना चाहिये।

योगी के सम्बन्ध मे मोक्खपाहुड मे कहा है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे॥

---

1 षट्प्राभृतादिसग्रह पण्डित पन्नालाल सोनी द्वारा सम्पादित होकर माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में विक्रम सवत् १९७७ में प्रकाशित हुआ है। इसमें षट्प्राभृत के साथ लिंगप्राभृत, शीलप्राभृत, रयणसार और बारह अणुवेक्खा का भी सग्रह है।

—जो योगी व्यवहार मे सोता है वह स्वकार्य मे जागृत रहता है, जो व्यवहार मे जागृत रहता है वह स्वकार्य मे सोता रहता है।

लिंगपाहुड मे २२ और सीलपाहुड में ४० गाथाये है। सीलपाहुड मे दशपूर्वी सात्यकिपुत्र का दृष्टान्त दिया है।

बारस अणुवेक्खा

कुन्दकुन्द की बारस अणुवेक्खा (द्वादश अनुप्रेक्षा) मे ९१ गाथाये है, यहॉ अध्रुव, अशरण आदि १२ भावनाओं का विवेचन है।[1]

दसभत्ति (दशभक्ति)

दशभक्ति मे तीर्थंकर, सिद्ध, श्रुत, चारित्र आदि की भक्ति की गई है। इसका अधिकाश भाग पद्य मे है, कुछ गद्य मे भी है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रतिक्रमणसूत्र, आवश्यकसूत्र और पचसुत्त के साथ इसकी तुलना की जा सकती है। तित्थयरभत्ति तो दोनों सम्प्रदायों मे समान है। दुर्भाग्य से दशभक्ति का कोई सुसपादित सस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।[2] प्रभाचन्द्र के दशभक्तियों पर टीका लिखी है। उन्होंने पूज्यपाद

---

१ इसकी कुछ गाथायें मूलाचार के ८वें अध्याय की गाथाओं से मिलती-जुलती हैं, देखिये डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये की प्रवचनसार की भूमिका, पृष्ठ ३९ का फुटनोट। कार्तिकेय ने भी कत्तिगेयाणुवेक्खा की रचना की है। इसी प्रकार भगवतीआराधना में १५० गाथाओं में और मरणसमाहीपइन्ना में ७० गाथाओं में बारह अनुप्रेक्षाओं का विवेचन किया गया है।

२ दोशी सखाराम नेमचन्द, शोलापुर द्वारा सन् १९२१ में प्रकाशित। पण्डित जिनदास पार्श्वनाथ न्यायतीर्थ ने इसका मराठी अनुवाद किया। महावीर प्रेस, आगरा से वि० स० १९९३ में प्रकाशित क्रियाकलाप में भी यह सगृहीत है।

को सस्कृत दशभक्ति और कुन्दकुन्द को प्राकृत दशभक्ति का रचयिता माना है। दशभक्ति का आरम्भ पचणमोयार, मगलसुत्त, लोगुत्तमासुत्त, सरणसुत्त और सामाइयसुत्त से होता है। तीर्थंकरभक्ति मे ८ गाथाओ मे २४ तीर्थंकारों को नमस्कार किया है। इसके बाद प्रतिक्रमण और आलोचना के सूत्र है। सिद्धभक्ति मे सिद्धों और श्रुतभक्ति मे द्वादशाग श्रुत को नमस्कार किया गया है। चारित्रभक्ति मे सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसापराय और यथाख्यातचारित्र नाम के पॉच चारित्रों, तथा मुनियो के मूलगुणो और उत्तरगुणों का उल्लेख है। योगिभक्ति मे अनगारो का स्तवन है, उनकी ऋद्धियो का वर्णन है। आचार्यभक्ति मे आचार्यों की स्तुति है। निर्वाणभक्ति मे अष्टापद, चपा, ऊर्जयन्त, पावा, सम्मेदशिखर, गजपथ, शत्रुजय, तुगीगिरि, सुवर्णगिरि, रेवातट, सिद्धिवरकूट, चूलगिरि, द्रोणगिरि, अष्टापद, मेढगिरि, कुथलगिरि, कोटिशिला, रेसिदगिरि, पोदनपुर, हस्तिनापुर, वाराणसी, मथुरा, अहिछत्र, श्रीपुर, चन्द्रगुहा[1] आदि तीर्थस्थानों का उल्लेख है, इन स्थानों से अनेक ऋषि मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया। पचगुरुभक्ति मे पञ्च परमेष्ठियो की स्तुति है। शेष भक्तियो मे नन्दीश्वरभक्ति और शान्तिभक्ति के नाम आते है।[2]

भगवतीआराधना

भागवतीआराधना[3] अथवा आराधना दिगम्बर जैन सम्प्रदाय

---

१ इन तीर्थों मे बहुत से तीर्थस्थान अर्वाचीन हैं।

२ नवीन महावीरकीर्तन ('सेठीबन्धु' द्वारा वीर पुस्तकमन्दिर, महावीर जी, हिण्डौल, राजस्थान से सन् १९५७ में प्रकाशित) में पृष्ठ १८८ ९ पर निव्वुइकड (निर्वाणकाण्ड) और अइसइखित्तकड (अतिशयक्षेत्रकाड) छपे हैं। इनमें उन मुनियों की महिमा का बखान है जिन्होंने अष्टापद आदि पुनीत क्षेत्रों से निर्वाण प्राप्त किया।

३ आराधनासम्बन्धी प्राकृत में और भी ग्रन्थ लिखे गये हैं, जैसे सोमसूरि का आराधनापर्यन्त, आराधनापचक, अभयदेवसूरि का आरा

का एक प्राचीन ग्रथ माना जाता है।[1] इसमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यकतप इन चार आराधनाओं का विवेचन है। प्रधानतया मुनिधर्म का ही यहाँ वर्णन है। ध्यान रखने की बात है कि भगवतीआराधना की अनेक मान्यताएँ दिगम्बर मुनियो के आचार विचार से मेल नही खाती। उदाहरण के लिए, रुग्ण मुनियो के वास्ते अन्य मुनियो द्वारा भोजन पान लाने का यहाँ निर्देश है। इसी प्रकार विजहना अधिकार में मुनि के मृत शरीर को जगल मे छोड आने की विधि बताई है। श्वेताम्बरों के कल्प, व्यवहार, आचाराग और जीतकल्प का भी उल्लेख यहाँ मिलता है। इसमे सब मिलाकर २१६६ (अथवा २१७०) गाथाये है जो ४० अधिकारो मे विभक्त है। भाषा इसकी प्राकृत अथवा जैन शौरसेनी है। पूर्वाचार्यों द्वारा निबद्ध की हुई रचना के आधार पर पाणितलभोजी शिवार्य अथवा शिवकोटि ने इस आचार-प्रधान ग्रन्थ की रचना की है। भगवतीआराधना के रचनाकाल का ठीक पता नहीं लगा, लेकिन इसके विषय वर्णन से यह ग्रथ उतना ही प्राचीन लगता है जितने श्वेताम्बरों के आगम ग्रथ है। आवश्यकनिर्युक्ति, बृहत्कल्पभाष्य आदि श्वेताम्बरों के प्राचीन ग्रथों से भगवतीआराधना की अनेक गाथायें मिलती है, इससे भी इस ग्रथ की प्राचीनता सिद्ध होती है।[2] इस पर

धनाकुलक, वीरभद्रसूरि की आराधनापताका, आराधनामाला आदि, डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये की बृहत्कथाकोश की भूमिका, पृष्ठ ४८–९।

१ मुनि अनन्तकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में वि० स० १९८९ में बम्बई से प्रकाशित। दूसरा सस्करण मूलाराधना के नाम से अपराजित और आशाधर की टीकाओं के साथ शोलापुर से सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ है।

२ डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये ने भगवतीआराधना की गाथाओं का सथारग, भत्तपरिन्ना और मरणसमाहीपइण्णा तथा मूलाचार की गाथाओं से मिलान किया है, देखिये बृहत्कथाकोश की भूमिका, पृष्ठ ५४ फुटनोट, प्रवचनसार की भूमिका, पृष्ठ ३२, फुटनोट।

समय समय पर अनेक प्राकृत और सस्कृत टीकायें लिखी गई है। अपराजित सूरि—जो श्रीविजयाचार्य भी कहे जाते थे—ने भगवतीआराधना पर विजयोदया अथवा आराधना टीका लिखी है। दशवैकालिक सूत्र पर भी इनकी विजयोदया नाम की टीका थी। अपराजितसूरि का समय ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी के बाद माना गया है। दूसरी टीका सुप्रसिद्ध पडित आशाधर जी ने लिखी है जिसका नाम मूलाराधनादर्पण है।[1] आशाधरजी का समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी है। तीसरी टीका का नाम आराधनापजिका है। इसकी हस्तलिखित प्रति भाडारकर इस्टिट्यूट, पूना मे है, इसके लेखक का नाम अज्ञात है। चौथी टीका भावार्थदीपिका है, यह भी अप्रकाशित है। माथुरसघीय अमितगति ने भगवतीआराधना का सस्कृत पद्यों मे अनुवाद किया है। पडित सदासुख जी काशलीवाल ने इस पर भाषावचनिका लिखी है।[2]

ग्रथ के आरम्भ मे १७ प्रकार के मरण बताये है, इनमे पडितपडितमरण, पडितमरण और बालपडितमरण को श्रेष्ठ कहा है। पडितमरण मे भक्तप्रतिज्ञामरण को प्रशस्त बताया है। लिग अधिकार मे आचेलक्य, लोच, देह के ममत्व का त्याग और प्रतिलेखन (मयूरपिच्छीका धारण करना) ये चार निर्ग्रंथलिग के चिह्न है। केश रखने के दोषों का प्रतिपादन करते हुए लोच को ही श्रेष्ठ बताया है। अनियतविहार अधिकार मे नाना देशो मे विहार करने के गुण प्रतिपादन करते हुए नाना देशों के रीतिरिवाज, भाषा और शास्त्र आदि मे कुशलता प्राप्त करने का विधान है। भावना अधिकार मे तपोभावना, श्रुतभावना, सत्यभावना, एकत्वभावना और धृतिबलभावना का प्ररूपण है। सल्लेखना

---

१ पण्डित आशाधर ने अपनी टीका (पृष्ठ ६४३) में भगवतीआराधना की एक प्राकृत टीका का उल्लेख किया है।

२ भगवतीआराधना की अन्य टीकाओं के लिये देखिये नाथूरामप्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ ८३ आदि।

अधिकार मे सल्लेखना का निरूपण करते हुए बाह्य और अन्तर तपों का प्रतिपादन है। साधुओ के रहने योग्य वसति के लक्षण बताये हैं। भोजन की शुद्धता का विस्तार से वर्णन है, यहाँ उद्गम, उत्पादन आदि आठ दोषो के निवारण का विधान है। कषायों के त्याग का उपदेश है। अनुविशिष्ट शिक्षा अधिकार मे वैयावृत्य का उपदेश दिया है। आर्यिका की सगति से दूर रहने का उपदेश है—

जदि वि सय थिरबुद्धी, तहावि ससग्गलद्धपसरो य।
अग्गिसमीवेव घद, विलेज्ज चित्त खु अज्जाए॥

—यदि (मुनि की) बुद्धि स्थिर हो तो भी जैसे घी को अग्नि के पास रखने से वह पिघल जाता है, वैसे ही मुनि और आर्या का मन चचल हो उठता है।

ऐसी दशा मे क्या होता है—

खेलपडिदमप्पण ण तरदि जह मच्छिया विमोचेदु।
अज्जाणुचरो ण तरदि, तह अप्पण विमोचेदु॥

—जैसे श्लेष्म मे पडी हुई मक्खी अपने आपको छुडाने मे असमर्थ है, वैसे ही आर्याओ का अनुचर बना हुआ साधु अपने आपको छुडाने मे असमर्थ हो जाता है।

पार्श्वस्थ साधुओं की सङ्गति को वर्ज्य कहा है—

दुज्जणसग्गीए सकिज्जदि सजदो वि दोसेण।
पाणग्गारे दुद्ध, पियतओ बभणो चेव॥

—दुर्जन की सगति के कारण सयमी मे भी दोष की शका की जाने लगती है। जैसे मदिरालय मे दूध का पान करते हुए ब्राह्मण को शका की दृष्टि से देखा जाता है।

मार्गणा अधिकार मे आयार, जीत और कल्प का उल्लेख है। सुस्थित अधिकार मे आचेलक्य, अनौद्देशिक आदि दस प्रकार का श्रमणकल्प (श्रमणों का आचार) कहा है। आचेलक्य का समर्थन करते हुए यहाँ टीकाकार अपराजितसूरि ने आचार-

प्रणिधि (दशवैकालिक का आठवाँ अध्ययन) आचारांग, सूत्रकृतांग, निशीथ, बृहत्कल्पसूत्र और उत्तराध्ययन नामक प्राचीन आगमों के उद्धरण दिये हैं। आगम, आज्ञा, श्रुत, धारणा और जित यह पाँच प्रकार का व्यवहार बताया है, इसका विस्तार सूत्रों मे निर्दिष्ट है। व्यवहारसूत्र की मुख्यता बताई गई है। चौदह पूर्व और द्वादशांग के पदों की सख्या का प्ररूपण है। आलोचना अधिकार मे आलोचना के गुण-दोषों का विवेचन है। अनुशिष्टि अधिकार मे पञ्चनमस्कार मन्त्र का माहात्म्य है। अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों का प्ररूपण है।

आभ्यतर शुद्धि पर जोर देते हुए कहा है—

घोडयलद्दिसमाणस्स तस्स अब्भतरम्मि कुधिदस्स।
बाहिरकरण किं से काहिदि वगणिहुदकरणस्स॥

—जैसे घोडे की लीद बाहर से चिकनी दिखाई देती है लेकिन अन्दर से दुर्गन्ध के कारण वह महा मलिन है, उसी प्रकार मुनि यदि ऊपर ऊपर से नम्रता आदि केवल बाह्य शुद्धि ही धारण करता है तो उसका आचरण बगुले की भाँति समझना चाहिये।

अशिव और दुर्भिक्ष उपस्थित होने पर, भयानक वन मे पहुँच जाने पर, गाढ भय उपस्थित होने पर और रोग से अभिभूत होने पर भी कुलीन मान को नहीं छोडते, वे सुरा का पान नहीं करते, मास का भक्षण नहीं करते, प्याज नहीं खाते, तथा कुकर्म और निर्लज्ज कर्म से दूर रहते है। ध्यान अधिकार मे चार प्रकार के ध्यान, लेश्या अधिकार मे छ लेश्याएँ और भावना अधिकार में १२ भावनाओं का प्ररूपण है। यहाँ सुकोसल, गजसुकुमार, अग्निकापुत्र, भद्रबाहु, धर्मघोष, अभयघोष, विद्युच्चर, चिलातपुत्र आदि अनेक अनेक मुनियों और साधुओं की परपरागत कथाये वर्णित हैं जिन्होंने उपसर्ग सहन कर सिद्धि प्राप्त की। विजहन नाम के चालीसवे अधिकार मे मुनि के मृतक-सस्कार का वर्णन है। यहाँ किसी क्षपक की मृत्यु हो जाने पर उसके शव का

निकालने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। जागरण, बधन और छेदन की विधियाँ बताई गई है। मृतक के पास बैठकर रात्रिभर जागरण करने तथा उसके हाथ और पैर के अँगूठे को बाँध कर छेदने का विधान है जिससे कोई व्यन्तर उसके शरीर मे प्रवेश न कर जाये। फिर अच्छा स्थान देख कर उसे डाभ, अथवा ईंटों के चूर्ण अथवा वृक्ष की केसर से समतल करके, उस पर क्षपक के मृत शरीर को स्थापित कर जगल से लौट आये।[1]

मूलाचार

मूलाचार[2] को आचाराग भी कहा जाता है, इसके कर्त्ता वट्टकेर आचार्य है। वसुदेवनन्दि ने इस पर टीका लिखी है। मूलाचार मे मुनियो के आचार का प्रतिपादन है। आवश्यक-निर्युक्ति पिण्डनिर्युक्ति, भत्तपरिण्णा और मरणसमाही आदि श्वेताम्बर ग्रन्थो से मूलाचार की बहुत सी गाथाये मिलती है।[3] इसका रचनाकाल निश्चित नही है, फिर भी ग्रन्थ की रचना शैली देखते हुए यह भगवती आराधना जितना ही प्राचीन प्रतीत होता है। इसमे बारह अधिकार हैं जो १२५२ गाथाओं मे विभाजित है। मूल गुणाधिकार मे पाच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, लोच, अचेलकत्व, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्त धावन, स्थितिभोजन और एकभक्त-इस प्रकार २८ मूलगुणों

---

१ बृहत्कल्पसूत्र के विष्वग्भवनप्रकरण (४ २९) और उसके भाष्य (५४९७–५५६५) मे इस विषय का विस्तार से वर्णन है। बृहत्कल्पभाष्य और भगवतीआराधना की इस विषयक गाथाये हूबहू मिलती हैं।

२ माणिकचन्द जैन ग्रन्थमाला बम्बई मे विक्रम सवत् १९७७ और १९८० में दो भागों में प्रकाशित हुआ है।

३ पण्डित सुखलाल जी ने पञ्चप्रतिक्रमणसूत्र मे मूलाचार की उन गाथाओं की सूची दी है जो आवश्यकनिर्युक्ति में मिलती हैं।

का वर्णन है। वस्त्र, अजिन, वल्कल, और पत्र आदि द्वारा शरीर के असवृत करने को अचेलत्व कहा है। बृहत्प्रत्याख्यान सस्तव अधिकार मे क्षपक को सर्व पापों का त्याग करके मरण समय मे दर्शनारावना आदि चार आराधनाओं मे स्थिर रहने और क्षुधादि परीषहों को जीतकर निष्कषाय होने का उपदेश है। यहाँ महेन्द्रदत्त द्वारा एक ही दिन मे मिथिला नगरी में कनकलता, नागलता, विद्युल्लता और कुन्दलता नामकी स्त्रियों, तथा सागरक, वल्लभक, कुलदत्त और वर्धमान नामक पुरुपों के वव करने का उल्लेख है।[1] सक्षेपप्रत्यारयानाधिकार मे सिह, व्याघ्र आदि द्वारा आकस्मिक मरण उपस्थित होने पर सर्व पापों, कषाय और आहार आदि का त्याग कर समता भाव से प्राण त्याग करने का उपदेश है। समाचाराधिकार मे दस प्रकार के आचारों का वर्णन है। तरुण मुनि को तरुण सयती के साथ सभाषण आदि करने का निषेध है। तीन, पॉच अथवा सात की सख्या मे परस्पर सरक्षण का भाव मन में धारण करती हुई आर्यिकाओ को भिक्षागमन का उपदेश दिया गया है।[2] आर्यिकाओं को आचार्य से पॉच हाथ दूर बैठकर और उपाध्याय से छह हाथ दूर बैठकर उनकी वदना करनी चाहिये। पचाचाराधिकार मे दर्शनाचार, ज्ञानाचार आदि पॉच आचार और उसके भेदों का विस्तार से वर्णन है। यहाँ लौकिक मूढता मे कौटिल्य, आसुरक्ष,[3] महाभारत और रामायण

---

१ टीकाकार ने इन कथानकों को आगम से अवगत करने के लिये कहा है।

२ इस विषय के विस्तार के लिए देखिये बृहत्कल्पभाष्य ३ ४१०६ आदि।

३ व्यवहारभाष्य (१, पृष्ठ १३२) में माठर और कौडिन्य की दण्डनीति के साथ आसुरुक्ख का उल्लेख है। गोम्मटसार (जीवकाड, पृ० ११७) में भी इसका नाम आया है। ललितविस्तर (पृष्ठ १५६) में इसे आसुर्य नाम से कहा गया है।

का उदाहरण दिया है। स्वाध्यायसम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन किया है। गणधर, प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली अथवा अभिन्नदशपूर्वी द्वारा कथित ग्रथ को सूत्र कहा है। आराधनानिर्युक्ति, मरण-विभक्ति, सग्रह (पचसग्रह आदि), स्तुति (देवागम आदि), प्रत्याख्यान, आवश्यक और धर्मकथा नाम के सूत्रो का यहाँ उल्लेख है। रात्रिभोजन के दोष बताये है। पिण्डशुद्धि अधिकार मे मुनियो के आहार आदि ४६ दोषों का वर्णन है। आरम्भ मे उद्गम, उत्पादन, एषण, सयोजन, प्रमाण, इगाल, धूम और कारण दोषो का प्रतिपादन है। षडावश्यक अधिकार मे सामयिक आदि छह आवश्यकों का नाम आदि निक्षेपों द्वारा प्ररूपण है। यहाँ कृतिकर्म और कायोत्सर्ग के दोषों का वर्णन है। अर्हत्, आचार्य आदि शब्दों की निरुक्ति बताई है। ऋषभदेव के शिष्य ऋजुस्वभावी और जड थे, तथा महावीर के शिष्य वक्र और जड थे, अतएव इन दोनो तीर्थंकरो ने छेदोपस्थापना का उपदेश दिया है[1], जबकि शेष तीर्थंकरों ने सामायिक का प्रतिपादन किया है। पार्श्वस्थ, कुशील, ससक्त मुनि, अपसज्ञ और मृगचरित्र नामक मुनियों को वदन के अयोग्य बताया है। आलोचना के प्रकार बताये गये है। ऋषभदेव और महावीर के शिष्य सर्व नियमों के प्रतिक्रमण दण्डको को बोलते थे, अन्य तीर्थंकरों के शिष्य नही। अनगार भावनाधिकार मे लिग, व्रत, वसति, विहार, भिक्षा, ज्ञान, शरीर सस्कारत्याग, वाक्य, तप और ध्यान-सम्बन्धी दस शुद्धियों का पालन करनेवाले मुनि को मोक्ष की प्राप्ति बताई है। वाक्यशुद्धिनिरूपण मे स्त्री, अर्थ, भक्त, खेट, कर्वट, राज, चोर, जनपद, नगर और आकर नामक कथाओं का उल्लेख है। प्राणिसयम और इन्द्रियसयमरूपी आरक्षकों द्वारा

---

१ मिलाइये उत्तराध्ययन (२३ २६) की निम्नलिखित गाथा के साथ—

पुरिमा उज्जुजडा उ वकजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्नाउ तेण धम्मे दुहाकए॥

तपरूपी नगर का रक्षण किये जाने का उल्लेख है। द्वादशानुप्रेक्षा अधिकार मे अनित्य, अशरण आदि बारह अनुप्रेक्षाओ का स्वरूप बताया है। समयसाराधिकार मे शास्त्र के सार का प्रतिपादन करते हुए चारित्र को सर्वश्रेष्ठ कहा है। साधु के लिये पिच्छी को आवश्यक बताया है। जीवो की रक्षा के लिये यतना को सर्वश्रेष्ठ कहा है—

प्रश्न—कध चरे कध चिट्ठे कधमासे कध सये।
कध भुजेज्ज भासेज्ज कध पाव ण बज्झदि ॥[1]

—किस प्रकार आचरण करे, कैसे उठे, कैसे बैठे, कैसे सोये, कैसे खाये, कैसे बोले जिससे पापकर्म का बन्ध न हो।

उत्तर—जद चरे जद चिट्ठे जदमासे जद सये।
जद भुजेज्ज भासेज्ज एव पाव ण बज्झइ ॥

—यत्नपूर्वक आचारण करे, यत्नपूर्वक उठे, यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोये, यत्नपूर्वक भोजन करे, यत्नपूर्वक बोले—इससे पापकर्म का बध नहीं होता।

पर्याप्ति अधिकार मे छह पर्याप्तियों का वर्णन है। पर्याप्ति के सज्ञा, लक्षण, स्वामित्व, सख्यापरिमाण, निर्वृति और स्थितिकाल ये छह भेद बताये है। यहाँ गुणस्थानो और मार्गणाओं आदि का प्ररूपण है। शीलगुण नामक अधिकार मे १८ हजार शील के भेदों का निरूपण है।

---

१ दशवैकालिकसूत्र (४ ८–९) में ये गाथाये निम्नरूप में मिली हैं—

कह चरे कह चिट्ठे, कहमासे कह सये।
कह भुजतो भासतो, पाव कम्म न बधइ ॥
जय चरे जय चिट्ठे जयमासे जय सए।
जय भुजतो भासतो पाव कम्म न बधइ ॥

डॉक्टर ए० एम० घाटगे ने इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, १९३५ में अपने 'दशवैकालिकनिर्युक्ति' नामक लेख में मूलाचार और दशवैकालिकनिर्युक्ति की गाथाओं का मिलान किया है।

कत्तिगेयाणुवेक्खा (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा[1] के कर्ता स्वामी कार्तिकेय अथवा कुमार हैं। ये ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी के विद्वान् माने जाते है। कुन्दकुन्दकृत बारस अणुवेक्खा और प्रस्तुत ग्रंथ मे विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से बहुत कुछ समानता देखने मे आती है। इस ग्रंथ मे ४८६ गाथायें है जिनमे अध्रुव, अशरण, ससार, एकत्व, अन्यत्व अशुचित्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म नाम की १२ अनुप्रेक्षाओं का विस्तार से वर्णन है। अन्त मे १२ तपों का प्रतिपादन है।

गोम्मटसार

गोम्मटसार के कर्ता देशीयगण के नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती है जो गगवशीय राजा राचमल्ल के प्रधानमन्त्री और सेनापति चामुण्डराय के समकालीन थे। चामुण्डराय ने श्रवणबेलगुल की सुप्रसिद्ध बाहुबलि या गोम्मट (बाहुबलि) स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी, इसलिये ये गोम्मटराय भी कहे जाते थे। नेमिचन्द्र विक्रम की ११वी शताब्दी के विद्वान् थे, और सिद्धातशास्त्र के अद्वितीय पण्डित होने के कारण सिद्धातचक्रवर्ती कहे जाते थे। नेमिचन्द्र ने लिखा है कि जैसे कोइ चक्रवर्ती अपने चक्र द्वारा पृथ्वी के छह खण्डों को निर्विघ्नरूप से अपने वश मे कर लेता है, वैसे ही मैने अपने मतिरूपी चक्रद्वारा छह खण्ड के सिद्धात का सम्यक् रूप से साधन किया है। नेमिचन्द्र ने अपने ग्रंथ की प्रशस्ति मे वीरनन्दि आचार्य का स्मरण किया है। धवल आदि महासिद्धात ग्रंथों के आधार से उन्होंने गोम्मटसार की रचना की है। गोम्मटसार का

---

[1] स्वर्गीय पडित जयचन्द जी की भाषाटीका सहित गाधी नाथारग जी द्वारा ईसवी सन् १९०४ में बबई से प्रकाशित। यह ग्रन्थ पाटनी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में भी प० महेंद्रकुमार जी जैन पाटनी के हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है।

दूसरा नाम पचसग्रह, गोम्मटसग्रह या गोम्मटसग्रहसूत्र भी है। इसे प्रथम सिद्धातग्रथ या प्रथम श्रुतस्कध भी कहा गया है। गोम्मटसार के अतिरिक्त नेमिचन्द्र ने त्रिलोकसार, लब्धिसार और क्षपणासार की भी रचना की है। प्राय धवल, महाधवल और जयधवल आदि टीकाग्रन्थो के आधार से ही ये ग्रन्थ लिखे गये है। गोम्मटसार पर नेमिचन्द्र के शिष्य चामुण्डराय ने कर्णाटक मे वृत्ति लिखी थी, इसका नेमिचन्द्र ने अवलोकन किया था। बाद मे इस वृत्ति के आधार से केशववर्णी ने सस्कृत मे टीका लिखी। फिर अभयचन्द्र सिद्धातचक्रवर्ती ने मन्दप्रबोधिनी नामकी सस्कृत टीका की रचना की। उपर्युक्त दोनो सस्कृत टीकाओ के आधार से पण्डित टोडरमल जी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामकी हिन्दी टीका लिखी।

गोम्मटसार दो भागो मे विभक्त है—एक जीवकाड[1], दूसरा कर्मकाड।[2] जीवकाड मे महाकर्मप्राभृत के सिद्धातसम्बन्धी जीवस्थान, क्षुद्रबध, बधस्वामी, वेदनाखड, और वर्गणाखड इन पॉच विषयों का वर्णन है। यहॉ गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, १४ मार्गणा और उपयोग इन २० अधिकारों मे जीव की अनेक अवस्थाओं का प्रतिपादन किया गया है। कर्मकाड मे प्रकृतिसमुत्कीर्तन, बधोदयसत्व, सत्वस्थानभग, त्रिचूलिका, स्थानसमुत्कीर्तन, प्रत्यय, भावचूलिका, त्रिकरणचूलिका और कर्मस्थितिरचना नामक नौ अधिकारों मे कर्मों की अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

---

१ रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला बबई से सन् १९२७ में प्रकाशित।

२ उपर्युक्त शास्त्रमाला में सवत् १९८५ में प्रकाशित। कर्मकांड पर दिलाराम द्वारा फारसी भाषा में कोई टीका लिखे जाने का उल्लेख मिलता है (कैटलाग ऑक्सफोर्ड, १८६४)। यह सूचना मुझे शाति निकेतन (बगाल) के फारसी के प्रोफेसर स्वर्गीय जियाउद्दीन द्वारा प्राप्त हुई थी।

त्रिलोकसार

त्रिलोकसार करणानुयोग का एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है।[1] गोम्मटसार की भाँति यह भी एक सग्रह ग्रथ है। इसमे बहुत सी परम्परागत प्राचीन गाथाये ग्रथ के अग के रूप मे सम्मिलित कर ली गई है। चामुडराय के प्रतिबोध के लिए यह लिखा गया था। माधवचन्द्र त्रैविद्य ने इस पर सस्कृत मे टीका लिखी है। मूल ग्रन्थ मे भी इनकी बनाई हुई कई गाथाये शामिल हो गई है। इसमे कुल मिलाकर १०१८ गाथाये है जिनमे लोक-सामान्य, भवन, व्यतरलोक, ज्योतिर्लोक, वैमानिकलोक, और नरकतिर्यग्लोक नामक अधिकारो मे तीन लोको का वर्णन किया गया है।

लब्धिसार

इस ग्रन्थ मे विस्तारसहित कर्मों से मुक्त होने का उपाय बताया है। क्षपणासार भी इसी मे गर्भित है।[2] राजा चामुडराय के निमित्त से इस ग्रथ की रचना की गई है। कषायप्राभृत नामक जयधवल सिद्धात के १५ अधिकारो मे से पश्चिमस्कध नाम के १५वे अधिकार के आधार से यह लिखा गया है। कर्मों मे मोहनीय कर्म सबसे अधिक बलवान है जिसे मिथ्यात्व कर्म भी कहा है। लब्धिसार मे इस कर्म से मुक्त होने के लिए पॉच लब्धियों का वर्णन है। इनमे करणलब्धि मुख्य है जिससे मिथ्यात्व कर्म छूट जाने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। लब्धि-सार मे दर्शनलब्धि, चारित्रलब्धि, और क्षायिकचारित्र नाम के तीन अधिकार है। उपशमचारित्र अधिकार तक ही केशववर्णी ने टीका लिखी है। इसके आधार से पडित टोडरमलजी ने भाषाटीका की रचना की है। क्षपणाधिकार की गाथाओं का

---

१ गाधी नाथारग जी द्वारा सन् १९११ में बबई से प्रकाशित।

२ रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला में ईसवी सन् १९१६ में बबई से प्रकाशित।

व्याख्यान माधवचन्द्र त्रैविद्य ने सस्कृत गद्य मे किया है, इसी से इसे लब्धिसार क्षपणसार कहा जाता है।

द्रव्यसंग्रह

द्रव्यसग्रह को भी कोई नेमिचन्द्र सिद्धातचक्रवर्ती की रचना मानते है। इसमे कुल ५८ गाथाये है जिनमे जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा कर्म, तत्व, ध्यान आदि की चर्चा है। इस पर ब्रह्मदेव की सस्कृत मे बृहत् टीका है।[1] पडित द्यानतराय ने द्रव्यसग्रह का छन्दोनुबद्ध हिन्दी अनुवाद किया है।

जबुद्दीवपण्णत्तिसंगह

यह करणानुयोग का ग्रन्थ है, जिसके कर्ता पद्मनन्दिमुनि है।[2] पद्मनन्दि ने अपने आपको गुणगणकलित, त्रिदडरहित, त्रिशल्यपरिशुद्ध आदि बताते हुए अपने को बलनन्दि का शिष्य कहा है। बलनन्दि पञ्चाचारपरिपालक आचार्य वीरनन्दि के शिष्य थे। वारा नगर मे इस ग्रन्थ की रचना हुई, यह नगर पारियत्त (पारियात्र) देश के अन्तर्गत था।[3] सिंहसूरि के लोकविभाग मे जम्बुद्दीवपण्णत्ति का उल्लेख मिलता है, इससे इस ग्रथ का रचना-काल ११वीं शताब्दी के आसपास होने का अनुमान किया जाता है। जम्बुद्दीपपण्णत्ति का बहुत सा विषय

---

१ यह सेक्रेड बुक्स ऑव द जैन्स सीरीज में सन् १९१७ में आरा से प्रकाशित हुई है। शरच्चन्द्र घोषाल ने मूल ग्रन्थ का अंग्रेजी मे अनुवाद किया है।

२ डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये और डॉक्टर हीरालाल जैन द्वारा सपादित, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर से सन् १९५८ में प्रकाशित। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में 'तिलोयपण्णत्ति का गणित' नाम का एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध दिया है।

३ इसकी पहचान कोटा के बारा कस्बे से की जाती है, देखिए पण्डित नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृष्ठ २५९।

तिलोयपण्णत्ति मे मिलता है, दोनों की बहुत सी गाथाये भी समान हैं। वट्टकेर के मूलाचार और नेमिचन्द्र के त्रिलोकसार की गाथाये भी जम्बुद्दीवपण्णत्ति मे पाई जाती है। इस ग्रंथ मे २३८६ गाथाये है जो उपोद्घात, भरत ऐरावत वर्ष, शैल नदी भोगभूमि, सुदर्शन (मेरु), मन्दरजिनभवन, देवोत्तरकुरु, कक्षाविजय, पूर्वविदेह, अपरविदेह, लवणसमुद्र, द्वीपसागर, अध ऊर्ध्वसिद्धलोक, ज्योतिर्लोक और प्रमाणपरिच्छेद नामक तेरह उद्देशो मे विभाजित है। यहाँ महावीर के बाद की आचार्य-परम्परा दी है। पहले गौतम, लोहार्य (जिन्हें सुधर्मा भी कहा गया है), और जम्बूस्वामी नाम के तीन गणधर हुए, फिर नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु नाम के चौदह पूर्व और बारह अग के धारक मुनि हुए। इसके बाद विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गगदेव और धर्मसेन—ये दस पूर्वधारी हुए। फिर नक्षत्र, यश पाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कस ये पॉच ग्यारह अगों के धारी हुए। इनके पश्चात् सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोह (लोहाचार्य) आचारागसूत्र के धारक हुए।

धम्मरसायण

धम्मरसायण[1] नाम का पद्मनन्दि का एक और ग्रंथ है। इसमे १९३ गाथाओं मे धर्म का प्रतिपादन किया है।

नयचक्र

नयचक्र को लघु नयचक्र नाम से भी कहा जाता है। इसके कर्ता देवसेनसूरि है जो ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी के विद्वान् हैं। नयचक्र में ८७ गाथाओं मे नयों का स्वरूप बताय

१ यह सिद्धांतसार, कल्लाणालोयणा आदि के साथ सिद्धातसारादि-सग्रह में माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बबई से वि० स० १९७९ में प्रकाशित हुआ है।

है।[1] श्वेताम्बर आचार्य यशोविजय उपाध्याय ने देवसेन के नयचक्र का उल्लेख किया है। देवसेन के दर्शनसार से पता लगता है कि वे मूलसघ के आचार्य थे। उन्होने आराधनासार, तत्वसार, दर्शनसार और भावसग्रह नामक ग्रथो की रचना की है।

नयों के सम्बन्ध मे देवसेन ने लिखा है—

धम्मविहीणो सोक्ख तण्हाछेय जलेण जह रहिदो।
तह तह बवइ मूढो णयरहिओ दव्वणिच्छित्ती॥

—जैसे धर्म के बिना कोई सुख प्राप्त करना चाहे और जल के बिना तृष्णा शान्त करना चाहे, वैसे ही मूढ पुरुष नयों के बिना द्रव्य का निश्चय नही कर सकता है।

तथा—

जह रससिद्धो वाई हेम काऊण भुजये भोग।
तह णयसिद्धो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरय॥

—जैसे रससिद्ध वैद्य सोना बनाकर भोगो को भोगता है, वैसे ही नयसिद्ध योगी सतत आत्मा का अनुभव करता है।

आराधनासार

इसमे ११५ गाथाये है जिन पर रत्नकीर्तिदेव ने टीका लिखी है।[2] सम्यक्त्व हो जाने पर सूत्रोक्त युक्तियो द्वारा जीवादि पदार्थों के श्रद्धान को आराधना कहा है। यहॉ शिवभूति, सुकुमाल, कोशल, गुरुदत्त, पाडव, श्रीदत्त, सुवर्णभद्र आदि दृष्टान्तों द्वारा विषय का प्रतिपादन किया है। मन को राजा की उपमा दी है जिसकी मृत्यु होने पर इन्द्रिय आदि सेना की भी मृत्यु हो जाती है। जो लोग भागते हुए मन रूपी ऊट को ज्ञानरूपी रस्सी से पकड कर नहीं रखते, वे ससार मे भ्रमण

---

१ माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बबई द्वारा सन् १९२० में प्रकाशित नयचक्रसग्रह में सगृहीत।

२ माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बबई द्वारा वि० स० १९७४ में प्रकाशित।

करते हुए दुख के भागी होते है। मन रूपी वृक्ष को निर्मूल करने के लिए उसकी राग-द्वेष रूपी शाखाओं को काट उन्हें निष्फल बनाकर मोहरूपी जल से वृक्ष को न सीचने का उपदेश दिया है। जैसे जल का सयोग पाकर लवण उसमे विलीन हो जाता है वैसे ही चित्त ध्यान मे विलीन हो जाता है।[1] इससे शुभ और अशुभ कर्मों के दग्ध हो जाने से आत्मारूपी अग्नि प्रकट होती है। परीषहो के सम्बन्ध मे कहा है—

जह जह पीडा जायइ भुक्खाइपरीसहेहिं देहस्स।
तह तह गलति णूण चिरभवबद्धाइ कम्माइ॥

—जैसे जैसे बुभुक्षा आदि परीषह सहन करने से इस देह को पीडा होती है, वैसे-वैसे चिरकाल से बॅधे हुए कर्मों का नाश होता है।

तत्वसार

धर्मप्रवर्तन और भव्यजनों के बोध के लिए इस ग्रथ की रचना की गई है।[2] सकलकीर्ति की इस पर टीका है। इसमे ७४ गाथाये है जिनमे तत्व के सार का प्ररूपण है। ध्यान से मोक्ष की सिद्धि बताई है—

चलणरहिओ मणुस्सो जह बधइ मेरुसिहरमारुहिउ।
तह झाणेण विहीणो इच्छइ कम्मक्खय साहू॥

—जैसे बिना पॉव का कोई मनुष्य मेरु के शिखर पर चढना चाहे, उसी प्रकार ध्यानविहीन साधु कर्मों के क्षय की इच्छा करता है।

---

१ मिलाइये—कण्हपा के दोहाकोष (३२) के साथ—
जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि तिमि घरिणि लइ चित्त।
समरस जाई तक्खणे जइ पुणु ते समणित्त॥

२ माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला से वि० स० १९७७ में प्रकाशित तत्त्वानुशासनादिसग्रह में सगृहीत।

आत्मध्यान की मुख्यता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

लहइ ण भव्वो मोक्ख जावइ परदव्ववावडो चित्तो ।
उग्गतव पि कुणतो सुद्धे भावे लहु लहइ ।।

—जब तक पर द्रव्य मे चित्त लगा हुआ है तब तक भव्य पुरुष मोक्ष प्राप्त नही करता, उग्र तप करता हुआ वह शीघ्र ही शुद्ध भाव को प्राप्त होता है।

दर्शनसार

दर्शनसार[1] मे पूर्वाचार्यकृत ५१ गाथाओ का सग्रह है। देवसेनसूरि ने धारानगरी के पार्श्वनाथ के मन्दिर मे विक्रम सवत् ९९० (ईसवी सन् ९३३) मे इसकी रचना की। यह रचना बहुत अधिक प्रामाणिक नही मानी जाती। इसमे बौद्ध, श्वेताम्बर आदि मतों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। ऋषभदेव के मिथ्यात्वी पौत्र मरीचि को समस्त मत प्रवर्तको का अग्रणी बताया है। पार्श्वनाथ के तीर्थ मे पिहिताश्रव के शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि को बौद्धधर्म का प्रवर्तक कहा है।[2] उसके मत मे मास और मद्य के भक्षण मे दोष नहीं है। राजा विक्रमादित्य की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद सौराष्ट्र के अन्तर्गत वलभी नगर मे श्वताबर सघ की उत्पत्ति बताई गई है।[3] भद्रबाहुगणि के शिष्य

---

१ पडित नाथूराम प्रेमी द्वारा सपादित और जैन ग्रथ रत्नाकर कार्यालय, बबई द्वारा वि० स० १९७४ मे प्रकाशित।

२ माथुरसघ के सुप्रसिद्ध आचार्य अमितगति ने अपनी धर्म परीक्षा (६) में बौद्धदशन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है—

रुष्ट श्रीवीरनाथस्य तपस्वी मौडिलायन ।
शिष्य श्रीपार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम् ॥

—पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा में मौडिलायन (मौद्गल्यायन) नामक तपस्वी ने महावीर से रुष्ट होकर बौद्धदर्शन चलाया।

३ श्वेताम्बरों के अनुसार बोडिय (दिगम्बर) मत की उत्पत्ति का समय भी लगभग यही है, देखिये नाथूराम प्रेमी, दर्शनसार विवेचना, पृष्ठ २८।

शान्ति आचार्य थे, उनके शिथिलाचारी शिष्य जिनचन्द्र ने इस धर्म को प्रवर्तित किया। इस मत मे स्त्रीमुक्ति और केवलीभुक्ति का समर्थन है। इसके पश्चात् विपरीतमत (ब्राह्मणमत) और वैनायिकमत की उत्पत्ति बताई है। महावीर भगवान् के तीर्थ मे पार्श्वनाथ तीर्थंकर के सघ के किसी गणी के शिष्य का नाम मस्करी पूरन[1] था, उसने अज्ञानमत का उपदेश दिया। इसके बाद द्राविड, यापनीय, काष्ठा, माथुर और भिल्लक सघो की उत्पत्ति का कथन है।[2] देवसेन ने उन्हे जैनाभास कहा है।

पूज्यपाद (देवनन्दि) के शिष्य वज्रनन्दि ने विक्रम राजा की मृत्यु के ५२६ वर्ष पश्चात् मथुरा मे द्राविड सघ चलाया। वज्रनन्दि प्राभृत ग्रथों के वेत्ता थे, उन्हे अप्राशुक (सचित्त) चनों के भक्षण करने से रोका गया, पर वे न माने, उन्होंने प्रायश्चित्त-ग्रन्थों की रचना की। कल्याण नामक नगर मे विक्रम

---

१ बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार मेखलि गोशाल और पूरणकस्सप ये दोनों अलग व्यक्ति थे।

२ इस ग्रन्थ में उल्लिखित द्राविड सघ की उत्पत्ति के समय को छोडकर शेष सघों का उत्पत्तिकाल ठीक नही बैठता। इन सघों म आजकल केवल काष्ठासघ ही बाकी बचा है, शेष सघों का लोप हो गया है। कई जगह माथुरसघ को काष्ठासघ की ही शाखा स्वीकार किया है। कुछ आचार्यों ने काष्ठासघ (गोपुच्छक) की श्वेताम्बर, द्राविड सघ, यापनीय सघ और निपिच्छिक (माथुर सघ) के साथ गणना कर इन पाँचों को जैनाभास कहा है (देखिये, भट्टारक इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार)। यापनीय सघ को गोप्यसघ भी कहा गया है। आचार्य शाकटायन इसी सघ के एक आचार्य थे। यापनीय सघ के अनुयायी स्त्रीमुक्ति और केवलीभुक्ति को स्वीकार करते थे। हरिभद्र सूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय पर गुणरत्न की टीका के चौथे अध्याय में दिगम्बर सम्प्रदाय के काष्ठा, मूल, माथुर और गोप्य सघों का परिचय दिया है। देखिये नाथूराम प्रेमी, दर्शनसार विवेचना, तथा 'जैन साहित्य और इतिहास' में यापनीयों का साहित्य नामक लेख।

राजा की मृत्यु के ७०५ वर्ष बाद कलश नामक किसी श्वेतांबर साधु ने यापनीय संघ की स्थापना की। वीरसेन के शिष्य आचार्य जिनसेन हुए, उनके पश्चात् विनयसेन और फिर उनके बाद आचार्य गुणभद्र हुए। विनयसेन ने कुमारसेन मुनि को दीक्षा दी। दीक्षा से भ्रष्ट होकर कुमारसेन ने मयूरपिच्छ का त्याग कर दिया और चमर (चमरी गाय के बालों की पिच्छी) ग्रहण कर वे बागड देश मे उन्मार्ग का प्रचार करने लगे। उन्होंने स्त्रियों को दीक्षित करने का, क्षुल्लकों को वीरचर्या का, मुनियों को बडे बालों की पिच्छी रखने का और रात्रिभोजन त्याग का उपदेश दिया। अपने आगम, शास्त्र, पुराण और प्रायश्चित्त ग्रंथों की उन्होंने रचना की। विक्रम राजा की मृत्यु के ७५३ वर्ष पश्चात् उन्होंने नन्दीतट ग्राम मे काष्ठासंघ की स्थापना की। इसके २०० वर्ष बाद (विक्रम राजा की मृत्यु के ९५३ वर्ष पश्चात्) रामसेन ने मथुरा मे माथुरसंघ चलाया। उसने पिच्छी धारण करने का सर्वथा निषेध किया। तत्पश्चात् वीरचन्द्र मुनि के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी की कि वह विक्रम राजा की मृत्यु के १८०० वर्ष पश्चात् दक्षिण देश मे भिल्लक-संघ की स्थापना करेगा। वह अपना एक अलग गच्छ बनायेगा, अलग प्रतिक्रमण विधि चलायेगा और अलग-अलग क्रियाओं का उपदेश देगा।

भावसंग्रह

भावसंग्रह[1] मे दर्शनसार की अनेक गाथाये उद्धृत हैं। इसमे ७०१ गाथाये हैं। सबसे पहले स्नान के दोष बताते हुए स्नान की जगह तप और इन्द्रियनिग्रह से जीव की शुद्धि बताई है। फिर मास के दूषण और मिथ्यात्व के भेद बताये गये है। चौदह गुणस्थानों के स्वरूप का यहाँ प्रतिपादन है।

---

१ माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला द्वारा वि० स० १९७८ में प्रकाशित भावसंग्रहादि में संगृहीत।

बृहत्‌नयचक्र

इसका वास्तविक नाम दव्वसहावपयास (द्रव्यस्वभावप्रकाश) है[1] जिसमे द्रव्य, गुण, पर्याय, दर्शन, ज्ञान और चरित्र आदि विषयों का वर्णन है। यह एक सग्रह ग्रथ है जो ४२३ गाथाओं मे पूर्ण हुआ हे। ग्रथ के अन्त मे दी हुई गाथाओं से पता लगता है कि दव्वसहायपयास नाम का कोई ग्रथ दोहा छन्दों मे बनाया हुआ था, उसी को माइल्लधवल ने गाथाओं मे लिखा। देवसेन योगी के चरणों के प्रसाद से इस ग्रथ की रचना की गई है। गाथाओ के सग्रहकर्ता माइल्लधवल ने नयचक्र के कर्ता गुरु देवसेन को नमस्कार किया है। माइल्लधवल ने नयचक्र को अपने प्रस्तुत ग्रथ मे गर्भित कर लिया है। इस ग्रथ में पीठिका, गुण, पर्याय, द्रव्यसामान्य, पचास्तिकाय, पदार्थ, प्रमाण, नय, निक्षेप, दर्शन, ज्ञान, सरागचारित्र, वीतरागचारित्र और निश्चय चारित्र नाम के अधिकारो मे विषय का प्रतिपादन किया गया है।

ज्ञानसार

ज्ञानसार के[2] कर्ता पद्मसिंह मुनि है, वि० स० १०८६ (ईसवी सन् १०२६) मे उन्होने इस लघु ग्रन्थ की रचना की है। इसमे ६३ गाथाये हैं जिनमे योगी, गुरु, ध्यान आदि का स्वरूप बताया गया है।

वसुनन्दिश्रावकाचार

वसुनन्दिश्रावकाचार[3] के कर्ता आचार्य वसुनन्दि है जिनका समय ईसवी सन् की १२वी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता

---

१ माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में सन् १९२० में प्रकाशित नयचक्रसग्रह में सगृहीत।

२ माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में तत्वानुशासनादि सग्रह के अन्तर्गत वि० स० १९७७ में बम्बई से प्रकाशित।

३ पडित हीरालाल जैन द्वारा सपादित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा सन् १९५२ मे प्रकाशित।

है। पण्डित आशाधर जी ने सागारधर्मामृत की टीका मे वसुनन्दि का उल्लेख बडे आदरपूर्वक करते हुए उनके श्रावकाचार की गाथाओ को उद्धृत किया है। इसमे कुल मिलाकर ५४६ गाथाये है जिनमे श्रावकों के आचार का वर्णन है। आरम्भ मे सम्यग्दर्शन का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए जीवों के भेद प्रभेद बताये गये है। अजीव के वर्णन मे स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुओ के स्वरूप का प्रतिपादन है। द्यूत, मद्य, मास, वेश्या, शिकार, चोरी और परदारसेवन नाम के सात व्यसनो का प्ररूपण है। व्रतप्रतिमा के अन्तर्गत १२ व्रतो का निर्देश है। दान के फल का विस्तृत वर्णन है। पञ्चमी, रोहिणी, अश्विनी, सौख्य सम्पत्ति, नन्दीश्वरपक्ति और विमानपक्ति नामक व्रतो का विधान है। पूजा का स्वरूप बताया गया है। श्रुतदेवी की स्थापना का विधान और प्रतिष्ठाविधि का विस्तृत वर्णन है। पूजन के फल का वर्णन किया गया है।

श्रुतस्कन्ध

श्रुतस्कन्ध[1] के कर्ता ब्रह्मचारी हेमचन्द्र है। उन्होंने तैलङ्ग के कुण्डनगर के उद्यान के किसी जिनालय मे बैठकर इस ग्रथ की रचना की थी। हेमचन्द्र रामनन्दि सैद्धातिक के शिष्य थे। इससे अधिक ग्रथकर्ता के विषय मे और कुछ पता नहीं चलता। श्रुतस्कन्ध मे ९४ गाथाये है। यहाँ द्वादशाग श्रुत का परिचय कराते हुए द्वादशाग के सकलश्रुत के अक्षरो की सख्या बताई है। सामायिक, स्तुति, वदन, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकम, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प कल्पाकल्प, महाकल्प, पुडरीक, महापुडरीक और निशीथिका आदि की गणना अगबाह्य श्रुत मे की है। चतुर्थकाल मे चार वर्षों मे साढे तीन मास अवशेष रहने पर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन वीर भगवान् ने सिद्धि

---

१ माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला में तत्वानुशासनादि सग्रह के अन्तर्गत वि० स० १९७७ में बम्बई से प्रकाशित।

प्राप्त की। महावीर निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात् कोई श्रुतकेवली उत्पन्न नहीं हुआ। आचार्य भद्रबाहु अष्टागनिमित्त के वेत्ता थे। धरसेन मुनि चौदह पूर्वों के अन्तर्गत अग्रायणीपूर्व के कर्मप्रकति नामक अधिकार के वेत्ता थे। उन्होंने भूतबलि और पुष्पदन्त नाम के मुनियों को आगमो के कुछ अश की शिक्षा दी। तत्पश्चात् उन्होंने छह अधिकारों मे षट्खण्डागम की रचना की।

निजात्माष्टक

इसमे केवल आठ गाथाये है। इसके कर्ता योगीन्द्रदेव है। योगीन्द्रदेव ने परमात्मप्रकाश और योगसार की अपभ्रश मे तथा अमृताशीति की सस्कृत मे रचना की है। इनका समय विक्रम की १३वीं शताब्दी के पूर्व माना गया है।

छेदपिण्ड

छेद का अर्थ प्रायश्चित्त होता है, इसे मलहरण, पापनाशन, शुद्धि, पुण्य, पवित्र और पावन नाम से भी कहा गया है। छेदपिण्ड मे ३६२ गाथाये है जिनमे प्रमाद अथवा दर्प के कारण व्रत, समिति, मूलगुण, उत्तरगुण, तप, गण आदि सम्बन्धी पाप लगने पर साधु-साध्वियों को प्रायश्चित्त का विधान है। इस ग्रथ के कर्ता इन्द्रनन्दि योगीन्द्र है जिनका समय विक्रम की लगभग चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

भावत्रिभगी

भावत्रिभगी को भावसग्रह नाम से भी कहा गया है। इसके कर्ता श्रुतमुनि है। बालचन्द्र मुनि इनके दीक्षागुरु थे। श्रुतमुनि का

१ सिद्धांतसार, कल्लाणालोयणा, निजात्माष्टक, धम्मरसायण, और अगपण्णत्ति सिद्धातसारादिसग्रह में माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रथ माला, बम्बई से विक्रम सवत् १९७९ में प्रकाशित हुए हैं।

२ छेदपिण्ड और छेदशास्त्र माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रथमाला द्वारा वि० स० १९७८ में प्रकाशित प्रायश्चित्तसग्रह में सगृहीत हैं।

समय विक्रम सवत् की १५वी शताब्दी माना गया है। भाव त्रिभगी मे ११६ गाथाये हैं जिनमे औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक भावों का विवेचन है। इस ग्रथ की सदृष्टि रचना अलग से दी हुई है।

आस्रवत्रिभंगी

आस्रवत्रिभगी[1] श्रुतमुनि की दूसरी रचना है। इसमें ६२ गाथाये है, इनमे मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग नाम के आस्रवों के भेद प्रभेदों का विवेचन है। इसकी भी सदृष्टि अलग दी हुई है।

सिद्धान्तसार

सिद्धान्तसार के कर्ता जिनचन्द्र आचार्य हैं। इनका समय विक्रम सवत् १५१६ (ईसवी सन् १४६२) के आसपास माना जाता है। इस ग्रन्थ मे ७८ गाथाओं मे सिद्धात का सार प्रतिपादन किया है। सिद्धातसार के ऊपर भट्टारक ज्ञानभूषण ने सस्कृत मे भाष्य लिखा है। ज्ञानभूषण का समय वि० स० १५३४ से १५६१ (ईसवी सन् १४७७ से १५०४) तक माना गया है। ये मूलसघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगण के प्रतिष्ठित विद्वान् थे।

अगपण्णत्ति

अङ्गप्रज्ञप्ति मे १२ अङ्ग और १४ पूर्वों की प्रज्ञप्ति का वर्णन है। चूलिकाप्रकीर्णप्रज्ञप्ति मे सामायिक, स्तव, प्रतिक्रमण, विनय, कृतिकर्म, तथा दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प व्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, महापुडरीक, णिसेहिय (निशीथिका) और चतुर्दश प्रकीर्णक (पइण्णा) का उल्लेख है। अङ्गप्रज्ञप्ति के कर्ता शुभचन्द्र हैं जो उपर्युक्त सिद्धान्तसार के भाष्यकर्ता ज्ञानभूषण

१ भावत्रिभगी और आस्रवत्रिभगी माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रथमाला से वि० स० १९७८ में प्रकाशित भावसग्रहादि में सगृहीत हैं।

के प्रशिष्य थे। भट्टारक ज्ञानभूषण की भाँति भट्टारक शुभचन्द्र भी बहुत बड़े विद्वान् थे। वे त्रिविधविद्याधर (शब्द, युक्ति और परमागम के ज्ञाता) और षट्भाषाकविचक्रवर्ती के नाम से प्रख्यात थे। गौड, कलिंग, कर्णाटक, गुर्जर, मालव आदि देशों के वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्होंने जैनधर्म का प्रचार किया था।

कल्लाणालोयणा

कल्याणालोचना के कर्ता अजितब्रह्म या अजितब्रह्मचारी हैं। इनका समय विक्रम की १६वीं शताब्दी माना जाता है। इनके गुरु का नाम देवेन्द्रकीर्ति था, और भट्टारक विद्यानन्दि के आदेश से भृगुकच्छ में इन्होंने हनुमच्चरित्र की रचना की थी। यह ग्रन्थ ५४ गाथाओं में समाप्त होता है।

ढाढसीगाथा

इसके[1] कर्ता कोई काष्ठसंघी आचार्य हैं। १६वीं शताब्दी के श्रुतसागर सूरि ने षट्पाहुड की टीका में इस ग्रन्थ की एक गाथा उद्धृत की है। ग्रंथकर्ता के सम्बन्ध में और कुछ विशेष पता नहीं चलता। ढाढसीगाथा में ३८ गाथायें हैं। हिंसा के सम्बन्ध में कहा है—

रक्खंतो वि ण रक्खइ सकसाओ जइवि जइवरो होइ।
मारंतो पि अहिंसो कसायरहिओ ण संदेहो॥

—यदि कोई यतिवर कषाययुक्त है तो जीवों की रक्षा करता हुआ भी वह जीवरक्षा नहीं करता। तथा कषायरहित जीव जीवों का हनन करता हुआ भी अहिंसक कहा जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

---

१ माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला द्वारा वि० सं० १९७७ में प्रकाशित तत्त्वानुशासनादिसंग्रह में संगृहीत है।

छेदशास्त्र

इसे छेदनवति भी कहा गया है[1], इसमे ६० गाथायें (६४) है। इस पर एक लघुवृत्ति है। दुर्भाग्य से न तो मूल ग्रन्थकर्ता का और न वृत्तिकार का ही कोई पता चलता है। इसमे व्रत, समिति आदि सम्बन्धी दोषों के प्रायश्चित्त का विधान है।



---

१ छेदपिण्ड और छेदशास्त्र माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रथमाला द्वारा वि० स० १९७८ में प्रकाशित प्रायश्चित्तसग्रह में सगृहीत हैं।

पाँचवाँ अध्याय

आगमोत्तरकालीन जैनधर्मसंबधी साहित्य

(ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी से लेकर १०वीं शताब्दी तक)

आगम-साहित्य के अतिरिक्त जैन विद्वानों ने जैन तत्वज्ञान, आचार-विचार, क्रियाकाड, तीर्थ, पट्टावलि, ऐतिहासिक प्रबन्ध आदि पर भी प्राकृत मे साहित्य की रचना की है। यह उत्तर-कालीन साहित्य किसी ग्रथ की टीका आदि के रूप मे न लिखा जाकर प्राय स्वतत्र रूप से ही लिखा गया। यद्यपि आगमों की परम्परा के आधार से ही इस साहित्य का सर्जन हुआ, फिर भी आगम साहित्य की अपेक्षा यह अधिक व्यवस्थित और तार्किकता लिए हुए था। प्राय किसी एक विषय को लेकर ही इस साहित्य की रचना की गई। प्रकरण-ग्रन्थ तो उपयोगिता की दृष्टि से बहुत ही सक्षेप मे लिखे गये। पिछले अध्याय मे दिगम्बर सम्प्रदाय के आचार्यों की कृतियों का परिचय दिया गया है, यहाँ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्यों की धार्मिक कृतियों का परिचय दिया जाता है।

(क) सामान्य-ग्रन्थ

विशेषावश्यकभाष्य

विशेषावश्यक को ८४ आगमो मे गिना गया है, इससे इस ग्रथ के महत्व का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।[1]

---

१ इस ग्रन्थ की अति प्राचीन ताडपत्रीय प्रति जैसलमेर के भडार से उपलब्ध हुई है। यह प्रति वि० स० की दसवीं शताब्दी में लिखी गई थी। मुनि पुण्यविजय जी की कृपा से यह मुझे देखने को मिली है। यह ग्रथ मलधारि हेमचन्द्रसूरि की टीका सहित यशोविजय जैन

यह छह आवश्यकों मे से केवल सामायिक आवश्यक के ऊपर लिखा हुआ भाष्य है जिसके कर्ता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण (स्वर्गवास वीरनिर्वाण सवत् १०१०=सन् ५४०) है। जैन आचार्यों ने इन्हें दुषमाकाल मे अधकार मे निमग्न जिनप्रवचन को प्रकाशित करने के लिये प्रदीप समान बताया है। इनकी यह विशेषता है कि तार्किक होते हुए भी इन्होंने आगमिक परम्परा को सुरक्षित रक्खा है। इसलिये इन्हें आगमवादी अथवा सिद्धातवादी कहा गया है। इस भाष्य पर इनकी स्वोपज्ञ टीका है, जिसे कोट्टार्यवादी गणि ने समाप्त किया है।[1] जिनभद्रगणि ने जीतकल्पसूत्र, जीतकल्पसूत्रभाष्य, बृहत्सग्रहणी, बृहत्क्षेत्रसमास, विशेषणवती, और अगुलपदचूर्णी आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की है। विशेषावश्यकभाष्य को यदि जैनज्ञानमहोदधि कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। जैनधर्म-सम्बन्धी ऐसी कोई भी विषय नहीं जो इसमे न आ गया हो। इस भाष्य मे ३६०३ गाथाये है। सर्वप्रथम मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान का विस्तार के साथ प्रतिपादन किया है। तत्पश्चात् निक्षेप, नय ओर प्रमाण का विशद विवेचन है। गणधरवाद का यहाँ सविशेष वर्णन है। फिर आठ निह्नवो का अधिकार है, उसके बाद पच परमेष्ठियों की व्याख्या की गई है। सिद्धनमस्कारव्याख्या मे समुद्घात, शैलेशी, अनन्त सुख, अवगाहना आदि का निरूपण है। अन्त मे नय का विवेचन किया गया है।

ग्रथमाला, बनारस से वीर सवत् २४३७ में प्रकाशित हुआ है। इसका गुजराती अनुवाद आगमोदय समिति की ओर से छपा है। कोट्याचार्य की टीका सहित यह ग्रथ ऋषभदेवजीकेशरीमल सस्था, रतलाम की ओर से ईसवी सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ है।

१ इस टीका को मुनि पुण्यविजय जी शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रवचनसारोद्धार

इसके कर्ता नेमिचन्द्रसूरि है जो विक्रम सवत् की लगभग १३वीं शताब्दी मे हुए है।[1] इस पर सिद्धसेनसूरि ने टीका लिखी है। इस ग्रथ मे २७६ द्वारों मे १५९९ गाथाओं द्वारा जैनधर्मसम्बन्धी अनेक विषयो की चर्चा की गई है। इसे एक प्रकार से जैन विश्वकोष ही कहा जा सकता है। चैत्यवदन, गुरुवदन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग, विशतिस्थान, जिनभगवान् के यक्ष यक्षिणी लाछन वर्ण-आयु निर्वाण प्रातिहार्य-अतिशय आदि, जिनकल्पी, स्थविरकल्पी, महाव्रतसख्या, चैत्यपचक, पुस्तकपचक, दडपचक, तृणपचक, चर्मपचक, दूष्यपचक, अवग्रहपचक, परीषह, स्थडिलभेद, आदि अनेक-अनेक विषयो का प्रतिपादन यहाँ किया गया है।

विचारसारप्रकरण

इस ग्रथ के रचयिता देवसूरि के शिष्य प्रद्युम्नसूरि है[2] जो लगभग विक्रम सवत् १३२५ (ईसवी सन् १२६८) मे विद्यमान थे। माणिक्यसागर ने इसकी सस्कृत छाया लिखी है। इस ग्रन्थ मे ९०० गाथाये है जिनमे कर्मभूमि, अकर्मभूमि, अनार्य-देश, आर्यदेश की राजधानियाँ, तीर्थकरो के पूर्वभव, उनके माता पिता, स्वप्न, जन्म, अभिषेक, नक्षत्र, लाछन, वर्ण, समवशरण, गणधर आदि तथा बाईस परीषह, वसति की शुद्धि, पात्रलक्षण, दण्डलक्षण, विनय के भेद, सस्तारकविधि, रात्रि-जागरण, अष्टमहाप्रतिहार्य, वीरतप, दस आश्चर्य, कल्कि, नन्द और शकों का काल, विक्रमकाल, दस निह्नव, दिगम्बरोत्पत्तिकाल, चैत्य के प्रकार, ८४ लाख योनि, सिद्धों के भेद आदि विविध विषयों का विस्तार से वर्णन है।

---

१ देवचद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार द्वारा बबई से सन् १९२२ और १९२६ में दो भागों में प्रकाशित।

२ आगमोदयसमिति, भावनगर की ओर से सन् १९२३ में प्रकाशित।

(ख) दर्शन-खंडन-मडन

सम्मइपयरण (सन्मतिप्रकरण)

सिद्धसेन दिवाकर विक्रम सवत् की ५वी शताब्दी के विद्वान् है, इन्होने सन्मतितर्कप्रकरण की रचना है।[1] जैनदर्शन और न्याय का यह एक प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमे नयवाद का विवेचन कर अनेकातवाद की स्थापना की गई है। इस पर मल्लवादी ने टीका लिखी है जो आजकल अनुपलब्ध है। दिगम्बर विद्वान् सन्मति ने इस पर निवरण लिखा है। प्रद्युम्नसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने इस महान् ग्रथ पर वाद महार्णव या तत्वबोधविधायिनी नाम्र की एक विस्तृत टीका की रचना की है। सन्मतितर्क मे तीन काण्ड है। प्रथम काण्ड मे ५४ गाथाये है जिनमे नय के भेदो ओर अनेकात की मर्यादा का वर्णन है। द्वितीय काण्ड मे ४३ गाथाओं मे दर्शन ज्ञान की मीमासा की गई है। तृतीय खण्ड मे ६६ गाथायें है जिनमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा अनेकात की दृष्टि से ज्ञेयतत्व का विवेचन है। यहाँ जिनवचन को मिथ्यादर्शनों का समूह कहा गया है।[2]

---

१ अभयदेवसूरि की टोकासहित पडित सुखलाल और पडित बेचरदास द्वारा सपादित, पुरातत्वमदिर, अहमदाबाद से वि० स० १९८०, १९८२, १९८४, १९८५, और १९८७ में प्रकाशित। गुजराती अनुवाद, विवेचन और प्रस्तावना के साथ पूजाभाई जैन ग्रथमाला की ओर से सन् १९३२ में, तथा अग्रेजी अनुवाद और प्रस्तावना के साथ श्वेताबर एज्युकेशन बोर्ड की ओर से सन् १९३९ में प्रकाशित।

२ भद्द मिच्छादसणसमूहमइअस्स अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ सविग्गसुहाइमग्गस्स ॥ ३—६९

विशेषावश्यकभाष्य (गाथा ९५४) में मिथ्यात्वमयसमूह को सम्यक्त्व मान कर पर सिद्धान्त को ही स्वसिद्धान्त बताया गया है।

धम्मसंगहणी (धर्मसंग्रहणी)

हरिभद्रसूरि का यह दार्शनिक ग्रथ है।[1] इसके पूर्वार्ध मे पुरुषवादिमतपरीक्षा, अनादिनिधनत्व, अमूर्तत्व, परिणामित्व और ज्ञायकत्व, तथा उत्तरार्ध भाग मे कर्तृत्व, भोक्तृत्व और सर्वज्ञसिद्धि का प्ररूपण है।

प्रवचनपरीक्षा

प्रवचनपरीक्षा एक खडनात्मक ग्रथ है, इसका दूसरा नाम है कुपक्षकौशिकसहस्रकिरण।[2] इसे कुमतिमतकुद्दाल भी कहा गया है। तपागच्छ के धर्मसागर उपाध्याय ने विक्रम सवत् १६२९ (ईसवी सन् १५७२) मे अपने ही गच्छ को सत्य और बाकी को असत्य सिद्ध करने के लिये इस ग्रथ की सवृत्तिक रचना की थी। विक्रम सवत् १६१७ (ईसवी सन् १५६०) मे पाटण मे खरतरगच्छ और तपागच्छ के अनुयायियों मे इस विषय पर विवाद हुआ कि 'अभयदेवसूरि खरतरगच्छ के नहीं थे'। आगे चलकर तपागच्छ के नायक विजयदानसूरि ने प्रवचनपरीक्षा को जल की शरण मे पहुँचा कर इस वाद विवाद को रोक दिया। धर्मसागरसूरि ने चतुर्विध सघ के समक्ष क्षमा याचना की।[3] प्रवचनसारपरीक्षा के पूर्व और उत्तर नाम के दो भाग हैं। इनमे तीर्थस्वरूप, दिगम्बरनिराकरण, पौर्णिमीयकमत-निराकरण, ० खरतर, आचलिक, सार्धपौर्णिमीयकनिराकरण, आगमिकमतनिराकरण, लुम्पाकमतनिराकरण, कटुकमतनिरा-

---

१ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९१६ और १९१८ में दो भागों में प्रकाशित।

२ ऋषभदेवजीकेशरीमल सस्था, रतलाम की ओर से सन् १९३७ में प्रकाशित।

३ धर्मसागर उपाध्याय के अन्य ग्रथों के लिए देखिये मोहनलाल दलीचद देसाई, जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ५८२, ३।

करण, बीजायतनिराकरण और पाशचन्द्रमतनिराकरण नाम के विश्रामो द्वारा अन्य मतों का खडन किया गया है।

उत्सूत्रखडन

धर्मसागर उपाध्याय की यह दूसरी रचना है[1] जिसे उन्होने जिनदत्तसूरि गुरु के उपदेश से लिखा था। इसमे स्त्री को पूजा का निषेध, जिनभवन मे नर्तकी नचाने का निषेध, मासकल्पविहार, मालारोपणअधिकार, पटलाधिकार, चामुडा आदि की आराधना तथा पचनदी की साधना मे अदोष आदि विषयों का वर्णन है।

युक्तिप्रबोधनाटक

यह खडन मडन का ग्रथ है।[2] मेघविजय महोपाध्याय ने विक्रम सवत् की १८वी शताब्दी मे इसकी रचना की है। इसमे २५ गाथाएँ है, जिन पर मेघविजय की स्वोपज्ञ टीका है। इसमे विक्रम सवत् १६८० मे आविर्भूत वाणारसीय (बनारसीदास) दिगम्बर मत का खडन किया है। बनारसीदास के साथी रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल और धर्मदास का यहाँ उल्लेख है। दिगम्बर और श्वेताम्बरों के ८४ मतभेदों का यहाँ विवेचन है।

(ग) सिद्धान्त

जीवसमास

इसकी रचना पूर्वधारियों द्वारा की गई है।[3] ज्योतिष्करडक की भाँति जैन आगमो की वलभी वाचना का अनुसरण करके

१ जिनदत्तसूरि ज्ञानभाडागार, गोपीपुरा, सूरत की ओर से सन् १९२३ में प्रकाशित।

२ ऋषभदास केशरीमल श्वेताम्बर सस्था, रतलाम की ओर से ईसवी सन् १९२८ में प्रकाशित।

३ आगमोदय समिति, भावनगर की ओर से सन् १९२७ में प्रकाशित।

इसकी भी रचना हुई है। इसमे २८६ गाथाओं मे सत्, प्रमाण, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर और भाव की अपेक्षा जीवाजीव का विचार किया गया है। इस पर मलधारि हेमचन्द्रसूरि ने विक्रम सवत् ११६४ (ईसवी सन् ११०७) मे ७०० श्लोकप्रमाण बृहद् वृत्ति की रचना की है। शीलाक आचार्य ने भी इस पर वृत्ति लिखी है।

विशेषणवती

इसके रचयिता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण है।[1] इसमे ४०० गाथाओं मे वनस्पतिअवगाह, जलावगाह, केवलज्ञान दर्शन, बीजसजीवत्व आदि विषयों का वर्णन है।

विंशतिविंशिका

इसके कर्ता याकिनीसूनु हरिभद्रसूरि है।[2] इसके प्रत्येक अधिकार मे बीस बीस गाथाये है जिनमे लोक, अनादित्व, कुलनीतिलोकधर्म, चरमावर्त, बीज, सद्धर्म, दान, पूजा, श्रावक धर्म, यतिधर्म, आलोचना, प्रायश्चित्त, योग, केवलज्ञान, सिद्धभेद, सिद्धसुख आदि का वर्णन है।

सार्धशतक

इसका दूसरा नाम सूक्ष्मार्थसिद्धातविचारसार है।[3] इसके कर्ता जिनवल्लभसूरि है। इस पर ११० गाथाओं का एक अज्ञात कर्तृक भाष्य है, मुनिचन्द्र ने चूर्णी, तथा हरिभद्र, धनेश्वर और चक्रेश्वर ने वृत्तियाँ लिखी है।

---

१ ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम की ओर से सन् १९२७ में प्रकाशित।

२ वही, प्रोफेसर के० वी० अभ्यकर ने इसका अग्रेजी अनुवाद किया है जो मूल और सस्कृत छाया सहित अहमदाबाद से सन् १९३२ में प्रकाशित हुआ है।

३ आत्मानद जैन सभा, भावनगर की ओर से प्रकाशित।

भाषारहस्यप्रकरण

इसके कर्ता उपाध्याय यशोविजय है, इस पर उन्होंने स्वोपज्ञ विवरण लिखा है।[1] इसमे १०१ गाथाऍ है जिनमे द्रव्यभाषा और भावभाषा की चर्चा करते हुए जनपद, सम्मत, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, भाव, योग और आपम्य नाम के दस सत्यो का विवेचन है।

(घ) कर्मसिद्धांत

जैनधर्म मे कर्मग्रन्थो का बहुत महत्व हे। श्वेताबर और दिगम्बर दोनों ही आचार्यों ने कर्मसिद्धात का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। कर्मसिद्धातसम्बन्धी साहित्य का यहाँ कुछ परिचय दिया जाता है।

कम्मपयडि (कर्मप्रकृति)

कर्मप्रकृति[2] के लेखक आचार्य शिवशर्म है। इसमे ४१५ गाथाओं मे बधन, सक्रमण, उद्वर्तन, अपवर्तन, उदीरणा, उपशमना, उदय और सत्ता नामक आठ करणों का विवेचन है। इस पर चूर्णी भी लिखी गई है। मलयगिरि और उपाध्याय यशोविजय ने इस पर टीकाये लिखी है।

सयग (शतक)

शतक शिवशर्म की दूसरी रचना है। इस पर मलयगिरि ने टीका लिखी है।[3]

---

१ राजनगर (अहमदाबाद) की जैनग्रथ प्रकाशक सभा की ओर से विक्रम सवत् १९९७ मे प्रकाशित।

२ मुक्ताबाई ज्ञानमदिर, डभोई द्वारा सन् १९२७ में प्रकाशित। मूल, सस्कृत छाया और गुजराती अनुवाद के साथ माणेकलाल चुन्नीलाल की ओर से सन् १९३८ में प्रकाशित।

३ जैन आत्मानद सभा भावनगर की ओर से सन् १९४० में प्रकाशित। इसके साथ देवेन्द्रसूरिकृत शतक नाम का पाँचवाँ नव्य कर्मग्रथ और उसकी स्वोपज्ञ टीका भी प्रकाशित हुई है।

पचसंगह (पंचसंग्रह)

पार्श्वऋषि के शिष्य चन्द्रर्षि महत्तर ने पचसग्रह[1] की रचना की है। इस पर उन्होंने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी है। मलयगिरि की इस पर भी टीका है। इसमे ९६३ गाथायें है जो सयग, सत्तरि, कसायपाहुड, छकम्म और कम्मपयडि नाम के पॉच द्वारों मे विभक्त है। गुणस्थान, मार्गणा, समुद्घात, कर्मप्रकृति, तथा बधन, सक्रमण आदि का यहाँ विस्तृत वर्णन है।

प्राचीन कर्मग्रन्थ

कम्मविवाग, कम्मत्थव, बधसामित्त, सडसीइ, सयग और सित्तरि ये छह कर्मग्रथ गिने जाते है। इनमे कम्मविवाग के कर्ता गर्गर्षि है, कम्मत्थव और बधसामित्त के कर्ता अज्ञात है। जिनवल्लभगणि ने सडसीइ नाम के चौथे कर्मग्रन्थ की रचना की है।[2] सयग नाम के पॉचवें कर्मग्रन्थ के रचयिता आचार्य शिवशर्म हैं, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। छठे कर्मग्रथ के कर्त्ता अज्ञात है।

इन कर्मग्रथों का विषय गहन होने के कारण उन पर भाष्य, चूर्णियॉ और अनेक वृत्तियॉ लिखी गई हैं। उदाहरण के लिये, दूसरे कर्मग्रथ के ऊपर एक और चौथे कर्मग्रथ के ऊपर दो भाष्य है, इन तीनों भाष्यो के कर्ताओं के नाम अज्ञात है।

---

१ स्वोपज्ञवृत्ति सहित जैन आत्मानद सभा की ओर से सन् १९२७ मे प्रकाशित। मलयगिरि की टीका के साथ हीरालाल हसराज की ओर से सन् १९१० आदि में चार भागों में प्रकाशित। मूल सस्कृत छाया तथा मूल और मलयगिरि टीका के अनुवाद सहित दो खडों में सन् १९३५ और सन् १९४१ में प्रकाशित।

२ ये चार कर्मग्रथ सस्कृत टीका सहित जैन आत्मानद सभा की ओर से वि० स० १९७२ में प्रकाशित हुए हैं। इनकी भूमिका में विद्वान् सपादक चतुरविजय जी महाराज ने कर्मसिद्धान्त का विवेचन करते हुए इस विषय के साहित्य की सूची दी है।

चौथे कर्मग्रथ के ऊपर रामदेव ने चूर्णी लिखी है। पाँचवें कर्म-ग्रन्थ पर तीन भाष्य हैं, इनमे दो अज्ञातकर्तृक है और अप्रकाशित है। पाँचवे कर्मग्रन्थ शतक बृहत्भाष्य के कर्ता चक्रेश्वर है।[1] इनके ऊपर दो चूर्णियाँ ह। एक के कर्ता चन्द्रर्षि-महत्तर ओर दूसरी के अज्ञात है। छठे कर्मग्रन्थ पर अभयदेव सूरि ने भाष्य लिखा है। विक्रम सवत् १४४६ (ईसवी सन् १३६२) मे मेरुतुग ने इस पर वृत्ति लिखी है।[2] इस कर्मग्रन्थ पर एक और अज्ञातकर्तृक भाष्य तथा चूर्णी उपलब्ध है।[3]

नव्य कर्मग्रन्थ

तपागच्छीय जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य तथा सुदसणाचरिय, भाष्यत्रय, सिद्धपचाशिका, श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति आदि के कर्ता देवेन्द्रसूरि (स्वर्गवास विक्रम सवत् १३२७=ईसवी सन् १२७०) ने कर्मविपाक, कर्मस्तव, बन्धस्वामित्व, षडशीति[4] और शतक नाम के पाँच कर्मग्रन्थों की रचना की है। इन पर उनका स्वोपज्ञ विवरण भी है। प्राचीन कर्मग्रथो को आधार मानकर इनकी रचना की गई है, इसलिये इन्हें नव्य कर्मग्रथ कहा जाता है। पहले कर्मग्रथ मे ६० गाथाये है जिनमे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म, उनके भेद-प्रभेद, और उनके विपाक का दृष्टातपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। दूसरे कर्मग्रन्थ मे ३४ गाथाये है, यहाँ १४ गुणस्थानों का स्वरूप और इन गुणस्थानो मे कर्मप्रकृतियों के बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता का प्ररूपण है। तीसरे कर्मग्रथ मे २४ गाथाये है, इनमे मार्गणा के आश्रय से जीवों के कर्मप्रकृतिविषयक बध-स्वामित्व का वर्णन है। चोथे

---

१ वीर समाज ग्रथरत्न द्वारा वि० स० १९८० में प्रकाशित।

२ जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से प्रकाशित।

३ वि० स० १९९९ में प्रकाशित।

४ आत्मानन्द जैनग्रथ रत्नमाला में ईसवी सन् १९३४ में प्रकाशित।

कर्मग्रन्थ मे ८६ गाथायें है, इनमे जीवस्थान, मार्गणास्थान, गुणस्थान, भाव और सख्या इन पॉच विषयों का विस्तृत विवेचन है।

पॉचवें कर्मग्रन्थ[1] मे १०० गाथाएँ है। इनमे पहले कर्मग्रन्थ मे वर्णित कर्मप्रकृतियो मे से कौन सी प्रकृतियॉ ध्रुवबधिनी, अध्रुवबधिनी, ध्रुवोदया, अध्रुवोदया, ध्रुवसत्ताका, अध्रुवसत्ताका, सर्वदेशघाती, अघाती, पुण्यप्रकृति, पापप्रकृति, परावर्तमानप्रकृति, और अपरावर्तमानप्रकृति होती है, इसका निरूपण है।

छठे कर्मग्रन्थ मे ७० (या ७२) गाथायें है। इसके प्रणेता का नाम अज्ञात है। आचार्य मलयगिरि ने इस पर टीका लिखी है। इसमे कर्मों के बन्ध, उदय, सत्ता, और प्रकृतिस्थान के स्वरूप का प्रतिपादन है।

योगविंशिका

इसके रचयिता हरिभद्रसूरि है। इस पर यशोविजयगणि ने विवरण प्रस्तुत किया है।[2] यहॉ २० गाथाओं मे योगशुद्धि का विवेचन करते हुए स्थान, ऊर्ण (शब्द), अर्थ, आलबन, रहित (निर्विकल्प चिन्मात्रसमाधि) के भेद से पॉच प्रकार का योग बताया गया है।

---

१ आत्मानन्द जैनग्रथ रत्नमाला में ईसवी सन् १९४० में प्रकाशित। इसी जिल्द में चन्द्रर्षि महत्तरकृत सित्तरी (सप्ततिका प्रकरण) भी है। श्वेताम्बरों के छह कर्मग्रन्थों और दिगम्बरों के कर्मसिद्धातविषयक ग्रन्थों की तुलनात्मक सूची भी यहाँ प्रस्तुत की गई है। पाँच कर्मग्रन्थों का अग्रेजी में सक्षिप्त परिचय 'द डॉक्ट्रीन ऑव कर्मन इन जैन फिलासफी' (डॉक्टर हेल्मुथ फॉन ग्लाज़नेप की जर्मन पुस्तक का अनुवाद) की भूमिका में दिया है।

२ राजनगर (अहमदाबाद) की श्री जैनग्रथ प्रकाशक सभा की ओर से भाषारहस्यप्रकरण के साथ विक्रम सवत् १९९७ में प्रकाशित।

(ड) श्रावकाचार

मुनियों के आचार की भाँति श्रावको के आचार विषयक भी अनेक ग्रथों की रचना प्राकृत मे हुई। इनमे मूल आवश्यक सूत्र पर लिखे हुए व्याख्या-ग्रन्थों का स्थान बहुत महत्व का है।

सावयपण्णत्ति (श्रावकप्रज्ञप्ति)

यह रचना उमास्वाति की कही जाती है।[1] कोई इसे हरिभद्रकृत मानते हैं। इसमे ४०१ गाथाओ मे श्रावकधर्म का विवेचन है।

सावयधम्मविहि (श्रावकधर्मविधि)

यह रचना हरिभद्रसूरि की है।[2] मानदेवसूरि ने इस पर विवृति लिखी है। १२० गाथाओं मे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का वर्णन करते हुए यहाँ श्रावको की विधि का प्रतिपादन किया है।

सम्यक्त्वसप्तति

यह भी हरिभद्रसूरि की कृति है। सघतिलकाचार्य ने इस पर वृत्ति लिखी[3] है। इसमे १२ अधिकारों द्वारा ७० गाथाओ मे सम्यक्त्व का स्वरूप बताया है। अष्ट प्रभावकों मे वज्रस्वामी, मल्लवादि, भद्रबाहु, विष्णुकुमार, आर्यखपुट, पादलिप्त, और सिद्धसेन का चरित प्रतिपादित किया है।

जीवानुशासन

इसके कर्ता वीरचन्द्रसूरि के शिष्य देवसूरि हैं जिन्होंने विक्रम सवत् ११६२ (ईसवी सन् ११०५) मे इस ग्रन्थ की रचना

---

१ ज्ञानप्रसारकमडल द्वारा वि० स० १९६१ में बम्बई से प्रकाशित।

२ आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर द्वारा सन् १९२४ में प्रकाशित।

३ देवचन्द्लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९१६ में प्रकाशित।

की थी।[1] इस पर स्वोपज्ञवृत्ति भी इन्होने लिखी है। यहाँ ३२३ गाथाओं मे बिम्बप्रतिष्ठा, वन्दनकत्रय, सघ, मासकल्प, आचार और चारित्रसत्ता के ऊपर विचार किया गया है।

द्वादशकुलक

इसके कर्ता अभयदेवसूरि के शिष्य जिनवल्लभसूरि (स्वर्गवास विक्रम सवत् ११६७=ईसवी सन् १११०) हैं।[2] जिनपालगणि ने इस पर विवरण लिखा है। यहाँ सम्यग्ज्ञान का महत्व, गुणस्थानप्राप्ति, धर्मसामग्री की दुर्लभता, मिथ्यात्व आदि का स्वरूप और क्रोध आदि अतरग शत्रुओं के परिहार का उपदेश दिया है।

पच्चक्खाणसरूव (प्रत्याख्यानस्वरूप)

इसके कर्ता यशोदेवसूरि हैं जिन्होंने विक्रम सवत् ११८२ (ईसवी सन् ११२५) मे इसकी रचना की है।[3] स्वोपज्ञवृत्ति भी उन्होंने लिखी है। इसमे ४०० गाथाओ मे प्रत्याख्यान का स्वरूप बताया है।

चेइयवदणभास

इस भाष्य के कर्ता शान्तिसूरि हैं[4] जिन्होंने लगभग ६००

---

१ हेमचन्द्राचार्य ग्रथावलि में वि० स० १९८४ में प्रकाशित।

२ जिनदत्तसूरि प्राचीनपुस्तकोद्धार फड ग्रथमाला की ओर से सन् १९३४ में बम्बई से प्रकाशित।

३ ऋषभदेव केशरीमल जी सस्था की ओर से सन् १९२७ में प्रकाशित।

४ शातिसूरि नाम के कई आचार्य हो गये हैं। एक तो उत्तराध्ययनसूत्र की वृत्ति के कर्ता थारापदगच्छ के वादिवेताल शातिसूरि हैं जो वेबर के अनुसार वि० स० १०९६ में परलोक सिधारे। दूसरे पृथ्वीचन्द्रचरित्र के कर्ता शातिसूरि हैं जिन्होंने वि० स० ११६१ में इस चरित्र की रचना की। ये पीपलियागच्छ के सस्थापक माने गये

गाथाओं मे यह भाष्य लिखा है।[1] इस पर वृत्ति भी लिखी गई है।

धम्मरयणपगरण (धर्मरत्नप्रकरण)

धर्मरत्नप्रकरण के कर्ता शातिसूरि है[2], इन्होने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति की भी रचना की है। शातिसूरि विक्रम की १२ वी शताब्दी के विद्वान् है। यहाँ बताया है कि योग्यता प्राप्त करने के लिये श्रावक को प्रकृतिसौम्य, लोकप्रिय, भीरु अशठ, लज्जालु, सुदीर्घदर्शी आदि गुणों से युक्त होना चाहिये। छह प्रकार का शील तथा भावसाधु के सात लक्षण यहाँ बताये है।

धम्मविहिपयरण (धर्मविधिप्रकरण)

इसके कर्ता श्रीप्रभ है जिनका समय ईसवी सन् ११६६ (अथवा १२७६) माना जाता है।[3] इस पर उदयसिहसूरि ने विवृति लिखी है। धर्मविधि के द्वार, धर्मपरीक्षा, धर्म के दोष, धर्म के भेद, गृहस्थधर्म आदि विषयों का यहाँ विवेचन है। धर्म का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए इलापुत्र, उदायन राजा, कामदेव, श्रावक, जबूस्वामी, प्रदेशी राजा, मूलदेव, विष्णुकुमार, सम्प्रति आदि की कथाएँ वर्णित है।

हैं। इनमें से कौन से शातिचन्द्र ने चेइयवदणभाष्य की रचना की और कौन से ने धर्मरत्नप्रकरण लिखा, इसका निर्णय नहीं हुआ है। देखिये जैनग्रथावलि, पृ० २४, १८१ के फुटनोट।

१ आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर की ओर से वि० स० १९७७ में प्रकाशित।

२ जैनग्रथ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद की ओर से वि० स० १९५३ में प्रकाशित।

३ हसविजय जी फ्री लाइब्रेरी, अहमदाबाद से सन् १९२४ में प्रकाशित। नन्नसूरि ने भी धर्मविधिप्रकरण की रचना की है जिसमें दस दृष्टान्तों द्वारा ज्ञान और दर्शन की सिद्धि की गई है।

पर्यूषणादशशतक

इसके कर्ता प्रवचनपरीक्षा के रचयिता धर्मसागर उपाध्याय है।[1] इसमे ११० गाथायें है जिन पर ग्रथकर्ता ने वृत्ति लिखी है।

ईर्यापथिकीषट्त्रिंशिका

धर्मसागर उपाध्याय की यह दूसरी रचना है।[2] इसमे ३६ गाथाये है जिन पर ग्रन्थकर्ता की स्वोपज्ञवृत्ति है।

देववंदनादिभाष्यत्रय

देवेन्द्रसूरि (स्वर्गवास वि० स० १३२६=ईसवी सन् १२६९) ने देववन्दन, गुरुवन्दन, और प्रत्याख्यानवन्दन के ऊपर भाष्य लिखे है।[3] इसमे भगवान् के समक्ष चैत्यवन्दन, गुरुओं का वन्दन और प्रत्याख्यान का वर्णन है। सोमसुन्दरसूरि ने इस पर अवचूरि लिखी है।

सबोधसप्ततिका

इसके कर्ता सिरिवालकहा के रचयिता रत्नशेखरसूरि (ईसवी सन् की १४वीं शताब्दी) है। पूर्वाचार्यकृत निशीथचूर्णी आदि ग्रन्थों के आधार से उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है।[4] अमरकीर्त्तिसूरि की इस पर वृत्ति है। इस ग्रथ मे समताभाव,

---

१ ऋषभदेव केशरीमल सस्था की ओर से सन् १९३६ में सूरत से प्रकाशित।

२ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९१२ में प्रकाशित।

३ आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर द्वारा वि० स० १९६९ में प्रकाशित।

४ विठलजी हीरालाल हसराज द्वारा सन् १९२९ में प्रकाशित।

सम्यक्त्व, जीवदया, सुगुरु, सामायिक, साधु के गुण, जिनागम का उत्कर्ष, सघ, पूजा, गच्छ, ग्यारह प्रतिमा आदि का प्रतिपादन है। समताभाव के सम्बन्ध मे कहा है—

सेयबरो य आसबरो य, बुद्धो य अहव अन्नो वा।
समभावभावियप्पा, लहेय मुक्ख न सदेहो ॥

—श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या कोई अन्य, जब तक आत्मा में समता भाव नही आता, मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

धम्मपरिक्खा (धर्मपरीक्षा)

इसके कर्ता उपाध्याय यशोविजय (ईसवी सन् १६८६ मे स्वर्गवास) हैं।[1] इसमे धर्म का लक्षण, सम्प्रदाय बाह्यमतखडन, सूत्रभाषक के गुण, केवलीविषयक प्रश्न, सद्गुरु, अध्यात्मध्यान की स्तुति आदि विषयों का विवेचन है।

पौषधप्रकरण

इसे पौषधषट्त्रिंशिका भी कहा जाता है। इसके कर्ता जयसोमगणि (ईसवी सन् १५८८) है।[2] बादशाह अकबर की सभा मे इन्होंने वादियों को परास्त किया था। इसमे ३६ गाथायें है जिन पर ग्रन्थकर्ता ने स्वोपज्ञ वृत्ति लिखी है।

वैराग्यशतक

इसके कर्ता कोई पूर्वाचार्य है।[3] गुणविनयगणि ने ईसवी सन् की १७वीं शताब्दी में इस पर वृत्ति लिखी है। इसमे १०५ गाथाओं मे वैराग्य का सरस वर्णन किया है।

---

१ हेमचन्द्राचार्य सभा के जगजीवनदास उत्तमचन्द की ओर से सन् १९२२ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

२ जिनदत्तसुरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फड, सूरत की ओर से सन् १९३३ में प्रकाशित।

३ देवचन्दलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला में ईसवी सन् १९४१ में प्रकाशित।

वैराग्यरसायनप्रकरण

इसके कर्ता लक्ष्मीलाभ गणि[1] हैं। १०२ गाथाओं में यहाँ वैराग्य का वर्णन है।

व्यवहारशुद्धिप्रकाश

इसके कर्ता रत्नशेखरसूरि है।[2] इन्होंने इस ग्रन्थ में आजीविका के सात उपाय, पुत्रशिक्षा, ऋणसम्बन्धी दृष्टान्त, परदेशगमनसम्बन्धी नीति, व्यवहारशुद्धि, मूर्खशतक, परोपकारी का लक्षण, इद्रियस्वरूप आदि व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विवेचन किया है।

परिपाटीचतुर्दशकम्

इसके कर्ता उपाध्याय विनयविजय है।[3] इन्होंने अष्टापद-तीर्थवन्दन, सम्मेतशिखर-तीर्थवन्दन, शत्रुञ्जय तीर्थवदन, नन्दीश्वरद्वीप चैत्यवन्दन, विहरमान जिनवन्दन, विशति जाततीर्थ-वन्दन, भरत ऐरावत-तीर्थवन्दन, १६० जिनवन्दन, १७० जिनवन्दन, चतुर्विंशति त्रितयवन्दन आदि चौदह परिपाटियों का विवेचन किया है।

इसके अतिरिक्त अभयदेवसूरि के वदणयभास (बृहद्वदन भाष्य), जीवदयापयरण, नाणाचित्तपयरण, मिच्छत्तमहणकुलय और दसणकुलय आदि कितने ही जैन आचार के ग्रथ है जिनमें आचारविधि का वर्णन किया गया है[4]।

---

१ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला में ईसवी सन् १९४१ में प्रकाशित।

२ हर्षसूरि जैन ग्रथमाला, भावनगर की ओर से वि० स० २००६ में प्रकाशित।

३ जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर की ओर से वि० स० १९८४ में प्रकाशित।

४ ये लघुग्रथ ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम की ओर से सन् १९२९ में प्रकाशित सिरिपयरणसदोह में सग्रहीत हैं। क्रिया सबधी अन्य ग्रथों के लिए देखिये जैन ग्रन्थावलि, पृ० १४८ ५४।

(च) प्रकरण-ग्रन्थ

लघुग्रन्थ को प्रकरण कहते है। धर्मोपदेश देते समय साधुओं के लिये प्रकरण ग्रन्थ बहुत उपयोगी होते है। सक्षिप्त होने से इन्हे कठस्थ करने मे भी बडी सुविधा रहती है। इसके अतिरिक्त जो साधु इन ग्रन्थो को पढे रहते थे, उनका आगम-सिद्धात मे शीघ्र ही प्रवेश हो सकता था। जैनधर्मसबधी विविध विषयों का प्रतिपादन करने के लिये प्राकृत-साहित्य मे अनेक प्रकरण-ग्रन्थ लिखे गये है। आत्मानन्द ग्रन्थरत्नमाला के सचालक मुनि चतुरविजय जी महाराज ने अनेक प्रकरण-ग्रन्थों का प्रकाशन किया है।

जीवविचारप्रकरण

इसके[1] कर्ता शातिसूरि है। इसमे ५१ गाथाओं मे जीव के स्वरूप का विचार है। रत्नाकरसूरि, ईश्वराचार्य और मेघनन्द आदि ने इस पर टीकाये लिखी है।

नवतत्वगाथाप्रकरण

इसमे ५३ गाथाओ मे नवतत्वो का विवेचन है। इसके कर्ता देवगुप्त है। नवागीकार अभयदेवसूरि ने इस पर भाष्य[2] और यशोदेव ने वृत्ति लिखी है। धर्मविजय ने सुमगला नाम की टीका लिखी है।[3]

---

१ जीवविचार, नवतत्वदडक, लघुसग्रयणी, बृहत्सग्रयणी, त्रैलोक्यदीपिका, लघुक्षेत्रसमास और षट्कर्मग्रथ ये प्रकरण ग्रथ श्रावक भीमसिंह माणेक की ओर से लघुप्रकरणसग्रह नाम से सवत् १९५९ में प्रकाशित हुए हैं।

२ आत्मानन्द जैनसभा द्वारा वि० स० १९६९ में प्रकाशित।

३ मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, भावनगर की ओर से सन् १९३४ में प्रकाशित।

दंडकप्रकरण

इसे विचारषट्त्रिंशिका भी कहा गया है। इसके कर्ता गजसार मुनि है।

लघुसंघयणी

इसे जबूद्वीपसग्रहणी भी कहते है। इसके कर्ता बृहद्गच्छीय हरिभद्रसूरि है जिन्होने ३० गाथाओ मे जबूद्वीप का वर्णन किया है।

बृहत्संग्रहणी

इसके कर्ता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण[1] है। मलयगिरि, शालिभद्र, जिनवल्लभ आदि ने इस पर टीकाये लिखी है। जैन आचार्यों ने और भी सग्रहणियों की रचना की है, लेकिन औरों की अपेक्षा बडी होने से इसे बृहत्सग्रहणी कहा गया है। चार गति के जीवो की स्थिति आदि का सग्रह होने से इसे सग्रहणी कहते है।[2]

बृहत्क्षेत्रसमास

यह जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की कृति है। इसे समयक्षेत्र-समास अथवा क्षेत्रसमासप्रकरण भी कहा गया है।[3] आचार्य मलयगिरि ने इस पर वृत्ति लिखी है। अन्य आचार्यों ने भी इस पर टीकायें लिखी हैं। इस ग्रथ मे जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र,

---

१ आत्मानद जैन सभा, भावनगर की ओर से वि० स० १९७३ में प्रकाशित।

२ बृहत्सग्रहणी और तिलोयपण्णत्ति की समान मान्यताओं के लिए देखिए तिलोयपण्णत्ति की प्रस्तावना, पृ० ७४।

३ जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर की ओर से वि० स० १९७७ में प्रकाशित।

धातकीखड, कालोदधि और पुष्करार्ध इन पॉच प्रकरणों मे द्वीप और समुद्रों का वर्णन है।[1]

नव्य बृहत्क्षेत्रसमास

इसके कर्ता सोमतिलक सूरि है। इसमे ४८६ गाथायें हैं। इस पर गुणरत्न आदि विद्वानों ने वृत्तियॉ लिखी है।

लघुक्षेत्रसमास

इसके कर्ता रत्नशेखरसूरि हैं। विक्रम सवत १४६६ (सन् १४३६) मे इन्होंने षडावश्यकवृत्ति की रचना की थी। इसमे २६२ गाथाये है जिन पर लेखक की स्वोपज्ञ वृत्ति है। आजकल लघुक्षेत्रसमास का ही अधिक प्रचार है। अढाई द्वीप का इसमे वर्णन है।

श्रीचद्रीयसंग्रहणी

इसके कर्ता मलधारि हेमचन्द्र के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि हैं। इसमे ३१३ गाथायें है जिन पर मलधारि देवभद्र ने वृत्ति लिखी है।

समयसारप्रकरण

इसके[2] कर्ता देवानन्द आचार्य हैं, स्वोपज्ञ टीका भी उन्होने लिखी है। इस प्रकरण में दस अध्यायो मे जीव, अजीव, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आदि का प्ररूपण किया गया है।

षोडशकप्रकरण

यह रचना[3] हरिभद्रसूरि की है जिस पर यशोभद्रसूरि और

---

१ गणित के नियमों आदि में बृहत्क्षेत्रसमास और यतिवृषभ की तिलोयपण्णत्ति में समानता के लिये देखिये तिलोयपण्णत्ति की प्रस्तावना, पृ० ७५—७।

२ आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर द्वारा वि० स० १९७१ में प्रकाशित।

३ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार द्वारा सन् १९११ में प्रकाशित।

यशोविजय जी की टीकायें है। इसमे १६ प्रकरणों मे धर्मपरीक्षा, देशना, धर्मलक्षण, लोकोत्तरतत्त्वप्रज्ञप्ति, प्रतिष्ठाविधि, पूजाफल, दीक्षाधिकार, समरस आदि का विवेचन है।

पचाशकप्रकरण

पचाशक[1] हरिभद्र की कृति हैं, इस पर अभयदेवसूरि की वृत्ति है। इसमें श्रावकधर्म, दीक्षा, चैत्यवन्दना, पूजाविधि, यात्राविधि, साधुधर्म, सामाचारी, पिंडविशुद्धि, आलोचनाविधि, साधुप्रतिमा, तपोविधि आदि का ५०-५० गाथाओ मे वर्णन है। आद्यपचाशक पर यशोदेवसूरि ने चूर्णी लिखी है।

नवपदप्रकरण

नवपदप्रकरण के[2] कर्ता देवगुप्तसूरि है, ये जिनचन्द्र के नाम से प्रख्यात थे। इस पर इनकी श्रावकानदी नाम की स्वोपज्ञ लघु वृत्ति है जो विक्रम सवत् १०७३ (सन् १०१६) मे लिखी गई थी। यशोदेव उपाध्याय, देवेन्द्र, और कुलचन्द्र आदि विद्वानों ने भी इस प्रकरण पर वृत्ति लिखी है। इसमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और बारह व्रतों के सबध मे विवेचन किया गया है।

सप्ततिशतस्थानप्रकरण

इसके कर्ता सोमतिलक है।[3] देवविजय जी ने इस पर टीका लिखी है। यहाँ १७० स्थानों मे २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

अन्य प्रकरण ग्रन्थ

इसके अतिरिक्त अन्य अनेकानेक प्रकरण ग्रन्थो की रचना की गई। इनमे धर्मघोपसूरि का समवसरणप्रकरण, विजयविमल

---

१ जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा सन् १९१२ में प्रकाशित।

२ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला द्वारा सन् १९२७ में प्रकाशित।

३ जैन आत्मानन्दसभा द्वारा वि० स० १९७५ में प्रकाशित।

का विचारपचाशिका, महेन्द्रसूरि का विचारसत्तरि, देवेन्द्रसूरि का सिद्धपचाशिका, अभयदेव का पचनिर्ग्रंथीप्रकरण, धर्मघोष का बधषट्त्रिंशिकाप्रकरण, रत्नशेखर का गुणस्थानक्रमारोहप्रकरण, शान्तिसूरि का धर्मरत्नप्रकरण,[1] लोकनालिकाप्रकरण, देहस्थिति-प्रकरण, श्रावकव्रतभगप्रकरण, प्रज्ञापनातृतीयपदसग्रहणीप्रकरण, अन्नायउञ्छप्रकरण, निगोदषट्त्रिंशिकाप्रकरण, परमाणुविचारषट्-त्रिंशिकाप्रकरण, पुद्गलषट्त्रिंशिकाप्रकरण, सिद्धदडिकाप्रकरण (देवेन्द्रसूरिकृत), सम्यक्त्वपचविंशतिकाप्रकरण, कर्मसवेद्यभग-प्रकरण, क्षुल्लकभवावलि प्रकरण (धर्मशेखरगणिकृत), मडलप्रकरण (विनयकुशलकृत), गागेयप्रकरण अगुलसप्ततिकाप्रकरण, वनस्पति सत्तरिप्रकरण (मुनिचन्द्रकृत), देवेन्द्रनरकेन्द्रप्रकरण[2] (हरिभद्रकृत), कूपदृष्टातविशदीकरणप्रकरण[3] (यशोविजयकृत), पुद्गलभगप्रकरण, पुद्गलपरावर्तस्वरूपप्रकरण, षट्स्थानकप्रकरण, भूयस्कारादिविचार-प्रकरण, बधहेतूदयत्रिभगीप्रकरण (हर्षकुलकृत), बधोदयप्रकरण, कालचक्रविचारप्रकरण, जीवाभिगमसग्रहणीप्रकरण, गुरुगुणषट्-त्रिंशिकाप्रकरण (व्रजसेनकृत), त्रिषष्टिशलाकापचाशिकाप्रकरण, कालसत्तरिप्रकरण (धर्मघोषकृत), सूक्ष्मार्थसत्तरिप्रकरण (चक्रेश्वर-सूरिकृत), योनिस्तवप्रकरण, लब्धिस्तवप्रकरण, लोकातिकस्तव प्रकरण,[4] आदि मुख्य है। कर्मग्रन्थों का भी प्रकरणों में अन्तर्भाव होता है।

---

१ जैनग्रथ प्रकाशक सभा द्वारा अहमदाबाद से वि० स० २०१० में प्रकाशित।

२ इस पर मुनिचन्द्रसूरि की वृत्ति है। जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर की ओर से सन् १९२२ में प्रकाशित।

३ जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, राजनगर (अहमदाबाद) की ओर से वि० स० १९९७ में प्रकाशित।

४ देखिये जैन ग्रथावलि, श्री जैन श्वेताम्बर कन्फ्रेस, मुबई, वि० स० १९६५, पृ० १३२–४५।

(छ) सामाचारी

सामाचारी अर्थात् साधुओं का आचार-विचार, इस पर भी अनेक ग्रन्थ प्राकृत मे लिखे गये है[1]। किसी पूर्वाचार्य विरचित आयारविहि अथवा सामाचारीप्रकरण मे सम्यक्त्व, व्रत, प्रतिमा, तप, प्रव्रज्या, योगविधि, आदि का विवेचन है।[2] तिलकाचार्य की सामाचारी[3] मे साधुओं के आचार विचार से सबध रखनेवाले योग, तपस्या, लोच, उपस्थापना, वसति, कालग्रहणविधि आदि विषयों का प्रतिपादन है। धनेश्वरसूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि ने भी सुबोधसामाचारी की रचना की है।[4] भावदेवसूरि ने श्रीयतिदिनचर्या[5] का सकलन किया है। किसी चिरतन आचार्य ने पचसूत्र[6] की रचना की है, इस पर हरिभद्र ने टीका लिखी है। हरिभद्रसूरि के पचवस्तुकसग्रह[7] मे प्रव्रज्या, प्रतिदिनक्रिया, उपस्थापना, अनुज्ञा और सल्लेखना के विवेचन पूर्वक साधुओ के आचार का वर्णन है। हरिभद्रसूरि की दूसरी

---

१ विशेष के लिये देखिये जैन ग्रथावलि, श्रीजैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, मुबई द्वारा प्रकाशित, पृ० १५५–५७।

२ जैन आत्मानन्द सभा की ओर से सन् १९१९ में प्रकाशित।

३ डाह्याभाई मोकमचन्द, अहमदाबाद द्वारा वि० स० १९९० में प्रकाशित।

४ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९२४ में प्रकाशित।

५ ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम की ओर से सन् १९३६ में में प्रकाशित।

६ लब्धिसूरीश्वर जैनग्रथमाला द्वारा सन् १९३९ में प्रकाशित।

७ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९२७ में प्रकाशित।

रचना है सबोधप्रकरण, इसका दूसरा नाम तत्वप्रकाशक भी है। इसमे देवस्वरूप तथा गुरुअधिकार मे कुगुर, गुर्वाभास, पार्श्वस्थ आदि के स्वरूप का प्रतिपादन है। गुरुतत्वविनिश्चय के रचयिता उपाध्याय यशोविजय है, इस पर उनकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी है।[1] इसमे चार उल्लास है जिनमे गुरु का माहात्म्य, आगम आदि पॉच व्यवहारो का निरूपण, पार्श्वस्थ आदि कुगुरुओ का विस्तृत वर्णन, दूसरे गच्छ मे जाने की परिपाटी का विवेचन, साधुसघ के नियम, सुगुरु का स्वरूप तथा पुलक आदि पॉच निर्ग्रन्थों का निरूपण किया गया है। यतिलक्षणसमुच्चय उपाध्याय यशोविजय जी की दूसरी रचना है।[2] इसमे २२७ गाथाओं मे मुनियों के लक्षण बताये गये है।

(ज) विधिविधान (क्रियाकाण्ड)

विधिमार्गप्रपा

विधिमार्गप्रपा के रचयिता जिनप्रभसूरि एक असाधारण प्रभावशाली जैन आचार्य थे जिन्होने विक्रम सवत् १३६३ (ईसवी सन् १३०६) मे अयोध्या मे इस ग्रन्थ को लिखकर समाप्त किया था।[3] इस ग्रन्थ मे साधु और श्रावकों की नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं की विधि का वर्णन है। क्रियाकाडप्रधान इस ग्रन्थ मे ४१ द्वार हैं। इनमे सम्यक्त्व-व्रत आरोपणविधि, परिग्रहपरिमाणविधि, सामायिक आरोपणविधि और मालारोपण-विधि, आदि का वर्णन है। मालारोपणविधि मे मानदेवसूरि-रचित ५४ गाथाओं का उवहाणविहि नामक प्राकृत का प्रकरण उद्धृत किया है जो महानिशीथ के आधार से रचा गया है।

---

१ आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर की ओर से सन् १९२५ में प्रकाशित।

२ जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर से वि० स० १९६५ में प्रकाशित।

३ मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से सन् १९४१ में प्रकाशित।

कुछ लोग महानिशीथ सूत्र की प्रामाणिकता मे सन्देह करते है, इसलिये आठवे द्वार मे किसी पूर्व आचार्य द्वारा रचित उवहाणपइट्ठापचासय नाम का प्रकरण उद्धृत है। यहाँ महानिशीथ की प्रामाणिकता का समर्थन किया गया है। तत्पश्चात् प्रौषधविधि, प्रतिक्रमणविधि, तपोविधि, नदिरचनाविधि, लोचकरणविधि, उपयोगविधि, आदिमअटनविधि, उपस्थापनाविधि, अनध्यायविधि, स्वाध्यायप्रस्थापनविधि, योगनिक्षेपणविधि आदि का वर्णन है। योगनिक्षेपणविधि मे कालिक और उत्कालिक के भेदों का प्रतिपादन है। योगविधि मे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, दशा कल्प व्यवहार, भगवती, नायाधम्मकहा, उवासग, अतगड, अणुत्तरोववाइय, विपाक, दृष्टिवाद (व्युच्छिन्न) आदि आगमों के विषय का वर्णन है। वाचनाविधि मे आगमों की वाचना करने का उल्लेख है। आगम आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् साधु उपाध्याय और आचार्य की तथा साध्वी प्रवर्तिनी और महत्तरा की पदवी को प्राप्त होती है। तत्पश्चात् अनशनविधि, महापारिष्ठापनिकाविधि (शरीर का अन्त्य सस्कार करने की विधि), प्रायश्चित्तविधि, प्रतिष्ठाविधि, आदि का वर्णन है। प्रतिष्ठाविधि सस्कृत मे है, यहाँ जिनबिंबप्रतिष्ठा, ध्वजारोप, कूर्मप्रतिष्ठा, यत्रप्रतिष्ठा, और स्थापनाचार्यप्रतिष्ठा का वर्णन है। मुद्राविधि भी सस्कृत मे है, इसमे भिन्न भिन्न मुद्राओं का उल्लेख है। इसके पश्चात् ६४ योगनियों के नामों का उल्लेख है। फिर तीर्थयात्राविधि तिथिविधि और अगविज्जासिद्धिविही बताई गई है। अगविज्जा की यहाँ साधनाविधि प्रतिपादित की गई है।

इसके अलावा जिनवल्लभसूरि की पोसहविहिपयरण, दाणविहि, प्रत्याख्यानविचारणा, नदिविधि आदि कितने ही लघुग्रथ इस विषय पर लिखे गये।[1]

---

१ देखिये जैन ग्रथावलि, पृ० १४८–१५४।

(झ) तीर्थ-संबंधी विविधतीर्थकल्प

विविधतीर्थ अथवा कल्पप्रदीप[1] जिनप्रभसूरि की दूसरी रचना है। जैसे हीरविजयसूरि ने मुगल सम्राट् अकबर बादशाह के दरबार मे सम्मान प्राप्त किया था, वैसे ही जिनप्रभसूरि ने तुगलक मुहम्मदशाह के दरबार मे आदर पाया था। जिनप्रभसूरि ने गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, बराड, दक्षिण, कर्णाटक, तेलग, बिहार, कोशल, अवध, उत्तरप्रदेश और पजाब आदि के तीर्थस्थानो की यात्रा की थी। इसी यात्रा के फलस्वरूप विविध-तीर्थकल्प नामक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रथ की रचना की गई है। यह ग्रथ विक्रम सवत् १३८६ (ईसवी सन् १३३२) मे समाप्त हुआ। इसमे गद्य और पद्यमय सस्कृत और प्राकृत भाषा मे विविध कल्पो की रचना हुई है, जिनमे लगभग ३७-३८ तीर्थों का परिचय दिया है। इसमे कुल मिलाकर ६२ कल्प है। रैवतकगिरिकल्प मे राजमतीगुहा, छत्रशिला, घटशिला और कोटिशिला नाम की तीन शिलाओं का उल्लेख है। अणहिल्ल-वाडय नगर के वस्तुपाल और तेजपाल नाम के मत्रियो का नामोल्लेख है जिन्होंने आबू के सुप्रसिद्ध जिनमदिरो का निर्माण कराया। पार्श्वनाथकल्प मे पावा, चपा, अष्टापद, रेवत, समेद, काशी, नासिक, मिहिला और राजगृह आदि प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया गया है। अहिच्छत्रानगरीकल्प मे जयती, नागद-मणी, सहदेवी, अपराजिता, लक्षणा आदि अनेक महा औषधियों के नाम गिनाये हैं। मथुरापुरीकल्प मे अनेक तोरण, ध्वजा, और मालाओं से सुशोभित स्तूप का उल्लेख है। इस स्तूप को कोई स्वयभूदेव का और कोई नारायण का स्तूप कहता था, बौद्ध इसे बुद्धाड मानते थे। लेकिन यह स्तूप जैन स्तूप बताया गया है। मथुरा के मगलचैत्य का प्ररूपण बृहत्कल्पसूत्र भाष्य मे

---

१ मुनि जिनविजय जी द्वारा सपादित, सिंघी जैन ज्ञानपीठ में १९३४ में प्रकाशित।

किया गया है। मथुरा के कुसत्थल, महाथल आदि पाँच स्थलो और वृन्दावन, भडीरवन, मधुवन आदि बारह वनो के नाम यहाँ गिनाये है। विक्रम सवत् ८२६ मे श्री बप्पभट्टिसूरि ने मथुरा मे श्री वीरबिब की स्थापना की। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने यहाँ के देवनिर्मित स्तूप मे देवता की आराधना कर दीमकों से खाये हुए त्रुटित महानिशीथसूत्र को ठीक किया (सधिअ)। अश्वावबोधतीर्थकल्प मे सउलिआविहार (शकुनिकाविहार) नामक प्रसिद्ध तीर्थ का उल्लेख है। सत्यपुरकल्प मे विक्रम सवत् १३५६ मे अलाउद्दीन सुलतान के छोटे भाई उल्लूखाँ का माधव मन्त्री से प्रेरित हो दिल्ली से गुजराज के लिए प्रस्थान करने का उल्लेख है। अपापाबृहत्कल्प मे बताया है कि महावीर ने साधु जीवन मे ४२ चातुर्मास निम्नप्रकार से व्यतीत किये—१ अस्थिग्राम मे, ३ चपा और पृष्ठचपा मे, १२ वैशाली और वाणियग्राम मे, १४ नालदा और राजगृह मे, ६ मिथिला मे, २ भद्दिया मे, १ आलभिया मे, १ पणियभूमि मे, और १ श्रावस्ती मे, अतिम चातुर्मास उन्होने मध्यमपावा में हत्थिसाल राजा की शुल्कशाला मे व्यतीत किया। यहाँ पालग, नद, मौर्यवश, पुष्यमित्र, बलमित्र भानुमित्र, नरवाहन, गर्दभिल्ल, शक और विक्रमादित्य राजाओं का काल बताया गया है। अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमिकल्प मे चाउक्कड, चालुक्य आदि वशों के राजाओं के नाम गिनाये हैं। तत्पश्चात् गुजरात में अलाउद्दीन सुलतान का राज्य स्थापित हुआ। कपर्दियक्षकल्प मे कवडियक्ष की उत्पत्ति बताई है। श्रावस्ती नगरी महेठि के नाम से कही जाती थी। वाराणसीनगरीकल्प मे मणिकर्णिका घाट का उल्लेख है जहाँ ऋषि लोग पचाग्नि तप किया करते थे। यहाँ धातुवाद, रसवाद, खन्यवाद, मत्र और विद्या मे पडित तथा शब्दानुशासन, तर्क, नाटक, अलकार, ज्योतिष, चूडामणि, निमित्तशास्त्र, साहित्य आदि मे निपुण लोग रसिकों के मन आनन्दित किया करते थे। देववाराणसी मे विश्वनाथ का मदिर था। राजधानीवाराणसी

मे यवन रहते थे, तीसरी वाराणसी का नाम मदनवाराणसी (मदनपुरा) और चौथी का विजयवाराणसी था। कन्यानयम महावीरकल्प परिशेष मे पालित्तय (पादलिप्त), मल्लवादी, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्रसूरि और हेमचन्द्रसूरि का उल्लेख है। स्तभनककल्पशिलोंछ मे नागार्जुन सूरि का उल्लेख है, उन्हे रसविद्या सिद्ध थी। अभयदेवसूरि ने नौ अगों पर वृत्ति लिखी।

(ञ) पट्टावलियाँ

अनेक जैन पट्टावलियाँ भी प्राकृत मे लिखी गई है। इनमे जैन आचार्य और गुरुओं की परम्परायें दी हुई है। ऐतिहासिक दृष्टि से ये बहुत महत्वपूर्ण है। इनमे मुनिसुदर की गुर्वावलि (यशोविजय जैन ग्रथमाला, वाराणसी से वीर सवत् २४३७ मे प्रकाशित), अचलगच्छीय बृहत्पट्टावलि (जामनगर से वीर सवत् २४५५ मे प्रकाशित), पट्टावलिसमुच्चय (दो भागों मे, मुनि दर्शनविजय चारित्रस्मारक ग्रथमाला मे सन् १६३३ और सन् १६५० मे प्रकाशित), तथा धर्मसागरगणिविरचित और स्वोपज्ञवृत्ति सहित तपागच्छ पट्टावलि (पन्यास कल्याणविजय जी, भावनगर से सन् १६४० मे प्रकाशित) मुख्य हैं। इसी प्रकार खरतर गच्छपट्टावलि, पडिवालगच्छीय पट्टावलि (अप्रकाशित) आदि और भी कितनी ही गुर्वावलियाँ लिखी गई हैं जिनका अध्ययन प्राकृत साहित्य के इतिहास की दृष्टि से आवश्यक है।

(ट) प्रबन्ध

प्राकृत मे ऐतिहासिक प्रबधों की भी रचना हुई। इनमे बप्पभट्टिप्रबध, मल्लवादिप्रबध, सिद्धसेनप्रबध आदि मुख्य हैं, ये अप्रकाशित हैं। सस्कृत मे जैन आचार्यों ने चतुर्विंशति-प्रबध (राजशेखर), प्रबधचिंतामणि (मेरुतुग), प्रभावकचरित (प्रभाचन्द्र), वस्तुपालप्रबध (राजशेखर) आदि प्रबधों की रचना की। ये पुरातनप्रबध भारतवर्ष के इतिहास और प्राकृत भाषाओं के अध्ययन की दृष्टि से अत्यत उपयोगी है।

छठा अध्याय

प्राकृत कथा साहित्य

(ईसवी सन् की ४थी शताब्दी से १७वीं शताब्दी तक)

कथाओं का महत्व

कहानी की कला अत्यत प्राचीन काल से चली आती है। हर देश की अपनी-अपनी लोककथायें होती हैं और जो देश लोककथाओं से जितना ही समृद्ध है, उतना ही वह सभ्य और सुसस्कृत माना जाता है। हमारे देश का कथा-साहित्य काफी सपन्न है। इस साहित्य मे अनेकानेक कथाये, वार्तायें, आख्यान, दृष्टात, उपमा, उदाहरण आदि मिलते है जो शिक्षाप्रद होने के साथ साथ प्रेरणादायक और मनोरजक भी है। ऋग्वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि मे कितने ही बोधप्रद और मनोरजक कथानक है। बौद्धों की जातककथाये कथा साहित्य का अनुपम भडार है। पैशाची भाषा मे लिखी हुई गुणाढ्य की बड्डकहा (बृहत्कथा) कहानियों का अक्षय कोष ही था। जैन विद्वान् पूर्णभद्रसूरि का सस्कृत मे लिखा हुआ पचतत्र तो इतना लोकप्रिय हुआ कि आगे चलकर पाठक यही भूल गये कि वह किसी जैन विद्वान् की रचना हो सकती है। वस्तुत बिना पढ़े-लिखे अथवा कम पढे लिखे तथा बालक और अज्ञ लोगों को बोध देने के लिये कहानी सर्वोत्कृष्ट साधन है और वह भी यदि उन्ही की भाषा मे सुनाई जाये।

आगम-साहित्य मे कथायें

प्राचीन जैन आगमो मे कथा साहित्य की दृष्टि से नायाधम्मकहाओ का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ उदाहरण, दृष्टात, उपमा, रूपक, सवाद और लोकप्रचलित कथा कहानियों द्वारा

सयम, तप और त्याग के उपदेशपूर्वक धर्मकथा का विवेचन किया गया है। धन्य सार्थवाह और उसकी चार पतोहुओं की कहानी एक सुदर लोककथा है जिसके द्वारा कल्याणमार्ग का उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार मयूरी के अडे, दो कछुए, तुबी, नदीफल वृक्ष, कालियद्वीप के अश्व आदि दृष्टातो द्वारा धार्मिक उपदेश दिया है। जिनपालित और जिनरक्षित का आख्यान ससार के प्रलोभनो से बचने के लिये एक सुदर आख्यान है। तालाब के मेढक ओर समुद्र के मेढक का सवाद उल्लेखनीय है। सूत्रकृताग मे कमलो से आच्छादित सुन्दर पुष्करिणी के दृष्टात द्वारा धर्म का उपदेश दिया है। इस पुष्करिणी के बीचोंबीच एक अत्यत सुन्दर कमल लगा हुआ है। चार आदमी चारों दिशाओ से इसे तोडने के लिये आते है, लेकिन सफल नहीं होते। इतने मे किनारे पर खडा हुआ कोई मुनि इस कमल को तोड लेता है। आख्यानसबधी दूसरी महत्वपूर्ण रचना है उत्तराध्ययनसूत्र। यह एक धार्मिक काव्य है जिसमे उपमा, दृष्टात तथा विविध आख्यानों और सवादों द्वारा बडी मार्मिक भाषा मे त्याग और वैराग्य का उपदेश दिया है। नमिप्रव्रज्या, हरिकेश-आख्यान, चित्तसभूति की कथा, मृगापुत्र का आख्यान, रथनेमी और राजीमती का सवाद, केशी-गौतम का सवाद, अनाथी मुनि का वृत्तान्त, जयघोष मुनि और विजयघोष ब्राह्मण का सवाद आदि कितने ही आख्यान और सवाद इस सूत्र मे उल्लिखित है जिनके द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन का विवेचन किया गया है। मरियल घोडे के दृष्टात द्वारा बताया है कि जैसे किसी मरियल घोडे को बार बार चाबुक मार कर चलाना पडता है, वैसे ही शिष्य को बार बार गुरु के उपदेश की उपेक्षा न करनी चाहिये। एडक (मेढा) के दृष्टात द्वारा कहा है कि जैसे किसी मेढे को खिला-पिलाकर पुष्ट किया जाता है, और किसी अतिथि का स्वागत करने के लिये उसे मारकर अतिथि को खिला दिया जाता है, यही दशा अधर्मिष्ठ जीव की होती है। विपाकश्रुत मे पाप पुण्य-सबधी कथाओं का

वर्णन है जो अशुभ कर्म से हटाकर शुभ कर्म की ओर प्रवृत्त करती है।

आगमों की व्याख्याओं में कथायें

आगमो पर लिखी हुई व्याख्याओ मे कथा-साहित्य काफी पल्लवित हुआ। निर्युक्ति साहित्य मे कथानक, आख्यान, उदाहरण और दृष्टात आदि का गाथाओ के रूप मे सग्रह है। सुभाषित, सूक्ति और कही-कहीं समस्यापूर्त्ति भी यहाँ दिखाई दे जाती है। गाधार श्रावक, तोसलिपुत्र, स्थूलभद्र, कालक, करकण्डू, मृगापुत्र, मेतार्य, चिलातीपुत्र, मृगावती, सुभद्रा आदि कितने ही धार्मिक और पौराणिक आख्यान यहाँ सग्रहीत है, जिनके ऊपर आगे चलकर स्वतत्र कथाग्रन्थ लिखे गये। योग्य अयोग्य शिष्य का लक्षण समझाने के लिये गवय, चदन की भेरी, चेटी, श्रावक, बधिर, गोह और टकण देश के म्लेच्छ आदि के दृष्टात उपस्थित किये गए है। सर्वप्रथम हमे इस साहित्य मे औत्पत्तिकी, वैनयिकी कामिकी और पारिणामिकी नाम की बुद्धियों के विशद उदाहरण मिलते है जिनमे लोक प्रचलित कथाओं का समावेश है। इस सम्बन्ध मे रोहक का कौशल दिखाने के लिये शिला, मेंढा, कुक्कुट, तिल, बालू की रस्सी, हाथी, कूप, वनखड और पायस आदि के मनोरजक कथानक दिये है जिनमे बुद्धि को परखनेवाली अनेक प्रहेलिकायें उल्लिखित है। निर्युक्ति की भाँति सक्षिप्त शैली मे लिखे गये भाष्य-साहित्य मे भी अनेक कथानक और दृष्टातों द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है। धूर्तों के मनोरजक आख्यान इस साहित्य मे उपलब्ध होते है, ब्राह्मणो के अतिरजित पौराणिक आख्यानों पर यहाँ तीव्र व्यग्य लक्षित होता है। साधुओं को धर्म मे स्थिर रखने के लिए लोक मे प्रचलित अनेक कथाओं का प्ररूपण किया गया है। चतुर्वेदी ब्राह्मणों की कथा के माध्यम से शिष्यो को आचार्य की सेवा-सुश्रूषा मे रत रहने का उपदेश है। अनेक राजाओं, राज-

मत्रियो, व्यापारियो तथा चोरो आदि के सरम आख्यान इस साहित्य मे उल्लिखित है। चूर्णी-साहित्य के गद्यप्रधान होने से इस काल मे कथा-साहित्य को एक नया मोड मिला। जिनदास-गणि की विशेषनिशीथचूर्णी मे लौकिक आख्यायिकाओ मे णरवाहणदत्तकथा, लोकोत्तर आख्यायिकाओ मे तरगवती, मलयवती और मगधसेना, आख्यानो मे धूर्ताख्यान, शृगारकाव्यों मे सेतु तथा कथाओं मे वसुदेवचरित और चेटककथा का उल्लेख है, जिससे इस काल मे कथा साहित्य की सपन्नता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। दुर्भाग्य से एकाध ग्रन्थ को छोडकर प्राकृत कथाओं का यह विपुल भडार आजकल उपलब्ध नही है। अनेक ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक, धार्मिक और लौकिक कथाये तथा अनुश्रुतियाँ इस साहित्य मे देखने मे आती है। परपरागत कथा-कहानियो के साथ साथ नूतन अभिनव कहानियो की रचना भी इस काल मे हुई। अतएव वज्रस्वामी, दशपुर की उत्पत्ति, चेलना का हरण, कूणिक का वृत्तात, कूणिक और चेटक का युद्ध आदि वृत्तातो के साथ साथ ब्राह्मण और उसकी तीन कन्याएँ, धनवान और दरिद्र वणिक्, हाथी और दो गिरगिट, पर्वत और महामेघ की लडाई, ककडी बेचनेवाला और धूर्त्त, सिद्धपुत्र के दो शिष्य, और हिगुशिव व्यतर आदि सैकडो मनोरजक और बोधप्रद लौकिक आख्यान इस समय रचे गये। साधुओ के आचार विचारो को सुस्पष्ट करने के लिये यहाँ अनेक उदाहरण दिये गये है। साधु-साध्वियो के प्रेम-सवाद भी जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर हो जाते है।

टीका साहित्य तो कथा कहानियो का अक्षय भडार है। इन टीकाओ के सस्कृत मे होने पर भी इनका कथाभाग प्राकृत मे ही लिखा गया है। आवश्यक और दशवैकालिक आदि सूत्रों पर टीका लिखनेवाले याकिनीसूनु हरिभद्र (ईसवी सन् ७०५–७७५) ने आगे चलकर समराइच्चकहा, और धूर्ताख्यान जैसे कथा ग्रन्थों की रचना कर जैन कथा-साहित्य को समृद्ध

बनाया। ११वीं सदी के सुप्रसिद्ध टीकाकार वादिवेताल शांतिसूरि की उत्तराध्ययन सूत्र पर लिखी हुई टीका पाइय (प्राकृत) के नाम से ही कही जाती है। इसी टीका को आधार मान कर नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन सूत्र पर सुखबोधा टीका की रचना की। आगे चलकर इन आचार्य ने और आम्रदेव सूरि ने आख्यानमणिकोष जैसा महत्वपूर्ण कथा-ग्रन्थ लिखा जिसमे जैनधर्मसबन्धी चुनी हुई उत्कृष्ट कथा-कहानियो का समावेश किया गया। अनुयोगद्वार सूत्र के वृत्तिकार मलधारी हेमचन्द्र ने भवभावना और उपदेशमालाप्रकरण जैसे कथा ग्रन्थ लिखकर कथा साहित्य के सर्जन मे अभिवृद्धि की। अन्य भी अनेक आख्यान और कथानक इस काल मे लिखे गये। इस प्रकार आगम साहित्य मे वर्णित धार्मिक और लौकिक कथाओं के आधार पर उत्तरकालीन प्राकृत कथा-साहित्य उत्तरोत्तर विकसित होकर वृद्धि को प्राप्त हो गया।

कथाओं के रूप

प्राकृत कथा-साहित्य का काल ईसवी सन् की लगभग चौथी शताब्दी से लेकर साधारणतया १६वीं–१७वीं शताब्दी तक चलता है। इसमे कथा, उपकथा, अतर्कथा, आख्यान, आख्यायिका, उदाहरण, दृष्टान्त, वृत्तात और चरित आदि के भेद से कथाओं के अनेक रूप दृष्टिगोचर होते है। कथाओं को मनोरजक बनाने के लिये उनमे विविध सवाद, बुद्धि की परीक्षा, वाक्कौशल्य, प्रश्नोत्तर, उत्तर-प्रत्युत्तर, हेलिका, प्रहेलिका, समस्यापूर्त्ति, सुभाषित, सूक्ति, कहावत, तथा गीत, प्रगीत, विष्णुगीतिका, चर्चरी, गाथा, छद आदि का उपयोग किया गया है। वसुदेवहिण्डी मे आख्यायिका पुस्तक, कथाविज्ञान और व्याख्यान का उल्लेख मिलता है। हरिभद्रसूरि ने समराइच्चकहा (पृ० २) मे सामान्य रूप से अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और सकीर्णकथा[1]

---

1 उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में कथाओं के तीन भेद बताये हैं—धर्मकथा, अर्थकथा और कामकथा, फिर धर्मकथा को चार भागों

के भेद से कथाओ को चार भागों मे विभक्त किया है। अर्थोपार्जन की ओर अभिमुख करनेवाली कथा को अर्थकथा, काम की ओर प्रवृत्त करनेवाली कथा को कामकथा, क्षमा मार्दव आर्जव आदि सद्धर्म की ओर ले जानेवाली कथा को धर्मकथा, तथा धर्म, अर्थ और काम का प्रतिपादन करनेवाली, काव्य, कथा आर ग्रन्थ के अर्थ का विस्तार करने वाली, लौकिक और धार्मिकरूप मे प्रसिद्ध तथा उदाहरण, हेतु और कारण से युक्त कथा को सकीर्णकथा कहा है। अधम, मध्यम और उत्तम के भेद से श्रोताओ के तीन भेद किये है। इस कृति मे कुएँ मे लटकते हुए पुरुष, तथा सर्प और मेढक के दृष्टात द्वारा लेखक ने जीवन की क्षणभगुरता का प्रतिपादन किया है, और निर्वृतिपुर (मोक्ष) मे पहुँचने का मार्ग बताया

में विभक्त किया है—आक्षेपणी, विक्षेपिणी, सवेदिनी और निर्वेदिनी। सुदसणाचरिय के कर्त्ता देवेन्द्रसूरि को यही विभाजन मान्य है। मनोनुकूल विचित्र और अपूर्व अर्थवाली कथा को आक्षेपणी, कुशास्त्रों की ओर से उदासीन करनेवाली मन क प्रतिकूल कथा को विक्षेपिणी, ज्ञान की उत्पत्ति में कारण मन को मोक्ष की ओर ले जानेवाली कथ को सवेदिनी; तथा वैराग्य उत्पन्न करनेवाली कथा को निर्वेदिनी कथा कहा गया है। सिद्धर्षि की उपमितिभवप्रपचकथा (प्रस्ताव १) भी देखिये। हेमचन्द्र आचार्य ने काव्यानुशासन (८ ७-८) में आख्यायिका और कथा में अन्तर बताया है। आख्यायिका में उच्छ्वास होते हैं और वह सस्कृत गद्य में लिखी जाती है, जैसे हर्षचरित, जब कि कथा कभी गद्य में (जैसे कादम्बरी), कभी पद्य में (जैसे लीलावती) और कभी सस्कृत, प्राकृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाची और अपभ्रश भाषाओं में लिखी जाती है। उपाख्यान, आख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मथल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खडकथा, सफलकथा और बृहत्कथा ये कथा के भेद बताये गये हैं। साहित्यदर्पण (६ ३३४-५) भी देखिये।

है। हरिभद्र का धूर्ताख्यान तो हास्य, व्यग्य और विनोद का एकमात्र कथा ग्रथ है। हरिभद्रसूरि का उपदेशपद धर्मकथानुयोग की एक दूसरी रचना है। कुशल कथाकार हरिभद्रसूरि ने अपनी इस महत्वपूर्ण रचना को दृष्टातो, उदाहरणों, रूपको, विविध मनोरजक सवादो, प्रतिवादी को परास्त कर देनेवाले मुँहतोड उत्तरों, धूर्तों के आख्यानों, सुभाषितों और उक्तियो द्वारा सुसज्जित किया है। कुवलयमाला के रचयिता उद्योतनसूरि (ईसवी सन् ७७६) भी एक उच्चकोटि के समर्थ कलाकार हो गये है। उन्होने अपनी रचना मे अनेक लोक प्रचलित देशी भाषाओ का उपयोग किया है। कथासुदरी को नववधू के समान अलकारसहित, सुदर, ललित पदावलि से विभूषित, मृदु और मजु सलापो से युक्त और सहृदय जनों को आनन्ददायक घोषित कर कथा साहित्य को उन्होने लोकप्रिय बनाया है। लेखक की यह अनुपम कृति अनेक हृदयग्राही वर्णनो, काव्य-कथाओ, प्रेमाख्यानों, सवादो, और समस्या पूर्त्ति आदि से सजीव हो उठी है। सुदसणाचरिय के कर्त्ता देवेन्द्रसूरि ने रात्रिकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा और जनपदकथा नाम की चार विकथाओ का त्याग करके धर्मकथा के श्रवण को हितकारी बताया है। सोमप्रभसूरि ने कुमारपालप्रतिबोध का कुछ अश धार्मिक कथाबद्ध रूपक काव्य मे प्रस्तुत किया है जिसमे जीव, मन और इन्द्रियों का पारस्परिक वार्तालाप बहुत ही सुदर बन पडा है। इसके अतिरिक्त जिनेश्वर-सूरि का कथाकोषप्रकरण, नेमिचन्दसूरि और वृत्तिकार आम्रदेव सूरि का आख्यानमणिकोष, गुणचन्द्रगणि का कथारत्नकोष तथा प्राकृतकथासग्रह आदि रचनाये कथा साहित्य की निधि है। इसी प्रकार हरिभद्रसूरि का उपदेशपद, धर्मदासगणि का उपदेशमाला, जयसिहसूरि का उपदेशरत्नमाला और मलधारी हेमचन्द्र का उपदेशमालाप्रकरण आदि ग्रथ उपदेशप्रधान कथाओं के अनुपम सग्रह है, जिनमे जैनधर्म की सैकडो-हजारों धार्मिक और लौकिक कथायें सन्निविष्ट है।

जैन लेखकों का नूतन दृष्टिकोण

मालूम होता है कि इस समय वेद और ब्राह्मणों को प्रमुखता देनेवाली अतिरंजित कल्पनाओं से पूर्ण ब्राह्मणों की पौराणिक कथा कहानियों से लोगों का मन ऊब रहा था।[1] अतएव कथा साहित्य में एक नये मोड़ की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। विमलसूरि वाल्मीकिरामायण के अनेक अंशों को कल्पित और अविश्वसनीय मानते थे और इसलिये जैन रामायण का व्याख्यान करने के लिये पउमचरिय की रचना करने में वे प्रेरित हुए। धूर्ताख्यान में तो ब्राह्मणों की पौराणिक कथाओं पर एक अभिनव शैली में तीव्र व्यंग्य किया गया है। लेकिन प्रश्न था कि त्याग और वैराग्यप्रधान जैनधर्म के उपदेशों को कौन सी प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत किया जाय जिससे पाठकगण जैन कथाकारों की ललित वाणी सुनकर उनके आख्यानों की ओर आकर्षित हो सकें। जैन मुनियों को शृंगार आदि कथाओं के सुनने और सुनाने का निषेध था, और इधर पाठकों को साधारणतया इसी प्रकार की कथाओं में रस की उपलब्धि होती थी। वसुदेवहिण्डीकार ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किये हैं—

सोऊंण लोइयाणं णरवाहनदत्तादीणं कहाओ कामियाओ लोगो एगंतेण कामकहासु रज्जति। सोग्गइपहदेसियं पुण धम्मं सोउं पि नेच्छति य जरपित्तवसकडुयमुहो इव गुलसक्करखंडमच्छंडियाइसु विपरीतपरिणामो। धम्मत्थकामकलियाणि य सुहाणि धम्मत्थकामाणं य मूलं धम्मो, तम्मि य मंदतरो जणो, तं जह

---

1 प्रबंधचिंतामणिकार ने इस ओर इंगित किया है—

भृशं श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः

प्रीणन्ति चेतांसि तथा बुधानाम् ॥

—पौराणिक कथाओं के बार बार श्रवण करने से पंडित जनों का चित्त प्रसन्न नहीं होता।

णाम कोई वेज्जो आउर अमयउसहपाणपरमुह ओसढमिति उव्विलय मणोभिलसियपाणववएसेण उसह त पज्जेति । कामकहा-रतहितयस्स जणस्स सिंगारकहावसेण धम्म चेव परिकहेमि ।[1]

—नरवाहनदत्त आदि लौकिक काम कथाये सुनकर लोग एकात मे कामकथाओं का आनन्द लेते है। ज्वरपित्त से यदि किसी रोगी का मुँह कडुआ हो जाये तो जैसे उसे गुड, शक्कर, खाँड और मत्स्यडिका (बूरा) आदि भी कडुवी लगती है, वैसे ही सुगति को ले जानेवाले धर्म को सुनने की लोग इच्छा नही करते। धर्म, अर्थ और काम से ही सुख की प्राप्ति होती है, तथा धर्म, अर्थ और काम का मूल है धर्म, और इसमे लोग मदतर रहते है। अमृत औषध को पीने की इच्छा न करनेवाले किसी रोगी को जैसे कोई वैद्य मनोभिलाषित वस्तु देने के बहाने उसे अपनी औषध भी दे देता है, उसी प्रकार जिन लोगों का हृदय कामकथा के श्रवण करने में सलग्न है, उन्हें शृगारकथा के बहाने मैं अपनी इस धर्मकथा का श्रवण कराता हूँ।

प्रेमाख्यान

कहने की आवश्यकता नही कि इन सब बातों को सोचकर जैन आचार्यों ने अपनी धर्मकथाओ मे शृगाररस० से पूर्ण प्रेमाख्यानों का समावेश कर उन्हें लोकोपयोगी बनाया। फल यह हुआ कि उनकी रचनाओं में मदन महोत्सवों के वर्णन जोडे गये और वसत क्रीडाओं आदि के प्रेमपूर्ण चित्र उपस्थित किये जाने लगे। ऐसे रोमाचकारी अवसरों पर कोई युवक किसी षोडशी को देखकर अपना भान खो बैठता, और कामज्वर से पीडित रहने लगता, युवती की भी यही दशा होती। कर्पूर, चन्दन और जलसिंचित तालवृन्त आदि से उसका शीतोपचार किया जाता। गुप्तरूप से प्रेम पत्रिकाओ का आदान प्रदान आरभ

१ वसुदेवहिण्डी, भाग २, मुनि जिनविजय जी के वसत महोत्सव, सवत् १९८४ में 'कुवलयमाला' लेख से उद्धृत।

हो जाता। फिर माता पिता को इस प्रेमानुराग का समाचार मिलते ही प्रीतिदान आदि के साथ दोनों का विवाह हो जाता, और इस प्रकार विप्रलभ सयोग मे बदल जाता। कभी किसी युवती की सर्पदंश से रक्षा करने या उसे उन्मत्त हाथी के आक्रमण से बचाने के उपलक्ष्य मे कन्या के माता पिता किसी युवक के बल व पौरुष से मुग्ध हो उसे अपनी कन्या दे देते। किसी सुदर और गुणसम्पन्न राजा या राजकुमार को प्राप्त करने के लिये भी कन्याये लालायित रहती और इसके लिए स्वयवर का आयोजन किया जाता। कितनी ही बार प्रेम हो जाने पर, माता-पिता की अनुमति न मिलने से युवक और युवती अन्यत्र जाकर गाधर्व विवाह कर लेते। शृङ्गारकथा प्रधान वसुदेवहिण्डी का धम्मिल्लकुमार रतिक्रीडा मे कुशलता प्राप्त करने के लिये वसत-सेना नाम की गणिका के घर रहने लगता है। कुवलयमाला मे प्रेम और शृङ्गाररसपूर्ण अनेक विस्मयकारक चित्र प्रस्तुत किये गये है। वासभवन मे प्रवेश करते समय कुवलयमाला और उसकी सखियो के बीच प्रश्नोत्तर होते है। तत्पश्चात् वर-वधू प्रेमालाप, हास्य विनोद और कामकेलिपूर्वक मिलन की प्रथम रात्रि व्यतीत करते है। कथाकोषप्रकरण मे भी प्रेमालाप के उत्कट प्रसग उपस्थित किये है। ज्ञानपचमीकहा, सुरसुदरीचरित और कुमारपालचरित मे जहाँ तहाँ प्रेम और शृगाररस प्रधान उक्तियाँ दिखाई दे जाती है। प्राकृतकथासग्रह मे सुदरी देवी का आख्यान एक सुदर प्रेमाख्यान कहा जा सकता है। सुदरी देवी विक्रम राजा के गुणो का श्रवण कर उससे प्रेम करने लगती है। उसके पास वह एक तोता भेजती है। तोते के पेट मे से एक सुदर हार और कस्तूरी से लिखा हुआ एक पत्र निकलता है। पत्र पढ़कर विक्रमराजा सुदरी देवी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठता है, और तुरत ही रत्नपुर के लिये प्रस्थान करता है। अन्त मे दोनों का विवाह हो जाता है। रयणसेहरीकहा विप्रलभ और सयोग का एक सरस आख्यान है। रत्नपुर का रत्नशेखर

नाम का राजा सिंहलद्वीप की कन्या रत्नवती के रूप की प्रशसा सुनकर उस पर मुग्ध हो जाता है। राजा का मत्री एक जोगिनी का रूप बनाकर सिहलद्वीप पहुँचता है और राजकुमारी से मिलता है। तत्पश्चात् राजा वहाँ द्यूतक्रीडा करने के लिये कामदेव के मदिर मे जाता है। दोनों की दृष्टि एक होती है, परस्पर प्रश्नोत्तर होते है और अन्त मे वियोग सयोग मे परिणत हो जाता है।[१] तरगवती, मलयवती और मगधसेना के साथ, बन्धुमती और सुलोचना नामक कथाग्रथो का भी उल्लेख जैन विद्वानो ने किया है। ये प्रेमाख्यान शृगाररस प्रधान रहे होगे, दुर्भाग्य से अभी तक ये अनुपलब्ध हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि जैन आचार्यों द्वारा लिखे गये कथा-ग्रथ यद्यपि धर्मकथा को मुख्य मानकर ही लिखे गये; लेकिन अपनी रचनाओं को लोकप्रिय बनाने के लिये प्रेम और शृगार को भी उन्होंने इन रचनाओं मे यथेष्ट स्थान दिया।

विविध वर्णन

किसी लौकिक महाकाव्य या उपन्यास की भाँति प्राकृत कथा-ग्रथों मे भी ऋतुओ, वन, अटवी, उद्यान, जलक्रीडा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, नगर, राजा, सैनिकों का युद्ध, भीलों का आक्रमण, मदन महोत्सव, सुतजन्म, विवाह, स्वयवर, स्त्रीहरण, जैन मुनियो का नगरी मे आगमन, दीक्षाविधि आदि विषयों का सरस वर्णन उपलब्ध होता है। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला मे विजया नगरी के किसी छात्रों के मठ का अत्यत स्वाभाविक चित्रण किया है। इस मठ मे लाट, कर्णाटक, महाराष्ट्र, श्रीकठ सिंधु, मालव, सौराष्ट्र आदि दूर दूर देशों से आये हुए छात्र लकुटियुद्ध, बाहुयुद्ध, आलेख्य, गीत, नृत्य, वादित्र और भाड आदि विद्याओ की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। ये बडे दुर्विनीत

---

१ मलिकमुहम्मद जायसी का पद्मावत इस प्रेमाख्यान काव्य से प्रभावित जान पड़ता है।

और गर्विष्ठ थे, तथा सुदर युवतियों पर दृष्टिपात करने के लिये लालायित रहा करते थे। समस्यापूर्त्ति द्वारा कुवलयमाला को प्राप्त करने के सबध मे उनमे जो पारस्परिक वार्तालाप होता है वह छात्रो की मनोवृत्ति का सुदर चित्र उपस्थित करता है। व्यापारी लोग अपने प्रवहणो मे विविध प्रकार का माल भर कर चीन, सुवर्णभूमि, और टकण आदि सुदूर देशो की यात्रा करते थे। बेडिय (बेडा), बेगड, सिल्ल (सित = पाल), आवत्त (गोल नाव), खुरप्प (होडी), बोहित्थ, खरकुल्लिय आदि अनेक प्रकार के प्रवहणो का उल्लेख यहाँ मिलता है। कुवलयमाला मे गोल्ल, मगध, अतर्वेदी, कीर, ढक्क, सिधु, मरु, गुर्जर, लाट, मालवा आदि देशो के रहनेवाले वणिको का उल्लेख है जो अपने अपने देशो की भाषाओं मे बातचीत करते थे। गुणचन्द्र-गणि ने वाराणसी नगरी का सुदर वर्णन किया है, यहाँ के ठग उस समय भी प्रसिद्ध थे।

सामान्य जीवन का चित्रण

जैन प्राकृत कथा-साहित्य मे राजा, मत्री, श्रेष्ठी, सार्थवाह, और सेनापति आदि केवल नायकों का ही नहीं, बल्कि भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों के सामान्य जीवन का बडी कुशलता के साथ चित्रण किया गया है जिससे भारतीय सभ्यता के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। हरिभद्रसूरि ने उपदेशपद मे किसी सज्जन पुरुष के परिवार का बडा दयनीय चित्र खीचा है। उस बेचारे के घर मे थोडा सा सत्तु, थोडा सा घी-शक्कर और थोडा सा दूध रक्खा हुआ था, लेकिन दुर्भाग्य से सभी चीजें जमीन पर बिखर गई, और उसे फाके करने की नौबत आ पहुँची। ऐसी हालत मे मित्रता करके, राजा की सेवा-टहल करके, देवता की आराधना करके, मत्र की सिद्धि करके, समुद्र-यात्रा करके तथा बनिज व्यापार आदि द्वारा अर्थोपार्जन करने को प्रधान बताया गया है (कुवलयमाला)। रत्नचूडचरित्र के कर्ता ने ईश्वरी नाम की सेठानी के कटु स्वभाव का बडा जीता-

जागता चित्र उपस्थित किया है। यह सेठानी बडी कृपण थी, घर आये हुए किसी साधु-सत को कभी कुछ नहीं देती थी। जब कुछ साधु उसके पीछे ही पड गये तो जलती हुई लकडी लेकर वह खुले केशों से इस बुरी तरह उन्हे मारने झपटी कि फिर कभी उन्होंने सेठानी को मुँह नही दिखाया। मलधारी हेमचन्द्र ने भवभावना मे भूई नाम की एक कलिहारी सास का चित्रण किया है। वह कभी घर से बाहर नही निकलती थी, अपनी बहू के साथ लडाई झगडा करती रहती, साधु सतों को देखकर मुँह बिचकाती और किसी न किसी के साथ उसका झगडा टटा लगा ही रहता था। कोशाबी के एक अत्यत दरिद्र ब्राह्मण परिवार का भी यहाँ एक करुणाजनक चित्र उपस्थित किया गया है। बच्चे उसके भूख से बिलबिला रहे हैं, स्त्री उदास बैठी है, घर मे घी, तेल, नून और ईंधन का नाम नहीं, लडकी सयानी हो गई है, उसके विवाह की चिन्ता है, लडका अभी छोटा है इसलिये धन कमाने के लायक नहीं है। जीवन की विविध अवस्थाओं पर प्रकाश डालने वाले अन्य भी अनेक सजीव चित्रण यहाँ पर भरे पडे है। हाथी पकडने की विधि और घोडो के लक्षण आदि का यहाँ उल्लेख है।

मंत्रशास्त्र

जान पडता है कि प्राकृत कथा-साहित्य के इस युग मे, विशेषकर ईसवी सन् की ११ वीं–१२ वीं शताब्दी मे मत्र तत्र, विद्या-साधना तथा कापालिक और वाममार्गियो का बहुत जोर था, और वे श्रीपर्वत से जालधर तक घूमा करते थे। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला मे सिद्ध पुरुषों का उल्लेख किया है जिन्हें अजन, मत्र, तत्र, यक्षिणी, जोगिनी, राक्षसी और पिशाची आदि देवियाँ सिद्ध थी। धातुवादी धातु को जमीन से निकालकर खार के साथ उसका धमन करते थे, क्रियावादी जोग जुगति का आश्रय लेते थे, और नरेन्द्र रस को बाँधते थे। नरेन्द्रो की नागिनी, भ्रमरी आदि भाषाओ का उल्लेख है।

मत्रों की जाप करने के लिये मडप बनाये जाते, तथा उनमे घी, तिल और काष्ठ का हवन किया जाता था। सुरसुन्दरीचरिय मे भूत भगाने के लिये नमक उतारना, सरसों मारना और रक्षा-पोटली बॉधने का उल्लेख है। आख्यानमणिकोष मे भैरवानद का वर्णन है। इस विषय का सबसे विशद वर्णन गुणचन्द्र गणि (देवेन्द्रसूरि) की रचनाओ मे उपलब्ध होता है, जिससे पता लगता है कि उनके युग मे मत्रविद्या का बहुत प्रचार था। महावीरचरित मे घोरशिव तपस्वी का वर्णन है जो वशीकरण आदि विधाओ मे कुशल था। श्रीपर्वत से वह आया था और जालधर के लिये प्रस्थान कर रहा था। राजा ने अपने मत्र के बल से घोरशिव से कोई चमत्कार प्रदर्शित करने का अनुरोध किया। घोरशिव ने कृष्ण चतुर्दशी को रात्रि के समय श्मशान मे पहुँच वेदिका आदि रच कर मत्र जपना प्रारभ कर दिया। महाकाल नामक योगाचार्य मत्रसिद्धि के लिये प्रधान क्षत्रियो के वध द्वारा अग्नि का तर्पण करना मुख्य समझता था। पार्श्वनाथचरित मे बगाधिपति कुलदेवता कात्यायनी की पूजा करता है। उस समय वहॉ मत्रविद्या मे कुशल और वाममार्ग मे निपुण भागुरायण नाम का गुरु निवास करता था। उसने राजा को मत्र की जाप द्वारा बेताल सिद्ध करने की विधि बताई। हाथ मे कैंची लिये हुए बेताल उपस्थित हुआ और उसने राजा से अपने मास और रक्त द्वारा उसका कपाल भर देने को कहा। शाकिनियों का यहॉ वर्णन है, वट वृक्ष के नीचे एकत्रित होकर एक मुर्दे को लिये वे बैठी हुई थीं। कोई कापालिक विद्या सिद्ध कर रहा था। भैरवों को कात्यायनी का मत्र सिद्ध रहता है। ये लोग रवि और शशि के पवन सचार को देखकर फलाफल का निर्देशन करते है। किसी कुमारी कन्या को स्नान कराकर, उसे श्वेत दुकूल के वस्त्र पहना, उसके शरीर को चदन से चर्चित कर मडल के ऊपर बैठाते हैं, फिर वह प्रश्नकर्ता के प्रश्नों का उत्तर देने लगती है। कथारत्नकोष मे सर्पविष का नाश करने के लिये नागकुलों की उपासना का उल्लेख है।

यह विद्या भी कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में श्मशान मे बैठकर सिद्ध की जाती थी। जोगानद नाम का कोई निमित्तशास्त्र का वेत्ता बसतपुर से काचीपुर के लिये प्रस्थान कर रहा था। कलिंगदेश के कालसेन नामक परिव्राजक को पैशाचिक विद्या सिद्ध थी। जोगधर नाम के किसी सिद्ध को कोई अदृश्य अजन सिद्ध था जिसे ऑखों मे आजकर वह स्वेच्छापूर्वक विहार कर सकता था। आकृष्टि, दृष्टिमोहन, वशीकरण और उच्चाटन मे प्रवीण तथा योगशास्त्र मे कुशल बल नाम का एक सिद्धपुरुष कामरूप (आसाम) मे निवास करता था। इसके अतिरिक्त पुष्पयोनिशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, जोणीपाहुड, अगविद्या, चूड़ामणिशास्त्र, गरुडशास्त्र, राजलक्षण, सामुद्रिक, रत्नपरीक्षा, खन्यविद्या, मणिशास्त्र आदि का उल्लेख इस साहित्य में उपलब्ध होता है। तरगलीला और वसुदेवहिण्डी में अर्थशास्त्र की प्राकृत गाथाये उद्धृत की गई है। हरिभद्रसूरि ने समराइच्चकहा मे अशोक, कामाकुर और ललिताग को कामशास्त्र में कुशल बताते हुए कामशास्त्र के अध्ययन से धर्म और अर्थ की सिद्धि बताई है। कुवलयमालाकार के कथनानुसार जोणीपाहुड मे उल्लिखित कोई भी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

जैन मान्यतायें

ऊपर कहा जा चुका है कि अपनी रचनाओं को लोकरजक बनाने के लिये जैन विद्वानों ने समन्वयवादी वृत्ति से काम लिया, लेकिन धर्मदेशना का पुट उसमें सदा प्रधान रहा। सत्कर्म मे प्रवृत्ति और असत्कर्म से निवृत्ति यही उनका लक्ष्य रहा। लोकप्रचलित कथाओं तथा ब्राह्मण और बौद्धों की कहानियों को जैन ढॉचे मे ढालकर इस लक्ष्य की पूर्ति की गई। जगह जगह दान, शील, तप और सद्भाव का प्रतिपादन कर सयम, तप, त्याग और वैराग्य की मुख्यता पर ज़ोर दिया

गया[1], और इस सबका प्रतिपादन नगर के उद्यान मे ठहरे हुए किसी मुनि या केवली के मुख से कराया गया। उपदेश के प्रसग मे मुनि महाराज अपने या श्रोता के पूर्वभवों का वर्णन करने लगते हैं, और अवान्तर कथाओं के कारण मूलकथा पीछे छूट जाती है। हरिभद्र की समराइच्चकहा में एक ही व्यक्ति के दस भवों का विस्तृत वर्णन है। यहाँ कर्मपरिणति मुख्य स्थान ग्रहण करती है जो जीवमात्र के भूत, भविष्य और वर्तमान का निश्चय करती है।[2] आखिर पूर्व जन्मकृत कर्म के ही कारण मनुष्य ऊँची या नीची गति को प्राप्त होता है, और इसीलिये प्राणिमात्र पर दया करना आवश्यक बताया है। त्याग और वैराग्य की मुख्यता होने से यहाँ स्त्री निन्दा के प्रकरणों का आ जाना भी स्वाभाविक है। पउमचरिय में स्त्रियों को दुश्चरित्र का मूल बताकर सीता के चरित्र के सबध मे सन्देह प्रकट किया गया है, और यह बात रामचन्द्र के मुख से कहलाई गई है। यद्यपि ध्यान रखने की बात है कि राजीमती, चदनबाला, सुभद्रा, मृगावती, जयती, दमयती आदि कितनी ही सती-साध्वी महिलायें अपने शील, त्याग और सयम के लिये जैन परपरा मे प्रसिद्ध हो गई हैं। इस दिशा मे कुमारपालप्रतिबोध मे शीलमती का मनोरजक और बोधप्रद आख्यान उल्लेखनीय है।

---

१ जिनेश्वरसूरि ने कथाकोष में कहा है—

सम्मत्ताई गुणाण लाभो जइ होज्ज कित्तियाणि पि।
ता होज्ज णे पयासो सकयत्थो जयउ सुयदेवी॥

—यदि थोड़े भी श्रोताओं को इस कृति के सुनने से सम्यक्त्व आदि गुणों की प्राप्ति हो सके तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

२ उपदेशपद टीका (पृ० ३५४) में कहा है—

सव्वो पुव्वकयाण कम्माण पावए फलविवाग।
अवराहेसु गुणेसु य निमित्तमेत्त परो होई॥

कथा-ग्रंथों की भाषा

महेश्वरसूरि ने ज्ञानपचमीकथा मे कहा है कि अल्प बुद्धि-वाले लोग सस्कृत नही समझते, इसलिये सुखबोध प्राकृत-काव्य की रचना की जाती है, तथा गूढ और देशी शब्दों से रहित, सुललित पदों से गुफित और रम्य ऐसा प्राकृत-काव्य किसके हृदय को आनन्द नहीं देता? प्राकृत भाषा की इन रचनाओं को हर्मन जैकोबी आदि विद्वानो ने महाराष्ट्री प्राकृत नाम दिया है। धर्मोपदेशमालाविवरण मे महाराष्ट्री भाषा की कामिनी और अटवी के साथ तुलना करते हुए उसे सुललित पदों से सपन्न, कामोत्पादक तथा सुन्दर वर्णों से शोभित बताया है। प्राकृत के इन कथाग्रन्थो मे सस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं का भी यथेष्ट उपयोग किया गया है। अनेक स्थलो पर बीच बीच मे सूक्तियों अथवा सुभाषितों का काम सस्कृत अथवा अपभ्रंश से लिया है। कई जगह तो सारा प्रकरण ही सस्कृत अथवा अपभ्रंश मे लिखा गया है। देशी भाषा के अनेक महत्त्वपूर्ण शब्द इस साहित्य मे यत्र-तत्र बिखरे पडे है जो भाषाविज्ञान की दृष्टि से अत्यत उपयोगी है।[1] प्राकृत कथाओं के रचयिता प्राय प्राकृत और सस्कृत दोनों ही भाषाओ पर समान पाडित्य रखते थे, इसलिये भी प्राकृत रचनाओं मे सस्कृत का उपयोग होना अनिवार्य था।

---

१ उदाहरण के लिये सूयरपिल्लअ (सूअर का पिल्ला, वसुदेवहिण्डी), छोयर (छोकरा, उपदेशपद), जोहार (जुहार, धर्मोपदेशमाला), चिडम (चिडिया, ज्ञानपचमीकहा), रोल (शोर, सुरसुदरीचरिय), बुबाओ (गुजराती में बूम मारना—चिल्लाना, भवभावना,), गालिदाण (गाली देना, पासनाहचरिय, नाहर (सिंह, सुदसणचरिय), उडा (गहरा, सुपासनाहचरिय) आदि। परिशिष्ट नबर १ में इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण शब्दों की सूची दी गई है।

प्राकृत कथा-साहित्य का उत्कर्षकाल

प्राकृत कथा साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि ईसवी सन् की नौवीं दसवीं शताब्दी के पूर्व जैन आचार्यों के लिखे हुए प्राकृत कथा-ग्रन्थों की सख्या बहुत कम थी। उदाहरण के लिये, इस काल मे चरितात्मक ग्रथों मे पउमचरिय, हरिवसचरिय, तरगवती, तरगलीला, वसुदेवहिण्डी, समराइच्चकहा, कुवलयमाला और शीलाचार्य का चउप्पन्नमहापुरिसचरिय आदि, तथा उपदेश-ग्रन्थो मे उपदेशपद, उपदेशमाला, और धर्मोपदेश-माला आदि ही मौजूद थे। लेकिन ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वानों मे एक अभूतपूर्व जागृति उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप दोसौ-तीनसौ वर्षों के भीतर सैकड़ों अभिनव कथा ग्रन्थों का निर्माण हुआ। इसका प्रमुख कारण था कि उस समय गुजरात मे चालुक्य, मालवा मे परमार तथा राजस्थान मे गुहिलोत और चाहमान राजाओं के राज थे और ये लोग जैनधर्म के प्रति विशेष अभिरुचि रखते थे। फल यह हुआ कि गुजरात, मालवा और राजस्थान के राजदरबारों मे जैन महामात्यों, दडनायकों, सेनापतियों और श्रेष्ठियों का प्रभाव काफी बढ गया जिससे गुजरात मे अणहिल्लपुर, खभात और भडौंच, राजस्थान मे भिन्नमाल, जाबालिपुर, अजयमेरु, और चित्तौड, तथा मालवा मे उज्जैन, ग्वालियर और धारा आदि नगर जैन आचार्यों की प्रवृत्तियों के मुख्य केन्द्र बन गये। इन स्थानों मे लिखित प्राकृत-साहित्य की रचनाओं के अध्ययन से कई बातों का पता लगता है। इन ग्रथकारों ने अर्धमागधी के जैन आगमों को अपनी कृतियों का आधार बनाया, आगमोत्तरकालीन प्राकृत के कथाकार हरिभद्रसूरि आदि का अनुकरण किया, हेमचन्द्र सूरि के प्राकृतव्याकरण का गभीर अध्ययन किया और जैनधर्म के पारिभाषिक शब्दों का उचित उपयोग किया। इसके अतिरिक्त ये लेखक सस्कृत और अपभ्रश भाषाओं के पडित थे तथा देशी

भाषाओं की कहावतों और शब्दों का वे यथेच्छ प्रयोग कर सकते थे। इन विद्वानों ने प्राकृत कथा-साहित्य के साथ साथ व्याकरण, अलकार, छद और ज्योतिषशास्त्र आदि की भी रचना कर साहित्य के भडार को सपन्न बनाया। पहले चौबीस तीर्थंकरों, चक्रवर्ती, राम, कृष्ण, और नल आदि के ही चरित्र मुख्यतया लिखे जाते थे, लेकिन अब साधु-साध्वी, राजा-रानी, श्रमण, ब्राह्मण, श्रावक श्राविका, निर्धन, चोर, जुआरी, धूर्त, ठग अपराधी, दण्डित, चाडाल, वेश्या, दूती, चेटी आदि साधारण-जनों का जीवन भी चित्रित किया जाने लगा। जैन आचार्य जहाँ भी जाते वहाँ के लोकजीवन, लोकभाषा, और रीति-रिवाजों का सूक्ष्म अध्ययन कर इसे अपने कथा-ग्रथो मे गुम्फित करते। इस प्रकार प्रत्येक गच्छ के विद्वान् साधुओं ने अपने-अपने कथा-ग्रन्थों की रचना आरभ की। फल यह हुआ कि चन्द्रगच्छ, नागेन्द्रगच्छ, चैत्रगच्छ, वृद्धगच्छ, धर्मघोषगच्छ, हर्षपुरीयगच्छ आदि अनेक गच्छों के विद्वानों ने सैकडों-हजारों कथा-ग्रथों की रचना कर डाली। कथाकोषप्रकरण आख्यानमणिकोष, कहा-रयणकोस आदि कथाओं के अनेक सक्षिप्त सग्रह ग्रथ इस समय लिखे गये। उत्तर के विद्वानों की भॉति दक्षिण के विद्वान् भी अपने पीछे न रहे। इस समय प्राकृत भाषायें न तो बोलचाल की भाषायें रह गई थीं और न अब इन भाषाओं मे धार्मिक ग्रथ ही लिखे जाते थे। ऐसी हालत मे सस्कृत के बल पर वररुचि आदि के प्राकृत व्याकरणों का अध्ययन कर, लीलाशुक, श्रीकण्ठ, रुद्रदास, और रामपाणिवाद आदि विद्वानों ने प्राकृत भाषा मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

संस्कृत में कथा साहित्य

गुप्त साम्राज्य-काल में जब सस्कृत का प्रभाव बढा तो प्राकृत का अध्ययन-अध्यापन कम होने लगा। इस काल मे धर्मशास्त्र, पुराण, दर्शन, व्याकरण, काव्य, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक, आदि

विषयों पर एक-से एक बढकर सस्कृत ग्रथो का निर्माण हुआ। जैन आचार्यों ने सस्कृत मे भी अपनी लेखनी चलानी शुरू की। प्राकृत का स्थान अब सस्कृत को मिला। सिद्धर्षि (ईसवी सन् ६०५) ने उपमितिभवप्रपचा कथा, धनपाल ने तिलकमजरी, हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, और हरिषेण ने बृहत्कथाकोष जैसे मौलिक ग्रथों की सस्कृत में रचना की, लक्ष्मीवल्लभ ने उत्तराध्ययन की टीकाओं मे उल्लिखित प्राकृत कथाओं का सस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत किया। प्राकृत की अपेक्षा सस्कृत रचनाओं को मुख्य बताते हुए सिद्धर्षि ने लिखा है—

सस्कृता प्राकृता चेति भाषे प्राधान्यमहृत
तत्रापि सस्कृता तावद् दुर्विदग्धहृदि स्थिता।
बालानमपि सद्बोधकारिणी कर्णपेशला।
तथापि प्राकृता भाषा न तेषामभिभाषते॥
उपाये सति कर्तव्य सर्वेषा चित्तरजनम्।
अतस्तदनुरोधेन सस्कृतेय करिष्यते॥ १ ५१-५२

—सस्कृत और प्राकृत ये दो ही भाषायें मुख्य हैं। इनमें सस्कृत दुर्विदग्धों के मन मे बसी हुई है। उन्हें अज्ञजनों को सद्बोध प्रदान करनेवाली और कर्णमधुर प्राकृत भाषा अच्छी नहीं लगती। तथा उपायान्तर रहने पर सबके मन का रजन करना चाहिये, अतएव ऐसे लोगों के अनुरोध से यह रचना सस्कृत मे लिखी जाती है।

अपभ्रंशकाल

श्वेताम्बरों की भाँति दिगम्बर विद्वानों ने प्राकृत कथा-साहित्य के सर्जन मे योगदान नहीं दिया। इसका एक यह भी कारण था कि श्वेताबरों की भाँति आगम और उन पर लिखी हुई व्याख्याओं का विपुल साहित्य उनके समक्ष नहीं था। किन्तु ईसवी सन् की लगभग दसवीं शताब्दी के आसपास से अपभ्रश साहित्य मे अपनी रचनायें प्रस्तुत कर इन विद्वानों ने अपनी

लोकानुरंजक उदार वृत्ति का परिचय दिया। आगे चलकर हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि लोकभाषाओं में जैन आचार्यों ने अपनी रचनायें प्रस्तुत कीं। इन रचनाओं में विभिन्न देश और काल में प्रचलित देशी भाषा के शब्दों का अनुपम संग्रह होता रहा। मतलब यह कि अपने जनकल्याणकारी उपदेशों को जनता तक पहुँचाने में उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। 'कूपजल' को छोड़कर वे 'बहते हुए नीर' को ग्रहण करते रहे। जैन कथा-साहित्य के अध्येता डाक्टर जॉन हर्टल के शब्दों में 'जैन कथा-साहित्य केवल संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं के अध्ययन के लिये ही उपयोगी नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के इतिहास पर इससे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।'[1] इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृत संस्कृत, अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं में लिखे गये कथा साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अधिक स्पष्टरूप हमारे सामने आयेगा तथा भाषाविज्ञानसंबंधी अनेक गुत्थियाँ सुलझ सकेंगी।

तरंगवइकहा (तरंगवतीकथा)

आगम और उनकी टीकाओं में आई हुई प्राकृत कथाओं की चर्चा पहले की जा चुकी है। सुप्रसिद्ध पादलिप्तसूरि सब से पहले जैन विद्वान् हैं जिन्होंने तरंगवती नामकी स्वतंत्र कथा ग्रंथ लिखकर प्राकृत कथा-साहित्य में एक नई परंपरा को जन्म दिया। यह कथा प्राकृत कथा साहित्य की सब से प्राचीन कथा है जो कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। तरंगवइकार के रूप में इसके कर्ता का उल्लेख अनुयोगद्वारसूत्र (१३०) में मिलता है। निशीथविशेषचूर्णी में लोकोत्तर धर्मकथाओं में तरंगवती के साथ मलयवती और मगधसेना के नाम उल्लिखित हैं। दश-

---

१ देखिये आन द लिटरेचर आव द श्वेताम्बर जैनस, लीपझिंग, १९२२

वैकालिक चूर्णी (३, पृष्ठ १०६) और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यकभाष्य (गाथा १५०८) मे भी तरगवती का उल्लेख मिलता है। पादलिप्त सातवाहनवशी राजा हाल की विद्वत्सभा के एक सुप्रतिष्ठित कवि माने जाते थे। स्वय हाल एक प्रसिद्ध कवि थे, उन्होंने गाथासप्तशती मे गुणाढ्य और पादलिप्त आदि प्राकृत के अनेक कवियों की रचनाओ का सग्रह किया है। सुप्रसिद्ध गुणाढ्य भी हाल की सभा मे मौजूद थे। जैसे गुणाढ्य ने पैशाची मे बृहत्कथा की रचना की, वैसे ही पादलिप्त ने प्राकृत मे तरगवतीकथा लिखी। उद्योतनसूरि की कुवलयमाला मे सातवाहन के साथ पादलिप्त का उल्लेख है, पादलिप्त की तरगवतीकथा का भी यहाँ नाम मिलता है। प्रभावकचरित मे पादलिप्तसूरि के ऊपर एक प्रबध है जिसके अनुसार ये कवि कोशल के निवासी थे, इनके पिता का नाम फुल्ल और माता का प्रतिमा था। बाल्य अवस्था मे जैन दीक्षा ग्रहण कर इन्होंने मथुरा, पाटलिपुत्र, लाट, सौराष्ट्र, शत्रुजय आदि स्थानों मे भ्रमण किया था। कवि धनपाल ने अपनी तिलकमजरी मे तरगवती की उपमा प्रसन्न और गभीर पथवाली पुनीत गगा से दी है। लक्ष्मणगणि (ईसवी सन् ११४५) ने अपने सुपासनाह-चरिय मे भी इस कथा की प्रशसा की है। दुर्भाग्य से बहुत प्राचीन काल से ही यह अद्भुत और सुदर कृति नष्ट हो गई है। प्रोफेसर लॉयमन ने इस का समय ईसवी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी स्वीकार किया है।

तरंगलोला

तरवती का सक्षिप्तरूप तरगलोला के रूप मे प्रसिद्ध है जो तरगवतीकथा के लगभग १००० वर्ष पश्चात् तैयार किया गया। इसके कर्ता वीरभद्र आचार्य के शिष्य नेमिचन्द्रगणि हैं जिन्होंने यश नामक अपने शिष्य के लिये १६४२ गाथाओं में इस ग्रथ

की[1] रचना की। ग्रन्थकार के अनुसार पादलिप्तसूरि ने तरंगवइकहा की रचना देशी वचनों मे की थी। यह कथा विचित्र और विस्तृत थी, कहीं पर इसमे सुन्दर कुलक थे, कहीं गहन युगल और कहीं दुर्गम षट्कल। इस कथा को न कोई कहता था, न सुनता था और न पूछता ही था। यह विद्वानों के ही योग्य थी, साधारण जन इससे लाभ नही उठा सकते थे। पादलिप्त ने देशीपदों मे जो गाथाये लिखीं उन्हें यहाँ संक्षिप्त करके लिखा गया जिससे कि इस कृति का सर्वथा उच्छेद न हो जाये।

धनपाल नामक सेठ अपनी सेठानी सोमा के साथ राजगृह नगर में रहता था। उसके घर के पास की एक वसति मे कुमार ब्रह्मचारिणी सुव्रता नाम की गणिनी अपने शिष्य-परिवार के साथ ठहरी हुई थी। एक बार सुव्रता की शिष्या तरंगवती एक अन्य साध्वी को साथ लेकर भिक्षा के लिये सेठानी के घर आई। सेठानी तरंगवती के सौन्दर्य को देखकर बडी मुग्ध हुई। उसने तरंगवती से धर्मकथा सुनाने का अनुरोध किया। धर्मकथा श्रवण करने के पश्चात् उसका जीवन-वृत्तांत सुनने की इच्छा प्रकट की। तरंगवती ने कहना आरंभ किया—

"वत्स देश मे कौशांबी नाम का नगर है। यह मध्यदेश की शोभा माना जाता है और जमुना के किनारे बसा हुआ है। वहाँ उदयन नाम का राजा अपनी रानी वासवदत्ता के साथ

---

१ नेमिविज्ञानग्रंथमाला में विक्रम संवत् २००० में प्रकाशित। प्रोफेसर लॉयमन ने इसका जर्मन अनुवाद प्रकाशित किया है जिसका गुजराती भाषांतर नरसिंह भाई पटेल ने किया है, जो जैनसाहित्य-संशोधक में छपा है। पृथक् पुस्तक के रूप में यह अनुवाद बबलचंद केशवलाल मोदी की ओर से सन् १९२४ में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

राज्य करता था। इस नगर में ऋषभसेन नाम का एक नगरसेठ रहता था। उसके घर आठ पुत्रों के पश्चात् मैंने जन्म लिया, तरगवती मेरा नाम रक्खा गया। आठ वर्ष की अवस्था मे मैंने लेख, गणित, रूप, आलेख्य, गीत, वादित्र, नाट्य आदि कलाओं की शिक्षा प्राप्त की। युवावस्था प्राप्त करने पर एक बार वसत ऋतु मे अपने परिवार सहित मैं उपवन मे क्रीडा करने गई। वहाँ एक चक्रवाक पक्षी को देखकर मुझे जातिस्मरण हो आया, और अपनी सखी सारसिका को मैंने अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाया—

'चपा नगरी मे चकवी बन कर गगा के किनारे मैं अपने चकवे के साथ क्रीडा किया करती थी। एक दिन वहाँ एक हाथी जल पीने के लिये आया। किसी व्याध ने हाथी का शिकार करने के लिये उस पर बाण छोडा। इस समय मेरा चकवा बीच में आ गया और बाण से आहत होकर वहीं गिर पडा। व्याध को बहुत पश्चात्ताप हुआ, उसने चकवे का अग्नि-सस्कार किया। प्रियतम के वियोग दुख से पीडित हो, मैंने भी अग्नि मे जलकर प्राणों को त्याग दिया। अब मैंने तरगवती का जन्म धारण किया है।'

"उपवन से लौटकर अपने पूर्वजन्म के स्वामी को प्राप्त करने के लिये मैंने आयबिल किया, तथा काशी के एक सुन्दर वस्त्र पर पूर्वजन्म की घटना का चित्र आलिखित कर कौमुदी महोत्सव के अवसर पर उसे राजमार्ग पर रखवा दिया। इसे देखकर नगर के धनदेव सेठ के पुत्र पद्मदेव को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। अपनी सखी से अपने पूर्वजन्म के स्वामी के सबध मे समाचार ज्ञात कर मुझे अत्यत आनद हुआ। तत्पश्चात् धनदेव के पिता ने अपने पुत्र के लिये मेरी मगनी की, लेकिन मेरे पिता ने यह सबध स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि किसी धनिक के घर ही मैं अपनी कन्या दूँगा। यह सुनकर मै बडी निराश हुई। मैंने भोजपत्र पर एक मत्र लिखकर

अपनी सखी के हाथ पद्मदेव के पास भिजवाया। फिर अपनी सखी को साथ लेकर मै अपने प्रिय के घर पहुँची। वहाँ से हम दोनों नाव मे बैठकर जमुना नदी के उस पार चले गये और गाधर्व विवाह के अनुसार हमने विवाह कर लिया। कुछ समय बाद वहाँ चोरों का आक्रमण हुआ, उन्होंने हम दोनों को पकड लिया। वहाँ अनेक ध्वजाओं से चिह्नित कात्यायनी का एक मदिर था। वे लोग कात्यायनी को प्रसन्न करने के लिये उसे हमारी बलि देना चाहते थे। मैने बहुत विलाप किया, जिससे चोरों के सुभट ने दया करके हमे बधन से मुक्त कर दिया। वहाँ से छूटकर हमलोग खयग (?) आदि नगरों मे होते हुए कौशाबी आकर अपने माता, पिता से मिले। हमारी कहानी सुनकर उन्हें बड़ा दुख हुआ। उन्होंने बहुत धूमधाम से हम दोनों का विवाह कर दिया। कुछ समय पश्चात् मैने दीक्षा ग्रहण की और चदनवाला की शिष्या बनकर मै तप और व्रत उपवास करने लगी। अब मैं उन्ही के साथ विहार करती हुई इस नगर मे आई हूं।"

तरगवती का जीवनचरित सुनकर सेठानी ने श्राविका के बारह व्रत स्वीकार किये। तरगवती भिक्षा ग्रहण कर अपने उपाश्रय मे लौट गई। तरगवती ने केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धि पाई, पद्मदेव भी सिद्ध हो गये।

यहाँ अत्थसत्थ (अर्थशास्त्र) की प्राकृत गाथाओं को उद्धृत किया है जिनमे बताया है कि दूती से सब भेद खुल जाता है, और उससे कार्य की सिद्धि नहीं होती—

तो भणइ अत्थसत्थमि वण्णिय सुयणु ! सत्थयारेहि।
दूती परिभवदूती न होइ कज्जस्स सिद्धिकरी॥
एतो हु मतभेओ दूतीओ होज्ज कामनेमुक्का।
महिला मुचरहस्सा रहस्सकाले न सठाइ॥
आमरणमवेलाया नीणति अवि य घेघति चिंता।
होज्ज मतभेओ गमणविघाओ अनिव्वाणी।

पुष्पयोनिशास्त्र (पुप्फजोणिसत्थ) का भी यहाँ उल्लेख है।

वसुदेवहिण्डी

वसुदेवहिण्डी मे कृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण (हिडी) का वृत्तान्त है इसलिये इसे वसुदेवचरित नाम से भी कहा गया है। आगमबाह्य ग्रन्थों मे यह कृति कथा-साहित्य मे प्राचीनतम गिनी जाती है। आवश्यकचूर्णी के कर्त्ता जिनदासगणि ने इसका उपयोग किया है। इसमे हरिवश की प्रशसा की गई है और कौरव पाडवों को गौण स्थान दिया गया है। निशीथ-विशेषचूर्णी मे सेतु और चेटककथा के साथ वसुदेवचरित का उल्लेख है। इस ग्रथ के दो खड है। पहले खड मे २६ लभक ११,००० श्लोकप्रमाण हैं और दूसरें खड मे ७१ लभक १७,००० श्लोकप्रमाण है। प्रथम खड के कर्ता सघदासगणि वाचक, और दूसरे के धर्मसेनगणि है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषण वती मे इस ग्रथ का उल्लेख किया है, इससे सघदासणि का समय ईसवी सन् की लगभग पाचवीं शताव्दी माना जाता है। प्रथम खड[1] के बीच का और अन्त का भाग खडित है, दूसरा खड अप्रकाशित है। कथा का विभाजन छह अधिकारों मे किया गया है—कहुप्पत्ति (कथा की उत्पत्ति), पीढिया (पीठिका) मुह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर), और उवसहार (उपसहार)। कथोत्पत्ति समाप्त होने पर धम्मिल्ल-हिण्डी (धम्मिल्लचरित) प्रारभ होता है और इसके समाप्त होने पर क्रमश पीठिका, मुख और प्रतिमुख आरभ होते हैं। तत्पश्चात् प्रथम खड के प्रथम अश मे सात लभक है। यहाँ से

---

१ मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सपादित आत्मानन्द जैन ग्रथमाला, भावनगर की ओर से सन् १९३० और सन् १९३१ मे प्रकाशित। इसका गुजराती भाषातर प्रोफेसर साडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रथमाला की ओर से वि० स० २००३ में प्रकाशित हुआ है।

शरीरविभाग आरभ होता है, और दूसरे अश के २६ वे लभक तक चलता है। वसुदेव-भ्रमण के वृत्तान्त की आत्मकथा का विस्तार इसी विभाग से शुरू होता है। उक्त लभकों मे १६ और २०वे लभक उपलब्ध नहीं, तथा २८वा लभक अपूर्ण है।

वसुदेवहिण्डी के दूसरे खड के कर्ता धर्मसेनगणि हैं। इस खड मे नरवाहनदत्त की कथा का उल्लेख है। गुणाढ्य की बृहत्कथा की भाति इसमे शृगारकथा की मुख्यता होने पर भी बीच बीच में धर्म का उपदेश दिया गया है। कुल मिलाकर दोनों खडों मे १०० लभक हैं[1]। दूसरे खड के अनुसार वसुदेव सौ वर्ष तक परिभ्रमण करते रहे और सौ कन्याओं के साथ उन्होंने विवाह किया।

वसुदेवहिण्डी मुख्यतया गद्यात्मक समासात पदावलि मे लिखी गई एक विशिष्ट रचना है, बीच मे पद्य भी आ जाते हैं। भाषा सरल, स्वाभाविक आर प्रसादगुणयुक्त है, सवाद चुस्त है। भाषा प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है जिसकी तुलना चूर्णी ग्रन्थों से की जा सकती है, दिस्सहे, गच्छीय, वहाए, पिव, गेण्हेप्पि आदि रूप यहाँ मिलते है, देशी शब्दों के प्रयोग भी हुए है।[2] वसुदेव के भ्रमण की कथा के साथ इसमें अनेक अतर्कथाये है जिनमे तीर्थंकरों तथा अन्य शलाकापुरुषों के जीवनचरित है। बीच

---

१ सोमदेव के कथासरित्सागर में भी लावाणक लबक, सूर्यप्रभलबक, महाभिषेक लबक इत्यादि नाम दिये गये हैं। वसुदेव के परिभ्रमण की भाँति नरवाहनदत्त के परिभ्रमण, पराक्रम आदि की कथा यहाँ वर्णित है। नरवाहनदत्त का विवाह जिस कन्या से होता है उसी के नाम से लबक कहा जाता है, जैसे रत्नप्रभा लबक, अलकारवती लबक आदि।

२ वसुदेवहिण्डी की भाषा के सबध में देखिये डॉक्टर आल्सडोर्फ का 'बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव ओरिएण्टिएल स्टडीज़' जिल्द ८ में प्रकाशित लेख, तथा वसुदेवहिण्डी के गुजराती अनुवाद का उपोद्घात।

बीच मे अणुव्रत के गुण-दोष, परलोक की सिद्धि, महाव्रतों का स्वरूप, मासभक्षण मे दोष, वनस्पति में जीव की सिद्धि आदि जैनधर्मसबधी तत्त्वों का विवेचन है। जर्मन विद्वान् आल्सडोर्फ ने वसुदेवहिण्डी की गुणाढ्य की बृहत्कथा से तुलना की है, सघदासगणि की इस कृति को वे बृहत्कथा का रूपातर स्वीकार करते हैं।

कहुप्पत्ति मे जबूस्वामिचरित, जबू और प्रभव का सवाद, कुबेरदत्तचरित, महेश्वरदत्त का आख्यान, वल्कलचीरि प्रसन्नचद्र का आख्यान, ब्राह्मण दारक की कथा, अणाढियदेव की उत्पत्ति आदि का वर्णन है। अन्त मे वसुदेवचरित की उत्पत्ति बताई गई है।

तत्पश्चात् धम्मिल्ल के चरित का वर्णन है। विवाह होने के बाद भी धम्मिल्ल रात्रि के समय पढने लिखने मे बहुत व्यस्त रहता था। उसकी मा को जब इस बात का पता लगा तो उसने पढना-लिखना बद कर अपने पुत्र का ध्यान अपनी नवविवाहिता वधू की ओर आकर्षित करना चाहा। परिणाम यह हुआ कि वह वेश्यागामी हो गया—

'ततो अन्नया कयाइ सस्सू से धूयदसत्थ सुयाघरमागया। सम्माणिया य घरसामिणा विहवाणुरूवेण सबधसरिसेण उवयारेण। अइगया य धूय दट्ठूण, पुच्छिया य णाए सरीरादिकुसल। तीए वि पगतविणीयलज्जोणयमुहीए लोगधम्मउवभोगवज्ज सव्व जहाभूय कहिय। त जहा—

पासि कप्पि चउरसिय रेवापयपुण्णिय,
सेडिय च गेण्हेप्पि ससिप्पभवण्णिय।
मइ सुय णि एकल्लिय सयणि निवण्णिय,
सव्वरत्ति घोसेइ समाणसवण्णिय॥

तो सा एय सोऊण आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चडिक्किया मिसिमिसेमाणी इत्थीसहावच्छल्लयाए पुत्तिसिणेहेण य माऊए

से सगास गतूण सव्व साहिउ पयत्ता। जहाभूयत्थ त सोऊण से माया आकपियसरीसहियया बाहसुपप्पुयच्छी णिरुत्तरा तुण्हिक्का ठिया। पच्छा य णाए ससवह पत्तियाविया। ततो सा त धूय आसासिऊण अप्पणा णियघर गया।

माया य से पइणो मूल गतूण सव्व जहाभूय परिकहेइ। तेण य भणिया अजाणाए! जाव बालो विज्जासु य अणुरत्तबुद्धी णणु ताव ते हरिसाइयव्व, कि विसाय वच्चसि? अहिणवसिक्खिया विज्जा अगुणिज्जती णेहरहिओ विव पईवो विणास वच्चइ, त मा अयाणुगा होही। जाव बालो ताव विज्जाउ गुणेउ। तीए पुत्तवच्छलाए भणिय–कि वा अइबहुएण पढिएण? माणुस्सयवसुह अणुभवउ। 'उवभोगरइवियक्खणो होउ' त्ति चिंतेऊण पइणा वारिज्जतीए वि ललियगोट्ठीए पवेसिओ। सो य अम्मापिउसलावो धाईते से सव्वो कहिओ। तओ सो गोट्ठियजणसहिओ उज्जाण काणणसभावणतरेसु विन्नाणनाणाइसएसु अण्णोण्णमतिसयतो बहुकाल गमेइ।

—एक बार की बात है, धम्मिल्ल की सास अपनी लडकी से मिलने उसके घर आई। गृहस्वामी ने अपने वैभव के अनुसार और रिश्तेदारी को ध्यान मे रखते हुए उसका आदर सत्कार किया। वह अपनी लडकी से मिलने अन्दर गई, कुशल-समाचार पूछे। लडकी ने लज्जा से नीचे मुँह करके अपने पतिद्वारा लौकिक धर्म-उपभोग का परित्याग करने की बात अपनी माँ को सुना दी—

"वह पास मे चौकोण पट्टी रखकर, रेवा नदी के जल से पवित्र सफेद रग की खडिया मिट्टी से, मुझे अकेली को सोती छोड, उदासीन भाव से, सारी रात 'समान सवर्ण' 'समान सवर्ण' घोखता रहता है।"

यह सुनकर लडकी की माँ बहुत क्रुद्ध हुई, और स्त्री-स्वभाव के कारण अपनी पुत्री के स्नेहवश उसने अपनी समधिन से सब बात कही। यह सुनकर उसकी समधिन कॉपने

लगीं, उसकी आँखे डबडबा आईं, और निरुत्तर होकर वह चुपचाप बैठ गई। उसने सौगन्ध खाकर विश्वास दिलाया कि वह इस सबध मे जरूर कुछ करेगी। इसके बाद माँ अपनी लडकी को आश्वासन देकर घर लौट गई।

धम्मिल्ल की माँ ने अपने पति से पूछताछ की। पति ने उत्तर दिया—"तुम अनजान हो, जबतक बालक का पढने से मन लगे तबतक प्रसन्न ही होना चाहिये, फिर तुम क्यों विषाद करती हो? नई नई विद्या को यदि याद न किया जाये तो तेल के बिना दीपक की भाँति वह नष्ट हो जाती है। अतएव तुम अनजान मत बनो। जबतक बाल्यावस्था है तबतक विद्या का अभ्यास करते रहना चाहिये।" पुत्रस्नेह के कारण माँ ने कहा—"अधिक पढने से क्या लाभ? मनुष्यजीवन के सुख का आनन्द भी तो उठाना चाहिये।" पति के मना करने पर भी पहले उपभोग क्रीडा मे कुशलता प्राप्त करने के लिये उसकी माँ ने अपने बेटे को ललित-गोष्ठी मे शामिल करा दिया। अपने माता-पिता के साथ उसकी जो बातचीत हुई थी, उसने सब धाय को सुना दी। और वह गोष्ठी के सदस्यों के साथ उद्यान, कानन, सभा और वनो मे आनन्दपूर्वक समय बिताने लगा।

धम्मिल्ल अपनी स्त्री को छोडकर वसन्ततिलका नामक गणिका के घर मे रहने लगा जिससे उसकी माँ और स्त्री को बहुत दुख हुआ। एक दिन धम्मिल्ल जब शराब के नशे मे धुत्त पड़ा हुआ था, वसन्ततिलका की माँ ने उसे घर से निकाल बाहर किया। धम्मिल्ल को अगडदत्त मुनि के दर्शन हुए और इस अवसर पर अगडदत्त ने अपने पूर्वभव का वृत्तान्त सुनाया। धम्मिल्ल ने अनेक कुलकन्याओ के साथ विवाह किया। वसन्तसेना को जब इसका पता लगा तो उसने सब आभरणों का त्याग कर दिया, मलिन जीर्ण वस्त्र धारण किये, ताबूल का भक्षण करना छोड दिया और केवल एक वेणी बाधकर भुजग के समान दिखाई

पढनेवाले अपने केशों को अपने हाथ मे धारण किया। अपने प्रिय के विरह से वह दुर्बल होने लगी, उसके कपोल क्षीण हो गये और मुख पीला पड गया।

इस प्रसङ्ग पर पञ्चतन्त्र की भाँति यहाँ भी कृतघ्न वायस, शाकटिक आदि के लौकिक आख्यान कहे गये है। यवनदेश के राजा का भेजा हुआ कोई दूत कौशाबी नगरी मे आया। राजा के पुत्र को कुष्ठरोग से पीडित देखकर वह कहने लगा कि क्या आप लोगों के देश मे कोई औषधि नहीं, अथवा वैद्यो का अभाव है जो यह राजकुमार स्वस्थ नहीं हो सकता। अर्थशास्त्र का एक श्लोक यहाँ उद्धृत है—

"विसेसेण मायाए सत्थेण य हतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु त्ति।"

—बढते हुए अपने शत्रु को खास तौर से माया अथवा शक्ति द्वारा मार देना चाहिये।

भगवद्गीता का यहाँ उल्लेख है। आख्यायिका पुस्तक, कथा-विज्ञान और व्याख्यान की जानकार स्त्रियों के नामोल्लेख है। शौकरिक और केवटों के मोहल्ले (वाडय) अलग थे, और वहाँ से मत्स्य मास खरीदा जा सकता था। दूसरे को दुख देने को अधर्म और सुख देने को धर्म कहा है (अहम्मो परदुक्खस्स करणेण, धम्मो य परस्स सुहप्पयाणेण), यही जैनधर्म की विशेषता बताई है। जिसने सब प्रकार के आरभ का त्याग कर दिया है और जो धर्म मे स्थित है वह श्रमण है।

पीठिका मे प्रद्युम्न और शबकुमार की कथा का सम्बन्ध, राम-कृष्ण की अग्रमहिषियों का परिचय, प्रद्युम्नकुमार का जन्म और उसका अपहरण, प्रद्युम्न के पूर्वभव, प्रद्युम्न का अपने माता पिता से समागम, और पाणिग्रहण आदि का वर्णन है। हरिणगमेषी से स्त्रियाँ पुत्र की याचना किया करती थीं। बत्तीस नाट्यभेदों का उल्लेख है। गणिकाओं की उत्पत्ति बताई गई है। एक बार राजा भरत के सामत राजाओं ने अपनी स्वामी

के लिये बहुत सी कन्याये भेजी। रानी को यह देखकर बहुत बुरा लगा। उसने महल मे गिर कर मर जाने की धमकी दी। यह देखकर भरत ने उन्हे गणो को प्रदान कर दी, तभी से वे गणिका कही जाने लगी।

मुख नामक अधिकार मे शब और भानु की क्रीडाओं का वर्णन है। भानु के पास शुक था और शब के पास सारिका। दोनों सुभाषित कहते हैं। एक सुभाषित सुनिये—

उक्कामिव जोइमालिणि, सुभुयगामिव पुष्फिय लत।
विबुधो जो कामवत्तिणि, मुयई सो सुहिओ भविस्सइ ॥

—अग्नि से प्रज्वलित उल्का की भाँति और भुजगी से युक्त पुष्पित लता की भाँति जो पण्डित कामवर्तिनी (काममार्ग) का त्याग करता है, वह सुखी होता है।

दोनों मे द्यूतक्रीडायें होती है।

प्रतिमुख मे अन्धकवृष्णि का परिचय देते हुए उसके पूर्वभव का सम्बन्ध बताया गया है।

शरीरअध्ययन प्रथम लभक से आरम्भ होकर २९ वे लभक मे समाप्त होता है। सामा विजया नामके प्रथम लभक मे समुद्रविजय आदि नौ वसुदेवों के पूर्वभवों का वर्णन है। यहाँ परलोक और धर्म के फल मे विश्वास पैदा करने के लिये सुमित्रा की कथा दी हुई है। वसुदेव घर का त्याग करके चल देते है। सामलीलभक मे सामली का परिचय है। गन्धर्वदत्तालभक मे विष्णुकुमार का चरित, विष्णुगीतिका की उत्पत्ति, चारुदत्त की आत्मकथा और गन्धर्वदत्ता से परिचय, अमितगति विद्याधर का परिचय तथा अथर्ववेद की उत्पत्ति दी हुई है। एक गीत सुनिये—

अट्ठ णियठा सुरट्ठ पविट्ठा,
कविट्ठस्स हेट्ठा अह सन्निविट्ठा।
पडिय कविट्ठ भिण्ण च सीस,
अब्बो अब्बो ति बाहरति हसति सीसा ॥

—आठ निर्ग्रन्थों ने सौराष्ट्र मे प्रवेश किया, वे कैथ के नीचे बैठे, ऊपर से कैथ टूट कर गिरा जिससे उनका सिर फट गया। (यह देख कर) शिष्य आहा! आहा! करते हुए हँसने लगे।

एक विष्णुगीतिका देखिए—

उवसम साहुवरिट्ठया! न हु कोवो वण्णिओ जिणिंदेहिं।

हुंति हु कोवणसीलया, पावंति बहूणि जाइयव्वाइ॥

—हे साधुश्रेष्ठ! उपशान्त हो, जिनेन्द्र भगवान् ने कोप करना नही बताया है। जो क्रोधी स्वभाव के होते है उन्हें अनेक गतियों मे भ्रमण करना पडता है।

देव, राक्षस आदि के सम्बन्ध मे कहा है—देव चार अगुल भूमि को स्पर्श नही करते, राक्षस महान् शरीरवाले होते है, उनके पैर बहुत बडे बडे होते है, पिशाच बहुत जलवाले प्रदेश मे नही विचरण करते, ऋषियों का शरीर तप से शोषित रहता है और चारण जल के किनारे जलचर जीवों के कष्ट को दूर करते हुए नही सचरण करते। बनिज व्यापार के लिए व्यापारी चीनस्थान, सुवर्णभूमि, कमलपुर, यवनद्वीप, सिंहल, बर्बर, सौराष्ट्र और उबरावती के तट पर जाया करते थे। चीणभूमि के साथ हूण और खसभूमि का भी उल्लेख है। टकण देश मे पहुँचकर व्यापारी लोग नदी के किनारे अपने माल के अलग-अलग ढेर लगा, लकडी की आग जला एक ओर बैठ जाते। टकण (म्लेच्छ) इस धूए को देखकर वहाँ आ जाते, और फिर (इशारों आदि से) लेन देन शुरू हो जाता। रत्नद्वीप और सुवर्णभूमि का यहाँ उल्लेख है।

पिप्पलाद को अथर्ववेद का प्रणेता कहा गया है। वाराणसी मे सुलसा नाम की एक परिव्राजिका रहती थी। त्रिदडी याज्ञवल्क्य से वाद मे हार जाने के कारण वह उसकी सेवा सुश्रूषा करने लगी। इन दोनों से पिप्पलाद[1] का जन्म हुआ। पिप्पलाद

1 ब्राह्मण धर्म में पिप्पलाद अथर्ववेद के प्रणेता माने जाते हैं। अथर्व

को उसके माता पिता ने, पैदा होते ही छोड दिया था, इसलिए उसने प्रद्विष्ट होकर अथर्ववेद की रचना की जिसमे मातृमेध और पितृमेध का उपदेश दिया।

नीलजलसालभक मे ऋषभस्वामी का चरित है। इस प्रसग पर ऋषभ का जन्ममहोत्सव, राज्याभिषेक और उनकी प्रव्रज्या आदि का वर्णन है। उग्र, भोग, राजन्य, और नाग ये चार गण बताये हैं जो कोशल जनपद मे राज्य करते थे। वृक्षों के सघर्षण से उत्पन्न अग्नि को देखकर ऋषभ ने अपनी प्रजा को बताया कि उसे भोजन पकाने, प्रकाश करने और जलाने के काम मे ले सकते है। उन्होंने पॉच शिल्पों आदि का उपदेश दिया। गवारा, मायगा, रुक्खमूलिया और कालकेसा आदि विद्याओं का यहॉ उल्लेख है। विषयभोगो को दुखदायी प्रतिपादन करते हुए कौवे, गीदड आदि की लौकिक कथाये दी है। यदि कोई साधु अपने शरीर से ममत्व छोड देने के कारण औषध नहीं ग्रहण करना चाहे तो अभ्यगन आदि से उसकी परिचर्या करने का विधान है।

सोमसिरिलभन मे आर्य-अनार्य वेदों की उत्पत्ति, ऋषभ का निर्वाण, बाहुबलि और भरत का युद्ध, नारद, पर्वत, और वसु का सबध तथा वसुदेव के वेदाध्ययन का प्ररूपण है। भरत के समय से ब्राह्मण (माहण) और आर्य वेदों की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणों ने अग्निकुड बनाये, भरत ने स्तूप स्थापित किये और आदित्ययश आदि ने ब्राह्मणों को सूत्र (यज्ञोपवीत) दिया। वेद 'सावयपण्णत्ति वेद' (श्रावकप्रज्ञप्ति वेद) नाम से कहे जाते थे, आगे चल कर ये सक्षिप्त हो गये। पूर्व मे मगध, दक्षिण मे वरदाम और पश्चिम मे प्रभास नामक तीर्थों का उल्लेख है।

वेदीय प्रश्नउपनिषद् (१ १) में भारद्वाज, सत्यकाम, गार्ग्य, आश्वलायन, भार्गव आदि ब्रह्मपरायण ऋषि पिप्पलाद के समीप उपस्थित होकर प्रश्न करते हैं, पिप्पलाद उन्हें उपदेश देते हैं।

दितिप्रयाग तीर्थ की उत्पत्ति बताई है, यही प्रयाग नाम से कहा जाने लगा।[1] यहाँ परपरा से आगत महाकाल देव का चरित वर्णित है। सगर से प्रद्विष्ट होकर उसने पशुवध का उपदेश दिया, इस उपदेश के आधार पर पिप्पलाद ने अथर्ववेद की रचना की। अनार्यवेद की रचना सडिल्ल के मतानुसार की गई। यहाँ वेद की परीक्षा के सम्बन्ध मे एक सवाद दिया है।

सातवें लभन के पश्चात् प्रथम खड का द्वितीय अश आरभ होता है। पउमालभन मे धनुर्वेद की उत्पत्ति बताई है। पुडालभन मे पोरागम (पाकशास्त्र) मे विशारद नद और सुनद का नामोल्लेख है। पुड्रा की उत्पत्ति बताई गई है। नमि जिनेन्द्र ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। सोमसिरलभन मे इन्द्रमह का उल्लेख है। मयणवेगालभन मे सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा है। वह व्यायामशाला मे जाकर तेल का मर्दन कराता था। जमदग्नि और परशुराम का सम्बन्ध बताया है। कान्यकुब्ज की उत्पत्ति का वृत्तान्त है। रामायण की कथा पउमचरिय की रामकथा से कई बातों मे भिन्न है। दशरथ के कौशल्या, केकयी और सुमित्रा नाम की तीन स्त्रियाँ थी। कौशल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण और केकयी से भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। मन्दोदरी रावण की अग्रमहिषी थी। सीता मन्दोदरी की पुत्री थी। उसे एक सदूक में रख कर राजा जनक की उद्यान-भूमि के नीचे गाड़ दिया गया था। हल चलाते समय उसकी प्राप्ति हुई। जनक ने सीता का स्वयवर रचा और राम के साथ उसका

---

१ यहाँ अग्निकापुत्र जल में डूब गये थे, उन्हें यहाँ मोक्ष की प्राप्ति हुई थी, इसलिये इस स्थान को पवित्र तीर्थ माना गया है (आवश्यकचूर्णि, २, पृ० १७९)। लेकिन विशेषनिशीथचूर्णी (२, पृ० ६७२ साइक्लोस्टाइल प्रति) में प्रभास, प्रयाग, श्रीमाल और केदार को कुतीर्थ बताया गया है।

विवाह हो गया। केकयी स्वजनों का आदर-सत्कार करने में[1] कुशल थी। इस पर प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने केकयी से वर माँगने को कहा। प्रत्यंत राजाओं के साथ युद्ध होने के समय भी केकयी ने सहायता की थी। राम के परिणतवय होने पर दशरथ ने राम के अभिषेक का आदेश दिया। इस अवसर पर केकयी ने भरत के राज्याभिषेक और रामचन्द्र के निर्वाण के लिए वर माँगा। राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन को चले गये। भरत रामचन्द्र की पादुकायें रख कर अयोध्या का राज करने लगे। वनवास के समय एक बार रावण की बहन सूर्पणखा रामचन्द्र के पास उपस्थित होकर उनसे विषयभोग के लिए प्रार्थना करने लगी। रामचन्द्र ने उसके नाक कान काटकर उसे भगा दिया। वह रोती हुई अपने पुत्र खरदूषण के पास पहुँची। राम लक्ष्मण और खरदूषण में युद्ध ठन गया। उसके बाद खरदूषण के कहने पर सूर्पणखा रावण के पास पहुँची। रावण ने सीता के रूप की प्रशंसा सुन रक्खी थी। उसने अपने मंत्री मारीच को मृग का रूप धारण कर वन में भेजा, जहाँ राम, लक्ष्मण और सीता निवास करते थे। सुन्दर मृग को देखकर सीता ने राम से उसे लाने को कहा। राम धनुष बाण लेकर मृग के पीछे भागने लगे। अपना नाम सुनकर सीता के अनुरोध पर लक्ष्मण ने भी राम की रक्षार्थ प्रस्थान किया। इस बीच में रावण तपस्वी का रूप धारण करके आया, और सीता को उठा ले गया। राम ने अपनी सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी। विभीषण ने सीता को लौटाने के लिए रावण को बहुत समझाया, लेकिन रावण न माना। दोनों सेनाओं में युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने रावण का वध किया। लक्ष्मण आठवें वासुदेव के

---

१ सयणोवयार वियक्खणाए। फादर कामिल बुल्के इसका अर्थ करते हैं—शयनोपचारविचक्षण, अर्थात् काम क्रीडा में कुशल। यही अर्थ ठीक मालूम होता है। कामशास्त्र में शयनोपचार सम्बन्धी १६ कलाओं का उल्लेख है।

नाम से प्रसिद्ध हुए। राम सीता, विभीषण और सुग्रीव आदि के साथ अयोध्या लौट आये। भरत और शत्रुघ्न ने राम का राज्याभिषेक किया।[1]

बालचन्दालभन मे मासभक्षण के सम्बन्ध मे विचार है। दूसरे के द्वारा खरीद कर लाये हुए मास के भक्षण मे, अथवा कुशलचित्त से मध्यस्थभावपूर्वक मास भक्षण करने मे क्या दोष है? इन शकाओं का समाधान किया गया है। बधुमतीलभन मे वसुदेव ने तापसों को उपदेश दिया। इस प्रसग पर महाव्रतों का व्याख्यान और वनस्पति मे जीवसिद्धि का प्रतिपादन है। मृगध्वजकुमार और भद्रकमहिष के चरित का वर्णन है। नरक के स्वरूप का प्रतिपादन है। नास्तिकवादियों के सिद्धात का प्ररूपण है। नास्तिकवादी जीव को देह से भिन्न पदार्थ स्वीकार नहीं करते थे।

पियगुसुन्दरीलभन मे विमलाभा और सुप्रभा की आत्मकथा है। यहाँ 'ण दुल्लह दुल्लह तेसि' की समस्यापूर्ति देखिए—

विमलाभा—

मोक्खसुह च विसाल, सव्वट्ठसुह अणुत्तर ज च।
जे सुचरियसामण्णा, ण दुल्लह दुल्लह तेसि॥

—विशाल, सर्वार्थसुखरूप और अनुत्तर मोक्षसुख सुचरित पुरुषों के लिए दुर्लभ नहीं है, दुर्लभ नहीं है।

सुप्रभा—

सल्ले समुद्धरित्ता अभय दाऊण सव्वजीवाण।
जे सुट्ठिया दमपहे, ण दुल्लह दुल्लह तेसिं॥

---

१ रामायण की कथा के लिये देखिये आगे हरिभद्र का उपदेश पद और विमलसूरि का पउमचरिय। प्रोफेसर वी० एम० कुलकर्णी ने वसुदेवहिण्डी की रामकथा पर जरनल ऑव ओरिंटिएल इस्टिट्यूट, बड़ौदा, जिल्द २, भाग २, पृ० १२८ पर एक लेख प्रकाशित किया है। जैन रामायण पर सन् १९५२ में एक महानिबध (थीसिस) भी इन्होंने लिखा है।

—शल्य का उद्धार करके और सब जीवो को अभयदान देकर जो दम के मार्ग मे सुस्थित है, उन्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं है, दुर्लभ नही है।

इक्ष्वाकुवश मे कन्याये प्रव्रज्या ग्रहण करती थीं। कुक्कुट युद्ध का यहॉ वर्णन है। परदारदोष मे वासव का उदाहरण दिया है। कामपताका नामक वेश्या श्राविका के व्रत ग्रहण कर जैनधर्म की उपासना करती थी। प्राणातिपातविरमण आदि पाचो व्रतों के गुण दोष के उदाहरण दिये गये है। गोमडलो का वर्णन है जहॉ सुदर और असुदर गायों पर चिह्न बनाये जाते थे। सगरपुत्रो ने अष्टापद के चारों ओर खाई खोदना चाहा जिससे वे भस्म हो गये। अष्टापद तीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन है।

उन्नीस और बीसवॉ लभन नष्ट हो गया है। केउमतीलभन मे शातिजिन का चरित, त्रिविष्टु और वासुदेव का सबध, अमिततेज, सिरिविजय, असणिघोस और सतारा के पूर्वभवों का वर्णन है। मेघरथ के आख्यान मे जीवन की प्रियता को मुख्य बताया है—

हतूण परप्पाणे अप्पाण जो करेइ सप्पाण।
अप्पाण दिवसाण, कएण नासेइ अप्पाण॥
दुक्खस्स उव्वियतो, हतूण पर करेइ पडियार।
पाविहिति पुणो दुक्ख, बहुययर तन्निमित्तेण॥

—जो दूसरे के प्राणों की हत्या करके अपने को सप्राण करना चाहता है, वह आत्मा का नाश करता है। जो दुख से खिन्न हुआ दूसरे की हत्या करके प्रतिकार करता है, वह उसके निमित्त से ओर अधिक दुख पाता है।

कुथु और अरहनाथ के चरित का वर्णन है। अन्त मे वसुदेव का केतुमती के साथ विवाह हो जाता है। पउमावतीलभन में हरिवश कुल की उत्पत्ति का आख्यान है। देवकीलभन मे कस के पूर्वभव का वर्णन है।

समराइच्चकहा

समराइच्चकहा[1] अथवा समरादित्यकथा में उज्जैन के राजा समरादित्य ओर प्रतिनायक अग्निशर्मा के नौ भवो का वर्णन है। समराइच्चकहा के कर्त्ता याकिनीमहत्तरा के पुत्र हरिभद्रसूरि है जिनका नाम पादलिप्त और बप्पभट्टि आचार्यों के साथ आदर पूर्वक लिया गया है। सिद्धर्षि और उद्योतनसूरि ने हरिभद्रसूरि के प्रभाव को स्वीकार किया है। हरिभद्रसूरि चित्तौड के रहनेवाले थे। सस्कृत और प्राकृत के ये बडे विद्वान थे, आगम ग्रन्थों की टीकायें इन्होंने लिखी है। इनका समय ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी है। समराइच्चकहा को हरिभद्रसूरि ने धर्मकथा नाम से उल्लिखित किया है। अपनी इस कृति के कारण उन्होंने कविरूप मे प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इस कथा मे नायक नायिकाओ की प्रेम कथाओं और उनके चरित्रों का वर्णन है जो ससार का त्याग करके जैन दीक्षा ग्रहण कर लेते है। बीच-बीच मे अनेक धार्मिक आख्यान गुम्फित है जिससे कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का समर्थन होता है। समराइच्चकहा जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखी गई है, यद्यपि अनेक जगह शौरसेनी का प्रभाव भी पाया जाता है। इसका पद्यभाग आर्याछन्द मे लिखा गया है, द्विपदी, विपुला आदि छदों के भी प्रयोग मिलते है। भाषा प्राय सरल और प्रवाहबद्ध है। कही पर वर्णन करते समय लबे समासों और उपमा आदि अलकारों का भी प्रयोग हुआ है, जिससे लेखक के काव्य कौशल का पता चलता है। इसके वर्णनों को पढते हुए कितनी बार

---

१ डा० हर्मन जैकोबी ने भूमिका के साथ इसे एशियाटिक सोसायटी ऑव बगाल, कलकत्ता से सन् १९२६ में प्रकाशित किया था। उसके बाद पडित भगवानदास ने सस्कृत छाया के साथ दो भागों में क्रमश सन् १९३८ और १९४२ में इसे अहमदाबाद से प्रकाशित किया।

बाणभट्ट की कादबरी की याद आ जाती है, श्रीहर्ष की रत्नावलि से यह प्रभावित है।

पूर्वजन्म मे समरादित्य का नाम राजकुमार गुणसेन था। अग्निशर्मा उसके पुरोहित का पुत्र था। वह अत्यन्त कुरूप था। राजकुमार मजाक मे उसे नगर भर मे नचाता और गधे पर चढाकर सब जगह घुमाता था। अग्निशर्मा को यह बहुत बुरा लगा और तग आकर उसने तापसो की दीक्षा ग्रहण कर ली। इधर गुणसेन राजपद पर अभिषिक्त हो गया। उसने तपोवन मे पहुँचकर अग्निशर्मा को भोजन के लिये निमंत्रित किया। अग्निशर्मा राज्दरबार मे तीन बार उपस्थित हुआ, लेकिन तीना बार राजा को कामकाज मे व्यस्त देख, बिना भोजन किये निराश होकर वापिस लौट गया। उसने सोचा कि अवश्य ही राजा ने बैर लेने के लिये मुझे इतनी बार निमत्रित करके भी भोजन से वचित रक्खा है। यह सोचकर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने निदान बाधा कि यदि मेरे व्रत मे कोई शक्ति है तो मैं जन्म-जन्मातर मे गुणसेन का शत्रु बन कर उसका वध करूँ। इसी निदान के परिणामस्वरूप अग्निशर्मा नौ जन्मों मे गुणसेन से अपने बैर का बदला लेता है, और अन्त मे शुभ कर्मों का बध करता है।

दूसरे भव गे अग्निशर्मा राजा सिहकुमार का पुत्र बन कर गुणसेन से बदला लेता है। सिहकुमार का कुसुमावलि से विवाह होता है। इस प्रसग पर वसन्त का वर्णन, विवाह मण्डप, कन्या का प्रसाधन और तत्कालीन विवाह के रीति रिवाजो का लेखक ने सरस का वर्णन किया है। मूल कथा के साथ अन्तर्कथायें जुडी हुई है जिनके अन्त मे निर्वेद, वैराग्य, ससार की असारता, कर्मों की विचित्रता और मन की विचित्र परिणति आदि का उपदेश लक्षित होता है। इन कथाओं मे धन के लोभ का परिणाम, निरपराधी को दण्ड, भोजन मे विष का मिश्रण, शबरसेना का आक्रमण, कारागृह आदि का प्रभावोत्पादक शैली

मे चित्रण किया गया है। नगर के सार्थवाह चन्दन के घर चोरी हो जाने पर उसने राजा को रिपोर्ट दी और फिर राजा ने डिंडिमनाद से नगर भर मे घोषणा कराई—

एत्थतरम्मि य जाणाविय चन्दणसत्थवाहेण राइणो, जहा देव ! गेह मे मुट्ठ ति।

'किमवहरिय' ति पुच्छिय राइणा।

निवेइय चन्दणेण, लिहाविय च राइणा, भणिय च णेण—'अरे! आघोसेह डिण्डिमेण, जहा—मुट्ठ चदणसत्थवाहगेह, अवहरियमेय रित्थजाय। ता जस्स गेहे केणइ ववहारजोएण त रित्थ रित्थदेसो वा समागओ, सो निवेएउ राइणो चण्डसासणस्स। अणिवेइओवलभे य राया सव्वधणावहारेण सरीरदण्डेण य नो खमिस्सइ।'

—इस बीच में चन्दन सार्थवाह ने राजा को खबर दी—"हे देव ! मेरे घर चोरी हो गई है।"

राजा ने पूछा—"क्या चोरी गया है ?"

चन्दन ने बता दिया। राजा ने उसे लिखवा लिया। उसने (अपने कर्मचारियों से) कहा—"अरे, डिडिमनाद से घोषणा करो—चन्दन सार्थवाह के घर चोरी हो गई है, उसका धन चोरी चला गया है। जिस किसी के घर वह धन अथवा उस धन का कोई अश किसी प्रकार से आया हो, वह चण्डशासन राजा को खबर कर दे। ऐसा न करने पर राजा उसका सब धन छीन लेगा और उसे दण्ड देगा।"

एक दूसरा प्रसग देखिये जब कोई मित्र धन के लोभ से अपने साथी को कुएँ मे ढकेल देता है—

एत्थतरम्मि य अत्थमिओ सहस्सरस्सी, लुलिया सभा।

तओ चिन्तियमणहगेण—हत्थगय मे दविणजाय, विजण च कन्तार, समासन्नो य पायालगम्भीरो कूवो, पवत्तो य अवराहविवरसमच्छायगो अन्धयारो। ता एयम्मि एय पक्खिविऊण नियत्तामो इमस्स थाणस्स ति चिन्तिऊण भणिय च तेण—सत्थवाहपुत्त !

घणिय पिवासाभिभूओ म्हि। ता निहालेहि एय जिण्णकूव किमेत्थ उदग अत्थि, नत्थि त्ति ? तओ मए गहियपाहेयपोट्टलेण चेव निहालिओ कूवो। एत्थतरम्मि य सुविसत्थहिययस्स लोयस्स विय मच्चू मम समीवमणहगो। सहसा पक्खित्तो तम्मि अहमण हगेण, पडिओ य उदगमज्झे। नियत्तो य सो तओ विभागाओ।

—इस बीच मे सूर्य अस्ताचल मे छिप गया, और सध्या हो गई। अणहग ने सोचा—"मेरे हाथ मे धन है, जगल मे कोई है नही, पाताल के समान गभीर कुँए के पास पहुँच गये है, और अपराधरूपी छिद्रों को ढक देनेवाला अधकार फैल गया है। ऐसी हालत मे अपने साथी को इस कुँए मे ढकेल कर, मै यहाँ से लौट जाऊँगा।" यह सोचकर उसने मुझ से कहा, "हे सार्थवाह के पुत्र! मुझे बहुत प्यास लगी है। जरा इस पुराने कुँए मे झाँककर तो देखो इसमे जल है या नही ?" तब खाने की पोटली हाथ मे लिये लिये ही मैने कुँए मे झाँका। इस बीच मे जैसे विश्वस्त हृदय वाले लोगों के पास मृत्यु आ पहुँचती है, वैसे ही अणहग मेरे पास आ पहुँचा, और उसने एकदम मुझे कुँए मे ढकेल दिया। मै कुँए मे गिर पडा। वह वहाँ से लौट गया।

यहाँ धार्मिक आख्यानों के प्रसग मे कुँए मे लटकते हुए पुरुष का दृष्टात दिया गया है। कोई दरिद्र पुरुष परदेश जाते हुए किसी भयानक अटवी मे पहुँचा। इतने मे उसने देखा कि एक जगली हाथी उसका पीछा कर रहा है। उसके पीछे हाथी भागा हुआ आ रहा था, और सामने एक दुष्ट राक्षसी हाथ मे तलवार लिये खडी थी। उसकी समझ मे न आया कि वह क्या करे। इतने मे उसे वट का एक विशाल वृक्ष दिखाई पडा। वह दौडकर वृक्ष के पास पहुँचा, लेकिन उसके ऊपर चढ न सका। इस वृक्ष के पास तृणों से आच्छादित एक कुँआ था। अपनी जान बचाने के लिये वह कुँए मे कूद पडा। वह कुँए की दिवाल पर उगे हुए एक सरकडे के ऊपर गिरा। उसने देखा, दिवाल के

चारों ओर चार भयकर सर्प फुफकार मार रहे हैं और सरकडे की जड मे एक भयानक अजगर लिपटा हुआ है। क्षण भर के लिये उसके मन मे विचार आया कि जब तक यह सरकडा है तबतक मेरा जीवन है। इतने मे उसने देखा कि दो बडे बडे चूहे—एक सफेद और दूसरा काला—उस सरकडे की जड को काटने मे लगे है। हाथी इस पुरुष तक नहीं पहुँच सका, इसलिये वह गुस्से मे जोर-जोर से वट वृक्ष को हिलाने लगा। इस वृक्ष पर मधुमक्खियों का एक छत्ता लगा हुआ था। इस छत्ते की मक्खियाँ उस पुरुष के शरीर मे लिपट कर उसे काटने लगीं। साथ ही छत्ते मे से मधु का एक बिन्दु इस पुरुष के माथे पर टपक कर उसके मुँह मे प्रवेश कर रहा था और वह पुरुष इसके रस का आस्वादन करने मे मग्न था। इस बिन्दु के लोभ से ग्रस्त हुआ वह पुरुष अपनी भयकर सकटापन्न परिस्थिति को भूल गया था। इस उदाहरण के द्वारा यह बताया गया है कि ससार रूपी अटवी मे भ्रमण करते हुए जीव को राक्षसी रूपी वृद्धावस्था और हाथीरूपी मृत्यु का भय बना रहता है। वट का वृक्ष मोक्ष है, जहाँ मरणरूपी हाथी का भय नहीं है, मनुष्य जन्म कुँआ है, चार सर्प चार कषाय है, सरकडा जीवन है, सफेद और काले चूहे शुक्ल और कृष्ण पक्ष है, मधुमक्खियाँ अनेक प्रकार की व्याधियाँ है, अजगर नरक है और मधु की बूंदे ससार के विषयभोग है। तात्पर्य यह कि ऐसी हालत मे सकटग्रस्त मनुष्य को विषयभोगों की इच्छा नहीं करनी चाहिये।[1]

आगे चलकर वैराग्योत्पादक एक दूसरे दृश्य का वर्णन है। एक साँप ने किसी मेढक को पकड रक्खा था, एक कुरल पक्षी इस साँप को पकड कर खीच रहा था और इस कुरल पक्षी को

---

१ भारत के बाहर भी यह कथा पाई जाती है। ई० कुह ने महाभारत, स्त्रीपर्व (अध्याय ५६) तथा ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, मुसलमान और यहूदी कथाओं के साथ इसकी तुलना की है। देखिये जैकोबी, परिशिष्टपर्व, पृष्ठ २२ फुटनोट, कलकत्ता, १८९१।

एक अजगर ने पकड रक्खा था। जैसे जैसे अजगर कुरल पक्षी को खीचता, वैसे वैसे कुरल साँप को और साप मेढक को पकड कर खीचता था। यह देखकर राजा जीव के स्वभाव की गर्हणा करने लगा और उसे ससार से वैराग्य हो आया।

अन्त मे राजा सिंहकुमार का पुत्र आनन्द राजपट्ट पर अभिषिक्त होकर अपने पिता की हत्या कर देता है। उस समय सिंहकुमार यही विचार करता है—जैसे अनाज पक जाने पर किसान अपनी खेती काटता है, वैसे ही जीव अपने किये हुए कर्मों का फल भोगता है, इसलिये जीव को विषाद नहीं करना चाहिये।

तीसरे भव मे अग्निशर्मा का जीव जालिनी बनकर अपने पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुए गुणसेन के जीव सिरिकुमार को विष देकर अपने बैर का बदला लेता है। इस अध्याय की एक अतर्कथा मे नास्तिकवादी पिंगक और विजयसिह आचार्य का मनोरजक सवाद[1] आता है।

पिगक—पाँच भूतों के अतिरिक्त जीव कोई अलग वस्तु नहीं है। यदि ऐसा होता तो अनेक जीवों की हिसा करने मे रत मेरे पितामह (जो आपके सिद्धात के अनुसार मर कर नरक मे गये होंगे) नरक मे से आकर मुझे दुष्कर्मों से बचने का उपदेश देते। लेकिन आजतक उन्होने ऐसा नहीं किया, अतएव जीव शरीर से भिन्न नहीं है।

विजयसिह—जैसे लोहे की शृङ्खला मे बद्ध जेल मे पडा हुआ कोई चोर बहुत चाहने पर भी अपने इष्टमित्रों से नहीं मिल सकता, इसी तरह नरक मे पडा हुआ जीव नरक के बाहर नहीं आ सकता।

पिगक—मेरे पिता बडे धर्मात्मा पुरुष थे। उन्होंने श्रमणों की दीक्षा ग्रहण की थी, इसलिये आपके मतानुसार वे मर कर

१ लगभग यही सवाद रायपसेणियसुत्तमें है।

स्वर्ग मे गये होगे। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। लेकिन अभी तक भी उन्होंने स्वर्ग मे से आकर मुझे उपदेश नही दिया।

विजयसिंह—देखो, जैसे किसी दरिद्र पुरुष को विदेश मे जाकर राज्य मिल जाये तो वह अपने स्वजन सबधियों को भूल जाता है, इसी प्रकार स्वर्ग का देव ऋद्धि प्राप्त कर अपने मनुष्य जन्म को भूल जाता है।

पिंगक—मान लो, राजा ने किसी चोर को पकड कर उसे लोहे के मटके मे बन्द कर दिया, और उस घडे के मुँह पर गर्म शीशे की मोहर लगा दी। कुछ देर बाद वह चोर मटके के अन्दर ही मर गया। लेकिन यह देखने मे नहीं आया कि उसका जीव कहाँ से निकल कर बाहर चला गया। इससे पता लगता है कि जीव और शरीर भिन्न भिन्न नही।

विजयसिंह—यह कहना ठीक नहीं है। मान लो, किसी शख बजानेवाले पुरुष को किसी लोहे के बडे बर्तन मे बैठाकर शख बजाने के लिये कहा जाये, तो बर्तन मे कोई छेद न होने पर भी शख की ध्वनि दूर तक सुनाई देगी। इसी तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

पिंगक—किसी चोर को प्राणदड देने के पहले और प्राण-दण्ड देने के बाद तौला जाय तो उसके वजन मे कोई अन्तर नहीं पडेगा, इससे मालूम होता है कि जीव और शरीर भिन्न भिन्न नहीं है।

विजयसिंह—यह बात ठीक नहीं है। किसी धौंकनी को यदि उसमें हवा भरने से पहले तौला जाय और फिर हवा भरने के बाद तौला जाय तो दोनों वजन मे कोई अन्तर नहीं पडेगा,[1] लेकिन फिर भी धौंकनी से अलग हवा का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

---

१ विज्ञान की दृष्टि से यह कथन सत्य नहीं मालूम होता।

पिंगक—यदि किसी चोर के शरीर को खड-खड करके देखा जाय तो भी कहीं जीव दिखाई नही देगा, इससे जीव और शरीर की अभिन्नता का ही समर्थन होता है।

विजयसिंह—यह उदाहरण ठीक नही। किसी अरणि के खड खड करने पर भी उसमे अग्नि दिखाई नहीं देती, लेकिन इसका यह मतलब नही है कि अरणि मे अग्नि है ही नही। इससे जीव और शरीर की भिन्नता ही सिद्ध होती है।

चौथे भव मे गुणसेन और अग्निशर्मा धन और धनश्री के रूप में जन्म लेते है। दोनों पति-पत्नी बनते है, और पत्नी अपने पति की हत्या करके पूर्वजन्म का बदला लेती है। यहाँ समुद्रयात्रा का वर्णन है। व्यापारी लोग अपने सार्थ को लेकर धन अर्जन करने के लिये समुद्र की यात्रा करते थे। वे अपने जहाज मे माल भरते, दीन-अनाथों को दान देते, समुद्र की पूजा करते, यानपात्र को अर्घ चढाते, और फिर अपने परिजनों के साथ जहाज मे सवार होते। उसके बाद पाले उठाते, श्वेत ध्वजायें फहराते, और पवन के वेग से जहाज समुद्र को चीरता हुआ आगे बढने लगता। नगर मे पहुँच कर व्यापारी लोग भेट लेकर राजा से मुलाकात करते और राजा उन्हें ठहरने के लिये आवास देता। व्यापारी अपना माल बेचते और दूसरा माल भर कर आगे बढते।

चोरी करने के अपराध मे अपराधी के शरीर मे कालिख पोतकर, डिंडमनाद के साथ उसे वधस्थान को ले जाया जाता था। राजकर्मचारी वध-करनेवाले चाडाल को आदेश देकर लौट जाते। उसके बाद उसे यमगडिका (यम की गाडी) पर बैठाकर चाडाल उसका वध करने के पहले उसकी अतिम इच्छा के बारे मे प्रश्न करता। फिर वह अपराधी के अपराध का उल्लेख कर घोषणा करता कि जो कोई राजा के विरुद्ध इस तरह का अपराध करेगा उसे इसी प्रकार का दण्ड मिलेगा। यह कहकर चाडाल अपनी तलवार से अपराधी के टुकडे कर डालता।

एक बार किसी राजकोष मे चोरी हो गई। राजकर्मचारियों मे क्षोभ मच गया। आखिर चोर का पता लग ही गया—

तत्थ वि य तंमि चेय दियहे चण्डसेणस्स मुद्द सव्वसार नाम भडागारभवण। तओ आउलीहूया नायरया नगरारक्खिया य। गवेसिज्जति चोरा, मुद्दिज्जन्ति भवणवीहिओ, परिक्खिज्जति आगन्तुगा। एत्थतरमि य सपत्तमेत्ता चेव गहिया इमे राय पुरिसेहिं, भणिया य तेहि। भद्दा, न तुब्भेहिं कुप्पियव्व। साहिओ वुत्तन्तो। तेहि भणिय—को एस अवसरो कोवस्स? तहि वच्चामो जत्थ तुब्भे नेह त्ति। नीया पचउलसमीव, पुच्छिया पचउलिएहि, 'कओ तुब्भे' त्ति। तेहिं भणिय—'सावत्थीओ'। कारणिएहि भणिय—'कहिं गमिस्सह' त्ति? तेहि भणिय—'सुसम्मनयर'। कारणिएहि भणिय—'किनिमित्त' त्ति? तेहिं भणिय—'नरवइसमाएसाओ एय सत्थवाहपुत्त गेण्हिउ' त्ति। कारणिएहिं भणिय—'अत्थि तुम्हाण किंचि दविणजाय?' तेहिं भणिय 'अत्थि'। कारणएहिं भणिय—'कि तय' त्ति? तेहि भणिय—'इमस्स सत्थवाहपुत्तस्स नरवइविइण्ण रायालकरणय' त्ति। कारणिएहिं भणिय—'पेच्छामो ताव केरिस'? तओ विसुद्ध चित्तयाए दसिय। पच्चभिन्नाए भडारिएण।

• —उस समय उसी दिन चडसेन राजा के सर्वसार नाम के खजाने मे चोरी हो गई। नागरिक और नगर के रक्षकों मे बडा क्षोभ हुआ। चोरों की खोज होने लगी, मकानों की गलिया छेंक दी गई। आगन्तुकों की तलाशी ली जाने लगी। इस बीच मे वहॉ आते ही इन लोगों को (व्यापारियों को) राजा के कर्मचारियों ने गिरफ्तार कर लिया। उन्होने कहा—"आप लोग गुस्सा न हो"। उन्होंने सब हाल कह दिया। व्यापारियों ने कहा—"इसमे गुस्से की क्या बात? जहॉ तुम ले चलो, हम चलने को तैयार है।" उन्हें पचो के पास ले गये। पचों ने पूछा—तुम लोग कहॉ से आये?

"श्रावस्ती से।"

"कहाँ जाओगे ?"

"सुशर्मनगर को।"

"वहाँ क्या काम है ?"

"राजा की आज्ञापूर्वक इस सार्थवाहपुत्र को वहाँ ले जाना है।"

"तुम्हारे पास कुछ धन है ?"

"हाँ, है।"

"कौन-सा ?"

"इस सार्थवाहपुत्र को राजा ने अलकार दिये है।"

"देखे, कौन से है ?"

व्यापारियों ने सीधे स्वभाव से दिखा दिये। कोपाध्यक्ष ने उन्हें पहचान लिया।

यहाँ कुलदेवता (चण्डी) की पूजा के लिये आटे के बने हुए मुर्गे (पिट्ठमयकुक्कुड) की बलि देकर मास के स्थान पर आटे को भक्षण करने का उल्लेख है।[1]

पाचवे भव में गुणसेन का जीव जय और अग्निशर्मा का जीव विजय बनता है। जय और विजय दोनो सगे भाई है। जय राजपद को त्याग कर श्रमणदीक्षा ग्रहण करता है, और विजय उसकी हत्या कर उससे बदला लेता है। मूल कथा यहाँ बहुत छोटी है, अन्तर्कथायें ही भरी हुई है जिससे मूलकथा का महत्त्व कम हो गया है। दो प्रकार के मार्गों का प्रतिपादन करते हुए सुन्दर रूपकों द्वारा धर्मोपदेश दिया है। एक सरल मार्ग है, दूसरा वक्र। वक्र मार्ग द्वारा आसानी से जा सकते हैं, लेकिन इसमें समय बहुत लगता है।

---

१ पुष्पदन्त के जसहरचरिय (२,१७ २०) में भी इस प्रकार का उल्लेख है। उत्तर विहार में आजकल भी यह रिवाज है। कहीं हलवे का बकरा बनाकर उसे काटा जाता है, कहीं श्वेत कूष्माण्ड (कुम्हडा) काटने का रिवाज है।

सरल मार्ग से पहुँचने मे कष्ट होता है, लेकिन इससे जल्दी पहुँच जाते है। सरल मार्ग बहुत विषम और सकटापन्न है। इस मार्ग मे दो व्याघ्र और सिंह रहते है। इन्हे एक बार भगा देने पर भी फिर से आकर ये रास्ता रोक लेते है। यदि कोई रास्ता छोडकर चले तो उसे मार डालते है। इस मार्ग मे अनेक शीतल छायावाले सुदर वृक्ष लगे है, कुछ वृक्ष ऐसे है जिनके फल, फूल और पत्ते झड गये है। मनोहर वृक्षों के नीचे विश्राम करना खतरे से खाली नहीं है। इसलिये इन वृक्षों के नीचे विश्राम न करके फल, फूल और पत्तेरहित वृक्षो के नीचे विश्राम करना चाहिये। रास्ते मे मधुरभाषी सुदर रूपधारी पुरुष पुकार पुकार कर कहते है—हे राहगीरो। इस रास्ते से जाओ। लेकिन उनकी बात कभी नहीं माननी चाहिये। मार्ग मे जाते हुए जगल का कुछ भाग आग से जलता हुआ दिखाई देगा, उस आग को सावधानी से बुझा देना चाहिये, नही तो जल जाने की आशका है। रास्ते मे एक ऊँचा पहाड भी मिलेगा, उसे लाघ कर चले जाना चाहिये। फिर बासो का एक झुरमुट दिखाई देगा, इसे जल्दी ही पार कर जाना चाहिये, वहा ठहरने से उपद्रव की आशका है। इसके बाद एक गड्ढा पडेगा। वहाँ मनोरथ नामका एक ब्राह्मण रहता है। वह पुकार कर कहता है—हे रास्ता चलनेवालो! इस गड्ढे को थोडा सा भर कर आगे बढना। लेकिन इस ब्राह्मण की बात पर भी ध्यान नहीं देना चाहिये। इस गड्ढे को नहीं भरना चाहिये, क्योंकि भरने से वह और बडा हो जाता है। मार्ग मे पाँच प्रकार के फल दिखाई देगे। इनकी तरफ दृष्टि न डालना चाहिये और न इन्हें भक्षण करना चाहिये। यहाँ बाईस प्रकार के महाकाय पिशाच प्रत्येक क्षण उपद्रव करते रहते है, उनकी परवा नहीं करनी चाहिये। यहाँ भोजन पान बहुत थोडा मिलेगा, और जो मिलेगा वह नीरस होगा, इससे दुखी नहीं होना चाहिये। हमेशा आगे बढते जाना चाहिये। रात में भी दो याम नियम से गमन करना

चाहिये। इस प्रकार गमन करने से शीघ्र ही जगल को लाघ कर निर्वृतिपुर (मोक्ष) मे पहुँचा जा सकता है। यहाँ किसी प्रकार का कोई क्लेश और उपद्रव नहीं है।

छठे भव मे गुणसेन और अग्निशर्मा धरण और लक्ष्मी का जन्म धारण कर पति-पत्नी बनते हैं। लक्ष्मी धरण से बैर लेने का अनेक बार प्रयत्न करती है लेकिन सफलता नहीं मिलती। एक बार धरण और लक्ष्मी किसी जगल मे से जा रहे थे। शबरों ने उन्हें लताओं से बाध लिया और वध के लिये चण्डी के मदिर मे ले चले। इस मदिर मे दुर्गिलक नामके किसी पत्रवाहक को भी मारने के लिये पकड कर लाया गया था। दुर्गिलक के केश पकड कर उसे एक ओर खडा किया गया और उसके शरीर पर रक्त चन्दन का लेप कर दिया गया। एक शबर उससे कहने लगा—"देखो, अब तुम्हें स्वर्ग मे जाना है, इसलिये अपने जीवन के सिवाय तुम चाहे जो माँग सकते हो।" दुर्गिलक इतना डर गया था कि बार-बार पूछे जाने पर भी वह न बोल सका। लेकिन नियम के अनुसार जबतक बलि दिये जानेवाले पुरुष का मनोरथ पूरा न हो जाय उसका वध नहीं किया जा सकता। धरण भी वहीं खडा था। उसने सोचा, मुझे भी मरना तो है ही, मैं क्यों न दुर्गिलक को बचा लूँ। शबरों ने धरण का वध करने से पहले जब उसकी अन्तिम इच्छा के बारे मे प्रश्न किया तो उसने कहा कि दुर्गिलक की जगह मेरा वध कर दिया जाये।

यहाँ समुद्रयात्रा के प्रसग मे चीनद्वीप और सुवर्णद्वीप का उल्लेख आता है जिससे पता लगता है कि भारत के व्यापारी बहुत सा माल लेकर चीन और बरमा आदि देशों में जाया करते थे और इन द्वीपों से माल लाकर अपने देश में बेचते थे। चीन से लौटने पर अपनी पत्नी के व्यवहार को देखकर धरण को उसके चरित्र पर सदेह हो गया, लेकिन इस नाजुक बात को दूसरों से कैसे कहे? समराइच्चकहा के विद्वान् लेखक ने चित्रण मे बडी कुशलता से काम लिया है—

सेट्ठिणा भणिय—'वच्छ, सुय मए, जहा आगय जाणवत्त चीणाओ, ता त तुमए उवलद्ध न व' त्ति। तओ सगग्गयक्खर जपिय धरणेण—'अज्ज उवलद्ध' ति। सोगाइरेगेण य पवत्त बाहसलिल। तओ 'नूण विवन्ना से भारिया, अन्नहा कह ईइसो सोगपसरो' त्ति चिंतिऊण भणिय टोप्पसेट्ठिणा—'वच्छ, अवि त चेव त जाणवत्त ति। धरणेण भणिय—'आम'। सेट्ठिणा भणिय—'अवि कुसल ते भारियाए ?' धरणेण भणिय—'अज्ज कुसल'। सेट्ठिणा भणिय—'ता किमन्न ते उव्वेयकारण ?' धरणेण भणिय—'अज्ज, न किंचि आचिक्खियव्व' ति। सेट्ठिणा भणिय—'ता किं विमणो सि' ? धरणेण भणिय—'आम'। सेट्ठिणा भणिय—'किमाम' ? धरणेण भणिय—'एय'। सेट्ठिणा भणिय किमेय ?' धरणेण भणिय—न किंचि'। सेट्ठिणा भणिय 'वच्छ, किमेएहि सुन्नभासिएहिं ? आचिक्ख सब्भाव। न य अह अजोग्गो आचिक्खियव्वस्स, पडिवन्नो य तए गुरू'। तओ 'न जुत्त गुरू आणाखडण' ति चिन्तिऊण जपिय धरणेण—"अज्ज, 'अज्जस्स आण' त्ति करिय ईइस पि भासियइ" त्ति। सेट्ठणा भणिय—'वच्छ, नत्थि अविसओ गुरुयणाणुवत्तीए।' धरणेण भणिय—'अज्ज जइ एव ता कुसल मे भारियाए जीविएण, न उण सीलेण।' सेट्ठिणा भणिय—'कह वियाणसि ?' धरणेण भणिय—'कज्जाओ।' सेट्ठिणा भणिय—'कह विय ?' तओ आचिक्खिओ से भोयणाइओ जलनिहितड-पज्जवसाणो सयलवुत्तन्तो।

—सेठ ने पूछा—"वत्स, सुना है कि चीन से जहाज लौट आया है, तुम्हें मालूम है या नहीं ?" धरण ने अवरुद्ध स्वर में उत्तर दिया—"आर्य, मालूम है।" यह कह कर शोकातिरेक से उसकी आँखों से अश्रु बहने लगे। टोप्पसेठ ने सोचा कि अवश्य ही इसकी पत्नी मर गई होगी, अन्यथा यह क्यों शोक से व्याकुल होता ? उसने पूछा—

"वत्स, क्या वह वही जहाज है ?"

'हाँ।"

'तुम्हारी पत्नी कुशल से तो है ?"

"हाँ, कुशल है।"

"फिर तुम्हारे शोक का क्या कारण ?"

"आर्य, कोई खास बात नही है।"

"फिर उदास क्यो हो ?"

"हाँ।"

"हाँ क्या ?"

"ऐसे ही"

"ऐसे ही क्या ?"

"कुछ नहीं"

"वत्स, इस प्रकार क्या सूनी-सूनी बात कर रहे हो ? ठीक ठीक बोलो, मुझ से छिपाने की आवश्यकता नहीं। तुमने मुझे बडा मान लिया है।"

"बडों की आज्ञा का उल्लघन करना ठीक नहीं," यह सोचकर धरण ने कहा—"जैसी आपकी आज्ञा', इसलिये ऐसी बात भी कहनी पडती है।"

"गुरुजनो से कोई बात छिपाने की जरूरत नहीं।"

"यदि यह बात है, तो लीजिये मेरी पत्नी जीवित तो है, लेकिन शील से नहीं।"

"कैसे जानते हो ?"

"उसके कार्य से।"

"कैसे ?"

तत्पश्चात् आदि से अत तक सारा वृत्तान्त धरण ने कह सुनाया।

यहाँ अन्तर्कथा मे शबर वैद्य और अरहदत्त का आख्यान है। शबर वैद्य अरहदत्त को उपदेश देने के लिये अपने साथ लेकर चला। मार्ग में उसने देखा कि किसी गॉव मे आग लग गई है। वैद्य घास का गट्ठर लेकर आग बुझाने के लिये

दौडा। अरहदत्त ने पूछा—क्या कही घास से भी आग बुझ सकती है? वैद्य ने उत्तर दिया—तो फिर क्रोध आदि से प्रदीप्त अपने शरीर रूपी ईधन से, मुनिधर्म को त्यागकर गृहस्थ धर्म मे प्रवेश करने से क्या ससार की आग बुझ सकती है? वैद्य ने सूअर और बैल आदि के दृष्टान्त देकर अरहदत्त को प्रबुद्ध किया।

सातवे भव मे गुणसेन और अग्निशर्मा का जीव सेन और विषेण का जन्म धारण करता है। दोनों चचेरे भाई है। विषेण सेन से अनेक बार बदला लेने का यत्न करता है, लेकिन सफल नही होता। स्त्री आदि विषयभोगों के सबध मे यहाँ कहा गया है—

वारिय खु समये इत्थियादसण। भणिय च तत्थ—अवि य अजियव्वाइ तत्तलोहसलायाए अच्छीणि, न दट्ठव्वा य अगपच्चग-सठाणेण इत्थिया, अवि य भक्खियव्व विस, न सेवियव्वा विसया, छिन्दियव्वा जीहा, न जपियव्वमलिय ति।

—शास्त्रों मे स्त्रीदर्शन का निषेध है। कहा है—गर्म गर्म लोहे की सली से आँखे आज लेना अच्छा है, लेकिन स्त्रियों के अग प्रत्यगों का देखना अच्छा नहीं। विष का भक्षण करना अच्छा है, लेकिन विषयों का सेवन करना अच्छा नहीं। जीभ काट लेना अच्छा है लेकिन मिथ्याभाषण करना अच्छा नहीं।

यहाँ नागदेव नामके पडरभिक्खू[1] का उल्लेख है जिसने गोरस का त्याग कर दिया था। पियमेलय (प्रियमेलक) नाम के तीर्थ का यहाँ वर्णन किया गया है। आगे चलकर प्रमाद के दोष बताये है।

- आठवे भव मे गुणसेन का जीव गुणचन्द्र का जन्म धारण करता है और अग्निशर्मा वानमतर बनकर उससे बदला लेना चाहता है, लेकिन सफलता नहीं मिलती। यहाँ ७२ कलाओं का

---

१ विशेषनिशीथचूर्णी (साइक्लोस्टाइल्ड कापी), पृ० १२ में मक्खलिगोशाल के शिष्यों को पडरभिक्खू कहा गया है।

उल्लेख है। प्रश्नोत्तर की पद्धति पर कुछ प्रश्न किये गये हैं, जिनका उत्तर गुणचन्द्र देता है—

प्रश्न—किं देन्ति कामिणीओ ? के हरपणया ? कुणति कि भुयगा ?
क च मऊहेहि ससी धवलेइ ?

उत्तर—नहगणाभोय (१ नख, २–गण, ३–भोग (सर्प का फण) ४–नभ के आँगन का विस्तार।
—कामिनियाँ क्या देती हैं ? नख।
शिव को कौन प्रणाम करते है ? उनके गण।
सर्प क्या उठाते है ? अपना फण।
अपनी किरणों द्वारा चन्द्रमा किसे धवल करता है ? नभ के आँगन को।

प्रश्न—किं होइ रहस्स वर ? बुद्धिपमाएण को जणो जियइ ?
कि च कुणन्ती बाला नेउरसद्द पयासेइ ?

उत्तर—चक्कमन्ती (१–चक्र, २ मत्री, ३ चक्रमसाणा)।
रथ का श्रेष्ठ हिस्सा कौन सा है ? चक्र।
अपनी बुद्धि के प्रसाद से कौन विजयी होता है ? मत्री।
क्या करती हुई बाला नुपूर की ध्वनि करती है ? चलती हुई।

प्रश्न—किं पिग्रह ? किंच गेण्हह पढम कमलस्स ? देह किं रिवुणो ?
नववहुरमिय भण किं ? उवहसर केरिस वक्क ?

उत्तर—कण्णालकारमणहर सविसेस (१ क, २ नाल, ३ कार, ४ मनोहर, ५–सविशेष)।
—क्या पिया जाता है ? जल।
कमल का पहले कौन सा हिस्सा पकडा जाता है ? नाल।
शत्रु को क्या दिया जाता है ? तिरस्कार।
नव वधू मे रत पुरुष को क्या कहते हैं ? मनोहर।
उपधा[1] का स्वर कैसा वक्र होता है ? सविशेष।

---

१ व्याकरण में अन्त्यवर्ण से पूर्व वर्ण को उपधा कहा गया है। अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा (सिद्धान्तकौमुदी १ १ ६५)।

गूढचतुर्थगोष्ठी मे श्लोक के चतुर्थ पद की पूर्त्ति की जाती थी। उसका उदाहरण देखिये—

> सुरयमणस्स रइहरे नियबभमिर बहू धुयकरग्गा।
> तक्खणवुत्तविवाहा

> गुणचन्द्र ने समस्यापूत्ति करते हुए चौथा पद कहा—
> वरयस्स कर निवारेइ॥

रतिघर मे, अभिनवपरिणीता, सुरत मनवाली वधू अपने नितबो को घुमाती हुई, उँगलियों को चचल करती हुई अपने वर के हाथ को रोकती है।

आगे चलकर विवाह-उत्सव का वर्णन है जिससे आठवीं सदी की तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का पता चलता है। वर्षाकाल मे घनघोर 'वर्षा होने के कारण उद्यान आदि को नष्ट करती हुई नदी अपनी मर्यादा को लाघ गई थी। लेकिन शरद ऋतु मे वही नदी अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त हो गई। इस घटना को देखकर गुणचन्द्र को वैराग्य हो आया और उसने ससार का त्याग कर श्रमणदीक्षा ग्रहण की।

अन्तिम नौवें भव मे गुणसेन का जीव उज्जयिनी मे समरादित्य का और अग्निशर्मा गिरिसेन चाडाल का जन्म धारण करता है। गिरिसेन समरादित्य का वध करके उससे बदला लेना चाहता है, लेकिन असफल रहता है।

समरादित्य अशोक, कामाकुर और ललिताग आदि मित्रों के साथ समय यापन करता है। ये लोग कामशास्त्र की चर्चा करते है। कामशास्त्र की आवश्यकता बताते हुए कहा है कि जो लोग कामशास्त्र मे उल्लिखित प्रयोगो के ज्ञान से वचित है वे अपनी स्त्री के चित्त का आराधन नही कर सकते। कामशास्त्र को धर्म, अर्थ और काम का साधक माना गया है, काम के अभाव मे धर्म और अर्थ की सिद्धि नहीं होती।

अधम, मध्यम और उत्तम मित्रों का लक्षण बताते हुए शरीर को अधम, स्वजनों को मध्यम और धर्म को उत्तम मित्र कहा है।

एक बार बसन्त ऋतु का आगमन होने पर नगरी के सब लोग उत्सव मनाने के लिये नगर के बाहर गये। राजकुमार समरादित्य ने भी बडे ठाठ बाठ से अपने रथ मे सवार होकर प्रस्थान किया। नर्तक (पायमूल) उज्वल वस्त्र धारण कर नृत्य कर रहे थे, भुजग (विट) उल्लास मे मस्त थे, दर्शकगण मे चहल-पहल मची हुई थी और कुकुम की धूलि सब जगह फैल गई थी। जगह-जगह नृत्य हो रहे थे, नाटक दिखाये जा रहे थे और वाद्यों की ध्वनि सुनाई पड रही थी। इतने मे राजकुमार को मदिर के चौंतरे पर व्याधि से ग्रस्त एक वीभत्स पुरुष दिखाई दिया। राजकुमार ने सारथि से प्रश्न किया, "सारथि, क्या यह भी कोई नाटक है?" सारथि ने उत्तर दिया, "महाराज, यह पुरुष व्याधि से पीडित है।" यह सुनकर राजकुमार अपनी तलवार निकाल कर व्याधि को मारने के लिये उद्यत हो गया। यह देखकर लोगों के नाच-गान बन्द हो गये और सब लोग इकट्ठे हो गये। इस पर सारथी ने राजकुमार को समझाया कि व्याधि कोई दुष्ट पुरुष नहीं है जिसका वध करके उसे वश मे किया जा सके, जो पुरुष धर्मरूपी पथ्य का सेवन करता है वही इस व्याधि से मुक्त हो सकता है। आगे चलकर कुमार ने जरावस्था से पीडित एक श्रेष्ठि दम्पति को देखा। सारथी ने बताया कि धर्मरूपी रसायन का सेवन किये बिना जरावस्था से छुटकारा नहीं मिल सकता। फिर उसने एक मृतक दरिद्र पुरुष को देखा। कुमार ने सारथी से प्रश्न किया, "बन्धु बाधव मृतक को क्यों छोडकर चले जाते है?" सारथी ने उत्तर दिया, "इस कलेवर के रखने से क्या लाभ? इसका जीव निकल गया है।"

कुमार—यदि ऐसी बात है तो मृतक के सबधी क्यों विलाप करते है?

सारथी—विलाप करने के सिवाय और कोई चारा नहीं।

कुमार—वे लोग इसके साथ क्यों नहीं जाते ?

सारथी—यह सभव नहीं। उसके सबधियों को पता नहीं कि मृतक कहाँ जानेवाला है।

कुमार—ये उससे प्रीति क्यों करते हैं ?

सारथी—महाराज, आप ठीक कहते है, प्रीति करना वृथा है।

अन्त मे कुमार मृत्यु से बचने का उपाय पूछता है। सारथी उत्तर देता है कि धर्म धारण करने से ही मृत्यु से छुटकारा मिल सकता है।

विवाह विधि का यहाँ विस्तार से वर्णन है। अन्त मे कर्मगति आदि सबधी प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं।

धुत्तक्खाण (धूर्ताख्यान)

धूर्ताख्यान हरिभद्र की दूसरी उल्लेखनीय रचना है।[1] लेखक ने बड़े विनोदात्मक ढग से रामायण, महाभारत और पुराणों की अतिरजित कथाओं पर व्यग्य करते हुए उनकी असार्थकता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। हरिभद्र एक कुशल कथाकार थे। हास्य और व्यग्य की इस अनुपम कृति से उनकी मौलिक कल्पनाशक्ति का पता लगता है। यह महाराष्ट्री प्राकृत मे सरल और प्रवाहबद्ध शैली मे लिखी गई है।

इसमे पाँच आख्यान हैं। एक बार उज्जैनी के किसी उद्यान

---

१ इसका सम्पादन डाक्टर ए० एन० उपाध्ये ने सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बबई में सन् १९४४ में किया है। निशीथविशेषचूर्णी (पीठिका, पृ० १०५) में धुत्तक्खाणग का उल्लेख मिलता है, इससे मालूम होता है कि हरिभद्र से पहले भी इस नाम का कोई ग्रथ था। सघतिलकाचार्य ने सस्कृत धूर्ताख्यान की रचना की है जो राजनगर की जैनग्रन्थप्रकाशक सभा द्वारा सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ है।

मे पॉच धूर्त शिरोमणि–मूलश्री,[1] कडरीक, एलाषाढ, शश[2] और खडपाणा एकत्रित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि सब लोग अपने अपने अनुभव सुनायें और जो इन अनुभवों पर विश्वास न करे वह सबको भोजन खिलाये, और जो अपने कथन को रामायण, महाभारत और पुराणो से प्रमाणित कर दे, वह धूर्तों का गुरु माना जाये। सबसे पहले मूलश्री ने अपना अनुभव सुनाया—

"एक बार की बात है, युवावस्था में अपने सिर पर गगा धारण करने के लिये मैं अपने स्वामी के घर गया। अपने हाथ मे मैं छत्र और कमडल लिये जा रहा था कि एक मदोन्मत्त हाथी मेरे पीछे लग गया। हाथी को देखकर मैं डर के मारे कमडल मे जा छिपा। हाथी भी मेरे पीछे-पीछे कमडल मे घुस आया। वह हाथी छह महीने तक कमडल मे मेरे पीछे भागता फिरा। अन्त मे मैं कमडल की टोटी से बाहर निकल आया। हाथी ने भी उसमे से निकलने का प्रयत्न किया, लेकिन हाथी की पूँछ उसमें फॅसी रह गई। रास्ते मे गगा नदी पडी। उसे मैं अपनी भुजाओं से पार कर के स्वामी के घर पहुँचा। वहॉ मैं छह महीने तक गगा को अपने सिर पर धारण किये रहा। उसके बाद उज्जैनी आया, और अब आप लोगों के साथ बैठा हुआ हूँ।

१ मूलश्री को मूलदेव, मूलभद्र, कर्णीसुत और कलाकुर नामों से भी उल्लिखित किया गया है। मूलदेव को स्तेयशास्त्रप्रवर्तक माना है। देखिये, जगदीचशन्द्र जैन, कल्पना, जून, १९५६ में 'प्राचीन जैन साहित्य में चौरकर्म' नाम का लेख।

२ शश का उल्लेख मूलदेव के मित्र के रूप में चतुर्भाणी (डॉ० मोतीचन्द और वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा अनूदित तथा सपादित, हिन्दी ग्रन्थरत्नकारकार्यालय, बबई, १९६०) में अनेक जगह मिलता है।

"यदि मेरा यह आख्यान सत्य है तो इसे प्रमाणित करो, और यदि असत्य है तो सबके लिये भोजन का प्रबध करो।"

कडरीक ने उत्तर दिया कि रामायण, महाभारत और पुराणो का ज्ञाता ऐसा कौन व्यक्ति है जो तुम्हारे इस आख्यान को असत्य सिद्ध कर सके।

दूसरे आख्यान में कडरीक ने अपना अनुभव सुनाया—

"एक बार की बात है, बाल्यावस्था मे मेरे माता पिता ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया। घूमते घामते मै एक गॉव मे पहुँचा। उस गॉव मे एक वट का वृक्ष था, जिसके नीचे कमलदल नाम का एक यक्ष रहा करता था। यह यक्ष लोगो को इच्छित वर दिया करता था। यक्ष की यात्रा के लिये लोग फल फूल आदि लेकर वहॉ आते। मै भी यक्ष की वदना के लिये गया। उस समय वहॉ घोडों का खेल हो रहा था कि इतने मे चोरों का आक्रमण हुआ। यह देखकर गॉव के सब लोग और समस्त पशु भागकर एक फूट (चिब्भड[1]) मे छिप गये और अन्दर पहुँच कर क्रीडा करने लगे। चोर वहॉ किसी को न देखकर वापिस लौट गये। इतने में एक बकरी आई और वह फूट को खा गई। उस बकरी को एक अजगर निगल गया और अजगर को एक पक्षी खा गया। जब यह पक्षी वट वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ था तो वहॉ राजा की सेना ने पडाव डाला। इस पक्षी का एक पैर नीचे की तरफ लटक रहा था। हाथी के महावत ने उसे वृक्ष की शाखा समझकर उससे अपने हाथी को बॉध दिया। पक्षी ने अपना पैर ऊपर खींचा तो उसके साथ हाथी भी खिचा चला गया। यह देखकर सेना मे कोलाहल मच गया। इतने मे किसी तीरन्दाज ने पक्षी पर तीर चलाया जिससे पक्षी नीचे गिर पडा। राजा ने उसका पेट चिरवाया तो पहले उसमे से अजगर निकला, अजगर मे से बकरी निकली, बकरी मे से फूट निकली और फूट मे से

---

१ गुजराती में चीभडु।

सारे गाँव के लोग और पशु पक्षी निकल पड़े। सब लोग राजा को प्रणाम कर के अपने अपने घर चले गये और मैं यहाँ आपके सामने उपस्थित हूँ।"

रामायण, महाभारत और पुराणों के पंडित एलाषाढ ने इस आख्यान को रामायण आदि से प्रमाणित कर दिया।

उसके बाद एलाषाढ ने अपना अनुभव सुनाना शुरू किया—

"युवावस्था में मुझे धन की बड़ी अभिलाषा थी। धन प्राप्त करने की आशा से मैं एक पर्वत पर पहुँचा और वहाँ से रस लेकर आया। इस रस की सहायता से मैंने बहुत-सा धन बनाया। एक बार की बात है, मेरे घर में चोर घुस आये। मैंने धनुष बाण लेकर उनसे युद्ध किया और बहुत-सों को मार डाला। जो बाकी बचे, उन्होंने मेरा सिर धड़ से अलग कर दिया, और मेरे टुकड़े टुकड़े कर मुझे बेर की झाड़ी पर डाल, मेरा घर लूट-पाट कर वे वापिस लौट गये। अगले दिन सूर्योदय के समय लोगों ने देखा कि मैं बेर खा रहा हूं। उन्होंने मुझे जीवित समझ कर मेरे शरीर के टुकड़ों को जोड़ दिया, और मैं आप लोगों के सामने हाजिर हूँ।"

शश ने रामायण, महाभारत और पुराणों की कथायें सुनाकर एलाषाढ के आख्यान का समर्थन किया।

चौथे आख्यान में शश ने अपना अनुभव सुनाया—

"गाँव से दूर तक पर्वत के पास मेरा तिल का खेत था। एक बार शरद् ऋतु में मैं वहाँ गया कि इतने में एक हाथी मेरे पीछे लग गया। डर के मारे मैं एक बड़े तिल के झाड़ पर चढ़ गया। हाथी इस झाड़ के चारों तरफ चक्कर मारने लगा। इससे बहुत से तिल नीचे गिर पड़े और हाथी के पैरों के नीचे दबने के कारण वहाँ तेल की एक नदी बह निकली। भूख और प्यास से पीड़ित हो वह हाथी इस नदी में फँस कर मर गया। मैंने सुख की साँस ली। मैं झाड़ से नीचे उतरा, दस घड़े तेल मैं पी गया और बहुत सी खल मैंने खा डाली। फिर

मैंने हाथी की खाल का एक थैला बनाया। उसे तेल से भर कर गाँव के बाहर एक पेड़ पर टाँग दिया। गाँव में पहुँच कर मैंने अपने लड़के को यह थैला लाने को भेजा। लड़के को थैला दिखाई न दिया, इसलिये वह समूचे पेड़ को ही उखाड़ लाया।"

खंडपाणा ने रामायण, महाभारत और पुराणों के प्रमाण देकर शश के आख्यान का समर्थन किया।

पाँचवें आख्यान में अर्थशास्त्र की रचना करनेवाली खंडपाणा ने अपना अनुभव सुनाया—

"तरुण अवस्था में मैं अत्यंत रूपवती थी। एक बार मैं ऋतु स्नान करके मंडप में सो रही थी कि मेरे रूपलावण्य से विस्मित होकर पवन ने मेरा उपभोग किया। तुरत ही मुझे एक पुत्र हुआ, और मुझसे पूछकर वह कहीं चला गया।

"यदि मेरा उक्त कथन असत्य है तो आप लोग भोजन का प्रबन्ध करें, और यदि सत्य है तो इस संसार में कोई भी स्त्री अपुत्रवती न होनी चाहिये।"

मूलश्री ने महाभारत आदि के प्रमाण उद्धृत करके खंडपाणा के कथन का समर्थन किया।[1]

कुवलयमाला

कुवलयमाला के कर्त्ता दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरि हैं। इन्होंने ईसवी सन् ७७९ में जावालिपुर (जालोर) में इस ग्रन्थ को लिखकर समाप्त किया था।[2] यह स्थान जोधपुर के दक्षिण में

---

१ निशीथसूत्र के भाष्य में इन पाँचों धूर्तों की कथा पहले आ चुकी है।

२ सिंघी सिरीज़ में यह ग्रन्थ डाक्टर ए० एन० उपाध्ये के सम्पादकत्व में दो भागों में प्रकाशित हो रहा है। इसके मुद्रित फर्मे उनकी कृपा से मुझे देखने को मिले हैं। १४वीं सदी के रत्नप्रभसूरि आचार्य ने इस ग्रन्थ के सार रूप संक्षिप्त संस्कृत कुवलयमाला की रचना की है।

है, उस समय नरहस्ति श्रीवत्सराज यहाँ राज्य करता था। इस ग्रन्थ के अन्त मे दी हुई प्रशस्ति से ग्रन्थकार के सम्बन्ध मे अनेक महत्वपूर्ण बातों का पता लगता है। उत्तरापथ मे चन्द्रभागा नदी के तट पर पव्वइया नामक नगरी थी जहाँ तोरमाण अथवा तोरराय नामका राजा राज्य करता था। इस राजा के गुरु गुप्तवशीय आचार्य हरिगुप्त के शिष्य महाकवि देवगुप्त थे। देवगुप्त के शिष्य शिवचन्द्रगणि महत्तर भिल्लमाल के निवासी थे। उनके शिष्य यक्षदत्त थे। इनके णाग, बिंद, (वृन्द) मम्मड, दुग्ग, अग्निशर्मा, बडेसर (बटेश्वर) आदि अनेक शिष्य थे जिन्होने देवमन्दिर का निर्माण कराकर गुर्जर देश को रमणीय बनाया था। इन शिष्यो मे एक का नाम तत्त्वाचार्य था, ये ही तत्त्वाचार्य कुवलयमाला के कर्ता उद्योतनसूरि के गुरु थे। उद्योतनसूरि को वीरभद्रसूरि ने सिद्धान्त और हरिभद्रसूरि ने युक्तिशास्त्र की शिक्षा दी थी। कुवलयमाला काव्यशैली मे लिखा हुआ प्राकृत कथा साहित्य का एक अनुपम ग्रन्थ है। गद्य पद्यमिश्रित महाराष्ट्री प्राकृत की यह प्रसादपूर्ण रचना चपू की शैली मे लिखी गई है। महाराष्ट्री के साथ इसमे पैशाची, अपभ्रश और कही सस्कृत का भी प्रयोग हुआ है जिससे प्रतीत होता है कि उद्योतनसूरि ने दूर दूर तक भ्रमण कर अनेक देशी भाषाओं की जानकारी प्राप्त की थी। मठो मे रहनेवाले विद्यार्थियो और बनिज व्यापार के लिये दूर दूर तक भ्रमण करनेवाले वणिको की बोलियो का इसमे सग्रह है। प्रेम और शृगार आदि के वर्णनों से युक्त इस कृति में अलकारों का सुदर प्रयोग हुआ है। बीच बीच मे सुभाषित और मार्मिक प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका आदि दिखाई दे जाते हैं। ग्रन्थ के आद्योपान्त पढने से लेखक के विशाल अध्ययन और सूक्ष्म अन्वीक्षण का पता लगता है। ग्रन्थ की रचना शैली पर बाण की कादबरी, त्रिविक्रम की दमयतीकथा और हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा आदि का प्रभाव परिलक्षित होता है। लेखक ने पादलिप्त (और उनकी तरगवती), सातवाहन, षट्पर्णक, गुणाढ्य (और उनकी

बृहत्कथा), व्यास, वाल्मीकि, बाण (और उनकी कादबरी), विमल,[1] रविषेण,[2] जडिल,[3] देवगुप्त, प्रभजन और हरिभद्र, तथा सुलोचना नामक धर्मकथा का उल्लेख किया है। क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि का परिणाम दिखाने के लिये यहाँ अनेक सरस कथाओं का सग्रह किया गया है।

कथासुदरी की नववधू के साथ तुलना करते हुए उद्योतनसूरि ने लिखा है—

सालकारा सुहया ललियपया मउय-मजु सलावा।
सहियाण देइ हरिस उव्वूढा णववहू व्वेव॥

—अलकार सहित, सुभग, ललितपदवाली, मृदु, और मजु सलाप से युक्त कथासुदरी सहृदय जनों को आनन्द प्रदान करनेवाली परिणीत नववधू के समान शोभित होती है।

धर्मकथा, अर्थकथा और कामकथा के भेद से यहाँ तीन प्रकार की कथाये बताई गयी हैं। धर्मकथा चार प्रकार की होती है—अक्खेवणी, विक्खेवणी, सवेगजणणी और निव्वेयजणणी। पहली मन के अनुकूल, दूसरी मन के प्रतिकूल, तीसरी ज्ञान की उत्पत्ति मे कारण और चौथी वैराग्य की उत्पत्ति मे सहायक होती है।

आरभ मे मध्यदेश मे विनीता नाम की नगरी का वर्णन है। यहाँ की दूकानों पर कुकुम, कपूर, एला, लवग, सोना, चाँदी, शख, चामर, घटा तथा विविध प्रकार की औषधि और चदन आदि वस्तुएँ बिकती थीं।

बनारस का बहुत महत्त्व था। जब कहीं सफलता न मिलती तो लोग वाराणसी जाते तथा जूआ खेलकर, चोरी करके, गाँठ काटकर, कूट रचकर और ठगाई करके अर्थ का उपार्जन करते। धन प्राप्ति के निर्दोष उपाय देखिये—

---

१ पउमचरिय के कर्ता विमलसूरि।

२ सस्कृत पद्मचरित के कर्ता दिगम्बर विद्वान् रविषेण।

३ जटिल मुनि ने वरागचरित की रचना की है।

अत्थस्स पुण उवाया दिसिगमण होइ मित्तकरण च ।
णरवरसेवा कुसलत्तण च माणप्पमाणेसु ।।
धातुव्वाओ मत च देवयाराहण च केसिं च ।
सायरतरण तह रोहणम्मि खणण वणिज्ज च ।
णाणाविह च कम्म विज्जासिप्पाइ णेयरूवाइ ।
अत्थस्स साहयाइ अणिंदियाइ च एयाइ ।।

—दिशागमन, दूसरों से मित्रता करना, राजा की सेवा, मान-प्रमाणों मे कुशलता, धातुवाद, मत्र, देवता की आराधना, समुद्र-यात्रा, पहाड (रोहण) खोदना, वाणिज्य तथा अनेक प्रकार के कर्म, विद्या और शिल्प—ये अर्थोत्पत्ति के निर्दोष साधन हैं ।

दक्षिणापथ मे प्रतिठान (पैठन, महाराष्ट्र मे) नामक नगर का वर्णन है जहाँ धन-धान्य और रत्न आदि का बनिज व्यापार होता था ।

मायादित्य मित्रद्रोह का प्रायश्चित्त करने के लिये अग्नि-प्रवेश करना चाहता है, लेकिन ग्राममहत्तर अग्निप्रवेश करने की अपेक्षा गगा मे स्नान कर अनशनपूर्वक मरने को अधिक उत्तम समझते हैं । उनका कहना है कि अग्नि में तपाने से सोना ही शुद्ध हो सकता है, मित्रद्रोह करनेवाला नही, मित्रद्रोह की वचना कापालिकों का व्रत धारण करने से नही होती, उसकी शुद्धि तो गगा मे प्रवेश कर शिवजी के जटाजूट से गिरनेवाली गगा का धवल और उज्वल जल सिर पर चढाने से ही हो सकती है । निम्नलिखित पद्य मे यही भाव प्रकट किया गया है—

एत्थ सुज्झति किर सुवण्ण पि । वइसाणर-मुह-गतउ ।
कउ प्रावु मित्तस्स वचण । कावालिय व्रत धरणे ।
एउ एउ सुज्झेज्जणहि ।।

तथा—

धवल वाहण-धवल देहस्स सिरे भ्रमिति जा विमल-जला
धवलुज्जल सा भडारी । यति गग प्रावेसि तुहु '
मित्र द्रोज्झु तो णाम सुज्झति ।

उत्तरापथ मे तक्षशिला नाम की नगरी का वर्णन है, धर्मचक्र[1] से यह शोभित थी।

सूर्यास्त के पश्चात् सन्ध्या का अभिनव वर्णन देखिये—

डज्झिर तिल घय समिहा - तडतडा सद्दइमत-जाय मडवेसु, गभीरवेय पढण रवइ बभण सालिसु,मणहर अक्खित्तया गेयइ रुद्द-भवणेसु, गल्ल फोडण रवइ धम्मिय मढेसु, घटा डमरुय सद्दइ कावालियघरेसु, तोडहिया पुक्करियइ चच्चर सिवेसु, भगवयगीया गुणणधणीओ आवसहासु, सब्भूयगुण रइयइ थुइ थोत्तइ जिणहरेसु, एयत करुणा णिबद्धत्थइ वयणइ बुद्ध विहारेसु, चलिय महल्लघटा-खडहडओ कोट्टज्जा घरेसु, सिहि-कुक्कुड चडय-रवइ छम्मुहालएसु, मणहर कामिणी गीय मुरय रवइ तुग देवघरेसु ति।

—मत्र जाप के मडपों मे जलते हुए तिल, घी और काष्ठ के जलने का तडतड शब्द, ब्राह्मणों की शालाओं मे जोर-जोर से वेदपाठ का स्वर, रुद्रभवनों में मनोहर और आकर्षक गीतो का स्वर, धार्मिक मठों मे गला फाडकर पढने का शब्द, कापालिक-घरो मे घटा और डमरू का शब्द, चौराहों के शिवस्थानो मे तोडहिआ नामक वाद्य का शब्द, सन्यासियो के मठो (आवसह) मे भगवद्गीता को गुनने का शब्द, जिनमदिरो मे सर्वभूतगुण-रचित स्तुति ओर स्तोत्रों का शब्द, बुद्ध-विहारों मे करुणापूर्ण वचनों का शब्द, कोट्टकिरिया (कोट्टज्जा—दुर्गा) के मदिरों मे बडे-बडे घटों का शब्द, कार्तिकेय मदिरों मे मयूर, कुक्कुट और चटक पक्षियो का शब्द, तथा ऊँचे ऊँचे देवालयों में सुन्दर कामिनियों के गीतो और मृदगो का शब्द सुनाई दे रहा था।

इस प्रसग पर रात्रि के समय एक ओर विदग्ध कामिनीजन का ओर दूसरी ओर ससार से वैराग्य भाव को प्राप्त साधुजनों की प्रवृत्तियो का एक ही श्लोक मे साथ साथ सुन्दर चित्रण किया गया है।

कोई नायिका रात्रि के समय अपने पति से मिलने के लिए

---

१ आवश्यकचूर्णी, पृ० १८० इत्यादि में इसकी कथा आती है।

आतुर हो निकल पडी है, उस समय कोई राजा वेष-परिवर्त्तन कर रात मे घूम रहा है। नायिका को देखकर वह पूछता है—

सुदरि घोरा राई हत्थे गहिय पि दीसए णेय।
साहसु मज्झ फुड चिय सुयणु तुम कत्थ चलिया सि॥

—हे सुदरि! इस घोर रात्रि मे जब कि हाथ की वस्तु भी दिखाई नहीं देती, तू कहाँ जा रही है, मुझे साफ-साफ बता।

नायिका उत्तर देती है—

चलिया मि तत्थ सुदर जत्थ जणो हियय-वल्लहो वसइ।
भणसु य ज भणियव्व अहवा मग्ग मम देसु॥

—हे सुदर! मै वहाँ जा रही हू जहाँ मेरा प्रियतम रहता है। जो कहना हो कहो, नहीं तो मुझे जाने का मार्ग दो।

राजा—सुदरी घोरा चोरा सूरा य भमति रक्खसा रोद्दा।
एय मह खुडइ मणे कह ताण तुम ण बीहेसि॥

—हे सुदरि! बडे भयकर शूरवीर चोर तथा रौद्र राक्षस रात को पर्यटन करते हैं। मेरे मन मे यही हो रहा है कि आखिर तुम्हें भय क्यों नहीं लगता?

नायिका—णयणेसु दसण सुह अगे हरिस गुणा य हिययम्मि।
दइयाणुराय भरिए सुहय! भय कत्थ अल्लियउ॥

—मेरे नयनो मे दर्शन का सुख, मेरे अग मे हर्ष और प्रियतम के अनुराग से पुलकित मेरे हृदय मे गुण विद्यमान है, फिर हे सुभग! भय किस बात का?

इस पर राजा ने कहा, सुन्दरि! तुम डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। इतने मे उधर से उसका पति आता हुआ दीख पडा। उसने अपनी प्रियतमा की रक्षा करने के उपलक्ष मे राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

पाटलिपुत्र मे धण नाम का एक वणिकपुत्र रहता था। वह धनार्जन करने के लिए यानपात्र से रत्नद्वीप के लिए रवाना हुआ। मार्ग मे जहाज फट जाने के कारण वह कुडग नामक द्वीप में

जाकर लगा। इस प्रसग पर कथाकार ने जलधि की ससार से उपमा देते हुए मुनि के मुख से धर्म का उपदेश दिलाया है। आगे चलकर मज्जन वापी मे क्रीडा का सुन्दर वर्णन है। वर्षा ऋतु का चित्रण देखिये—

गज्जति घणा णच्चति बरहिणो विज्जुला वलवलेइ।
रुक्खग्गे य बलाया पहिया य घरेसु वच्चति॥
जुप्पति णगलाइ भज्जति पवाओ वियसए कुडओ।
वासारत्तो पत्तो गामेसु घराइ छज्जति॥

—बादल गडगडा रहे है, मोर नाच रहे है, बिजली चमक रही है, बगुलों की पक्ति वृक्ष पर बैठी है, पथिक घर लौट रहे हैं, हल जोत दिए गये है, पानी की प्याऊ तोड दी गई है, कुटज वृक्ष विकसित हो रहे है, वर्षाकाल आ जाने पर गॉवों के घर सुन्दर दिखाई दे रहे हैं।

प्रशस्त तिथि, करण, नक्षत्र, लग्न और योग मे सितचदन और वस्त्र धारण करके व्यापारी लोग समुद्र यात्रा के लिए यान-पात्र मे सवार होते थे। उस समय पटहो की घोषणा होती, ब्राह्मण पाठ पढते, जय जयकार शब्द होता, समुद्र देवता की पूजा की जाती और अनुकूल पवन होने पर जहाज प्रस्थान करता।

ग्रीष्म ऋतु के सम्बन्ध मे एक उक्ति है—

सो णत्थि कोइ जीवो जयम्मि सयलम्मि जो ण गिम्हेण।
सताविओ जहिच्छ एक्क चिय रासह मोत्तु॥

—समस्त ससार मे ऐसा कौन है जो ग्रीष्म से व्याकुल न होता हो? एक गधा ही ऐसा है जो अपनी इच्छा से सताप को सहन करता है।

यक्ष के मस्तक पर जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा होने का उल्लेख है। नर्मदा के दक्षिण तट पर देयाडई नाम की महा अटवी, तथा उज्जयिनी नगरी का वर्णन है। इन्द्रमह, दिवाली, देवकुलयात्रा और बलदेव आदि उत्सवों और पुण्ड्रेक्षुवन का उल्लेख है।

यहाँ से कुवलयमाला का आख्यान आरभ होता है। नगर की महिलायें अपने घडा मे पानी भर कर ले जाती हुई कुवलय माला के सौंदर्य की चर्चा करती चलती है। अयोध्यावासी कार्पटिक वेषधारी राजकुमार कुवलयचद कुवलयमाला की खोज मे विजया नाम की नगरी मे आया हुआ है। कुवलयमाला का समाचार जानने के लिए वह चट्टों (छात्रों) के किसी मठ मे प्रवेश करता है। इस मठ मे लाड, कन्नड, मालव, कन्नौज, गोल्ल, मरहट्ठ, सोरट्ठ, ढक्क, श्रीकठ और सिधुदेश के छात्र रहते है। यहाँ धनुर्वेद, ढाल, असि, शर, लकडी, डडा, कुत आदि चलाने, तथा लकुटियुद्ध, बाहुयुद्ध, नियुद्ध (मल्लयुद्ध), आलेख्य, गीत, वादित्र, भाण, डोंबिल्लिय (डोंबिका) और सिग्गड (शिगटक)[1] आदि विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। व्याख्यान-मडलियों मे व्याकरण, बुद्धदर्शन, साख्यदर्शन, वैशेषिकदर्शन, मीमासा, न्यायदर्शन, अनेकातवाद तथा लौकायतिकों के दर्शन पर व्याख्यान होते थे। यहाँ के उपाध्याय अत्यत कुशल थे और वे निमित्त, मत्र, योग, अजन, धातुवाद, यक्षिणी-सिद्धि, गारुड, ज्योतिष, स्वप्न, रस, बध, रसायन, छद, निरुक्त, पत्रच्छेद्य (पत्ररचना)[2], इन्द्रजाल, दतकर्म, लेपकर्म, चित्रकर्म, कनककर्म, भूत, तत्रकर्म आदि शास्त्र पढाते थे।

---

१ हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन (८४) में डोंबिका, भाण, प्रस्थान, शिगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और काव्य ये गेय के भेद बताये हैं। अभिनवभारती (१, पृष्ठ १८३) में डोंबिका का निम्नलिखित लक्षण किया है—

छन्नानुरागगर्भाभिरुक्तिभिर्यत्र भूपते ।
आवर्ज्यते मन· सा तु मसृणा डोंबिका मता ॥

षिद्गक का लक्षण देखिये—

सख्या समक्ष भर्त्तुर्यदुद्धत वृत्तमुच्यते ।
मसृण च क्वचिद्धूर्तं चरित षिद्गस्तु य ॥

२ कुट्टिनीमत (श्लोक २३६) और कादबरी (पृ० १२६, काले

छात्रों का वर्णन देखिये—

करघायकुडिलकेसा णिद्दयचलणप्पहारपिहुलगा।
उण्णयभुयसिहराला परपिंडपरूढबहुमसा॥
धम्मत्थकामरहिया बधवधणमित्तवज्जिया दूर।
केइत्थ जोव्वणत्था बालच्चिय पवसिया के वि॥

परजुवइदसणमणा सुहयत्तणरूवगव्विया दूर।
उत्ताणवयणणयणा इट्ठाणुग्घट्ठ मट्ठोरू॥

—अपने उलझे हुए केशों को हाथ से फटकारने वाले, पैरो के निर्दय प्रहार पूर्वक चलने वाले, पृथु शरीर वाले, उन्नत भुज शिखर वाले, दूसरे का भोजन करके पुष्ट मासवाले, धर्म, अर्थ और काम से रहित, बाधव, धन और मित्रों द्वारा दूर से ही वर्जित, कोई युवा थे और कोई बाल्यावस्था मे ही यहाँ चले आये थे, पर युवतियों को देखने के लिये उत्सुक, सुभग होने के कारण रूप से गर्विष्ठ, मुख और नयनो को ऊपर उठाकर ताकने वाले तथा सुन्दर, चिकनी और मसृण जघावाले (छात्र वहाँ रहते थे)।

विद्या, विज्ञान और विनय से रहित इन छात्रो का आपस मे असबद्ध अक्षर प्रलाप[2] सुनकर कुमार को बहुत बुरा लगा।

का सस्करण) में पत्रच्छेद्य का उल्लेख है। काले महोदय के अनुसार भित्ति अथवा भूमि को चित्रित करने की कला को पत्रच्छेद्य कहते हैं। कॉवेल के अनुसार इस कला के द्वारा पत्तों को काटकर उनके सुन्दर डिजाइन बनाये जाते थे, देखिये ई० जी० थॉमस का बुलेटिन स्कूल ऑव ओरिंटिएल स्टडीज़ (जिल्द ६, पृ० ५१५ ७) में लेख।

२ इस वार्तालाप से तत्कालीन भाषा पर प्रकाश पडता है—

अल्लीणो कुमारो। जपिओ पयत्तो। 'रे रे, आरोट्ट (= उल्लठ) भण रे जाव ण पम्हुसइ। जनार्दन, प्रच्छहु कत्थ तुब्भे कल्ल जिमि यल्लया'। तेण भणिय 'साहिउ जे ते तओ तस्स वलक्खपुल्लयह किराडह (किराड = बनिया) तणए जिमियल्लया।' तेण भणिय

इसके बाद छात्रों मे आपस मे कुवलयमाला के सम्बन्ध मे चर्चा होने लगी—

एक छात्र ने कहा—क्या तुम्हें राजकुल का वृत्तात मालूम है ? सब छात्र व्याघ्रस्वामी से पूछने लगे—"हे व्याघ्रस्वामि ! बोलो, राजकुल का क्या समाचार है ?"

व्याघ्रस्वामी—पुरुषद्वेपिणी कुवलयमाला ने (समस्यापूर्ति के लिए) गाथा का एक चरण लटकाया है।

यह सुनकर एक छात्र जल्दी से उठकर कहने लगा—यदि इसमें पाडित्य का प्रश्न है तो कुवलयमाला का मेरे साथ विवाह होना चाहिये।

दूसरे ने पूछा—अरे ! तेरा वह कौन सा पाडित्य है ? (अरे कत्रणु तउ पाण्डित्यउ)।

उसने उत्तर दिया—मैं पडाग वेद का अध्ययन करता हू, त्रिगुण मत्र पढता हू।

दूसरे छात्र ने कहा—अरे! त्रिगुण मत्रों से विवाह नहीं होता। जो ठीक तरह से चरण की पूर्ति कर दे उसके साथ विवाह होगा।

'किं सा विसेस महिला वलक्खइएल्लिय'। तेण भणिय 'अह हा, सा य भडारिय सपूर्णस्वलक्खण गायत्रि (= सावित्री) यद्दसिय'। अण्णेण भणिय 'वण्णि कीदृश तत्र भोजन।' अण्णेण भणिय 'चाई भट्टो, मम भोजन स्पृष्ट, तत्तको ह, न वासुकि'। अण्णेण भणिय 'कत्तु घडति तउ, हच्चय उल्लाव, भोजन स्पृष्ट स्वनाम सिंघसि'। अण्णेण भणिय 'अरे रे बड्डो महामूर्ख, ये पाटलिपुत्रमहानगरवास्तव्ये ते कुत्था समाम्मोक्ति बुज्झति'। अण्णेण भणिय 'अस्मादपि इय मूर्खंतरी'। अण्णेण भणिय 'काइ कज्जु (= कार्यं)।' तेण भणिय 'अनिपुण निपुणा थोक्ति पचुर (= अर्थोक्तिप्रचुर)।' तेण भणिय 'मर काइ मा मुक्त, अम्बोपि विदिग्ध सति।' अण्णेण भणिय 'भट्टो, सत्य त्व विदग्ध, किं पुणु भोजने स्पृष्ट माम कथित।' तेण भणिय 'अरे महामूर्ख, वासुकेर्वंदन-सहस्र कथयति।'

दूसरा छात्र—मै ठीक तरह से गाथा पढूँगा।

अन्य छात्र (व्याघ्रस्वामी से)—अरे व्याघ्रस्वामि! क्या तू गाथा पढता है?

व्याघ्रस्वामी—हॉ, यह है गाथा—

सा तु भवतु सुप्रीता अबुधस्य कुतो बल।
यस्य यस्य यदा भूमि सर्वत्र मधुसूदन॥

यह सुनकर एक दूसरा छात्र गुस्से से कहने लगा—

अरे मूर्ख! स्कन्ध[1] को भी गाथा कहता है? क्या हमसे गाथा नहीं सुनना चाहते हो?

छात्रों ने कहा—भट्टयजुस्वामि! तुम अपनी गाथा सुनाओ।

भट्टयजुस्वामी—लो, पढता हू—

आइ कज्जि मत्त गय गोदावरि ण मुयति।
को तहु देसहु आवतइ को व पराणइ वत्त॥

यह सुनकर छात्रों ने कहा—अरे! हम श्लोक नहीं पूछते, हमे गाथा पढकर सुनाओ।

भट्टयजुस्वामी ने निम्न गाथा सुनाई—

तबोल रइय-राओ अहरो दृष्ट्वा कामिनि-जनस्स।
अम्ह चिय खुभइ मणो दारिद्र-गुरू णिवारेइ॥

यह सुनकर सब छात्र कहने लगे—

अहा! भट्टयजुस्वामी का विदग्ध पाण्डित्य है, उसने बडी विद्वत्तापूर्ण गाथा पढी है, इसके साथ अवश्य ही कुवलयमाला का विवाह होगा।

---

१ यह गाथाछद का ही एक प्रकार है और इसमें ३२ मात्रायें होती हैं। देखिये हेमचन्द्र का छन्दोनुशासन, पृष्ठ २८ ब, पक्ति १४। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण किया है—

स्कधकमिति तत्कथित यत्र चतुष्कलगणाष्टकेनार्धं स्यात्।
तत्तुल्यमग्रिमदल भवति चतुष्षष्टिमात्रकशरीरमिद॥

(३, पृष्ठ १६४ टीका)

यहाँ १८ देशी भाषाओं का उल्लेख है। ये भाषायें गोल्ल, आदि देशो मे बोली जाती थी। गोल्लदेश (गोदावरी के आस पास का प्रदेश) के लोग कृष्णवर्ण, निष्ठुर वचनवाले, बहुत काम भोगी (बहुक-समरभुजए) और निर्लज्ज होते थे, वे लोग 'अड्डे' का प्रयोग करते थे। मगध के वासी पेट निकले हुए (णीहरियपोट्ट), दुर्वर्ण, कद मे छोटे (मडहए) तथा सुरतक्रीडा मे तल्लीन रहते थे, वे 'एगे ले' का प्रयोग करते थे। अतर्वेदि (गङ्गा और यमुना के बीच का प्रदेश) प्रदेश के रहनेवाले कपिल रग के, पिगल नेत्रवाले तथा खान पान और और गपशप मे लगे रहनेवाले होते थे, वे 'कित्तो किम्मो' शब्द का प्रयोग करते थे। कीरदेशवासी ऊँची और मोटी नाकवाले, कनक वर्णवाले, और भारवाही होते थे, वे 'सरि पारि' का प्रयोग करते थे। ढक्कदेश के वासी दाक्षिण्य, दान, पौरुष, विज्ञान और दयारहित होते थे, वे 'एह तेह' का प्रयोग करते थे। सिंधुदेश के लोग ललित, और मृदुभाषी सगीतप्रिय और अपने देश को प्रिय समझते थे, वे 'चउडय' शब्द का प्रयोग करते थे। मरुदेशवासी वक्र, जड, उजड्ड, बहुभोजी, तथा कठिन, पीन और फूले हुए शरीरवाले होते थे, वे 'अप्पा तुप्पा' शब्दो का प्रयोग करते थे। गुर्जरदेशवासी घी और मक्खन खा-खा कर पुष्ट हुए, धर्मपरायण, सन्धि और विग्रह मे निपुण होते थे, वे 'णउ रे भल्लउ'[1] शब्दो का प्रयोग करते थे। लाट देश के वासी स्नान करने के पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों का लेप करते, अपने बाल अच्छी तरह काढते, और उनका शरीर सुशोभित रहता था, वे 'अम्ह काउ तुम्ह' शब्दों का प्रयोग करते थे। मालवा के लोग तनु, श्याम और छोटे शरीरवाले, क्रोधी, मानी और रौद्र होते थे, वे 'भाउय भइणी तुम्हे' शब्दों का प्रयोग करते थे। कर्णाटक के लोग उत्कट दर्पवाले मैथुन प्रिय, रौद्र और पतङ्गवृत्ति वाले होते थे, वे 'अडि पाडि मरे'

---

१ ना रे, भलु आदि का गुजराती में प्रयोग होता है।

शब्दों का प्रयोग करते थे। ताइय (ताजिक) देश के वासी कञ्चुक (कुप्पास) से आवृत शरीरवाले, मास मे रुचि रखने वाले, तथा मदिरा और मदन में तल्लीन रहते थे, वे 'इसि किसि मिसि' शब्दों का प्रयोग करते थे। कोशल के वासी सर्वकला सम्पन्न, मानी, जल्दी क्रोध करनेवाले और कठिन शरीरवाले होते थे, वे 'जल तल ले'[1] शब्दों का प्रयोग करते थे। मरहट्ठ देश के वासी मजबूत, छोटे, और श्यामल अङ्गवाले, सहनशील तथा अभिमान और कलह करनेवाले होते थे, ये 'दिण्णल्ले गहियल्ले'[2] शब्दो का प्रयोग करते थे। आध्रदेशवासी महिला-प्रिय, सग्राम प्रिय, सुन्दर शरीरवाले तथा रौद्र भोजन करनेवाले होते थे, वे 'अटि पुटि रटिं' शब्दों का प्रयोग करते थे।

कुमार कुवलयचद द्वारा कुवलयमाला द्वारा घोषित पाद की पूर्त्ति कर दिये जाने पर कुवलयमाला कुमार के गले मे कुसुमों की माला डाल देती है। तत्पश्चात् शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्त्त मे बडी धूमधाम के साथ दोनों का विवाह हो जाता है। वासगृह मे शय्या सजाई जाती है। कुवलयमाला की सखियाँ उसे छोडकर जाने लगती है। कुवलयमाला उन्हें सम्बोधित करके कहती है—

मा मा मुचसु एत्थ पियसहि एक्कल्लिय वणमइ व्व।

—हे प्रिय सखियों! मुझे वन-मृगी के समान यहाँ अकेली छोडकर मत जाओ।

सखियाँ उत्तर देती है—

इय एक्कियाओ सुइर अम्हे वि होज्जसु।

—हे सखि! हमें भी यह एकान्त प्राप्त करने का सौभाग्य मिले।

कुवलयमाला—रोमचकपिय सिण्ण जरिय मा मुचह पियसहीओ।

---

१ गइतल आदि पूर्वी भाषाओं में।

२ दिला, घेतला आदि मराठी में।

—हे प्रिय सखियो! रोमाच से कम्पित, स्वेदयुक्त और ज्वरपीडित मुझे यहाँ छोडकर मत भागो।

सखियाँ—तुज्झ पइ च्चिय वेज्जो जरय अवणेही एसो।

—तुम्हारा पति ही वैद्य है, वह तुम्हारी ज्वर की पीडा दूर करेगा।

तत्पश्चात् कुवलयचन्द और कुवलयमाला के प्रेमपूर्ण विनोद और उक्ति प्रत्युक्ति आदि का सरस वर्णन है। दोनो पहेलियाँ बूझते है। बिदूमति (जिसमे आदि और अन्तिम अक्षरों को छोडकर बाकी अक्षरो के स्थान पर केवल बिंदु दिये जाते हैं, और इन बिन्दुओ को अक्षरो से भर कर गाथा पूरी की जाती है), अट्ठविडअ (यह बत्तीस कोठो मे व्यस्त समस्त रूप से लिखा जाता है), प्रश्नोत्तर, आततत, गूढोत्तर आदि के द्वारा वे मनोरञ्जन करते रहे। सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, पैशाची मागधी, राक्षसी और मिश्र भाषाओं का उल्लेख भी कवि ने यहाँ किया है। प्रथमाक्षर रचित गाथा का उदाहरण—

दाणदयादक्खिण्णा सोम्मा पयईए सव्वसत्ताण।
हसि व्व सुद्धपक्खा तेण तुम दसणिज्जासि॥

इस गाथा के तीनों चरणो के प्रथम अक्षर लेने से 'दासोह' रूप बनता है। एक पत्र का नमूना देखिये—

'सत्थि। अउज्झापुरवरीओ महारायाहिराय परमेसर-दढवम्मे विजयपुरीए दीहाउय कुमार कुवलयचन्द महिन्द च ससिणेह अवगूहिऊण लिहइ। जहा तुम विरह जलिय जालावली-कलाव-करालिय सरीरस्स णत्थि मे सुह, तेण सिग्घ सिग्घयर अव्वस्स आगतव्व'।

—स्वस्ति। अयोध्यानगरी से महाराजाधिराज परमेश्वर दृढवर्मा विजयपुरी के दीर्घायु कुमार कुवलयचन्द और महेन्द्र को सस्नेह आलिंगन पूर्वक लिखता है कि तुम्हारी विरहाग्नि मे प्रज्वलित इस शरीर को सुख नही, अतएव तुम फौरन ही जरूर-जरूर यहाँ चले आओ।

तत्पश्चात् कुवलयचन्द शुभ वेला मे अयोध्या नगरी को प्रस्थान करता है। शकुनशास्त्र के साथ शिवारुत, काकरुत, श्वानरुत और गिरोलिया (छिपकली) रुत आदि का उल्लेख है। देशों मे लाट देश को सर्वश्रेष्ठ बताकर इस देश के वासियों की वस्त्रभूषा और भाषा को उत्तम बताया है। सिद्धपुरुष का लक्षण देखिए—

जो सव्वलक्खणधरो गभीरो सत्ततेयसपण्णो।
भुनइ देइ जहिच्छ सो सिद्धी भायण पुरिसो॥

—जो सर्वलक्षणों का धारक हो, गम्भीर हो, सत्त्व और तेज से सम्पन्न हो, और जो उसे दे दिया जाये उसे भक्षण कर लेता हो, वह पुरुष सिद्धि का भाजन है।

सिद्धपुरुष को अजन, मन्त्र, तन्त्र, यक्षिणी, जोगिनी, राक्षसी, पिशाची आदि सिद्ध रहते थे। मत्रवादी 'णमो सिद्धाण णमो जोणीपाहुड सिद्धाण इमाण' विद्या का पाठ करते थे। जोणी-पाहुड के सम्बन्ध मे कहा है—

अविचलइ मेरु चूला सुर सरिया अवि वहेज्ज विवरीया।
ण य होज्ज किंचि अलिय ज जोणीपाहुडे रइय॥

—भले ही मेरु का शिखर कपायमान हो जाये और गगा उल्टी बहने लगे, लेकिन जोणीपाहुड मे लिखी हुई बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती।

धातुवादी धातु को जमीन से निकाल कर खार के साथ उसका धमन करते थे। यहाँ अनेक प्रकार की क्रियायें बताई गई है। नरेन्द्र[1] रस (पारा) को बाँधने थे। नरेन्द्रों की नागिनी, भ्रमरी आदि भाषाओं का उल्लेख है।

---

१ रामनारायण रुइया कालेज बबई के सस्कृत के प्रोफेसर घोड ने मुझे बताया कि माघ कवि (७३३ ई०) के शिशुपालवध (२ ८८) में नरेन्द्र शब्द चिकित्सक अथवा विषवैद्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

मूलशुद्धिप्रकरण

मूलशुद्धिप्रकरण का दूसरा नाम स्थानकप्रकरण है[1] जिसके कर्ता प्रद्युम्नसूरि है, ये ईसवी सन् की १०वीं शताब्दी मे हुए हैं। यह ग्रथ पद्यात्मक है, इस पर हेमचन्द्र आचार्य के गुरु देवचन्द्रसूरि ने ११वीं शताब्दी मे टीका रची है। आरभ की गाथाओं मे गुरु के उपदेश और सम्यक्त्वशुद्धि का वर्णन है। टीकाकार ने आर्द्रककुमार, आर्यखपुटाचार्य, आर्य महागिरि, एलकाक्ष, गजाग्रपद पर्वत की उत्पत्ति, भीम-महाभीम, आरामशोभा, शिखरसेन, सुलसा (अपभ्रश भाषा मे), श्रीवर, इन्द्रदत्त, पृथ्वीसार कीर्त्तिदेव, जिनदास, कार्तिकश्रेष्ठि, रगायणमल्ल, जिनदेव, कुलपुत्रक, देवानन्दा, और धन्य आदि कथानको का वर्णन किया है। प्रथम स्थानक में ग्रन्थकर्ता ने जिनबिम्ब का प्रतिपादन किया है। पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल, घृत आदि द्वारा जिनप्रतिमा के पूजन का विधान है।

कथाकोषप्रकरण (कहाणयकोस)

कथाकोषप्रकरण सुप्रसिद्ध श्वेताबर आचाय जिनेश्वरसूरि की रचना है जिसे उन्होंने वि० स० ११०८ (सन् १०५२) मे लिखकर समाप्त किया था। सुरसुन्दरीचरिय के कर्त्ता धनेश्वर, नवागी टीकाकार अभयदेवसूरि और महावीरचरिय के कर्त्ता गुणचंद्र गणि आदि अनेक धुरधर जैन विद्वानों ने युगप्रधान जिनेश्वरसूरि का बडे आदर के साथ स्मरण किया है। जिनेश्वरसूरि ने दूर-दूर तक भ्रमण किया था और विशेषकर गुजरात, मालवा और राजस्थान इनकी प्रवृत्तियों के केन्द्र थे। इन्होंने और भी अनेक प्राकृत और सस्कृत के ग्रथों की रचना की है जिनमें हरिभद्रकृत अष्टक पर वृत्ति, पचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र और

१ सिंघी जैन ग्रन्थमाला में पडित अमृतलाल भोजक द्वारा सपादित होकर यह प्रकाशित हो रहा है। इसके कुछ पृष्ठ मुनि जिन विजय जी की कृपा से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

निर्वाणलीलावतीकथा आदि मुख्य है। कहाणयकोस मे ३० गाथाये है और इनके ऊपर प्राकृत मे टीका है जिसमे ३६ मुख्य और ४–५ अवातर कथाये है। ये कथाये प्राय प्राचीन जैन ग्रन्थो से ली गई है जिन्हें लेखक ने अपनी भाषा मे निबद्ध किया है। कुछ कथाये स्वय जिनेश्वरसूरि की लिखी हुई मालूम होती है। जिनपूजा, साधुदान, जैनधर्म मे उत्साह आदि का प्रतिपादन करने के लिये ही इन कथाओ की रचना की गई है। इन कथाओ मे तत्कालीन समाज, आचार विचार, राजनीति आदि का सरस वर्णन मिलता है। कथाओ की भाषा सरल और बोधगम्य है, समासपदावली, अनावश्यक शब्दाडबर और अलकारो का प्रयोग यहाँ नहीं है। कही अपभ्रश के भी पद्य है जिनमे चउप्पदिका (चौपाई) का उल्लेख है। शुकमिथुन, नागदत्त, जिनदत्त, सूरसेन, श्रीमाली और रोरनारी के कथानकों में जिनपूजा का महत्त्व बताया है। नागदत्त के कथानक मे गारुडशास्त्र के श्लोकों का उद्धरण देकर सर्प से डसे हुए आदमी को जीवित करने का उल्लेख है। सर्प का विष उतारने के लिये मस्तक को ताडित करना, बाईं ओर के नथुने मे चार अगुल की डोरी फिराना और नाभि मे राख लगाकर उसे उँगली से रगडना आदि प्रयोग किये जाते थे। स्त्रियाँ पति के मरने पर अग्नि मे जलकर सती हो जाती थी। जिनदत्त के कथानक में धनुर्वेद का उल्लेख है। यहाँ आलीढ, प्रत्यालीढ, सिंहासन, मडलावर्त आदि प्रयोगों का निर्देश है। सूरसेन के कथानक मे आधी रात के समय श्मशान मे अपने मास को काटकर अथवा कात्यायनी देवी के समक्ष अपने मास की आहुति देकर देव की आराधना से पुत्रोत्पत्ति होने का उल्लेख है। आयुर्वेद के अनुसार पुत्रलाभ की विधि का निर्देश किया गया है। सिंहकुमार का कथानक कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। यहाँ गधर्वकला का प्रतिपादन करते हुए तत्रीसमुत्थ, वेणुसमुत्थ और मनुजसमुत्थ नामक नादों का वर्णन है। नाद

का उत्थान कैसे होता है ? स्वर भेद कैसे होते है ? और ग्राम, मूर्च्छना आदि रागभेद कितने प्रकार के होते है ? आदि विषयो का प्रतिपादन है। फिर भरतशास्त्र मे उल्लिखित ६४ हस्तक और ४ भ्रूभङ्गों के साथ तारा, कपोल, नाना, अधर, पयोधर, चलन आदि भङ्गों के अभिनय का निर्देश है। इस कथानक की एक अवातर कथा देखिये—

किसी स्त्री का पति परदेश गया हुआ था। वह अपने पीहर मे रहने लगी थी। एक दिन अपने भवन के ऊपर की मजिल मे बैठी हुई वह अपने केश सॅवार रही थी कि इतने मे एक राजकुमार उस रास्ते से होकर गुजरा। दोनो की दृष्टि एक हुई। सुदरी को देखकर राजकुमार ने एक सुभापित पढा—

अणुरूवगुण अणुरूवजोव्वण माणुस न जस्सत्थि।
किं तेण जियतेण पि मानि नवर मओ एसो॥

—जिस स्त्री के अनुरूप गुण और अनुरूप यौवनवाला पुरुष नही है, उसके जीने से क्या लाभ ? उसे तो मृतक ही समझना चाहिये।

स्त्री ने उत्तर दिया—

परिभुजिउ न याणइ लच्छि पत्त पि पुण्णपरिहीणो।
विक्कमरसा हु पुरिसा भुजति परेसु लच्छीओ॥

—पुण्यहीन पुरुष लक्ष्मी का उपभोग करना नहीं जानता। साहसी पुरुष ही पराई लक्ष्मी का उपभोग कर सकते है।

राजकुमार सुन्दरी का अभिप्राय समझ गया। एक बार वह रात्रि के समय गवाक्ष मे से चढकर उसके भवन में पहुँचा, और पीछे से आकर उसने उस सुन्दरी की ऑखे मीच ली। सुन्दरी ने कहा—

मम हियय हरिऊण गओसि रे किं न जाणिओ त सि।
सच्च अच्छिनिमीलणमिसेण अधारय कुणसि॥
ता बाहुलयापास दलामि कठम्मि अज्ज निब्भत।
सुमरसु य इट्ठदेव पयडसु पुरिसत्तण अहवा॥

—तू क्या नही जानता कि तू मेरे हृदय को चुराकर ले गया था, और अब मेरी आँखे मीचने के बहाने तू सचमुच अँधेरा कर रहा है ? आज मै अपने बाहुपाश को तेरे कण्ठ मे डाल रही हूँ । तू अपने इष्टदेव का स्मरण कर, या फिर अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन कर ।

इस प्रकार दोनों मे प्रेमपूर्ण वार्तालाप होता रहा । कुमार रात भर वहाँ रहा और सुबह होने के पहले ही अपने स्थान को लौट गया । सुबह होने पर दासी दातौन पानी लेकर अपनी मालकिन के कमरे मे आई, लेकिन मालकिन गहरी नीद मे सोई पडी थी । दासी ने सोचा कि जिस स्त्री का पति परदेश गया है, उसका इतनी देर तक सोना अच्छा नही । वह चुपचाप उसके पास बैठ गई । कुछ समय बाद उसके जागने पर दासी ने पूछा—

"स्वामिनि ! आज इतनी देर तक आप क्यों सोती रहीं ।"

"पति के वियोग मे सारी रात नीद नही आई । सबेरा होने पर अभी-अभी आँख लगी थी ।"

"स्वामिनि ! आपके ओठों मे यह क्या हो गया है ?"

"ठढ से फट गये है ।"

"स्वामिनि ! आपकी आँखों का काजल क्यों फैल गया है ?"

"पति के वियोग मे मैं रात भर रोती रही, मैंने आँखें मल ली है ।"

"तुम्हारे शरीर पर ये नखक्षत कैसे है ?"

"पति के वियोग मे मैंने अपने आपका गाढ आलिंगन किया है ।"

"तो फिर कल से मै तेरे पास ही सोऊँगी और हम एक दूसरे का आलिगन करके सोयेगे ।"

"छि छि ! पतिव्रता स्त्री के लिये यह अनुचित है ।"

"स्वामिनि ! आज तुम्हारा केशों का जूड़ा क्यों शिथिल दिखाई दे रहा है ?"

"बहन ! तू बडी चालाक मालूम होती है, तू कैसे-कैसे प्रश्न पूछ रही है ? पगली ! पति के अभाव मे शय्या तप्त बालू के समान प्रतीत हो रही थी, इसलिये सारी रात इधर उधर करवट लेते हुए बीती, जिससे मेरे केशों का जूडा शिथिल हो गया है। क्या इस प्रकार के प्रश्न पूछ कर तू मेरे श्वशुरकुल के नाश की इच्छा करती है ?"

"छि छि स्वामिनि ! ऐसा मत समझो कि इससे तुम्हारे श्वसुरकुल का नाश होगा, इससे तो उसका उत्कर्ष ही होगा।"

शालिभद्र की कथा जैन साहित्य मे सुप्रसिद्ध है। एक बार की बात है, किसी दूर देश से बहुमूल्य कबलो (रयणकबल) के व्यापारी राजगृह मे आये। व्यापारियो ने अपने कबल राजा श्रेणिक को दिखाये। लेकिन कबलों का मूल्य बहुत अधिक था, इसलिये राजा ने उन्हें नहीं खरीदा। रानी चेलना ने कहा, कम से कम एक कबल तो मेरे लिए ले दो, लेकिन श्रेणिक ने मना कर दिया। उसी नगर मे शालिभद्र की विधवा माता भद्रा रहती थी। व्यापारियों ने उसे अपने कबल दिखाये और भद्रा ने उनके सब कबल खरीद लिये। इधर कबल न मिलने के कारण रानी चेलना रूठ गई। यह देखकर राजा ने उन व्यापारियो को फिर बुलाया। लेकिन उन्होंने कहा कि उन सब कबलों को भद्रा ने खरीद लिया है। इस पर राजा ने अपने एक कर्मचारी को भद्रा के घर भेजकर अपनी रानी के लिये एक कबल मगवाया। भद्रा ने उत्तर मे कहलवाया कि कबल देने मे तो कोई बात नहीं, लेकिन मैंने उन्हें फाडकर अपनी बहुओं के पॉव पोंछने के लिये पायदान बनवा लिये हैं। राजा यह जानकर बडा प्रसन्न हुआ कि उसके राज्य में इतने बडे बडे सेठ साहुकार रहते हैं। एक दिन भद्रा ने राजा श्रेणिक और उसकी रानी चेलना को अपने घर आने का निमत्रण दिया। राजा के स्वागत के लिये उसने राजमहल के

सिंहद्वार से अपने घर तक के राजमार्ग को सजाने की व्यवस्था की। पहले उसने बल्लियाँ खड़ी कीं, उन पर बाँस बिछाये, बाँसो पर खप्पचे डालीं और उन्हें सुतलियो से कसकर बाँध दिया। उन पर खस की टट्टियाँ बिछाई गईं, दोनो ओर द्रविड-देश के वस्त्रों के चन्दोवे बाँधे गये। हारावलियाँ लटका कर कचुलियाँ बनाई गईं, जालियों मे वैडूर्य लटकाये गये, सोने के झूमके बाँधे गये, पुष्पगृह बनाया गया, और बीच बीच मे तोरण लटकाये गये। ज़मीन पर सुगंधित जल का छिड़काव किया गया, जगह जगह धूपदान रक्खे गये, और सर्वत्र पहरेदार नियुक्त कर दिये गये। विलासिनिया मगलाचार गाने लगीं, गीत-वादित्रों की ध्वनि सुनाई पडने लगी और नाटक दिखाये जाने लगे।

भद्रा की कोठी मे प्रवेश करते हुए राजा ने दोनों तरफ बनी हुई घुडसाल और हस्तिशाला देखी। भवन मे प्रवेश करने पर पहली मंजिल मे बहुमूल्य वस्तुओ का भडार देखा। दूसरी मजिल पर दास दासी भोजन पान की सामग्री जुटाने मे लगे थे। तीसरी मजिल पर रसोइये रसोई की तैयारी कर रहे थे—कोई सुपारी काट रहा था और कोई पान का बीडा बना कर उसमे केसर, कस्तूरी आदि रख रहा था। चौथी मजिल पर सोने-बैठने और भोजन करने की शालाये थीं, और पास के कोठों मे अनेक प्रकार का सामान भरा पडा था। पाचवी मजिल पर एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा था, जहाँ स्नान करने के लिये एक पुष्करिणी बनी थी। श्रेणिक और चेलना ने इस पुष्करिणी मे जलक्रीडा की। फिर चैत्यपूजा के पश्चात् नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यञ्जनों से उनका सत्कार किया गया। उसके बाद चिलमची (पडिग्गह—पतद्ग्रह) मे उनके हाथ धुलवाये गये, दात साफ करने के लिये दात कुरेदनी दी गई और हाथ पोछने के लिये सुगन्धित तौलिये उपस्थित किये गये। इस समय शालिभद्र भी वहाँ आ पहुँचा था। उसे देखते ही राजा ने उसे अपने भुजा

पाश मे भर कर अपनी गोद मे बैठा लिया। फिर भद्रा ने राजा को बहुमूल्य हाथी, घोडे आदि की भेट देकर बिदा किया। अन्त मे शालिभद्र ने अपनी बधुओं के साथ महावीर के पास पहुँच कर श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली।

साधुदान का फल प्राप्त करनेवालो मे शालिभद्र के सिवाय, कृतपुण्य, आर्या चन्दना, मूलदेव आदि की भी कथाएँ कही गई है। कृतपुण्य और मूलदेव की कथाओ के प्रसग मे वेश्याओं का वर्णन है। वेश्याओ की मातायेवाइया (हिन्दी मे बाई) कही जाती थीं। मूलदेव के कथानक से मालूम होता है कि धनिक लोग गडेरियो को काटे (सूला) से खाते थे। सुन्दरीकथानक से पता चलता है कि मछुए, शिकारी आदि निम्न जाति के लोग जैनधर्म के अनुयायी अब नही रह गये थे, श्रेष्ठी, सार्थवाह, आदि मध्यम और उच्च श्रेणी के लोग ही प्राय जैनधर्म का पालन करते थे। मनोरथकथानक मे श्रमणोपासकों मे परस्पर दानसबन्धी चर्चा का उल्लेख है। हरिणकथानक मे द्वारका नगरी के विनाश की कथा है। सुभद्राकथानक मे बताया है कि सागरदत्त द्वारा जैनधर्म स्वीकार कर लेने के बाद ही सुभद्रा के माता-पिता ने अपनी कन्या का विवाह उसके साथ किया। यहाँ सासू बहू तथा जैन और बौद्ध भिक्षुओ की पारस्परिक कलह का आभास मिलता है। मनोरमाकथानक मे श्रावस्ती का राजा किसी नगर के व्यापारी की पत्नी को अपनी रानी बनाना चाहता है। वह सफल हो जाता है, लेकिन अन्त मे देवताओं द्वारा मनोरमा के शील की रक्षा की जाती है। श्रेणिककथानक मे राजा श्रेणिक को जैन शासन का परम उद्धारक बताया गया है। दत्तकथानक से पता लगता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर साधुओं मे काफी मनो-मालिन्य पैदा हो गया था।[1] दिगम्बर मतानुयायी किसी श्वेतावर

१ वादिदेवसूरि आदि के प्रबधों में भी इस प्रकार के आख्यान मिलते हैं। सिद्धराज जयसिंह की सभा में इस बात को लेकर वादिदेव-सूरि और भट्टारक कुमुदचन्द्र में शास्त्रार्थ हुआ था।

भिक्षु को लोक मे लज्जित करने की चेष्टा करते है, लेकिन भिक्षु के बुद्धिकौशल से उल्टे उन्हें ही हास्यारपद होना पड़ता है। जयदेवकथानक मे जैन और बौद्ध साधुओ के वाद विवाद की कथा आती है। जयगुप्त नाम के बौद्ध भिक्षु ने एक पत्र लिखकर राजा के सिंहद्वार पर लगा दिया। श्वेताम्बर साधु सुचन्द्रसूरि ने उसे उठाकर फाड दिया। तत्पश्चात् राजसभा मे दोनो मे शास्त्रार्थ हुआ। राजा बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसने जैन साधुओ को कारागृह मे डाल दिया और जैन उपासकों की सब सम्पत्ति छीन ली। कौशिक वणिक्कथानक में सोमड नामक ब्राह्मण (जिसे मजाक मे डोड्ड कहा गया है) जैन साधुओं का अवर्णवाद करता है जिससे वह देवता-जनित कष्ट का भागी होता है। कमलकथानक मे त्रिदडी साधुओ के भक्त कमल नामक वणिक् की भी यही दशा होती है। धनदेवकथानक मे विष्णुदत्त ब्राह्मण द्वारा अपने छात्रों से जैन साधुओं को धूप मे खडे कर के कष्ट देने का उल्लेख है। डोड्ड की भाँति यहाँ वणिको के लिये किराट शब्द का निर्देश है। धवलकथानक से पता चलता है कि जब जैन साधु विहार-चर्या से थक गये और वर्ष समाप्त होने पर भी अन्यत्र विहार करना उन्हें रुचिकर न हुआ तो उन्हें वसति देनेवाले श्रावकों का मन भी खट्टा हो गया। ऐसी हालत मे साधु यदि कभी इधर-उधर विहार करके फिर से उसी वसति मे ठहने की इच्छा करते तो श्रावक उन्हें वास स्थान देने मे सकोच करते थे। ऐसे समय साधुओं ने गृहस्थों को चैत्यालय निर्माण करने के लिये प्रेरित किया और इस प्रकार चैत्यो के निर्माण का कार्य शुरू हो गया। साधु लोग प्राय कठस्थ सूत्रपाठ द्वारा ही उपदेश देते थे, अभीतक सूत्र पुस्तकबद्ध नही हुए थे (न अज्जवि पुत्थगाणि होंति त्ति)। प्रद्युम्नराजकथानक मे भैरवाचार्य और उसकी तपस्या का उल्लेख है। मुनिचन्द्रसाधुकथानक मे गुरु-विरोधी साधु मुनिचन्द्र की कथा है जो अपने गुरु के उपदेश को शास्त्रविरोधी बताकर भक्तजनों को श्रद्धा से विमुख करता है। सुन्दरीदत्तकथानक मे जोणीपाहुड का निर्देश है। यहाँ

गान्धर्व, नाट्य, अश्वशिक्षा आदि कलाओं के साथ धातुवाद और रसवाद की शिक्षा का भी उल्लेख किया गया है। इन दोनो को अर्थोपार्जन का साधन बताया है।[1]

---

१ जिनेश्वरसूरि के कथाकोषप्रकरण के सिवाय और भी कथाकोष प्राकृत में लिखे गये हैं। उत्तराध्ययन की टीका (सन् १०७३ में समाप्त) के कर्ता नेमिचन्द्रसूरि और वृत्तिकार आम्रदेवसूरि के आख्यानमणिकोश और गुणचन्द्र गणि के कहारयणकोस (सन् ११०१ में समाप्त) का विवेचन आगे चलकर किया गया है। इसके अतिरिक्त प्राकृत और सस्कृत के अनेक कथारत्नकोशों की रचना हुई—

१—धम्मकहाणयकोस प्राकृत कथाओं का कोश है। प्राकृत में ही इस पर वृत्ति है। मूल लेखक और वृत्तिकार का नाम अज्ञात है (जैन ग्रथावलि, पृ० २६७)।

२—कथानककोश को धम्मकहाणयकोस भी कहा गया है। इसमें १४० गाथायें हैं। इसके कर्ता का नाम विनयचन्द्र है, इनका समय सवत् ११६६ (ईसवी सन् ११०९) है। इस ग्रथ पर सस्कृत व्याख्या भी है। इसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भडार में है।

३—कथावलि प्राकृत कथाओं का एक विशाल ग्रथ है जिसे भद्रेश्वर ने लिखा है। भद्रेश्वर का समय ईसवी सन् की ११वीं शताब्दी माना जाता है। इस ग्रन्थ में त्रिषष्टिशलाकापुरुषों का जीवनचरित सग्रहीत है। इसके सिवाय कालकाचार्य से लगाकर हरिभद्रसूरि तक के प्रमुख आचार्यों का जीवनचरित यहाँ वर्णित है। इसकी हस्तलिखित प्रति पाटण के भडार में है।

४—जिनेश्वर ने भी २३९ गाथाओं में कथाकोश की रचना की। इसकी वृत्ति प्राकृत में है।

इसके अतिरिक्त शुभशील का कथाकोश (भद्रेश्वरबाहुबलिवृत्ति), श्रुतसगर का कथाकोश (व्रतकथाकोश), सोमचन्द्र का कथामहोदधि, उत्तमर्षि का कथारत्नाकरोद्धार, हेमविजयगणि का कथारत्नाकर, राजशेखर-मलधारि का कथासग्रह (अथवा कथाकोश) आदि कितने ही कथाकोश सस्कृत मे भी लिखे गये।

निर्वाणलीलावतीकथा

निर्वाणलीलावतीकथा जिनेश्वरसूरि की दूसरी कृति है। यह कथाग्रथ आशापल्ली मे सवत् १०८२ और १०९५ (सन् १०२५ और १०३८) के मध्य मे प्राकृत पद्य मे लिखा गया था। पदलालित्य, श्लेष और अलकारो से यह विभूपित है। यह अनुपलब्ध है। इस ग्रथ का सस्कृत श्लोकबद्ध भापातर जैसलमेर के भडार मे मिला है। इसमे अनेक सक्षिप्त कथाओं का सग्रह है। ये कथाये जीवों के जन्म जन्मान्तरो से सम्बन्ध रखती है। अन्त मे सिहाराज और रानी लीलावती किसी आचार्य के उपदेश से प्रभावित होकर जैन दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

णाणपंचमीकहा (ज्ञानपंचमीकथा)

ज्ञानपचमीकथा जैन महाराष्ट्री प्राकृत का एक सुन्दर कथाग्रथ है जिसके कर्ता महेश्वरसूरि हैं।[1] इनका समय ईसवी सन् १०५२ से पूर्व ही माना जाता है। महेश्वरसूरि एक प्रतिभाशाली कवि थे जो सस्कृत और प्राकृत के पाण्डत थे। इनकी कथा की वर्णनशैली सरल और भावयुक्त है। उनका कथन है कि अल्प बुद्धिवाले लोग सस्कृत कविता को नहीं समझते, इसलिए सर्वसुलभ प्राकृत-काव्य की रचना की जाती है। गूढार्थ और देशी शब्दों से रहित तथा सुललित पदों से ग्रथित और रम्य प्राकृत काव्य किसके मन को आनन्द प्रदान नहीं करता ?[2] ग्रन्थ की भाषा पर अर्धमागधी और कही अपभ्रश का प्रभाव है, गाथाछद का

---

१ डाक्टर अमृतलाल गोपाणी द्वारा सिघी जैन ग्रथमाला में सन् १९४९ में प्रकाशित।

२ सक्कयकव्वस्सत्थ जेण न जाणति मदबुद्धीया।
सव्वाण वि सुहबोह तेण इम पाइय रइय॥
गूढत्थदेसिरहिय सुललियवन्नेहिं गथिय रम्म।
पाइयकव्व लोए कस्स न हियय सुहावेइ॥

प्रयोग किया गया गया है। द्वीप, नगरी आदि का वर्णन आलकारिक और श्लेषात्मक भाषा मे है। जहाँ तहाँ विविध सुभाषित और सदुक्तियों के प्रयोग दिखाई देते हैं।

इस कृति मे दस कथाये हैं जो लगभग २,००० गाथाओं में गुफित है। पहली कथा जयसेणकहा और अन्तिम कथा भविस्सयत्त कहा है, ये दोनों अन्य कथाओं की अपेक्षा लबी है।[1] प्रत्येक कथा मे ज्ञानपचमी व्रत का माहात्म्य बताया गया है। ज्ञानप्राप्ति के एकमात्र साधन पुस्तकों की रक्षा को प्राचीन काल मे अत्यन्त महत्त्व दिया जाता था। पुस्तक के पन्नो को शत्रु की भाँति खूब मजबूती से बाँधने का विधान है। हस्तलिखित प्रतियो मे पाये जानेवाला निम्नलिखित श्लोक इस कथन का साक्षी है—

अग्ने रक्षेज्जलाद्रक्षेन्मूषकेभ्यो विशेषत ।
कष्टेन लिखित शास्त्र यत्नेन परिपालयेत् ॥
उदकानलचौरेभ्यो मूषकेभ्यो हुताशनात् ।
कष्टेन लिखित शास्त्र यत्नेन परिपालयेत् ॥

—कष्टपूर्वक लिखे हुए शास्त्रों की बडे यत्न से रक्षा करनी चाहिए विशेषकर अग्नि, जल, चूहे और चोरो से उसे बचाना चाहिये।

इसलिए जैन आचार्यों ने कार्तिक शुक्ल पचमी को ज्ञानपचमी घोषित कर इस शुभ दिवस पर शास्त्रों के पूजन, अर्चन, समार्जन, लेखन और लिखापन आदि का विधान किया है। सिद्धराज, कुमारपाल आदि राजा तथा वस्तुपाल और तेजपाल आदि मत्रियों ने इस प्रकार के ज्ञानभडारों की स्थापना कर पुण्यार्जन किया

१ इस आख्यान के आधार पर धनपाल ने अपभ्रश में भविसत्तकहा नाम के एक सुन्दर प्रबधकाव्य की रचना की है। इस कथानक का सस्कृत रूपान्तर मेघविजयगणि ने 'भविष्यदत्तचरित्र' नाम से किया है।

था। पाटण, जैसलमेर, खभात, लिबडी, जयपुर, ईडर आदि स्थानो मे ये जैन भडार स्थापित किए गये थे।

जयसेणकहा मे स्त्रियों के प्रति सहानुभूतिसूचक सुभाषित कहे गये है—

वरि हलिओ वि हु भत्ता अनन्नभज्जो गुणेहि रहिओ वि।
मा सगुणो बहुभज्जो जइराया चक्कवट्टी वि॥

—अनेक पत्नीवाले सर्वगुणसम्पन्न चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा गुणविहीन एक पत्नीवाला किसान कहीं श्रेष्ठ है।

वरि गब्भम्मि विलीणा वरि जाया कत पुत्त परिहीणा।
मा ससवत्ता महिला हविज्ज जम्मे वि जम्मे वि॥

—पति और पुत्ररहित स्त्री का गर्भ मे नष्ट हो जाना अच्छा है, लेकिन जन्म जन्म मे सौतो का होना अच्छा नही।

सकरहरिबभाण गउरी लच्छी जहेव बभाणी।
तह जइ पइणो इट्ठा तो महिला इयरहा छेली॥

—जैसे गौरी शकर को, लक्ष्मी विष्णु को, ब्राह्मणी ब्रह्मा को इष्ट है, वैसे ही यदि कोई पत्नी अपने पति को इष्ट है तो ही वह महिला है, नही तो उसे बकरी समझना चाहिए।

धन्ना ता महिलाओ जाण पुरिसेसु कित्तिमो नेहो।
पाएण जओ पुरिसा महुयरसरिसा सहावेण॥

—जिन स्त्रियो का पुरुषों के प्रति कृत्रिम स्नेह है उन्हे भी अपने को धन्य समझना चाहिये, क्योंकि पुरुषों का स्वभाव प्राय भौंरों जैसा होता है।

उप्पण्णाए सोगो वड्ढतीए य वड्ढए चिता।
परिणीयाए उदन्तो जुनइपिया दुक्खिओ निच्च॥

—उसके पैदा होने पर शोक होता है, बडी होने पर चिता बढती है, विवाह कर देने पर उसे कुछ न कुछ देते रहना पडता है, इस प्रकार युवती का पिता सदा दुखी रहता है।

अनेक कहावते भी यहाँ कही गई है—

मरइ गुडेण चिय तस्स विस दिज्जए कि व।

—जो गुड देने से मर सक्ता है उसे विष देने की क्या आवश्यकता है ?

न हु पहि पक्का बोरी छुट्टइ लोयाण जा खज्जा।

—यदि रास्ते मे पके हुए बेर दिखाई दे तो उन्हें कौन छोड देगा ?

हत्थठिय ककणय को भण जोएह आरिसए ?

—हाथ कगन को आरसी क्या ?

जिसे सम्पत्ति का गव नही छूता, उसके सम्बन्ध मे कहा है–

विहवेण जो न भुल्लइ जो न वियार करेइ तारुन्ने।
सो देवाण वि पुज्जो किमग पुण मणुयलोयस्स ॥

—जो सपत्ति पाकर भी अपने आपको नहीं भूलता और जिसे जवानी मे विकार नही होता, वह मनुष्यों द्वारा ही नहीं, देवताओं द्वारा भी पूजनीय है।

कामक्रीडा के सबव मे एक उक्ति है—

केली हासुम्मीसो पचपयारेहि सजुओ रम्मो।
सो खलु कामी भणिओ अन्नहो पुण रासहो कामो ॥

—केलि, हास्य आदि पाँच प्रकार से जो सुरत क्रीडा की जाती है उसे कामक्रीडा कहते है, बाकी तो गर्दभ-क्रीडा समझनी चाहिये।

दरिद्रता की विडबना देखिये—

गोट्ठी वि सुट्ठ मिट्ठा दालिद्दविडबियाण लोएहि।
वज्जिज्जइ दूरेण सुसलिलचडालकूव व ॥

—जिसकी बात बहुत मधुर हो लेकिन जो दरिद्रता की विडबना से ग्रस्त है, ऐसे पुरुष का लोग दूर से ही त्याग करते है, जैसे मिष्ट जलवाला चाडाल का कुआँ भी दूर से ही वर्जनीय होता है।

दु खावस्था का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

दुकलत्त दालिद्द वाही तह कन्नयाण बाहुल्ल।
पच्चक्ख नरयमिण सत्थुवइट्ठ च वि परोक्ख ॥

—खोटी स्त्री, दारिद्रय, व्याधि और कन्याओं की बहुलता—इन्हें प्रत्यक्ष नरक ही समझना चाहिये, शास्त्रों का नरक तो केवल परोक्ष नरक है।

आशा के सबध में कहा गया है—

आसा रक्खइ जीय सुट्ठ वि दुहियाण एत्थ ससारे।
होइ निरासाण जओ तक्खणमित्तेण मरण पि॥

—इस ससार मे एक आशा ही दुखी जीवों के जीवन का साधन है। निराश हुए जीव तत्क्षण मरण को प्राप्त होते है।

कायर पुरुषों के सबध मे उक्ति है—

कागा कापुरिसा वि य इत्थीओ तह य गामकुक्कडया।
एगट्ठाणे वि ठिया मरण पावेति अइबहुहा॥[1]

—कौए, कापुरुष, स्त्रियाँ और गाँव के मुर्गे ये एक स्थान पर रहते हुए ही मृत्यु को प्राप्त होते है।

आख्यानमणिकोश (अक्खाणमणिकोस)

आख्यानमणिकोश उत्तराध्ययनसूत्र पर सुखबोधा नाम की टीका (रचनाकाल विक्रम सवत् ११२९) के रचयिता नेमिचन्दसूरि की महत्त्वपूर्ण रचना है। प्राकृत कथाओं का यह कोष है। आम्रदेवसूरि (ईसवी सन् ११३४) ने इस पर टीका लिखी है।[2] इसमे ४१ अधिकार है, मूल और टीका दोनो प्राकृत पद्य मे है, टीकाकार ने कहीं गद्य का भी उपयोग किया है। कुछ आख्यान अपभ्रंश मे हैं, बीच बीच मे सस्कृत के पद्य मिलते है। टीकाकार ने प्राकृत और सस्कृत के अनेक श्लोक प्रमाणरूप से उद्धृत किये है जिससे लेखक के पाडित्य

---

१ मिलाइये—स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते काका कापुरुषा नरा (हितोपदेश)।

२ यह ग्रन्थ मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सपादित होकर प्राकृत जैन सोसायटी द्वारा प्रकाशित हो रहा है। प्रोफेसर दलसुख मालवणिया की कृपा से मुझे इसके कुछ मुद्रित फर्में देखने को मिले हैं।

का पता लगता है। श्लेष आदि अलकारों का यथेष्ट प्रयोग हुआ है।

चतुर्विधबुद्धिवर्णन नामक अधिकार मे भरत, नैमित्तिक और अभय के आख्यानो का वर्णन है। दानस्वरूपवर्णन-अधिकार मे धन, कृतपुण्य, द्रोण आदि तथा शालिभद्र, चक्रचर, चन्दना, मूलदेव और नागश्री ब्राह्मणी के आख्यान है। चन्दना का आख्यान महावीरचरिय से टीकाकार ने उद्धृत किया है। शीलमाहात्म्यवर्णन-अधिकार मे दवदन्ती (दमयन्ती), सीता, रोहिणी और सुभद्रा, तपोमाहात्म्यवर्णन अधिकार में वीरचरित, विसल्ला, शौर्य और रुक्मिणीमधु, तथा भावनास्वरूपवर्णन-अधिकार मे द्रमक, भरत ओर इलापुत्र के आख्यान है। भरत का आख्यान अपभ्रश मे है। सम्यक्त्ववर्णनाधिकार मे सुलसा तथा जिनबिबदर्शनफलाधिकार मे सेज्जभव और आर्द्रककुमार के आख्यान है। जिनपूजाफलवर्णनअधिकार मे दीपकशिखा, नवपुष्पक और पद्मोत्तर, तथा जिनवदनफलाधिकार मे बकुल और सेदुवक, तथा साधुवन्दनफलवर्णनअधिकार मे हरि की कथायें है। सामायिकफलवर्णनअधिकार मे जैनधर्म के प्रभावक सम्प्रति राजा तथा जिनागमश्रवणफलाधिकार मे चिलातीपुत्र और रोहिणेय नामक चोरों के आख्यान है। नमस्कारपरावर्त्तनफल अधिकार मे गो, पड्डुक (भैंसा), फणी (सर्प), सोमप्रभ और सुदर्शना के आख्यान है। सोमप्रभ का आख्यान अपभ्रश मे है। सुदर्शना-आख्यान मे स्त्रियों को अयश का निवास आदि विशेषणों से उल्लिखित किया है। इन्द्रमहोत्सव का उल्लेख है। स्वाध्याय-अधिकार मे यव, तथा नियमविधानफलाधिकार में दामन्नक, ब्राह्मणी, चडचूडा, गिरिडुम्ब और राजहस के आख्यान है। ब्राह्मणी आख्यान मे रात्रिभोजन त्याग का उपदेश देते हुए रात्रि की परिभाषा दी है—

दिवस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे।
नक्त तद् विजानीहि न भक्त निशि भोजने॥

—दिन के आठवे भाग मे जब सूर्य मन्द पड जाये तो उसे रात्रि समझना चाहिये। रात्रि मे भोजन करना वर्जित है।

चण्डचूडाख्यान गद्य मे है। राजहस-आख्यान मे करडि जक्ख का उल्लेख है। राजहस आख्यान मे उज्जैनी नगरी के महाकाल मदिर का उल्लेख है। मिथ्यादुष्कृतदानफलाधिकार मे क्षपक, चडरुद्र, प्रसन्नचन्द्र, तथा विनयफलवर्णनअधिकार मे चित्रप्रिय और वनवासि यक्ष के आख्यान है। प्रवचनोन्नति अधिकार मे विष्णुकुमार, वैरस्वामी, सिद्धसेन, मल्लवादी समित और आर्यखपुट नामक आख्यान दिये है। सिद्धसेन आख्यान मे अवन्ती के कुडगेसरदेव के मठ का उल्लेख है। आर्यखपुट-आख्यान मे बड्डकर यक्ष और चामुण्डा का नाम आता है। जिनधर्माराधनोपदेश अधिकार मे योत्कारमित्र, नरजन्मरक्षाधिकार मे वणिक्पुत्रत्रय, तथा उत्तमजनससर्गिगुणवर्णन अधिकार मे प्रभाकर, वरशुक और कबल सबल के आख्यान है। प्रभाकर आख्यान में धन-अर्जन को मुख्य बताया है—

बुभुक्षितैर्व्याकरण न भुज्यते पिपासितै काव्यरसो न पीयते।
न च्छन्दसा केनचिदुद्धृत कुल हिरण्यमेवार्जय निष्फला कला ॥[1]

—भूखे लोगों के द्वारा व्याकरण का भक्षण नहीं किया जाता, प्यासों के द्वारा काव्यरस का पान नहीं किया जाता, छन्द से कुल का उद्धार नहीं किया जाता, अतएव हिरण्य का ही उपार्जन करो, क्योंकि उसके बिना समस्त कलायें निष्फल हैं।

इन्द्रियवशार्तिप्राणिदुखवर्णन के अधिकार मे उपकोशा के घर आये हुये तपस्वी, भद्र, नृपसुत, नारद और सुकुमालिका के आख्यान है। व्यसनशतजनकयुवतीअविश्वासवर्णन अधिकार

---

१ यह श्लोक क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा (काव्यमाला प्रथम गुच्छक (पृ० १५०) में माघ के नाम से दिया है लेकिन माघ के शिशुपालवध में यह नहीं मिलता।

मे नूपुर पंडित, दत्तकदुहिता और भावट्टिका के आख्यान हैं। भावट्टिका-आख्यान परियो की कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का है। इसके कुछ भाग की तुलना अरेबियन नाइट्स से की जा सकती है। इस आख्यान के अन्तर्गत विक्रमादित्य के आख्यान मे भैरवानन्द का वर्णन है। उसने प्रेतवन मे पहुँचकर मन्त्रमण्डल लिखा। यहाँ पर डाकिनियों का वर्णन किया गया है। रागाग्निअनर्थपरपरा वर्णन के अधिकार मे वणिकपत्नी, नाविकनन्दा, चण्डभद्र, चित्रसम्भूत, मायादित्य, लोभनन्दी और नकुलवाणिज्य नाम के आख्यान है। जीवदयागुणवर्णन के अधिकार मे श्राद्धसुत, गुणमती और मेघकुमार, तथा धर्मप्रियत्वादिगुणवर्णन-अधिकार मे कामदेव और सागरचन्द्र के आख्यान हैं। धर्ममर्मज्ञजन-प्रबोधगुणवर्णन अधिकार मे पादावलब, रत्नत्रिकोटी ओर मासक्रय के आख्यान है। भावशल्यअनालोचनदोष अधिकार मे मातृसुत, मरुक ऋषिदत्त और मत्स्यमल्ल की कथायें वर्णित है।

कुछ सुभाषित देखिये—

थेव थेव धम्म करेह जइ ता बहु न सकेह।
पेच्छह महानईओ बिंदूहि समुद्दभूयाओ॥

—यदि बहुत धर्म नहीं कर सकते हो तो थोडा थोडा करो। महानदियों को देखो, बूँद-बूँद से समुद्र बन जाता है।

उप्पयउ गयणमग्गे रुजउ कसिणत्तण पयासेउ।
तह वि हु गोब्बरईडो न पायए भमरचरियाइ॥

—गोबर का कीडा चाहे आकाश में उडे, चाहे गुजार करे, चाहे वह अपने कृष्णत्व को प्रकाशित करे, लेकिन वह कभी भी भ्रमर के चरित्र को प्राप्त नहीं कर सकता।

चीनाशुक और पट्टाशुक की भाँति जद्दर[1] भी एक प्रकार का वस्त्र था। दद्दर (जीना, दादर–गुजराती मे), तेल्लटिल्ल (?),

---

१ जरी के बेल-बूटों वाला वस्त्र। शालिभद्रसूरि (१२वीं शताब्दी) ने बाहुबलिरास में जादर का प्रयोग किया है। वैसे चादर शब्द फारसी का कहा जाता है।

भरवस (भरोसा), ढयर (पिशाच) आदि अनेक देशी शब्दों का यहाँ प्रयोग हुआ है। बीच बीच मे कहावते भी मिल जाती है। जैसे हत्थत्थककणाण कि कज्ज दप्पणेणऽहवा (हाथ कगन को आरसी क्या ?), किं छालीए मुहे कुभड माइ ? (क्या बकरी के मुह मे कुम्हडा समा सकता है ?) आदि।

कहारयणकोस (कथारत्नकोश)

कथारत्नकोश के कर्ता गुणचन्द्रगणि देवभद्रसूरि के नाम से भी प्रख्यात हैं। ये नवागवृत्तिकार अभयदेवसूरि के शिष्य प्रसन्नचन्द्रसूरि के सेवक और सुमतिवाचक के शिष्य थे। कथारत्नकोश (सन् ११०१ मे लिखित) गुणचन्द्रगणि की महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमे अनेक लौकिक कथाओ का सग्रह है।[1] इसके अतिरिक्त इन्होने पासनाहचरिय, महावीरचरिय, अनतनाथ स्तोत्र, वीतरागस्तव, प्रमाणप्रकाश आदि ग्रथो की रचना की है। कथारत्नकोश मे ५० कथानक है जो गद्य और पद्य मे अलकारप्रधान प्राकृत भाषा मे लिखे गये है। सस्कृत और अपभ्रश का भी उपयोग किया है। ये कथानक अपूर्व है जो अन्यत्र प्राय कम ही देखने मे आते है। यहाँ उपवन, ऋतु, रात्रि, युद्ध, श्मशान आदि के काव्यमय भाषा मे सुन्दर चित्रण है। प्रसगवश अतिथिसत्कार, छींक का विचार, राजलक्षण, सामुद्रिक, रत्नपरीक्षा आदि का विवेचन किया गया है। गरुडोपपात नामक जैन सूत्र का यहाँ उल्लेख है जो आजकल विलुप्त हो गया है। सिद्धात के रहस्य को गोपनीय कहा है। कच्चे घडे मे रक्खे हुए जल से इसकी उपमा दी है और बताया गया है कि योग्यायोग्य का विचार करके ही धर्म का रहस्य प्रकाशित करना चाहिये—

आमे घडे निहित्त जहा जल त घड विणासेइ।
इय सिद्धतरहस्स अप्पाहार विणासेइ॥

१ आत्मानद जैन ग्रथमाला में मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, सन् १९४४ में प्रकाशित।

जोग्गाजोग्गमबुज्झिय धम्मरहस्स कहेइ जो मूढो।
सघस्स पवयणस्स य धम्मस्स य पच्चणीओ सो॥

नागदत्त के कथानक मे कलिंजर पर्वत के शिखर पर स्थित कुलदेवता की पूजा का उल्लेख है। देवता की मूर्त्ति काष्ठनिमित थी। कुल परपरा से इसकी पूजा चली आती थी। नागदत्त ने कुश के आसन पर बैठकर पॉच दिन तक निराहार रह कर इसकी उपासना आरभ की। कुबेरयक्ष नामक कुलदेव की भी लोग उपासना किया करते थे। गगवसुमति की कथा मे उड्डियायण देश (स्वात) का उल्लेख है। सर्प के विष का नाश करने के लिये आठ नागकुलो की उपासना की जाती थी। कृष्ण चतुर्दशी के दिन श्मशान मे अकेले बैठ मत्र का १००८ बार जाप करने से यह विद्या सिद्ध होती थी। चूडामणिशास्त्र का उल्लेख है। इसकी सामर्थ्य से तीनो कालो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था। शखकथानक मे जोगानद नाम के नैमित्तिक का उल्लेख है जो वसतपुर से काचीपुर के लिये प्रस्थान कर रहा था। राजा को उसने बताया कि आगामी अष्टमी के दिन सूर्य का सर्वग्रास ग्रहण होगा जिसका अर्थ था कि राजा की मृत्यु हो जायेगी। आगे चलकर पर्वत यात्रा का उल्लेख है। लोग चर्चरी, प्रगीत आदि क्रीडा करते हुए पर्वत-यात्रा के लिये प्रस्थान करते थे। कलिंगदेश मे कालसेन नाम का परिव्राजक रहता था। लिंगलक्ष नाम के यक्ष को उसने अपने वश में कर रक्खा था और त्रिलोक पैशाचिक विद्या का साधन किया था। रुद्रसूरिकथा मे पाटलिपुत्र के श्रमणसघ द्वारा राजगृह मे स्थित रुद्रसूरि नामक आचार्य को एक आदेश पत्र भेजे जाने का उल्लेख है। इस पत्र मे षड्दर्शन का खडन करनेवाले विदुर नामक विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये रुद्रसूरि को पाटलिपुत्र में बुलाया गया था। पत्र पढकर रुद्रसूरि ने उसे शिरोधार्य किया और तत्काल ही वे पाटलिपुत्र के लिये रवाना हो गये। भवदेवकथानक में

पताका, कमल आदि राज लक्षणो का प्रतिपादन है। ब्राह्मण लोग सामुद्रिक शास्त्र के पडित होते थे। धनसाधु के कथानक मे वइरागर (वज्राकर) नाम के देश का उल्लेख है। दिवाकर नाम का कोई जोगी खन्यविद्या मे विचक्षण था। अपनी विद्या के बल से वह जमीन मे गडे हुए धन का पता लगा लेता था। इसके लिये मडल बना कर, देवता की पूजा कर मत्र का स्मरण किया जाता था। श्रीपर्वत पर ध्यान मे लीन रहनेवाले एक महामुनि से उसने इस विद्या का उपदेश ग्रहण किया था। कात्यायनी देवी को सर्वसपत्तिदायिनी माना गया है। मणिशास्त्र के अनुसार रत्नों के लक्षण प्रतिपादित किये गयेहै। सामुद्रशास्त्र से भी श्लोक उद्धृत किये है। अचलकथा मे हाथियों मे फैलनेवाली महाव्याधि का उल्लेख है। ऐसे प्रसगों पर विशेष देवताओ की पूजा अर्चना की जाती, लक्ष होम किये जाते, नवग्रहों की पूजा की जाती और पुरोहित लोग शान्तिकर्म मे लीन रहते। देवनृपकथानक मे पचमगलश्रुतस्कध का उल्लेख मिलता है। विजयकथानक मे चैत्य पर ध्वजारोपण विधि बताई गई है। कीडों से नही खाये हुए सुन्दर पर्व वाले बास को मगवाकर, प्रतिमा को स्नान कराकर, चारों दिशाओं मे भूशुद्धि कर, दिशा के देवताओं का आह्वान कर बास का विलेपन किया जाता, फिर कुसुम आदि का आरोपण किया जाता, धूप की गध दी जाती और उस पर श्वेत ध्वजा आरोपित की जाती। जोगधर नाम के सिद्ध के पास अदृश्य अजन था जिसे लगाकर वह स्वेच्छापूर्वक विहार किया करता था। कामरूप (आसाम) मे आकृष्टि, दृष्टिमोहन, वशीकरण, और उच्चाटन मे प्रवीण तथा योगशास्त्र मे कुशल बल नाम का सिद्ध रहता था। वह गहन गिरि, श्मशान, आश्रम आदि मे परिभ्रमण करता फिरता था। चक्रधर नाम के धातुसिद्ध का उल्लेख है। यहाँ वेद के अपौरुषेयत्ववाद का निरसन किया गया है। पद्मश्रेष्ठिकथानक में आवश्यकचूर्णि का उल्लेख है। वैदिक लोग यज्ञ मे बकरो

का वध करने से, सौगत करुणावृत्ति से, शैवमतानुयायी दीक्षा से, स्नातक स्नान से और कपिल मतानुयायी तत्वज्ञान से मुक्ति स्वीकार करते थे जैन शासन मे रत्नत्रय से मुक्ति स्वीकार की गई है। शिव ब्रह्मा, कृष्ण, बोद्ध और जैनमत क अनुयायी अपने अपने देवों का वर्णन करते हैं। जिनबिंबप्रतिष्ठा की विधि बताई गई है। इस विधि मे अनेक फल और पकवान वगैरह जिनेन्द्र की प्रतिमा के सामने रक्खे जाते और घृत-गुड का दीपक जलाया जाता। अर्थहीन पुरुष की दशा का मार्मिक चित्रण देखिये—

परिगलइ मई मइलिज्जई जसो नाऽदरंति सयणा वि।
आलस्स च पयट्टइ विप्फुरइ मणम्मि रणरणओ॥
उच्छरइ अणुच्छाहो पसरइ सव्वगिओ महादाहो।
किं कि व न होइ दुह अत्थविहीणस्स पुरिसस्स॥[1]

—धन के अभाव मे मति भ्रष्ट हो जाती है, यश मलिन हो जाता है, स्वजन भी आदर नहीं करते, आलस्य आने लगता है, मन उद्विग्न हो जाता है, काम मे उत्साह नहीं रहता, समस्त अग मे महा दाह उत्पन्न हो जाता है। अर्थविहीन पुरुष को कौन सा दुख नहीं होता?

वाममार्ग मे निपुण जोगघर का वर्णन है। मृतकसाधन मत्र उसे सिद्ध था। लोग वटवासिनी भगवती की पूजा उपासना किया करते थे। अनशन आदि से उसे प्रसन्न किया जाता था। उसे कटपूतना, मृतक को चाहनेवाली और डाइन

---

१ तुलना कीजिये मृच्छकटिक (१ ३७) के निम्न श्लोक से जिसमें निर्धनता को छठा महापातक बताया है—

सग नैव हि कश्चिदस्य कुरुते सभाषते नादरा।
त्सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते॥
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया।
मन्ये निर्धनता प्रकाममपर षष्ठ महापातकम्॥

आदि नामों से भी उल्लिखित किया जाता था। आगे चलकर जिनपूजा की विधि बताई गयी है। आदर सत्कार करने के लिये तांबूल देने का रिवाज था। श्रीगुप्तकथानक में कुशलसिद्धि नामक मंत्रवादी का उल्लेख है। राजा के समक्ष उपस्थित होकर उसने परविद्या का छेदकारी मंत्र पढ़कर चारों दिशाओं में चावल फेंके। सुजयराजर्षिकथानक में नाना देशों में भ्रमण करनेवाले, विविध भाषाओं के पंडित, तथा मंत्र तंत्र में निपुण-ज्ञानकरंड नाम के कापालिक मुनि का उल्लेख है। राजसभा में उपस्थित होकर उसने राजपुत्र को आशीर्वाद दिया कि पातालकन्या के तुम नाथ बनो। विंध्यगिरि के पास यक्षभवन में पहुँच कर उसने पास के गोकुल में से चार बकरे मँगवाये, उन्हें स्नान कराया, उन पर चंदन के छींटे दिये, तत्पश्चात् मंत्र-सिद्धि के लिये उनका वध किया। चंडिका को प्रसन्न करने के लिये पुरुषों को स्नान करा और उन्हें श्वेत वस्त्र पहना उनकी बलि दी जाती थी। नावों द्वारा परदेश की यात्रा करते समय जब जलवासी तिमिंगल आदि दुष्ट जन्तु जल में से ऊपर उछल-कर आते तो उन्हें भगाने के लिये वाद्य वगैरह बजाये जाते और अग्नि को प्रज्वलित किया जाता था, फिर भी मगर-मच्छ नाव को उलट ही दिया करते थे।[1] समुद्र तट पर इलायची, लौंग, नारियल, केला, कटहल आदि फलों के पाये जाने का उल्लेख है। पन्नतिनामक महाविद्या देवता का उल्लेख है। विमल-उपाख्यान में आवश्यकनिर्युक्ति से प्रमाण उद्धृत किया है। नारायणकथानक में यज्ञ में पशुमेध का उल्लेख है। हस्ति-तापसों का वर्णन है। अमरदत्त कथानक में सुगतशास्त्र का उल्लेख है। यहाँ सुश्रूषा का माहात्म्य बताया गया है। दशबल-

---

१ ईसवी सन् के पूर्व दूसरी शताब्दी में भरहुत कला में एक नाव का चित्रण मिलता है जिस पर तिमिंगल ने धावा बोल दिया है। चित्र में नाव से नीचे गिरते हुए यात्रियों को वह निगल रहा है। देखिये डॉक्टर मोतीचन्द, सार्थवाह, आकृति ९।

मार्ग (बौद्धमार्ग) का उल्लेख है। धर्मदेवकथानक मे सिंहलदेश और केरल देश का उल्लेख है। विजयदेव कथानक मे रत्न के व्यापारियों का वर्णन है। सुदत्तकथानक मे गृहकलह का बडा स्वाभाविक चित्रण किया गया है—

कोई बहू कुँए से जल भर कर ला रही थी, उसका घडा फूट गया। यह देखकर उसकी सास ने गुस्से मे उसे एक तमाचा जड दिया। बहू की लडकी ने जब यह देखा तो उसने अपनी दादी के गले मे से नौ लडियों का हार तोडकर गिरा दिया। बहू की ननद अपनी मा का यह अपमान देखकर मूसल हाथ मे उठाकर अपनी भतीजी को मारने दौडी जिससे उसका सिर फट गया और उसमे से लहू बहने लगा। यह देखकर बहू भी अपनी ननद को मूसल से मारने लगी। इस प्रकार प्रतिदिन किसी न किसी बात पर सारे घर मे कलह मचा रहता और घर का मालिक लज्जावश किसी से कुछ नहीं कह सकता था।

एक दूसरी कथा सुनिये—

किसी ब्राह्मण के चार पुत्र थे। जब ब्राह्मण की जीविका का कोई उपाय न रहा तो उसने अपने पुत्रों को बुलाकर सब बात कही। यह सुनकर चारों पुत्र धन कमाने चल दिये। पहला पुत्र अपने चाचा के यहाँ गया। पूछने पर उसने कहा कि पिता जी ने अपना हिस्सा माँगने के लिये मुझे आपके पास भेजा है। यह सुनकर चाचा अपने भतीजे को भला बुरा कहने लगा, और गुस्से मे आकर चाचा ने उसका सिर फोड दिया। मुकदमा राजकुल मे पहुँचा। चाचा ने किसी तरह ५०० द्रम्म देकर अपना पिंड छुडाया। लडके ने यह रुपया अपने पिता को ले जाकर दे दिया। दूसरा पुत्र त्रिपुड आदि लगाकर किसी योगाचार्य के पास गया और रौब मे आकर उसे डाटने फटकारने लगा। योगाचार्य डर कर उसके पैरो मे गिर पडा और उसने उसे बहुत सा सोना दान मे दिया। तीसरे पुत्र ने धातुविद्या सीख ली और अपनी विद्या से वह लोगों को ठगने लगा। उसने किसी

बनिये से दोस्ती कर ली। अपनी विद्या के बल से वह एक माशा सोने का दो माशा सोना बना देता था। एक बार बनिये ने लोभ मे आकर उसे बहुत सा सोना दे दिया, और वह लेकर चपत हो गया। चौथा पुत्र प्रचुर रिद्धिधारी किसी लिंगी का शिष्य बन गया और उसकी सेवा करने लगा। एक दिन आधी रात के समय वह उसका सब धन लेकर चपत हुआ।

राजपुत्रकथानक मे महामल्लों के युद्ध का वर्णन है। भवदेव-कथानक मे भवदेव नाम के वणिक्पुत्र की कथा है। एक बार कुछ महाजन राजा के दर्शन करने गये। राजा ने कुशलपूर्वक प्रश्न किया—नगरी मे चोरों का उपद्रव तो नही है? उच्छृङ्खल दुष्ट लोग तो परेशान नही करते? लॉच लेनेवाले तो आप लोगो को कष्ट नही देते? एक महाजन ने उत्तर दिया—देव! आपके प्रताप से सब कुशल है, केवल चोरो का उपद्रव बढ रहा है। सुजस श्रेष्ठि और उसके पुत्रों के कथानक मे सुजस श्रेष्ठि के पॉच पुत्रों की कथा दी है। कोई खराब काम करने पर पिता यदि पुत्रों को डाटता डपटता तो उनकी मॉ को बहुत बुरा लगता। यह देखकर पिता ने पुत्रा को बिलकुल कुछ कहना ही बद कर दिया। परिणाम यह हुआ कि वे पॉचो बुरी सगत मे पड़कर बिगड़ गये और अपनी मॉ की भी अवहेलना करने लगे। धनपाल और बालचन्द्र के कथानक मे मुकुदमदिर का उल्लेख है। वृद्ध विलासिनियॉ अनाथ बालिकाओ को फँसा कर उनसे वेश्यावृत्ति कराने के लिये उन्हें गीत, नृत्य आदि की शिक्षा देती थीं। भरतनृपकथानक मे श्रीपर्वत का उल्लेख है, यहॉ एक गुटिकासिद्ध पुरुष रहा करता था। यहॉ पाराशर की कथा दी है। प्रयाग और पुष्कर तीर्थों का उल्लेख है।

दूसरे अधिकार मे श्रावको के १२ व्रतो की कथायें है। व्यापारी ऊँटों पर माल लाद कर ले जाया करते थे। प्रश्नोत्तर गोष्ठी देखिये—

प्रश्न—(१) पाप पृच्छति? विरतौ को धातु? कीदृश कृतकपक्षी? उत्कठयन्ति के वा विलसन्तो विरहिणीहृदयम्?

उत्तर—मलयमरुत (मल, यम्, अरुत, मलयमरुत)

पाप को कौन पूछता है ? (मल), विरति मे कौन सी धातु है ? (यम्), कृतक पक्षी कैसा होता है ? (अरुत अर्थात् शब्द रहित), विरहिणी के हृदय को कौन उत्कठित करता है ? (मलय का वायु)।

प्रश्न—(२) के मणहर पि पुरिस लहुइति ? विणासई य को जीव ? उल्लसियपहाजालो को वा नदेइ घूयकुल ?

उत्तर—दोषाकर (दोषा, गर दोषाकर)

—सुन्दर पुरुप को भी कौन छोटा बना देता है ? (दोष), जीव का नाश कौन करता है (गर=विप), उल्लुओ को कौन आनन्द देता है ? (दोपाकर=चन्द्रमा)।

प्रश्न—(३) किं सखा पडुसुया ? नमणे सद्दे ण य को ? कह बभो। सबोहिज्जइ ? को भूसुओ य ? को पवयणपहाणो ?

उत्तर—पचनमोकारो (पच, नमो, हे क !, आरो, पचनमोकारो)

—पाडुपुत्रों की कितनी सख्या है ? (पच=पॉच), नमन मे कौन सा शब्द है (नमो अव्यय), ब्रह्म को कैसे सबोधन किया जाता है ? (हे क !=हे ब्रह्मन्) भू का पुत्र कौन है ? (आर=मगलग्रह), प्रवचन मे सब से मुख्य क्या है ? (पचनमो कार नामक मत्र)।

मेघश्रेष्ठिकथानक मे १५ कर्मादानो का वर्णन है। प्रभाचन्द्र-कथानक मे अपभ्रश मे युद्ध का वर्णन है।

कालिकायरियकहाणय (कालिकाचार्यकथानक)

कालिकाचार्य के सबध मे प्राकृत और सस्कृत मे अनेक कथानक लिखे गये है। प्राकृतकथानक लेखकों मे देवचन्द्रसूरि, मलधारी हेमचन्द्र, भद्रेश्वरसूरि, धर्मघोषसूरि, भावदेवसूरि,

धर्मप्रभसूरि आदि आचार्यों के नाम मुख्य है।[1] कालिकाचार्य की कथा निशीथचूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य और आवश्यकचूर्णि आदि प्राचीन ग्रन्थो मे मिलती है। देवेन्द्रसूरि ने स्थानकप्रकरण वृत्ति अथवा मूलशुद्धिटीका के अन्तर्गत कालिकाचार्य की कथा विक्रम सवत् ११४६ (सन् १०८९) मे लिखी है। यह कथा कालिकाचार्य पर लिखी गई अन्य कथाओ की अपेक्षा बडी और प्राचीन है तथा अन्य ग्रथकारो ने इसे आदर्शरूप मे स्वीकार किया है। देवचन्द्र कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के गुरु थे। राजा सिद्धराज जयसिंह के राज्यकाल मे उन्होंने प्राकृत गद्य पद्य मे शातिनाथचरित की रचना की थी।

देवचन्द्रसूरि की कालिकाचार्य कथा गद्य और पद्य दोनों मे लिखी गई है, कही अपभ्रश के पद्य भी है। धरावास नगर मे वइरसिंह नामक राजा राज्य करता था, उसकी रानी सुरसुदरी से कालक उत्पन्न हुए। बडे होने पर एक बार वे अश्वक्रीडा के लिये गये हुए थे। उन्होने गुणाकरसूरि मुनि का उपदेश सुना और माता पिता की अनुज्ञा से श्रमणधर्म मे दीक्षा ले ली। कालक्रम से गीतार्थ हो जाने पर उन्हे आचार्य पद पर स्थापित किया गया, और वे साधुसघ के साथ विहार करते हुए उज्जैनी आये। उस समय वहाँ कुछ साध्वियाँ भी आई हुई थी, उनमे कालक की छोटी भगिनी सरस्वती भी थी। उज्जैनी के राजा गर्दभिल्ल

१ यह जेड० डी० एम० जी० (जर्मन प्राच्य विद्यासमिति की पत्रिका) के ३४वें खण्ड में २४७वें पृष्ठ, ३५वें खड में ६७५ तथा ३७वें खड में ४९३ पृष्ठ से छपा है। कालिकाचार्य कथासग्रह अबालाल प्रेमचन्द शाह द्वारा सपादित सन् १९४९ में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है। इसमें प्राकृत और सस्कृत की कालिकाचार्य के ऊपर भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा लिखी हुई ३० कथाओं का सग्रह है। तथा देखिये उमाकान्त शाह, सुवर्णभूमि मे कालकाचार्य, डबल्यू नॉर्मन ब्राउन, स्टोरी ऑव कालक, मुनि कल्याणविजय, प्रभावकचरित की प्रस्तावना, द्विवेदी अभिनन्दनग्रथ, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, वि० स० १९९०।

की उस पर दृष्टि पड गई और उसने सरस्वती को अपने अत पुर मे मॅगवा लिया। कालकाचार्य ने राजा गर्दभिल्ल को बहुत समझाया कि इस तरह का दुष्कृत्य उसके लिये शोभनीय नहीं है, लेकिन उसने एक न सुनी। उसके बाद कालकाचार्य ने चतुर्विध सघ को राजा को समझाने के लिये भेजा, लेकिन उसका भी कोई असर न हुआ। यह देखकर कालकाचार्य को बहुत क्रोध आया, और उन्होंने प्रतिज्ञा की—

जे सघपच्चणीया पवयणउवघायगा नरा जे य।
सजमउवघायपरा, तदुविक्खाकारिणो जे य॥
तेसिं वच्चामि गइ, जइ एय गद्दभिल्लरायाण।
उम्मूलेमि ण सहसा, रज्जाओ भट्ठमज्जाय॥

कायव्व च एय, जओ भणियमागमे—

तम्हा सइ सामत्थे, आणाभट्ठम्मि नो खलु उवेहा।
अणुकूले अरएहि य, अणुसट्ठी होइ दायव्वा॥
साहूण चेइयाण य, पडिणीय तह अवण्णवाइ च।
जिणपवयणस्स अहिय, सव्वत्थामेण वारेइ॥

—मै भ्रष्ट मर्यादावाले इस गर्दभिल्ल राजा को इसके राज्य से भ्रष्ट न कर दूॅ तो मै सघ के शत्रु, प्रवचन के घातक, सयम के विनाशक और उसकी उपेक्षा करनेवालो की गति को प्राप्त होऊॅ।

और ऐसा करना भी चाहिये, जैसा कि आगम मे कहा है—

सामर्थ्य होने पर आज्ञाभ्रष्ट लोगो की उपेक्षा नही करनी चाहिये, प्रतिकूलगामी लोगो को शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। साधुओं और चैत्यो और खास करके जिनप्रवचन के शत्रुओ तथा अवर्णवादियो को पूरी शक्ति लगाकर रोकना चाहिये।

कालिकाचार्य शककूल (पारस की खाडी=पर्शिया) पहुॅचे और वहॉ से ७५ शाहो को लेकर जहाज द्वारा सौराष्ट्रदेश मे उतरे। वर्षाऋतु बीतने पर लाटदेश के राजाओं को साथ लेकर उन्होंने उज्जैनी पर चढाई कर दी। उधर से गर्दभिल्ल भी अपनी सेना लेकर लडाई के मैदान मे आ गया। राजा गर्दभिल्ल ने

गर्दभी विद्या सिद्ध की थी। इस गर्दभी का शब्द सुन कर शत्रुसेना के सैनिकों के मुँह से रक्त बहने लगता और वे तुरत ही भूमि पर गिर पड़ते। कालकाचार्य के कहने पर शाहो की सेना ने गर्दभी का मुँह खुलने से पहले ही उसे अपने बाणों की बौछार से भर दिया जिससे वह गर्दभी आहत होकर वहाँ से भाग गई। राजा गर्दभिल्ल गिरफ्तार कर लिया गया। आचार्य कालक ने उसे बहुत धिक्कारा और उसे देश से निर्वासित कर दिया। शककूल से आने के कारण ये शाह लोग शक कहलाये और इनसे शकवंश की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर मालव के राजा विक्रमादित्य ने शको का उन्मूलन कर अपना राज्य स्थापित किया। विक्रम संवत् इसी समय से आरंभ हुआ। उधर आलोचना और प्रतिक्रमणपूर्वक कालिकाचार्य ने अपनी भगिनी को पुन संयम मे दीक्षित किया।

कथा के दूसरे भाग मे कालिकाचार्य बलमित्र और भानुमित्र नाम के अपने भानजों के आग्रह पर भरुयकच्छ (भडौच) की ओर प्रस्थान करते है। वहाँ उन्होंने बलभानु को दीक्षित किया। राजा का पुरोहित यह देखकर उनसे अप्रसन्न हुआ और उसके कपटजाल के कारण कालिकाचार्य को बिना पर्यूषण किये ही भडौंच से चले आना पडा।

तीसरे भाग मे आचार्य प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन, महाराष्ट्र मे) की ओर गमन करते है। वहाँ सातवाहन नाम का परम श्रावक राजा राज्य करता था। कालिकाचार्य का आगमन सुनकर उसने आचार्य की वंदना की, आचार्य ने उसे धर्मलाभ दिया। महाराष्ट्र मे भाद्रपद सुदी पंचमी के दिन इन्द्र महोत्सव मनाया जाता था, इसलिये राजा सातवाहन ने भाद्रपद सुदी पंचमी की बजाय भाद्रपद सुदी छठ को पर्यूषण मनाये जाने के लिये कालिकाचार्य से अनुरोध किया। लेकिन आचार्य ने उत्तर मे कहा—"मेरु का शिखर भले ही चलायमान हो जाये, सूर्य भले ही किसी और दिशा से उगने लगे, लेकिन पंचमी की रात्रि को

उल्लङ्घन करके पर्यूषण कभी नही मनाया जा सकता।" इस पर राजा ने भाद्रपद सुदी चतुर्थी का सुझाव दिया, जिसे कालिकाचार्य ने स्वीकार कर लिया। इस समय से महाराष्ट्र मे श्रमणपूजालय नाम का उत्सव मनाया जाने लगा।

चौथी कथा मे कालिकाचार्य द्वारा दुर्विनीत शिष्यों को प्रबोध दिये जाने का वर्णन है। बहुत समझाने पर भी जब आचार्य के शिष्यो ने दुर्विनीत भाव का त्याग नही किया तो वे उन्हे सोते हुए छोड़कर अपने प्रशिष्य सागरचन्द के पास चले गये। कुछ समय पश्चात् उनके दुर्विनीत शि ्य भी वहाँ आये और उन्होने अपने कृत्यो के लिये पश्चात्ताप किया।

पाँचवें भाग मे इन्द्र के अनुरोध पर कालिकचार्य ने निगोद में रहनेवाले जीवो का विस्तार से व्याख्यान किया। अन्त मे कालिकाचार्य सलेखना धारण कर स्वर्ग मे गये।

नम्मयासुदरीकहा (नर्मदासुंदरीकथा)

नर्मदासुदरीकथा एक धर्मप्रधान कथा है जिसकी महेन्द्रसूरि ने सवत् ११८७ (ईसवी सन् ११३०) मे अपने शिष्यों के अनुरोध पर रचना की।[1] यह कथा गद्य पद्यमय है जिसमे पद्य की प्रधानता है। इसमे महासती नर्मदासुदरी के चरित का वर्णन किया गया है, जो अनेक कष्ट आने पर भी शीलव्रत के पालन मे दृढ रही। नर्मदासुन्दरी सहदेव की भार्या सुन्दरी की कन्या थी। महेश्वरदत्त के जैनधर्म स्वीकार कर लेने पर महेश्वरदत्त का विवाह नर्मदासुन्दरी के साथ हो गया। विवाह का उत्सव बडी

१ यह ग्रथ सिघी जैन ग्रथमाला में शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। इसके साथ देवचन्द्रसूरि की नम्मयासुदरीकहा, जिनप्रभसूरि की नम्मयासुदरिसधि (अपभ्रश में) तथा प्राचीन गुजराती गद्यमय नर्मदासुदरी कथा भी सग्रहीत है। ये कथा ग्रथ मुनि जिनविजय जी की कृपा से मुझे देखने को मिले।

धूमधाम से मनाया गया। महेश्वरदत्त नर्मदासुन्दरी को साथ लेकर धन कमाने के लिये यवनद्वीप गया। मार्ग मे अपनी पत्नी के चरित्र पर सदेह हो जाने के कारण उसने उसे वहीं छोड़ दिया। निद्रा से उठकर नर्मदासुन्दरी ने अपने आपको एक शून्य द्वीप मे पाया और वह प्रलाप करने लगी। कुछ समय पश्चात् उसे उसका चाचा वीरदास मिला और वह नर्मदासुदरी को बब्बरकूल (एडन के आसपास का प्रदेश) ले गया। यहीं से नर्मदासुदरी का जीवन-सघर्ष आरम्भ होता है। यहाॅ पर वेश्याओं का एक मुहल्ला था, जिसमे सात सौ गणिकाओ की स्वामिनी हरिणी नाम की एक सुप्रसिद्ध गणिका निवास करती थी। सब गणिकाये उसके लिये धन कमाकर लाती और वह उस धन का तीसरा या चौथा भाग राजा को दे देती। हरिणी को जब पता लगा कि जबूद्वीप (भारतवर्ष) से वीरदास नाम का कोई व्यापारी वहाॅ उतरा है, तो उसने अपनी दासी को भेजकर वीरदास को आमत्रित किया लेकिन वीरदास ने दासी के जरिये हरिणी को आठ सौ द्रम्म भेज दिये, वह स्वय उसके घर नहीं गया। हरिणी को बहुत बुरा लगा। इस प्रसग पर हरिणी की दासियो ने नर्मदासुदरी को देखा, और किसी युक्ति से वे उसे भगाकर अपनी स्वामिनी के पास ले गईं। वीरदास ने नर्मदासुदरी की बहुत खोज की और जब उसका पता न लगा तो वह अपने देश लौट गया। नर्मदासुदरी ने भोजन का त्याग कर दिया। हरिणी वेश्या ने कपटसभापण द्वारा उसे फुसलाने की कोशिश की और उसे गणिका बनकर रहने का उपदेश दिया—

सुदरि ? दुल्लहो माणुसी भावो, खणभगुर तारुन्न, एयरस विसिट्ठसुहाणुभवणमेव फल। त च सपुन्न वेसाणामेव सपडइ, न कुलगणाण। जओ महाणसवि भोयण पइदियह भुजमाण न जीहाए तहा सुहमुप्पाएइ, जहा नवनव दिणे दिणे। एव पुरिसो नवनवो नवनव भोगसुह जणइ य। अन्न च—

वियरिज्जइ सच्छद पेज्जइ मज्ज च अमयसारिच्छ।
पच्चक्खो चिच सग्गो वेसाभावो किमिह बहुणा ?
तुज्झ वि रइरूवाए पुरिसा होहिंति किंकरागारा।
वसियरणभाविया इव दाहिति मणिच्छिय दव्व।
एयाओ सव्वाओ अद्ध मे दिंति नियविढत्तस्स।
त पुण मह इट्ठयरी देज्जाहि चउत्थय भाय॥

—हे सुदरि ! मानुषी का जन्म दुर्लभ है, तारुण्य क्षणभगुर है, विशिष्ट सुख का अनुभव करना ही इसका फल है। वह समस्त वेश्याओं को ही प्राप्त होता है, कुलवधुओं[1] को नही। विशिष्ट प्रकार का भोजन प्रतिदिन खाने से वह जिह्वा को सुख नहीं देता, प्रतिदिन नया-नया भोजन चाहिये। इसी प्रकार नये-नये पुरुष नये नये भोगसुख को प्रदान करते है। तथा—

वेश्याएँ स्वच्छद विचरण करती है, अमृत के समान मद्य का

---

१ चतुर्भाणी (पृ० ७४) मे वेश्या को महापथ और कुलवधू को कुमार्ग बताया गया है—

जात्यन्धा सुरतेषु दीनवदनामन्तर्मुखीभाषिणीं
दृष्टस्यापि जनस्य शोकजननीं लज्जापटेनावृताम्।
निर्व्याज स्वयमप्यदृष्टजघना स्त्रीरूपबद्धा पशु
कर्तव्य खलु नैव भो कुलवधूकारा प्रवेष्टु मन ॥

—सूरत में निपट अधी बन जाने वाली, दीनमुख, मुँह के भीतर ही भीतर बात रखने वाली, प्रसन्न आदमी को भी दुखी करने वाली, लज्जा के घूँघट से ढकी, भोलेपन से स्वय भी अपनी जाँघ न देखने वाली, ऐसी स्त्रीरूप में बँधे हुए पशु की भाँति कुलवधू में कभी मन नहीं लगाना चाहिए।

मैरो मे वधू और वेश्या में केवल मूल्य और ठेके की अवधि का ही अन्तर बताया है, और विवाह को एक अधिक फैशन का प्रकार माना है। देखिए हैवलॉक एलिस सैक्स इन रिलेशन टू सोसायटी, पृ० २२२।

पान करती हैं, वेश्यावस्था साक्षात् स्वर्ग की भाति प्रतीत होती है, फिर और क्या चाहिये ?

रति के समान तुम्हारे रूप के कारण पुरुष तुम्हारे किंकर बन जायेगे, तुम्हारे वश मे होकर वे तुम्हें मनोभिलषित द्रव्य प्रदान करेगे। ये सब वेश्याये मुझे अपने उपार्जित धन का आधा भाग देती है, लेकिन तू मुझे सबसे प्रिय है, इसलिये तू मुझे अपनी कमाई का केवल चौथा ही भाग देना।

लेकिन नर्मदासुदरी ने हरिणी वेश्या की एक न सुनी। उसने दुष्ट कामुक पुरुषो को बुलाकर नर्मदासुदरी के शीलव्रत का भग करने की भरसक चेष्टा की, फिर अपने दासों से लबे डडे से उसे खूब पिटवाया। लेकिन नर्मदासुदरी अपने व्रत से विचलित न हुई। वहॉ करिणी नाम की एक दूसरी वेश्या रहती थी। उसने नर्मदासुदरी की सहायता करने के लिये अपने घर मे उसे रसोइयन रख ली। कुछ समय पश्चात् हरिणी की मृत्यु हो गई और नर्मदासुदरी को टीका करके सजधज के साथ उसे प्रधान गणिका के पद पर बैठाया गया। बब्बर राजा को जब नर्मदासुदरी के अनुपम सौदर्य का पता लगा तो उसने अपने दडधारियों को भेजकर उसे बुलाया। वह स्नान कर और वस्त्राभूषणों से अलकृत हो शिबिका मे बैठ उनके साथ चल दी। रास्ते मे वह एक बावडी मे पानी पीने के लिये उतरी और जानबूझ कर गड्ढे मे गिर पडी। उसने अपने शरीर पर कीचड लपेट लिया और अडबड बकने लगी। दडधारियों ने राजा से निवेदन किया कि महाराज वह तो किसी ग्रह से पीडित मालूम होती है। राजा ने भूतवादी को बुलाया लेकिन वह भी उसे स्वस्थ नहीं कर सका। नर्मदासुदरी अपने शरीर पर कीचड मल कर एक खप्पर लिये हुए घर-घर भिक्षा मॉगती हुई फिरने लगी। अपनी उन्माद अवस्था को लोगों के सामने दिखाने के लिये कभी वह नाचती, कभी फूत्कार करती, कभी गाती और कभी हॅसती। अन्त में वह जिनदेव नाम के श्रावक से मिली। नर्मदासुदरी ने अपना

धर्मबधु समझ कर जिनदेव से सारी बातें कही। जिनदेव वीर दास का मित्र था, वह नर्मदासुदरी को उसके पास ले गया, और इस प्रकार कथा की नायिका को दुखो से छुटकारा मिला। उसने सुहस्तिसूरि के चरणों मे बैठकर श्रमणी दीक्षा ग्रहण की।

कुमारवालपडिबोह (कुमारपालप्रतिबोध)

सोमप्रभसूरि ने वि० स० १२४१ (ई० स० ११८४) मे कुमारपालप्रतिबोध, जिसे जिनधर्मप्रतिबोध भी कहा जाता है, की रचना की थी।[1] सोमप्रभ का जन्म प्राग्वाट कुल के वैश्य परिवार मे हुआ था। सस्कृत और प्राकृत के ये प्रकाड पडित थे। आचार्य हेमचन्द्र के उपदेशो से प्रभावित हो गुजरात के चालुक्य राजा कुमारपाल ने जैनधर्म को अगीकार किया था, यही इस कृति का मुख्य विषय है। राजा कुमारपाल की मृत्यु के ग्यारह वर्ष पश्चात् इस ग्रथ की रचना हुई थी। यह ग्रथ जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखा गया है, बीच बीच मे अपभ्रश और सस्कृत का भी उपयोग किया गया है। इसमे पॉच प्रस्ताव है, पॉचवॉ प्रस्ताव अपभ्रश मे है। सब मिलकर इसमे ५४ कहानियॉ है, अधिकाश कहानियॉ प्राचीन जैन शास्त्रो से ली गई है। पहले प्रस्ताव मे मूलदेव की कथा है। अहिंसाव्रत के समर्थन मे अमरसिंह, दामन्नक, अभयसिंह और कुद की कथाये आती है। नल दमयन्ती की कथा सुप्रसिद्ध है। नल की भर्त्सना करते हुए एक जगह कहा है—

निट्ठुरु निक्किवु काउरिसु एक्कुजि नलु न हु भंति।
मुक्क महासई जेण विणि निसिसुत्ती दमयत्ती॥

—नल के समान कोई भी निष्ठुर, निर्दय और कापुरुष

---

1 यह ग्रथ गायकवाड ओरियटल सीरीज़, बड़ौदा में मुनि जिन विजय द्वारा सन् १९२० में सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ है। इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानद सभा की ओर से सवत् १९८३ में प्रकाशित किया गया है।

नहीं होगा जो महासती दमयती को रात्रि के समय सोती हुई छोडकर चलता बना।

उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की कथा जैन ग्रन्थों मे प्रसिद्ध है। उसके लोहजघ, लेखाचार्य, अग्निभीरु रथ और नलगिरि हाथी नाम के चार रत्न थे। अशोक की कथा से मालूम होता है कि धनिक लोग अपने पुत्रों के चरित्र को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें वेश्याओ के स्वभाव से भलीभॉति परिचित करा दिया करते थे। द्वारिकादहन की कथा पहले आ चुकी है। अपभ्रश का एक दोहा देखिये—

हियडा सकुडि मिरिय जिम्व इदिय पसरु निवारि।
जित्तिउ पुज्जइ पगुरणु तित्तिउ पाउ पसारि॥

—हृदय को मिर्च (?) के समान सकुचित करो जिससे इन्द्रियो के विस्तार को रोका जा सके। जितनी बडी चादर हो उतने ही पैर फैलाने चाहिये।

दूसरे प्रस्ताव मे देवपूजा के समर्थन मे देवपाल, सोम भीम, पद्मोत्तर और दीपशिख की कथाये है। दीपशिख की कथा से पता लगता है कि विद्या सिद्ध करने के लिये साधक लोग श्मशान मे जाकर किसी कन्या का वध करते थे। गुरुसेवा के समर्थन मे राजा प्रदेशी और लक्ष्मी की कथाये है। कूलवाल की कथा जैन आगमों मे प्रसिद्ध है। राजा सम्प्राति की कथा बृहत्कल्पभाष्य मे आती है। सम्प्रति ने आध्र, द्रविड, आदि अनार्य समझे जानेवाले देशो मे अपने योद्धा भेजकर जैनधर्म का प्रचार किया था। राजा कुमारपाल का अपने गुरु आचार्य हेमचन्द्र के साथ शत्रुजय, पालिताना गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा करने का उल्लेख है।

तीसरे प्रस्ताव मे चदनबाला, धन्य, कुरुचन्द्र, कृतपुण्य और भरत चक्रवर्ती की कथाये है। शीलवती की कथा बडी मनोरजक है। शीलवती अजितसेन की पत्नी थी। एक दिन आधी रात के समय वह घडा लेकर अपने घर के बाहर गई और बहुत

देर बाद लौटी। उसके श्वसुर को जब इस बात का पता लगा तो उसे शीलवती के चरित्र पर शका हुई और उसने सोचा कि अब इसे घर मे रखना उचित नही। यह सोचकर शीलवती को रथ मे बैठाकर वह उसके पीहर के लिये रवाना हो गया। रास्ते मे एक नदी आई। शीलवती के श्वसुर ने अपनी पतोहू से कहा, "बहू, तुम जूते उतार कर नदी पार करो।" लेकिन उसने जूते नही उतारे। श्वसुर ने सोचा, यह बहू बडी अविनीता है। आगे चलकर मूग का एक खेत मिला। श्वसुर ने कहा, "देखो यह खेत कितना अच्छा फल रहा है। खेत का मालिक इस धन का उपभोग करेगा।" शीलवती ने उत्तर दिया, "बात ठीक है, लेकिन यदि यह खाया न जाये तो।" श्वसुर ने सोचा कि बहू बडी ऊटपटाग बात करती है जो इस तरह बोल रही है। आगे चलकर दोनों एक नगर मे पहुँचे। वहाँ के लोगों को आनन्द मग्न देखकर श्वसुर ने कहा, "यह नगर कितना सुन्दर है।" शीलवती ने उत्तर दिया—"ठीक है, लेकिन यदि कोई इसे उजाड न दे तो।" कुछ दूरी पर उन्हें एक कुलपुत्र मिला। श्वसुर ने कहा, "यह कितना शूरवीर है।" शीलवती ने उत्तर दिया, "यदि पीट न दिया जाये तो।" श्वसुर ने सोचा, ठीक है वह शूरवीर ही क्या जो पीटा न गया हो। आगे चलकर शीलवती का श्वसुर एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठ गया। शीलवती दूर ही बैठी रही। उसके श्वसुर ने सोचा, यह सदा उलटा ही काम करती है। थोडी दूर चलने पर दोनो एक गाँव मे पहुँचे। इस गाँव मे शीलवती के मामा ने उसके श्वसुर को भी बुलाया। भोजन करने के पश्चात् उसका श्वसुर रथ के अन्दर लेट गया। शीलवती रथ की छाया मे बैठी हुई थी। इतने मे बबूल के पेड पर बैठे हुए कौवे को बार बार काँव काँव करते देखकर शीलवती ने कहा, "अरे, तू काँव काँव करता हुआ थकता नही ?" फिर उसने एक गाथा पढी—

एके दुन्नय जे कया तेहि नीहरिय घरस्स।
बीजा दुन्नय जइ करउ तो न मिलउ पियरस्स॥

—एक दुर्नीति करने से मुझे घर से बाहर निकलना पडा। और यदि अब मैं दूसरी दुर्नीति करूगी तो प्रियतम से मिलना न होगा।

श्वसुर के पूछने पर शीलवती ने कहा—

"सोरब्भगुणेण छेय घरिसणाइणि चदण लहइ।
राग-गुणेण पावइ खडण कढणाइ मजिट्ठा॥

—देखिये, सुगधि के कारण लोग चदन को काट कर घिसते हैं और रग के कारण मजीठ के टुकडे कर पानी मे उबालते है।

इसी तरह मेरे गुण भी मेरे शत्रु बन गये, क्योंकि मै पक्षियों की बोली समझती हूँ। आधी रात के समय गीदडी का शब्द सुनकर मुझे पता चला कि एक मुर्दा पानी मे बहा जा रहा है और उसके शरीर पर बहुमूल्य आभूषण है। यह जानकर मैं फौरन ही घडा लेकर नदी पर पहुँची। मुर्दे को मैंने नदी मे से निकाल लिया। उसके आभूषण उतार कर अपने पास रख लिये और उस मुर्दे को गीदड के खाने के लिये उसके सामने फेक दिया। आभूषणों को घडे मे रख कर मैं अपने घर चली आई। इस प्रकार एक दुर्नीति के कारण मैं इस अवस्था को प्राप्त हुई हूँ। अब यह कौआ कह रहा है कि इस बबूल के पेड के नीचे बहुत सा सुवर्ण गडा हुआ है।"

यह सुनकर शीलवती का श्वसुर बडा प्रसन्न हुआ, और उसने बबूल के पेड के नीचे से गडा हुआ धन निकाल लिया। वह अपनी पुत्रवधू की बहुत प्रशसा करने लगा, और उसे रथ में बैठाकर घर वापिस ले आया। रास्ते मे उसने पूछा, "शीलवती, तुम वट वृक्ष की छाया मे क्यों नहीं बैठी?" शीलवती ने उत्तर दिया, "वृक्ष की जड मे सर्प आदि का भय रहता है, और ऊपर से पक्षी बीट करते है, इसलिये दूर बैठना ही अच्छा है।" फिर उसने शूरवीर कुलपुत्र के बारे मे प्रश्न किया। शीलवती ने उत्तर दिया, "ठीक है कि शूरवीर मार खाता है और पीटा जाता है

लेकिन असली शूरवीर वह है जो पहले प्रहार नहीं करता।" नगर के सबध मे उसने उत्तर दिया, "जिस नगर के लोग आगन्तुकों का स्वागत नहीं करते, उसे नगर नहीं कहा जाता।" खेत के सबध में शीलवती ने कहा, "व्यापार मे द्रव्य की वृद्धि होने से यदि खेत का मालिक द्रव्य का उपभोग करे तो ही उसे उपभोग किया हुआ समझना चाहिये।" नदी के बारे मे उसने उत्तर दिया, "नदी मे जीव-जन्तु और कॉटों का डर रहता है, इसलिये नदी पार करते समय मैंने जूते नहीं उतारे।"

शीलवती का श्वसुर अपनी पतोहू से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने शीलवती को सारे घर की मालकिन बना दिया।[1]

कुछ समय बाद राजा ने अजितसेन की बुद्धिमत्ता से प्रसन्न हो उसे अपना प्रधान मत्री बना लिया। एक बार अजितसेन को राजा के साथ कहीं परदेश मे जाना पडा। चलते समय शीलवती ने अपने पति को एक पुष्पमाला भेंट करते हुए कहा कि मेरे शील के प्रभाव से यह माला कभी भी नहीं कुम्हलायेगी। राजा को जब इस बात का पता लगा तो उसने शीलवती की परीक्षा के लिए अपने मित्र अशोक को उसके पास भेजा। अशोक शीलवती के मकान के पास एक घर किराये पर लेकर रहने लगा। शीलवती ने उससे आधा लाख रुपया मागा और रात्रि के समय आने को कहा। इधर शीलवती ने एक गड्ढा खुदवा कर उसके ऊपर एक सुदर पलग बिछवा दिया। नियत समय पर अशोक रुपया लेकर आया और पलग पर बैठते ही गड्ढे मे गिर पडा। शीलवती ने एक मिट्टी के बर्त्तन मे डोरी बॉध उसे गड्ढे मे लटका दिया और उसके जरिये गड्ढे मे भोजन पहुँचाने लगी। उसके बाद राजा ने रतिकेलि, ललिताग और कामाकुर[2] नाम

---

१ बौद्धों की धम्मपद अट्ठकथा में मृगारमाता विशाखा की कथा के साथ तुलना कीजिये, इस कथा के हिन्दी अनुवाद के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, प्राचीन भारत की कहानियाँ।

२ हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा में भी इन नामों का उल्लेख है।

के अन्य मित्रों को शीलवती की परीक्षा के लिए भेजा, और शीलवती ने पहले की तरह इन्हें भी उस गड्ढे मे अशोक के पास पहुँचा दिया।

कुछ दिनों बाद राजा और उसके मत्री अपनी यात्रा से लौट आये। एक दिन अजितसेन ने राजा को अपने घर भोज्न के लिए आमत्रित किया। उस गड्ढे की पूजा करने के बाद शीलवती ने हुकुम दिया, "हे यक्षो, रसोई तैयार हो जाये।" फौरन ही उत्तर मिला, "ऐसा ही हो।" रसोई तैयार हो गई और राजा ने आनन्दपूर्वक भोजन किया। इसी प्रकार ताबूल, पुष्प, विलेपन, वस्त्र आदि वस्तुएँ भी शीलवती के कहते ही क्षणभर मे तैयार हो गईं। यह देख कर राजा को बडा आश्चर्य हुआ। शीलवती ने कहा, "महाराज, मेरे पास चार यक्ष है, जो कुछ मै उनसे माँगती हू, वे मुझे दे देते है।" राजा के अनुरोध करने पर शीलवती ने उन 'यक्षो' को राजा के हवाले कर दिया। उन चारो को अपनी गाडी मे डालकर गाजे बाजे के साथ राजा ने अपने महल मे प्रवेश किया। सुबह होने पर राजा ने उनसे भोजन माँगा। भोजन न मिलने पर राजा को पता लगा कि उसके भेजे हुए चारों मित्र ही यक्ष बने हुए है और वे दयनीय दशा को प्राप्त हो गये है।[1]

तारा के कथानक मे किसी ब्राह्मण द्वारा अपनी कन्या को

---

१ कथासरित्सागर (१–४) में भी एक इसी तरह की कथा आती है। उपकोशा वररुचि की पत्नी थी। उसके पति को एक बार किसी काम से हिमालय चले जाना पडा। वह गगास्नान के लिए गई। उस समय राजमत्री, पुरोहित और राजा के न्यायाधीश उसे देखकर मोहित हो गये। इन तीनों को उपकोशा ने अपने घर रात्रि के समय बुलाया। बाद में एक एक को बक्से मे बन्द करके राजा के पास भेज दिया। ब्रजभाषा की लोककथाओं में भी इसका प्रवेश हुआ है। देखिये डॉक्टर सत्येन्द्र, ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ४०७–४०८।

सिर पर रखकर बाजार मे बेचे जाने का उल्लेख है।[1] तारा अपने पुत्र के साथ घर छोडकर चली जाती है। अपने शील को सुरक्षित रखने के लिये उसे अनेक कष्ट झेलने पडते है। एक सुभाषित देखिये—

सीहह केसर सइहि उरु सरणागओ सुहडस्स।
मणि मत्थइ आसीविसह किं घिप्पइ अमुयस्स॥[2]

—सिह की जटाओ, सती स्त्री की जघाओं, शरण मे आये हुए सुभट और आशीविष सर्प के मस्तक की मणि को कभी नहीं स्पर्श करना चाहिए।

जयसुदरी की कथा मे जोगियो का निर्देश है। उन्हें खाद्य-अखाद्य, कार्य अकार्य और गम्य अगम्य का विवेक नहीं होता। एक जोगी दूसरे जोगी को मद्य-पान कराके उसकी स्त्री को भगाकर ले जाता है। जयसुदरी नगर के श्रेष्ठी, मत्री, पुरोहित और राजा की चरित्र भ्रष्टता देखकर निराश होती है। वह इन

---

१ दूसरे देशों पर धाड़ी मारकर राणा प्रतापसिंह द्वारा लाई हुई गौरवर्ण, सोलह वर्ष की पनुती नाम की दासी के बेचे जाने का उल्लेख एक दासीविक्रयपत्र में मिला है। इस दासी के सिर पर तृण रक्खे हुए थे और इसे खोटने, कूटने, लीपने, बुहारने, पानी भरने, मल मूत्र साफ करने, गाय भैंस दुहने, और दही बिलोने आदि के काम के लिए ५०० द्रम्म में खरीदा गया था। देखिये ऐंशियेण्ट विज्ञप्तिपत्रक, डॉ० हीरानन्द द्वारा १९४२ में बड़ौदा से प्रकाशित। इस पत्र की नकल डॉ० हीरालाल जैन के पास से मुझे मिली है।

२ मिलाइये किवणाण धण णाआण फणामणी केसराई सीहाण।
कुलवालिआण थणआ कुत्तो छिप्पति अमुआण॥
काव्यप्रकाश, १०, ४५७

तथा—

केहरकेस भुजगमण सरणाई सुहडांह।
सती पयोहर क्रपणधन, पडसी हाथ मुवाह॥

कन्हैयालाल सहल, राजस्थानी कहावतें, पृ० २९६।

चारों को एक सन्दूक में बन्द कर पचो के पास ले जाती है। तत्पश्चात् रुक्मिणी, प्रद्युम्न शब, धर्मयश धर्मघोष विष्णुकुमार, प्रसन्नचन्द्र, शाल-महाशाल, इलापुत्र तथा जयवर्म-विजयवर्म की कथाये है।

चौथे प्रस्ताव मे अहिसा, सत्य आदि बारह व्रतो की बारह कथाये लिखी गई है। मकरध्वज, पुरदर और जयद्रथ की कथाये सस्कृत में है। जयद्रथकथा मे कुष्माण्डी देवी का उल्लेख है।

पॉचवॉ प्रस्ताव अपभ्रश मे है। इसका अध्ययन डॉक्टर एल्सडोर्फ ने किया है जो हैम्बर्ग से सन् १६२८ मे प्रकाशित हुआ है। जीवमन करणसलापकथा धार्मिक कथाबद्ध रूपक काव्य है जिसमे जीव, मन और इन्द्रियो मे वार्तालाप होता है। देह नामक नगरी लावण्य लक्ष्मी का निवास स्थान है। नगरी के चारों ओर आयुकर्म का प्राकार है, जिसमे सुख, दुख, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि अनेक प्रकार की नालियाँ अनेक मार्ग है। इस नगरी मे आत्मा नामका राजा अपनी बुद्धि नामकी महादेवी के साथ राज्य करता है। मन उसका प्रधान मत्री है, पॉच इन्द्रियाँ पॉच प्रधान पुरुष है। आत्मा, मन और इन्द्रियों मे वाद विवाद छिड जाने पर मन ने अज्ञान को दु ख का मूल कारण बताया, आत्मा ने मन को दोषी ठहराया और मन ने इन्द्रियों पर दोषारोपण किया। पॉचों इन्द्रियों के कुलशील के सबध मे चर्चा होने पर कहा गया—"हे प्रभु, चित्तवृत्ति नामकी महा अटवी में महामोह नामका राजा अपनी महामूढा देवी के साथ राज्य करता है। उसके दो पुत्र है, एक राग केसरी, दूसरा द्वेष गजेन्द्र। राजा के महामत्री का नाम मिथ्यादर्शन है। मद, क्रोध, लोभ, मत्सर और कामदेव आदि उसके योद्धा है। एक बार महामत्री ने उपस्थित होकर राजा से निवेदन किया कि महाराज, चारित्रधर्म नामका गुप्तचर सतोष प्रजा को जैनपुर मे ले जाता है। यह सुनकर राजा ने अपने मत्री की सहायता के लिये इन्द्रियों को नियुक्त किया।" इस

प्रकार कभी इन्द्रियों को, कभी कर्मों को और कभी कामवासना को दु ख का कारण बताया गया। अन्त मे आत्मा ने प्रशम का उपदेश देते हुए जीवदया और व्रतपालन द्वारा मनुष्य जीवन को साथक बनाने का आदेश दिया। अपभ्रश पद्यो मे रड्डा, पद्धडिया, और घत्ता छन्दो का ही प्रधानता से प्रयोग हुआ है।

इसके बाद विक्रमादित्य और खपुटाचार्य की कथाये है। स्थूलभद्रकथा मे ब्रह्मचर्य व्रत का माहात्म्य बताया है। पाटलिपुत्र नगर मे नवम नन्द नामका राजा राज्य करता था। शकटार उसका मत्री था। उसके स्थूलभद्र और श्रियक नामके दो पुत्र थे। एक बार वसत ऋतु के दिनो मे स्थूलभद्र कोशा नामक गणिका के प्रासाद मे गया और उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर वही रहने लगा। उसी नगर मे वररुचि नामका एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। उसकी चालाकी से जब शकटार को प्राणदड दे दिया गया तो राजा को चिन्ता हुई कि मत्री के पद पर किसे नियुक्त किया जाये। स्थूलभद्र का आचरण ठीक न था, इसलिये उसके छोटे भाई श्रियक को ही मत्री बनाया गया। स्थूलभद्र ने सासारिक भोग विलास का त्याग कर जैन दीक्षा ग्रहण कर ली और वे कठोर तपस्या मे लीन हो गये। एक बार उनके गुरु ने अपने शिष्यो को चातुर्मास के समय किसी कठिन व्रत को स्वीकार करने का आदेश दिया। एक शिष्य ने कहा कि वह चार महीने तक सिंह की गुफा मे रहेगा, दूसरे ने दृष्टिविष सर्प के बिल के पास, और तीसरे ने कुए के अरहट के पास बैठकर ध्यान मे लीन होने की प्रतिज्ञा की। लेकिन स्थूलभद्र ने प्रतिज्ञा की कि वह ब्रह्मचर्य व्रत का भग किये बिना चार महीने तक कोशा के घर मे रहेंगे। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मुनि स्थूलभद्र चातुर्मास में कोशा के घर आये। कोशा ने समझा कि स्थूलभद्र कठोर तप से घबरा कर आये है, लेकिन कोशा का सौन्दर्य और उसके हावभाव मुनि स्थूलभद्र को अपने व्रत से विचलित न कर सके।

नदन राजकुमार की कथा सस्कृत मे है। दशार्णभद्र की कथा प्राचीन जैन ग्रन्थो मे मिलती है।

पाइअकहासंगह (प्राकृतकथासंग्रह)

पउमचदसूरि के किसी अज्ञातनामा शिष्य ने विक्कमसेण चरिय नामक प्राकृत कथाग्रथ की रचना की थी। इस कथाग्रथ मे आई हुई चौदह कथाओ मे से बारह कथाये प्राकृतकथासग्रह मे दी गई है।[1] इससे अधिक ग्रन्थकर्त्ता ओर उसके समय आदि के सबध मे और कुछ जानकारी नहीं मिलती। प्राकृतकथासग्रह की एक प्रति सवत् १३९८ मे लिखी गई थी, इससे पता लगता है कि मूल ग्रथकार का समय इससे पहले ही होना चाहिये। इस सग्रह मे दान, शील, तप, भावना, सम्यक्त्व, नवकार तथा अनित्यता आदि से सबध रखनेवाली चुनी हुई सरस कथाये है। जिनमे अनेक लौकिक और धार्मिक आख्यान कहे गये है।

दान मे धनदेव और धनदत्त की कथा तथा सम्यक्त्व के प्रभाव मे धनश्रेष्ठी की कथा दी गई है। कथक नाम के सेठ के धर्मवती नामकी भार्या थी। उसके पुत्र नही होता था, इसलिये उसने अपने पति से दूसरा विवाह करने का अनुरोध किया। कथक ने दूसरा विवाह कर लिया। कुछ समय बाद कालीदेवी की उपासना से कथक की दोनो पत्नियों के पुत्र उत्पन्न हुए। कृपण श्रेष्ठी की कथा मे लक्ष्मीनिलय नामके एक कृपण सेठ का वर्णन है, जो एक कौडी भी दान धर्म मे खर्च नहीं करता था। दान के डर से वह किसी साधु सत के पास भी न जाता और लोगों से मिलना-जुलना भी उसने छोड दिया था। उसके घर मे पहनने के नये वस्त्र तक नहीं थे। जब उसकी पत्नी के पुत्र हुआ तो वह उसे ठीक से खाना भी नहीं देता था। अपने पुत्र को पान खाते हुए देखकर वह लाल पीला हो जाता।

---

१ विजयानन्द सूरीश्वर जी जैन ग्रथमाला में सन् १९५२ में भावनगर से प्रकाशित।

खाने पीने के ऊपर बाप बेटो मे लडाई हुआ करती। अन्त मे उसके पुत्र ने तग आकर मुनिदीक्षा ले ली। जयलक्ष्मी देवी के कथानक मे अघोर नामके योगीन्द्र का उल्लेख आता है जो मत्र-तत्र का वेत्ता था। रात्रि के समय पूजा की सामग्री लेकर निश्चल ध्यान मे आसीन होकर वह नभोगामिनी विद्या सिद्ध करने लगा। सुदरी देवी के कथानक मे सुदरी की कथा है। वह धणसार नामके श्रेष्ठी की कन्या थी, तथा शब्द, तर्क, छद, अलकार, उपनिबध, काव्य नाट्य, गीत और चित्रकर्म मे कुशल थी। विक्रमराजा का चरित्र सुनने के पश्चात् वह उससे मन ही मन प्रेम करने लगी। इधर उसके माता पिता ने सिंहलद्वीप के किसी श्रेष्ठी के पुत्र के साथ उसकी सगाई कर दी। उज्जैनी मे सुदरी का वचनसार नामका एक भाई रहता था। सुदरी ने रत्नों का एक थाल भर कर और उसके ऊपर एक सुदर तोता बैठाकर उसे विक्रमराजा को देने को कहा। राजा ने तोते का पेट फाडकर देखा तो उसमे से एक सुदर हार और कस्तूरी से लिखा हुआ एक प्रेमपत्र मिला। पत्र मे लिखा था—"मै तुम्हारे गुणों का सदा ध्यान करती रहती हूँ, ऐसा वह कौन सा क्षण होगा जब ये नयन तुम्हारा दर्शन करेंगे। वैशाख वदी द्वादशी को सिंहलद्वीप के निवणाग नामक श्रेष्ठीपुत्र के साथ मेरा विवाह होने वाला है। हे नाथ! मेरे शरीर को तुम्हारे सिवाय और कोई स्पर्श नहीं कर सकता। अब जैसा ठीक समझो शीघ्र ही करो।" राजा ने पत्र पढकर शीघ्र ही अग्निवेताल भृत्य का स्मरण किया, और तुरत ही समुद्रमार्ग से उज्जैनी होता हुआ रत्नपुर को रवाना हो गया। नवकारमत्र का प्रभाव बताने के लिये सौभाग्यसुन्दर की कथा वर्णित है। किसी आदमी को नदी मे बहता हुआ घडे के आकार का एक बिजौरा (बीजउर) दिखाई देता है। वह उसे ले जाकर राजा को दे देता है, राजा अपनी रानी को देता है। रानी उस स्वादिष्ट फल को खाकर वैसे ही दूसरे फल की माग करती है, और उसके न मिलने पर भोजन का त्याग कर देती है।

अनेक कलाओं मे कुशल कोई योगीन्द्र श्मशान मे आसन मार कर नभोगामिनी बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता है। तप का प्रभाव बताने के लिये मृगाकरेखा और अघटक की कथाये वर्णित है। धर्मदत्त कथानक मे धर्मदत्तकुमार की कथा है। यशधवल नामका कोई सेठ गजपुर नगर मे रहता था। शासनदेवी की उपासना से उसके धर्मदत्त नामका पुत्र हुआ। बड़े होने पर तिहुणदेवी के साथ उसका विवाह हो गया। कुछ समय बाद उसकी धनार्जन की इच्छा हुई और वह अपनी पत्नी के साथ परदेश के लिये रवाना हो गया। रास्ते मे उसे कूट नामका एक ब्राह्मण मिला, तीनो आगे बढे। रात हो जाने पर धर्मदत्त ने ब्राह्मण से कोई कहानी सुनाने के लिये कहा। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि यदि मुझे ५०० द्रम्म पेशगी दो तो मैं कोई अनुभवपूर्ण कहानी सुना सकता हू। धर्मदत्त ने उसे मुँहमागा रुपया दे दिया। ब्राह्मण ने एक श्लोक पढा—

नीयजणेण मित्ती कायव्वा नेव पुरिसेण।

—पुरुष को नीच आदमी के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये।

धर्मदत्त ने कहा, क्या बस इतनी सी बात के लिये तुमने मुझ से इतना रुपया ऐंठ लिया। ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"यदि एक हजार द्रम्म दो तो और भी बढिया कहानी सुनाऊँ।" धर्मदत्त ने फिर उसे मुँहमागा रुपया दे दिया। अबकी बार ब्राह्मण ने पढकर सुनाया—

महिलाए विस्सासो कायव्वो नेव कइया वि।

—महिलाओं का विश्वास कभी नहीं करना चाहिये।

कहानी सुनाकर ब्राह्मण ने धर्मदत्त से कहा कि यदि तुम इन दोनो कथानकों को हृदय मे धारण करोगे तो कभी हार नहीं मान सकते। चलते समय ब्राह्मण ने मन्त्राभिषिक्त जौ की मुट्ठी भर कर धर्मदत्त को देते हुए कहा कि ये जौ बोने के साथ ही उग आयेंगे। जौ लेकर धर्मदत्त आगे बढ़ा। नगर के राजा

को रत्नों की भेंट देकर उसने प्रसन्न किया। राजा ने भी उसे शुल्क से मुक्त कर दिया। उस नगरी मे गगदत्त नामका कोई धूर्त्त रहता था। मौका पाकर उसने धर्मदत्त से मित्रता कर ली। शनै शनै तिहुणदेवी के पास भी वह निस्सकोच भाव से आने जाने लगा। एक दिन राजा ने धर्मदत्त से पूछा कि यदि तुमने कोई आश्चर्य देखा हो तो कहो। धर्मदत्त ने कहा—"महाराज! मेरे पास ऐसे जौ है जो बोते के साथ ही उग सकते है।" लेकिन इस बीच मे गगदत्त ने तिहुणदेवी से गाठ साठ कर ब्राह्मण के दिये हुए मत्राभिषिक्त जौ इधर उधर करवा दिये, जिससे राजा के समक्ष अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न करने के कारण धर्मदत्त बडा शर्मिन्दा हुआ। अन्त मे कूट नामक ब्राह्मण को बुलाया गया। उसने कहा—"मेरे सुनाये हुए दोनो आख्यान तुम भूल गये हो, तथा नीच पुरुष की मित्रता के कारण और महिलाओ का विश्वास करने के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है।" भावना का प्रभाव प्रतिपादित करने के लिये बहुबुद्धि की कथा वर्णित है। बहुबुद्धि चपा के रहनेवाले बुद्धिसागर मत्री का पुत्र था। वह साहित्य, तर्क, लक्षण, अलकार, निघटु, शब्द, काव्य, ज्योतिष, निमित्त, सगीत और शकुनशास्त्र का पडित था। एक दिन मत्री ने उसे एक हार रखने के लिये दिया, लेकिन बहुबुद्धि पढने मे इतना व्यस्त रहता था कि वह हार रखकर कहीं भूल गया। गगड नामके नौकर ने वह हार चुरा लिया। मत्री ने बहुबुद्धि से हार मागा और वह उसे न दे सका। इस पर बुद्धिसागर को बहुत क्रोध आया और उसने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। बहुबुद्धि घूमता फिरता जयन्ती नगरी मे आया और वहाँ किसी सुवर्णश्रेष्ठी के घर आकर रहने लगा। एक दिन उसकी दूकान पर गगड चोरी का हार बेचने आया। सुबुद्धि ने अपना हार पहचान लिया, लेकिन गगड ने कहा वह हार उसी का है। दोनो लडते-झगडते राजा के पास गये। सुबुद्धि जीत गया, लेकिन चालाकी से राजा ने हार अपने पास

रख लिया और उसे बहुबुद्धि को लौटाने से इन्कार कर दिया। अन्त मे अपने बुद्धिकौशल से बहुबुद्धि ने उस हार को प्राप्त कर लिया। अनित्यता को समझाने के लिये समुद्रदत्त की कथा वर्णित है। यहाँ धनार्जन की मुख्यता बताई गई है—

कि पढिएण ? बुद्धीए किं ? व कि तस्स गुणसमूहेण ?
जो पियरविढत्तवण भुजइ अज्जणसमत्थो वि ॥

—पढने से क्या लाभ ? बुद्धि से क्या प्रयोजन ? गुणो से क्या तात्पर्य ? यदि कोई धनोपार्जन मे समर्थ होते हुए भी अपने पिता के द्वारा अर्जित धन का उपभोग करता है।

समुद्रयात्रा के वर्णन मे मार्ग मे कालिका वायु चलती है जिससे जहाज टूट जाता है। बहुत से यात्रियों को अपने प्राणो से वचित होना पडता है। श्रेष्ठीपुत्र के हाथ मे लडकी का एक तख्ता पड जाता है, और उसके सहारे वह किसी पर्वत के किनारे जा लगता है। वहाँ से सुवर्णभूमि पहुँचकर वह सोने की ईंटे प्राप्त करता है। कर्म की प्रधानता देखिये—

अहवा न दायव्वो दोसो कस्स वि केण कइया वि ।
पुव्वज्जियकम्माओ हवति ज सुक्खदुक्खाइ ॥

—अथवा किसी को कभी भी दोष नहीं देना चाहिये, पूर्वोपार्जित कर्म से ही सुख दुख होते है।

मलयसुदरीकहा

इसमे महाबल और मलयसुदरी की प्रणयकथा का वर्णन है। दुर्भाग्य से इस कथा के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। लेकिन धर्मचन्द्र ने इसके ऊपर से सस्कृत मे सक्षिप्त कथा की रचना की, इससे इस कथा का समय १४वी शताब्दी के पूर्व ही माना जाता है।

जिनदत्ताख्यान

जिनदत्ताख्यान के कर्त्ता सुमतिसूरि है जो पाडिच्छयगच्छीय

आचार्य सर्वदेवसूरि के शिष्य थे।[1] इसके सिवाय ग्रथकर्त्ता का कोई विशेष परिचय नही मिलता। रचना साधारण कोटि की है। यहाँ बहुत सी पहेलियाँ दी हुई है। कथा का नायक जिनदत्त चपानगरी के विमलसेठ की कन्या विमलमति के साथ विवाह करता है। उसे जूआ खेलने का शोक है। जूए मे वह अपना सब धन खो देता है, और परदेश यात्रा के लिये निकल पडता है। दधिपुर नगर मे पहुँचकर वह अपने कौशल से महाव्याधि से पीडित राजकन्या श्रीमती को नीरोग करता है और अन्त मे उसके साथ जिनदत्त का विवाह हो जाता है। जिनदत्त श्रीमती के साथ समुद्र यात्रा करता है। मार्ग में कोई व्यापारी किसी बहाने से जिनदत्त को समुद्र मे ढकेल देता है। किसी टूटे हुए जहाज का कोई तख्ता उसके हाथ लग जाता है और उसके सहारे तैरकर वह समुद्र के किनारे लग जाता है। रथनूपुर-चक्रवाल नगर मे राजकन्या अगारवती से उसका विवाह होता है। एक दिन उसे अपनी पत्नी श्रीमती की याद आती है ओर वह अगारवती के साथ विमान मे बैठकर दधिपुर की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग मे चपा के एक उद्यान मे किसी साध्वी के पास बैठकर अभ्यास करती हुई विमलमति और श्रीमती पर उसकी नजर पडती है। अपने विमान को वह नीचे उतारता है, और अगारवती को छोडकर विद्या के बल से अपना वामन रूप बनाकर वही रहने लगता है। यहाँ पर रहते हुए जिनदत्त गीत, वाद्य, विनोद आदि द्वारा चपा नगरी के निवासियें का मनोरञ्जन करता है। इसी अवसर पर गुप्त रीति से वह विमलमति, श्रीमती और अगारवती नामक तीनों पत्नियो का मनोरजन करता है। यहाँ चपा की राजकन्या रतिसुदरी से जिनदत्त का विवाह होता है। अत मे जिनदत्त अपनी पत्नियो के समक्ष अपने वास्तविक

---

1 यह ग्रथ सिंघी जैन ग्रथमाला में सन् १९५३ में जिनदत्ताख्यानद्वय के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें जिनदत्त के दो आख्यान दिये गये हैं, एक के कर्त्ता सुमतिसूरि है, और दूसरे के अज्ञात हैं।

रूप को प्रकट कर देता है और अपनी चारों पत्नियों के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगता है। कालांतर में माता-पिता की अनुमतिपूर्वक अपनी पत्नियों और मित्रों के साथ वह दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

पहेलियाँ देखिये—

(१) किं मरुथलीसु दुलहं ? का वा भवणस्स भूसणीभणिया ?
क कामइ सेलसुया ? कं पियइ जुवाणओ तुट्ठो ?

उत्तर—कंताहरं।

—मरुस्थल में कौनसी वस्तु दुर्लभ है ? क (जल)। घर का भूषण कौन कहा जाता है ? कंता (कांता)। पार्वती किसकी इच्छा करती है ? हर (शिवजी की)। किसका पान कर युवा संतुष्ट होता है ? कांताधरम् (कांता के अधर का)।

(२) किं कारेइ अहंग, पुरसामी ? का पुरी दहमुहस्स ?
का दुन्नएण लब्भइ ? विरायए केरिसा तरूणी ?

उत्तर—सालंकारा।

—नगर का स्वामी अभंगरूप (अहंग) से किसे बनाता है ? साल (प्राकार को)। रावण की नगरी का क्या नाम है ? लंका। दुर्नीति से क्या प्राप्त होता है ? कारा (कारागृह)। कैसी युवती शोभा को पाती है ? अलंकारों से भूषित (सालंकारा)।

सुभाषित देखिये—

(१) दो तिन्नि वासराइं सासुरयं होइ सग्गसारिच्छं।
पच्छा परिभवदावानलेण सव्वत्थ पज्जलइ॥

—दो तीन दिन तक ही श्वसुर का घर स्वर्ग के समान मालूम होता है, बाद में पराभव की अग्नि से वह चारों ओर से जलने लगता है।

(२) रन्ने जलम्मि जलणे, दुज्जणजणसंकडे व्व विसमम्मि।
जीहं व्व दंतमज्झे नंदइ अपमत्तया जुत्तो॥

—अप्रमाद से युक्त सावधान व्यक्ति जगल, जल, अग्नि और दुर्जन जनो से सकीर्ण होने पर भी दाँतों के बीच मे रहनेवाली जीभ की भाँति आनन्द को प्राप्त होता है।

(३) ते कह न वदणिज्जा, जे ते दट्टूण परकलत्ताइ।
धाराहय व्व वसहा, वच्चति महिं पलोयता॥

—ऐसे लोग क्यों वदनीय न हो जो पर स्त्री को देखकर वर्षा से आहत वृषभों की भाँति नीचे जमीन की ओर मुँह किये चुपचाप चले जाते है?

(४) उच्छूगामे वासो सेय वत्थ सगोरसा साली।
इट्ठाय जस्स भज्जा पियमय! कि तस्स रज्जेण?

—हे प्रियतम! ईखवाले गाँव मे वास, सफेद वस्त्रो का धारण, गोरस और शालि का भक्षण तथा इष्ट भार्या जिसके मौजूद है उसे राज्य से क्या प्रयोजन?

यहाँ अघिय और नल्लच्च (?) आदि जूओं के उल्लेख हैं। आडतिग (यानवाहक, आडतीया गुजराती), सिम्वलिगा (साप की पिटारी), कोसल्लिअ (भेट) आदि शब्दों का प्रयोग यहाँ देखने मे आता है। बौद्ध धर्म के उपासकों को उपासक और जैनधर्म के उपासकों को श्रावक कहा गया है। पूर्वकाल की उक्ति को कथानक और थोडे दिनों की उक्ति को वृत्तान्त कहा है। केशोत्पाटन और अस्नान आदि क्रियाओं के कारण श्रमण-धर्म को अति दुष्कर माना जाता था। 'अन्धे के हाथ की लकडी' (अधलयजट्ठि) का प्रयोग मिलता है।

सिरिवालकहा (श्रीपालकथा)

श्रीपालकथा के कर्त्ता सुलतान फीरोजशाह तुगलक के समकालीन रत्नशेखरसूरि है।[1] उनके शिष्य हेमचन्द्र ने इस कथा को वि० स० १४२८ (सन् १३७१) में लिपिबद्ध किया। इसकी भाषाशैली सरल है, और विविध अलकारों का

---

१ वाडीलाल जीवाभाई चौकसी द्वारा सन् १९३२ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

इसमे प्रयोग है। मुख्य छंद आर्या है। कुछ पद्य अपभ्रंश मे भी है। सब मिलाकर इसमे १३४२ पद्य है जिनमे श्रीपाल की कथा के बहाने सिद्धचक्र का माहात्म्य बताया गया है। श्रीपालचरित्र का प्रतिपादन करनेवाले और भी आख्यान संस्कृत[1] और गुजराती मे लिखे गये है।

उज्जैनी नगरी मे प्रजापाल नाम का एक राजा था। उसके दो रानियाँ थी, एक सौभाग्यसुंदरी और दूसरी रूपसुंदरी। पहली माहेश्वर कुल से आई थी, और दूसरी श्रावक के घर पैदा हुई थी। पहली की पुत्री का नाम सुरसुंदरी, दूसरी की पुत्री का नाम मदनसुंदरी था। दोनों ने अध्यापक के पास लेख, गणित, लक्षण, छंद, काव्य, तर्क, पुराण, भरतशास्त्र, गीत, नृत्य, ज्योतिष, चिकित्सा, विद्या, मंत्र, तंत्र और चित्रकर्म आदि की शिक्षा प्राप्त की। जब दोनों राजकुमारियाँ विद्याध्ययन समाप्त करके लौटी तो राजा ने उन्हें एक समस्यापद 'पुन्निहि लब्भइ एहु' पूर्ण करने को दिया। सुरसुन्दरी ने पढ़ा—

धणजुव्वणसुवियड्ढपण, रोगरहिअ निअ देहु।
मणवल्लह मेलावडउ, पुन्निहि लब्भइ एहु॥

—धन, यौवन, सुविचक्षणता, रोगरहित देह का होना, और मन के वल्लभ की प्राप्ति, यह सब पुण्य से मिलता है।

मदनसुन्दरी ने निम्नलिखित गाथा पढ़ी—

विणयविवेयपसण्णमणु सीलसुनिम्मलदेहु।
परमप्पह मेलावडउ, पुन्निहि लब्भइ एहु॥

—विनय, विवेक, मन की प्रसन्नता, शील, सुनिर्मल देह और परमपद की प्राप्ति, यह सब पुण्य से मिलता है।

एक दिन राजा ने अपनी पुत्रियो से पूछा कि तुम लोग कैसा वर चाहती हो। सुरसुन्दरी ने उत्तर दिया—

ता सव्वकलाकुसलो, तरुणो वररूवपुण्णलायन्नो।
एरिसउ होइ वरो, अहवा ताओ चिअ पमाण॥

---

1 देखिये जैन ग्रंथावलि, पृष्ठ २३४, १६१।

—जो सब कलाओ मे कुशल हो, तरुण हो और रूप-लावण्य से सपन्न हो, वही श्रेष्ठ वर है, नही तो फिर जैसा आप उचित समझें।

मदनसुदरी ने उत्तर दिया—

जेण कुलबालियाओ न कहति हवेउ एस मज्झ वरो।
जो किर पिऊहिं दिन्नो, सो चेव पमाणियव्वुत्ति ॥

—कुलीन बालिकाये अपने वर के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कहतीं। जो वर माता पिता उनके लिये खोज देते है, वही उन्हें मान्य होता है।

तत्पश्चात् मदनसुन्दरी ने कहा—पिता जी, अपने कर्मों से सब कुछ होता है, पुण्यशील कन्या को खोटे कुल मे देने से भी वह सुखी होती है, और पुण्यहीन कन्या को अच्छे कुल मे देने से भी वह दुख भोगती है। राजा को यह सुनकर बहुत क्रोध आया। उसने सोचा कि यह लडकी तो मेरा कुछ भी उपकार नही मानती, अपने कर्म को ही मुख्य बताती है। राजा ने गुस्से मे आकर एक कोढी से मदनसुदरी का विवाह कर दिया। मदनसुन्दरी ने उस कोढी को अपना पति स्वीकार किया और वह उसकी सेवा शुश्रूषा करती हुई समय यापन करने लगी। कालातर मे सिद्धचक्र के माहात्म्य से कोढी का कोढ नष्ट हो गया और दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे। यही कोढी इस कथा का नायक श्रीपाल है।

श्रीपाल को अनेक मत्र तत्र, रसायनो और जडी बूटियों की प्राप्ति हुई। समुद्रयात्रा के प्रसग पर वडसफर, पवहण, बेडिय (बेडा), वेगड, सिल्ल (सित=पाल), आवत्त (गोल नाव), खुरप्प और बोहित्थ[1] नाम के जलयानों का उल्लेख है। जब जलयान चलाने पर भी नहीं चले तो वणिक् लोगों को

---

1 अगविज्जा के ३३वें अध्याय मे भी जलयानों का उल्लेख मिलता है।

बडी चिन्ता हुई और बत्तीस लक्षणों से युक्त किसी परदेशी की बलि देने का निश्चय किया गया। बब्बरदेश मे पहुँच-कर वहाँ के अधिपति से श्रीपाल का युद्ध होता है, और अन्त मे बब्बर राजकुमारी मदनसेना के साथ श्रीपाल का विवाह हो जाता है। आगे चलकर विद्याधरी कन्या मदनमजूषा से उसका विवाह होता है। सार्थवाह धवलसेठ श्रीपाल की हत्या कर उसकी पत्नियो को हथियाना चाहता है। श्रीपाल को वह समुद्र मे गिरा देता है। श्रीपाल किसी मगर की पीठ पर बैठकर कोंकण के तट पर ठाणा (आजकल भी इसी नाम से प्रसिद्ध) नाम के नगर मे पहुँचता है। यहाँ क्षेत्रपाल, मणिभद्र, पूर्णभद्र, कपिल और पिंगल, प्रतिहारदेव और चक्रेश्वरी देवी का उल्लेख है जो धवलसेठ को मारने के लिये उद्यत हो जाते हैं। और भी कन्याओं से श्रीपाल का विवाह होता है। मरहट्ट, सोरठ, लाड, मेवाड आदि होता हुआ वह अपनी आठों पत्नियो के साथ मालवा पहुँचता है। उज्जैनी मे वह अपनी माता के दर्शन करता है। मदनसुन्दरी को वह पट्टरानी बनाता है और धवलश्रेष्ठी के पुत्र विमल को कनकपट्टपूर्वक श्रेष्ठी पद पर स्थापित करता है। सिद्धचक्र की वह पूजा करता है और अमारि की घोषणा करता है। इस प्रकार राजा श्रीपाल अपने राज्य का सचालन करता हुआ अपने कुटुब परिवार के साथ धर्मध्यानपूर्वक समय बिताता है।

रयणसेहरीकहा (रत्नशेखरीकथा)

जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणि प्राकृत गद्य पद्यमय इस प्राकृत ग्रथ के लेखक हैं जो पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में हुए है।[1] इस ग्रन्थ की रचना चित्तौड मे हुई है। जिनहर्ष-गणि ने वसुपालचरित्र, सम्यक्त्वकौमुदी तथा विंशतिस्थानक

---

१ आत्मानद जैन ग्रन्थमाला में वि० स० १९७४ में निर्णयसागर बबई से प्रकाशित।

चरित्र आदि की भी रचना की है। ये सस्कृत और प्राकृत के बडे पडित और अनुभवी विद्वान जान पडते है। उन्होंने बडी सरस और प्रौढ शैली मे इस कथा की रचना की है। रत्नशेखरी कथा मे पर्व और तिथियों का माहात्म्य बताया है। गौतम गणधर भगवान महावीर से पर्वों के फल के सबध मे प्रश्न करते हैं और उसके उत्तर मे महावीर राजा रत्नशेखर और रत्नवती की कथा सुनाते हैं। रत्नशेखर रत्नपुर का रहनेवाला था, उसके महामत्री का नाम था मतिसागर। रत्नशेखर राजकुमारी रत्नवती के रूप की प्रशसा सुनकर व्याकुल हो उठता है। मतिसागर जोगिनी का रूप धारण कर सिंहलद्वीप[1] की राजकुमारी रत्नवती से मिलने जाता है। कुशलवार्ता के पश्चात् राजकुमारी जोगिनी से उसके निवास-स्थान के सबध मे प्रश्न करती है। जोगिनी उत्तर देती है—

कायापाटणि हस राजा फुरइ पवनतलार।
तीणइ पाटणि वसइ जोगी जाणइ जोगविचार॥
एकइ मढली पाचजणाहो छट्ठहो वसइ चण्डालो।
नीकालता न निकलइ रे तीण किओ विटालो॥

—कायारूपी नगरी मे हसरूपी राजा रहता है, वहाँ पवनरूपी नगर-रक्षक प्रकट होता है। उस नगरी मे जोगी बसता है, वह जोग का विचार करना जानता है। एक मडली मे पाँच आदमी हैं, छठा चाण्डाल रहता है। उसे निकालने से भी वह नहीं निकलता, उसने सब कुछ बिगाड दिया है।

योग विचार के सबध मे प्रश्न करने पर जोगिनी ने 'वज्राग-योनिगुदमध्य' को प्रभिन्न करने पर मोक्ष की प्राप्ति बताई।

तत्पश्चात् रत्नवती ने अपने वर की प्राप्ति के सबध मे

---

१ डॉक्टर गौरीशकर हीराचद ओझा ने इसकी पहचान चित्तौड से करीब ४० मील पूर्व में सिंगोली नामक स्थान से की है, ओझा निबन्ध सग्रह, द्वितीय भाग, पृ० २८१।

जोगिनी से पूछा। उसने उत्तर दिया कि जो कोई कामदेव के मदिर मे द्यूतक्रीडा करता हुआ वहाँ पर तुम्हारे प्रवेश को रोकेगा, वही तुम्हारा वर होगा।

मतिसागर मत्री ने लौटकर सब समाचार राजा रत्नशेखर को सुनाया। राजा अत्यत प्रसन्न हुआ। राजा ने अपने मत्री के साथ सिहलद्वीप की ओर प्रयाण किया और वहाँ कामदेव के मदिर मे पहुँचकर वह अपने मत्री के साथ द्यूतक्रीडा करने लगा। रत्नवती भी अपनी सखियों को लेकर वहाँ कामदेव की पूजा करने आई। मदिर मे कुछ पुरुषो को देखकर रत्नवती की सखी ने उन लोगो से कहा कि हमारी स्वामिनी राजकुमारी किसी पुरुष का मुँह नही देखती, वह यहाँ कामदेव की पूजा करने आई है, इसलिये आप लोग मदिर से बाहर चले जाये। मत्री ने उत्तर दिया कि हमारा राजा रत्नशेखर बहुत दूर से आया है, अपने परिवार के साथ मिलकर वह द्यूतक्रीडा कर रहा है, वह किसी नारी का मुँह नही देखता, इसलिये तुम अपनी स्वामिनी को कहो कि अभी मदिर मे प्रवेश न करे। सखी ने राजा के रूप की प्रशसा करते हुए राजकुमारी से जाकर कहा कि कोई अपूर्व रूपधारी राजा मदिर मे बैठा हुआ द्यूतक्रीडा कर रहा है। राजकुमारी को तुरत ही जोगिनी के वचनो का स्मरण हो आया। हर्ष से पुलकित होकर उसने मदिर मे प्रवेश किया। इतने मे राजकुमारी को देखकर राजा ने वस्त्र से अपना मुँह ढँक लिया। रत्नवती ने मुँह ढँकने का कारण पूछा तो मत्री ने उत्तर दिया कि हमारे राजा नारियो का मुँह नही देखते। रत्नवती ने प्रश्न किया कि नारियों ने ऐसा कौन सा पाप किया है। मत्री ने उत्तर दिया—

केता कहुउ नारितणा विचार कुडा करइ कोडिगमे अपार।
बोलइ सविहुनु विरूडँ तिनीटु जाणइ नही बोरतणउ जे बीट ॥१॥
कथा न पोथे न पुराणि कीधी जे बात देवातनि न प्रसिद्धी।
किमइ न सुझइ किहिरहि जि बोल नारी पिसाची ति भणइ निटोल॥२॥
कुडातणी कोडि करइ करावइ नारी सदा साचपुणु जणावइ।

रूडातणी रहाडि सदैव माडइ नीचातणि सगि स्वधर्मछाडइ ॥३॥[1]

—नारी के विचारों के सबध मे मैं कितना कहूँ, वे कितना अपार कूट कपट करती है, सौगन्ध खा-खाकर झूठ बोलती है, बेर की गुठली जितना भी उनको बात का ज्ञान नही। जो बात न कथा मे है, न पोथी पुराण मे है, देवताओ मे भी जो बात प्रसिद्ध नही, और जो बात किसी को नहीं सूझती, वह निष्ठुर बोल पिशाची नारी बोलती है। वह करोडो कूट कपट स्वय करती है, और दूसरों से कराती है, इसमे वह अपना सयापन जता देती है। रूढियों से वह सदैव चिपटी रहती है, लकीर की फकीर होती है, और नीच के सग से अपने धर्म को छोड देती है।

लेकिन रत्नवती ने कहा कि ये सब बाते कुलीन स्त्रियों के सबध मे नहीं कही जा सकतीं, जो ऐसा कहता है उसका मनुष्य जन्म ही निरर्थक है।

अस्तु, अन्त मे रत्नशेखर और रत्नवती का बडी धूमधाम से विवाह होता है। दोनों रत्नपुर लौट आते हैं और बडे सजधज के साथ नगरी मे प्रवेश करते हैं।[2] दोनों जैनधर्म का पालन करते है तथा व्रत, उपवास, और प्रौषध आदि मे अपना समय यापन करते है।

एक बार कलिगदेश के राजा ने जनपद पर चढाई कर दी। सामन्तो ने क्षुब्ध होकर जब राजा रत्नशेखर को यह सवाद सुनाया तो उत्तर मे उन्होंने कहा कि आज मेरा प्रौषध है, और इस प्रकार की पापानुबधी कथा तुम लोगो को नही करनी चाहिये। किसी माननीय व्यक्ति ने राजा से निवेदन किया—महाराज! ऐसे समय क्षत्रिय कुल को कलकित करनेवाले तथा कायर जनो द्वारा सेवित इस धर्म का आपको पालन नही करना चाहिये।

१ यहाँ तणा, तणउ, तणी, कीधी, माडइ आदि रूप गुजराती के हैं।

२ मिलाइये—मलिक मुहम्मद जायसी की 'पद्मावत' और जटमल के 'गोरा बादल की बात' की कथा के साथ।

लेकिन राजा ने किसी की बात न मानी और वह आत्मधर्म की मुख्यता का ही प्रतिपादन करता रहा। यहाँ बताया गया है कि जैनधर्म के प्रभाव से विजयलक्ष्मी राजा रत्नशेखर को ही प्राप्त हुई।

एक बार जब राजा ने प्रौषध उपवास कर रक्खा था तो ऋतुस्नाता रत्नवती पुत्र की इच्छा से उसके पास गई लेकिन राजा ने कहा कि किसी भी हालत मे वह अपने व्रत को भग नहीं कर सकता। रत्नवती को बडी निराशा हुई। वह कुपित होकर किसी दास के साथ हाथी पर बैठकर भाग गई। राजा ने घोडे पर बैठकर उसका पीछा किया, लेकिन उसे न पा सका। यहाँ भी यही दिखाया गया है कि यह केवल इन्द्रजाल था और वास्तव में राजा और रानी दोनों ही धार्मिक प्रवृत्तियों में अपना समय यापन कर रहे थे।

प्राकृत और सस्कृत की यहाँ अनेक सूक्तियाँ दी हुई है—

जा दव्वे होइ मई, अहवा तरुणीसु रूववन्तीसु।
ता जइ जिणवरधम्मे, करयलमज्झट्ठिआ सिद्धी ॥

—जितनी बुद्धि धन मे अथवा रूपवती तरुणियो मे होती है, उतनी यदि जिनधर्म के पालन में लगाई जाये तो सिद्धि हाथ मे आई हुई समझिये।

जिनप्रतिमा और जिनभवन का निर्माण कराना तथा जिन-पूजा करना परम पवित्र कार्य समझा जाने लगा था।

देखिये—

पुत्र प्रसूते कमला करोति राज्य विधत्ते तनुते च रूपम्।
प्रमार्ष्टि दुक्ख दुरितं च हन्ति जिनेन्द्रपूजा कुलकामधेनु ॥

—जिनेन्द्र पूजा से पुत्र की उत्पत्ति होती है, लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, राज्य मिलता है, मनुष्य रूपवान होता है, इससे दुख और पाप का नाश होता है, जिनेन्द्रपूजा कुल की कामधेनु है।

व्रत, उपवास और पर्वों का महत्व भी बहुत बढ़ता जा रहा था—

न्हाण चीवरधोअण मत्थय गुथण अबभचेर च ।
खडण पीसण पीलण वज्जेयव्वाइ पव्वदिणे ॥

—स्नान करना, वस्त्र धोना, सिर गूथना, अब्रह्मचर्य, खोटना, पीसना और पेलना यह सब पर्व के दिनों में वर्जित है।

वर कन्या के सयोग के सबध मे उक्ति है—

कत्थवि वरो न कन्ना कत्थवि कन्ना न सुदरो भत्ता ।
वरकन्ना सजोगो अणुसरिसो दुल्लहो लोए ॥

—कभी वर अच्छा मिल जाता है लेकिन कन्या अच्छी नहीं होती, कभी कन्या सुन्दर होती है, लेकिन वर सुन्दर नहीं मिलता। वर और कन्या का एक दूसरे के अनुरूप मिलना इस लोक मे दुर्लभ है।

वियोग दुख का वर्णन देखिये—

दिण जायइ जणवत्तडी पुण रत्तडी न जाइ ।
अणुरागी अणुरागीआ सहज सरिषउ माइ ॥

—दिन तो गपशप मे बीत जाता है, लेकिन रात नहीं बीतती। हे मा ! अनुरागी अनुरागी से मिलकर एक समान हो जाता है।

स्त्री को कौन सी वस्तुएँ प्रिय होती है—

थीअह तिन्नि पियारडा कलि कज्जल सिन्दूर ।
अनइ विसेणि पियारडा दूध जमाई तूर ॥

—स्त्रियों को तीन वस्तुएँ प्रिय होती है—कलह, काजल और सिन्दूर। और इन से भी अधिक उनकी प्रिय वस्तुएँ है—दूध, जमाई और बाजा।

महिवालकहा (महीपालकथा)

महिवालकहा प्राकृत पद्य में लिखी हुई वीरदेवगणि[1] की रचना है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से इतना ही पता चलता है

---

१ श्रीहीरालाल द्वारा सशोधित यह ग्रथ विक्रम सवत् १९९८ में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

कि देवभद्रसूरि चन्द्रगच्छ मे हुए थे। उनके शिष्य सिद्धसेनसूरि और सिद्धसेनसूरि के शिष्य मुनिचन्द्रसूरि थे। वीरदेवगणि मुनिचन्द्र के शिष्य थे। विषयवस्तु के विवेचन को देखते हुए यह रचना अर्वाचीन मालूम होती है।

महीपाल उज्जैनी नगरी के राजा के पास रहता था। वह अनेक कलाओ मे निष्णात था। एक बार राजा ने गुस्से मे आकर इसे अपने राज्य से निकाल दिया। अपनी पत्नी के साथ घूमता फिरता महीपाल भडौंच मे आया और वहाँ से जहाज मे बैठकर कटाहद्वीप की ओर चला गया। रास्ते मे जहाज भग्न हो गया और बडी कठिनाई से किसी तरह वह किनारे पर लगा। कटाहद्वीप के रत्नपुर नगर मे पहुँच कर उसने राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ विवाह किया। इसके बाद वह चन्द्रलेखा के साथ जहाज मे बैठकर अपनी पूर्व पत्नी सोमश्री की खोज मे निकला। देखभाल के लिए राजा का अथर्वण नामका मत्री उनके साथ चला। रास्ते मे राजपुत्री को प्राप्त करने और धन के लोभ से उसने महीपाल को समुद्र मे धक्का दे दिया। राजपुत्री चन्द्रलेखा बडी दुखी हुई, और वह चक्रेश्वरी देवी की उपासना मे लीन हो गई। उधर महीपाल समुद्र को तैरकर किसी नगर मे आया और उसने शशिप्रभा के साथ विवाह किया। शशिप्रभा से उसने खट्वा, लकुट और सर्वकामित विद्यायें सीखीं। उसके बाद महीपाल रत्नसचयपुर नगर मे आया, और यहाँ चक्रेश्वरी के मन्दिर मे उसे अपनी तीनों स्त्रियाँ मिल गईं। नगर के राजा ने महीपाल को सर्वगुणसम्पन्न जानकर मत्री पद पर बैठाया और अपनी पुत्री चन्द्रश्री का उससे विवाह कर दिया। महीपाल अपनी चारों स्त्रियों को लेकर उज्जैनी वापिस लौटा। अन्त मे जैनधर्म की दीक्षा ग्रहण कर महीपाल ने मोक्ष प्राप्त किया।

इस कथा मे नवकारमत्र का प्रभाव, चण्डीपूजा, शासनदेवता की भक्ति, यक्ष और कुलदेवी की पूजा, भूतों की बलि, जिनभवन का निर्माण, केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर देवों द्वारा कुसुम-वर्षा,

आचार्यों का कनक के कमल पर आसीन होना आदि विषयों का वर्णन किया है। वेश्यासेवन को वर्जित बताया है। सोने चाँदी (सोवन्नियहट्ट) और कपडे की दूकानों (दोसियहट्ट) का उल्लेख है। उडते हुए चिड्डे की (उड्डिय चिड्ड व्व) उपमा दी गई है। डिड्डिरिया शब्द का मेढकी के अर्थ मे प्रयोग हुआ है।

इसके सिवाय आरामसोहाकथा (सम्यक्त्वसप्तति मे से उद्धृत), अजनासुन्दरीकथा, अतरगकथा, अनन्तकीर्तिकथा, आर्द्रकुमारकथा, जयसुन्दरीकथा, भव्यसुन्दरी कथा, नरदेवकथा, पद्मश्रीकथा, पूजाष्टककथा, पृथ्वीचन्द्रकथा, प्रत्येकबुद्धकथा, ब्रह्मदत्ताकथा, वत्सराजकथा, विश्वसेनकुमारकथा, शखकलावतीकथा, शीलवतीकथा, सर्वांगसुन्दरीकथा, सहस्रमल्लचौरकथा, सिद्धसेनादिदिवाकरकथा, सुरसुन्दरनृपकथा, सुव्रतकथा, सुसमाकथा, सोमश्रीकथा, हरिश्चन्द्रकथानक आदि कितने ही कथाग्रन्थो की प्राकृत मे रचना की गई। इसी प्रकार मौन एकादशीकथा आदि कथाये तिथियो को लेकर तथा गडयस्सकथा, धर्माख्यानककोश, मगलमालाकथा आदि सत्रह कथाये लिखी गई।[1]



१ देखिये जैन ग्रथावलि, श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, मुबई, वि० स० १९६५, पृष्ठ २४७–२६८।

औपदेशिक कथा-साहित्य

धर्मदेशना जैनकथा साहित्य का मुख्य अग रहा है। इसलिये इस साहित्य मे कथा का अश प्राय कम रहता है, सयम, शील, दान, तप, त्याग और वैराग्य की भावनाओं की ही इनमे प्रधानता रहती है। जैनधर्म के उपदेशो का प्रचार करने के लिये ही जैन आचार्यों ने इस साहित्य की रचना की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपदेशमाला नाम के अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। उदाहरण के लिये धर्मदास, पद्मसागर, मलधारि हेमचन्द्र आदि ने उपदेशमाला, तथा जयसिह और यशोदेव आदि विद्वानो ने धर्मोपदेशमाला नाम के पृथक् पृथक् कथा-ग्रन्थों की रचना की, जयकीर्ति ने सीलोवएसमाला लिखी। हरिभद्र ने उपदेशपद, मुनिसुदर ने उपदेशरत्नाकर, शातिसूरि ने धर्मरत्न, आसड ने उपदेशकदलि आदि उपदेशात्मक ग्रथ लिखे। इसी प्रकार उपदेशचिंतामणि, उपदेशरत्नकोश, सवेगरग-शाला, विवेकमजरी आदि कितने ही कथाग्रन्थों की रचना हुई जिनमे त्याग-वैराग्य को मुख्य बताया गया।

उवएसमाला (उपदेशमाला)

विविध पुष्पों से गूँथी हुई माला की भाँति धर्मदासगणि ने पूर्व ऋषियों के दृष्टातपूर्वक जिनवचन के उपदेशों को इस उपदेश-माला मे गुफित किया है।[1] इस कथा को वैराग्यप्रधान कहा

---

1 यह ग्रथ जैनधर्मप्रसारकसभा की ओर से सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ है, रत्नप्रभसूरि (सन् ११८२) की दोघट्टी टीका सहित आनदहेमजैनग्रथमाला में सन् १९५८ में प्रकाशित। यहाँ प्राकृत पद्यों को सस्कृत में समझाया गया है और कथाएँ प्राकृत में दी हुई हैं।

गया है जो सयम और तप मे प्रयत्न न करनेवाले व्यक्तियो को सुखकर नहीं होती। उपदेशमाला मे कुल मिलाकर ५४४ गाथाये है। ग्रन्थकार ने अपनी इस कृति को शाति देनेवाली, कल्याणकारी, मगलकारी आदि विशेषणों द्वारा उल्लिखित किया है। जैन परम्परा के अनुसार धर्मदासगणि महावीर के समकालीन बताये गये है, लेकिन वे ईसवी सन् की चौथी पॉचवी शताब्दी के विद्वान जान पडते है। इस ग्रन्थ पर जयसिंह, सिद्धर्षि, रामविजय और रत्नप्रभसूरि ने टीकाये लिखी हैं। सिद्धर्षि की हेयोपादेय नामक टीका पर अज्ञातकर्तृक बृहद्-वृत्ति की रचना हुई। उदयप्रभ ने भी उवएसमाला के ऊपर कर्णिकावृत्ति लिखी। ये दोनो वृत्तियॉ अप्रकाशित हैं। आगे चलकर इसके अनुकरण पर धर्मोपदेशमाला आदि की रचना हुई। इसमे चार विश्राम है। पहले विश्राम में रणसिंह, चदनबाला, प्रसन्नचन्द्र, भरत और ब्रह्मदत्त आदि की कथाये हैं। दूसरे विश्राम मे मृगावती, जम्बूस्वामी, भवदेव, कुबेरदत्त, मकरदाढा वेश्या, भौताचार्य, चिलातिपुत्र, हरिकेश, वज्रस्वामी, वसुदेव आदि की कथाये है। जम्बूस्वामी की कथा में योगराज और एक पुरुष का सवाद है। तीसरे विश्राम में शालिभद्र, मेतार्यमुनि, प्रदेशी राजा, कालकाचार्य, वारत्रक मुनि, सागरचन्द्र, गोशाल, श्रेणिक, चाणक्य, आर्य महागिरि, सत्यकि, अन्निकापुत्र, चार प्रत्येक बुद्ध आदि की कथाये है। चतुर्थ विश्राम मे शेलकाचार्य, पुडरीक-कडरीक, दर्दुर, सुलस, जमालि आदि की कथाये हैं। शिष्य के सबध मे कहा है—

थद्धा छिद्दप्पेही, अवण्णवाई सयमई चवला।
वका कोहणसीला, सीसा उव्वेअगा गुरुणो॥
रूसइ चोइज्जतो, वहई हियएण अणुसय भणिओ।
न य कम्हि करणिज्जे, गुरुस्स आलो न सो सीसो॥

—अभिमानी, छिद्रान्वेषण करनेवाले अवर्णवादी, स्वयमति, चपल, वक्र और क्रोधी स्वभाववाले शिष्य गुरु के लिये उद्वेग-

कारी होते है। जो कुछ कहने पर रुष्ट हो जाते है, कही हुई बात को मन मे रखते है, कर्त्तव्य का ठीक से पालन नही करते, ऐसे शिष्य शिष्य नही कहे जा सकते।

राग द्वेष के सम्बन्ध मे उक्ति है—

को दुक्ख पाविज्जा ? कस्स व सुक्खेहि विम्हओ हुज्जा ?
को व न लभिज्ज मुक्ख ? रागद्दोसा जइ न हुज्जा ?

—यदि राग द्वेष न हो तो कौन दुख को प्राप्त करे ? कोन सुख पाकर विस्मित हो ? ओर किसे मोक्ष की प्राप्ति न हो ?

कपटग्रथि के सबध मे कहा है—

जाणिज्जइ चिंतिज्जइ, जम्मजरामरणसभव दुक्ख।
न य विसयेसु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवडगठी॥

—यह जीव जन्म, जरा और मरण से उत्पन्न होनेवाले दुख को जानता है, समझता है, फिर भी विषयो से विरक्त नही होता। कपट की यह गॉठ कितनी दृढ बॅधी हुई है !

विनय को मुख्य बताया है—

विणओ सासणे मूल, विणीओ सजओ भवे।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ?

—शासन मे विनय मुख्य है। विनीत ही सयत हो सकता है। जो विनय से रहित है उसका कहॉ धर्म है और कहॉ उसका तप है ?

उवएसपद (उपदेशपद)

उपदेशपद याकिनीमहत्तरा के धर्मपुत्र और विरहाक पद से प्रख्यात हरिभद्रसूरि की रचना है, जो कथा साहित्य का अनुपम भण्डार है। ग्रन्थकर्त्ता ने धर्म कथानुयोग के माध्यम से इस कृति मे मन्द बुद्धिवालों के प्रबोध के लिए जैनधर्म के उपदेशों को सरल लौकिक कथाओ के रूप मे सगृहीत किया है। इसमें १०३९ गाथाये है जो आर्या छन्द मे लिखी गई है। उपदेशपद के ऊपर स्याद्वादरत्नाकर के प्रणेता वादिदेव सूरि के गुरु मुनि-

चन्द्रसूरि की सुखबोधिनी नाम की टीका है जो प्राकृत और सस्कृत मे पद्य और गद्य मे लिखी है, और अनेक सुभाषितों और सूक्तियों से भरपूर है, अनेक सुभाषित अपभ्रश मे है। मुनिचन्द्र सूरि प्राकृत और सस्कृत भाषाओ के बडे अच्छे विद्वान् थे, और अणहिल्लपाट नगर मे विक्रम सवत् ११७४ मे उन्होंने इस टीका की रचना की थी।[1]

सर्वप्रथम मनुष्य-जन्म की दुर्लभता बताई गई है। चोल्लक, पाशक, धान्य, द्यूत, रत्न, स्वप्न, चक्र, चर्म, यूप और परमाणु नामक दस दृष्टान्तों द्वारा इसका प्रतिपादन किया है। धान्य का उदाहरण देते हुए बताया है कि यदि समस्त भरत क्षेत्र के धान्यों को मिला कर उनमे एक प्रस्थ सरसों मिला दी जाये तो जैसे किसी दुर्बल और रोगी वृद्धा स्त्री के लिये उस थोडी सी सरसों को समस्त धान्यो से पृथक् करना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार अनेक योनियों मे भ्रमण करते हुए जीव को मनुष्य जन्म की प्राप्ति दुर्लभ है। रत्न के दृष्टान्त द्वारा कहा गया है कि जैसे समुद्र मे किसी जहाज के नष्ट हो जाने पर खोये हुए रत्न की प्राप्ति दुर्लभ है, वैसे ही मनुष्य जन्म की प्राप्ति भी दुर्लभ समझनी चाहिये। विनय का प्रतिपादन करने के लिये श्रेणिक का दृष्टात दिया गया है। इस प्रसग मे वृद्धकुमारी (वड्डुकुमारी) की आख्यायिका दी है। सूत्रदान मे नन्दसुन्दरी की कथा का उल्लेख है। बुद्धि के चार भेद बताये है—औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी। अनेक पदों द्वारा इनके विस्तृत उदाहरण देकर समझाया गया है। भरतशिला नामक पद मे रोहक की कथा दी है। राजा उसकी अनेक प्रकार से बुद्धि की परीक्षा कर अन्त मे उसे अपना प्रधान मत्री बना लेता है। और भी अनेक पहेलियों और प्रश्नोत्तरों के रूप मे मनोरजक आख्यान यहाँ

---

१ मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बडौदा से सन् १९२३ ५ में दो भागों में प्रकाशित।

दिये गये है जो भारतीय कथा-साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

एक बार किसी बौद्ध भिक्षु ने गिरगिट को अपना सिर धुनते हुए देखा। उसी समय वहाँ एक श्वेताम्बर साधु उपस्थित हुआ। बौद्ध भिक्षु ने उसे देख कर हँसी मे पूछा—"हे क्षुल्लक! तुम तो सर्वज्ञ के पुत्र हो,[1] बताओ यह गिरगिट अपना सिर क्यो धुन रहा है?" क्षुल्लक ने तुरत उत्तर दिया,—"शाक्यव्रति! तुम्हें देख कर चिन्ता से आकुल हो यह ऊपर नीचे देख रहा है। तुम्हारी डाढी मूँछ देखकर इसे लगता है कि तुम भिक्षु हो, लेकिन जब वह तुम्हारे लम्बे शाटक (चीवर) पर दृष्टि डालता है तो मालूम होता है तुम भिक्षुणी हो। इसके सिर धुनने का यही कारण है।" भिक्षु बेचारा निरुत्तर हो गया।

एक बार किसी रक्तपट (बौद्ध भिक्षु) ने क्षुल्लक से प्रश्न किया—"इस वेन्यातट नामक नगर मे कितने कौए है?" क्षुल्लक ने उत्तर दिया—"साठ हजार।" बौद्ध भिक्षु ने पूछा—"यदि इससे कम ज्यादा हों तो?" क्षुल्लक ने उत्तर दिया—"यदि कम हैं तो समझ लेना चाहिये कि कुछ विदेश चले गये है, और अधिक है तो समझना चाहिये कि बाहर से कुछ मेहमान आ गये है।"

किसी बालक की नाक मे खेलते-खेलते लाख की एक गोली चली गई। जब बालक के पिता को पता लगा तो उसने एक सुनार को बुलाया। सुनार ने गरम लोहे की एक सलाई नाक मे डालकर लाख की गोली को तोड दिया। उसके बाद उसने सलाई को पानी मे डालकर ठंढा कर लिया। फिर उसे नाक मे डालकर गोली बाहर खींच ली।

एक बार मूलदेव और कण्डरीक नाम के धूर्त कहीं जा रहे थे। रास्ते मे उन्होंने बैलगाडी मे अपनी तरुण पत्नी के साथ

1 जैनधर्म में सर्वज्ञ की मान्यता का यह चिह्न कहा जा सकता है।

एक पुरुष को जाते हुए देखा। तरुणी को देखकर कडरीक का मन चचल हो उठा। उसने यह बात मूलदेव से कही। मूलदेव ने कण्डरीक को एक वृक्षों के झुरमुट मे छिपा दिया, और स्वय रास्ते मे आकर खडा हो गया। जब वह पुरुष अपनी स्त्री के साथ गाडी मे बैठा हुआ वहाँ पहुँचा तो मूलदेव ने उससे कहा—"देखो, मेरी पत्नी वृक्षों के झुरमुट मे लेटी हुई है, वह प्रसवकाल में है, इसलिये जरा देर के लिये अपनी पत्नी को वहाँ भेज दो। पुरुष ने मूलदेव की प्रार्थना स्वीकार कर ली। कुछ समय पश्चात् कण्डरीक के साथ क्रीडा समाप्त हो चुकने पर वह मूलदेव के समक्ष उपस्थित हो हँसती हुई उससे कहने लगी—"हे प्रिय! तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है।" फिर अपने पति को लक्ष्य करके उसने निम्नलिखित दोहा पढा—

खडि गड्डुडी बइल्ल तुहुँ,' बेटा जाया ताँह।
रणिणवि हुँति मिलावडा मित्त सहाया जाँह ॥

—तुम्हारी गाडी और बैल खडे हुए है, उसके बेटा हुआ है। जिसके मित्र सहायक होते है उसका अरण्य मे भी मिलाप हो जाता है।

कोई बौद्ध भिक्षु सन्ध्या के समय चलते-चलते थक कर किसी दिगबर साधुओं की वसति (अवाउडवसही) मे ठहर गया। दिगबर साधुओं के उपासकों को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने उसे दरवाजेवाले एक कोठे मे रख दिया। कुछ ही देर बाद जब वह भिक्षु सोने लगा तो, वहाँ एक दासी उपस्थित हुई और उसने झट से अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया। बौद्ध भिक्षु समझ गया कि ये लोग मुझे बदनाम करना चाहते है। उसने कोठरी मे जलते हुए दीपक मे अपना चीवर जला डाला। सयोगवश वहीं पर उसे एक पीछी भी रक्खी हुई मिल गई। बस प्रात काल दिगम्बर वेष मे अपने दाहिने हाथ से दासी को पकड कर जब वह कोठरी से बाहर निकला तो लोगों ने उसे देखा। भिक्षु ऊँचे स्वर मे चिल्ला कर दिगम्बर

साधुओं की ओर लक्ष्य करके कहने लगा—'जैसा मैं हू, वैसे ही ये सब है।"

वैनयिक बुद्धि के उदाहरण देते हुए टीकाकार ने १८ प्रकार की लिपियों का उल्लेख किया है—हसलिपि, भूतलिपि, यक्षी, राक्षसी, उड्डी, यवनी, फुडुक्की, कीडी, दविडी, सिंधविया, मालविणी, नटी, नागरी, लाटलिपि, पारसी, अनिमित्ता, चाणक्यी, मूलदेवी। खडिया मिट्टी के अक्षर बनाकर खेल खेल मे लिपि का ज्ञान कराया जाता था।

रावण के चरित्र का उल्लेख करते हुए यहाँ राजा दशरथ की तीन प्रिय रानियाँ बताई गई है—कौशल्या, सुमित्रा और केकयी। इन्होने क्रम से राम, लक्ष्मण, और भरत को जन्म दिया। किसी समय दशरथ् ने रानी केकयी से प्रसन्न होकर उसे वर दिया। केकयी ने कहा, समय आने पर माँगूँगी। राम के बडे होने पर जब दशरथ ने उसे अपने पद पर बैठाना चाहा तो केकयी ने भरत को राज्य देने के लिये राजा से कहा। रामचन्द्र को इस बात का पता लगा और वे लक्ष्मण और सीता सहित वन जाने के लिये उद्यत हो गये। तीनो महाराष्ट्र मडल के किसी गहन वन मे जाकर रहने लगे। रावण का पहले से ही सीता के प्रति दृढ अनुराग था। वह छल करके वहाँ आया और पुष्पक विमान मे सीता को बैठाकर लकापुरी ले गया। हनुमान ने रामचन्द्र को सीता के लका मे होने का समाचार दिया। तत्पश्चात् राम ने लका पहुँच कर अपने बधु के साथ रावण का वध कर सीता को प्राप्त किया। चौदह वर्ष के पश्चात् राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या लौटे। राम की अनुज्ञापूर्वक लक्ष्मण का अभिषेक किया गया। कुछ समय बीतने पर लोगों ने रावण के घर रहने के कारण सीता पर शीलभ्रष्ट होने का आरोप लगाया। यह देखकर एक दिन सीता की किसी सौत ने अपने रूप के लिये ससार भर मे प्रसिद्ध रावण का चित्र बनाने के लिये सीता से अनुरोध किया। लेकिन सीता रावण

के केवल पैरों का ही चित्र बना सकी (उसके ऊपर सीता की दृष्टि ही नहीं पहुँची थी)। इस चित्र को अपनी कुटिल बुद्धि से सीता की सौत ने रामचन्द्र को दिखाते हुए कहा—देखिये महाराज, अभी भी यह रावण का मोह नही छोडती। यह जानकर रामचन्द्र सीता से बहुत असतुष्ट हुए।[1]

गूढाम्रसूत्र की पिडपरीक्षा मे पादलिप्त आचार्य का उदाहरण दिया है। पारिणामिकी बुद्धि के उदाहरण मे वज्रस्वामी के चरित का वर्णन है। स्तूपेन्द्र के उदाहरण मे कूलवालग नामक ऋषि का आख्यान है। यह ऋषि गुरु के शाप से तापस आश्रम मे जाकर रहने लगा। मागधिका वेश्या ने उसे खाने के लिये लड्डू दिये और वह वेश्या के वशीभूत हो गया। आगे चलकर वह वैशाली नगरी के विनाश का कारण हुआ।

किसी राजा की सभा मे कोई भी मत्री नहीं था। उसे सुमति नाम के किसी अधे ब्राह्मण का पता लगा। राजा ने रास्ते मे लगी हुई बेर की झाडी, अश्व ओर कन्याओं की परीक्षा करा कर उसे मत्री पद पर नियुक्त किया। वेद का रहस्य समझाने के लिये गुरु ने पर्वतक और नारद को वध करने के लिये एक एक बकरा देकर उनकी परीक्षा की। अहिंसा को सर्व धर्मों का सार कहा है। आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्ति का यहाँ आख्यान दिया है। दशार्णपुर एडकक्षपुर नाम से भी कहा जाता था, इसकी उत्पत्ति का निदर्शन किया है। गजाग्रपद[2]

---

१ व्रजभाषा के लोकगीतों में यह प्रसग आता है। अन्तर केवल इतना ही है कि सौत का स्थान यहाँ ननद को मिलता है। देखिये डाक्टर सत्येन्द्र, व्रजलोक साहित्य का अध्ययन, पृ० १२७–१२८।

२ गजाग्रपदगिरि का दूसरा नाम दशार्णकूट था। यह दशार्णपुर (एडकाक्षपुर, एरछ, जिला झाँसी) में अवस्थित था। गजाग्रपदगिरि को इन्द्रपद नाम से भी कहा गया है। इसके चारों ओर तथा ऊपर और नीचे बहुत से गाँव थे। देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृ० २८४, २८३।

तीर्थ मे आचार्य महागिरि ने पादोपगमन धारण कर मुक्ति प्राप्त की। अवन्तिसुकुमाल का आख्यान वर्णित है। शुद्ध आज्ञा के बिना क्रियाफल की शून्यता बताई गई है। गोविन्दवाचक का आख्यान दिया है। ये बौद्ध धर्म के अनुयायी महावादी थे और श्रीगुप्तसूरि से वाद मे पराजित होकर इन्होंने जैनधर्म मे दीक्षा ग्रहण की थी। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की कथा दी गई है।

दूसरे भाग मे देव द्रव्य का स्वरूप और देव द्रव्य के रक्षण का फल प्रतिपादित किया है। व्रतो को समझाने के लिये सुदर्शन सेठ आदि के उदाहरण दिये है। अणुव्रत पालन मे सोमा की कथा दी है। उपकथाओं मे झुटन वणिक् की एक सरस कथा दी है, इसमें रूपक द्वारा धर्म का उपदेश दिया गया है। धन सेठ के पुत्र और शख सेठ की पुत्री दोनों का विवाह हो गया। दुर्भाग्य से धन-सम्पत्ति नष्ट हो जाने से वे दरिद्र हो गये। धन-पुत्र की पत्नी ने अपने पति को उसके मायके जाकर झुटणक नामका पशु लाने के लिये कहा। उसने कहा कि इस पशु के रोमों से कीमती कम्बल तैयार कर हम लोग अपनी आजीविका चलायेंगे, लेकिन तुम रात दिन उसे अपने साथ रखना, नहीं तो वह मर जायेगा। अपनी पत्नी के कहने पर धन पुत्र झुटणक को अपने श्वसुर के घर से ले आया, लेकिन उसे एक बगीचे मे छोडकर घर मे अपनी पत्नी से मिलने चल दिया। पत्नी के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि उसे तो वह एक बगीचे मे छोड आया है। यह सुनकर उसकी पत्नी ने अपना सिर धुन लिया। इस उदाहरण द्वारा यहाँ बताया गया है कि जैसे धन पुत्र नाम का ससारी जीव अपनी पत्नी के उत्साहपूर्ण वचनों को सुनकर झुटणक को पाने के लिये अपने श्वसुर के यहाँ गया और उसे अपने घर ले आया, इसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से यह जीव गुरु के पास उपस्थित होकर धर्म प्राप्त करना चाहता है, और धर्म को वह प्राप्त कर भी लेता है। लेकिन जैसे धन-पुत्र मन्दभाग्य के कारण लोकोपहास के भय से पशु को छोड़ देता है, उसी

प्रकार दीर्घससारी होने के कारण धर्म को प्राप्त करके भी यह जीव अज्ञान आदि के कारण उसे सुरक्षित नहीं रख सकता।

धर्म आदि का लक्षण प्रतिपादन करते हुए उपदेशपद मे कहा है—

को धम्मो जीवदया, किं सोक्खमरोग्गया उ जीवस्स।
को णेहो सब्भावो, कि पंडिच्च परिच्छेओ॥
किं विसम कज्जगती, किं लद्धव्व जणो गुणग्गाही।
किं सुहगेज्झ सुयणो, किं दुग्गेज्झ खलो लोओ॥[1]

—धर्म क्या है? जीव दया। सुख क्या है? आरोग्य। स्नेह क्या है? सद्भाव। पाडित्य क्या है? हिताहित का विवेक। विषम क्या है? कार्य की गति। प्राप्त क्या करना चाहिये? मनुष्य द्वारा गुण ग्रहण। सुख से प्राप्त करने योग्य क्या है? सज्जन पुरुष। कठिनता से प्राप्त करने योग्य क्या है? दुर्जन पुरुष।

महाव्रत अधिकार मे समिति-गुप्ति का स्वरूप और उनके उदाहरण प्रस्तुत किये है। नन्दिषेण चरित के अन्तर्गत वसुदेव की कथा है। नागश्री के चरित मे द्रौपदी का आख्यान है। देशविरति गुणस्थान का प्ररूपण करते हुए रतिसुन्दरी आदि के उदाहरण दिये हैं। धर्माचरण मे शखकलावती का उदाहरण है। इस प्रसग पर शक्कर और आटे से भरे हुए वर्त्तन के उलट जाने, खॉडमिश्रित सत्तु और घी की कुडी पलट जाने तथा उफान से निकले हुए दूध के हाथ पर गिर जाने से किसी सज्जन पुरुष के कुटुब की दयनीय दशा का चित्रण टीकाकार ने किया है—

अह सो सक्करचुन्नमज्झिगयपुन्तु विलोट्टई।
खड्डुम्मीसियसत्तुकुडिधय बाहु पलोट्टइ॥
वाउज्जाय कढियदुद्धि लहसि हत्थह पडिय।
ज दइवि सज्जणकुडुब एरिस निम्मविय॥

शखकलावती के उदाहरण मे कपिलनामक ब्राह्मण का

---

१ यह गाथा काव्यानुशासन (पृ० ३९५), काव्यप्रकाश (१०-५२९) और साहित्यदर्पण (पृ० ८१५) में कुछ हेरफेर के साथ उद्धृत है।

आख्यान है। यह ब्राह्मण गगा के किनारे रहता था और शौचधर्म का पालन करता था। एक दिन उसने सोचा कि गगा मे मनुष्य, कुत्ते, गीदड और बिल्ली आदि सभी की विष्ठा बहती है, जिससे गगा का जल गदा हो जाता है। इसलिये मनुष्य और पशुओ से रहित किसी अन्य द्वीप मे जाकर मुझे रहना चाहिये जिससे मैं शौचधर्म का निर्विघ्न पालन कर सकूँ। इस बात को उस ब्राह्मण ने किसी मल्लाह से कहा और वह मल्लाह उसे अपनी नाव मे बैठाकर चल दिया। किसी द्वीप मे पहुँच कर ब्राह्मण ने ईख का खेत देखा, और वह वहाँ गन्ने चूसकर अपना समय यापन करने लगा। जब गन्ने चूसते चूसते उसके दोनों होठ छिल गये तो वह सोचने लगा कि क्या ही अच्छा होता यदि ईख पर भी फल लगा करते जिससे लोगों को गन्ने चूसने की मेहनत न करनी पडती। खोज करते करते उसे एक जगह पुरुष की सूखी हुई विष्ठा दिखाई दी, ईख का फल समझकर वह उसका भक्षण करने लगा। बाद मे वणिक् ने उसे समझाया और सद्धर्म का उपदेश दिया।

आगे चलकर शबरराजर्षि और चौर ऋषि की कथाये दी है। दुषमाकाल मे भी चरित्र की सभावना बताई गई है। स्वप्नाष्टको का वर्णन है। सर्प और गरुड की पूजा, तथा कन्याविक्रय का उल्लेख है। वाक्य, महावाक्यार्थ आदि भेदों का प्रतिपादन है। लोकरूढित्याग का उपदेश है। धर्मरत्न प्राप्ति की योग्यता को उदाहरणपूर्वक समझाया है। विषयाभ्यास मे शुक और भावाभ्यास मे नरसुन्दर का आख्यान दिया है। शुद्धयोग मे दुर्गत नारी तथा शुद्धानुष्ठान मे रत्नशिख की कथा दी है।

धर्मोपदेशमाला विवरण

धर्मोपदेशमाला और उसके विवरण के रचयिता कृष्णमुनि के शिष्य जयसिंह सूरि है।[1] धर्मदास गणी की 'उपदेशमाला'

---

१ पंडित लालचन्द भगवानदास गांधी द्वारा सम्पादित सिंघी जैन ग्रथमाला में १९४९ में प्रकाशित।

का अनुकरण करके जयसिंहसूरि ने सवत् ६१५ (ईसवी सन् ८५८) मे गद्य पद्य मिश्रित इस कथा-ग्रन्थ की रचना की है। इस कृति मे ६८ गाथाये है जिनमे १५६ कथायें गुम्फित है। अनेक स्थानो पर कादवरी के गद्य की काव्यमय छटा देखने मे आती है। जयसिंहसूरि अलकारशास्त्र के पडित थे। इस ग्रन्थ मे अनेक देशो, मदिरों, नदियों, सरोवरों आदि के प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन है, तथा प्रेमपत्रिका, प्रश्नोत्तर, पादपूर्ति, वक्रोक्ति, व्याजोक्ति, गूढोक्ति आदि के उदाहरण यत्र-तत्र बिखरे पडे है। महाराष्ट्री भाषा को सुललित पद-सचारिणी होने के कारण कामिनी और अटवी के समान सुन्दर कहा गया है।[1] धार्मिक तत्त्वज्ञान के साथ-साथ यहाँ तत्कालीन सामाजिक और व्यावहारिक ज्ञान का भी चित्रण मिलता है। इस ग्रन्थ की बहुसख्यक कथाये यद्यपि प्राचीन जैन ग्रन्थों से ली गई है, फिर भी उनके कथन का ढग निराला है।

दान के फल मे धन सार्थवाह और शील के फल मे राजीमती की कथा वर्णित है। राजीमती के आख्यान मे स्त्रियों की निन्दा है, लेकिन साथ ही यह भी कहा है कि ऋषभ आदि तीर्थंकरों ने स्त्री भोग करने के पश्चात् ही ससार का त्याग किया था। राजीमती के विवाह (वारेज्जय) महोत्सव का वर्णन है। पर्वत की गुफा मे राजीमती को वसन रहित अवस्था मे देखकर रथनेमी उसे भोग भोगने के लिये निमत्रित करता है। राजीमती उसे उपदेश देती है। तप के परिणाम में दृढप्रहारी और भाव के फल मे इलापुत्र आदि की कथाओं का वर्णन है। यथार्थवाद का कथन करने मे आचार्य कालक का आख्यान है। वणिक्पुत्र की कथा मे दिव्य महास्तूप से विभूषित मथुरा नगरी का उल्लेख है। वणिक्पुत्र मथुरा के राजा की रानी को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो गया

१ सललियपयसचारा पयडियमयणा सुवण्णरयणेल्ला।
मरहट्ठयभासा कामिणी य अडवी य रेहति ॥

था। उसने एक पुडिया पर निम्नलिखित श्लोक लिखकर उसके पास भिजवाया—

काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य, मेघाधकारासु च शर्वरीषु।
मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे, ते प्रत्यया ये प्रथमाक्षरेषु ॥

इस श्लोक के प्रत्येक पद के प्रथम अक्षरों को मिलाने से 'कामेमि ते' रूप बनता है, अर्थात् मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।

उत्तर मे रानी ने निम्नलिखित उत्तर भेजा—

नेह लोके सुख किचिच्छादितस्याहसा भृशम्।
मित (च) जीवित नृणा तेन धर्मे मति कुरु ॥

चारों पादों के अक्षरों को मिलाकर 'नेच्छामि ते' रूप बनता है, अर्थात् मैं तुझे नहीं चाहती।[1]

पुष्पचूला की कथा मे सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, पैशाची, मागधी, मध्यउत्तर, बहि उत्तर, एकालाप, और गत प्रत्यागत नाम के प्रश्नोत्तरों का उल्लेख है।

सस्कृत प्रश्नोत्तर का उदाहरण—

का पाति न्यायतो राजा ? विश्वसा बोध्यते कथ ?
टवर्गे पचम को वा ? राजा केन विराजते ?
धरणेन्दो क धारेइ। केण व रोगेण दोब्बला होंति ?
केण व रायइ सेण्ण ? पडिवयण 'कुजरेण' त्ति ॥

—राजा किसका न्यायपूर्वक पालन करता है ? पृथ्वी का (कु)। कोई बात विश्वासपूर्वक कैसे समझाई जा सकती है ? वृद्ध पुरुषों के द्वारा (जरेण)। टवर्ग का पाँचवाँ अक्षर कौन-सा है ? ण। धरणेन्द्र किसको धारण करता है ? तीनों लोकों को (कु)। किस रोग से मनुष्य दुर्बल हो जाता है ? वृद्धावस्था से (जरेण)। किस सेना से राजा शोभा को प्राप्त होता है ? हाथी से (कुजरेण)।

---

१ हरिभद्र की आवश्यकटीका में भी ये दोनों श्लोक आये हैं, देखिये पहले पृष्ठ ११३।

यहाँ प्रयागतीर्थ की उत्पत्ति का उल्लेख है।

नूपुरपडित की कथा प्राचीन जैन शास्त्रों मे वर्णित है। स्त्रियों के निन्दासूचक वाक्यो का यहाँ उल्लेख है। आत्मदमन के उपदेश के लिये सिद्धक, और भाव के अनुरूप फल का प्रतिपादन करने के लिये साब पालक के आख्यान वर्णित है। सुभद्रा की कथा जैन शास्त्रों मे सुप्रसिद्ध है। सत्सग का फल दिखाने के लिये वकचूलि, कर्त्तव्य का पालन करने के लिये वणिक्स्त्री, गुरु के आदेश का पालन करने के लिये राजपुरुष, गुरु का पराभव दिखाने के लिये इन्द्रदत्त के पुत्र, और क्रोध न करने के लिये मेतार्य और दमदन्त की कथाये कही गई है। आषाढसूरि, श्रेयास, आर्या चन्दना, कृतपुण्य, शालिभद्र, मूलदेव, आर्यरक्षित, चित्रकर सुत और दशार्णभद्र के आख्यान, प्राचीन जैन ग्रथो मे भी आते है। मूलदेव की कथा मे एक स्थान पर कहा है—

अपात्रे रमते नारी, गिरौ वर्षति माधव।
नीचमाश्रयते लक्ष्मी, प्राज्ञ प्रायेण निर्धन॥

—नारी अपात्र मे रमण करती है, मेघ पर्वत पर बरसता है, लक्ष्मी नीच का आश्रय लेती है, और विद्वान् प्राय निर्धन रहता है।

फिर—

सारय ससक-धवला कित्ती भुवण न जस्स धवलेइ।
नियपोटभरणवावडरिट्ठसरिच्छेण किं तेण?॥

—शरद्कालीन चन्द्रमा के समान जिसकी धवल कीर्त्ति लोक को उज्ज्वल नही करती, वह अपने पेट भरने मे सलग्न किसी मदोन्मत्त साड के समान है, उससे क्या लाभ?

तत्पश्चात् नन्दिषेण, सुलसा, प्रत्येकबुद्ध, ब्रह्मदत्त, त्रिपृष्ठ वासुदेव, चाणक्य, नागिल, वचक वणिक्, सुभूम चक्रवर्ती चित्रकार-सुता, सुबन्धु, केशी गणधर आदि की कथाओं का वर्णन है। मधुबिन्दु कूप-नर की कथा समराइच्चकहा मे आ चुकी है।

द्विजतनय की कथा से मालूम होता है युवती चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिये लोग पाटलिपुत्र जाया करते थे। लाट देश मे मामा की लडकी से, उत्तर मे सौतेली मा से और कहीं अपनी भौजाई के साथ विवाह करना जायज माना जाता था। स्त्रियों के सबध मे उक्ति है—

रज्जावेंति न रज्जति लेति हिययाइ न उण अप्पेंति।
छप्पण्णयबुद्धीओ जुवईओ दो विसरिसाओ॥

—स्त्रियाँ दूसरे का रजन करती है लेकिन स्वय रजित नही होतीं, वे दूसरों का हृदय हरण करती है लेकिन अपना हृदय नहीं देतीं। दूसरों की छप्पन बुद्धियाँ उनकी दो बुद्धियों के बराबर है।

धन सार्थवाह की कथा मे मार्गों के गुण दोष प्रतिपादन करते हुए सार्थ के साथ जानेवाले व्यापारियों के कर्त्तव्यो का उल्लेख है। ग्रामेयक की कथा मे एक ग्रामीण की कथा है। समयज्ञ साधु की कथा मे एक उक्ति है—

सुद्धसहावम्मि जणे जो दोस देइ पडइ तस्सेव।
गुडिज्जइ नणु सो च्चिय जो धूलि खिवइ चदस्स॥

—शुद्ध स्वभाव वाले मनुष्य को जो कोई दोषी ठहराता है, वह दोष उसके ऊपर आता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई व्यक्ति चन्द्रमा के ऊपर धूल फेकने का प्रयत्न करे तो वह धूल उसी के ऊपर आकर गिरती है।

विष्णुकुमार की कथा मे १४ रत्नों की उत्पत्ति का उल्लेख है। श्रावकसुत की कथा मे श्मशान मे पहुँच कर कापालिकों द्वारा मत्रसिद्धि किये जाने का उल्लेख है। काकजघ की कथा मे युवतियों के सामने कोई गुह्य बात प्रकट न करने का आदेश है। औत्पत्तिकी आदि चार प्रकार की बुद्धियों का प्रतिपादन करने के लिये जैन आगम-ग्रन्थो मे वर्णित रोहक आदि की कथाये यहाँ भी कही गई है। दो मल्लों की कथा मे मल्ल महोत्सव का वर्णन है।

सीलोवएसमाला

इसके कर्ता जयसिंहसूरि के शिष्य जयकीर्ति है। इनमे उन्होने ११६ गाथाओं मे शील अर्थात् ब्रह्मचर्य-पालन का उपदेश दिया है। इस ग्रन्थ के ऊपर सघतिलक के शिष्य सोमतिलक सूरि ने शीलतरगिणी नाम की वृत्ति वि० स० १३६४ (ईसवी सन् १३३७) मे लिखी है। विद्यातिलक और पुण्यकीर्ति ने भी वृत्तियों की रचना की है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

भुवनसुन्दरी

नागेन्द्रकुल के आचार्य समुद्रसूरि के दीक्षित शिष्य विजयसिंह सूरि ने सन् ९१७ मे ११००० श्लोकप्रमाण प्राकृत मे भुवनसुदरी नाम की कथा की रचना की। इसकी हस्तलिखित प्रति मुनि पुण्यविजय जी के पास है, इसे वे शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं।

भवभावंना

भवभावना के कर्त्ता मलधारि हेमचन्द्रसूरि हैं। प्रश्नवाहन कुल के हर्षपुरीय नामक विशाल गच्छ मे जयसिंहसूरि हुए, उनके शिष्य का नाम अभयदेवसूरि था। अभयदेव अल्प परिग्रही थे और अपने वस्त्रों की मलिनता के कारण मलधारी नाम से प्रसिद्ध थे। पडित श्वेताबराचार्य भट्टारक के रूप मे प्रसिद्ध मलधारी हेमचन्द्रसूरि इन्ही अभयदेव के शिष्य थे। इन्होंने विक्रम सवत् ११७० (सन् ११२३) मे मेडता और छत्रपल्ली मे रहकर भवभावना (जिसे उपदेशमाला भी कहा है) और उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।[1] ये आचार्य अनुयोगद्वार-सूत्र वृत्ति, आवश्यकटिप्पण, उपदेशमाला (पुष्पमाला), शतक-विवरण, जीवसमासविवरण आदि ग्रन्थों के भी रचयिता हैं। भवभावना की बारह भावनाये बारह दिन मे पढी जाती है। इसमे ५३१ गाथायें हैं जिनमे १२ भावनाओं का वर्णन है।

---

१ ऋषभदेव केशरीमलजी जैन श्वेताबर सस्था, रतलाम द्वारा वि० स० १९९२ में दो भागों में प्रकाशित।

अधिकाश भाग प्राकृत गाथाओ मे लिखा गया है, बीच बीच मे गद्यमय सस्कृत का भी उपयोग किया है, अपभ्रश के पद्य भी है। ग्रन्थ के पद्यात्मक स्वोपज्ञ विवरण मे अनेक धार्मिक व लौकिक कथाये गुफित है। कितने ही चित्रण बडे स्वाभाविक और सुदर बन पडे है। प्राकृत ओर सस्कृत की अनेक उक्तियाँ यहाँ दी हुई है। अधिकाश भाग मे नेमिनाथ के चरित्र का ही वर्णन है। देशभाषा और देशाचार का ज्ञान लेखक ने आवश्यक बताया है—

न मुणेइ देसभासा देसायार न नीइ विन्नाण।
तत्तो धुत्तेहिं पए पए य वञ्चिज्जए अबुहो॥

—जो देशभाषा और नीतिवेत्ताओं के देशाचार को नहीं जानता वह मूर्ख, धूर्तों के द्वारा पद पद पर ठगा जाता है।

अपराजितकुमार के सौन्दर्य को देखने के लिये देवकुल, हाट और प्रासादों पर लोगों की भीड इकट्ठी हो रही है। उसे देखकर युवतियाँ परस्पर ठठोलियाँ कर रही है—

काऽवि भणइ त पिअसहि। मुणसि कयग्घत्तण सिरीए जओ।
परिभूअ पकयपि हु अहिअसेणेइ कुमरमुह॥
अन्ना पभणइ अच्छीणि निअह एअस्स कन्नयत्ताइ।
अन्ना जपइ न इम जमिमेहिं अह पि नो पत्ता॥
सा निद्दयत्ति मन्ने कबुवममिमस्स कोमल जीव।
जा बाहुपासएण बधिहिइ भणेइ इअमन्ना॥
सुरसेलसिलाविउले इमस्स वच्छत्थलम्मि कयउन्ना।
काऽवि किर रइकिलन्ती अलीअनिद्दासुह लहिही॥
अन्ना पेल्लइ अन्न अन्ना अन्न च भणइ मह्मग्गा।
देसु वइस्सइ इहरा ममावि त च्चिअ भणइ अन्ना॥

—कोई अपनी सखी से कह रही है—हे प्रियसखि। तू लक्ष्मी की इस कृतघ्नता को समझती है कि कमल का तिरस्कार करके उसने कुमार के मुख का आश्रय लिया है। दूसरी कहने लगी—कानों तक फैले हुए इसके नेत्रों को तो जरा देखो।

तीसरी ने कहा—यदि इसने मुझे प्राप्त नहीं कर लिया तो फिर यह हुआ ही क्या ? चौथी ने कहा—हे सखि ! मैं तो उसे बडी निर्दय समझूगी जो कबु के समान इसकी ग्रीवा को अपने बाहुपाश से बाधेगी। पॉचवीं कहने लगी—मेरुपर्वत की शिला के समान विस्तृत इसके वक्षस्थल पर कोई कृतपुण्या ही क्रीडा से श्रान्त होकर अलीक निद्रा को प्राप्त होगी। इस प्रकार वे एक दूसरे को धकेलती हुई रास्ता माग रही थी।

शख का जन्म होने पर राजा को बधाइयॉ दी गई। रगे हुए धागों से सारे घर में रगोलियॉ बनाई गईं, कनकघटित हल और मूसलो को खडा कर दिया गया, सर्वत्र घी और गुड से युक्त सोने के दीपक जलाये गये, द्वारो पर कमलों से आच्छादित कलश रक्खे गये, लोगों की रक्षा के लिये द्वार पर हाथ में तलवार लिये सुभट नियुक्त किये गये, ध्वजायें फहराई गईं, गली मोहल्लो मे तोरण लटकाये गये, मार्गों मे, चौराहो पर तथा नगरवासियो के द्वारो पर सोने के चावलों के ढेर लगा दिये गये। बदी जेल से छोड दिये गये, दस दिन की अमारी (मत मारो) घोषणा की गई। जिनमदिरों मे पूजा की गई, दस दिन तक कर उगाहना और किसी को दड देने की मनाई कर दी गई, दुदुभि बाजे बजने लगे, वारवनिताओं के नृत्य होने लगे, पुष्प, ताबूल और वस्त्र आदि बाटे जाने लगे, द्राक्ष और खजूर का भोजन परोसा जाने लगा, द्राक्ष, खजूर और खाड का शर्बत पिलाया जाने लगा।

बडे होने पर कुमार को लेखाचार्य के पास भेजा गया जहॉ उसने व्याकरण, न्याय, निमित्त, गणित, सिद्धात, मत्र, देशीभाषा, शस्त्रविद्या, वास्तुशास्त्र, वैद्यक, अलकार, छद, ज्योतिष, गारुड, नाटक, काव्य, कथा, भरत, कामशास्त्र, धनुर्वेद, हस्तिशिक्षा, तुरगशिक्षा, द्यूत, धातुवाद, लक्षण, कागरुत, शकुन, पुराण, अगविद्या तथा ७२ कलाओं की शिक्षा प्राप्त की।

मृतक की हड्डियों को गगा मे सिराने का रिवाज था। कोई राजा का मत्री अपनी पत्नी से बहुत स्नेह करता था। पत्नी के

मर जाने पर वह उसकी हड्डियों का सग्रह करके उनकी पूजा करने लगा। फिर एक दिन बनारस जाकर उसने उन हड्डियों को गगा में सिरा दिया।

हरिवशकुल की उत्पत्ति को दस आश्चर्यों मे गिनाया है। इस प्रसग पर दशार्ह राजाओं का उल्लेख है। फिर कस का वृत्तान्त, वसुदेव का चरित्र, चारुदत्त की कथा, अनार्य वेदो की उत्पत्ति, देवकी का विवाह, कृष्ण का जन्म, नेमिनाथ का जन्म, कसबध, राजीमति का जन्म, नेमिनाथ का वैराग्य आदि का वर्णन है।

वेदों की उत्पत्ति के सबध मे कहा है कि जन्नवक्क (याज्ञवल्क्य) नामक तापस और सुलसा के सयोग से आश्रम मे पुत्र की उत्पत्ति हुई। पीपल की छाया मे बडे होने के कारण इसका नाम पिप्पलाद पडा। सागोपाग वेदो का उसने अध्ययन किया तथा अपने माता पिता को वाद मे हराया। बाद मे जब उसे पता चला कि वह शीलभ्रष्ट माता पिता का पुत्र है तो उसने अपने माता पिता को मारने के लिये अनार्य वेदो की रचना की जिनमे पितृमेध, मातृमेध, पशुमेध, आदि का प्रति पादन किया गया। टकण देश मे भी पशुमेध यज्ञ का प्रचार हो गया था, रुद्रदत्त ने इस यज्ञ को बद कर जिन धर्म का प्रचार किया। जान पडता है कि स्त्रियों को भी वेदपठन का निषेध नहीं था।' वसुदेव जब घूमते फिरते किसी ग्राम में पहुँचे तो वहाँ ब्राह्मण आदि सब लोग वेदाभ्यास मे सलग्न थे। किसी ब्राह्मण की क्षत्रियाणी भार्या से उत्पन्न सोमश्री नाम की कन्या ने भी समस्त वेदों का अभ्यास किया था। उसका प्रण था कि जो उसे वेदाभ्यास मे हरा देगा उसके साथ वह विवाह कर लेगी। कृष्ण जब ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण के समीप वेदाभ्यास करने गये तो उसने प्रश्न किया कि तुम अनार्य वेदों का अध्ययन करना चाहते हो या आर्य वेदों का ? यहाँ भरत चक्रवर्ती को आर्य वेदों का तथा पर्वतक, मधुपिंग और पिप्पलाद को अनार्य

वेदो का कर्त्ता बताया गया है। वसुदेव ने इन दोनों वेदों का अध्ययन किया।

वाचा, दृष्टि, निजूह (मल्लयुद्ध) और शस्त्र इन चार प्रकार के युद्धों का उल्लेख है। मल्लों मे निजूहयुद्ध, वादियो मे वाक् युद्ध, अधम जनों मे शस्त्रयुद्ध तथा उत्तम पुरुषों में दृष्टियुद्ध होता है। मथुरा नगरी मे मल्लयुद्ध के लिये बडी धूमधाम से तैयारियाँ की जाती थीं, वणिक् लोग यवनद्वीप से अपनी नावों मे माल भर कर लाये और द्वारका मे आकर उन्होंने बहुत सा धन कमाया। यहाँ से वे लोग मगधपुर (राजगृह) गये। वहाँ रानी ने बहुमूल्य रत्न, कबल आदि देखकर उनसे माँगे। इस पर वणिक् लोगों को बहुत बुरा लगा, और वे सोचने लगे कि हमारे भाग्य फूट गये जो हम द्वारका छोडकर यहाँ आये। व्यापारियों ने कहा, यादवों को छोड़कर इन वस्तुओं का इच्छित मूल्य और कोई नहीं दे सकता।

रैवतक पर्वत पर वसन्तक्रीडा और जलक्रीडा का सरस वर्णन है।

नेमिनाथ के चरित्र के बाद अनित्यभावना प्रारभ होती है। इस प्रसग मर बलिराजा और भुवनभानु के चरित्र का विस्तार से वर्णन है। अशरणभावना मे कौशाबी के राजा चन्द्रसेन, सोमचन्द्र, नन्द, कुचिकर्ण, तिलकश्रेष्ठी, सगर चक्रवर्ती और हस्तिनापुर के राजकुमार की कथायें है। एकत्वभावना मे राजा मधु का दृष्टान्त दिया है। ससारभावना मे चारों गतियो का स्वरूप उदाहरणपूर्वक प्रतिपादित किया है। इस प्रसग मे बताया है कि सरस्वती नाम की कोई सार्थवाह की कन्या किसी ब्राह्मण के पास स्त्रियोचित कलाओं का अध्ययन किया करती थी। वणिक्-पुत्र देवदत्त आदि विद्यार्थी भी उसी गुरु से विद्या का अध्ययन करते थे। एक बार गुरु जी अपनी स्त्री को पीटने लगे तो विद्यार्थियों ने उन्हें रोका। विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात्

देवदत्त और सरस्वती का विवाह हो गया। भूई नाम की कलहकारिणी सास का चित्रण देखिये—

कम्मक्खणि य न गेहु मुयती। बहुयाए सह जुज्झि लगती।
मुणिवर पेक्खिवि मुहु मोडती, देंती ताडण फोडिहिज्जती॥
गेहममत्तिण पाव कुणती, धम्मु मणिवि न कयाइ धरती।
एवह निक्खपणियम्मि हुइ, अच्छइ बारि बइट्ठी भूइ॥

—कर्मों की खान वह घर नहीं छोड सकती है, बहू के साथ वह लडाई झगडा करती है, मुनियो को देखकर मुँह बिचकाती है, उनका मारण-ताडन करती है। घर की ममता से वह पाप करती है, मन मे धर्म कभी धारण नहीं करती—ऐसी अभागी भूई घर के द्वार पर बैठी हुई है।

कौशाबी के किसी ब्राह्मण की दरिद्रता का चित्रण किया गया है—

नत्थि घरे मह दव्व विलसइ लोओ पयट्टछणओ त्ति।
डिभाइ रुयति तहा हद्धी कि देमि घरिणीए?
दिंति न मह ढोयपि हु अत्तसमिद्धीइ गव्विया सयणा।
सेसाविहु धणिणो परिहवति न हु देंति अवयास॥
अज्ज घरे नत्थि घय तेल्ल लोण च इधण वत्थ।
जाया व अज्ज तउणी[1] कल्ले किह होहिइ कुडुब॥
वड्ढइ घरे कुमारी बाली तणओ न विढप्पइ अत्थे।
रोगबहुल कुडुब ओसहमोल्लाइय नत्थि॥
उक्कोपा मह घरिणी समागया पाहुणा बहू अज्ज।
जिन्न घर च हट्ट झरइ जल गलइ सव्व पि॥
कलहकरी मह भज्जा असवुडो परियणो बहू विरूवो।
देसो अधारणिज्जो एसो वच्चामि अन्नत्थ॥
जलहि पविसेमि महि तरेमि धाउ धमेमि अहवा वि।
विज्ज मत साहेमि देवय वावि अच्चेमि॥
जीवइ अज्जवि सत्तू मओ य इट्ठो पहू य मह हट्ठो।
दाणिग्गहण मग्गति विहविणो कत्थ वच्चामि?

---

1 पश्चिमी उत्तर प्रदेश में तौणी शब्द आजकल भी प्रचलित है।

—मेरे घर मे पैसा नही है और लोग उत्सव मनाने मे लगे है। बच्चे मेरे रो रहे है, अपनी घरवाली को मैं क्या दूं ? भेंट देने को भी तो कुछ मेरे पास नहीं, मेरे स्वजन सबंधी अपनी समृद्धि मे मस्त है, दूसरे धनी लोग भी तिरस्कार ही करते है, वे स्थान नहीं देते। आज मेरे घर घी, तेल, नमक, इंधन और वस्त्र कुछ भी तो नहीं है। तौनी (मिट्टी का बर्तन) भी आज खाली है, कल कुटुम्ब का क्या होगा ? घर मे कन्या सयानी हो रही है, लडका अभी छोटा है इसलिये धन कमा नहीं सकता। कुटुब के लोग बीमार है और दवा लाने के लिये पास मे पैसा नही। घरवाली गुस्से से मुँह फैलाये बैठी है, बहुत से पाहुने घर मे आये हुए हैं। घर पुराना हो गया है, वह भी चूता है, सब जगह पानी गिर रहा है। औरत मेरी लडाई-झगडा करती है, परिवार के लोग असयमी है, राजा प्रतिकूल है, इस देश मे अब रहा नही जाता, कही और जाना चाहता हूँ। क्या करूँ ? क्या समुद्र मे प्रवेश कर जाऊँ ? पृथ्वी के उस पार पहुँच जाऊँ ? किसी धातु का धमन करूँ ? किसी विद्या या मत्र की साधना करूँ ? या फिर किसी देव की अर्चना करूँ ? मेरा शत्रु आज भी जीवित है, मेरा इष्ट प्रभु मुझसे रूठ गया है, धनवान अपना कर्ज वापिस माँगते है, कहाँ जाऊँ ?

यह ब्राह्मण अपनी गर्भवती स्त्री के लिये घी, गुड का प्रबध करने के वास्ते धन का उपार्जन करने गया है। रास्ते मे उसे एक विद्यामठ मिला जहाँ अध्यापक अपने शिष्यों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देते हुए धनोपार्जन की मुख्यता का प्रतिपादन कर रहे थे। ब्राह्मण ने प्रश्न किया कि महाराज ! किस उपाय से धन का उपार्जन किया जाय। अध्यापक ने उत्तर दिया कि ईख का खेत, समुद्रयात्रा, योनिपोषण (वेश्यावृत्ति), और राजाओं की कृपा—इन चार प्रकारों से क्षण भर मे दरिद्रता नष्ट हो जाती है—

खेत्त उच्छूण समुद्दसेवण जोणिपोसण चेव।
निवईण च पसाओ खणेण निहणति दारिद्द

आश्रवभावना के अन्तर्गत मान के उदाहरण मे राजपुत्र उज्झित की कथा दी है। उसके पैदा होने पर उसे एक सूप मे रख कर कचरे की कूडी (कयवरुक्कुरुडे)[1] पर डाल दिया गया था, इसलिये उसका नाम उज्झित रक्खा गया। बडा होने पर उसे कलाओ की शिक्षा के लिये अध्यापक के पास भेजा गया, लेकिन वह अपने गुरु का अपमान करने लगा। राजा को जब इस बात का पता लगा तो उसने कहला भेजा कि उसकी डडे से खबर लो। गुरु ने उसे छडी से मारा लेकिन उज्झित ने गुरुजी के ऐसी जोर की लाठी जमाई कि वे जमीन पर गिरकर मूर्छित हो गये।

माया के उदाहरण मे एक वणिक् कन्या की कथा दी है। यह कन्या बड़ी मायावती थी। जब उसके पुत्र हुआ तो कपटवश उसने अपने पति से कहा कि मै पर पुरुष का स्पर्श नही करती, इसलिये इसे दूध पिलाने के लिये आप किसी धाय की व्यवस्था करें। अन्त मे अपने दुश्चरित्र के कारण उसे घर से निकाल दिया गया।

निर्जराभावना मे कनकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सिह-विक्रीडित आदि तपों का विवेचन है।

एक स्थान पर उपमा देते हुए कहा है कि जैसे युवतिजनो के मन मे कोई बात गोपनीय नहीं रह सकती और वह चट से बाहर आ जाती है, इसी प्रकार समुद्र मे तूफान उठने पर जहाज के टूटने की तडतड आवाज हुई (फुट्टाइ पवहणाइ तडत्ति जुवईण मुणिअगुज्झ व)। जैसे मकोडे गुड़ पर चिपट जाते है, वैसे ही धन-सपत्ति के प्रति मनुष्य की गृध्रता बताई गई है।

अनेक सुभाषित भी यहाँ देखने में आते हैं—

१ वरसति घणा किमवेक्खिऊण ? कि वा फलति वरतरुणो ?

---

१ गुजराती में उकरडी, पश्चिमी उत्तरप्रदेश में कुरडी कहते हैं। राजा कूणिक (अजातशत्रु) को भी पैदा होने के बाद कूडी पर डाल दिया था।

किमविक्खो य पणासइ सूरो तिमिर तिहुअणस्स ?

—मेघ किसके लिये बरसते है ? सुन्दर वृक्ष किसके लिये फलते है ? सूर्य तीनों लोकों के अधकार को क्यो नष्ट करता है ?

२ जस्स न हिअयमि बल कुणति कि हत तस्स सत्थाइ ? ६ निअसत्थेणऽवि निहण पावति पहीणमाहप्पा ॥

—जिसके हृदय मे शक्ति नही, उसके शस्त्र किस काम मे आयेंगे ? अपने शस्त्र होने पर भी क्षीण शक्तिवाले पुरुष मृत्यु को प्राप्त होते है ।

३ दोसा कुसीलइत्थी वाहीओ सत्तुणो खला दुट्ठा ।
मूले अनिरुभता दुक्खाय हवति वड्ढता ॥

—दोष, व्यभिचारिणी स्त्री, व्याधि, शत्रु और दुष्ट पुरुषों को यदि आरभ से ही न रोका जाये तो वे दुख के कारण होते है ।

४ महिला हु रत्तमेत्ता उच्छुखड व सक्करा चेव ।
हरइ विरत्ता सा जीवियपि कसिणाहिगरलव्व ॥

—महिला जब आसक्त होती है तो उसमे गन्ने के पोरे अथवा शक्कर की भाति मिठास होता है, और जब वह विरक्त होती है तो काले नाग की भाति उसका विष जीवन के लिये घातक होता है ।

५ पढमं पि आवयाण चिंतेयव्वो नरेण पडियारो ।
न हि गेहम्मि पलित्ते अवड खणिउ तरइ कोई ॥

—विपत्ति के आने के पहले ही उसका उपाय सोचना चाहिये । घर मे आग लगने पर क्या कोई कुआँ खोद सकता है ?

६ जाई रूय विज्जा तिन्निवि निवडतु कदरे विवरे ।
अत्थोच्चिय परिवड्ढउ जेण गुणा पायडा होंति ॥

—जाति, रूप और विद्या ये तीनों ही गुफा मे प्रवेश कर जाये, केवल एक धन की वृद्धि हो जिससे गुण प्रकट होते हैं ।

मथुरा मे सुपार्श्व जिन के सुवर्णस्तूप होने का उल्लेख है । रुद्रदत्त के सुवर्णभूमि की ओर प्रस्थान करते हुए बीच मे टकण देश पडा, वेत्रवन को लाँघ कर उसने इस देश मे प्रवेश किया ।

द्वारका नगरी की पूर्वोत्तर दिशा मे सिणवल्ली का उल्लेख है। प्रयागतीर्थ की उत्पत्ति बताई गई है। मगध, वरदाम ओर प्रभास नामक पवित्र तीर्थों से जल और मिट्टी लाकर उससे देवो का अभिषेक किया जाता था।

क्षत्रियो की अपेक्षा वणिक् लोग बहुत छोटे समझे जाते थे इसलिये क्षत्रिय अपनी कन्या उन्हें नहीं देते थे। आठ वर्ष की अवस्था मे कन्या की शादी हो जाने का उल्लेख है। गर्भ मे शिशु के दाहिनी कोख मे होने से पुत्र, बाई कोख मे होने से पुत्री तथा दोनों के बीच मे होने से नपुसक पैदा होता है। पचास वर्ष के पश्चात् स्त्री गर्भ धारण करने के अयोग्य हो जाती है और ७५ वर्ष की अवस्था मे पुरुष निर्बीज हो जाता है।

हाथी पकडने की विधि बताई है। एक बडा गड्ढा खोदकर उसके ऊपर घास वगैरह बिछा देते है। उसके दूसरी ओर एक हथिनी बॉध दी जाती है। उसे देखकर हाथी उसकी ओर दौडता है और गड्ढे मे गिर पडता है। उसे कई दिन तक भूखा रक्खा जाता है, जब वह बहुत कमजोर हो जाता है तो उसे खींचकर राजा के पास ले जाते है। फिर उसे सूखे वृक्ष मे चमडे की रस्सी से बॉध दिया जाता है। शकुनों के फलाफल का विचार किया गया है। एक स्थल पर उड्डिय क्षपक का उल्लेख है। ये लोग आजीवक मत के अनुयायी थे। ग्रथ मे आवश्यक, व्याख्या प्रज्ञप्ति, प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम, पउमचरिय और उपमितिभव प्रपचकथा को साक्षीरूप मे उल्लिखित किया है।

उपदेशमालाप्रकरण

मलधारी हेमचन्द्रसूरि की दूसरी उल्लेखनीय रचना उपदेश माला या पुष्पमाला है।[1] भवभावना की भॉति उपदेशमाला भी विषय, कवित्व और शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

---

१ ऋषभदेवजी केशरीमल सस्था द्वारा सन् १९३६ में इन्दौर से प्रकाशित।

इसमे ५०५ मूल गाथायें है जिन पर लेखक ने स्वोपज्ञ टीका लिखी है। साधु सोम ने भी इस पर टीका की रचना की है। लेखक के कथानुसार जिनवचनरूपी कानन से सुदर पुष्पों को चुनकर इस श्रेष्ठ पुष्पमाला की रचना की गई है। इसमे श्रुत के अनुसार विविध दृष्टान्तों द्वारा कर्मों के क्षय का उपाय प्रतिपादित किया गया है। यह ग्रथ दान, शील, तप और भावना इन चार मुख्य भागों मे विभक्त है। भावना के सम्यक्त्वशुद्धि, चरणविशुद्धि, इन्द्रियजय, कषायनिग्रह आदि अनेक विभाग है। इस कृति मे जैन तत्त्वोपदेश सबधी कितनी ही महत्त्वपूर्ण धार्मिक और लौकिक कथाये विशद शैली मे ग्रथित है।

सर्वप्रथम मनुष्य की दुर्लभता के दृष्टान्त दिये गये है। धर्म मोक्षसुख का मूल है। अहिसा सब धर्मों मे प्रधान है—

कि सुरगिरिणो गरुय ? जलनिहिणो किं व होज्ज गभीर ?
कि गयणा उ विसाल ? को व अहिंसासमो धम्मो ?

—सुरगिरि के समान कौन बडा है ? समुद्र के समान कोन गभीर है ? आकाश के समान कौन विशाल है ? और अहिसा के समान कौन सा धर्म है ?

वज्रायुध के दृष्टान्त से पता लगता है कि ब्राह्मण और उसकी दासी से उत्पन्न हुए पुत्र को वेदाध्ययन का अधिकार नही था। महाभुजग की विषवेदना को दूर करने के लिये मत्र तत्र के स्थान पर अहिसा, सत्य आदि के पालन को ही महाक्रिया बताया है। शरद् और ग्रीष्म ऋतुओ का वर्णन है। हिसाजन्य दुख को स्पष्ट करने के लिये मृगापुत्र का दृष्टान्त दिया है। ज्ञानदान मे पुरन्दर का उदाहरण है। विद्यासिद्धि के लिये एक मास के उपवासपूर्वक कृष्णचतुर्दशी के दिन श्मशान मे रहने का विधान है। इस विधि का पालन करते हुए दो मास तक किसी स्त्री का मुँह देखना तक निषिद्ध है। ठग विद्या का यहाँ उल्लेख है। क्रोध को दवाग्नि, मान को गिरि, माया को भुजगी और लोभ

को एक पिशाच के रूप में चित्रित किया है। इसीप्रकार मोह का राजा, राग का केशरी, मदन का माडलिक राजा और विपर्यास का सामन्त के रूप मे उल्लेख है। अल्प आधार को नाशका कारण बताया है।

विशेष बुद्धिशाली न होने पर पढने मे उद्यम करते ही रहना चाहिये—

मेहा होज्ज न होज्ज व लोए जीवाण कम्मवसगाण।
उज्जोओ पुण तहविहु नाणमि सया न मोत्तव्वो॥

—कर्म के वशीभूत जीवों के मेधा हो या न हो, ज्ञान प्राप्ति के लिये सदा उद्यम करते रहना चाहिये।

सूत्रो की प्रधानता के सबध मे कहा है—

सुई जह ससुत्ता न नस्सई कयवरमि पडिया वि।
तह जीवोऽवि ससुत्तो न नस्सइ गओऽवि ससारे॥

—जैसे धागे वाली सुई कूडे कचरे मे गिरने पर भी खोई नही जाती, उसी प्रकार ससार मे भ्रमण करता हुआ जीव भी सूत्रो का अध्येता होने के कारण नष्ट नहीं होता।

सुपात्रदान का फल अनेक दृष्टातों द्वारा प्रतिपादित किया है। अमरसेन और वरसेन के चरित मे पादुका पर चढकर आकाश मे गमन करना तथा लाठी सुघाकर रासभी बना देने आदि का उल्लेख है। धनसार नामक श्रेष्ठी करोडों रुपये की धन-सम्पत्ति का मालिक होते हुए भी कणभर भी वस्तु किसी को दान नहीं करता था।

शीलद्वार मे शील का माहात्म्य बताने के लिये रतिसुदरी आदि के दृष्टान्त दिये है। सीता का चरित दिया गया है। जिनसेन के चरित मे ताम्रलिप्ति नगर मे योगसिद्धि नामक मठ था, इसमे कोई परिव्राजिका रहती थी।

तपद्वार मे वसुदेव, दृढप्रहारी, विष्णुकुमार और स्कदक आदि के चरित है।

भावना के अन्तर्गत सम्यक्त्वशुद्धि आदि १४ द्वारो का प्ररूपण है। सम्यक्त्वशुद्धिद्वार मे अमरदत्त की भार्या और विक्रम राजा आदि के दृष्टान्त है। चरणद्वार मे बारह व्रतों का प्रतिपादन है। अठारह प्रकार के पुरुष, बीस प्रकार की स्त्री और दस प्रकार के नपुसकों को दीक्षा का निषेध है। दया मे धर्मरुचि, सत्य मे कालकाचार्य, अदत्तादान मे नागदत्त, ब्रह्मचर्य मे सुदर्शन और स्थूलभद्र, अपरिग्रह मे कीर्त्तिचन्द्र और समरविजय आदि के कथानक दिये है। रात्रिभोजन-त्याग के समर्थन मे ब्राह्मणों की स्मृति से प्रमाण दिये गये है। 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' (पुत्ररहित शुभ गति को प्राप्त नहीं करता) के सबध मे कहा है—

जायमानो हरेद्भार्यां वर्धमानो हरेद्धन।
म्रियमाणो हरेत् प्राणान्, नास्ति पुत्रसमो रिपु ।

—पुत्र पैदा होते ही भार्या का हरण कर लेता है, बड़ा होकर धन का हरण करता है, और मरते समय प्राणों को हरता है, इसलिये पुत्र के समान ओर कोई शत्रु नहीं है।

ब्राह्मणों के जातिवाद का खडन करते हुए अचल आदि ऋषि मुनियों की उत्पत्ति हस्तिनी, उलूकी अगस्ति के पुष्प, कलश, तित्तिर, केवटिनी और शूद्रिका आदि से बताई है। रत्नों के समान महाव्रतों की रक्षा करने का विधान है। दरिद्र के दृष्टान्त मे जाति, रूप और विद्या की तुलना से धनार्जन की ही मुख्यता बताई है। पॉच समिति और तीन् गुप्तियों को उदाहरणपूर्वक समझाया गया है। सूत्राध्ययन, विहार, परीषह-सहन, मन स्थैर्य, भावस्तव आदि की व्याख्या की गई है। अपवादमार्ग के उदाहरण मे कालकाचार्य की कथा दी है।

इन्द्रियजय के उपदेश मे पॉचों इन्द्रियों के अलग अलग उदाहरण दिये है। चक्षु इन्द्रिय के उदाहरण मे लक्षणशास्त्र के अनुसार स्त्री पुरुप के लक्षण दिये हैं। कषायनिग्रहद्वार में कषायों का स्वरूप बताते हुए उनके उदाहरण दिये है। लोभ की मुख्यता बताते हुए कहा है—

पियविरहाओ न दुह दारिद्दाओ पर दुह नत्थि।
लोहसमो न कसाओ मरणसमा आवई नत्थि ॥

—प्रिय के विरह से बढकर कोई दुख नहीं, दारिद्र्य से बढकर कोई क्लेश नही, लोभ के समान कोई कषाय नही, और मरण के समान कोई आपत्ति नही।

कुलवासलक्षणद्वार मे गुरु के गुणो का प्रतिपादन करते हुए शिष्य के लिये विनयवान होना आवश्यक बताया है। शिष्य को गुरु के मन को समझनेवाला, दक्ष और शात स्वभावी होना चाहिये। जैसे कुलवधु अपने पति के आक्रुष्ट होने पर भी उसे नहीं छोडती, वैसे ही गुरु के आकुष्ट होने पर भी शिष्य को गुरु का त्याग नहीं करना चाहिये। उसे सदा गुरु की आज्ञानुसार ही उठना बैठना और व्यवहार बर्ताव करना चाहिये। दोषविकटनालक्षणद्वार मे आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत के भेद से पॉच प्रकार का व्यवहार बताया गया है। आर्द्रककुमार का यहॉ उदाहरण दिया है। विरागलक्षणद्वार मे लक्ष्मी को कुलटा नारी की उपमा दी है। विनयलक्षणप्रतिद्वार मे विनय का स्वरूप प्रतिपादित किया है। स्वाध्यायरति-लक्षणद्वार मे वैयावृत्य, स्वाध्याय और नमस्कार का माहात्म्य बताया है। अनायतनत्यागलक्षणद्वार मे महिला ससर्गत्याग, चैत्यद्रव्य के भक्षण मे दोप, कुसग का फल आदि का प्रतिपादन है। परपरिवादनिर्वृतिलक्षण मे परदोपकथा को अहित कहा है। धर्मस्थिरतालक्षणद्वार मे जिनपूजा आदि का महत्त्व बताया है। परिज्ञानलक्षणद्वार मे आराधना की विधि का प्रतिपादन है।

संवेगरंगसाला

इसके कर्ता जिनचन्द्रसूरि है,[1] उन्होने वि० स० ११२५ (सन् ११६८) मे इस कथात्मक ग्रथ की रचना की। नवाग-

१ जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फड द्वारा सन् १९२४ में निर्णयसागर, बबई में प्रकाशित।

वृत्तिकार अभयदेवसूरि के शिष्य जिनवल्लभसूरि ने इसका सशोधन किया। इस कृति मे सवेगभाव का प्रतिपादन है और यह शान्तरस से भरपूर है। सवेगरस की मुख्यता प्रतिपादन करते हुए कहा है—

जह जह सवेगरसो वण्णिज्जइ तह तहेव भव्वाण।
भिज्जन्ति खित्तजलमिम्मयामकुभ व्व हिययाइ॥
सुचिर वि तवो तविय चिण्ण चरण सुय पि बहुपढिय।
जइ नो सवेगरसो ता त तुसखण्डण सव्व॥

—जैसे जैसे भव्यजनों के प्रति सवेगरस का वर्णन किया जाता है, वैसे वैसे—जिस प्रकार मिट्टी के बने हुए कच्चे घडे पर जल फेंकने से वह टूट जाता है-उनका हृदय द्रवित हो जाता है। बहुत काल तक तप किया, चारित्र का पालन किया, श्रुत का बहुपाठ किया, लेकिन यदि सवेगरस नही है तो सब कुछ धान के तुष की भॉति निस्सार है।

गौतमस्वामी महसेन राजर्षि की कथा कहते है। राजा ससार का त्याग कर मुनिदीक्षा ग्रहण करना चाहता है। इस अवसर पर राजा रानी का सवाद देखिये—

राजा—विद्युत् के समान चचल इस जीवन मे पता नहीं कब क्या हो जाये ?

रानी—तुम्हारे सुदर शरीर की शोभा दुस्सह परीषह को कैसे सहन कर सकेगी ?

राजा—अस्थि और चर्म से बद्ध इस शरीर मे सुन्दरता कहॉ से आई ?

रानी—हे राजन्! कुछ दिन तो और गृहवास करो, ऐसी क्या जल्दी पडी है ?

राजा—कल्याण के कार्य मे बहुत विघ्न आते है, इसलिये क्षणभर भी यहॉ रहना उचित नही।

रानी—फिर भी अपने पुत्रो और राज्यलक्ष्मी के इतने बडे विस्तार का तो जरा ध्यान करो।

राजा—ससार मे अनन्तकाल से भ्रमण करते हुए हमने तो कोई भी वस्तु स्थिर नहीं देखी।

रानी—इतनी बडी समृद्धि के मौजूद होने पर इतना दुष्कर कार्य करने क्यो चल पडे ?

राजा—शरद्कालीन मेघों के समान क्षणभगुर इस समृद्धि मे तुम क्यो विश्वास करती हो ?

रानी—युवावस्था मे ही पॉच प्रकार के इन सुदर विषयभोगो का तुम क्यों त्याग करते हो ?

राजा—जिसने इनका स्वरूप जान लिया है, वह परिणाम मे दुखकारी इन विषयभोगों का स्मरण क्यो करेगा ?

रानी—यदि तुम प्रव्रज्या ग्रहण कर लोगे तो तुम्हारे स्वजन-सबधी रुदन करेंगे।

राजा—धर्म की परवा न करते हुए ये लोग अपने अपने स्वार्थ के वश ही रुदन करेंगे।[1]

आराधना को स्पष्ट करने के लिये मधुराजा और सुकोसल मुनि के दृष्टात दिये गये है। फिर विस्तार से आराधना का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए उसके चार मूल द्वार बताये है।

---

१ राजा—त होज्ज न वा को मुणति तडिलयाचचले जीए।
देवी—दुस्सहपरीसहे कह सहिहि तुह सुदरा सरीरसिरी॥
राजा—किं सुन्दरत्तमेयाए अट्ठिचम्मावणद्धाए।
देवी—कइयवि दिणाणि निवसह सगिहे च्चिय कीस ऊसुगा होह॥
राजा—बहुविग्घे सेयत्थे खणपि कह णिवसिउ जुत्त।
देवी—पेच्छह तहावि नियपुत्तरज्जलच्छीए पवरविच्छड्ड॥
राजा—ससारमि भमतेहिं णतसो किं ठियमदिट्ठ।
देवी—किं दुक्करेण इमिणा सतीए समुद्धराए रिद्धीए॥
राजा—सरयब्भभगुराए इमीए को तुज्झ वीसभो।
देवी—पचप्पयारपवरे अपत्तकाले वि चयसि किं विसए॥
राजा—मुणियसरूवो को ते सरेज्ज पज्जतदुक्खकरे।
देवी—तइ प वज्जोवगए सुचिर परिदेविही सयणवग्गो॥
राजा—नियनियकज्जाइ इमो परिदेवइ धम्मणिरवेक्खो।

आराधना धारण करनेवालो मे मरुदेवी आदि के दृष्टात दिये गये है। तत्पश्चात् अर्हत् लिंग, शिक्षा, विनय समाधि, मनो शिक्षा, अनियतविहार, राजा और परिणाम नामके द्वारों को स्पष्ट करने के लिये क्रम से वकचूल, कूलवाल, मगु आचार्य श्रेणिक, नमिराजा, वसुदत्त, स्थविरा, कुरुचन्द्र, और वज्रमित्र के कथानक दिये गये है। श्रावकों की दस प्रतिमाओं का स्वरूप बताया गया है। फिर जिनभवन, जिनबिंब, जिनबिम्ब का पूजन, प्रौषधशाला आदि दस स्थानों का निरूपण है।

विवेकमंजरी

इसके कर्ता महाकवि श्रावक आसड है जो भिल्लमाल (श्रीमाल) वश के कटुकराज के पुत्र थे। वे भीमदेव के महामात्य पद पर शोभित थे। विक्रम सवत् १२४८ (ईसवी सन् ११९१) मे उन्होने विवेकमजरी नामके उपदेशात्मक कथा ग्रन्थ की रचना की। आसड ने अपने आपको कवि कालिदास के समान यशस्वी बताया है। वे 'कविसभाशृङ्गार' के रूप मे प्रसिद्ध थे। उन्होने कालिदास के मेघदूत पर टीका, उपदेशकदलीप्रकरण तथा अनेक जिनस्तोत्र और स्तुतियों की रचना की है। बाल-सरस्वती नामक कवि का पुत्र तरुण वय मे ही काल कवलित हो गया, इसके शोक से अभिभूत हो अभयदेवसूरि के उपदेश से कवि इस ग्रन्थ की रचना करने के लिये प्रेरित हुए[1]। इस पर बालचन्द्र और अकलक ने टीकाये लिखी है।

उपदेशकदलि

उपदेशकदलि मे उपदेशात्मक कथाये है। इसमे १२० गाथाये है।

उवएसरयणायर (उपदेशरत्नाकर)

इसके कर्ता सहस्रावधानी मुनिसुन्दरसूरि है जो बालसरस्वती

१ देखिये मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ३३८–९।

और वादिगोकुलषण्ड के नाम से सन्मानित किये जाते थे।[1] उपदेशरत्नाकर विक्रम सवत् १४७६ (ईसवी सन् १३१६) से पूर्व की रचना है जो लेखक के स्वोपज्ञविवरण से अलकृत है। यह ग्रन्थ चार अशो मे समाप्त होता है, इसमे १२ तरग है। अनेक दृष्टान्तो द्वारा यहाँ धर्म का प्ररूपण किया गया है। अनेक आचार्यों, श्रेष्ठियो, और मत्रियो आदि के सक्षिप्त कथानक विवरण मे दिये है। इसके अतिरिक्त, महाभारत, महानिशीथ, व्यवहारभाष्य, उत्तराध्ययनवृत्ति, पचाशक, धनपाल की ऋषभ-पचाशिका आदि कितने ही ग्रन्थों के उद्धरण यहाँ दिये गये है। रागी, दुष्ट, मूढ, और पूर्वग्रह से युक्त व्यक्ति को उपदेश के अयोग्य बताया है। इसके दृष्टात भी दिये गये है। अर्थी (जिज्ञासु), समर्थ, मध्यस्थ, परीक्षक, धारक, विशेषज्ञ, अप्रमत्त, स्थिर और जितेन्द्रिय व्यक्ति को धर्म का साधक बताया गया है। चषक आदि पक्षियों के दृष्टान्त द्वारा धर्म का उपदेश दिया है। सर्प, आमोषक (चोर), ठग, वणिक्, वन्ध्या गाय, नट, वेणु, सखा, बन्धु, पिता, माता और कल्पतरु इन बारह दृष्टान्तों द्वारा योग्य अयोग्य गुरु का स्वरूप बताया है। गुरुओ के निबोली, प्रियालु, नारियल और केले की भाँति चार भेद किये है। जैसे जल, फल, छाया और तीर्थ से विरहित पर्वत आश्रित जनों को कष्टप्रद होते है, उसी प्रकार श्रुत, चारित्र, उपदेश और अतिशय से रहित गुरु अपने शिष्यों के लिये क्लेशदायी होते है। गुरु को कीटक, खद्योत, घटप्रदीप, गृहदीप, गिरिप्रदीप, ग्रह, चन्द्र और सूर्य की उपमा दी है। अर्क (आख), द्राक्ष, वट और आम्र की उपमा देकर मिथ्या-क्रिया, सम्यक्क्रिया, मिथ्यादानयात्रा ओर सम्यक्दानयात्रा को समझाया है। धर्मो के सबध मे कहा है—

---

१ देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रथमाला में सन् १९१४ में बबई से प्रकाशित।

मुहपरिणामे रम्मारम्म जह ओसह भने चउहा।
इअ बुद्धधम्मजिणतवपभावणाधम्ममिच्छाणि॥

—औषधि चार प्रकार की होती है (१) स्वादिष्ट लेकिन परिणा मे कटु, (२) खाने मे कडवी लेकिन परिणाम मे सुन्दर, (३) खाने मे अच्छी और परिणाम मे भी अच्छी, (४) खाने मे कडवी और परिणाम मे कटु। इसी प्रकार क्रम से बुद्धधर्म, जिनधर्म, प्रभावनाधर्म और मिथ्यात्वरूप धर्म को समझना चाहिये।

फिर मिथ्यात्व, कुभाव, प्रमादविधि तथा सम्यक्त्वशुभभाव-अप्रमत्तविधि की क्रम से परिखा, पशुओ से कलुषित जल, नवीन जल और मानससरोवर से उपमा दी गई है। शुक, मशक, मक्षिका, करि, हरि, भारड, रोहित और झश (मछली) के दृष्टान्तों द्वारा मिथ्यात्व के बधन मे बद्ध अधम जीवो का प्रतिपादन किया है। मोदक के दृष्टान्त द्वारा आठ प्रकार के मनुष्यजन्म का स्वरूप बताया है। यवनाल, इक्षुदण्ड, रस, गुड, खाड और शक्कर के दृष्टान्तों से धर्म के परिणाम का प्रतिपादन किया है।

वर्धमानदेशना

इसके रचयिता साधुविजयगणि के शिष्य शुभवर्धनगणि हैं।[1] विक्रम सवत् १५५२ (ईसवी सन् १४९५) मे इन्होंने वर्धमानदेशना नामक ग्रथ की रचना की। प्राकृत पद्यों मे लिखा हुआ यह ग्रथ उपासकदशा नाम के सातवें अग मे से उद्धृत किया गया है। इसके प्रथम विभाग मे तीन उल्लास है। यहाँ विविध कथाओं द्वारा महावीर के धर्मोपदेश का प्रतिपादन है। उदाहरण के लिये, सम्यक्त्व का प्रतिपादन करने के लिये हरिबल, हसनृप, लक्ष्मीपुज, मदिरावती, धनसार, हसकेशव, चारुदत्त,

१ जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगर की ओर से विक्रम सवत् १९८४ में प्रकाशित।

धर्मनृप, सुरसेन महासेन, केशरि चोर, सुमित्र मत्री, रणशूर नृप और जिनदत्त व्यापारी की कथाओं का वर्णन है। दूसरे उल्लास मे कामदेव श्रावक आदि और तीसरे उल्लास मे चुलनीपिता श्रावक आदि की कथाये कही गई है।

इसके अतिरिक्त, अतरगप्रबोध, अतरगसधि, गौतमभाषित, दशदृष्टातगीता (कर्ता सोमविमल), नारीबोध, हिताचरण, हितोपदेशामृत आदि प्राकृत ग्रन्थों की जैन औपदेशिक साहित्य मे गणना की जा सकती है।[१]

---

१ देखिये जैन ग्रथावलि, पृष्ठ १६८–१९४।

सातवाँ अध्याय

प्राकृत चरित-साहित्य

(ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक)

कथा और आख्यानों की भाँति जैन मुनियों ने महापुरुषों के चरितों की भी रचना की है। जब ब्राह्मणों के पुराण-ग्रन्थों की रचना होने लगी, तथा रामायण, महाभारत और हरिवंश-पुराण आदि की लोकप्रियता बढ़ने लगी तो जैन विद्वानो ने भी राम, कृष्ण और तीर्थंकर आदि महापुरुषो के जीवन चरित लिखना आरम्भ किया। तरेसठशलाकापुरुषों के चरित मे चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव और नो प्रतिवासुदेवों के चरितों का समावेश किया गया। कल्पसूत्र मे ऋषभदेव, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर आदि तीर्थंकरो के चरितों का वर्णन किया गया। वसुदेवहिण्डी मे तीर्थंकरों के चरित लिखे गये। भरहेसर ने अपनी कहावलि[1] मे तीर्थंकरों के चरितों की रचना की। यतिवृषभ की तिलोयपण्णत्ति और जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यकभाष्य मे महापुरुषों के चरितो को संकलित किया गया। निर्वृतिकुल के मानदेवसूरि के शिष्य शीलाकाचार्य (अथवा शीलाचार्य) ने सन् ८६८ मे चउपन्नमहापुरिसचरिय मे चौवन शलाकामहापुरुषों का जीवन

---

१ डॉक्टर यू० पी० शाह द्वारा संपादित होकर यह ग्रंथ गायकवाड़ ओरिएंटल सीरिज़, बड़ौदा से प्रकाशित हो रहा है।

चरित लिखा।[1] स्वतन्त्ररूप से भी अनेक चरितो की रचना हुई। उदाहरण के लिये, वर्धमानसूरि ने आदिनाथचरित, विजयसिंह के शिष्य सोमप्रभ ने सुमतिनाथचरित, देवसूरि ने पद्मप्रभस्वामी चरित, यशोदेव ने चन्द्रप्रभस्वामीचरित, अजितसिंह ने श्रेयांसनाथ चरित, चन्द्रप्रभ ने वासुपूज्यस्वामिचरित, नेमिचन्द्र ने अनंतनाथ-चरित, देवचन्द्र ने शांतिनाथचरित, जिनेश्वर ने मल्लिनाथचरित, श्रीचन्द्र ने मुनिसुव्रतस्वामिचरित, रत्नप्रभ ने नेमिनाथचरित आदि चरितों की रचना की।[2] इसी प्रकार अतिमुक्तकचरित, ऋषिदत्ताचरित,[3] देवकीचरित, रोहिणीचरित, दमयंतीचरित, मनोरमाचरित, मलयसुन्दरीचरित, पद्मावतीचरित, सीताचरित, हरिबलचरित, वज्रचरित, नागदत्तचरित, भरतचरित आदि कितने ही चरित लिखे गये जो अभी तक अप्रकाशित पड़े हैं।[4]

जैनधर्म के उन्नायक महान् आचार्यों के चरित भी जैन आचार्यों ने लिखे। उदाहरण के लिये, जिनदत्त और चारित्रसिंह गणि ने[5] गणधरसार्धशतक की रचना की। इसमें आर्यसमुद्र, मंगु, वज्रस्वामी, भद्रगुप्त, तोसलिपुत्र, आर्यरक्षित, उमास्वाति, हरिभद्रशीलांक, नेमिचन्द्र, उद्योतनसूरि, जिनचन्द्र, अभयदेव आदि आचार्यों के चरित लिखे गये। आगे चलकर जिनसेन,

---

१ मुनि पुण्यविजय जी इसे प्रकाशित कर रहे हैं। इसके मुद्रित फर्मे (१–३३५) उनकी कृपा से मुझे देखने को मिले। क्लौस ब्रूहन (Klaus Bruhn) द्वारा संपादित, हैम्बर्ग से १९५४ में प्रकाशित।

२ विशेष के लिये देखिये जैन ग्रंथावलि, श्रीश्वेतांबर जैन कान्फरेन्स, बंबई, वि० सं० ११६५, पृष्ठ २३८–२४५। आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित सिरिपयरणसंदोह (ऋषभदेव केशरीमल संस्था, रतलाम, सन् १९२९) में प्रकाशित हुए हैं।

३ इसे मुनि जिनविजयजी प्रकाशित कर रहे हैं।

४ जैन ग्रंथावलि, पृष्ठ २२०–२३७।

५ चुन्नीलाल पन्नालाल द्वारा बंबई से सन् १९१६ में प्रकाशित।

गुणभद्र और आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की सस्कृत मे रचना की। फिर पुष्पदन्त ने अपभ्रश मे, और चामुण्डराय ने कन्नड मे महापुरुषों के जीवनचरित लिखे। तमिल मे भी चरितो की रचना हुई। इन चरितो मे लौकिक और धार्मिक कथाओं का समावेश किया गया।

अपनी कल्पना के आधार से भी कल्पित जीवनचरितों की जैन आचार्यों ने रचना की। वासुदेवो मे राम और कृष्ण के अनेक लोकप्रिय चरित लिखे गये। नायाधम्मकहाओ, अतगड दसाओ और उत्तराध्ययनसूत्र मे कृष्ण की कथा आती है। विमलसूरि ने पउमचरिय मे राम का और हरिवसचरिय मे कृष्ण का चरित लिखा है। भद्रबाहु का वसुदेवचरित अनुपलब्ध है। सघदास के वसुदेवहिण्डी मे वसुदेव के भ्रमण की कथा है। जिनसेन ने सस्कृत मे और धवल ने अपभ्रश मे हरिवश पुराण की रचना की। इसके सिवाय करकडु, नागकुमार, यशोधर, श्रीपाल, जीवधर, सुसढ आदि महापुरुष तथा अनेक गणधर, विद्याधर, केवली, यति मुनि, सती-साध्वी, राजा रानी, सेठ साहुकार, व्यापारी, दानी आदि के जीवनचरित लिखे गये।

पउमचरिय (पद्मचरित)

वाल्मीकि की रामायण की भाँति पउमचरिय मे जैन परपरा के अनुसार ११८ पर्वों मे पद्म (राम) के चरित का वर्णन किया गया है।[1] पउमचरिय के कर्त्ता विमलसूरि है जो नागिल

१ डाक्टर हर्मन याकोबी द्वारा सम्पादित सन् १९१४ में भावनगर से प्रकाशित। इसका मूल के साथ शान्तिलाल शाहकृत हिन्दी अनुवाद प्राकृत जैन टैक्स्ट सोसायटी की ओर से प्रकाशित हो रहा है। इसके कुछ मुद्रित फर्मे प्रोफेसर दलसुख मालवणीया की कृपा से मुझे देखने को मिले। दिगम्बर आचार्य रविषेण ने इस ग्रन्थ के आधार पर सन् ६७८ में सस्कृत में पद्मपुराण की रचना की है। देखिये नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य का इतिहास, पृ० ८७।

वश के आचार्य राहु के प्रशिष्य थे। स्वय ग्रन्थकर्ता के कथनानुसार महावीर निर्वाण के ५३० वर्ष पश्चात् (ईसवी सन् के ६० के लगभग), पूर्वों के आधार से उन्होंने जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे आर्या छद मे इस राघवचरित की रचना की है। लेकिन प्रोफेसर याकोबी ने विमलसूरि का समय ईसवी सन् की चौथी शताब्दी माना है। के० एच० ध्रुव के कथनानुसार इस कृति मे गाहिनी और सरह छद का प्रयोग होने से इसका समय ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी मानना चाहिये। विमलसूरि के मतानुसार वाल्मीकिरामायण विपरीत और अविश्वसनीय बातों से भरी हुई है, इसलिये पडित लोग उसमे श्रद्धा नही करते। उदाहरण के लिये, वाल्मीकि रामायण मे कहा है कि रावण आदि राक्षस मास आदि का भक्षण करते थे, रावण का भाई कुभकर्ण छह महीने तक सोता रहता था, और भूख लगने पर वह हाथी, भैस आदि जो भी कुछ मिलता उसे निगल जाता था, तथा इन्द्र को पराजित कर रावण उसे श्रृङ्खला मे बॉधकर लका मे लाया था। लेखक के अनुसार ये बाते असभव है, और ऐसी ही है जैसे कोई कहे कि किसी हरिण ने सिह को मार डाला अथवा कुत्ते ने हाथी को भगा दिया। राजा श्रेणिक के द्वारा प्रश्न करने पर गौतम गणधर द्वारा कही हुई रामकथा का विमलसूरि ने पउमचरिय मे वर्णन किया है। बीच बीच मे अनेक उपाख्यानों, नगर, नदी, तालाब, ऋतु, आदि का वर्णन देखने मे आता है। शैली मे प्रवाह और जोर है। काव्य सौष्ठव की अपेक्षा आख्यायिका के गुण अधिक है, ऐसा लगता है जैसे कोई आख्यान सुनाया जा रहा हो। वर्णन आदि के प्रसगों पर काव्यत्व भी दिखाई दे जाता है। शब्दकोष समृद्ध है, कितने ही देशी शब्द जहॉ तहॉ देखने मे आते है। व्याकरण के विचित्र रूप पाये जाते हैं। 'एवि,' 'कवण' आदि रूप अपभ्रश के जान पड़ते है।

सूत्रविधान नाम के प्रथम उद्देशक मे इस ग्रन्थ को सात

अधिकारो मे विभक्त किया गया है—विश्व की स्थिति, वशोत्पत्ति, युद्ध के लिये प्रस्थान, युद्ध, लव और कुश की उत्पत्ति, निर्वाण और अनेक भव। तत्पश्चात् विस्तृत विषयसूची दी हुई है। श्रेणिकचिन्ताविधान नामक दूसरे उद्देशक मे राजगृह, राजा श्रेणिक, महावीर, उनका उपदेश और पद्मचरित के सबध मे राजा श्रेणिक की शका आदि का वर्णन है। विद्याधरलोकवर्णन मे राजा श्रेणिक गौतम के पास उपस्थित होकर रामचरित के सबध मे प्रश्न करते है। गौतम केवली भगवान् के कथन के अनुसार प्रतिपादन करते है कि मूढ कवियों का रावण को राक्षस और मासभक्षी कहना मिथ्या है। इस प्रसग पर ऋषभदेव के चरित का वर्णन करते हुए बताया है कि उस समय कृतयुग मे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल यही तीन वर्ण विद्यमान थे। यहाँ विद्याधरों की उत्पत्ति बताई है। चौथे उद्देशक मे लोकस्थिति, भगवान् ऋषभ का उपदेश, बाहुबलि, की दीक्षा, भरत की ऋद्धि और ब्राह्मणों की उत्पत्ति का प्रतिपादन है। पाँचवे उद्देशक मे इक्ष्वाकु, सोम, विद्याधर और हरिवश नाम के चार महावशों की उत्पत्ति तथा अजितनाथ आदि के चरित का कथन है। छठे उद्देशक मे राक्षस एव वानरों की प्रव्रज्या का वर्णन है। वानरवश की उत्पत्ति के सबध मे कहा है कि वानर लोग विद्याधर वशों के थे तथा इनकी ध्वजा आदि पर वानर का चिह्न होने के कारण ये विद्याधर वानर कहे जाते थे। सातवें उद्देशक मे दशमुख (रावण) की विद्यासाधना के प्रसग मे इन्द्र, लोकपाल और रत्नश्रवा आदि का वृत्तान्त है। रावण का जन्म, उसकी विद्यासाधना आदि का उल्लेख है। रावण की माता ने अपने पुत्र के गले मे उत्तम हार पहनाया, इस हार मे रावण के नौ मुख प्रतिबिम्बित होते थे, इसलिये उसका नाम दशमुख रक्खा गया। भीमारण्य मे जाकर दशमुख ने विद्याओं की साधना की। यहाँ अनेक विद्याओं के नाम उल्लिखित है। आठवें उद्देशक मे रावण का मन्दोदरी के साथ विवाह, कुभकर्ण और विभीषण का विवाह, इन्द्रजीत का जन्म, रावण और

वैश्रमण का युद्ध, भुवनालङ्कार हाथी पर रावण का आधिपत्य आदि का वृत्तान्त है। नौवें उद्देशक मे बाली और सुग्रीव का जीवन वृत्तान्त, खरदूषण का चन्द्रनखा के साथ विवाह, बाली और रावण का युद्ध, अष्टापद पर बाली मुनि द्वारा रावण का पराभव और धरणेन्द्र से शक्ति की प्राप्ति का वर्णन है। दसवे उद्देशक में रावण की दिग्विजय के प्रसग मे रावण का इन्द्र के प्रति प्रस्थान, तथा रावण और सहस्रकिरण के युद्ध का वृत्तान्त है। ग्यारहवे उद्देशक मे रावण को जिनेन्द्र का भक्त बताया है, उसने अनेक जिन मदिरों का निर्माण कराया था। यज्ञ की उत्पत्ति की कथा के प्रसग मे नारद और पर्वत का सवाद है। नारद के जीवन वृत्तान्त का कथन है। नारद ने आर्षवेदो से अनुमत वास्तविक यज्ञ का स्वरूप प्रतिपादन करते हुए कहा है—

वेइसरीरज्झीणो मणजलणो नाणघयसुपज्जलिओ।
कम्मतरुसमुप्पन्न, मलसमिहासचय डहइ॥
कोहो माणो माया लोभो रागो य दोसमोहो य।
पसवा हवन्ति एए हन्तव्वा इन्दिएहि सम॥
सच्च खमा अहिंसा दायव्वा दक्खिणा सुपज्जत्ता।
दसणचरित्तसजमबभाईया इमे देवा॥
एसो जिणेहि भणिओ जन्नो सच्चत्थवेयनिद्दिट्ठो।
जोगविसेसेण कओ देइ फल परमनिव्वाण॥

—शरीर रूपी वेदिका में ज्ञानरूपी घी से प्रज्वलित, मनरूपी अग्नि, कर्मरूपी वृक्ष से उत्पन्न मलरूपी काष्ठ के समूह को भस्म करती है। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और मोह ये पशु है, इन्द्रियों के साथ इनका वध करना चाहिये। सत्य, क्षमा, अहिंसा, सुयोग्य दक्षिणा का दान, सम्यक्दर्शन, चारित्र्य, सयम और ब्रह्मचर्य आदि देवता है। सच्चे वेदों मे निर्दिष्ट यह यज्ञ जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है। यदि यह योग विशेष पूर्वक किया जाये तो परम निर्वाण के फल को प्रदान करता है।

उसके पश्चात् तापसों की उत्पत्ति का वर्णन है। बारहवें उद्देशक मे रावण की पुत्री मनोरमा के विवाह, शूलरत्न की उत्पत्ति, रावण का नलकूबर के साथ युद्ध और इन्द्र के साथ युद्ध का वृत्तान्त है। तेरहवें उद्देशक मे इन्द्र के निर्वाणगमन का कथन है। चौदहवें उद्देशक मे रावण मेरु पर्वत पर जाकर चैत्य गृहों की वन्दना करता है। अनन्तवीर्य धर्म का उपदेश देते हैं। यहाँ श्रमण और श्रावकधर्म का प्ररूपण है। रात्रिभोजन-त्याग और उसका फल बताया गया है। तत्पश्चात् अजनासुदरी के विवाह विधान मे हनुमान का चरित, अजना का पवनजय के साथ सबध आदि का वर्णन है। सोलहवें उद्देशक मे पवनजय और अजनासुदरी का भोग और सतरहवे उद्देशक मे हनुमान के जन्म का वृत्तान्त है। बीसवे उद्देशक मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती और बलदेव आदि के भवों का वर्णन है। मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, महावीर और वासुपूज्य के सबध मे कहा है कि ये कुमारसिंह (बिना राज्य किये ही) गृह का त्याग करके चले गये, शेष तीर्थंकर पृथ्वी का उपभोग कर दीक्षित हुए।[1] इक्कीसवे उद्देशक मे हरिवश की उत्पत्ति और मुनिसुव्रत तीर्थंकर का वृत्तात है। बीस उद्देशकों की समाप्ति के पश्चात् सर्वप्रथम यहाँ राजा जनक और राजा दशरथ का नामोल्लेख किया गया है। बाईसवे उद्देशक मे दशरथ के जन्म का वर्णन करते हुए विविध तपों का उल्लेख है। मासभक्षण का फल प्रतिपादित किया है। अपराजिता, कैकेयी और सुमित्रा के साथ दशरथ का विवाह हुआ।[2] किसी सग्राम मे दशरथ की सारथि बनकर कैकेयी ने उसकी सहायता की जिससे प्रसन्न होकर दशरथ ने उससे कोई वर मागने को कहा, चौबीसवे उद्देशक मे इसका कथन है।

---

१ एए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिंदा।
सेसावि हु रायाणो पहई मोत्तूण निक्खता॥ ५८॥

२ अन्यत्र अपराजिता के स्थान पर कौशल्या का नाम मिलता है। देखिये हरिभद्र का उपदेशपद, भाग १।

पच्चीसवे उद्देशक मे अपराजिता से पद्म (राम), सुमित्रा से लक्ष्मण तथा कैकयी से भरत और शत्रुघ्न की उत्पत्ति बताई है। छब्बीसवे उद्देशक मे सीता और भामडल की उत्पत्ति का वृत्तान्त है। यहाॅ मासविरति का फल बताया गया है। राम द्वारा म्लेच्छों की पराजय का उल्लेख है। राम लक्ष्मण को धनुषरत्न की प्राप्ति हुई। मिथिला मे सीता का स्वयवर रचा गया। राम ने धनुष को उठाकर उस पर डोरी चढा दी और सीता ने उनके गले मे वरमाला पहना दी। उनतीसवे उद्देशक मे दशरथ के वैराग्य का वर्णन है। इस प्रसग पर आषाढ शुक्ला अष्टमी के दिन दशरथ ने जिन चैत्यों की पूजा का माहात्म्य मनाया। जिनपूजा करने के पश्चात् उसने गधोदक को अपनी रानियों के लिये भेजा। रानी ने गधोदक को अपने मस्तक पर चढाया। पटरानी को यह पवित्र जल नही मिला जिससे उसने दुखी होकर अपने जीवन का अन्त करना चाहा। इतने मे कचुकी जल लेकर पहुॅचा और उसका मन शान्त हो गया। तत्पश्चात् दशरथ ने प्रव्रज्या ग्रहण करने का निश्चय किया। अपने पिता का यह निश्चय देख भरत ने भी प्रतिबुद्ध होकर दीक्षा लेने का विचार किया। कैकेयी यह जानकर अत्यत दुखी हुई। इस समय उसने दशरथ से अपना वर माॅगा कि भरत को समस्त राज्य सौंप दिया जाये। दशरथ ने इसे स्वीकार कर लिया। राम ने भी इसकी अनुमोदन किया और वे स्वेच्छा से वनगमन के लिये तैयार हो गये। लक्ष्मण और सीता भी साथ मे चलने को तैयार हो गये। वन मे जाकर तीनों इधर-उधर परिभ्रमण करते रहे। दण्डकारण्य मे वास करते समय लक्ष्मण ने खरदूषण के पुत्र शबूक का वध कर डाला। चन्द्रनखा रावण की बहन और खरदूषण की पत्नी थी। उसने अपने पुत्र के मारे जाने के कारण बहुत विलाप किया। यह समाचार जब रावण के पास पहुॅचा तो वह अपने पुष्पक विमान मे बैठकर आया और सीता को हर कर ले गया। सीताहरण का समाचार पाकर राम ने बहुत विलाप किया। तत्पश्चात् लक्ष्मण के साथ वानरसेना को लेकर उन्होंने लका

के लिये प्रस्थान किया। उधर से रावण भी अपनी सेना लेकर युद्ध के लिये तैयार हो गया। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मण को शक्ति लगी जिससे वे मूर्छित होकर गिर पड़े। लंका में फाल्गुन मास में अष्टाह्निका पर्व मनाये जाने का उल्लेख है। पूर्णभद्र और मणिभद्र नाम के यक्षों के नाम आते हैं।[1] रावण ने किसी मुनि के पास परदारत्याग का व्रत ग्रहण किया था, अतएव सीता को प्रसन्न करके ही उसने उसे प्राप्त करने का निश्चय किया। मन्दोदरी ने रावण को समझाया कि अठारह हजार रानियों से भी जब तुम्हारी तृप्ति नहीं हुई तो फिर सीता से क्या हो सकेगी? उसने अपने पति को परमहिला का त्याग करने का उपदेश दिया। लक्ष्मण और रावण का युद्ध हुआ और लक्ष्मण के हाथ से रावण का वध हुआ। सीता और राम का पुनर्मिलन हुआ। सब ने मिलकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। राम, लक्ष्मण और सीता का भव्य स्वागत हुआ। भरत और कैकेयी ने दीक्षा ग्रहण कर ली। भरत ने निर्वाण प्राप्त किया, कैकेयी को भी सिद्धि प्राप्त हुई। इसके बाद बड़ी धूमधाम से रामचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ। यहाँ राम और लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों का उल्लेख है। सीता को जिनपूजा करने का दोहद उत्पन्न हुआ। एक दिन अयोध्या के कुछ प्रमुख व्यक्ति राम से मिलने आये। उन्होंने इस बात की खबर दी कि नगर भर में सीता के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ फैली हुई हैं। लोग कहते हैं कि सीता को रावण हर कर ले गया था, उसने सीता का उपभोग किया, फिर भी राम ने उसे अपने घर में रख लिया। यह सुनकर राम को बहुत दुःख हुआ। वे सोचने लगे—"जिसके कारण मैंने राक्षसाधिप के साथ युद्ध किया, वही सीता मेरे यश को कलंकित कर रही है। तथा लोगों का यह कहना ठीक ही है, क्योंकि पर पुरुष के घर में रहने के पश्चात् भी मदन से मूढ

१ यक्षों के लिये देखिये जगदीशचन्द्र जैन, लाइफ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया, पृष्ठ २२०–२१।

बना हुआ मैं सीता को अपने घर ले आया। अथवा स्वभावत कुटिल स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है, वे दोषों की आगार है और उनके शरीर मे काम का वास है। स्त्रियाँ दुश्चरित्र का मूल है और मोक्ष मे विघ्न उपस्थित करनेवाली है।" यह सोचकर राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि सीता को निर्वासित कर दिया जाय। इस समय सीता के साथ जाने वाले सेनापति का हृदय भी द्रवित हो उठा। उसने इस अकर्म के लिये अपने आपको बहुत धिक्कारा। वन में सीता ने लव और कुश को जन्म दिया। लव कुश का रामचन्द्र से समागम हुआ, सीता की अग्निपरीक्षा ली गई। सीता ने घोषणा की कि राम को छोड़कर अन्य किसी पुरुष की मन, वचन, काया से स्वप्न मे भी यदि उसने अभिलाषा की हो तो यह अग्नि उसे जलाकर भस्म कर दे, और वह अग्नि मे कूद पड़ी। लेकिन सीता के निर्मल चरित्र के प्रभाव से अग्निकुड के स्थान पर निर्मल जल प्रवाहित होने लगा। रामचन्द्र ने सीता से क्षमा प्रार्थना की, लेकिन सीता ने केश-लोच कर के जैन दीक्षा स्वीकार कर ली। लव और कुश ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। इधर लक्ष्मण की मृत्यु हो गई, मर कर वे नरक मे गये। रामचन्द्र ने तप करके निर्वाण प्राप्त किया।

हरिवंसचरिय

विमलसूरि की दूसरी रचना हरिवसचरिय है जिसमे उन्होंने हरिवश का चरित लिखा है। यह अनुपलब्ध है।

जबूचरिय (जंबूचरित)

जबूचरित प्राकृत भाषा की एक सुदर कृति है जिसके रचयिता नाइलगच्छीय वीरभद्रसूरि के शिष्य अथवा प्रशिष्य गुणपाल मुनि थे।[1] इस ग्रन्थ की रचना शैली आदि से अनुमान

१ मुनि जिनविजय जी द्वारा सपादित होकर सिंघी जैन ग्रथमाला, बम्बई द्वारा यह ग्रथ प्रकाशित हो रहा है। मुनि जिनविजय जी की कृपा से इसकी मुद्रित प्रति मुझे देखने को मिली है।

किया जाता है कि यह ग्रन्थ विक्रम सवत् की ११वी शताब्दी या उससे कुछ पूर्व लिखा गया है। जैन परपरा में जबूस्वामी अतिम केवली माने जाते है, इनके पश्चात् किसी जैन श्रमण को निर्वाणपद की प्राप्ति नही हुई। महावीरनिर्वाण के पश्चात् जबूस्वामी ने सुधर्मस्वामी के पास श्रमणधर्म की दीक्षा स्वीकार की। सुधर्म ने महावीर के उपदेशों को जबू मुनि को सुनाया। इसलिये प्राचीन जैन आगमों मे सुधर्म और जबू मुनि के नाम-निर्देशपूर्वक ही महावीर के उपदेशों का उल्लेख किया गया है। जबूचरिय में इन्हीं जबूस्वामी के चरित का वर्णन किया है। ग्रथ की शैली पर हरिभद्र की समराइच्चकहा और उद्योतनसूरि की कुवलयमाला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। धर्मकथाप्रधान यह ग्रन्थ गद्य पद्य मिश्रित है, भाषा सरल और सुबोध है। कथा का वर्णन प्रवाहयुक्त है, बीच-बीच मे जैनधर्म सबधी अनेक उपदेशों को सग्रहीत किया गया है।

इस ग्रन्थ मे १६ उद्देश हैं। पहले उद्देश का नाम कहावीढ (कथापीठ) है। यहाँ अर्थ, काम, धर्म और सकीर्ण कथा नाम की चार कथाओं का उल्लेख है। दूसरे उद्देश का नाम कहानिबध (कथानिबध) है। तीसरे उद्देश मे राजा श्रेणिक महावीर की वन्दना के लिये जाते है। चौथे उद्देश मे वे अतिम केवली जबूस्वामी के सबध में भगवान् महावीर से प्रश्न करते है। महावीर उनके पूर्वभवों का वर्णन करते हैं। किसी पथिक के दोहे को देखिये—

सा मुद्धा तहिं देसडइ, दुक्खें दियह गमेइ।
जइ न पहुप्पह सुयण तुहुँ, अवसिं पाण चएई॥

—वह मुग्धा उस देश में दुःख से दिन बिता रही है। हे सुजन! यदि तुम नहीं आते हो वह अवश्य ही प्राणों को गॅवा देगी।

किसी पूर्व कवि की गाथा देखिये—

दूरयरदेसपरिसठियस्स पियसगम महतस्स।
आसाबधो च्चिय माणुसस्स परिरक्खए जीय॥

—दूरतर देश मे स्थित प्रिया के सगम की इच्छा करते हुए मनुष्य के जीवन की आशा का ततु ही रक्षा कर सकता है।

लाटदेश मे स्थित भरुयच्छ (भृगुकच्छ) नगर मे रेवाइच्च नामक ब्राह्मण आवया नाम की अपनी पत्नी के साथ रहता था। उसके पन्द्रह लडकियाँ और एक लडका था। ब्राह्मणी पानी भर कर, चक्की पीसकर, गोबर पाथकर और भीख मॉगकर अपने कुटुम्ब का पालन करती। पेट के लिये आदमी क्या नहीं करता, इसके सबध मे कहा है—

बसि चडति धुणति कर, धूलीधूया हति।
पोट्टहकारणि कापुरिस, क क ज न कुणति

—कापुरुष लोग बॉस पर चढते है, हाथ को मटकाते है, धूलि मे लिपटे रहते हैं, ऐसा कौन सा काम है जो पेट के कारण वे नहीं करते।

पॉचवें उद्देश मे जबूस्वामी के दूसरे भवो का वर्णन है। यहॉ प्रहेलिका, अत्याक्षरी, द्विपदी, प्रश्नोत्तर, अक्षरमात्रबिन्दुच्युत और गूढचतुर्थपाद का उल्लेख है। छठे उद्देश का नाम गृहिधर्म प्रसाधन है। एक उक्ति देखिये—

ज कल्ले कायव्व अज्ज चिय त करेह तुरमाणा।
बहुविग्घो य मुहुत्तो मा अवरण्ह पडिक्खेह॥[1]

—जो कल करना है उसे आज ही जल्दी से कर डालो। प्रत्येक मुहुर्त्त बहुविघ्नकारी है, अतएव अपराह्न की अपेक्षा मत करो।

सातवे उद्देश मे धर्मोपदेश श्रवण कर जबूकुमार को वैराग्य हो जाता है। अपने माता पिता के अनुरोध पर सिधुमती, दत्तश्री, पद्मश्री, पद्मसेना, नागसेना, कनकश्री, कमलावती और विजयश्री नाम की आठ कन्याओं से वे विवाह करते है। एक बार रात्रि

---

१ मिलाइये—

काल करै सो आज कर आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी बहुरि करोगे कब॥

के समय जबूकुमार अपनी आठों पत्नियों के साथ सुख से बैठे हुए क्रीडा कर रहे थे, उस समय प्रभव नाम के चोर सेनापति ने अपने भटो के साथ उनके घर मे प्रवेश किया। जम्बूस्वामी प्रभव को देखकर किचिन्मात्र भी भयभीत नही हुए। वे उसे उपदेश देने लगे। जबूकुमार ने प्रभव को मधुबिन्दु का दृष्टान्त सुनाया और कुबेरदत्ता नाम के आख्यान का वर्णन किया। तत्पश्चात् जबूकुमार ने अपनी आठों पत्नियों को हाथी, बन्दर, गीदड, धमक, वृद्धा, ग्राममूर्ख, पक्षी, भट्टदुहिता आदि के वैराग्य वर्धक अनेक कथानक सुनाये। अत मे उन्होंने श्रमणदीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धि पाई। प्रभव ने भी जबूकुमार का उपदेश श्रवण कर मुनि दीक्षा ली। जबूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रभव को उनका पद मिला, और उन्होंने भी सिद्ध-गति पाई।[1]

सुरसुंदरीचरिय

कहाणयकोस के कर्ता जिनेश्वरसूरि के शिष्य साधु धनेश्वर ने सुबोध प्राकृत गाथाओ मे वि० स० १०३५ (ईसवी सन् १०३८) मे चड्डावल्लि नामक स्थान मे इस ग्रन्थ की रचना की है।[2] यह

---

१ इसके अतिरिक्त सकलचन्द्र के शिष्य भुवनकीर्ति (विक्रम सवत् की १६वीं शताब्दी) और पद्मसुन्दर ने प्राकृत में जबूस्वामिचरित की रचना की। विजयदयासूरि के आदेश से जिनविजय आचार्य ने वि० स० १७८५ (सन् १७२८) में जबूस्वामिचरित लिखा (जैन साहित्यवर्धक सभा, भावनगर से वि० स० २००४ में प्रकाशित)। सस्कृत और अपभ्रश में भी श्वेताम्बर और दिगम्बर विद्वानोंने जबूस्वामि चरितों की रचना की। राजमल्ल का सस्कृत में लिखा हुआ जबू स्वामिचरित जगदीशचन्द्र जैन द्वारा सपादित होकर मणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रथमाला में वि० स० १९९३ में प्रकाशित हुआ है।

२ जैन विविध साहित्यशास्त्रमाला में मुनिराज श्रीराजविजय जी द्वारा सपादित और सन् १९१६ में बनारस से प्रकाशित।

कृति १६ परिच्छेदों मे विभक्त है, प्रत्येक परिच्छेद मे २५० पद्य है। यह एक प्रेम आख्यान है जो काव्यगुण से सपन्न है। यहाँ शब्दालकारों के साथ उपमालकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमाये बहुत सुन्दर बन पडी है। रसो की विविधता मे कवि ने बडा कौशल दिखाया है। अपभ्रश और ग्राम्यभाषा के शब्दो का जहाँ-तहाँ प्रयोग दिखाई देता है।

धनदेव सेठ एक दिव्य मणि की सहायता से चित्रवेग नामक विद्याधर को नागपाश से छुडाता है। दीर्घकालीन विरह के पश्चात् चित्रवेग का विवाह उसकी प्रियतमा के साथ होता है। वह सुरसुदरी और अपने प्रेम तथा विरह मिलन की कथा सुनाता है। सुरसुदरी का मकरकेतु के साथ विवाह हो जाता है। अन्त मे दोनों दीक्षा ले लेते है। मूलकथा के साथ अतर्कथाये इतनी अधिक गुम्फित है कि पढते हुए मूलकथा एक तरफ रह जाती है। कथा की नायिका सुरसुदरी का नाम पहली बार ग्यारहवे परिच्छेद मे आता है। इस ग्रन्थ मे भीषण अटवी, भीलो का आक्रमण, वर्षाकाल, वसन्त ऋतु, मदन महोत्सव, सूर्योदय, सूर्यास्त, सुतजन्म महोत्सव, विवाह, युद्ध, विरह महिलाओं का स्वभाव, समुद्रयात्रा तथा जैन साधुओं का नगरी मे आगमन, उनका उपदेश, जैनधर्म के तत्त्व आदि का सरस वर्णन है। विरहावस्था के कारण बिस्तरे पर करवट बदलते हुए और दीर्घ निश्वास छोड़कर सतप्त हुए पुरुष की उपमा भाड मे भूने जाते हुए चने के साथ दी है।[1] कोई प्रियतमा दीर्घकाल तक अपने प्रियतम के मुंख को टकटकी लगाकर देखती हुई भी नहीं अघाती—

एयस्स वयण पकय पलोयण मोत्तु मह इमा दिट्ठी।
पंक-निवुड्डा दुब्बल गाइव्व न सक्कए गतु॥

—जिस प्रकार कीचड मे फॅसी हुई कोई दुर्बल गाय अपने स्थान से हटने के लिये असमर्थ होती है, उसी प्रकार इसके मुख कमल पर गड़ी हुई मेरी दृष्टि वापिस नही लौटती।

१ भट्ठट्ठियचणगो वि य सयणीये कीस तडफडसि। (३, १४८)।

राजा के विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्ति को लक्ष्य करके कहा है—

काउ रायविरुद्ध नासतो कत्थ छुट्टसे पाव।
सूयार-साल वडिओ ससउव्व विणस्ससे इण्हि॥

—हे पापी। राजा के विरुद्ध कार्य करने से भाग कर तू कहाँ जायेगा ? रसोइये की पाकशाला मे आया हुआ खरगोश भला कहीं बचकर जा सकता है ?

यौवनप्राप्त कन्या के लिये वर की आवश्यकता बताई है—

धूया जोव्वणपत्ता वररहिया कुल हरम्मि वसमाणा।
त किंपि कुणइ कज्ज लहइ कुल मइलण जेण॥

—युवावस्था को प्राप्त वररहित कुलीन घर मे रहनेवाली कन्या जो कुछ कार्य करती है उससे कुल मे कलक ही लगता है।

राग दु ख की उत्पत्ति का कारण है—

तावच्चिय परमसुह जाव न रागो मणम्मि उच्छरइ।
हदि ! सरागम्मि मणे दुक्खसहस्साइ पविसति॥

—जब तक मन मे राग का उदय नहीं होता तब तक ही सुख है। रागसहित चित्तवाले मन मे सहस्रो दु खों का प्रवेश होता है।

पुत्रवती नारी की प्रशसा की गई है—

धन्नाउ ताउ नारीओ इत्थ जाओ अहोनिसिं नाह।
नियय थण धयत थणधय हदि ! पिच्छति॥

—वे नारियाँ धन्य है जो नित्य स्तनपान करते हुए अपने बालक को देखती हैं।

स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हुए बताया गया है कि चचल चित्तवाली महिलाओं मे कापुरुष जन ही आसक्तिभाव रखते हैं, सज्जन नहीं। अपने मन मे वे और कुछ सोचती है, और किसी को देखती है तथा किसी और के साथ सबध जोडती है, चचल चित्तवाली ऐसी महिलाओं को कौन प्रिय हो सकता है ? स्त्रियाँ सत्य, दया, और पवित्रता से विहीन होती है, अकार्य

मे रत रहती है, बिना बिचारे साहसपूर्ण कार्य करती है, भय उत्पन्न करती है, ऐसी हालत मे कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है जो उनसे प्रेम करेगा ? गुरु के मुख से स्त्रियों के सबध मे उपर्युक्त वाक्य सुनकर शिष्य ने शका की कि महाराज ! मेरी स्त्री तो सरल, पतिव्रता, सत्य, शील और दया से युक्त है, तथा वह मुझ से प्रेम करती है और विनीत है। गुरु ने उत्तर दिया—भले ही वह गुणवती हो, लेकिन फिर भी वह विष से मिश्रित भोजन की भाँति दुर्गति को ही ले जानेवाली है।

जीव, सर्वज्ञ और निर्वाण को स्वीकार न करनेवाले नास्तिक वादी कपिल का उल्लेख है। भूत-चिकित्सा के लिये नमक उतारना, सरसों मारना और रक्षा-पोटली बाँधने का विधान है।

शत्रु का आक्रमण होने पर जो गाँव शत्रु के मार्ग मे पडते थे, वहाँ के निवासी गाँव को खाली करके अन्यत्र चले जाते थे, वहाँ के कुओं को ढक दिया जाता और तालाबों के पानी को खराब कर दिया जाता था जिससे वह शत्रुसेना के उपयोग मे न आ सके।

गभीर नाम के समुद्रतट का सुन्दर वर्णन है। यहाँ से व्यापारी लोग सुपारी नारियल, कपूर, अगुरु, चदन, जायफल आदि से यानपात्र को भरकर शुभ नक्षत्र देखकर मगलघोष के साथ विदेशयात्रा के लिये प्रस्थान करते है। यानपात्र शनै शनै बड़ी सावधानी के साथ किसी सयमशील मुनि की भाँति आगे बढता है।

उद्यान मे क्रीडा करते हुए सुरसुदरी और मन्दरकेतु का विनोद पूर्ण प्रश्नोत्तर देखिये—

किं धरइ पुन्नचदो, किं वा इच्छति पामरा खित्ते ?
आमतसु अत गुरु कि वा सोक्ख पुणो सोक्ख ?
दट्ठूण कि विसट्टइ कुसुमवण जणियजणमणाणद ?
कह णु रमिज्जइ पढम परमहिला जारपुरिसेहिं ?
(इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है—स स क)

—१ पूर्णचन्द्र किसे अपने मे धारण करता है? सस (शश अर्थात् हरिण को)।

२ किसान लोग खेत मे किसकी इच्छा करते है? क (जल की)।

३ अंतगुरु (जिसके अन्त मे गुरु आता हो) कौन है? स (सगण)।

४ सुख क्या है? स (श-सुख) ५ फिर सुख क्या है? क (सुख)। ५ पुष्पों का समूह किसे देखकर प्रफुल्लित हो उठता है? ससक (शशाक-चन्द्रमा को)। ६ परस्त्री किसी जार पुरुष से कैसे रमण करती? ससक (सशक-सशक होकर)।

रयणचूडरायचरिय (रत्नचूडराजचरित)

प्राकृत गद्य मे रचित धर्मकथाप्रधान यह कृति ज्ञातृधर्मकथा नाम के आगम ग्रन्थ का सूचक है जिसमे देवपूजा और सम्यक्त्व आदि धर्मों का निरूपण किया है।[1] इसके रचयिता उत्तराध्ययन-सूत्र पर सुखबोधा नाम की टीका (रचनाकाल विक्रम सवत् ११२९) लिखनेवाले तथा आख्यानमणिकोश के रचयिता सुप्रसिद्ध आचार्य नेमिचन्द्र है। यह कृति डिंडिलवद्दनिवेश मे आरभ हुई और चड्डावल्लि पुरी में समाप्त हुई। सस्कृत से यह प्रभावित है, इसमे काव्य की छटा जगह-जगह देखने मे आती है। अनेक सूक्तियाँ भी कही गई हैं। लेखक ने अनेक स्थलों पर बडे स्वाभाविक चित्र उपस्थित किये है। गौतम गणधर राजा श्रेणिक को रत्नचूड की कथा सुनाते हैं।

रत्नचूड जब आठ वर्ष का हुआ तो उसे श्वेत वस्त्र पहना और पुष्प आदि से अलकृत कर विद्याशाला मे ले गये और समस्त शास्त्र आदि के पडित ज्ञानगर्भ नामक कलाचार्य का वस्त्र आदि द्वारा सत्कार कर शुभ नक्षत्र मे गुरुवार के दिन उसे

१ पन्यास मणिविजय गणिवर ग्रथमाला में सन् १९४२ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

विद्याध्ययन करने के लिये बैठा दिया। रत्नचूड ने छद, अलकार, काव्य, नाटक आदि का अध्ययन किया।

जब वह बडा हुआ तो कोई विद्याधर उसे उठाकर ले गया। किसी जगल मे पहुँचकर वह एक तापस से मिला। वहाँ राज कुमारी तिलकसुन्दरी से उसकी भेंट हुई। दोनो का विवाह हो गया। जब वे नदिपुर जा रहे थे तो तिलकसुन्दरी को कोई विद्याधर हर कर ले गया। रत्नचूड रिष्टपुर चला गया। रिष्टपुर के कानन मे चामुडा देवी के आयतन का उल्लेख है। रत्नचूड और सुरानन्दा का विवाह हो जाता है।

राजा मध्याह्न के समय अपनी अपनी रानियों के साथ बैठ कर प्रश्नोत्तर गोष्ठी किया करते थे।

रत्नचूड वैताढ्य पर्वत के लिये प्रस्थान करते समय कनकशृग पर्वत पर शान्तिनाथ के चैत्य के दर्शन के लिये जाते है। शान्तिनाथ के स्नान महोत्सव का यहाँ वर्णन है। स्वप्न सत्य होता है या नहीं, इसको दृष्टातो द्वारा समझाया गया है। शान्तिनाथ के चरित्र का वर्णन है। आगे चलकर रत्नचूड राजश्री के साथ विवाह करता है और उसका राज्याभिषेक हो जाता है। अपनी प्रथम पत्नी तिलकसुन्दरी को वह निम्नलिखित पत्र भेजता है।

"स्वस्ति वैताढ्य की दक्षिणश्रेणि में स्थित रथनूपुरचक्रवाल नामक नगर सें राजा रत्नचूड प्रियप्रियतमा तिलकसुदरी को सस्नेह आलिगन करके कहता है। देवी द्वारा अपनी कुशल का पत्र भेजने से हृदय को परम सतोष मिला और चिन्ता का कठिन भार हलका हुआ।" तथा

"नरयसमाण रज्ज विस व विसया दुहकरा लच्छी।
तुह विरहे मह सुदरि, नयरमरण्णेव पडिहाई॥
पुरओ य पिट्ठओ य पासेसु य दीससे तुम सुयणु।
दहइ दिसावलयमिण, मन्ने तुह चिंतरिंछोली॥

चित्ते य वट्टसि तुम, गुणेसु न य खुट्टसे तुम सुयणु।
सेज्जाए पलोट्टसि तुम विवट्टसि दिसामुहे तसि ॥
बोल्लमि वट्टसि तुम, कव्वपबधे पयट्टसि तुम ति।
तुह विरहे मह सुदरि ! भुवण पि हु त मय जाय ॥[1]

—राज्य मुझे नरक के समान लगता है, विषयभोग विष के समान प्रतीत होते है और लक्ष्मी दु खदायी हो गई है। हे सुदरि। तुम्हारे विरह मे यह नगर अरण्य के समान जान पडता है। हे सुतनु ! आगे, पीछे और आस पास जहाँ-जहाँ तुम दिखाई देती हो, वहाँ वहाँ यह दिशामडल जलता हुआ जान पडता है, मै तुझे अपने चित्त की रथ्या समझता हू। तुम सदा मेरे मन मे बसती हो। हे सुतनु ! तुम गुणो से क्षीण नहीं हो। तुम जैसे जैसे शय्या पर करवट लेती हो, वैसे वैसे उस दिशा मे मेरा मन चला जाता है। प्रत्येक बोल मे तुम रहती हो, काव्यप्रबध मे बसती हो। हे सुदरि ! तुम्हारे विरह के कारण यह सारा ससार तद्रूप हो गया है।"

"तुम्हें अब अधिक सताप नहीं करना चाहिये। कर्म के वश से किसकी दशा विषमता को प्राप्त नहीं हो जाती। तुम्हारी अब मैं शीघ्र ही खबर लूँगा।"

रत्नचूड और मदनकेशरी के युद्ध का वर्णन है। रत्नचूड मदनकेशरी को पराजित कर तिलकसुदरी को वापिस लाता है। तत्पश्चात् अपनी पाँचों स्त्रियों को लेकर वह तिलकसुदरी के माता-पिता से मिलने नन्दिपुर जाता है।

धनपाल सेठ की भार्या ईश्वरी बडी कटुभाषिणी थी और साधुओं को भिक्षा देने के बहुत खिलाफ थी। एक बार बहुत से कार्पटिक साधु उसके घर भिक्षा के लिये आये। आते ही उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया—"सोमेश्वर तुझ पर प्रसन्न हों,

---

१ ये अन्त की दोनों गाथायें कुछ हेरफेर के साथ काव्यप्रकाश (८-३४२) में मिलती हैं जो कर्पूरमजरी (२-४) से ली गई हैं।

माई ! हमे कुछ खाने को दो।" यह सुनते ही भ्रकुटी चढाकर बडे गुस्से से वह बोली—"सोमेश्वर ने तुम लोगो के लिये जो कुछ छिपाकर रक्खा है। उसे खाओ। जाओ यहाँ से, किसी ने तुम्हारे लिये खाना बनाकर यहाँ नही रक्खा।" श्रमणो ने फिर उसे धर्मलाभ कहा। अब की बार गुस्से से लाल पीली हो वह कहने लगी—"धर्मलाभ तुम्हारे सिर पर पडेगा। जो दु ख से बहुत पीडित है, कुछ करने मे असमर्थ है, वे ही मुडित होने के लिये दौडे जाते है। जाओ, अभी भिक्षा का समय नही हुआ।" उसके बाद वे लोग वेदपाठ करने लगे। यह सुनकर ईश्वरी ने कहा—"क्यों झकझक करते हो, बहुत हुआ तुम्हारा पाठ, कन्याओं के लिये यह भयकर है। जाओ कोई दूसरा घर देखो। अभी भोजन तैयार नहीं है।" तत्पश्चात् वे कहने लगे—"अरी माई ! केवल अनाज ही दे दो, साधुओ को मना नहीं करते है।" यह सुनकर ईश्वरी बोली—"यह कोई तुम्हारे बाप का घर है ?" और गुस्से से लाल पीली हो "इनका पेट फाडकर मैं इन्हे ठीक बताऊँगी"—यह कह कर धकधक जलती हुई एक लडकी ले, खिसकते हुए आभूषण (कलाय) को बाये हाथ से सँभालती हुई, सिर के ऊपर से वस्त्र खिसक जाने से खुले हुए केशों के जूडे को ले वह उन श्रमणों की ओर दौडी। श्रमण भी उसे यमराक्षसी समझ कर वहाँ से भाग गये। थोडी देर बाद वहाँ सरजस्क साधु आ पहुँचे। उन्हें देखकर वह कहने लगी—"अरे ! ये नगे, निगोडे, गधे के समान धूल मे लिपटे हुए, स्वय अपना ही तिरस्कार कर रहे है।" उसने उन्हे यह कहकर चलता किया कि भोजन का समय हो चुका है, आगे बढो।

किसी सपत्नी के दु ख का नीचे लिखी हुई गाथाओ मे सुन्दर चित्रण किया गया है—

वरिह मुय वरि गलियगब्भ वरि सेल्लोहिं सल्लिय।
वरि जालावलिपज्जलति दावानलि घल्लिय।

वरि करि कवलिय नयणजुयलु वरि महु सहि फुट्टउ ॥
म ढोल्लउ मण्हतु अन्ननारिहिं सहु दिट्ठउ ॥ १ ॥
तहा वरि दारिद्दउ वरि अणाहु वरि वरु दुन्नालिउ ।
वरि रोगाउरु वरि कुरुवु वरि निग्गुणु हालिउ ।
वरि करणच्चरणविहूणदेहू वरि भिक्खभमतउ
म राउवि सवत्तिजुत्तु मइ पइ सपत्तउ ॥ २ ॥

—कोई गर्विणी अपनी सखी को लक्ष्य करके कह रही है, मर जाना अच्छा है, गर्भ मे नष्ट हो जाना श्रेयस्कर है, बर्छियों के द्वारा घायल हो जाना उत्तम है, प्रज्वलित दावानल मे फेक दिया जाना ठीक है, हाथी से भक्षण किया जाना श्रेयस्कर है, दोनों ऑखों का फूट जाना उत्तम है, लेकिन अपने पति को पर नारियों के साथ देखना अच्छा नही। इसी प्रकार दारिद्र्य श्रेयस्कर है, अनाथ रहना अच्छा है, अनाडी रहना उत्तम है, रोग से पीडित होना ठीक है, कुरूप होना अच्छा है, निर्गुण रहना श्रेयस्कर है, लूला लॅगडा हो जाय तो भी कोई बात नहीं, भिक्षा मॉगकर खाना उत्तम है, लेकिन कभी अपने पति को सपत्नियों के साथ देखना अच्छा नहीं।

पाटलिपुत्र मे एक अत्यत सुदर देवभवन था। वह सुदर शालभजिकाओं से शोभित था। उसके काष्ठनिर्मित उत्तरग और देहली अनेक प्रकार के जतु रूपकों से शोभायमान थे। वहॉ बाई ओर रति के समान रमणीय एक स्तभ-शालभजिका बनी हुई थी, जिसके केशकलाप, नयननिक्षेप, मुखाकृति तथा अग प्रत्यग आकर्षक थे। अमरदत्त और मित्रानद नाम के दो मित्रों ने इस देवभवन मे प्रवेश किया। अमरदत्त पुत्तलिका के सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त हो गया। पता लगा कि सोप्पारय (शूर्पारक) देश के सूरदेव नामक स्थपति ने उज्जैनी के राजा महेश्वर की कन्या रत्नमजरी का रूप देखकर इस पुत्तलिका को गढा है। मित्रानद पहले सोप्पारय गया, वहॉ से फिर उज्जैनी पहुँचा, और अपनी बुद्धि के चातुर्य से वह महेश्वर की राजकुमारी रत्नमजरी

को घोड़े पर बैठाकर पाटलिपुत्र ले आया। अमरदत्त उसे प्राप्त कर अत्यत प्रसन्न हुआ।

पासनाहचरिय (पार्श्वनाथचरित)

पार्श्वनाथचरित कहारयणकोस के कर्ता गुणचन्द्रगणि की दूसरी उत्कृष्ट रचना है।[1] इस ग्रथ की वि० स० ११६८ (सन् ११११ मे) भडौच मे रचना की गई। पार्श्वनाथचरित मे पॉच प्रस्तावों मे २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित है। प्राकृत गद्य पद्य मे लिखी गई इस सरस रचना मे समासान्त पदावलि और छन्द की विविधता देखने मे आती है। काव्य पर सस्कृत शैली का प्रभाव स्पष्ट है। अनेक सस्कृत के सुभाषित यहॉ उद्धृत है।

पहले प्रस्ताव मे पार्श्वनाथ के तीन पूर्वभवो का उल्लेख है। पहले भव मे वे मरुभूति नाम से किसी पुरोहित के घर पैदा हुए। उनके भाई का नाम कमठ था। कमठ का मरुभूति की स्त्री से अनुचित सबध हो गया जिसका मरुभूति को पता लग गया। राजा ने उसके कान काटकर और गधे पर चढाकर नगर से निकाल दिया। कमठ ने तपोवन मे पहुँचकर तापसों के व्रत स्वीकार कर लिये। मरुभूति जब कमठ से क्षमायाचना करने गया तो कमठ ने उसके ऊपर शिला फेंक कर उसे मार डाला। दूसरे भव मे दोनों भाई क्रमश हाथी और सर्प की योनि मे उत्पन्न हुए।

दूसरे प्रस्ताव में मरुभूति किरणवेग नामका विद्याधर हुआ। उसके जन्म आदि के वृत्तान्त के साथ बीच बीच में मुनियों की देशना और उनके द्वारा कथित पूर्वभवों का वर्णन भी यहाँ दिया है। उसके बाद मरुभूति ने वज्रनाभ का जन्म धारण

---

१ अहमदाबाद से सन् १९४५ में प्रकाशित। इसका गुजराती अनुवाद आत्मानन्द जैन सभा की ओर से वि० स०२००५ में प्रकाशित हुआ है।

किया। वज्रनाभ किसी पथिक के मुख से बगाधिपति की कथा सुनते है। बगाधिपति की विजया नाम की कन्या को कोई विद्याधर उठाकर ले जाता है। उसकी प्राप्ति के लिये बगराज मन्त्र की साधना करते है। कुलदेवता कात्यायनी की पूजा करके वे अपनी कन्या का समाचार पूछते है। उस समय वहाँ अनेक मन्त्र तन्त्रों मे कुशल, वाममार्ग मे निपुण भागुरायण नाम का गुरु रहता था। उसने यह दुस्साध्य कार्य करने के लिये अपनी असमर्थता प्रकट की। राजा को उसने एक मन्त्र दिया और कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को श्मशान में लाल कणेर के पुष्पों की माला धारण कर उस मन्त्र की १००८ जाप द्वारा चण्डसिह नाम के वेताल को सिद्ध करने की विधि बताई। राजा ने श्मशान में पहुँचकर एक स्थान पर एक मण्डल बनाया, दिशाओं को बलि अपित की, कवच धारण किया और नाक के अग्रभागपर दृष्टि स्थापित कर चण्डसिंह वेताल का मन्त्र पढना आरम्भ कर दिया। कुछ समय पश्चात् वेताल हाथ मे कैंची लिये हुए उपस्थित हुआ। उसने राजा से अपने मास और रक्त से उसका कपाल भर देने के लिये कहा। राजा ने तलवार से अपनी जाघ काट कर उसे मास अर्पित किया और रुधिर पान कराया। वेताल ने प्रसन्न होकर राजकुमारी का पता बता दिया। राजकुमारी का वज्रनाभ के साथ विवाह हो गया और बाद मे मुनि का उपदेश सुनकर वज्रनाभ ने दीक्षा ले ली।

तीसरे प्रस्ताव मे मरुभूति वाराणसी के राजा अश्वसेन के घर पुत्ररूप मे उत्पन्न हुए, उनका नाम पार्श्वनाथ रक्खा गया। वाराणसी नगरी का यहाँ सरस वर्णन किया गया है। राजा अश्वसेन ने पुत्रजन्म का उत्सव बडी धूमधाम से मनाया। वर्धापन आदि क्रियायें सपन्न हुई। बडे होने पर प्रभावती से उनका विवाह हुआ। विवाह विधि का यहाँ वर्णन है। उधर कमठ का जीव तापसों के व्रत धारण कर पचाग्नि तप करने लगा। नगरी के बहुत से लोग उसके दर्शनों के लिये जाते और

उसकी पूजा उपासना करते। एक बार पार्श्वनाथ भी वहाँ गये। जिस काष्ठ को कमठ अग्निकुण्ड मे जला रहा था, उसमे से पार्श्वनाथ ने एक सर्प निकाल कर दिखाया। इससे कमठ अत्यत लज्जित हुआ। कमठ मरकर देवयोनि मे उत्पन्न हुआ। कुछ समय पश्चात् पार्श्वनाथ ने ससार से उदासीन होकर श्रमण दीक्षा धारण की। उन्होंने अगदेश मे विहार किया। वहाँ एक कुड नामका सरोवर था जहाँ बहुत से हाथी जल पीने के लिए आते थे। पार्श्वनाथ को कलि पर्वत पर देखकर एक हाथी को अपने पूर्वभव का स्मरण हो आया। यहाँ देवो ने एक मदिर का निर्माण किया और उसमे पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान की, तब से यह पवित्र स्थान कलिकुड नाम से कहा जाने लगा। अहिच्छत्रा नगरी का भी यहाँ उल्लेख है। कुक्कुडेसर चैत्य के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।[1]

चौथे प्रस्ताव मे पार्श्वनाथ को केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सुभदत्त, अज्जघोष, वसिट्ठ, बभ, सोम, सिरिधर, वारिसेण, भद्दजस, जय, और विजय नाम के दस गणधरो को वे उपदेश देते है। राजा अश्वसेन के प्रश्न करने पर पार्श्वनाथ गणधरो के पूर्वभवों का विस्तार से वर्णन करते है। यहाँ शाकिनियो का वर्णन करते हुए कहा है कि वे वट वृक्ष के नीचे एकत्रित हुई थी, डमरू बज रहा था, जोर जोर से चिल्ला रही थीं, और श्मशान से लाये हुए एक मुर्दे को लेकर बैठी हुई थी। किसी कापालिक के विद्या साधन का भी उल्लेख है। कृष्ण चतुर्दशी के दिन श्मशान मे पहुँचकर एक स्थान पर मडल बनाया, उस पर एक अक्षत मुर्दे को स्नान करा कर रक्खा ओर उस पर चदन का लेप किया। तत्पश्चात् अपने दाये हाथ के पास एक तलवार रक्खी। मुर्दे के पाँवों को जल से सीचा और सब दिशाओं को बलि अर्पित की। फिर कापालिक नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रख

---

१ जिनप्रभ के विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत कलिकुड कुक्कुडेसर तीर्थ (१५) में भी इसका वर्णन है।

कर मत्र का स्मरण करने लगा। यहाँ चडिका के आयतन का भी उल्लेख है जिसे पुरुष की बलि देकर सतुष्ट किया जाता था। उसके ऊपर पानी भर कर लटकाये हुए घडे मे से पानी चूता रहता था। बनारस के ठग उस समय भी प्रसिद्ध थे। वेदो का पाठ करने से भिक्षा मिल जाती थी। यानपात्र मे माल भर कर, समुद्र देवता की पूजा उपासना कर शुभ मुहूर्त्त मे समुद्र यात्रा की जाती थी। विवाह के अवसर पर अग्नि मे आहुति दी जाती, ब्राह्मण लोग मत्रपाठ करते तथा कुलस्त्रियाँ मगलगान करती थीं। भद्र, मन्द और मृग नाम के हाथियो के तीन प्रकार गिनाये है। उत्तम हाथी का दाम सवा लाख रुपया होता था। पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से कुश की शय्या पर बैठकर दस राततक कुलदेवी भगवती की आराधना की जाती थी। गोल्ल देश का यहाँ उल्लेख है। विवाह की भाँवरे पडते हुए यदि चौथा फेरा समाप्त होने के पूर्व ही कन्या के वर की मृत्यु हो जाय तो कन्या का पुनर्विवाह हो सकता था। मृतक की हड्डियाँ गगा मे बहाने का रिवाज था। यहाँ हस्तितापसों का उल्लेख है। ये लोग हाथी को मार कर बहुत दिनों तक उसका मास भक्षण करते थे। इनकी मान्यता थी कि अनेक जीवो के वध करने की अपेक्षा एक जीव का वध करना उत्तम है, थोडा सा दोष लगने पर यदि बहुत से गुणों की प्राप्ति होती हो तो उत्तम है, जैसे कि उँगली मे साप के काट लेने पर शेष शरीर की रक्षा के लिये उँगली का उतना ही हिस्सा काट दिया जाता है। भैरवों को कात्यायनी का मत्र सिद्ध रहता था। वे लोग शशि और रवि के पवनसचार को देखकर फलाफल बताते थे। भैरव ने तिलकसुदरी को नीरोग करने के लिए एक कुमारी कन्या को स्नान कराकर, श्वेत दुकूल के वस्त्र पहना, उसके शरीर को चदन से चर्चित कर मडल के ऊपर बैठाया।[1]

---

१ नैपाल में हिरण्यगर्भ आदि के मदिरों में आज भी कुमारी कन्या

मत्र की सामर्थ्य से आवेशयुक्त होकर वह प्रश्नों का उत्तर देने लगी। औषधि अथवा मत्र आदि वशीकरण अथवा उच्चाटन करने में समर्थ माने जाते थे। इसे कम्मणदोस कहा गया है। किसी गुटिका आदि से यह दोष शान्त हो सकता था।

पॉचवें प्रस्ताव मे पार्श्वनाथ का मथुरा नगरी मे समवशरण आता है, और वे दान आदि का धर्मोपदेश देते है। उन्होंने गणधरों को उपदेश दिया। तत्पश्चात् काशी मे प्रवेश किया। सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नों के उत्तर दिये। शिव, सुन्दर, सोम और जय नाम के उनके चार शिष्यों का वृत्तान्त है। वहॉ से पार्श्वनाथ ने आमलकल्पा नगरी मे विहार किया। चातुर्याम धर्म का उन्होंने प्रतिपादन किया। अन्त मे सम्मेय शैल शिखर पर पहुँचकर मुक्ति पाई।

महावीरचरिय (महावीरचरित)

महावीरचरित गुणचन्द्रगणि की तीसरी रचना है।[1] वि० स० ११३६ (ईसवी सन् १०८२) मे उन्होंने १२,०२५ श्लोक-प्रमाण इस प्रौढ ग्रन्थ की रचना की थी। गुणचन्द्र की रचनाओ के अध्ययन से इनके मन्त्र तन्त्र, विद्या साधन तथा वाममार्गियों और कापालिको के क्रियाकाण्ड आदि के विशाल ज्ञान का पता लगता है। महावीरचरित मे आठ प्रस्ताव है जिनमे से आधे भाग मे महावीर के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है। यहाँ राजा, नगर, वन, अटवी, उत्सव, विवाहविधि, विद्यासिद्धि आदि के रोचक वर्णन मिलते है। काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ एक सफल रचना है। कालिदास, बाणभट्ट, माघ आदि सस्कृत के

का बहुत महत्त्व है। मदिरों में दीपक जलाने और मूर्ति को स्पर्श आदि करने का कार्य कुमारी ही करती है।

१ यह ग्रन्थ देवचन्द लालभाई जैन पुस्तक उद्धार ग्रन्थमाला में सन् १९२९ में बम्बई से प्रकाशित हुआ है। इसका गुजराती अनुवाद वि० सवत् १९९४ में जैन आत्मानन्द सभा ने प्रकाशित किया है।

सुप्रसिद्ध कवियों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। सस्कृत के काव्यों के साथ इसकी तुलना की जा सकती है। बीच बीच में सस्कृत के श्लोक उद्धृत हैं, अनेक पद्य अवहट्ठ भाषा मे लिखे गये है जिन पर गुजरात के नागर अपभ्रश का प्रभाव है। देशी शब्दों के स्थान पर तद्भव और तत्सम शब्दों का प्रयोग ही अधिक है। छन्दों की विविधता देखने मे आती है।

प्रथम प्रस्ताव मे सम्यक्त्वप्राप्ति का निरूपण है। दूसरे मे ऋषभ, भरत, बाहुबलि तथा मरीचि के भवों आदि का वर्णन है। मरीचि के वर्णन-प्रसग मे कपिल, और आसुरि की दीक्षा का उल्लेख है। तीसरे प्रस्ताव मे विश्वभूति की वसन्त-क्रीडा, रणयात्रा, सभूति आचार्य का उपदेश और विश्वभूति की दीक्षा का वर्णन है। रिपुप्रतिशत्रु ने अपनी कन्या मृगावती के साथ गन्धर्वविवाह कर लिया, उससे प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठ का जन्म हुआ। त्रिपृष्ठ का अश्वग्रीव के साथ युद्ध हुआ जिसमें अश्वग्रीव मारा गया। यहाँ गोहत्या के समान दूत, वेश्या और भाडों के वध का निषेध किया है। धर्मघोषसूरि का धर्मोपदेश सगृहीत है। प्रियमित्र चक्रवर्ती की दिग्विजय का वर्णन है। अन्त मे प्रियमित्र दीक्षा ग्रहण कर मुनिधर्म का पालन करते है। चौथे प्रस्ताव मे प्रियमित्र का जीव नन्दन नामका राजा बनता है।[1] घोरशिव तपस्वी वशीकरण आदि विद्याओं मे निष्णात था। वह श्रीपर्वत[2] से आया था और जालधर के लिए प्रस्थान कर

---

१ यह प्रस्ताव नरविक्रमचरित्र के नाम से सस्कृत छाया के साथ नेमिविज्ञान ग्रथमाला में वि० स० २००८ मे अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

२ यह मद्रास राज्य में करनूल ज़िले में एक पवित्र पर्वत माना जाता है। सुबन्धु ने अपनी वासवदत्ता में श्रीपर्वत का उल्लेख किया है। पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अध्याय ११) में इसे मल्लिकार्जुन का स्थान माना है। भवभूति ने मालतीमाधव (अक १) में इसका

रहा था। राजा नरसिंह ने उसे अपने मन्त्र बल से कोई कौतुक दिखाने की प्रार्थना की। घोरशिव ने कृष्णचतुर्दशी को रात्रि के समय श्मशान में जाकर अग्नितर्पण करने के लिये राजा से कहा। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। श्मशान में पहुँच कर घोरशिव ने वेदिका रची, मण्डल बनाया। फिर वहाँ पद्मासन लगाकर प्राणायामपूर्वक मन्त्र जपने लगा। श्मशान का वर्णन देखिये—

निलीणविज्जसाहगं पवूढपूयवाहगं,
करोडिकोडिसंकुडं, रडंतघूयकक्कडं।
सिवासहस्ससंकुलं, मिलंतजोगिणीकुलं,
पभूयभूयभीसणं, कुसत्तसत्तनासणं।
पघुट्ठदुट्ठसावयं जलंततिव्वपावयं,
भमंतडाइणीगणं पवित्तमंसमग्गणं॥ १॥
कहकहट्टहासोवलक्खगुरुरक्खलक्खदुप्पेच्छं।
अइरुक्खरुक्खसंबद्धगिद्धपारद्धघोररवं ॥ २॥
उत्तालतालसद्दुम्मिलंतवेयालविहियहलबोलं।
कीलावणं व विहिणा विणिम्मियं जमनरिन्दस्स॥ ३॥

—यहाँ विद्या साधक बैठे हुए हैं, पूजा वाहक उपस्थित हैं, यह स्थान कापालिकों से व्याप्त है और उल्लुओं के बोलने का शब्द यहाँ सुनाई दे रहा है। अनेक गीदड़ भाग दौड़ रहे हैं, योगिनियाँ एकत्रित हैं, यह स्थान भूतों से भीषण है, प्राणियों का यहाँ वध किया जा रहा है। अनेक दुष्ट जंगली पशुओं का घोष सुनाई पड़ रहा है, अग्नि जल रही है, डाकिनियाँ इधर उधर भ्रमण कर रही हैं, पवित्र मांस वे माँग रही हैं। अट्टहास करने वाले राक्षसों के कारण यह स्थान दुष्प्रेक्ष्य है, वृक्षों पर बैठे हुए गीधों का भयानक शब्द सुनाई दे रहा है, वैतालिक ऊँची ताल

उल्लेख किया है। देखिये के० के० हण्डी का यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, पृष्ठ ३५९ और उसका फुटनोट।

देकर कोलाहल मचा रहे हैं। मालूम होता है ब्रह्मा ने यमराज का क्रीडास्थल ही निर्माण किया है।

इसी प्रसग मे महाकाल नामके योगाचार्य का उल्लेख है। तीनो लोको को विजय करनेवाले मन्त्र की साधन विधि का प्रतिपादन करते हुए उसने कहा कि १०८ प्रधान क्षत्रियों का वध करके अग्नि का तर्पण करना चाहिये, दिशाओं के देवताओ को बलि प्रदान करना चाहिये और निरन्तर मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। तत्पश्चात् कलिंग आदि देशों मे जाकर क्षत्रियो का वध किया गया।

युद्धवर्णन पर दृष्टिपात कीजिये—

खणु निट्ठुरमुट्ठिहिं उट्ठियति, खणु पच्छिमभागमणुव्वयति।
खणु जणगजणणि गालीउ देंति, खणु नियसोंडीरम्मि कित्तयति॥

—(कभी योद्धा गण) क्षणभर मे अपने निष्ठुर मुक्के दिखाते है, क्षणभर मे पीछे की ओर घूमकर आ जाते हैं, कभी माँ बाप की गालियाँ देने लगते है, और कभी अपनी शूरवीरता का बखान करने लगते है।

आगे चलकर कालमेघ नाम के महामल्ल का वर्णन है। इसे मल्लयुद्ध मे कोई नहीं जीत सकता था। नगर के राजा ने इसे विजयपताका समर्पित कर सम्मानित किया था। नरविक्रम कुमार ने उसे मल्लयुद्ध मे पराजित कर शीलमती के साथ विवाह किया। आगे चलकर नरविक्रमकुमार शीलमती और अपने पुत्रों को लेकर नगर से बाहर चला जाता है और किसी माली के यहाँ पुष्पमालाये बेचकर अपनी आजीविका चलाता है। देहिल नाम का एक व्यापारी छलपूर्वक शीलमती को अपने जहाज मे बैठाकर उसे भगा ले जाता है। अन्त मे नरविक्रमकुमार का उसके पुत्रों और पत्नी से मिलन हो जाता है। नरविक्रमकुमार जैन दीक्षा धारण कर मोक्ष प्राप्त करते है।

नन्दन का जीव देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ मे अवतरित होता है। उसे क्षत्रियकुडग्राम की त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे

परिवर्तित कर दिया जाता है। बालक का नाम वर्धमान रक्खा जाता है। जन्म आदि उत्सव बडी धूम-धाम से मनाये जाते है। पराक्रमशील होने के कारण महावीर नाम से वे प्रख्यात हो जाते हैं। बडे होने पर महावीर पाठशाला मे अध्ययन करने जाते है। बसन्तपुर नगर के राजा समरवीर की कन्या यशोदा से उनका विवाह हो जाता है। विवाहोत्सव बडी धूम से मनाया जाता है। महावीर के प्रियदर्शना नाम की एक कन्या पैदा होती है। २८ वें वर्ष मे उनके माता पिता का देहान्त हो जाता है। उनके बडे भाई नन्दिवर्धन का राज्याभिषेक होता है। अपने भाई की अनुमतिपूर्वक महावीर दीक्षा ग्रहण करते है। निष्क्रमणमहोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

पॉचवे प्रस्ताव मे शूलपाणि और चण्डकौशिक के प्रबोध का वृत्तान्त है। महावीर ने क्षत्रियकुडग्राम के बाहर ज्ञातृखण्ड नामक उद्यान मे श्रमण-दीक्षा ग्रहण की और कुम्मारगाम पहुँचकर वे ध्यानावस्थित हो गये। सोम ब्राह्मण को उन्होने अपना देवदूष्य वस्त्र दे दिया। कुम्मारगाम मे गोप ने उपसर्ग किया। भ्रमण करते हुए वे वर्धमानग्राम मे पहुचे। वर्धमान का दूसरा नाम अस्थिग्राम था। यहॉ शूलपाणि यक्ष ने उपसर्ग किया। कनकखल आश्रम मे पहुँचकर उन्होने चडकौशिक सर्प को प्रतिबोधित किया। यहॉ गोभद्र नामक एक दरिद्र ब्राह्मण की कथा दी है। धन प्राप्ति के लिये गोभद्र की स्त्री ने उसे वाराणसी जाने के लिए अनुरोध किया। उस समय बनारस मे बहुत दूर-दूर से अनेक राजा-महाराजा और श्रेष्ठी आकर रहते थे। कोई परलोक सुधारने की इच्छा से, कोई यश कीर्त्ति की कामना से, कोई पाप शमन की इच्छा से और कोई पितरो के तर्पण की भावना से यहॉ आता था। लोग यहॉ महा होम करते, पिण्डदान देते और सुवर्णदान द्वारा ब्राह्मणों को सम्मानित करते थे। गोभद्र बनारस के लिये रवाना हो गया। मार्ग मे उसे एक सिद्धपुरुष मिला। दोनों साथ साथ चले। सिद्धपुरुष ने अपने

मन्त्र के बल से भोजन और शय्या आदि तैयार करके गोभद्र को आश्चर्यचकित कर दिया। (इस प्रसग पर सुदर रमणियो और जोगिनियों से शोभित जालन्धर नगर का वर्णन किया गया है।) यहाँ चन्द्रलेखा और चन्द्रकान्ता नाम की दो जोगिनी बहने रहा करती थीं। कुछ समय पश्चात् परदेशी मठो मे (विदेसिय मठेसु=विदेशी लोगों के ठहरने के मठ) रात्रि व्यतीत कर दोनों वाराणसी पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्कन्द, मुकुद, रुद्र आदि देवताओं की पूजा की। दोनो गङ्गा के तट पर आये। सिद्धपुरुष ने दिव्यरक्षा वलय को गोभद्र को सौंप कर स्नान करने के लिये गङ्गा मे प्रवेश किया, और वह प्राणायाम करने लगा। कुछ देर हो जाने पर जब सिद्धपुरुष जल से बाहर नही निकला तो गोभद्र को बडी चिन्ता हुई। वह समझ नहीं सका कि उसका साथी कहीं लहरों मे छिपा रह गया है, या उसे मगर मच्छ निगल गये है, या फिर वह कहीं दलदल मे फँस गया है। गोभद्र ने गोताखोरों से यह बात कही। उन्होंने गङ्गा मे गोते लगाकर, अपनी भुजाओं को चारों ओर फैलाकर सिद्ध-पुरुष की खोज की, लेकिन उसका कहीं पता न चला। अपने साथी को गङ्गा मे से वापिस न आता देखकर गोभद्र गङ्गा से प्रार्थना करता हुआ विलाप करने लगा। वही पास मे कोई नास्तिकवादी बैठा हुआ था। उसने गोभद्र को समझाते हुए कहा कि क्या इस तरह विलाप करने से गङ्गा मैया तुझे तेरे साथी को वापिस दे देगी? उसने कहा कि इस गङ्गा मे स्नान करने वाले देश देश के कोढ आदि रोगो से पीडित नर नारियों के स्पर्श का अपवित्र जल प्रवाहित होता है, ऐसी हालत मे अनेक मृतक शरीर तथा हड्डी आदि का भक्षण करनेवाली किसी महाराक्षसी की भाँति यह गङ्गा मनोरथ की सिद्धि कैसे कर सकती है? तथा यदि गङ्गा मे स्नान करने से पुण्य मिलता हो तो फिर मत्स्य, कच्छप आदि जीव जन्तु सबसे अधिक पुण्य के भागी होने चाहिये। गोभद्र ब्राह्मण एकाध-दिन बनारस रह कर

वहाॅ से चला आया। वह जालधर गया और वहाॅ सिद्धपुरुष को देख आश्चर्यचकित हो गया। तत्पश्चात् गोभद्र अपने घर वापिस लौटा। लेकिन इस समय उसकी पत्नी मर चुकी थी। उसने धर्मघोष मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। आगे चलकर गोभद्र ने चण्डकौशिक सर्प का जन्म धारण किया।

महावीर घूमते घामते सेयविया पहुँचे। वहाॅ राजा प्रदेशी ने उनका सत्कार किया। यहाॅ कबल शबल नाम के नागकुमारों के पूर्वभव की कथा का वर्णन है। मथुरा मे भडीर यक्ष की यात्रा का उल्लेख है।

छठे प्रस्ताव मे गोशाल की दुर्विनीतता का वृत्तात है। राजगृह के समीप नालदा नामक सनिवेश मे महावीर और गोशाल का मिलाप हुआ था। उत्तरापथ मे सिलिन्ध्र नामक सनिवेश मे केशव नाम का एक ग्रामरक्षक रहता था। उसकी भार्या से मख का जन्म हुआ। वह चित्रपट लेकर गाॅव गाॅव मे घूमा करता था। एक बार वह घूमता हुआ चपा नगरी मे पहुँचा। वहाॅ मखली नाम का एक गृहपति रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था। मखली मख के पास रहकर उसकी सेवा करने लगा और गायन आदि विद्याओं मे वह पारगत हो गया। तत्पश्चात् वह चित्रपट लेकर अपनी पत्नी के साथ वहाँ से चला गया। सरवण सनिवेश मे पहुँच कर किसी गोशाली मे सुभद्रा ने गोशाल को जन्म दिया। गोशाल बडा होकर अपने माता पिता से लड़कर अलग रहने लगा। यही मखलिपुत्र गोशाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। कालातर मे उसने महावीर से दीक्षा ग्रहण की और गुरु-शिष्य दोनों साथ साथ रहने लगे।

महावीर की चर्या के प्रसग मे विभेलक नामक यक्ष के पूर्वभवों के वृत्तान्त का कथन है। इस प्रसग मे शूरसेन और रत्नावली के विवाह का विस्तृत वर्णन है। मद्य, मास और रात्रिभोजन के निषेध का वर्णन है। कटपूतना के उपसर्ग का कथन है। लाढदेश के अन्तर्गत वज्रभूमि नामक अनार्यदेशों मे महावीर ने

गोशाल के साथ भ्रमण किया। वैश्यायन के प्रसग मे वेश्याओ द्वारा गणिकाओ की विद्याओ के सिखाये जाने का उल्लेख है। गोशाल को तेजोलेश्या की प्राप्ति हुई।

सातवें प्रस्ताव मे महावीर के परिषह सहन और केवलज्ञान-प्राप्ति का वर्णन है। उनके वैशाली पहुँचने पर शख ने उनका आदर-सत्कार किया। गडकी नदी पार करते समय नाविक ने उपसर्ग किया। वाणिज्यग्राम मे आनन्द गृहपति ने आहार दिया। दृढभूमि मे सगम ने उपसर्ग किये। उसके बाद महावीर ने आलभिका, सेयविया, श्रावस्ती, कौशाबी, वाराणसी, और मिथिला म विहार किया। कौशाबी मे चन्दना द्वारा कुल्माष का दान ग्रहण कर उनका अभिग्रह पूर्ण हुआ। उनके कानों मे कीले ठोक दी गई। मध्यम पावा पहुँचकर महावीर को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

आठवे प्रस्ताव मे महावीर के निर्वाणलाभ का कथन है। मध्यम पावा के महासेनवन उद्यान मे समवशरण की रचना की गई। भगवान् का उपदेश हुआ। ११ गणधरों ने प्रतिबोध प्राप्त कर दीक्षा ग्रहण की। यहाँ चन्दनबाला की दीक्षा, चतुर्विध सघ-की स्थापना, ऋषभदत्त और देवानन्दा की दीक्षा, क्षत्रियकुड मे समवशरण, महावीर के दामाद जमालि का माता पिता की आज्ञा से दीक्षाग्रहण, जमालि का निह्नव, प्रियदर्शना का बोध, सुरप्रिय यक्ष का महोत्सव, राजा शतानीक का मरण, रानी मृगावती की दीक्षा, श्रावस्ती मे गोशाल का आगमन, उसका जिनत्व का अपलाप, तेजोलेश्या का छोडना, गोशाल की मृत्यु, सिह द्वारा लाई हुई औषधि से महावीर का आरोग्यलाभ, गोशाल के पूर्वभव, राजगृह मे महावीर का श्रेणिक आदि को धर्मोपदेश, मेघकुमार की दीक्षा, नदिषेण की दीक्षा, प्रसन्नचन्द्र का प्रतिबोध, १२ व्रतों की कथायें, गागलि की प्रव्रज्या, महावीर का मिथिला मे गमन, और उनके निर्वाणोत्सव का वर्णन है।

सुपासनाहचरिय (सुपार्श्वनाथचरित)

सुपार्श्वनाथचरित प्राकृत पद्य की रचना है जिसमे सातवे तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का चरित लिखा गया है। सुपार्श्वनाथ का चरित तो यहाँ सक्षेप मे ही समाप्त हो जाता है, अधिकाश भाग मे उनके उपदेश की ही प्रधानता है। श्रावको के बारह व्रतों के अतिचारसबधी यहाँ अनेक लौकिक अभिनव कथाये दी हुई है। इन कथाओं मे कहीं बुद्धि माहात्म्य, कही कला कौशल आदि की मुख्यता का सरल और प्रभावोत्पादक शैली मे दिग्दर्शन कराते हुए लौकिक आचार व्यवहार, सामाजिक रीति रिवाज, राजकीय परिस्थिति और नैतिक जीवन आदि का चित्रण किया गया है। सुपार्श्वनाथचरित के कर्त्ता लक्ष्मणगणि श्रीचन्द्रसूरि के गुरुभाई और हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने विक्रम सवत् ११९९ (ईसवी सन् ११४२) में राजा कुमारपाल के राज्याभिषेक के वर्ष मे इस ग्रथ की रचना की। लेखक ने आरम्भ मे हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों का बडे आदरपूर्वक उल्लेख किया है। बीच बीच मे सस्कृत और अपभ्रश का उपयोग किया गया है, अनेक सुभाषित इस रचना मे सग्रहीत है।

पूर्वभव प्रस्ताव मे सुपार्श्वनाथ के पूर्वभवो का उल्लेख है। कुलों मे श्रावक का कुल, प्रवचनों मे निर्ग्रन्थ प्रवचन, दानो मे अभयदान और मरणों में समाधिमरण को श्रेष्ठ बताया है। धर्म पालन के सबध मे कहा है—

जावि न जरकडपूयणि सव्वगय गसइ,
जाव न रोयभुयगु उग्गु निद्दउ डसइ।
ताव धम्मि मणु दिज्जउ किज्जउ अप्पहिउ,
अज्ज कि कल्लि पयाणउ जिउ निच्चप्पहिउ॥

—जब तक जरारूपी पूतना समस्त अग को न डस ले, उग्र और निर्दय रोगरूपी सर्प न काट ले, उससे पहले ही धर्म मे चित्त देकर आत्महित करो। हे जीव, आज या कल निश्चय ही प्रयाण करना है।

दूसरे प्रस्ताव मे तीर्थंकर के जन्म और निष्क्रमण का वर्णन करते हुए देवों द्वारा मेरुपर्वत के ऊपर जन्माभिषेक का सरस वर्णन है। केवलज्ञान नाम के तीसरे प्रस्ताव मे लकुट आसन, गरुड आसन तथा छट्ठ, अट्ठम आदि उग्र तपों का उल्लेख करते हुए तीर्थंकर को केवलज्ञान की प्राप्ति बताई है। इसके पश्चात् भगवान् धर्म का उपदेश देते हैं। इस भाग मे अनेक कथाओं का वर्णन है। सम्यक्त्व-प्रशसा मे चम्पकमाला का उदाहरण है। चम्पकमाला चूडामणिशास्त्र की पण्डिता थी और इस शास्त्र की सहायता से वह यह जानती थी कि उसका कौन पति होगा तथा उसके कितनी सतान होंगी। पुत्रोत्पत्ति के लिये काली देवी की तर्पणा की जाती थी। पुत्रों को अब्रह्म का हेतु प्रतिपादित करते हुए कहा है यदि पुत्रों के होने से स्वर्ग की प्राप्ति होती हो तो बकरी, सूअरी, कुतिया, शकुनि और कछवी को सब से पहले स्वर्ग मिलना चाहिये। शासनदेवी का यहाँ उल्लेख है। अर्थशास्त्र मे अर्थ, काम और धर्म नामक तीन पुरुषार्थों को बताया है। सम्यक्त्व के आठों अगो को समझाने के लिये आठ उदाहरण दिये है। भक्खर द्विज की कथा में विद्या के द्वारा आकाश मे गमन, धन कनक की प्राप्ति, इच्छानुसार रूपपरिवर्तन और लाभादि का परिज्ञान बताया है। कृष्ण चतुर्दशी के दिन रात्रि के समय श्मशान में बैठकर विद्या की सिद्धि बताई है। ब्रह्मचर्य पालनेवाले को ब्राह्मण, तथा स्त्रीसग मे लीन पुरुष को शूद्र कहा गया है। भीमकुमार की कथा मे नरमुड की माला धारण किये हुए कापालिक का वर्णन है। कुमार ने उसके साथ रात्रि के समय श्मशान मे पहुँच कर मडल आदि लिखकर और मत्रदेवता की पूजा करके विद्यासिद्धि करना आरभ किया। नरमुडों से मडित काली का यहाँ वर्णन है। विजयचद की कथा मे शाश्वत सुख प्रदान करनेवाले जैनधर्म का अपभ्रश मे वर्णन है। पर पीडा न देने को ही सच्चा धर्म कहा है—

एहु धम्मु परमत्थु कहिज्जइ, त परपीडि होइ त न किज्जइ।

जो परपीड करइ निच्चिंतउ, सो भवि भमइ दुक्खसतत्तउ ॥

—दूसरे को पीडा नहीं पहुँचाना ही धर्म का परम अर्थ है। जो दूसरो को निश्चिंत होकर पीडा देता है, वह दुखो से सतप्त होकर परिभ्रमण करता है।

यहाँ गारुडमत्र और अवस्वापिनी विद्या का उल्लेख है। सिरिवच्छकहा मे विद्यामठ का उल्लेख है। वर्षाऋतु का वर्णन है। उस समय हालिक अपने खेतो मे हल जोतते है, दाँत पीस कर और पूछ मरोड कर वे बैल हाँकते है। सीहकथा मे मस्तक पर विचित्र रग की टोपी लगाये एक योगी का उल्लेख हे। रक्त चदन का उसने तिलक लगाया था और वह मृगचर्म धारण किये हुए था, वह हुकार छोड रहा था।[1] कमलसिट्ठीकहा मे आमो की गाडी का उल्लेख है। पारसदेश से तोते मँगाये जाते थे। बधुदत्त की कथा मे जल की एक बूद मे इतने जीव बताये है जो समस्त जबूद्वीप मे भी न समा सके। मित्र और अमित्र का लक्षण देखिये—

भवगिह मज्झम्मि पमायजलणजलियम्मि मोहनिद्दाए।
जो जग्गवइ स मित्त वारतो सो पुण अमित्त ॥

—ससाररूपी घर के प्रमादरूपी अग्नि से जलने पर मोहरूपी निद्रा मे सोते हुए पुरुष को जो जगाता है वह मित्र है, और जो उसे जगाने से रोकता है वह अमित्र है।

देवदत्तकथा मे भूतबलि और शासनदेवी का उल्लेख है। वीरकुमारकथा में बगालदेश का उल्लेख है। दुग्गकथा मे त्रिपुरा विद्यादेवी के प्रसाधन के लिये कनेर के फूल और गूगल आदि लेकर मलय पर्वत पर जाने का कथन है। दुल्लहकथा मे इद्रमह, स्कदमह और नागमह की चर्चा है। दत्तकथा मे रात्रिभोजन त्याग का प्रतिपादन है। रात्रिभोजन त्याग करनेवाला व्यक्ति

१ नैपाल के राजकीय सग्रहालय में कनटोप आदि धारण किये हुए जालधर की एक मूर्ति है, इस वर्णन से उसकी समानता है।

सौ वर्ष जीता है और उसे पचास वर्ष उपवास करने का फल होता है। अवती नगरी मे योगिनी के प्रथम पीठ का उल्लेख है जहाँ सिद्धनरेन्द्र वास करता था। दिन के समय वह प्रमदाओ और रात्रि के समय योगिनियो के साथ क्रीडा किया करता था। एक दिन उसने श्मशान मे पहुँचकर भूत, पिशाच, राक्षस, यक्ष और योगिनियो का आह्वान किया। असियक्ष नाम का एक यक्ष उसके सामने उपस्थित हुआ। दीपक के उद्योत मे मोदक आदि अच्छी तरह देखकर खाने मे क्या दोष है? इसका उत्तर दिया गया है। सीहकथा मे कपर्दिक यक्ष का उल्लेख है। भोगो के अतिरेक मे मलदेव की और सल्लेखना का प्रतिपादन करने के लिये मलयचन्द्र की कथा वर्णित है। अन्त मे सुपार्श्वनाथ के निर्वाणगमन का वर्णन है।

सुदंसणाचरिय (सुदशनाचरित)

सुदसणाचरिय मे शकुनिकाविहार नामक मुनिसुव्रतनाथ के जिनालय का वर्णन किया गया है। यह सुदर रचना प्राकृत पद्य मे है।[1] सस्कृत और अपभ्रश का भी इसमे प्रयोग है। ग्रथ के कर्त्ता जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि (सन् १२७० मे स्वर्गस्थ) हैं। गुर्जर राजा की अनुमतिपूर्वक वस्तुपाल मत्री के समक्ष अर्बुदगिरि (आबू) पर इन्हें सूरिपद प्रदान किया गया था। इस चरित मे धनपाल, सुदर्शना, विजयकुमार, शीलवती, अश्वावबोध, भ्राता, धात्रीसुत और धात्री नाम के आठ अधिकार है जो १६ उद्देशो मे विभक्त हैं। सब मिलाकर चार हजार से अधिक गाथाये है। रचना प्रौढ हैं, शार्दूलविक्रीडित आदि छदो का प्रयोग हुआ है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति पर काफी प्रकाश पडता है।

---

१ आत्मवल्लभ ग्रथ सीरीज़ में वलाद (अहमदाबाद) से सन् १९३२ में प्रकाशित। मुनि पुण्यविजयजी के कथनानुसार देवेन्द्रसूरि ने अन्य किसी प्राचीन सुदसणाचरिय के आधार से इस ग्रथ की रचना की है।

प्रथम उद्देश मे श्रेष्ठीपुत्र धनपाल की कथा के प्रसग मे धर्मकथा का वर्णन है। यहाँ पर रात्रि, स्त्री, भक्त और जनपद कथा का त्याग करके धर्मकथा का श्रवण हितकारी बताया है। दूसरे उद्देश मे सुदर्शना के जन्म का वर्णन है। सुदर्शना बडी होकर उपाध्यायशाला मे जाकर लिपि, गणित आदि कलाओ का अध्ययन करती है। तीसरे उद्देश मे सुदर्शना की कलाओ की परीक्षा ली जाती है। उसे जातिस्मरण हो आता है। भरुयकच्छ (भडौच) का ऋषभदत्त नाम का एक सेठ राजा के पास भेट लेकर राजसभा मे उपस्थित होता है। राजा के प्रश्न करने पर वह पारस से लाये हुए तेज दौडनेवाले तुक्खार नाम के घोडों की प्रशसा करते हुए घोडो के लक्षण कहता है—

जिनके मुख मासरहित हो, जिनकी नसे दिखाई देती हो, विशाल वक्षस्थलवाले, परिमित उदरवाले, चौडे मस्तकवाले, छोटे कानवाले, जिनके कानों का अतर सकीर्ण है, पृष्ठभाग मे पृथु, पश्चिम पार्श्व मे मोटे, पसलियो से दुर्बल, स्निग्ध रोमवाले, मोटे कधेवाले, घने बालोवाले, सुप्रमाण पूँछवाले, गोल खुरवाले, पवन के समान दौडनेवाले, लाल ऑखोवाले, दर्पयुक्त, सुप्रशस्त ग्रीवावाले, दक्षिण आवर्त्तवाले, शत्रु का पराभव करनेवाले, तथा स्वामी को जय प्राप्त करानेवाले घोडे शुभ कहे जाते है। इसी प्रकार अशुभ घोडो के भी लक्षण बताये है। सुदर्शना के पिता अपनी कन्या की परीक्षा करने के लिये उससे निम्नलिखित पहेली का उत्तर मॉगते हैं—

क क्रमते गगनतल ? किं क्षीण वृद्धिमेति च नितातम् ?
को वा देहमतीव, स्त्रीपुसा रागिणा दहति ?

—१ गगनतल मे कौन उडता है ? २ कौन वस्तु नितान्त क्षीण होती है और वृद्धि को प्राप्त होती है ? ३ रागयुक्त स्त्री पुरुषों के शरीर को कौन अधिक दग्ध करता है ?

सुदर्शना का उत्तर—विरह (१ वि = पक्षी, २ अह = दिन, ३ बिरह)।

ज्ञात्वा कथित च तया गगने त्रियाति तात ! विख्यात ।
अहरेति वृद्धिमनिश, प्रियरहित दहति विरहश्च ॥

—१ गगन मे पक्षी उडता है, २ दिन निरन्तर वृद्धि और क्षय को प्राप्त होता है, और ३ प्रियरहित विरह स्त्री पुरुषों को दग्ध करता है।

इसके बाद सुदर्शना ने राजा से प्रश्न किया—

बोध्यो देववर कथ बहुषु वै ? क प्रत्यय कर्मणा ?
सबोध्यस्तु कथ सदा सुररिपु कि श्लाघ्यते भूभृताम् ?
किं त्वन्यायवतामहो क्षितिभृता लोके सदा निन्द्यते ?
व्यस्तन्यस्तसमस्तकचनतत शीघ्र विदित्वोच्यताम् ॥

—१ बहुत से देवो मे श्रेष्ठतर देव को कैसे समझा जाये ? २ कर्मों का कौन सा प्रत्यय है ? ३ देवताओं के शत्रु को किस प्रकार सम्बोधित किया जाये ? ४ राजाओ की किस बात से प्रशसा होती है ? ५ किन्तु आश्चर्य है कि अन्याययुक्त राजाओ की लोक मे सदा निन्दा होती है—सोच समझ कर शीघ्र ही इसका उत्तर दो।

राजा ने जब उत्तर देने मे असमर्थता प्रकट की तो सुदर्शना ने उत्तर दिया—अयश (१ अय् = दैव, २ शस्, ३ हे अ = कृष्ण, ४ यश, ५ अयश)।

धर्माधर्मविचार नाम के चौथे उद्देश मे राजसभा मे ज्ञान निधि नाम का एक पुरोहित आता है। वह ब्राह्मण धर्म का उपदेश देता है, लेकिन सुदर्शना उसके उपदेश का खण्डन करके मुनि धर्म का प्रतिपादन करती है। पॉचवे उद्देश मे शीलमती का विजयकुमार के साथ विवाह होता है। शीलमती का हरण कर लिया जाता है, इस पर विजयकुमार और विद्याधर मे युद्ध होता है। छठे उद्देश मे धर्मयश नाम के चारण श्रमण के धर्मोपदेश का वर्णन है। सातवे उद्देश मे सुदर्शना अपने माता पिता आदि के साथ सिंहलद्वीप से भरुयकच्छ के लिये प्रस्थान

करती है। सब लोग बन्दरगाह पर पहुँचते है। यहाँ से सुदर्शना शीलमती के साथ जहाज़ मे बैठकर आगे जाती है। इस प्रसग पर बोहित्थ, खरकुल्लिय, बेदुल्ल, आवत्त (गोल नाव), खुरप्प आदि प्रवहणों के नामोल्लेख है जिन पर नेत्तपट्ट, रियवत्थ, दोछडिय, पट्ट, मृगनाभि, मृगनेत्र (गोरोचन) कर्पूर, चीण, पट्टसुय, कुकुम, कालागुरु, पद्मसार, रत्न, घृत, तेल, शस्य, वस्ति (मशक), ईधन, एला, ककोल, तमालपत्र पोप्फल (पूगीफल = सुपारी), नारियल, खजूर, द्राक्षा, जातीफल (जायफल), नाराच, कुत, मुद्गर, सव्वल (बरछी), तूणा, खुरप्प, खड्ग, जपाण, सुरासन, खट्ट, तूलि, चाउरी, मसूरिका, गुड्डुर (डोरा), गुलणिय, पटमडप, तथा अनेक प्रकार के कनक, रत्न, अशुक आदि लाद दिये गये। आठवाँ उद्देश अन्य उद्देशों की अपेक्षा बडा है। इसमे निमलगिरि का वर्णन, महामुनि का उपदेश, विजयकुमार का शीलमती के साथ परिणयन, विजयकुमार की दीक्षा, धर्मोपदेश, विशुद्धदान के सबध मे वीरभद्र श्रेष्ठी का और शील के सबध मे कलावती का उदाहरण, भावनाधर्म के निरूपण मे नरविक्रम का दृष्टात आदि वर्णित है। महिलाओ के कुसग से दूर रहने का यहाँ उपदेश है। पुत्री के सबध मे कहा है—

नियघरसोसा परगेहमडणी कुलहर कलकाण।
धूया जेहि न जाया जयम्मि ते सुत्थिया पुरिसा॥

—अपने घर का शोषण करनेवाली, दूसरे के घर को मंडित करनेवाली, पितृघर की कलकरूप, जिसके पुत्री पैदा नहीं हुई वे पुरुष सुखी है।

कन्या के योग्य वर की प्राप्ति के सबध मे उक्ति है—

सा भणइ ज न लब्भइ वरोऽणुरूवो तओ वरेणाऽल।
वरसुन्नसा वि साला, तक्करभरिया न उ कया वि॥

—यदि योग्य वर नहीं मिलता तो फिर वर प्राप्ति से ही क्या लाभ? चोरों से भरी हुई शाला की अपेक्षा उजाड़शाला भली है।

तीन विडम्बनायें—

तक्कविहूणो विज्जो लक्खणहीणो य पंडिओ लोए।
भावविहूणो धम्मो तिण्णि वि गरुई विडम्बणया॥

—तर्क विहीन वैद्य, लक्षणविहीन पंडित और भावविहीन धर्म ये तीन महान् विडम्बनाये समझनी चाहिये।

यहाँ पर सिंहलद्वीप मे बुद्धदर्शन के प्रचार का उल्लेख है। घोर शिव महाव्रती श्रीपर्वत से आया था और उत्तरापथ मे जालन्धर जाने के लिये उद्यत था, स्तम्भन आदि विद्याओं मे वह निष्णात था। राजा को उसने पुत्रोत्पत्ति का मंत्र दिया।

नौवे उद्देश मे मुनि के दर्शन से सुदर्शना के मन मे वैराग्य भावना उदित होने का वर्णन है। दसवे उद्देश मे नवकारमन्त्र का प्रभाव, श्रेयासकुमार की कथा, मरुदेवी के गर्भ मे ऋषभदेव का अवतरण, ऋषभदेव का चरित्र, भरत को केवलज्ञान की उत्पत्ति, नरसुन्दर राजा की कथा, महाबल राजा का दृष्टात, जीर्ण वृषभ की कथा आदि उल्लिखित है। रात्रिभोजन त्याग का महात्म्य बताया है। ग्यारहवे उद्देश मे भृगुकच्छ के अश्वावबोध तीर्थ का वर्णन है। अश्व को बोध देने के लिये मुनिसुव्रतनाथ भगवान् का वहाँ आगमन होता है और अश्व को जातिस्मरण उत्पन्न होता है। बारहवें उद्देश मे सुदर्शना के आदेशानुसार मुनिसुव्रतनाथ भगवान् का प्रासाद निर्मित किये जाने का वर्णन है। जिनबिम्ब की प्रतिष्ठाविधि सम्पन्न होती है। नर्मदा के किनारे शकुनिकाविहार नामक जिनालय के पूर्ण होने पर उसकी प्रशस्ति आदि की विधि की जाती है। तेरहवें उद्देश मे शीलवती के साथ सुदर्शना द्वारा रत्नावली आदि विविध प्रकार के तपश्चरण करने आदि का वर्णन है। चोदहवे उद्देश मे शत्रुंजय तीर्थ पर महावीर के आगमन और उनके धर्मोपदेश का वर्णन है। पन्द्रहवे उद्देश मे महासेन राजा के दीक्षा ग्रहण का उल्लेख है। सोलहवे उद्देश मे धनपाल संघ को साथ लेकर रैवतगिरि की यात्रा करता है। यहाँ उज्जयन्त पर्वत पर नेमिनाथ के जिनभवन का वर्णन

है। धनपाल ने पहले संस्कृत गद्य पद्य फिर प्राकृत पद्य में नेमिनाथ की स्तुति की। यात्रा से लौट कर धनपाल ने तीर्थोद्यापन किया और गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए वह समय यापन करने लगा।

जयन्तीप्रकरण

जयन्तीप्रकरण को जयन्तीचरित नाम से भी कहा जाता है।[1] भगवतीसूत्र के १२ वें शतक के द्वितीय उद्देशक के आधार से मानतुंगसूरि ने जयन्तीप्रकरण की रचना की है जिस पर उनके शिष्य मलयप्रभसूरि ने सरस वृत्ति लिखी है। इस टीका में संस्कृत गद्य पद्य का भी उपयोग किया गया है। मलप्रभसूरि विक्रम सम्वत् १२६० (सन् १२०३) में विद्यमान थे। महासती जयन्ती कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की पुत्री, शतानीक की भगिनी और उसके पुत्र राजा उदयन की फूफी थी। महावीर के शासनकाल में वह निर्ग्रन्थ साधुओं को वसति देने के कारण प्रथम शय्यातरी के रूप में प्रसिद्ध हुई। जयन्ती ने महावीर भगवान् से जीव और कर्मविषयक अनेक प्रश्न पूछे।

इस में कुल मिलाकर केवल २८ गाथायें हैं, लेकिन इनके ऊपर लिखी हुई विशद वृत्ति में अनेक आख्यान संग्रहीत हैं। आरम्भ में कौशम्बी नगरी, शतानीक राजा और उसकी मृगावती रानी का वर्णन है। उज्जैनी का राजा प्रद्योत मृगावती को प्राप्त करना चाहता था, इस पर दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। अन्त में मृगावती ने महावीर के समक्ष उपस्थित होकर श्रमणी दीक्षा ग्रहण कर ली। राजा प्रद्योत को महावीर ने परदारा वर्जन का उपदेश दिया।

अभयदान में मेघकुमार की कथा है। मेघकुमार का आठ कन्याओं से विवाह होता है, विवाह सामग्री का यहाँ वर्णन किया

---

१ पन्यास श्रीमणिविजय जी गणिवर ग्रन्थमाला में वि० सं० २००६ में प्रकाशित।

है। अन्त मे मेघकुमार दीक्षा ले लेते है। सुपात्रदान में वीरभद्र और करुणादान मे राजा सम्प्रति की कथा दी है। शील में सुदर्शन का दृष्टान्त है। तप के उदाहरण दिये गये है। ऋषभदेव के चरित मे भरत और बाहुबलि का आख्यान है। अठारह पापस्थानों की उदाहरणपूर्वक व्याख्या की गई है। फिर भव्य-अभव्य के सम्बन्ध मे चर्चा है। अन्त मे जयन्ती महावीर भगवान् के समीप दीक्षा ग्रहण करती है और चारित्र का पालन कर मोक्ष प्राप्त करती है।

कण्हचरिय (कृष्णचरित)

रामचरित की भॉति कृष्ण के भी अनेक चरित प्राकृत मे लिखे गये हैं। इस के कर्त्ता सुदसणाचरिय के रचयिता तपा गच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं।[1] यह चरित श्राद्धदिनकृत्य की वृत्ति मे से उद्धृत किया गया है, जिसमे नेमिनाथ का चरित भी अन्तर्भूत है।

प्रस्तुत चरित में वसुदेव के पूर्वभव, कस का जन्म, वसुदेव का भ्रमण, अनेक राज्यों से कन्याओं का ग्रहण, चारुदत्त का वृत्तान्त, रोहिणी का परिणयन कृष्ण और बलदेव के पूर्वभव, नारद का वृत्तान्त, देवकी का ग्रहण, कृष्ण का जन्म, नेमिनाथ का पूर्वभव, नेमि का जन्म महोत्सव, कस का बध, द्वारिका नगरी का निर्माण, कृष्ण की अग्र महिषियॉ, प्रद्युम्न का जन्म, पाण्डवों की परम्परा, द्रौपदी के पूर्वभव, जरासध के साथ युद्ध, कृष्ण की विजय, राजीमती का जन्म, नेमिनाथ और राजीमती के विवाह की चर्चा, नेमिनाथ का विवाह किये बिना ही मार्ग से लौट आना, उनकी दीक्षा, धर्मोपदेश, द्रौपदी का हरण, गजसुकुमाल का वृत्तान्त, यादवों की दीक्षा, ढढणऋषि की कथा, रथनेमि और राजीमती का सवाद, थावच्चापुत्र का वृत्तात, शैलक की कथा, द्वीपायन द्वारा द्वारिका का दहन, राम और कृष्ण का निर्गमन,

---

१ केशरीमल जी सस्था, रतलाम द्वारा सन् १९३० में प्रकाशित।

कृष्ण की मृत्यु, वलदेव का विलाप, दीक्षा ग्रहण, पाण्डवों की दीक्षा और नेमिनाथ के निर्वाण का वर्णन है। कृष्ण मर कर तीसरे नरक मे गये, आगे चलकर वे अमम नाम के तीर्थंकर होगे। बलदेव उनके तीर्थ मे सिद्धि प्राप्त करेगे।

कुम्मापुत्तचरिय (कूर्मापुत्रचरित)

कूर्मापुत्रचरित मे कूर्मापुत्र की कथा है, जो १६८ प्राकृत पद्यो मे लिखी गई है।[1] इस ग्रन्थ के कर्ता जिनमाणिक्य अथवा उनके शिष्य अनन्तहस माने जाते है। ग्रन्थ की रचना का समय सन् १५१३ है। सम्भवत इसकी रचना उत्तर गुजरात मे हुई है। कुम्मापुत्तचरिय की भाषा सरल है, अलकार आदि का प्रयोग यहाँ नहीं है। व्याकरण के नियमों का ध्यान रक्खा गया है।

कुम्मापुत्त की कथा मे भावशुद्धि का वर्णन है। दान, शील, रूप आदि की महिमा बताई गई है। अन्त मे गृहस्थावस्था मे रहते हुए भी कुम्मापुत्त को केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। प्रसगवश मनुष्यजन्म की दुर्लभता, अहिसा की मुख्यता, कर्मो का क्षय, प्रमाद का त्याग आदि विषयो का यहाँ प्ररूपण किया गया है।

अन्य चरित-ग्रन्थ

इसके अतिरिक्त अभयदेवसूरि के शिष्य चन्द्रप्रभमहत्तर ने सवत् ११ ७ (सन् १०७०) मे देवावड नगर मे वरदेव के अनुरोध पर विजय चन्द्रकेवलीचरिय की रचना की। इसमे धूपपूजा, अक्षत-पूजा, पुष्पपूजा, दीपपूजा, नैवेद्यपूजा आदि के उदाहरण प्रस्तुत किये है। अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने सन् १०८३ मे १५,००० गाथाप्रमाण मनोरमाचरिय और ११,००० श्लोकप्रमाण आदिनाहचरिय की रचना की। अपभ्रंश की गाथाये भी इस

---

1 प्रो० अभ्यकर द्वारा सम्पादित सन् १९३३ में अहमदाबाद से प्रकाशित।

रचना मे पाई जाती है। इस समय सुप्रसिद्ध हेमचन्द्र आचार्य के गुरु देवचन्द्र सूरि ने लगभग १२,००० श्लोकप्रमाण सतिनाहचरिय की रचना की। फिर नेमिचन्द्रसूरि के शिष्य शातिसूरि ने अपने शिष्य मुनिचन्द्र के अनुरोध पर सन् ११०४ मे पुहवीचन्दचरिय लिखा। मलधारी हेमचन्द्र ने नेमिनाहचरिय, और उनके शिष्य श्रीचन्द्र ने सन् ११३५ मे मुणिसुव्वयसामिचरिय की रचना की। देवेन्द्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि ने सन् ११५७ मे सणकुमारचरिय की रचना की। श्रीचन्द्रसूरि के शिष्य वाटगच्छीय हरिभद्र ने सिद्धराज और कुमारपाल के महामात्य पृथ्वीपाल के अनुरोध पर चौबीस तीर्थकरों का जीवनचरित लिखा। इनमे चन्दप्पहचरिय, मल्लिनाहचरिय और नेमिनाहचरिय उपलब्ध हैं। मल्लिनाहचरिय प्राकृत मे लिखा गया है, इसमे तीन प्रस्ताव हैं। कुमारपालप्रतिबोध के कर्ता सोमप्रभसूरि ने ६००० गाथाओं मे सुमतिनाहचरिय, और सन् १३५३ मे मुनिभद्र ने सतिनाहचरिय की रचना की। नेमिचन्द्रसूरि ने भव्यजनों के लाभार्थ अनन्तनाहचरिय लिखा जिसमे पूजाष्टक[1] उद्धृत किया है। यहाँ कुसुमपूजा आदि के उदाहरण देते हुए जिन पूजा को पापहरण करनेवाली, कल्याण का भडार और दरिद्रता को दूर करनेवाली बताया है। दारिद्र्य के सबध मे उक्ति है—

हे दारिद्र्य ! नमस्तुभ्य सिद्धोऽह त्वत्प्रसादत ।
जगत्पश्यामि येनाह न मा पश्यति कश्चन ॥

—हे दारिद्र्य ! तुझे नमस्कार हो। तेरी कृपा से मै सिद्ध बन गया हू, जिससे मैं जगत् को देखता हू और मुझे कोई नहीं देखता।

---

१ ऋषभदेव केशरीमल श्वेताबर जैन सस्था की ओर से सन् १९३९ में रतलाम से प्रकाशित।

पूजाप्रकाश[1] सधाचारभाष्य, श्राद्धदिनकृत्य आदि से उद्धृत किया गया है।[2]

प्राकृत के अतिरिक्त सस्कृत और अपभ्रश मे भी चरित-ग्रन्थो की रचना हुई, और आगे चलकर पप, रन्न और होन्न ने कनाडी भाषा मे तीर्थंकरों के चरित लिखे।

स्तुति स्तोत्र साहित्य

चरित ग्रन्थो के साथ साथ अनेक स्तुति स्तोत्र भी प्राकृत मे लिखे गये। इनमे धनपाल का ऋषभपचाशिका[3] और वीरथुइ,[4] नदिषेण का अजियसतिथव,[5] धर्मवर्धन का पासजिनथव, जिन-पद्मका सतिनाहथव, जिनप्रभसूरि का पासनाहलहुथव, तथा भद्र-

---

१ श्रुतज्ञान अमीधारा सीरीज़ में शाह रायचद गुलाबचन्द की ओर से सन् १९४० में प्रकाशित।

२ डा० ए० एम० घाटगे ने अनैल्स आफ भाडारकर ओरिटिएल इस्टिट्यूट, भाग १६, १९३४-५ में 'नरैटिव लिटरेचर इन महाराष्ट्री' नामक लेख में चरित ग्रन्थों का इतिहास दिया है।

३-४ जर्मन प्राच्य विद्यासमिति की पत्रिका क ३३वें खड में प्रकाशित। फिर सन् १८९० में बम्बई से प्रकाशित काव्यमाला के ७वें भाग में प्रकाशित। सावचूर्णि ऋषभपचाशिका क साथ वीरथुई देव चन्दलाल भाई पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला की ओर से सन् १९३३ में बबई से प्रकाशित हुई है।

५ मुनि वीरविजय द्वारा सपादित अहमदाबाद से वि० स० १९९२ में प्रकाशित। जिनप्रभसूरि ने १३६५ म इस पर टीका लिखी है। यह स्तवन उपसर्ग निवारक माना गया है, जो इसका पाठ करता है और इसे श्रवण करता है उसे कोई रोग नहीं होता। लघुअजितसतिथव के कर्ता जिनवल्लभसूरि हैं। इसमें १७ गाथायें हैं जिन पर धर्मतिलक मुनि ने उल्लासिक्रम नाम की व्याख्या लिखी है।

बाहुस्वामी का उवसग्गहर,[1] मानतुग का भयहर, कमलप्रभाचार्य का पार्श्वप्रभुजिनस्तवन, पूणकलशगणि का स्तभनपार्श्वजिन स्तवन,[2] अभयदेवसूरि का जयतिहुयण,[3] धर्मघोषसूरि का इसिमडलथोत्त,[4] नन्नसूरि का सत्तरिसयथोत्त, महावीरथव[5] आदि मुख्य है। इसके सिवाय, जिनचन्द्रसूरि के नमुक्कारफलपगरण, मानतुगसूरि के पचनमस्कारस्तवन, पचनमस्कारफल, तथा जिनकीर्त्तिसूरि के परमेष्ठिनमस्कारस्तव (मत्रराजगुणकल्पमहो-

---

१ सप्तस्मरण के साथ जिनप्रभसूरि, सिद्धचन्द्रगणि और हर्षकीर्तिसूरि की व्याख्याओं सहित देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थमाला की ओर से सन् १९३३ में बबई से प्रकाशित।

२ प्राचीन साहित्य उद्धार ग्रन्थावलि की ओर से सन् १९३६ में प्रकाशित जैनस्तोत्रसदोह में सग्रहीत। तुहु गुरु, खेमकरु॥

३ सन् १९१६ में बबई से प्रकाशित। उपाध्याय समयसुन्दर ने इस पर विवरण लिखा है। नमूना देखिये—

तुहु सामिउ, तुहु मायबप्पु तुहु मित्त, पियकरु।
तुहु गइ, तुहु मइ, तुहु जि ताणु। तुहु गुरु, खेमकरु।
हुउ दुहभरभारिउ वराउ, राउल निब्भग्गह लीणउ।
तुहु कमकमलसरणु जिण, पालहि चगह॥

—तुम स्वामी हो, तुम माँ बाप हो, मित्र हो, प्रिय हो। तुम गति हो, त्राता हो, गुरु हो, क्षेमकर हो। मैं रक दुःख के भार से दबा हुआ हूँ, अभागों का राजा हूँ। हे जिन! तुम्हारे चरणकमल ही मेरी शरण हैं, तुम मेरा भली प्रकार पालन करो।

४ यशोविजय महाराज द्वारा सपादित वि० स० २०१२ में बड़ौदा से प्रकाशित। इस पर शुभवर्धन, हर्षनन्दन, भुवनतुग, पद्ममदिर आदि अचार्यों ने वृत्तियाँ लिखी हैं।

५ आत्मानन्द सभा, भावनगर से वि० स० १९७० में प्रकाशित। समयसुन्दरगणि की इस पर स्वोपज्ञ अवचूरि है।

दधि) मे नमस्कारमत्र का स्तवन किया गया[1] है। देवेन्द्रसूरि का चत्तारिअट्ठदसथव,[2] सम्यक्त्वस्वरूपस्तव, गणधरस्तवन, चतुर्विंशतिजिनस्तवन, जिनराजस्तव, तीर्थमालास्तव, नेमिचरित्र स्तव, परमेष्ठिस्तव, पुडरीकस्तव, वीरचरित्रस्तव, वीरस्तवन, शाश्वतजिनस्तव, सप्तशतिजिनस्तोत्र और सिद्धचक्रस्तवन आदि स्तोत्र ग्रन्थों की प्राकृत मे रचना की गई है।[3]



१ ये सब लघु ग्रथ सिंघी जैनग्रन्थमाला, बबई से प्रकाशित हो रहे हैं। मुनि जिनविजय जी की कृपा से मुझे देखने को मिले हैं।

२ देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार ग्रथमाला की ओर से सन् १९३२ में प्रकाशित।

३ देखिये जैन ग्रन्थावलि, पृ० २७२–२९५। नन्दीसरथव, जिणथोत्त, सिरिवीरथुई और कल्लाणयथोत्त सिरिपयरणसदोह में सग्रहीत हैं (ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम, १९२९)। डॉक्टर डब्ल्यू शूब्रिंग ने स्तोत्र साहित्य के सबध में ज्ञानमुक्तवलि, दिल्ली, १९५९ में एक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया है।

आठवाँ अध्याय

प्राकृत काव्य-साहित्य (ईसवी सन् की पहली शताब्दी से लेकर १८वी शताब्दी तक)

प्राकृत साहित्य मे अनेक सरस काव्यों की भी रचना हुई। इस साहित्य का धार्मिक उपदेश अथवा धार्मिक चरितों से कोई सबध नही था, और इसके लेखक मुख्यतया अजैन विद्वान् ही हुए। सस्कृत महाकाव्यों की शैली पर ही प्राय यह साहित्य लिखा गया जिसमे शृङ्गाररस को यथोचित स्थान मिला। छन्दोबद्ध पद्य से मुक्त मुक्तक काव्य इस युग की विशेषता थी। इस काव्य मे पूर्वापर सबध की अपेक्षा के बिना एक ही पद्य मे पाठक के चित्त को चमत्कृत करने के लिये वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यग्य की प्रधानता रही है। गीतात्मक होने के कारण इसमे गेय तत्त्व का भी समावेश हुआ। गाथासप्तशती प्राकृत साहित्य का इसी तरह का एक सर्वश्रेष्ठ अनुपम काव्य है।

गाहासत्तसई (गाहासप्तशती)

गाथासप्तशती, जिसे सप्तशतक भी कहा जाता है, शृङ्गाररस-प्रधान एक मुक्तक काव्य है जिसमे प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ कवि[1]

---

1 इनमें रइराअ, मिअग, हाल, पवरसेण, केसव, गुणाढ्य, अणिरुद्ध, मअरन्द, कुमारिल, चन्दसामि, अवन्तिवम्म, हरिउड्ढ, पोट्टिस, चन्दहत्थि, पालित, वल्लह, माहवसेण, ईसाण, मत्तगइन्द, विसमसेण, भोज, सिरिधम्म, रेवा, णरवाहण, ससिप्पहा, रोहा, दामोअर, मल्लसेण, तिलोअण आदि मुख्य हैं। इनमें हरिउड्ढ और पोट्टिस का उल्लेख राजशेखर की कर्पूरमजरी में मिलता है। भोज के सरस्वती-कठाभरण (१ १३३) में भी हरिउड्ढ का नाम आता है। पालित अथवा पादलिप्त सुप्रसिद्ध जैन आचार्य हैं जिन्होंने तरगवइकहा की

और कवयित्रियों की चुनी हुई लगभग सात सौ गाथाओं का सग्रह है।[1] पहले यह गाहाकोस नाम से कहा जाता था। बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित मे इसे इसी नाम से उल्लिखित किया है। उपमा, रूपक आदि अलकारो से सज्जित ध्वनि अर्थ-प्रधान ये गाथायें महाराष्ट्री प्राकृत मे आर्या छद मे लिखी गई है। कहा जाता है कि गाथासप्तशती के सग्रहकर्ता ने एक करोड प्राकृत पद्यों मे से केवल ७०० पद्यों को चुनकर इसमे रक्खा है। बाण, रुद्रट, मम्मट, वाग्भट, विश्वनाथ और गोवर्धन आचार्य आदि काव्य और अलकार ग्रन्थों के रचयिताओं ने इस काव्य की मुक्तकठ से प्रशसा की है और इसकी गाथाओ को अलकार, रस आदि के उदाहरण के रूप मे उद्धृत किया है। गोवर्धनचार्य ने तो यहाँ तक कहा है कि प्राकृत काव्य मे ही ऐसी सरसता आ सकती है, सस्कृत काव्य मे नहीं। सचमुच

रचना की है। यहाँ प्रवरसेन का नाम भी आता है। लेकिन प्रवरसेन का समय ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी माना जाता है। इसका समाधान प्रोफेसर वासुदेव विष्णु मिराशी ने १२वीं ऑल इण्डिया ओरिंटिएल कॉन्फरेंस, नागपुर, १९४६ में पठित 'द ओरिजिनल नेम ऑव गाथा सप्तशती' नामक लेख में किया है कि गाथा सप्तशती का मूल नाम गाहाकोस था। पहले इसमें पद्यों की सख्या कम थी, बाद में जैसे जैसे श्रेष्ठ कवि होते गये, उनकी रचनाओं का इसमें समावेश होता गया।

१ काव्यमाला २१ में निर्णयसागर प्रेस, बबई से सन् १९३३ में प्रकाशित। वेबर ने इसके आरभ की ३७० गाथायें 'इ० यूबर डास सप्तशतकम् डेस हाल' नाम से लाइप्त्सिख, १८७० में प्रकाशित कराई थी। उसके बाद सन् १८८१ में उसने सप्तशती का सपूर्ण सस्करण प्रकाशित किया—इसका जर्मन अनुवाद भी किया। इसका एक उत्तम सस्करण दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाडुरग परब ने निकाला है जो गगाधर भट्ट की टीका सहित निर्णयसागर प्रेस से काव्यमाला के २१वें भाग में प्रकाशित हुआ है।

गाहासत्तसई के पढने के बाद यह जानकर बडा कौतूहल होता है कि क्या ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के आसपास प्राकृत में इतने भावपूर्ण उत्कृष्ट काव्यों की रचना होने लगी थी ? गाथासप्तशती के अनुकरण पर सस्कृत मे आर्यासप्तशती और हिन्दी मे बिहारीसतसई[1] आदि की रचनाये की गई है। अमरु कवि का अमरुशतक भी इस रचना से प्रभावित है।

हाल अथवा आध्रवश के सातवाहन (शालिवाहन) को इस कृति का सग्रहकर्ता माना जाता है। सातवाहन और कालकाचार्य के सबध मे पहले कहा जा चुका है। सातवाहन प्रतिष्ठान मे राज्य करते थे,तथा बृहत्कथाकार गुणाढ्य और व्याकरणाचार्य शर्ववर्मा आदि विद्वानो के आश्रयदाता थे। भोज के सरस्वती कठाभरण (२ १५) के अनुसार जैसे विक्रमादित्य ने सस्कृत भापा के प्रचार के लिये प्रयत्न किया, उसीप्रकार शालिवाहन ने प्राकृत के लिये किया। राजशेखर काव्यमीमासा (पृ० ५०) के अनुसार अपने अत पुर मे शालिवाहन प्राकृत मे ही बातचीत किया करते थे (श्रूयते च कुतलेषु सातवाहनो नाम राजा, तेन प्राकृतभाषात्मकमन्त पुर एवेति समान पूर्वेण)। बाण ने अपने हर्षचरित मे सातवाहन को प्राकृत के सुभाषित रत्नों का सकलनकर्ता कहा है। इनका समय ईसवी सन् ६९ माना जाता है। शृगाररस प्रधान होने के कारण इस कृति मे नायक नायिकाओं के वर्णन-प्रसग मे साध्वी, कुलटा, पतिव्रता, वेश्या, स्वकीया, परकीया, सयमशीला, चचला आदि स्त्रियो की मन स्थितियों का सरस चित्रण किया है। प्रेम की अवस्थाओं का वर्णन अत्यत मार्मिक

---

१ तुलना के लिये देखिये श्री मथुरानाथ शास्त्री की गाथासप्तशती की भूमिका, पृ० ३७-५३, पद्मसिंह शर्मा का बिहारीसतसई पर सजीवनी भाष्य। डिंगल के कवि सूर्यमल्ल ने वीरसतसई की रचना की। इसी प्रकार गुजराती में दयाराम ने सतसया और दलपतराय ने दलपत सतसई की रचना की—प्रोफेसर कापडिया, प्राकृत भाषाओ अने साहित्य, पृष्ठ १४५ फुटनोट।

बन पडा है। प्रसगवश मेघधारा, मयूरनृत्य, कमलवनलक्ष्मी, झरने, तालाब, ग्राम्य जीवन, लहलहाते खेत, विन्ध्य पर्वत, नर्मदा, गोदावरी आदि प्राकृतिक दृश्यो का अनूठा वर्णन किया है। बीच बीच मे होलिका महोत्सव, मदनोत्सव, वेशभूषा, आचार विचार, व्रत नियम, आदि के काव्यमय चित्र उपस्थित किये गये है। निस्सन्देह पारलौकिकता की चिंता से मुक्त प्राकृतकाव्य की यह अनमोल रचना ससार के साहित्य मे बेजोड है। गाथासप्तशती के ऊपर १८ टीकाये लिखी जा चुकी है, जैन विद्वानो ने भी इस पर टीका लिखी है। जयपुर के श्री मथुरानाथ शास्त्री ने इस पर व्यग्यसर्वंकषा नाम की सस्कृत मे पाडित्यपूर्ण टीका लिखी है।

गाथासप्तशती की चमत्कारपूर्ण उक्तियो के कुछ उदाहरण देखिए—

१ फुरिए वामच्छि तुए जइ एहिइ सो पिओ ज्ज ता सुइरम्।
समीलिअ दाहिणअ तुइ अवि एह पलोइरसम्॥

—हे वामनेत्र! तेरे फरकने पर (परदेश गया हुआ) मेरा प्रिय यदि आज आ जायेगा तो अपना दाहिना नेत्र मूँदकर मै तेरे द्वारा ही उसे देखूँगी।[1]

२ अज्ज गओ ति अज्ज गओ त्ति अज्ज गओ त्ति गणरीए।
पढम व्विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चित्तलिओ॥

—(मेरा पति) आज गया है, आज गया है, इस प्रकार एक दिन मे एक लकीर खींचकर दिन गिननेवाली नायिका ने दिन के प्रथमार्ध मे ही दिवाल रेखाओं से चित्रित कर डाली।

३ जस्स अह विअ पढम तिस्सा अगम्मि णिवडिआ दिट्ठी।
तस्स तहिं चेअ ठिआ सव्वग केण वि ण दिट्ठ॥

---

१ मिलाइये—बाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवनमूरि।
तौ तोहीं सों भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि॥
१४२ बिहारीसतसई।

—उसके शरीर पर जहाँ जिसकी दृष्टि पडी, वही वह लगी रह गई, और उसका सारा अग कोई भी न देख सका।

४ वेविरसिण्णकरंगुलि परिग्गहक्खलिअलेहणीमग्गे।
सोत्थिच्चिअ ण समप्पइ पिअसहि लेहम्मि किं लिहिमो॥

—काँपती हुई और स्वेदयुक्त उँगलियो द्वारा पकडी हुई लेखनी के स्खलित हो जाने से, नायिका स्वस्ति शब्द को ही पूरा न कर सकी, पत्र तो वह विचारी क्या लिखती ?

५ अव्वो दुक्करआरअ! पुणो वि तत्तिं करेसि गमणस्स।
अज्ज वि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा॥

—हे कठोर हृदय! अभी तो (विरह अवस्था मे बँधी हुई) वेणी के कुटिल केश भी सीधे नहीं हो पाये, और तुम फिर से जाने की बात करने लगे।[1]

६ हत्थेसु अ पाएसु अ अंगुलिगणणाइ अइगआ दिअहा।
एण्हिं उण केण गणिज्जउ त्ति भणिअ रुअइ मुद्धा॥

—हाथ और पाँवों की सब उँगलियाँ गिनकर दिन बीत गये, अब मैं किस प्रकार शेष दिनों को गिन सकूँगी, यह कहकर मुग्धा रुदन करने लगी।

७ बहलतमा हअराई अज्ज पउत्थो पई घरं सुण्णम्।
तह जग्गेसु सअज्जिअ! ण जहा अम्हे मुसिज्जामो॥

—आज की हतभागी रात मे घना अँधेरा है, पति परदेश गये है, घर सूना है। हे पडोसिन! तुम आज रात को जागरण करो जिससे चोरी न हो जाये।

८ धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छति।
णिद्दच्चिअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणम्॥

—वे महिलाये धन्य है जो अपने पति का स्वप्न मे तो दर्शन

---

१ मिलाइये—अज्यौं न आये सहज रँग बिरह दूबरे गात।
अबहीं कहा चलाइयत ललन चलन की बात॥ १२०॥
—बिहारीसतसई।

कर लेती हैं, लेकिन जिन्हें उनके विरह मे निद्रा ही नहीं आती वे बेचारी स्वप्न ही क्या देखेगी ?

९ जाव ण कोसविकास पावइ ईसीस मालईकलिआ।
मअरदपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि॥

—मालती की कली का विकसित होने के पूर्व ही, पुष्परस पान करने का लोभी भ्रमर मर्दन कर डालता है।[1]

१० सो णाम सभरिज्जइ पब्भसिओ जो खण पि हिअआहि।
सभरिअव्व च कअ गअ अ पेम्म णिरालबम्॥

—जो एक क्षण के लिये भी हृदय से दूर रहे उसका नाम स्मरण करना तो ठीक कहा जा सकता है (लेकिन जो रात दिन हृदय मे रहता है उसका क्या स्मरण किया जाये ?)। यदि प्रिय स्मरण करने योग्य है तो प्रेम निरालब ही हो जायेगा।

११ पणअकुविआण दोण्ह वि अलिअपसुत्ताण माणइल्लाणम्।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णकण्णाण को मल्लो॥

—प्रणय से कुपित, झूठ मूठ सोये हुए, मानयुक्त, एक दूसरे के निश्चल रोके हुए निश्वास की ओर कान लगाये हुए नायक और नायिका दोनों मे देखें कौन मल्ल है ? (कोई भी नही)।

१२ अण्णाण्ण कुसुमरस ज किर सो महइ महुअरो पाउ।
त णीरसाण दोसो कुसुमाण णेअ भमरस्स॥

—भौंरा जो दूसरे दूसरे कुसुमों का रस पान करना चाहता है, इसमें नीरस कुसुमों का ही दोष है, भौंरे का नहीं।

१३ अण्णमहिलापसग दे देव ! करेसु अह्म दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणति॥

—हे देव ! हमारे प्रियतम को किसी अन्य महिला से मिलने का भी प्रसग हो क्योकि एकमात्र रस के भोगी पुरुष स्त्रियों के गुण दोष नही समझते।

---

१ मिलाइये—नहि पराग नहिं मधुर मधु नहि विकास इहिं काल।
अली कलीही तैं बध्यो आगे कौन हवाल॥
—बिहारीसतसई

१४ असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।
ण कहइ कुडुम्बविहडणभएण तणुआअए सोण्हा ॥

—काम विकार के कारण दूषित हृदयवाले देवर के होते हुए भी, शुद्ध हृदयवाली पुत्रवधू प्रियतम के कठोर स्वभावी होने से, कुटुब मे कलह होने के भय से, अपने मन की बात न कहने के कारण प्रतिदिन कृश होती जा रही है ।

१५ भुजसु ज साहीण कुत्तो लोण कुगामरिद्धम्मि ।
सुहअ ! सलोणेण वि किं तेण सिणेहो जहिं णत्थि ॥

—जो स्वाधीन होकर मिले उसे खाओ, छोटे मोटे गॉव मे भोजन बनाते समय लवण कहॉ से आयेगा ? हे सुन्दर ! उस लवण से भी क्या लाभ जहॉ स्नेह न हो ।

१६ अज्ज पि ताव एक्क मा म वारेहि पिअसहि रुअतिम् ।
कल्लि उण तम्मि गए जइ ण मुआ ताण से दिस्सम् ॥

—आज एक दिन के लिये मुझ रोती हुई को मत रोको । कल उसके चले जाने पर यदि मैं न मर गई तो फिर मै रोऊॅगी ही नहीं (अर्थात् उसके चले जाने पर मेरा मरण अवश्यभावी है) ।

१७ जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विडड्ढविण्णाणा ।
दारिद्द रे विअक्खण ! ताण तुम साणुराओ सि ॥

—जो कोई गुणवान् है, त्यागी है, ज्ञानवान् है, हे विचक्षण दारिद्र्य ! तू उन्हीं से प्रेम करता है ।

वज्जालग्ग

हाल की सप्तशती के समान वज्जालग्ग (व्रज्यालग्न) भी प्राकृत के समृद्ध साहित्य का सग्रह है । यह भी किसी एक कवि की रचना नही है, अनेक कवियोक्त प्राकृत पद्यों का यह सुभाषित सग्रह है जिसे श्वेताम्बर मुनि जयवल्लभ ने सकलित किया है ।[1] इन सुभाषितो को पढकर इनके रचयिताओं की सूक्ष्म

---

१ प्रोफेसर जुलियस लेबर द्वारा कलकत्ता से सन् १९१४, १९२३ और १९४४ में प्रकाशित ।

बूझ और सूक्ष्म पर्यवीक्षण शक्ति का अनुमान किया जा सकता है। यह सुभाषित आर्या छन्द मे है और इसमे धर्म, अर्थ, और काम का प्ररूपण है। वज्जा का अर्थ है पद्धति, एक प्रस्ताव मे एक विषय से सबधित अनेक गाथाये होने के कारण इसे वज्जालग्ग कहा गया है। हाल की सप्तशती की भाँति इसमे भी ७०० गाथाये थीं। वर्तमान कृति मे ७९५ गाथाये हैं, दुर्भाग्य से इनके लेखको के नामों के सबध मे हम कुछ नही जानते। ये गाथायें काव्य, सज्जन, दुर्जन, दैव, दारिद्रय, गज, सिंह, भ्रमर, सुरत, प्रेम, प्रवसित, सती, असती, ज्योतिषिक, लेखक, वैद्य, धार्मिक, यान्त्रिक, वेश्या, खनक (ठड्ड), जरा, वडवानल आदि ९५ प्रकरणों मे विभक्त है। रत्नदेवगणि ने सवत् १३९३ मे इस पर सस्कृत टीका लिखी है। कही कही अपभ्रश का प्रभाव दिखाई देता है। हेमचन्द्र और सदेशरासक के कर्त्ता अब्दुर्रहमान आदि की गाथाये भी यहाँ मिलती है।

प्रारभ मे प्राकृत काव्य को अमृत कहा है, जो इसे पढना और सुनना नही जानते वे काम की वार्ता करते हुए लज्जा को प्राप्त होते है। प्राकृत काव्य के सबध मे कहा है—

ललिए महुरक्खरए जुवईयणवल्लहे ससिंगारे।
सन्ते पाइयकव्वे को सक्कइ सक्कय पढिउ॥

—ललित, मधुर अक्षरों से युक्त, युवतियों को प्रिय, शृङ्गार-युक्त, प्राकृतकाव्य के रहते हुए सस्कृत को कौन पढ़ेगा?

नीति के सम्बन्ध मे बताया है—

अप्पहिय कायव्व जइ सक्कइ परहिय च कायव्व।
अप्पहियपरहियाण अप्पहिय चेव कायव्व॥

—पहले अपना हित करना चाहिये, सभव हो तो दूसरे का हित करना चाहिये। अपने और दूसरे के हित में से अपना हित ही मुख्य है।

धीर पुरुषो के सबध मे—

बे मग्गा भुवणयले माणिणि ! माणुन्नयाण पुरिसाण ।
अहवा पावंति सिरिं अहव भमन्ता समप्पंति ॥[1]

—हे मानिनि ! इस भूमडल पर मानी पुरुषों के लिये केवल दो ही मार्ग है—या तो वे श्री को प्राप्त होते हैं, या फिर भ्रमण करते हुए समाप्त हो जाते है।

विधि की मुख्यता बताई है—

को एत्थ सया सुहिओ कस्स व लच्छी थिराइ पेम्माइ ।
कस्स व न होइ खलण भण को हु न खडिओ विहिणा ॥

—यहाँ कौन सदा सुखी है ? किसके लक्ष्मी टिकती है ? किसका प्रेम स्थिर रहता है ? किसका स्खलन नही होता ? और विधि के द्वारा कौन खडित नहीं होता ?

दीन के सबध मे—

तिणतूल पि हु लहुय दीण दइवेण निम्मिय भुवणे ।
वाएण किं न नीय अप्पाण पत्थणभएण ॥

—दैव ने तृण और तूल (रुई) से भी लघु दीन को सिरजा है, तो फिर उसे वायु क्यों न उडा ले गई ? क्योंकि उसे डर था कि दीन उससे भी कुछ माँग न बैठे।

सेवक को लक्ष्य करके कहा है—

वरिसिहिसि तुम जलहर ! भरिहिसि भुवणन्तराइ नीसेस ।
तण्हासुसियसरीरे मुयम्मि वप्पीहयकुडुबे ॥

—हे जलधर ! तुम बरसोगे और समस्त भुवनातरों को जल से भर दोगे, लेकिन कब ? जब कि चातक का कुटुब तृष्णा से शोषित होकर परलोक पहुँच जायेगा।

---

१ मिलाइये—कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विन ।
सर्वेषा मूर्ध्नि वा तिष्ठेत् विशीर्येत वनेऽथवा ॥
हितोपदेश १ । १३४ ।

हस के सबध मे—

एक्केण य पासपरिट्ठिएण हसेण जा सोहा।
त सरवरो न पावइ बहुएहि वि ढेकसत्थेहि ॥

—पास मे रहनेवाले एक हस से जो सरोवर की शोभा होती है, वह अनेक मेढको से भी नही होती।

ससार मे क्या सार है—

सुम्मइ पचमगेय पुज्जिज्जइ वसहवाहणो देवो।
हियइच्छिओ रमिज्जइ ससारे इत्तिय सार ॥

—पचम गीत का सुनना, बैल की सवारीवाले शिवजी का पूजन करना और जैसा मन चाहे रमण करना, यही ससार मे सार है।

कोई नायक अपनी मानिनी नायिका को मना रहा है—

ए दइए! मह पसिज्जसु माण मोत्तूण कुणसु परिओस।
कयसेहराण सुम्मइ आलावो झत्ति गोसम्मि ॥

—हे दयिते! प्रसन्न हो, मान को छोडकर मुझे सन्तुष्ट कर। सबेरा हो गया है, मुर्गे की बॉग सुनाई पड रही है।

पति के प्रवास पर जाते समय नायिका की चिन्ता—

कल्ल किर खरहियओ पवसिहिइ पिओ त्ति सुव्वइ जणम्मि।
तह वड्ढ भयवइनिसे! जह से कल्ल चिय न होइ ॥[1]

—सुनती हूँ, कल वह क्रूर प्रवास को जायेगा। हे भगवती रात्रि! तू इस तरह बड़ी हो जा जिससे कभी कल हो ही नहीं।

बिदाई का दृश्य देखिये—

जइ वच्चसि वच्च तुम एण्हि अवऊहणेण न हु कज्ज।
पावासियाण मडय छिविऊण अमगल होइ ॥

मिलाइये—

1 सजन सकारे जायेंगे नैन मरेंगे रोय।
या विधि ऐसी कीजिये फजर कबहूँ ना होहि ॥
—बिहारीसतसई।

—यदि तुम्हे जाना हो तो जाओ, इस समय आलिगन करने से क्या लाभ ? प्रवास के लिये जाने वाले लोग यदि मृतक (निष्प्राण) का स्पर्श करें तो यह अमगल सूचक है।

लेकिन पति चला गया, केवल उसके पदचिह्न शेष रह गये। प्रोषितभर्तृका उन्हीं को देखकर सन्तोष कर लेती है। किसी पथिक को उस मार्ग से जाते हुए देखकर वह कह उठती है—

इय पथे मा वच्चसु गयवइभणिय भुय पसारे वि।
पथिय ! पियपयमुद्दा मइलिज्जइ तुज्झगमणेण ॥

—प्रोषितभर्तृका नारी अपनी भुजाओ को फैलाकर कहती है, हे पथिक ! तू इस मार्ग से मत जा। तेरे गमन से मेरे प्रियतम के पगचिह्न नष्ट हो जायेंगे।

पति के वियोग मे प्रोषितभर्तृका विचारी कापालिनी बन गई—

हत्थट्ठिय क्वाल न मुयइ नूण खण पि खट्टग।
सा तुह विरहे बालय ! बाला कावालिणी जाया ॥[1]

—अपने सिर को हाथ पर रक्खे हुए (खप्पर हाथ मे लिये हुए), वह खाट को नही छोडती (अथवा खट्वाग को धारण किये हुए) ऐसी वह नायिका तेरे विरह मे कापालिका बन गई है।

सुगृहिणी के विषय मे सुभाषित देखिये—

भुजइ भुजियसेस सुप्पइ सुप्पम्मि परियणे सयले।
पढम चेय विबुज्झइ घरस्स लच्छी न मा घरिणी ॥

—जो बाकी बचा हुआ भोजन करती है, सब परिजनों के सो जाने पर स्वय सोती है, सबसे पहले उठती है, वह गृहिणी नहीं, लक्ष्मी है।

मिलाइये—

१ अब्दुर्रहमान के सदेशरासक (२ ८६) के साथ।

तथा—

पत्ते पियपाहुणए मगलवलयाइ विक्किणतीए।
दुग्गयघरिणीकुलबालियाए रोवाविओ गामो॥

—किसी प्रिय पाहुने के आ जाने पर उसने अपने मगलवलय को बेच दिया। इसप्रकार कुलबालिका की दयनीय दशा देखकर सारा गॉव रो पडा।

यहॉ छह ऋतुओं का वर्णन है। हाल कवि का और श्रीपर्वत से औषधि लाने का यहॉ उल्लेख है।

गाथासहस्री

सकलचन्द्रगणि के शिष्य समयसुन्दरगणि इस ग्रथ के सग्रह कर्ता है।[1] वे तर्क, व्याकरण, साहित्य आदि के बहुत बडे विद्वान् थे। विक्रम सवत् १६८६ (ईसवी सन् १६२६) मे उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ मे लौकिक अलौकिक विषयों का सग्रह किया है। इस ग्रन्थ पर एक टिप्पण भी है, उसके कर्ता का नाम अज्ञात है। जैसे गाथासप्तशती मे ७०० गाथाओं का सग्रह है वैसे ही इस ग्रन्थ मे १००० (८५५) सुभाषित गाथाओं का सग्रह है। यहॉ ३६ सूरि के गुण, साधुओ के गुण, जिनकल्पिक के उपकरण, यतिदिनचर्या, २५३ आर्य देश, ध्याता का स्वरूप, प्राणायाम, ३२ प्रकार के नाटक, १६ शृगार, शकुन और ज्योतिष आदि से सबध रखनेवाले विषयों का सग्रह है। महानिशीथ व्यवहारभाष्य, पुष्पमालावृत्ति आदि के साथ साथ महाभारत, मनुस्मृति आदि सस्कृत के ग्रन्थों से भी यहॉ उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

इनके अतिरिक्त प्राकृत मे अन्य भी सुभाषित ग्रन्थों की रचना हुई है। जिनेश्वरसूरि (सन् ११९५) ने गाथाकोष लिखा। लक्ष्मण की भी इसी नाम की एक कृति मिलती है।[2] फिर,

---

१ जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फंड, सूरत से सन् १९४० में प्रकाशित।

२ इन दोनों को मुनि पुण्यविजयजी प्रकाशित करा रहे हैं।

रसालय, रसाउलो (कर्ता मुनिचन्द्र), विद्यालय, साहित्यश्लोक, और सुभाषित नाम के सुभाषित ग्रन्थ भी प्राकृत मे लिखे गये ।[1]

सेतुबंध

मुक्तक काव्य और सुभाषितों की भॉति महाकाव्य भी प्राकृत मे लिखे गये जिनमे सेतुबध, गउडवहो और लीलावई आदि का विशिष्ट स्थान है। सेतुबध प्राकृत भाषा का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है।[2] यह महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा गया है। रावणवध अथवा दशमुखवध नाम से भी यह कहा जाता है। महाकवि दण्डी और बाणभट्ट ने इस कृति का उल्लेख किया है। सेतुबन्ध के रचयिता महाकवि प्रवरसेन माने जाते है जिनका समय ईसवी सन् की पॉचवीं शताब्दी है। इस काव्य मे १५ आश्वास है जिनमे वानरसेना के प्रस्थान से लेकर रावण के वध तक की रामकथा का वर्णन है। सेतुबन्ध की भाषा साहित्यिक प्राकृत है जिसमे समासों और अलकारों का प्रयोग अधिक हुआ है, यमक, अनुप्रास और श्लेष की मुख्यता है।

---

१ जैन ग्रन्थावलि, पृ० ३४१ ।

२ इसका एक प्राकृत सस्करण अकबर के समय में रामदास ने टीकासहित लिखा था, पर वह मूल का अर्थ ठीक ठीक नहीं समझ पाया, पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ २३। सबसे पहले सन् १८४६ में सेतुबन्ध पर होएफर ने काम किया था। फिर पौल गोल्डश्मित्त ने १८७३ में 'स्पिसिमैन डेस् सेतुबध' नामक पुस्तक गोएटिंगन से प्रकाशित की। तत्पश्चात् स्ट्रासबर्ग से सन् १८८० में जीगफ्रीड गोल्डश्मित्त ने सारा ग्रन्थ जर्मन अनुवाद सहित प्रकाशित कराया। इसी के आधार पर शिवदत्त और परब ने बम्बई से सस्करण निकाला जो रामदास की टीका के साथ काव्यमाला ४७ में सन् १८९५ में प्रकाशित हुआ, पिशल, वही, पृष्ठ २४ ।

तत्कालीन सस्कृत काव्यशैली का इस पर गहरा प्रभाव है। स्कन्धक, गलितक, अनुष्टुप् आदि छन्द भी सस्कृत के ही है। सम्पूर्ण कृति एक ही आर्या छन्द मे लिखी गई है। इस महाकाव्य का प्रभाव सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश पर भी पडा है। आगे चलकर इसके अनुकरण पर गउडवहो, कसवहो और शिशुपालवध आदि अनेक प्रबन्धकाव्य लिखे गये। सेतुबन्ध पर अनेक टीकाये है जिनमे जयपुर राज्य के निवासी अकबर-कालीन रामदास की रामसेतुप्रदीप टीका प्रसिद्ध है। यह टीका ईसवी सन् १५६५ मे लिखी गई थी। रामदास के कथनानुसार विक्रमादित्य की आज्ञा से कालिदास ने इस ग्रन्थ को प्रवरसेन के लिये लिखा है, लेकिन यह कथन ठीक नहीं है।

कथा का आधार वाल्मीकि रामायण का युद्धकाण्ड है। विरह से सतप्त राम हनुमान द्वारा सीता का समाचार पाकर लका की ओर प्रस्थान करते है। लेकिन मार्ग मे समुद्र आ जाने से रुक जाते है। वानर सेना समुद्र का पुल बाँधती है। राम समुद्र को पार कर लका नगरी मे प्रवेश करते है, और रावण तथा कुम्भकर्ण आदि का वध करके सीता को छुडा लाते है। अयोध्या लौटने पर उनका राज्याभिषेक किया जाता है। पहले आठ आश्वासो मे शरद् ऋतु, रात्रिशोभा, चन्द्रोदय, प्रभात, पर्वत, समुद्रतट, सूर्योदय, सूर्यास्त, मलयपर्वत, वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बाँधने आदि का सुन्दर और काव्यात्मक वर्णन है। उत्तरार्ध मे लका नगरी का दर्शन, रावण का क्षोभ, निशाचरियों का सभोग, प्रमद्-वन, सीता की मूर्च्छा, लङ्का का अवरोध, युद्ध तथा रावणबध आदि का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। बीच बीच मे अनेक सूक्तियाँ गुफित है।

समुद्रवेला का वर्णन करते हुए कहा है—

विअसिअतमालणील पुणो पुणो चलतरगकरपरिमट्ठम्।
फुल्लेलावणसुरहिं उअहि गइन्दस्स दाणलेह व ठिअम्॥ १ ६३

—समुद्रतट विकसित तमाल वृक्षों से श्याम हो गया था,

बार बार उठने वाली चञ्चल तरङ्गों से वह परिमार्जित था, और प्रफुल्लित इलायची के वन से सुगन्धित था। यह तट हाथी की मदधारा के समान शोभित हो रहा था।

सत्पुरुषों के सबध की एक उक्ति देखिये—

ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घडेन्ति कज्जालावे।
थोअ चिअ ते वि दुमा जे अमुणिअकुसुमनिग्गमा देन्ति फल॥३ ६

—जो बिना कुछ कहे ही कार्य कर देते है, ऐसे सत्पुरुष विरले ही होते हैं। उदाहरण के लिये, बिना पुष्पों के फल देनेवाले वृक्ष बहुत कम होते है।

समर्थ पुरुषों को लक्ष्य करके कहा गया है—

आहिअ समराअमणा वसणम्मि अ उच्छवे अ समराअमणा।
अवसाअअविसमत्था धीरच्चिअ होन्ति ससए वि समत्था॥
३ २०

—समर्थ लोग सशय उपस्थित होने पर धीरता ही धारण करते हैं। सग्राम उपस्थित होने पर वे अपने आप को समर्पित कर देते है। सुख और दु ख मे वे समभाव रखते है, और सकट उपस्थित होने पर विचार कर कार्य करते है।

वानरों द्वारा सेतु बॉधने का वर्णन पढिये—

धरिआ भुएहि सेला सेलेहि दुमा दुमेहि घणसघाआ।
ण वि णज्जइ किं पवआ सेउ बधति ओमिणेन्ति णहअलम्॥७ ५८

—वानरों ने अपनी भुजाओं पर पर्वत धारण कर लिये, पर्वतों के वृक्ष और वृक्षों के ऊपर परिभ्रमण करने वाले बादल ऊपर उठा लिये। यह पता नहीं चलता था कि वानरसेना सेतु को बॉध रही है अथवा आकाश को माप रही है।

राक्षसियों की कातरता का दिग्दर्शन कराया गया है—

पिअअमवच्छेसु वणे ओवइअदिसागइन्ददन्तुल्लिहिए।
वेवइ दट्ठूण चिर सभाविअसमरकाअरो जुवइजणो॥१० ६०

—प्रहार करने के लिये उपस्थित दिग्गज हाथी के दॉतों द्वारा अपने प्रियतम के वक्षस्थल पर किये हुए घावों को देखकर,

उपस्थित हुए युद्ध से कातर बनी हुई युवतियों का हृदय कंपित होता है।

स्त्रियों के अनुराग की अभिव्यक्ति देखिये—

अलअ छिवइ विलक्खो पडिसारेइ वलअ जमेइ णिअत्थम्।
मोह आलवइ सहिं दइआलोअणडिओ विलासिणीसत्थो ॥ १० ७०

—विलासिनी स्त्रियाँ कहीं से अकस्मात् आये हुए अपने प्रिय को देखकर लज्जा से चञ्चल हो उठती हैं। वे अपने केशों को स्पर्श करती हैं, कड़ों को ऊपर नीचे करती हैं, वस्त्रों को ठीक ठाक करती हैं और अपनी सखी से झूठ मूठ का वार्तालाप करने लगती हैं।

नवोढा के प्रथम समागम के संबंध में कहा है—

ण पिअइ दिण्ण पि मुह ण पणामेइ अहर ण मोएइ बला।
कह वि पडिवज्जइ रअ पढमसमागमपरम्मुहो जुवइजणो ॥
१० ७८

—नवोढा स्त्री प्रिय द्वारा उपस्थित किये हुए मुख का पान नहीं करती, प्रिय के द्वारा याचित किये हुए अधर को नहीं झुकाती, प्रिय द्वारा अधर ओष्ठ से आकृष्ट किये जाने पर जबर्दस्ती से उसे नहीं छुड़ाती। इस प्रकार प्रथम समागम में लज्जा से पराङ्मुख युवतियाँ बड़े कष्टपूर्वक रति सम्पन्न करती हैं।

शृंगाररस में वीररस की प्रधानता देखिये—

पिअअमकण्ठोलइअ जुअईण सुअम्मि समरसण्णाहरवे।
ईसणिहु पवर भअ सुरअक्खेएण गलइ बाहाजुअलम् ॥
१२ ४८

—युद्धसन्नाह की भेरी की ध्वनि सुनकर, सुरत के खेद से प्रियतम के कण्ठ से अवलग्न युवतियों के बाहुपाश शिथिल हो जाते हैं।

रण की अभिलाषा का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

भिज्जइ उरो ण हिअअ गिरिणा भज्जइ रहो ण उण उच्छाहो।
छिज्जन्ति सिरणिहाणा तुगा ण उण रणदोहला सुहडाणम् ॥
१३ ३६

—युद्धभूमि मे सुभटों के वक्षस्थलों का भेदन होता है, उनके हृदय का नही, गिरि (कपियो के अस्त्र–टीका) से रथों का भेदन होता है, उत्साह का नही, सुभटों के शिरो का छेदन होता है, उनकी रण अभिलाषाओ का नही।

कामदत्ता

कामदत्ता नाम के प्राकृत काव्य का चतुर्भाणी के अन्तर्गत शूद्रक विरचित पद्मप्राभृतकम् (पृ० १२) मे मिलता है। पद्मप्राभृतकम् का समय ईसवी सन् की ५वीं शताब्दी माना जाता है।

गउडवहो (गौडवध)

गउडवहो लौकिक चरित्र के आधार पर लिखा हुआ एक प्रबन्ध काव्य है।[1] इसमे गौड देश के किसी राजा के वध का वर्णन होना चाहिये था जो केवल दो ही पद्यों मे समाप्त हो जाता है। यशोवर्मा ने गौड–मगध–के राजा का वध किस प्रकार किया, इत्यादि भूमिका के रूप मे यह काव्य लिखा गया मालूम होता है। कदाचित् यह पूर्ण नहीं हो सका, और यदि पूर्ण हो गया है तो उपलब्ध नहीं है। बप्पइराअ अथवा वाक्पतिराज इस चरित काव्य के कर्ता माने जाते है। उन्होंने लगभग ७५० ईसवी मे महाराष्ट्री प्राकृत मे आर्या छन्द मे इस ग्रन्थ की रचना की। वाक्पतिराज कन्नौज मे राजा यशोवर्मा के आश्रय मे रहते थे। यशोवर्मा की प्रशसा मे ही यह काव्य लिखा गया है। इसमे १२०६ गाथाये है। ग्रन्थ का विभाजन सर्गों मे न होकर कुलकों मे हुआ है। सबसे बडे कुलक मे १५० पद्य हैं

---

१ हरिपाल की टीका सहित इसे शकर पांडुरग पण्डित ने बम्बई सस्कृत सीरीज़ ३४ में बम्बई से १८८७ में प्रकाशित कराया। शकर पाण्डुरग पण्डित और नरायण बापूजी उतगीकर द्वारा सम्पादित, सन् १९२७ से भाण्डारकर ओरिएटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट द्वारा प्रकाशित।

और सबसे छोटे मे पॉच। भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्त्व-पूर्ण है। उत्प्रेक्षा, उपमा और वक्रोक्तियो का यहॉ सुन्दर प्रयोग हुआ है। हरिपाल ने इस पर गौडवधसार नाम की टीका लिखी है।

सर्वप्रथम ६१ पद्यों मे ब्रह्मा, हरि, नृसिह, महावराह, वामन, कूर्म, कृष्ण, बलभद्र, शिव, गौरी, गणपति, लक्ष्मी आदि देवताओ का मङ्गलाचरण है। तत्पश्चात् कवियो की प्रशसा है। कवियो मे भवभूति, भास, ज्वलनमित्र, कातिदेव, कालिदास, सुबन्धु और हरिचन्द्र के नाम गिनाये गये है। सुकवि के सम्बन्ध मे कहा है कि वह विद्यमान वस्तु को अविद्यमान, विद्यमान को अविद्यमान और विद्यमान को विद्यमान चित्रित कर सकता है। कवि ने प्राकृत भापा के सम्बन्ध में लिखा है—"प्राकृत भापा मे नवीन अर्थ का दर्शन होता है, रचना मे वह समृद्ध है और कोमलता के कारण मधुर है। समस्त भाषाओं का प्राकृत भापा मे सन्निवेश होता है, सब भाषाये इसमे से प्रादुर्भूत हुई है, जैसे समस्त जल समुद्र मे प्रविष्ट होता है, और समुद्र से ही उद्भूत होता है। इसके पढने से विशेष प्रकार का हर्ष होता है, नेत्र विकसित होते है और मुकुलित हो जाते है, तथा बहिर्मुख होकर हृदय विकसित हो जाता है।"

तत्पश्चात् काव्य आरम्भ होता है। राजा यशोवर्मा एक प्रतापी राजा है जिसे हरि का अवतार बताया गया है। ससार मे प्रलय होने के पश्चात् केवल यशोवर्मा ही बाकी बचा। वर्षा ऋतु समाप्त होने पर वह विजययात्रा के लिये प्रस्थान करता है। इस प्रसग पर शरद् और हेमन्त ऋतु का वर्णन किया गया है। क्रम से वह शोण नद पर पहुँचता है। उसके सैनिकों के प्रयाण से शालि के खेत नष्ट हो जाते है। वहाँ से वह विन्ध्य पर्वत की ओर गमन करता है और वहॉ विन्ध्यवासिनी देवी की स्तुति करता है। देवी के मन्दिर के तोरण द्वार पर घण्टे लगे हुए हैं, महिषासुर का मस्तक देवी के पगों से [illegible]

हो रहा है, पुष्प और धूप आदि सुगधित पदार्थों से आकृष्ट होकर भ्रमर गुजार कर रहे हैं, स्थान-स्थान पर रक्त की भेट चढाई गई है, कपालों के मण्डल बिखरे हुए है। मन्दिर का गर्भभवन वीरों के द्वारा वितीर्ण असिधेनु, करवाल आदि की कान्ति से शोभित है, साधक लोग तन्दुल और पुरुषों के मुण्ड से पूजा अर्चना कर रहे है, अरुण पताकाये फहरा रही है, भूत-प्रतिमाये रुधिर और आसव का पान कर सन्तोष प्राप्त कर रही है, दीपमालाये प्रज्वलित हो रही है, कौल नारियाँ वध किये जाते हुए महापशु (मनुष्य) को प्राप्त करने के लिये एकत्रित हो रही है, देवी श्मशान मे साधक लोग महामास की बिक्री कर रहे हैं। यहाँ बताया है कि मगध (गौड) का राजा, यशोवर्मा के भय से पलायन कर गया। इस प्रसग पर ग्रीष्म और वर्षा ऋतु का वर्णन है। यहाँ पर मगधाधिप के भागे हुए सहायक राजे लौट आते है। यशोवर्मा की सेना के साथ उनका युद्ध होता है जिसमे मगध (गौड) के राजा का वध होता है। इसी घटना को लेकर प्रस्तुत रचना को गौडवध कहा गया है।

तत्पश्चात् यशोवर्मा ने एला से सुरभित समुद्रतट के प्रदेश मे प्रयाण किया। वहाँ से वग देश की ओर गया। यह देश हाथियों के लिये प्रसिद्ध था। उसने वगराज को पराजित किया, फिर मलय पर्वत को पार कर दक्षिण की ओर बढा, समुद्रतट पर पहुँचा जहाँ बालि ने भ्रमण किया था। फिर पारसीक जन पद मे पहुँच कर वहाँ के राजा के साथ युद्ध किया। कोंकण की विजय की, वहाँ से नर्मदा के तट पर पहुँचा। फिर मरुदेश की ओर गमन किया। वहाँ से श्रीकण्ठ गया। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र मे पहुँचकर जलक्रीडा का आनन्द लिया। वहाँ से यशोवर्मा हरिश्चन्द्र की नगरी अयोध्या के लिये रवाना हुआ। महेन्द्र पर्वत के निवासियों पर विजय प्राप्त की और वहाँ से उत्तरदिशा की ओर प्रस्थान किया। यहाँ १४६ गाथाओ के कुलक में

विजययात्रा मे आये हुए अनेक तालाब, नदी, पर्वत और वृक्ष आदि का वर्णन किया गया है। ग्राम्य जीवन का चित्र देखिये—

टिविडिक्किअ डिंभाण णवरंगयगव्वगरुयमहिलाण।
णिक्कम्पपामराण भद्द गामूसव दिणाण॥

—वे ग्रामोत्सव के दिन कितने सुन्दर हैं जब कि बालकों को प्रसाधित किया जाता है, नये रंगे हुए वस्त्रों को धारण कर स्त्रियाँ गर्व करती हैं और गाँव के लोग निश्चेष्ट खड़े रह कर खेल आदि देखते हैं।

आम्रवृक्षों की शोभा देखिये—

इह हि हलिद्दाहयदविडसामलीगंडमंडलानील।
फलमसलपरिणामावलम्बि अहिहरइ चूयाण॥

—हलदी से रंगे हुए द्रविड देश की सुंदरियों के कपोल मण्डल के समान, आधा पका हुआ वृक्ष पर लटकता हुआ आम का फल कितना सुन्दर लगता है!

गाँवों का चित्रण देखिये—

फललम्भमुइयडिंभा सुदारुघरसणिवेसरमणिज्जा।
एए हरंति हिययं अजणाइण्णा वणग्गामा॥

—जहाँ फलों को पाकर बालक मुदित रहते हैं, लकड़ी के बने हुए घरों के कारण जो रमणीक जान पड़ते हैं और जहाँ बहुत लोग नहीं रहते, ऐसे वन ग्राम कितने मनमोहक हैं।

यशोवर्मा विजययात्रा के पश्चात् कन्नौज लौट आता है। उसके सहायक राजा अपने अपने घर चले जाते हैं, और सैनिक अपनी पत्नियों से मिलकर बड़े प्रसन्न होते हैं। बन्दिजन यशोवर्मा का जय-जयकार करते हैं। राजा अन्त पुर की रानियों के साथ क्रीड़ा में समय यापन करता है। यहाँ स्त्रियों की क्रीडाओं और उनके सौंदर्य का वर्णन किया गया है।

इसके पश्चात् कवि अपना इतिहास लिखता है। वह राजा यशोवर्मा के राजदरबार मे रहता था। भवभूति, भास, ज्वलन-मित्र, कुन्तिदेव, रघुकार, सुबंधु और हरिश्चन्द्र का प्रशंसक था।

न्याय, छन्द और पुराणो का वह पडित था। पडितों के अनुरोध पर उसने यह काव्य लिखना आरभ किया था।

यशोवर्मा के गुणों का वर्णन करते हुए कवि ने ससार की असारता, दुर्जन, सज्जन, और स्वाधीन सुख आदि का वर्णन किया है। देखिये—

पेच्छह विवरीयमिम बहुया मइरा मएइ ण हु थोवा।
लच्छी उण थोवा जह मएइ ण तहा इर बहुया॥

—देखो, कितनी विपरीत बात है, बहुत मदिरा का पान करने से नशा चढता है, थोडी का करने से नही। लेकिन थोडी-सी लक्ष्मी जितना मनुष्य को मदमत्त बना देती है, उतना अधिक लक्ष्मी नहीं बनाती।

एक दूसरी व्यग्योक्ति देखिये—

पत्थिवघरेसु गुणिणोवि णाम जइ केवि सावयास व्व।
जणसामण्ण त ताण किंपि अण्ण चिय निमित्त॥

—यदि कोई गुणी व्यक्ति राजगृहों मे पहुँच जाता है तो इसका कारण यही हो सकता है कि जनसाधारण की वहाँ तक पहुँच है, अथवा इसमे अन्य कोई कारण हो सकता है, उसके गुण तो इसमें कदापि कारण नहीं हैं।

एक नीति का पद्य सुनिये—

तुगावलोयणे होइ विम्हओ णीयदसणे सका।
जह पेच्छताण गिरिं जहेय अवड णियताण॥

—ऊँचे आदमी को देखकर विस्मय होता है और नीच को देखकर शका। उदाहरण के लिये, किसी पहाड को देखकर विस्मय और कुएँ को देखकर शङ्का होती है।

यश के स्थायित्व के सम्बन्ध मे कवि ने लिखा है—

कालवसा णासमुवागयस्स सप्पुरिसजससरीरस्स।
अट्ठिलवायत्ति कहिंपि विरलविरला गुणग्गारा॥

—काल के वश से नाश को प्राप्त सत्पुरुष का यश मृत पुरुष की हड्डियों की भाँति कभी कभी स्मरण किया जाता है।

वैराग्य की महत्ता का प्रदर्शन करते हुए कवि ने कहा है—

सोच्चेय कि ण राओ मोत्तूण बहुच्छलाइ गेहाइं।
पुरिसा रमंति बद्धुज्झरेसु ज काणणंतेसु॥

—क्या यह राग नहीं कहा जायेगा कि अनेक छल-छिद्रों से पूर्ण गृहवास का त्याग कर पुरुष झरनों से शोभित काननो मे रमण करते है?

हृदय को समझाते हुए वह लिखता है—

हियय! कहि पि णिसम्भसु कित्तियमासाहओ किलिम्मिहिसि।
दीणो वि वर एक्कस्स ण उण सयलाए पुहवीए॥

—हे हृदय! कहीं एक स्थान पर विश्राम करो, निराश होकर कबतक भटकते फिरोगे? समस्त पृथ्वीमण्डल की अपेक्षा किसी एक का दीन बनकर रहना श्रेयस्कर है।

अन्त मे कवि ने सूर्यास्त, सध्या, चन्द्र, कामियो की चर्चा, शयनगमन के लिये औत्सुक्य, प्रियतमा का समागम, परिरंभ और प्रभात आदि का वर्णन कर यशोवर्मा की स्तुति की है।

महुमहविअअ (मधुमथविजय)

वाक्पतिराज की दूसरी रचना है मधुमथविजय जिसका वाक्पतिराज ने अपने गउडवहो मे उल्लेख किया है। दुर्भाग्य से यह कृति अब नष्ट हो गई है। इसका उल्लेख अभिनवगुप्त (ध्वन्यालोक १५२ १५ की टीका में) ने किया है, इससे इस ग्रथ की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है। हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन की अलङ्कारचूडामणिवृत्ति (१ २४ पृ० ८१) मे इस ग्रन्थ की निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है—

लीलादाढग्गुवूढसयलमहिमडलस्स च्चिअ अज्ज।
कीस मुणालाहरण पि तुज्झ गरुआइ अगम्मि॥

हरिविजय

हरिविजय के रचयिता सर्वसेन हैं। यह कृति भी अनुपलब्ध है। हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन की अलङ्कारचूडामणि (पृष्ठ १७१

और ४६१) और विवेक (पृष्ठ ४५८, ४५९) नाम की टीकाओं मे रावणविजय, सेतुबध तथा शिशुपालवध और किरातार्जुनीय आदि के साथ इसका उल्लेख किया है। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक (उद्योत ३, पृ० १२७) और भोज के सरस्वतीकठाभरण मे भी हरिविजय का उल्लेख मिलता है।

रावणविजय

हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन मे इसका उल्लेख किया है। अलकारचूडामणि (पृ० ४५६) मे इसका एक पद्य उद्धृत है।

विसमबाणलीला

विषमबाणलीला के कर्ता आनन्दवर्धन हैं। उन्होंने अपने ध्वन्यालोक (उद्योत २, पृ० १११, उद्योत ४, पृ० २४१) मे इस कृति का उल्लेख करते हुए विषमबाणलीला की एक प्राकृत गाथा उद्धृत की है। आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन की अलकार चूडामणि (१-२४, पृ० ८१) मे मधुमथविजय के साथ विषमबाणलीला का उल्लेख किया है। इस कृति की एक प्राकृत गाथा भी यहाँ (पृ० ७४) उद्धृत है—

त ताण सिरिसहोअररयणा हरणम्मि हिअयमिक्करस।
बिंबाहरे पिआण निवेसिय कुसुमबाणेण ॥

लीलावई (लीलावती)

भूषणभट्ट के सुपुत्र कोऊहल नामक ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के आग्रह पर 'मरहट्ठ देसिभासा' मे लीलावई नामक काव्य की रचना की है।[1] इस कथा मे देवलोक और मानवलोक के पात्र होने के कारण इसे दिव्य मानुषी कथा कहा गया है। जैन प्राकृत कथा ग्रन्थों की भाँति यह कथा-ग्रन्थ धार्मिक अथवा उपदेशात्मक नहीं है। इसमे प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और

1 डाक्टर ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई में १९४९ में प्रकाशित।

सिंहलदेश की राजकुमारी लीलावती की प्रेमकथा का वर्णन है। गाथाओं की सख्या १८०० है, ये गाथाएँ प्राय अनुष्टुप् छन्द मे लिखी गई है, कुछ वाक्य गद्य मे भी पाये जाते है। ग्रन्थ रचना का काल ईसवी सन् की लगभग ८वीं शताब्दी माना गया है। ग्रन्थ की शैली अलकृत और साहित्यिक है, भाषा प्रवाहपूर्ण है। अनेक स्थानों पर प्राकृतिक दृश्यो के सुन्दर चित्रण है। मलय देश, केरला आदि का वर्णन है। राष्ट्रकूट और सोलकियो का नाम भी आया है। वर्णन शैली से प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार कवि कालिदास, सुबन्धु और बाणभट्ट आदि की रचनाओ से परिचित थे। इस ग्रन्थ पर लीलावती कथा वृत्ति नामक सस्कृत टीका है जिसके कर्त्ता का नाम अज्ञात है। अनुमान किया जाता है ये टीकाकार गुजरात के रहनेवाले श्वेताम्बर जैन थे जो ईसवी सन् ११७२ और १४०४ के बीच विद्यमान थे।

कुवलयावली राजा विपुलाशय और अप्सरा रभा से उत्पन्न कन्या थी। वह गन्धर्वकुमार चित्रागद के प्रेमपाश मे पड़ गई और दोनों ने गधर्वविधि से विवाह कर लिया। कुवलयावली के पिता को जब इस बात का पता लगा तो उसने क्रुद्ध होकर चित्रागद को शाप दिया जिससे वह भीषणानन नाम का राक्षस बन गया। कुवलयावली ने निराश होकर आत्महत्या करना चाहा, लेकिन रभा ने उपस्थित होकर उसे धीरज बँधाया और उसे यक्षराज नलकूबर के सुपुर्द कर दिया।

विद्याधर हस के वसतश्री और शरदश्री नाम की दो कन्यायें थीं। वसतश्री का विवाह नलकुबेर के साथ हुआ था। महानुमती इनकी पुत्री थी। महानुमती और कुवलयावली दोनो मे बडी प्रीति थी। एक बार वे दोनों विमान मे बैठकर मलय पर्वत पर गईं। वहाँ सिद्धकुमारियों के साथ झूला झूलते हुए महानुमति और सिद्धकुमार माधवानिल का परस्पर प्रेम हो गया। घर लौटने पर महानुमति अपने प्रिय के विरह से व्याकुल रहने लग ' बाद में पता चला कि माधवानिल को कोई शत्रु

भगाकर पाताललोक मे ले गया है। महानुमति और उसकी सखी कुवलयावली मनोरथ सिद्धि के लिये गोदावरी के तट पर पहुँच कर भवानी की उपासना करने लगीं।

लीलावती सिहलराज शिलामेघ और वसतश्री की बहन शारदश्री की पुत्री थी। एक बार वह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन (हाल) का चित्र देखकर मोहित हो गई, वह उसे केवल स्वप्न मे देखा करती। अपने माता पिता की आज्ञा लेकर लीलावती अपने प्रिय की खोज मे चली। अपने दल के साथ वह गोदावरी तट पर पहुँची और यहाँ अपनी मौसी की कन्या महानुमती से मिल गई। तीनो विरहिणियाँ एक साथ रहने लगीं।

इधर अपने राज्य का विस्तार करने की इच्छा से राजा सातवाहन ने सिंहलराज पर आक्रमण कर दिया। राजा के सेनापति विजयानद ने सलाह दी कि सिहलराज से मैत्री रखना ही उचित होगा। सातवाहन ने विजयानद को अपना दूत बनाकर भेजा। वह रामेश्वर होता हुआ सिहल के लिये रवाना हुआ। लेकिन मार्ग मे तूफान आने के कारण नाव टूट जाने से गोदावरी के तट पर ही रुक जाना पडा। यहाँ पर उसे एक नग्न पाशुपत के दर्शन हुए। पता लगा कि सिंहलराज की पुत्री लीलावती अपनी सखियों के साथ यहीं पर निवास करती है। विजयानद ने सातवाहन के पास पहुँचकर उसे सारा वृत्तान्त सुनाया। सातवाहन ने लीलावती के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन लीलावती ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि जब तक महानुमती का उसके पति के साथ पुनर्मिलन न होगा तब तक वह विवाह न करेगी। यह सुनकर राजा सातवाहन अपने गुरु नागार्जुन के साथ पाताललोक मे पहुँचा और उसने माधवानिल का उद्धार किया। अपनी राजधानी मे लौटकर उसने भीषणानन राक्षस पर आक्रमण किया जिससे चोट खाते ही वह एक सुदर राजकुमार बन गया। अब राजा सातवाहन, गधर्वकुमार चित्रागद और माधवानिल तीनों एक स्थान पर मिले। चित्रागद और कुवलयावली तथा माधवानिल और महानुमती का विवाह

हो गया। राजा सातवाहन और लीलावती का विवाह भी बडी सजधज के साथ सम्पन्न हुआ।

कुमारियो के सबध मे कहा है—

सव्वाउ च्चिय कुमरीओ कुलहरे जा ण हुति तरुणीओ।
ताव च्चिय सलहिज्जति ण उण णव जोव्वणारम्भे॥

—कुलघर की समस्त कुमारियाँ तभी तक अच्छी लगती है जब तक कि वे तरुण होकर यौवन अवस्था को प्राप्त नहीं करती। फिर कहा गया है—

ण उणो धूयाए सम चित्त क्खणय जणस्स जिय लोए।
हियइच्छिओ वरो तिहुयणे वि दुलहो कुमारीण॥

—इस ससार मे लोगों को अपनी कन्या जैसी और कोई चीज मन को कष्टदायी नहीं होती। कन्या के लिये मनचाहा वर तीन लोकों मे भी मिलना दुर्लभ है।

दैव के सबंध मे उक्ति देखिये—

तह वि हु मा तम्म तुम मा झुरसु मा विमुच अत्ताण।
को देइ हरइ को वा सुहासुह जस्स ज विहिय॥

—फिर भी किसी हालत मे सतप्त नही होना चाहिये, खेद नहीं करना चाहिये, अपने आपका परित्याग नही कर देना चाहिये। क्योंकि जो सुख दुख जिसके लिये विहित है उसे न कोई दे सकता है और न छीन ही सकता है।

कुमारवालचरिय (कुमारपालचरित)

कुमारपालचरित को द्व्याश्रयकाव्य भी कहा जाता है।[1] इसके कर्त्ता कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र है जिन्होंने व्याकरण, कोष, अलकार और छन्द आदि विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। जिस-प्रकार अष्टाध्यायी का ज्ञान कराने के लिए भट्टि कवि ने भट्टिकाव्य की रचना की है, उसी प्रकार हेमचन्द्र आचार्य ने (जन्म सन्

१ डाक्टर पी० एल० द्वारा सम्पादित, भांडारकार ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, पूना से १९३६ में प्रकाशित।

१०८८) सिद्धहेमव्याकरण के नियमो को समझाने के लिये कुमारपालचरित की रचना की है। हेमचन्द्र का यह महाकाव्य दो विभागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे सिद्धहेम के सात अध्यायों मे उल्लिखित सस्कृत व्याकरण के नियम समझाते हुए सोलकी वश के मूलराज से लगाकर जैनधर्म के उपासक कुमारपाल तक के इतिहास का २० सर्गों में वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् द्वितीय भाग मे आठवे अध्याय मे उल्लिखित प्राकृतव्याकरण के नियमों को स्पष्ट करते हुए राजा कुमारपाल के युद्ध आदि का आठ सर्गों मे वर्णन है। इस प्रकार इस काव्य से दोहरे उद्देश्य की सिद्धि होती है, एक ओर कुमारपाल के चरित का वर्णन हो जाता है, दूसरी ओर सस्कृत और प्राकृतव्याकरण के नियम समझ मे आ जाते है। अन्तिम दो सर्गों की रचना शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची और अपभ्रश भाषा मे है। सस्कृत द्व्याश्रयकाव्य के टीकाकार अभयतिलकगणि और प्राकृत द्व्याश्रयकाव्य के टीकाकार पूर्णकलशगणि है। प्राकृत द्व्याश्रय-काव्य (कुमारपालचरित) का यहाँ सक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

प्रथम सर्ग मे अणहिल्लनगर का वर्णन है। यहाँ राजा कुमार-पाल राज्य करता था, उसने अपनी भुजाओं के बल से वसुन्धरा को जीता था, वह न्यायपूर्वक राज्य चलाता था। प्रात काल के समय महाराष्ट्र आदि देश से आये हुए स्तुतिपाठक अपनी सूक्तियों द्वारा उसे जगाते थे। शयन से उठकर राजा प्रात कृत्य करता, द्विज लोग उसे आशीर्वाद देते, वह तिलक लगाता, धृष्ट और अधृष्ट लोगों की विज्ञप्ति सुनता, मातृगृह मे प्रवेश करता, लक्ष्मी की पूजा करता, तत्पश्चात् व्यायामशाला मे जाता। दूसरे सर्ग मे व्यायाम के प्रकार बताये गये हैं। वह हाथी पर सवार होकर जिनमन्दिर मे दर्शन के लिये जाता, वहाँ जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करने के पश्चात् जिनप्रतिमा का स्तवन करता, फिर सङ्गीत का कार्यक्रम होता। उसके बाद अपने अश्व पर आरूढ होकर वह धवलगृह को लौट जाता। तीसरे सर्ग में राजा उद्यान

मे क्रीडा के लिए जाता। इस प्रसङ्ग पर वसन्त ऋतु का विस्तार से वर्णन किया गया है। यहाँ वाणारसी के ठगों का उल्लेख है। स्त्री पुरुषो की विविध क्रीडाओं का उल्लेख है—

आसणठिआइ घरिणीइ गहवई झपिऊण अच्छीइ।
हसिरो मोत्तु सक चुबिअ अन्त सढो मुइओ॥

—आसन पर बैठी हुई अपनी गृहिणी की आँखें बन्द करके कोई शठ पुरुप निश्शक भाव से किसी अन्य स्त्री का चुम्बन लेकर प्रसन्न हो रहा है।

मा सोउआण अलिअ कुप्प मईआ सि तुम्हकेरो ह।
इअ केण वि अणुणीआ णिअयपिआ पाणिणी अज्जा॥

—(सखी द्वारा कहे हुए) मिथ्या वचन को सुनकर तू क्रुद्ध मत हो, तू मेरी है, मैं तेरा हूँ, इस प्रकार किसी ने पाणिनीय व्याकरण के रूपों द्वारा अपनी विचक्षण प्रिया को प्रसन्न किया।

चौथे सर्ग मे ग्रीष्म ऋतु मे जलक्रीडा का वर्णन है। पाँचवें सर्ग मे वर्षा, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं का वर्णन है। पद्मावती देवी के पूजन की तैयारी की जा रही है। इस प्रसग पर लेखक ने युष्मद् शब्द के एक वचन और बहुवचन के रूपों के उदाहरण प्रस्तुत किये है—

त तु तुर तुह तुम आरोह नवाइ नीवकुसुमाइ।
भे तुब्भे तुम्होय्हे तुय्हे तुज्झासण देह॥

—हे सखि। तू, तू, तू, तू और तू (त, तु, तुवं, तुह, तुम— ये युष्मद् शब्द के प्रथमा के एक वचन के रूप है)—तुम सब नूतन नीप के पुष्प लाओ। और हे सखियो! तुम, तुम, तुम, तुम और तुम (भे, तुब्भे, तुम्होय्हे, तुय्हे ओर तुज्झ ये युष्मद् शब्द के बहुवचन के रूप हे)—तुम सब आसन लाओ।

उद्यान से लौटकर राजा कुमारपाल अपने महल मे आ जाते है। वे सन्ध्याकर्म करते है। सन्ध्या के समय विद्याध्ययन करनेवाले विद्यार्थी निर्भय होकर क्रीडा करने लगते है। चकवा और चकवी का विरह हो जाता है।

छठे सर्ग में चन्द्रोदय का वर्णन है। कुमारपाल मण्डपिका मे बैठते है, पुरोहित मन्त्रपाठ करता है, बाजे बजते है, वारवनितायें थाली मे दीपक रखकर उपस्थित होती है। राजा के समक्ष श्रेष्ठी, सार्थवाह आदि महाजन आसन ग्रहण करते हैं, राजदूत कुछ दूरी पर बैठते है। तत्पश्चात् साधिविग्रहिक राजा के बल वीर्य का यशोगान करता हुआ विज्ञप्तिपाठ करता है—

'हे राजन्! आपके योद्धाओं ने कोंकण देश मे पहुँचकर मल्लिकार्जुन नामक कोकणाधीश की सेना के साथ युद्ध किया और इस युद्ध मे मल्लिकार्जुन मारा गया। फिर आपने दक्षिण दिशा की दिग्विजय की, पश्चिम मे सिन्धुदेश मे आपकी आज्ञा शिरोधार्य की गई, यवनाधीश ने आपके भय से ताबूल का सेवन करना त्याग दिया, तथा वाराणसी, मगध, गौड, कान्यकुब्ज, चेदि, मथुरा और दिल्ली आदि नरेश आपके वशवर्ती हो गये।' विज्ञप्ति सुनने के पश्चात् राजा कुमारपाल शयन करने चले जाते है।

सातवें सर्ग मे सोकर उठने के पश्चात् राजा परमार्थ की चिन्ता करता है। यहाँ जीव के ससारपरिभ्रमण, स्त्रीसगत्याग, स्थूलभद्र, वज्रर्षि, गौतमस्वामी, अभयकुमार आदि मुनि-महात्माओं की प्रशसा, जिनवचन के हृदयगम करने से मोक्ष की प्राप्ति, पचपरमेष्ठियो को नमस्कार, श्रुतदेवी की स्तुति आदि का वर्णन है। श्रुतदेवी राजा कुमारपाल को प्रत्यक्ष दर्शन देती है और राजा उससे उपदेश देने की प्रार्थना करता है। स्त्रियों के सम्बन्ध मे उक्ति देखिये—

मायाइ उद्धुमाया अहिरेमिअ तुच्छयाइ अगुमिआ।
चवलत्त पूरिआओ को तुवरइ दट्ठुमित्थीओ॥

—माया से पूर्ण, पूरी तुच्छता से भरी हुई और चपलता से पूरित स्त्रियों को देखने की कौन इच्छा करेगा? (यहाँ पूर् धातु के उद्धुमाया, अहिरेमअ, अगुमिआ और पूरिआओ नामक आदेशों के उदाहरण दिये गये है)।

श्रुतदेवी के ध्यान का महत्त्व—

खम्भइ कुबोहसेलो खणिज्जए मूलओ वि पाव तरू।
हम्मइ कली हणिज्जइ कम्म सुअ देवि झाणेण॥

—श्रुतदेवी के ध्यान से कुबोध रूपी शैल विदीर्ण हो जाता है, पापरूपी वृक्ष की जड उन्मूलित हो जाती है, कलिकाल नष्ट हो जाता है और कर्मों का नाश हो जाता है। (यहाँ खम्भइ, खणिज्जइ, हम्मइ और हणिज्जइ रूपों के उदाहरण दिये है)।

सातवे सर्ग की ६३ वीं गाथा तक प्राकृत भाषा के उदाहरण समाप्त हो जाते है। उसके बाद शोरसेनी के उदाहरण चलते है—

तायध समग्ग पुहवि तायह सग्ग पि भोदु तुह भद्द।
होदु जयस्सोत्तसो तुह कित्तीए अपुरवाए॥

—हे नरेन्द्र! तू समग्र पृथ्वी का पालन कर, स्वर्ग की रक्षा कर, तेरा कल्याण हो, तेरी अपूर्व कीर्त्ति से जगत् का उत्कर्ष हो।

आठवे सर्ग मे श्रुतदेवी के उपदेश का वर्णन है। इसमे मागधी, पैशाची, चूलिकापैशाची और अपभ्रश के उदाहरण प्रस्तुत है।

मागधी का उदाहरण—

पुञ्ञे निशाद पञ्ञ सुपञ्ञले यदि-पधेण बञ्ञन्ते।
शयल यय वश्चलत्त गश्चन्ते लहदि पलमपद॥

—पुण्यात्मा, कुशाग्र प्रज्ञावाला, सुप्राञ्जल, यतिमार्ग का अनुसरण करता हुआ, सकल जग की वत्सलता का आचरण करता हुआ परमपद को प्राप्त करता है।

पैशाची का उदाहरण—

यति अरिह परममतो पढिय्यते कीरते न जीवबधो।
यातिस तातिस जाती ततो जनो निव्वुति याति॥

—यदि कोई अर्हत के परम मन्त्र का पाठ करता है, जीव-वध नहीं करता, तो ऐसी वैसी जाति का होता हुआ भी वह निर्वृति को प्राप्त होता है।

चूलिकापैशाची का उदाहरण—

झच्छर-डमरूक भेरी ढक्का जीमूत घोसा वि ।
बह्मनियोजितमप्प जस्स न दोलिन्ति सो धञ्ञो ।।

—झच्छर (अडाउज), डमरू, भेरी और पटह इनका मेघ के समान गम्भीर घोष भी जिसकी ब्रह्म नियोजित आत्मा को दोलायमान नहीं करता, वह धन्य है ।

अपभ्रंश का उदाहरण—

उब्भियबाह असारउ सव्वु वि ।
म भमि कु तित्थिअ-पट्ठे मुहिआ
परिहरि तृणु जिम्वँ सव्वु वि भव सुहु
पुत्ता तुह मइ एउ कहिआ ।।

—हे पुत्र ! मैंने अपनी भुजायें ऊपर उठाकर तुझ से कहा है कि सब कुछ असार है, तू व्यर्थ ही कुतीर्थों के पीछे मत फिर, समस्त ससार के सुख को तृण के समान त्याग दे ।

सत्य की महिमा प्रतिपादन—

त बोल्लिअइ जु सच्चु पर इमु धम्मक्खरु जाणि ।
एहो परमत्था एहु सिवु एह सुह रयणहँ खाणि ।।

—जो सत्य है, वह परम है, उसे धर्म का रहस्य जान, यही परमार्थ है, यही शिव है और यही रत्नो की खान है ।

अशुभ भावों के त्याग का उपदेश—

काय कुडल्ली निरु अथिर जीवियडउ चलु एहु ।
ए जाणिवि भव दोसडा असुहउ भावु चएहु ।।

—कायरूपी कुटीर नितात अस्थिर है, जीवन चञ्चल है, इस प्रकार ससार के दोष जानकर अशुभ भावो का त्याग कर ।

सिरिचिंधकव्व (श्रीचिह्नकाव्य)

जैसे भट्टिकवि ने अष्टाध्यायी के सूत्रों का ज्ञान कराने के लिये भट्टिकाव्य (रावणवध), और आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्धहेम के सूत्रों का ज्ञान कराने के लिये प्राकृतद्व्याश्रय काव्य की रचना की है, उसी प्रकार वररुचि के प्राकृतप्रकाश और त्रिविक्रम के

प्राकृतव्याकरण के नियमों को स्पष्ट करने के लिये श्रीचिह्नकाव्य अथवा गोविन्दाभिषेक की रचना की गई है।[1] इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्रीशब्द का प्रयोग हुआ है, इसलिये इसे श्रीचिह्न कहा गया है। यह काव्य १२ सर्गों मे है, इसके कर्ता का नाम कृष्णलीलाशुक है जो कवि सर्वभौम नाम से प्रसिद्ध थे और कोदण्डमगल या विल्वमगल नाम से भी कहे जाते थे। कृष्णलीलाशुक केरल के निवासी थे, इनका समय ईसवी सन् की १३वी शताब्दी माना जाता है। कृष्णलीलाशुक ने श्रीचिह्नकाव्य के केवल ८ सर्गों की रचना की है, शेप चार सर्ग श्रीचिह्नकाव्य के टीकाकार दुर्गाप्रसाद यति ने लिखे है। दुर्गाप्रसाद यति की सस्कृत टीका विद्वत्तापूर्ण है, और बिना टीका के काव्य का अर्थ समझ मे आना कठिन है। प्राकृतव्याकरण के सूत्रों का अनुकरण करने के कारण इस काव्य मे शुष्कता अधिक आ गई है, जिससे काव्य सौष्ठव कम हो गया है। जनसपर्क से दूर हो जाने पर प्राकृत भाषाये जब अन्तिम श्वास ले रही थीं तो उन्हे प्राकृत व्याकरणो की सहायता से कृत्रिमता प्रदान कर किस प्रकार जीवित रक्खा जा रहा था, उसका यह काव्य एक उदाहरण है।

इस काव्य मे कृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है। निम्नलिखित गाथाओं मे प्राकृतप्रकाश के उदाहरण दिये है—

ईसि पिक्क फल-पाअवे महा-
वेडिसे विअण पल्लवे वणे।
सो जणो असुइणो अ-पावइ-
गालअम्मि लसिओ भिअगिओ ॥ १६ ॥

ईसपक्क फलए इस-त्थली
वेडसे वअण-पल्लवे ठिओ।

---

1 डाक्टर ए० एन० उपाध्ये ने इस काव्य के प्रथम सर्ग का संपादन भारतीय विद्या ३, १ में किया है।

सो सणो असिविणो अ-पावअ-
गालए महिवसो मुअगओ ।। १७ ।।

वररुचि के प्राकृतप्रकाश (१ ३) मे ईषत्, पक्व, स्वप्न, वेतस, व्यजन, मृदङ्ग और अगार शब्दो के क्रमश ईसि ईस, पिक्क पक्क, सवण सिविण, वेअस-वेड्स, वअण विअण, मुअग मुइग और अगाल इगाल प्राकृत रूप समझाये है। इनमे ईसि, पिक्क, वेडिस (प्राकृतप्रकाश मे वड्स रूप है), विअण, असुइण (प्राकृतप्रकाश मे असवण), इगाल और मिअग (प्राकृतप्रकाश मे मुइग), तथा ईस, पक्क, वेडस (प्राकृतप्रकाश मे वेअस), वअण, असिविण, अगाल और मुअग रूपो के उदाहरण प्रस्तुत किये है।

सोरिचरित (शौरिचरित)

दुर्भाग्य से शौरिचरित्र की पूर्ण प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।[1] मद्रास की प्रति में इसके कुल चार आश्वास प्राप्त हुए है। शौरिचरित के कर्ता का नाम श्रीकण्ठ है, ये मलाबार मे कोलत्तुनाड के राजा केरलवर्मन् की राजसभा के एक बहुश्रुत पण्डित थे। ईसवी सन् १७०० मे उन्होंने शौरिचरित की यमक काव्य मे रचना की है। कुछ विद्वानों के अनुसार श्रीकण्ठ का समय ईसवी सन् की १५वी शताब्दी का प्रथमार्ध माना गया है। रघूदय श्रीकण्ठ की दूसरी रचना है जो सस्कृत मे है और यह भी यमक काव्य मे लिखी गई है। श्रीकण्ठ के शिष्य रुद्रमिश्र ने शौरिचरित और रघूदय दोनों पर विद्वत्तापूर्ण टीकाये लिखी है। शौरिचरित की टीका मे वररुचि और त्रिविक्रम के प्राकृतव्याकरण के आधार से शब्दों को सिद्ध किया गया है।

शौरिचरित मे कृष्ण के चरित का चित्रण है। काव्य चातुर्य इसमे जगह जगह दिखाई पडता है, प्रत्येक गाथा मे

---

1 डा० ए० एन० उपाध्ये ने जर्नल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव बम्बई, जिल्द १२, १९४३—४४ में इस काव्य के प्रथम आश्वास को सम्पादित किया है।

यमक अलकार का प्रयोग हुआ है। सस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। ग्रन्थ दुरूह है और बिना टीका की सहायता के समझना कठिन है। निम्नलिखित उद्धरणों से इस ग्रन्थ के रचनावैशिष्ट्य का पता लग सकता है—

रअ रुइरग ताण घेत्तूण व अगणम्मि रगताण।
चुबइ माआ महिआ बल कण्हाण मुहाइ माआ महिआ॥

—धूलि से धूसरित अगवाले आगन मे रेंगते हुए बलदेव और कृष्ण को उठाकर पूजनीय माता उन्हे चूबने लगी, वह माया के वश मे हो गई।

कृष्ण की क्रीडा का चित्रण देखिये—

जो णिच्चो राअतो रमावई सो वि गव्व चोराअतो।
वअ बहु बद्धो सतो सद्दो व्व ठिइ-च्चुओ अबद्धो सतो॥

—जो (कृष्ण) नित्य शोभा को प्राप्त होते हुए, गायो के दूध की चोरी करते हुए, व्रजवनिता यशोदा के द्वारा (ओखली से) बॉध दिये गये, फिर भी वे शान्त रहे, मर्यादा से च्युत शब्द की भॉति वे अबद्ध ही रहे।

भृंगसंदेश

शौरिचरित की भॉति दुर्भाग्य से भृगसदेश की भी पूर्ण प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी।[1] इस ग्रन्थ की एक अपूर्ण प्रति त्रिवेन्द्रम के पुस्तकालय से मिली है। ग्रन्थकर्ता की भॉति ग्रन्थ के टीकाकार का नाम भी अज्ञात है। टीकाकार ने अपनी टीका मे मेघदूत, शाकुन्तल, कर्पूरमञ्जरी तथा वररुचि और त्रिविक्रम के प्राकृतव्याकरण से सूत्र उद्धृत किये है। प्राकृत का यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर मदाक्रान्ता छन्द मे लिखा गया है—

आलाव से अह सुमहुर कूइअ कोइलाण।
अग पाओ उण किसलअ आणण अबुजम्म

---

१ डाक्टर ए० एन० उपाध्ये ने इस काव्य की छह गाथायें प्रिंसिपल करमरकर कमोमरेशन वोल्यूम, पूना, १९४८ में सपादित की हैं।

गोत्त भिंग सह पिअअय तस्स माआ पहावा ।
सो कप्पतो विरह-सरिसिं त दस पत्तवतो ॥

—वह विरही उसकी माया के प्रभाव से अपनी प्रिया के समधुर आलाप को कोकिल का कूजन, उसके अग को किसलय, मुख को कमल और नेत्रों को प्रियतम भृग समझ कर उस विरह सदृश दशा को प्राप्त हुआ।

साहित्यदर्पण मे हससदेश और कुवलायश्वचरित नाम के प्राकृत काव्यों का उल्लेख है। ये काव्य मिलते नहीं है।

कसवहो (कंसवध)

कसवहो श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखा गया है। इस खड-काव्य मे चार सर्गों मे २३३ पद्यों मे कसवध का वर्णन है। सस्कृत के अनेक छन्द और अलकारों का इस काव्य मे प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा महाराष्ट्री है, कहीं शौरसेनी के रूप भी मिल जाते है। प्राकृत के अन्य प्राचीन ग्रन्थों की भाँति किसी प्रान्त की जनसाधारण की बोली के आधार से यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया, बल्कि वररुचि आदि के प्राकृत व्याकरणों का अध्ययन करके इसकी रचना की गई है। इसलिये इसकी भाषा को शुद्ध साहित्यिक प्राकृत कहना ठीक होगा। कसवहो के कर्त्ता रामपाणिवाद विष्णु के भक्त थे, वे केरलदेश के निवासी थे। इनकी रचनाये, सस्कृत, मलयालम और प्राकृत इन तीनों भाषाओं मे मिलती हैं। सस्कृत मे इन्होने नाटक, काव्य और स्तोत्रों की रचना की है। प्राकृत में प्राकृतवृत्ति (वररुचि के प्राकृत-प्रकाश की टीका), उसाणिरूद्ध और कसवहो की रचना की है। इनकी शैली सस्कृत से प्रभावित है, विशेषकर माघ के शिशुपाल वध का प्रभाव इनकी रचना पर पडा है। पाणिवाद का समय ईसवी सन् १७०७ से १७७५ तक माना गया है।[१]

१ देखिये कसवहो की भूमिका। यह ग्रन्थ डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सपादित सन् १९४० में हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार कार्यालय, बम्बई से प्रकाशित हुआ है।

पहले सर्ग मे अक्रूर गोकुल पहुँच कर कृष्ण और बलराम को कस का सन्देश देता है कि धनुष उत्सव के बहाने कस ने उन दोनों को मथुरा आमन्त्रित किया है। तीनो रथ पर सवार होकर मथुरा के लिये प्रस्थान करते है। अक्रूर कृष्ण के वियोग से दुखी गोपियो को उपदेश देते है। दूसरे सर्ग मे कृष्ण और बलराम मथुरा पहुँच जाते है, कोदडशाला मे पहुँचकर कृष्ण बात की बात मे धनुष तोड देते है। मथुरा नगरी का यहाँ सरस वर्णन है जिसमे कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त आदि का प्रयोग किया है—

इह कचण गेह कति लित्ते।
गअणो बाल दिणेसमोहमोहा ॥
विहडेइ ण दिग्घिआसु दिग्घ।
रअणीअ पि रहगणाम जुग्ग ॥

—यहाँ पर आकाश सोने के बने हुए भवनो की काति से व्याप्त रहता है, इसलिये चक्रवाको के युगल उसे बालसूर्य समझ कर, दीर्घिकाओ मे, रात्रि के समय भी दीर्घकाल तक अलग नहीं होते।

मथुरा नगरी साक्षात् स्वर्ग के समान जान पड़ती है—

गधव्वा ण किमेत्थ सति ण हु किं विज्जति विज्जाहरा।
किवा चारू ण चारणाण अ कुल जिण्णाति णो किंणरा ॥
किं णोअ सुमणाण धाम किमहो णाहो महिंदो ण से।
सग्गो च्चेव वसूण ठाणमिणमो रम्म सुधम्मुज्जल ॥

—क्या यहाँ गन्धर्व (नायक) नहीं है ? क्या यहाँ विद्याधर (विद्या के ज्ञाता) नहीं हैं ? क्या यहाँ सुन्दर चारणों (स्तुति पाठकों) का समूह नहीं है ? क्या यहाँ विजयी किंनर (विविध प्रकार के मनुष्य) नहीं है ? क्या यहाँ सुमनों (देव, सज्जन पुरुप) का घर नहीं है ? क्या यहाँ महेन्द्र (इन्द्र, राजा) नहीं रहता ? वसु (देव, धन) का यह स्थान सुधर्म (सुधर्मा, श्रेष्ठ धर्म) से रम्य है, जो प्रत्यक्ष स्वर्ग ही प्रतीत होता है।

तीसरे सर्ग मे बदिजन प्रात काल उपस्थित होकर सोते हुए कृष्ण और बलराम को उठाते है। वे प्रात काल उठकर नगरी के द्वार पर पहुँचते है। चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लों से उनका युद्ध होता है।

कड्ढता कर जुअलेण जाणु जघा।
सघट्ट क्खुडिअ विलित्त रत्त-गत्ता ॥
उद्दामब्भमण धुणत-भूमि-अक्का ।
विक्कति विविहमिमा समारहति ॥

—(ये युद्ध करनेवाले) दोनों हाथो से (प्रतिमल्ल के) जानु और जङ्घाओं को खींचते है, सघर्ष के कारण युद्ध मे उनके शरीर टूट गये है और रक्त से लिप्त हो गये है, और जिनके उद्दाम भ्रमण से भूमिचक्र कॉप उठा है, इस प्रकार वे विविध प्रकार का विक्रम आरभ कर रहे है।

कस कृष्ण और बलराम को जेल मे डाल देना चाहता है, लेकिन वह उनके हाथ से मारा जाता है। इस पर देव जय जयकार करते है और स्वर्ग से पुष्पों की वर्षा होती है।

अन्तिम सर्ग मे, कस के मरने से लोगों के मन को आनद होता है, कुल की बालिकायें अब स्वतन्त्रता से विचरण कर सकती है और युवकजन यथेच्छरूप से क्रीडा कर सकते है। उग्रसेन राजा के पद पर आसीन होता है और कृष्ण अपने माता पिता को कारागार से मुक्त करते है। इस प्रसङ्ग पर कृष्ण की बाललीलाओं का उल्लेख किया गया है। प्राकृत के दुस्तर समुद्र को पार करने के लिये अपने काव्य को कवि ने समुद्र का तट बताया है।

उसाणिरुद्ध

उसाणिरुद्ध के कर्त्ता भी रामपाणिवाद है, कसवहो की भॉति यह भी एक खण्डकाव्य है जो चार सर्गों मे विभक्त है।[1]

---

1 डाक्टर कुनहन राजा द्वारा सम्पादित, अडियार लाइब्रेरी, मद्रास से सन् १९४३ में प्रकाशित।

उषा और अनिरुद्ध की कथा श्रीमद्भागवत से ली गई है। इस पर राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी का प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ विविध छन्द और अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है।

बाण की कन्या उषा अनिरुद्ध को स्वप्न मे देखती है। उसे प्रच्छन्नरूप से उषा के घर लाया जाता है और वह वहाँ रह कर उसके साथ क्रीडा करने लगता है। एक दिन नौकरों को पता लग जाता है, और वे इस बात की खबर राजा को देते हैं। राजा अनिरुद्ध को पकड कर जेल मे डाल देता है। उषा उसके विरह मे विलाप करती है। दूसरे सर्ग मे, जब कृष्ण को पता लगता है कि उनके पौत्र को जेल मे डाल दिया गया है तो वे बाण के साथ युद्ध करने आते है। बाण की सेना पराजित हो जाती है और बाण की सहायता करनेवाले शिव कृष्ण की स्तुति करने लगते है। तीसरे सर्ग मे बाण अपनी कन्या उषा का विवाह अनिरुद्ध से कर देता है। कृष्ण द्वारका लौट जाते है। अन्तिम सर्ग मे नगर की नारियाँ अपना काम छोड कर उषा और अनिरुद्ध को देखने के लिये जल्दी जल्दी आती है। कोई ककण के स्थान पर अगद पहन लेती है, कोई करधौनी के स्थान पर अपनी कटी में हार पहन लेती है, कोई प्रयाण करने के कारण अपनी शिथिल नीवी को हाथ से पकड कर चलती है। विविध क्रीडाओं में रत रह कर उषा और अनिरुद्ध समय यापन करते है।



नौवाँ अध्याय

संस्कृत नाटको मे प्राकृत

(ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी तक)

नाटको में प्राकृतो के रूप

प्राकृत भाषाओ का प्रथम नाटकीय प्रयोग सस्कृत नाटकों मे उपलब्ध होता है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र (१७ ३१ ४३) मे धीरोदात्त और धीरप्रशान्त नायक, राजपत्नी, गणिका और श्रोत्रिय ब्राह्मण आदि के लिये सस्कृत, तथा श्रमण, तपस्वी, भिक्षु, चक्रधर, भागवत, तापस, उन्मत्त, बाल, नीच ग्रहों से पीडित व्यक्ति, स्त्री, नीच जाति और नपुसकों के लिये प्राकृत बोलने का निर्देश किया है। यहाँ भिन्न भिन्न पात्रों के लिये भिन्न भिन्न प्राकृत भाषाये[1] बोले जाने का उल्लेख है। उदाहरण के लिये, नायिका और उसकी सखियों द्वारा शौरसेनी, विदूषक आदि द्वारा प्राच्या (पूर्वीय शौरसेनी), धूर्तों द्वारा अवन्तिजा (उज्जैनी मे बोली जाने वाली शौरसेनी) चेट, राजपुत्र और श्रेष्ठियों द्वारा अर्धमागधी[2], राजा के अन्त पुर मे रहनेवालो, सुरङ्ग खोदनेवालों, सेंध लगाने वालों, अश्वरक्षको और आपत्तिग्रस्त नायकों द्वारा मागधी, योधा, नगर रक्षक आदि और जुआरियों द्वारा दाक्षिणात्या, तथा उदीच्य

---

१. मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, बाह्लीका, और दाक्षिणात्या नाम की सात भाषायें यहाँ गिनाई हैं (१७ ४८)।

२ डाक्टर कीथ के अनुसार (द सस्कृत ड्रामा, पृ० ३३६) अश्वघोष और सम्भवत भास के कर्णभार नाटक को छोड़कर अन्यत्र इसका प्रयोग दिखाई नहीं देता।

और खसों द्वारा बाह्लीक भाषा बोली जाती थी (१७ ५०-२)।[1] विभाषाओं मे शाकारी, आभीरी, चाण्डाली, शाबरी, द्राविडी और आन्ध्री के नाम गिनाये है। इनमे पुत्कस (डोम्ब) द्वारा चाण्डाली, अङ्गारकारक (कोयला तैयार करने वाले), व्याध, काष्ठ और मन्त्र से आजीविका चलानेवालों और वनचरों द्वारा शाकारी, गज, अश्व, अजा, उष्ट्र, आदि की शालाओ मे रहनेवालों द्वारा अभीरी अथवा शाबरी, तथा वनचरो द्वारा द्राविडी भाषा बोली जाती थी[2] (१७ ५३-६)।

सस्कृत नाटकों के अध्ययन करने से पता लगता है कि इन नाटकों मे उच्च वर्ग के पुरुष, अग्रमहिषियाँ, राजमन्त्रियो की पुत्रियाँ और वेश्याएँ आदि सस्कृत तथा साधारणतया स्त्रियाँ, विदूषक, श्रेष्ठी, नौकर चाकर आदि निम्नवर्ग के लोग प्राकृत मे बातचीत करते है। नाट्यशास्त्र के पण्डितो ने जो रूपक और उपरूपक के भेद गिनाये है उनमे भाण, डिम, वीथी, तथा सट्टक, तोटक, गोष्ठी, हल्लीश, रासक, भणिका, और प्रेंखण[3] आदि लोकनाट्य के ही प्रकार है, और इन नाट्यो मे धूर्त, विट, पाखण्डी, चेट, चेटी, विट, नपुसक, भूत, प्रेत, पिशाच, विदूपक, हीन पुरुष आदि

---

१ महाराष्ट्री भाषा का यहाँ निर्देश नहीं है। अश्वघोष और भास के नाटकों में भी इस प्राकृत के रूप देखने में नहीं आते। पैशाची प्राकृत का उल्लेख दशरूपक (२ ६५) में मिलता है, नाटकों मे नहीं। बाह्लीकी प्राकृत भी नाटकों में नहीं पायी जाती।

२ मृच्छकटिक में शाकारी और चाण्डाली के साथ ढक्की विभाषा के प्रयोग भी मिलते हैं।

३ हेमचन्द्र आचार्य ने काव्यानुशासन (८ ३-४) में नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, उत्सृष्टिका, अङ्क, प्रहसन, भाण, वीथि, और सट्टक पाठ्य के, तथा डोंबिका, भाण, प्रस्थान, शिंगक, भाणिका, प्रेरण, रामाक्रीड, हल्लीसक, रासक, गोष्ठी, श्रीगदित और काव्य गेय के भेद बताये हैं। रूपक और उपरूपकों के भेदों के लिये देखिये साहित्यदर्पण (६ ३-५)।

अधिकाश पात्र वही है जो नाटकों मे प्राकृत भाषाये बोलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि प्राकृत जन-साधारण की, तथा सस्कृत पण्डित, पुरोहित और राजाओं की भाषा मानी जाती थी। स्त्रियाँ प्राय शौरसेनी मे ही बातचीत करती है (सस्कृत उनके मुँह से अच्छी नहीं लगती)।[1] अधम लोग भी शौरसेनी मे बोलते थे, तथा अत्यन्त नीच पैशाची और मागधी मे। तात्पर्य यह है कि नीच पात्र अपने-अपने देश की प्राकृत भाषाओं मे बातचीत करते थे,[2] और सस्कृत नाटकों को लोकप्रिय बनाने के लिये भिन्न भिन्न पात्रों के मुख से उन्हीं की बोलियों मे बातचीत कराना आवश्यक भी था।

प्राचीन काल मे सस्कृत और प्राकृत मे अनेक नाटक लिखे गये। सम्भव है सट्टकों की भाँति कतिपय नाटक भी पूर्णतया प्राकृत मे ही रहे हो जो सस्कृत से प्रभाव के कारण आज नष्ट हो गये, अथवा सस्कृत मे रूपान्तरित होने के कारण उनका स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रहा। आगे चलकर तो नाटको के प्राकृत अशों की सस्कृत छाया का महत्त्व इतना बढ गया कि नौवीं शताब्दी के नाटककार राजशेखर को अपनी बालरामायण के

---

१ शूद्रक ने अपने मृच्छकटिक में स्त्रियों के मुख से बोली जानेवाली सस्कृत भाषा को हास्योत्पादक बताते हुए उसकी उपमा एक गाय से दी है जिसके नथुनों में नई रस्सी डाले जाने से वह सू सू का शब्द करती है (इत्थिआ दाव सक्कअ पढन्ती दिण्णणवणस्सा वि अ गिट्टी अहिअ सुसुआअदि–तीसरा अङ्क, तीसरे श्लोक के बाद।)

२ स्त्रीणां तु प्राकृतम् प्राय शौरसेन्यधमेषु च।
पिशाचात्यन्तनीचादौ पैशाचम् मागध तथा॥

(इसके अर्थ के लिये देखिये मनमोहनघोष, कर्पूरमञ्जरी की भूमिका, पृ० ४९–५०)

यद्देश नीचपात्र यत्तद्देश तस्य भाषितम्।
कार्यतश्चोत्तमादीना कार्यो भाषाव्यतिक्रम॥

—धनजय, दशरूपक (२ ६५–६)

प्राकृत अशों को सस्कृत छाया द्वारा समझाने का प्रयत्न करना पड़ा। शनै शनै प्राकृत भाषायें भी सस्कृत की भाँति साहित्यिक बन गयीं, और जैसे कहा जा चुका है प्राकृत के व्याकरणों का अध्ययन कर कर के विद्वान् प्राकृत काव्यों की रचनाएँ करने लगे। द्रविडदेश वासी रामपाणिवाद् और रुद्रदास आदि इसके उदाहरण है जिन्होंने वररुचि और त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरणो का अध्ययन कर प्राकृत के काव्य और सट्टक आदि की रचना की।

अश्वघोष के नाटक

अश्वघोष (ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के आसपास) के नाटकों मे सर्वप्रथम प्राकृत भापाओं का प्रयोग हुआ है। इनके शारिपुत्रप्रकरण (अथवा शारद्वतीपुत्रप्रकरण) तथा अन्य दो अधूरे नाटक मध्य एशिया से मिले है।[1] शारिपुत्रप्रकरण नौ अकों में समाप्त होता है। इसमे गौतम बुद्ध द्वारा मौद्गल्यायन और शारिपुत्र को बौद्धधर्म मे दीक्षित किये जाने का वर्णन है। अधूरे नाटकों मे एक मे बुद्धि, कीर्त्ति और कृति जैसे रूपात्मक पात्रों के सम्वाद है, बुद्धि आदि पात्र सस्कृत मे वार्तालाप करते हैं। दूसरे नाटक मे मगधवती गणिका, कोमुदगन्ध विदूषक, धनजय, राजपुत्र आदि सात पात्र है। लुइडर्स के कथनानुसार इन नाटको मे दुष्ट लोग मागधी, गणिका और विदूपक शौरसेनी तथा तापस अर्धमागधी मे बोलते हैं। इन नाटकों मे प्रयुक्त प्राकृत भापायें अशोक की शिलालेखी प्राकृत से मिलती है जो उत्तरकालीन प्राकृत भाषाओं को समझने मे बहुत सहायक हैं।

भास के नाटक

अश्वघोष के पश्चात् भास (ईसवी सन् ३५० के पूर्व)

---

१ लुइडर्स द्वारा सम्पादित, १९११ में बर्लिन से प्रकाशित। ये नाटक देखने में नहीं आये।

ने अनेक नाटकों की रचना की।[1] इन नाटकों मे अविमारक और चारदत्त नाम के नाटक प्राकृत भाषा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अविमारक मे छह अङ्क है जिनमे अविमारक और उसके मामा की कन्या कुरङ्गी की प्रेम कथा का वर्णन है, अन्त मे दोनों का विवाह हो जाता है। चारुदत्त नाटक मे चार अङ्क है इनमे चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम का मार्मिक चित्रण है। भास के सभी नाटकों मे खासकर पद्यभाग मे शौरसेनी की प्रधानता है, मागधी के रूप भी यहाँ मिलते है। दूतवाक्य नाटक मे स्त्री पात्रों की भाँति प्राकृत भाषा का भी अभाव है। अविमारक मे शौरसेनी भाषा मे विदूषक की उक्ति देखिये—

अहो णअरस्स सोहासपदि। अत्थ आसादिदो भअव सुय्यो दीसइ दहिपिडपडरेसु पासादेसु अग्गापणालिन्देसु पसारिअगुलमहुरसगदो विअ। गणिआजणो णाअरिजणो अ अण्णोण्णविसेदमडिदा अत्ताण दसइदुकामा तेसु तेसु पासादेसु सविब्भम सचरति। अह तु तादिसाणि पेक्खिअ उम्मादिअमाणस्स तत्तहोदो रत्तिसहाओ होमि त्ति णअरादो णिग्गदो म्हि। सो वि दाव अम्हाअ अधण्णदाए केणवि अणत्थसचिन्तणेण अण्णादिसो विअ सवुत्तो। एव तत्तहोदो आवासगिह। अज्ज णअरापणालिन्दे सुणामि तत्तहोदो गिहादो णिग्गदा राअदारिआए धत्ती सही अत्ति। किं ग्रु खु एत्थ कय्य। अहव हत्थिहत्थचचलाणि पुरुसभग्गाणि होन्ति। अहव गच्छदु अणत्थो अम्हाअ। अवत्थासदिस राअउल पविसामि (अविमारक २)।

—इस समय नगर की शोभा कितनी सुदर है। भगवान् सूर्य अस्ताचल को पहुँच गये है जिससे दधिपिण्ड के समान

---

1 पूना ओरिएन्टल सीरीज़ में सी० आर देवधर ने भासनाटकचक्र के अन्तर्गत स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक, चारुदत्त, प्रतिमा, अभिषेकनाटक, पञ्चरात्र, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभङ्ग और बालचरित नामक १३ नाटकों का सन् १९३७ में सम्पादन किया है।

श्वेतवर्ण के प्रासाद और अग्रभाग की दूकानों के अलिन्दो (कोठों) मे मानों मधुर गुड प्रसारित हो गया है। गणिकाये तथा नगरवासी विशेषरूप से सज्जित हो अपने आप का प्रदर्शन करने की इच्छा से उन प्रासादो मे विभ्रमपूर्वक सञ्चार कर रहे है। मैं इन लोगों को इस अवस्था मे देखकर उन्मादयुक्त हो रात्रि के समय आपका सहायक बनूँगा, यह सोचकर नगर से बाहर चला आया हू। सो भी हमारे दुर्भाग्य से किसी अनर्थ की चिन्ता से कुछ और ही हो गया। यह आपका आवासघर है। आज नगर की दूकानो के अलिन्दो मे सुनता हू कि राजकुमारी की धात्री और सखी आपके घर से बाहर गई है। अब क्या किया जाये? अथवा पुरुप का भाग्य हाथी की सूँड के समान चञ्चल होता है। अथवा हमारा अनर्थ नष्ट हो जाये। अवस्था के समान राजकुल मे प्रवेश करता हूँ।

चारुदत्त (अङ्क १) मे शकार के मुख से मागधी की उक्ति सुनिये—

चिट्ठ चिट्ठ वशन्तशेणिए! चिट्ठ
किं याशि धावशि पधावशि पक्खलन्ती
शाहु प्पशीद ण मलीअशि चिट्ठ दाव।
कामेण शम्पदि हि जज्झइ मे शलील
अगालमज्झपडिदे विअ चम्मखडे॥

—ठहर ठहर वसन्तसेना! ठहर! जा। तू क्यों जा रही है, क्यों भाग रही है, क्यों गिरती-पड़ती जोर से दौड़ रही है? हे सुन्दरी! प्रसन्न हो, तुझे कोई मार नहीं रहा है, ठहर जा। मेरा शरीर काम से प्रज्वलित हो रहा है जैसे आग मे गिरा हुआ चमड़ा।

मृच्छकटिक की गिनती भी प्राचीन नाटकों मे की जाती है।[1] भास के चारुदत्त नाटक से यह प्रभावित है। मृच्छकटिक एक सामाजिक नाटक है जिसमे समाज का यथार्थवादी चित्र अङ्कित है। सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का उपयोग ही इसमे अधिक है। इसलिये प्राकृत भाषाओं के अध्ययन के लिये यह अत्यन्त उपयोगी है। सब मिलकर इसमे ३० पात्र है, इनमे स्वय विवृतिकार पृथ्वीधर के कथनानुसार सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना, उसकी माता, चेटी, कर्णपूरक, चारुदत्त की ब्राह्मणी, शोधनक और श्रेष्ठी ये ग्यारह पात्र शौरसेनी मे, वीर और चन्दनक अवन्ती मे, विदूषक प्राच्य मे, सवाहक, स्थावरक, कुभीलक, वर्धमानक, भिक्षु तथा रोहसेन मागधी मे, शकार शकारी मे, दोनों चण्डाल चाण्डाली मे, माथुर और द्यूतकर ढक्की मे तथा शकार, स्थावरक और कुभीलक आदि मागधी मे बातचीत करते है।[2]

इस नाटक मे प्रयुक्त प्राकृत भाषायें भरत के नाट्यशास्त्र मे उल्लिखित प्राकृत भाषाओं के नियमानुसार लिखी गई मालूम होती है। साधारणतया यहाँ भी शौरसेनी और मागधी भाषाओं का ही प्रयोग अधिकतर हुआ है। वसन्तसेना की शौरसेनी मे एक उक्ति देखिये—

---

१ नारायण बालकृष्ण गोडबोले द्वारा सपादित और सन् १८९६ में गवर्नमेन्ट सेण्ट्रल बुक डिपो द्वारा प्रकाशित।

२ मृच्छकटिक की विवृति में पृथ्वीधर ने प्राकृत भाषाओं के लक्षणों का प्रतिपादन किया है—

शौरसेन्यवतिजा प्राच्या एतास्तु दन्त्यसकारता। तत्रावतिजा रेफवती लोकोक्तिबहुला। प्राच्या स्वार्थिकककारप्राया। मागधी तालव्यशकारवती। शकारी चाण्डाल्योस्तालव्यशकारता रेफस्य च लकारता। वकारप्राया ढक्कविभाषा। सस्कृतप्रायत्वे दन्त्यतालव्यसशकारद्वय युक्ता च।

चिरअदि मदणिआ। ता कहिं ग्गु हु सा। (गवाक्षेण दृष्ट्वा) कधम् एसा केनावि पुरिसकेण सह मतअती चिट्ठदि। जधा अदिसिणिद्धाए णिच्चलदिट्ठीए आपिबती विअ एद् निज्झाअदि तधा तक्केमि एसो सो जणो एव इच्छदि अभुजिस्स काढुम्। ता रमदु रमदु, मा कस्सावि पीदिच्छेदो भोदु। ण हु सद्दाविस्सम् (चतुर्थ अङ्क)।

—मदनिका को बहुत देर हो गई। वह वहाँ चली गई? (झरोखे में से देखकर) अरे! वह तो किसी पुरुष से बातचीत कर रही है। मालूम होता है अत्यन्त स्निग्ध निश्चल दृष्टि से उसका पान करती हुई उसके ध्यान में वह रत है। मालूम होता है यह पुरुष उसका उपभोग करना चाहता है। खैर, कोई बात नही, वह आनन्द से रमण करे, रमण करे। किसी की प्रीति का भङ्ग न हो। मैं उसे न बुलाऊँगी।

राजा का साला शकार मागधी मे वसन्तसेना वेश्या का चित्रण करता है—

एशा णाणकमूशिकामकशिका मच्छाशिका लाशिका।
णिण्णाशा कुलणाशिका अवशिका कामस्स मञ्जूशिका।
एशा वेशवहू शुवेशणिलआ वेशगणा वेशिआ
एशे शे दश णामके मयि कले अज्जावि म णेच्छदि॥

(प्रथम अङ्क)

—यह धन की चोर, काम की कशा (कोड़ा), मत्स्यभक्षी, नर्तिका, नककटी, कुल की नाशक, स्वच्छंद, कामकी मजूषा, वेशवधू, सुवेशयुक्त, और वेश्यागना—इस प्रकार उसके दस नाम मैंने रक्खे है, फिर भी वह मुझे नहीं चाहती।[1]

---

१ वेश्याओं के वेश के सम्बन्ध में चतुर्भाणी (पृ० ३१) में कहा है-

चाण्डाली भी मागधी का ही एक प्रकार है, उसमें एक चण्डालोक्ति पढ़िये—

इन्दे ल्पवाहिअन्ते गोप्पसवे शकम च तालाणम्।
शुपुलिशपाणविपत्ती चत्तालि इमे ण दट्ठवा ॥

(दशम अङ्क)

इन्द्रध्वज का उतार कर ले जाना, गाय का प्रसव, तारों का सक्रमण और सत्पुरुषों की प्राणविपत्ति—इन चार वस्तुओं को नहीं देखना चाहिये।

कालिदास के नाटक

महाकवि कालिदास (ईसवी सन् की चौथी शताब्दी) ने भी अपने नाटकों[1] मे प्राकृतों का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं मे गद्य के लिये प्राय शौरसेनी और पद्य के लिये प्राय महाराष्ट्री का प्रयोग मिलता है। राजा का साला शाकारी आदि भाषाओं मे बातचीत न कर शौरसेनी मे ही बोलता है। नपुसक, ज्योतिषी और विक्षिप्त भी शौरसेनी का प्रयोग करते हैं। स्त्रियाँ और शिशु महाराष्ट्री तथा पुलिस के कर्मचारी और मछुए आदि मागधी का आश्रय लेते हैं। कालिदास की प्राकृत रचनायें समासात पदावलि से युक्त हैं जिन पर सस्कृत शैली का प्रभाव है।

निर्द्रव्याणामप्रसिद्धप्रवेशो रम्य क्लेश सुप्रवेशोऽस्तु वेश ॥

—गणिकाओं का यह वेश काम का आवेश, छल कपट का उपदेश, माया का कोश, ठगी का अड्डा, निर्धनों को न घुसने-देने के लिये बदनाम है। यहाँ क्लेश भी अच्छा लगता है। यहीं वेशवालों का प्रवेश सुलभ है।

१ अभिज्ञानशाकुन्तल ए० बी० गजेन्द्रगडकर द्वारा सम्पादित, पापुलर बुक डिपो, बम्बई से प्रकाशित। मालविकाग्निमित्र एम० आर० काले द्वारा सम्पादित, गोपालनारायण एण्ड कम्पनी, बम्बई द्वारा १९३३ में प्रकाशित। विक्रमोर्वशीय आर० एन० गैधानी द्वारा सम्पादित और द रायल बुक स्टाल, पूना द्वारा प्रकाशित।

शौरसेनी मे विदूषक की उक्ति पढिये—

भो दिट्ठ। एदस्स मिअआसीलस्स रण्णो वअस्सभावेण णिव्विण्णो ह्मि। अअ मिओ अअ वराहो अअ सद्दूलो त्ति मज्झरो वि गिह्मविरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि अडवीदो अडवीम्। पत्तसकरकसाआइ कदुण्हाइ गिरिणईजलाइ पीअति। अणिअदेवल सुल्लमसभूइट्ठो आहारो अण्हीअदि। तुरगाणुधावणकंडिदसधिणो रत्तिम्मि वि णिकाम सइदव्व णत्थि। तदो महन्ते एव पच्चूसे दासीए पुत्तेहि सउणिलुद्धएहि वणग्गहण कोलाहलेण पडिबोधिदो ह्मि। एदावन्तेण वि दाव पीडा ण णिक्कमदि। तदो गडस्स उवरि पिंडओ सवुत्तो। हिओ किल अह्मेसु ओहीणेसु तत्तहोदो मिआणुसारेण अस्समपद पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला मम अधण्णदाए दसिदा सपद णअर गमणस्स कह वि ण करेदि। अज्ज वि से त एव्व चितअतस्स अक्खीसु पहाद आसि। का गदि? (अभिज्ञानशाकुन्तल, द्वितीय अङ्क)।

—हाय रे दुर्भाग्य? इस मृगयाशील राजा के वयस्यभाव से मुझे वैराग्य हो आया। यह मृग है, यह सूअर है, यह शार्दूल है, इस प्रकार ग्रीष्मकाल के मध्याह्न मे भी विरल छायावाले वृक्षों की वनपक्तियों मे एक अटवी से दूसरी अटवी मे भटकना होता है। पत्तों के मिश्रण से कसैले और किञ्चित् उष्ण गिरि की नदियों का जल पीना पडता है। अनियत समय सींक पर भुना हुआ मास खाना पड़ता है। घोडे के पीछे पीछे दौड़ने के कारण मेरी सधियों में दर्द होने लगा है जिससे रात्रि के समय में आराम से सो भी नहीं सकता। फिर बहुत सबेरे दासीपुत्र और कुत्तों से घिरे हुए बहेलियो द्वारा वन के कोलाहल से मैं जगा दिया जाता हूँ। ओर इतने से ही मेरा कष्ट दूर नहीं होता। फोड़े के ऊपर एक और फुड़िया निकल आई। कल हमें पीछे छोडकर मृग का पीछा करते करते महाराज एक आश्रम में जा पहुँचे और मेरे दुर्भाग्य से शकुन्तला नाम की तापसकन्या पर

उनकी दृष्टि पड गई। उसे देखने के बाद अब वे नगर लौटने की बात ही नही करते। यही सोचते सोचते ऑखो के सामने प्रभात हो जाता है। अब क्या रास्ता है?

शकुन्तला महाराष्ट्री मे गाती है—

तुज्झ ण जाणो हिअअ मम उण कामो दिवापि रत्तिम्मि।
णिग्घिण तवइ बलीअ तुइ वुत्तमणोरहाइ अगाइ॥
(तृतीय अङ्क)

—मैं तेरे हृदय को नही जानती। लेकिन यह निर्दय प्रेम, जिनके मनोरथ तुममे केन्द्रित है ऐसे मेरे अङ्गों को, दिन ओर रात कष्ट देता है।

मछुए का मागधी मे भाषण सुनिये—

एकशिश दिअशे खडशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे। जाव तश्श उदलब्भन्तले पेक्खामि दाव एशे लदणभासुरअगुलीअअ देक्खिअ। पच्छा अहके शे विक्कआअ दशअन्ते गहिदे भावमिश्शेहि। मालेह वा मुचेह वा अअ शे आअमवुत्तन्ते। (पॉचवॉ अङ्क)

—एक दिन मैने रोहित मछली को काटा। ज्यों ही मैने उसके उदर के अन्दर देखा तो मुझे रत्न से चमचमाती एक अगूठी दिखाई दी। फिर जब मैंने उसे बिक्री के लिये निकाल कर दिखाया तो मै इन लोगों के द्वारा पकड लिया गया। अब आप चाहे मुझे मारे या छोडें। इसके मिलने की यही कहानी है।

मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय नाटको मे भी प्राकृत का प्रयोग हुआ है। मालविकाग्निमित्र मे चेटी, बकुलावलिका, कौमुदिका, राजा की पटरानी, मालविका, परिचारिका और विदूषक आदि प्राकृत बोलते है। यहॉ प्राकृत के सवाद बडे सुन्दर बन पडे है। विक्रमोर्वशी मे रम्भा, मेनका, चित्रलेखा, उर्वशी आदि अप्सराये, राजमहिषी, किराती, तापसी आदि स्त्री पात्र तथा विदूषक प्राकृत बोलते है। अपभ्रश मे भी कुछ सुन्दर गीत दिये गये है—

हउ पइ पुच्छिमि आक्खहि गअवरु
ललिअपहारें णासिअतरुवरु।
दूरविणिज्जिअससहरकन्ती
दिट्ठी पिअ पइ समुह जन्ती॥

—हे गजवर! मैं तुझ से पूछ रहा हूँ, उत्तर दे। तू ने अपने सुन्दर प्रहार से वृक्षों का नाश कर दिया है। दूर से ही चन्द्रमा की कान्ति को जीतने के लिये मेरी प्रिया को क्या तू ने प्रिय के सन्मुख जाते देखा है?

दूसरा गीत देखिये—

मोरा परहुअ हस रहग
अलि गअ पव्वअ सरिअ कुरग।
तुज्झह कारणें रण्ण भमन्तें
को ण हु पुच्छउ मइ रोअन्तें॥

—मोर, कोयल, हस, चक्रवाक, भ्रमर, गज, पर्वत, सरित्, कुरग इन सब मे से तेरे कारण जगल में भ्रमण एव रुदन करते हुए मैंने किस किस को नहीं पूछा?

श्रीहर्ष के नाटक

श्रीहर्ष (ईसवी सन् ६०० ६४८) ने प्रियदर्शिका[1], रत्नावली[2] और नागानन्द[3] मे प्राकृत भाषाओं का प्रचुर प्रयोग किया है। नाटिकाओं में पुरुष-पात्रों की सख्या कम है तथा स्त्री-पात्र और विदूषक आदि प्राकृत मे बातचीत करते हैं। पद्य में महाराष्ट्री के साथ शौरसेनी का भी प्रयोग हुआ है। प्रियदर्शिका में चेटी,

---

१ एम० आर० काले द्वारा सम्पादित, गोपालनारायण एण्ड कं० बम्बई द्वारा १९२८ में प्रकाशित।

२ के० एम० जोगलेकर द्वारा १९०७ में सम्पादित।

३ आर० आर० देशपाण्डे और बी० के० जोशी द्वारा सम्पादित, दादर बुकडिपो, बम्बई द्वारा प्रकाशित।

आरण्यिका (प्रियदर्शिका), वासवदत्ता, काञ्चनमाला, मनोरमा और विदूषक आदि प्राकृत में बातचीत करते हैं। आरिण्यका के कुछ गीत देखिये—

घणबधणसरुद्ध गअण दट्ठूण माणस एदु।
अहिलसइ राअहसो दइअ घेऊण अप्पणो वसइ॥

—बादलो के बन्धन से सरुद्ध आकाश को देखकर राजहस अपनी प्रिया को लेकर मानसरोवर मे जाने की अभिलाषा करता है।

फिर—

अहिणवराअक्खित्ता महुअरिआ वामएण कामेण।
उत्तम्मइ पत्थन्ती दट्ठु पिअदसण दइअ॥ (तृतीय अङ्क)।

—वक्र काम के द्वारा अभिनव राग मे क्षिप्त मधुकरी अपने दयिता के प्रियदर्शन के लिये प्रार्थना करती हुई व्याकुल होती है।

रत्नावली मे वासवदत्ता और उसकी परिचारिकाये आदि प्राकृत मे वार्तालाप करती है। कौशाम्बी के राजा वत्स का मित्र वसन्तक राजा को एक शुभ समाचार सुना रहा है—

ही ही भो! अच्चरिअ अच्चरिअ। कोसबीरज्जलाहेणावि ण तादिसो पिअवअसस्स हिअअपरितोसो जादिसो मम सआसादो अज्ज पिअवअण सुणिअ हविस्सदित्ति तक्केमि। ता जाव गदुअ पिअवअसस्स णिवेदइस्स। (परिक्रम्यावलोक्य च) कध एसो पिअवअस्सो जधा इम ज्जेव्व पडिवालेदि। ता जाव ण उवसप्पामि। (इत्युपसृत्य) जअदु जअदु पिअवअस्सो। भो वअस्स! दिट्ठिआ वड्ढसे तुम समीहिदकज्जसिद्धीए। (तृतीय अङ्क)।

अरे आश्चर्य! आश्चर्य। मैं समझता हूँ, मुझ से प्रिय वचन सुनकर जैसा परितोष मेरे प्रिय वयस्य को होगा वैसा उसे कौशाम्बी का राज्य पाकर भी नहीं हो सकता। इसलिये मैं अपने प्रिय सखा के पास पहुँचकर इस समाचार को निवेदन करूँगा। (घूमकर और देखकर) मेरा प्रिय सखा इसी दिशा की ओर

देखते हुए खडा है जिससे जान पडता है वह मेरी ही प्रतीक्षा मे है। अस्तु, पास मे जाता हूँ (पास जाकर) प्रिय वयस्य की जय हो ! हे वयस्य ! तुम्हारे इष्टकार्य की सिद्धि होने से तुम बडे भाग्यशाली हो।

नागानन्द मे सरकृत का प्राधान्य है। यहाँ भी नटी, चेटी, नायिका, मलयवती, प्रतिहारी तथा विदूषक, विट और किङ्कर आदि प्राकृत मे वार्तालाप करते है। किङ्कर के मुख से यहाँ मागधी बुलवाई गई है—

एद लत्तसुअजुअल पलिहाय आलुह वज्झसिल। जेण तुम लत्तसुअचिण्णोवलक्खिद गरुडो गेण्हिअ आहाल करिस्सदि (चतुर्थ अङ्क)।

—इस रक्ताशुक-युगल को धारण कर वध्यशिला पर आरोहण करो जिससे रक्त अशुक चिह्न से चिह्नित तुम्हे ग्रहण करके गरुड तुम्हारा आहार करेगा।

भवभूति के नाटक

भवभूति (ईसवी सन् की सातवी शताब्दी) के महावीर-चरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित नाटकों मे सस्कृत का प्राधान्य पाया जाता है। सस्कृत के आदर्श पर ही उन्होंने शौरसेनी का प्रयोग किया है। वररुचि आदि के प्राकृत-व्याकरणों के प्रयोग यहाँ देखने मे आते है।

मुद्राराक्षस

विशाखदत्त (ईसवी सन् की नौवीं शताब्दी) के मुद्राराक्षस[1] मे प्राकृत के प्रयोग मिलते है, यद्यपि यहाँ भी सस्कृत को ही महत्त्व दिया गया है। शौरसेनी, महाराष्ट्री और मागधी का प्रयोग यहाँ किया गया है। चन्दनदास का शौरसेनी मे एक स्वगत सुनिये—

चाणकम्मि अकरुणे सहसा सद्दाविदस्स वट्टेदि।
णिद्दोसस्सवि सका किं उण सजाददोसस्स॥ (अङ्क २)

1 हिलेब्राण्ट, ब्रेसलौ, १९१२

—निर्दय चाणक्य के द्वारा किसी निर्दोष पुरुष को बुलाये जाने पर भी उसके मन मे शङ्का उत्पन्न हो जाती है, फिर अपराधी पुरुष की तो बात ही क्या ?

क्षपणक मागधी मे बातचीत करता है—

शाशणमलिहन्ताण पडिवय्यध मोहवाधिवेय्याण ।
जे पढममेत्तकडुअ पश्चापश्च उवदिशन्ति ॥ (अङ्क ४)

—क्या तुम मोहरूपी व्याधि के वैद्य अर्हन्तों के शासन को प्राप्त करते हो जो प्रारम्भ मे मूहुर्त्त मात्र के लिये कटु किन्तु बाद में पथ्य का काम करनेवाली औषधि का उपदेश देते है ?

वज्रलोमा की मागधी मे उक्ति देखिये—

यइ महध लꣿकिदु शे पाणे विहवे कुल कलत्त च ।
ता पलिहलध विश विअ लाआवश्च पअत्तेण ॥ (अङ्क ७)

—यदि अपने प्राण, विभव, कुल और कलत्र की रक्षा करना चाहते हो तो विष की भॉति राजा के लिये अपथ्य (अवाछनीय) पदार्थ का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करो।

वेणीसंहार

भट्टनारायण (ईसवी सन् की आठवी शताब्दी के पूर्व) के वेणीसहार[1] मे शौरसेनी की ही प्रधानता है। तीसरे अक के आरभ मे राक्षस और उसकी पत्नी मागधी मे बातचीत करते है।

ललितविग्रहराज

सोमदेव के ललितविग्रहराज नाटक मे महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी का प्रयोग हुआ है।[2]

---

१ आर० आर० देशपांडे द्वारा सम्पादित, दादर बुक डिपो, बम्बई द्वारा प्रकाशित।

२ पिशल का प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ १६। यह नाटक कीलहार्न द्वारा एण्टीक्वेरी २०, २२१ पृष्ठ और उसके बाद के पृष्ठों में छपा है।

अद्भुतदर्पण

अद्भुतदर्पण नाटक के कर्ता महादेव कवि है, ये दक्षिण के निवासी थे। इनके गुरु का नाम बालकृष्ण था जो नीलकण्ठ विजयचम्पू के कर्ता नीलकठ दीक्षित के समकालीन थे। नीलकठ विजयचम्पू की रचना सन् १६३७ मे हुई थी, इसलिए महादेव कवि का समय भी इसी के आसपास मानना चाहिये। अद्भुत-दर्पण के ऊपर कवि जयदेव का प्रभाव लक्षित होता है। सस्कृत का इसमे आधिक्य है। सीता, सरमा, और त्रिजटा आदि स्त्री पात्र तथा विदूषक और महोदर आदि प्राकृत मे बातचीत करते है। इसमे १० अक हैं जिनमे अङ्गद द्वारा रावण के पास सदेश ले जाने से लगाकर रामचन्द्र के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है। राक्षसिनियाॅ शूर्पणखा की भर्त्सना करती हुई कहती है—

अयि मूढे। अणत्थआरिणि सुप्पणहे! भक्खणणिमित्त तुम्हेहि मारिदा जाणइ त्ति। परिकुविदो भट्टा जीवन्तीओ एव्व अम्हे कुक्कुराण भक्खण कारिस्सदि। ता समरगअस्स भत्तुणो पुरदो एव जाणईउत्तन्त णिवेदम्ह। तदो ज होइ त होदु।

—अयि मूढ, अनर्थकारिणि सूर्पनखे! तुमने अपने खाने के लिये जानकी को मार डाला है। भर्ता कुपित होकर जीवित अवस्था में ही हमलोगों को कुत्तो को खिलायेंगे। इसलिए चलो युद्ध में जाने के पूर्व ही भर्ता के समक्ष जानकी का समाचार निवेदन कर दें। फिर जो होना होगा सो देखेंगे।

लीलावती

मलयालम के सुप्रसिद्ध लेखक रामपाणिवाद की लिखी हुई यह एक वीथि है जिसकी रचना १८ वीं शताब्दी के मध्य में हुई थी।[1] वीथि मे एक ही अक रहता है जिसमे एक, दो या

---

१ जनरल ऑव द ट्रावनकोर यूनिवर्सिटी ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, ३, २ ३, ट्रावनकोर, १९४७ में प्रकाशित।

अधिक से अधिक तीन पात्र रहते है, शृगार रस की यहाँ प्रधानता होती है।[1] रामपाणिवाद राजा देवनारायण की सभा के एक विद्वान् थे और राजा का आदेश पाकर उन्होंने इस नाटक का अभिनय कराया था। लीलावती कर्नाटक के राजा की एक सुन्दर कन्या है। उसे कोई हरण न कर ले जाये इसलिये राजा उसे कुन्तल के राजा वीरपाल की रानी कलावती के पास सुरक्षित रख देता है। लेकिन वीरपाल राजकुमारी से प्रेम करने लगता है। यह देखकर कलावती को ईर्ष्या होती है। इस समय विदूषक रानी कलावती को साँप से डसवा देता है और फिर स्वय ही उसे बचा लेता है। कलावती को आकाशवाणी सुनाई पडती है कि लीलावती से राजा का विवाह कर दो। अन्त मे लीलावती और वीरपाल का विवाह हो जाता है। यही प्रेमकथा इस नाटक का कथानक है।

प्राकृत में सट्टक

भरत के नाट्यशास्त्र मे सट्टक और नाटिका का उल्लेख नही मिलता। सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त (ईसवी सन् की १० वीं शताब्दी के आसपास) ने अपनी टीका मे (नाट्यशास्त्र, जिल्द २, पृ० ४०७, गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज, १९३४) कोहल आदि द्वारा लक्षित तोटक, सट्टक[2] और

१ वीथ्यामेको भवेदक कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते।
आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रा प्रत्युक्तिमाश्रित ॥
सूचयेद्भूरिशृगार किंचिदन्यान् रसान् प्रति।
मुखनिर्वहणे सधी अर्थप्रकृतयोऽखिला ॥

—साहित्यदर्पण ६, २५३ ४

२ डाक्टर ए० एन० उपाध्ये डोंबी, हल्लीशक, विदूषक, (प्राकृत के विउसो अथवा विउसओ रूप से) अज्जुका, भट्टदारिका, मार्ष आदि शब्दों की भाँति सट्टक शब्द को भी सस्कृत का रूप नहीं स्वीकार करते। उनका कहना है कि सट्टक शब्द सभवत द्राविडी भाषा का शब्द है जो आट्ट शब्द से बना है जिसका अर्थ है नृत्य। शारदातनय

रासक की परिभाषा देते हुए सट्टक को नाटिका के समान बताया है। हेमचन्द्र (ईसवी सन् १०८६ ११७२) के काव्यानुशासन (पृ० ४४४) के अनुसार सट्टक की रचना एक ही भाषा मे होती है, नाटिका की भॉति सस्कृत और प्राकृत दोनो मे नहीं। शारदातनय (ईसवी सन् ११७५ १२५०) के भावप्रकाशन (पृ० २४४, २५५, २६६) के अनुसार सट्टक नाटिका का ही एक भेद है जो नृत्य के ऊपर आधारित है। इसमे कैशिकी और भारती वृत्ति रहती है, रौद्ररस नही रहता और सधि नही होती। अङ्क के स्थान पर सट्टक मे यवनिकातर होता है, तथा इसमे छादन, स्खलन, भ्रान्ति और निह्नव का अभाव रहता है। साहित्य-दर्पण (६, २७६-२७७) के अनुसार सट्टक पूर्णतया प्राकृत मे ही होता है और अद्भुत रस की इसमे प्रधानता रहती है। कर्पूर-मजरीकार (१ ६) ने सट्टक को नाटिका के समान बताया है जिसमे प्रवेश, विष्कभ और अङ्क नही होते।[1] सट्टक मे अङ्क को यवनिका कहा जाता है। प्राय किसी नायिका के नाम पर ही सट्टक का नाम रक्खा जाता है। राजशेखर ने इसे प्राकृतबध (पाउडबध) कहा है, नृत्य द्वारा इसका अभिनय किया जाता है (सट्टअम् णच्चिदव्व)। कर्पूरमजरी[2] प्राकृत का एक सुप्रसिद्ध सट्टक है।

कर्पूरमजरी

कप्पूरमजरी, विलासवती, चंदलेहा, आनदसुदरी और सिगार-मजरी इन पॉच सट्टकों मे से विलासवती को छोड़कर बाकी के

ने भावप्रकाशन में सट्टक को नृत्यभेदात्मक बताया है। देखिये चन्द्रलेहा की भूमिका, पृ० २९।

१ सो सट्टओत्ति भण्णइ जो णाडिआइ अणुहरइ।
किं उण पवेसविक्खभकाइ केवल ण दीसति॥ कर्पूरमजरी १ ६

२ मनमोहनघोष द्वारा विद्वत्तापूर्णभूमिका सहित सपादित, युनिव-र्सिटी ऑव कलकत्ता द्वारा सन् १९३९ में प्रकाशित। स्टेन कोनो की कर्पूरमंजरी हार्वर्ड युनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज से १९०१ में प्रकाशित।

सट्टक उपलब्ध हैं। इनमे कर्पूरमजरी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कर्पूरमजरी के रचयिता यायावरवशीय राजशेखर (समय ईसवी सन् ९०० के लगभग) है। कर्पूरमजरी के अतिरिक्त उन्होने बालरामायण, बालभारत, विद्धशालभजिका और काव्यमीमासा की भी रचना की है। राजशेखर नाटककार की अपेक्षा कवि अधिक थे। अपनी भाषा के ऊपर उन्हें पूर्ण अधिकार है। वसत, चन्द्रोदय, चर्चरी नृत्य आदि के वर्णन कर्पूरमजरी मे बहुत सुदर बन पडे है। कर्पूरमजरी को प्राकृत मे लिखने का नाटककार ने कारण बताया है—

परुसा सक्कअबधा पाउअबधो वि होई सुउमारो।
पुरिसमहिलाण जेत्तिअमिहन्तर तेत्तिअमिमाण॥

—सस्कृत का गठन परुष और प्राकृत का गठन सुकुमार है। पुरुष और महिलाओ मे जितना अन्तर होता है उतना ही अन्तर सस्कृत और प्राकृत काव्य मे समझना चाहिये।

कर्पूमजरी मे कुल मिलाकर १४४ गाथायें है जिनमे १७ प्रकार के छद प्रयुक्त हुए हैं, इनमे शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, श्लोक, स्रग्धरा आदि प्रधान है। गीति सौन्दर्य जगह जगह दिखाई देता है। इसमे शौरसेनी का प्रयोग हुआ है।[1]

प्रेम का लक्षण देखिये—

जस्सिं विअप्पघडणाइ कलकमुक्को
अतो मणम्मि सरलत्तणमेइ भावो।
एक्केक्कअस्स पसरन्तरसप्पवाहो
सिंगारवड्ढिअमणोहवदिण्णसारो॥ (जवनिकातर ३)

---

१ स्टेन कोनो ने अपनी कर्पूरमजरी की प्रस्तावना में कर्पूरमजरी के गद्यभाग में शौरसेनी और पद्यभाग में महाराष्ट्री प्राकृत पाये जाने का समर्थन किया था, और तदनुसार उन्होंने इस ग्रथ का सपादन भी किया था, लेकिन डाक्टर मनमोहनघोष ने अपनी तर्कपूर्ण युक्तियों द्वारा इस मत को अमान्य किया है, देखिये मनमोहनघोष की कर्पूरमजरी की भूमिका।

—जिसमे मन का आतरिक भाव सरलता को प्राप्त होता है, जो विकल्पों के सघटन आदि और कलक से मुक्त है, जिसमे एक दूसरे के लिए रस का प्रवाह बहता है, शृङ्गार द्वारा जो वृद्धि को प्राप्त होता है और मनोभव कामदेव से जिसका सार प्राप्त होता है वह प्रेम है।

यहाँ कौलधर्म के स्वरूप का व्याख्यान किया गया है—

रण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा
मज्ज मस पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्ज चम्मखड च सेज्जा
कोलो धम्मो कस्स णो भादि रम्मो ॥ (जवनिकातर १)

—कोई चण्ड रण्डा धर्मदारा के रूप मे दीक्षित की गई है, मद्य का पान किया जाता है और मास का भक्षण किया जाता है। भिक्षा माँग कर भोजन करते है, चर्मखड पर शयन करते हैं, ऐसा कौलधर्म किसे प्रिय नही ?

विलासवती

विलासवती प्राकृतसर्वस्व के रचयिता मार्कण्डेय (ईसवी सन् की लगभग १७वीं शताब्दी) की कृति है। दुर्भाग्य से यह कृति अनुपलब्ध है। विश्वनाथ (१४वीं शताब्दी) के साहित्यदर्पण मे विलासवती नाम के एक नाट्य रासक का उल्लेख मिलता है, सभवत यह कोई दूसरी रचना हो। मार्कण्डेय ने अपने प्राकृतसर्वस्व (५. १३१) मे विलासवती की निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है—

पाणाअ गओ भमरो लब्भइ दुक्ख गइदेसु।
सुहाअ रज्ज किर होइ रण्णो ॥

चन्द्लेहा

चन्दलेहा के कर्ता रुद्रदास पारशव वश मे उत्पन्न हुए थे तथा रुद्र और श्रीकण्ठ के शिष्य थे। ये कालिकट के रहनेवाले थे, सन् १६६० के आसपास इन्होंने चन्दलेहा की रचना की

थी। चन्दलेहा मे चार यवनिकातर है जिनमे मानवेद और चन्द्रलेखा के विवाह का वर्णन है। शृङ्गाररस की इसमे प्रधानता है, शैली ओजपूर्ण है। चन्दलेहा की शैली कर्पूरमजरी की शैली से बहुत कुछ मिलती है, कर्पूरमजरी के ऊपर यह आधारित है। काव्य की दृष्टि से यह एक सुन्दर रचना है, यद्यपि शब्दालकारों और समासात पदावलि के कारण इसमे कृत्रिमता आ गई है। पद्यों मे प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन सुन्दर बन पडे है। छन्दों की विविधता पाई जाती है। अन्य सट्टक रचनाओं की भाति इस पर भी सस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है। वररुचि के प्राकृतप्रकाश के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की गई है, जिससे भाषा मे कृत्रिमता का आ जाना स्वाभाविक है। सट्टक का यहाँ निम्न लिखित लक्षण बताया है—

सो सट्टओ सहअरो किल णाडिआए
ताए चउज्जवणिअतर बधुरगो ।
चित्तत्थत्थसुत्तिअरसो परमेक्कभासो
विक्खभआदिरहिओ कहिओ वुहेहिं ॥

—सट्टक नाटिका का सहचर होता है, उसमे चार यवनिकातर होते है, विविध अर्थ और रस से वह युक्त होता है, उसमे एक ही भाषा बोली जाती है, और विष्कभ आदि नहीं होते।

नवचन्द्र का चित्रण देखिये—

चन्दण चच्चिअ-सव्व दिसतो
चारु-चओर सुहाइ कुणतो।
दीह पसारिअ-दीहिइ वुदो
दीसइ णिण रसो णव चन्दो ॥ (३ २१)

—समस्त दिशाओ को चन्दन से चर्चित करता हुआ, सुन्दर चकोर पक्षियों को सुख प्रदान करता हुआ, अपनी किरणों के समूह को दूर तक प्रसारित करता हुआ सरस नूतन चन्द्रमा दिखाई दे रहा है।

आनन्दसुन्दरी

आनन्दसुन्दरी[1] के कर्ता घनश्याम का जन्म ईसवी सन् १७०० में महाराष्ट्र मे हुआ था। २९ वर्ष की अवस्था मे ये तजोर के तुक्कोजी प्रथम (सन् १७२६-३५) के मन्त्री रहे। घनश्याम महाराष्ट्रचूडामणि और सर्वभाषाकवि कहे जाते थे, सात-आठ उक्ति और लिपियों मे निष्णात थे और कठीरव के रूप मे प्रसिद्ध थे। जैसे राजशेखर अपने आपको वाल्मीकि का तीसरा अवतार मानते थे, वैसे ही घनश्याम अपने को सरस्वती का अवतार समझते थे। इन्होने ६४ सस्कृत, २० प्राकृत और ७० भाषा के ग्रन्थो की रचना की है। ये ग्रन्थ नाटक, काव्य, चम्पू, व्याकरण, अलकार और दर्शन आदि विषयों पर लिखे गये है। उन्होने तीन सट्टकों की रचना की थी—वैकुठचरित, आनन्दसुन्दरी तथा एक अन्य। इनमे से केवल आनन्द सुन्दरी ही उपलब्ध है। आनन्दसुन्दरी की रचना मे राजशेखर की कर्पूरमजरी की छाया कम है, मौलिकता अपेक्षाकृत अधिक। घनश्याम के अनुसार सट्टक मे गर्भनाटक न होने से वह अपहासभाजन होता है, इसलिए आनन्दसुन्दरी मे गर्भनाटक का समावेश किया गया है। इसमे चार जवनिकातर है। प्राकृत इस समय बोल चाल की भाषा नहीं रह गई थी, इसलिए लेखक प्राकृत व्याकरणो का अध्ययन करके साहित्य सर्जन किया करते थे। इसलिए पाणिवाद और रुद्रदास आदि लेखकों की भॉति घनश्याम की रचना मे भी भाषा की कृत्रिमता ही अधिक दिखाई देती है। मराठी भाषा के बहुत से शब्द और धातुएँ यहॉ पाई जाती है। भट्टनाथ ने इस पर सस्कृत मे व्याख्या लिखी है। आनन्दसुन्दरी को राजा को समर्पित करते समय धात्री की उक्ति देखिये—

---

१ डा० ए० एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित और मोतीलाल बनारसीदास, बनारस द्वारा १९५५ में प्रकाशित।

जम्मणो पहुदि वड्ढिदा मए
लालणेहि विविहेहि कण्णआ।
सपद तुह करे समप्पिआ
से पिओ गुरुअणो सही तुम ॥

—जन्म से विविध लालन पालन के द्वारा जिस कन्या को मैने बडा किया, उसे अब मैं तुम्हारे हाथ सौंप रही हू, अब तुम इसके प्रिय, गुरुजन और सखी सभी कुछ हो।

सिंगारमंजरी

विश्वेश्वर की शृङ्गार मजरी[1] प्राकृत साहित्य का दूसरा सट्टक है। विश्वेश्वर लक्ष्मीधर के पुत्र और शिष्य थे तथा अलमोडा के निवासी थे। इनका समय ईसवी सन् की १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। विश्वेश्वर ने अल्पवय मे ही अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमे नवमालिका नाम की नाटिका और शृङ्गार मजरी नामक सट्टक मुख्य है। डाक्टर ए० एन० उपाध्ये को इस सट्टक की हस्तलिखित प्रतियाॅ उपलब्ध हुई है जिनके आधार पर उन्होंने अपनी चन्दलेहा की विद्वतापूर्ण भूमिका मे इस ग्रन्थ का कथानक प्रस्तुत किया है। राजशेखर की कर्पूरमजरी और शृङ्गारमजरी के वर्णनों आदि मे बहुत-सी समानताये पायी जाती है। दोनो ही ग्रन्थकारों ने भास की वासवदत्ता, कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा हर्ष की रत्नावलि और प्रियदर्शिका का अनुकरण किया है। शृङ्गारमजरी मे कवि की मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते है, भाषा शैली उनकी प्रसादगुण से सपन्न है।

रंभामंजरी

रभामजरी के कर्ता प्रसन्नचन्द्र के शिष्य नयचन्द्र है[2] जो पहले विष्णु के उपासक थे और बाद मे जैन हो गये थे। षट्

---

१ काव्यमाला सीरीज़, भाग ८ में बम्बई से प्रकाशित।

२ रभामजरी में साहित्यिक मराठी के प्रयोग मिलते हैं, इस दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्व का है—

भाषाओं में कवित्त करने मे और राजाओं का मनोरजन करने में ये कुशल थे। नयचन्द्र ने अपने आपको श्रीहर्ष और अमरचन्द्रकवि के समान प्रतिभाशाली बताया है। अपनी रभामजरी को भी उन्होंने कर्पूरमजरी की अपेक्षा श्रेष्ठ कहते हुए उसमे कवि अमरचन्द्र का लालित्य और श्रीहर्ष की वक्रिमा स्वीकार की है। लेकिन वस्तुत वसत के वर्णन आदि प्रसगो पर नयचन्द्र ने कर्पूरमजरी को आदर्श मानकर ही अपने सट्टक की रचना की है। नाटककार के रूप मे लेखक बहुत अधिक सफल हुए नहीं जान पडते। रभामजरी मे तीन जवनिकातर है, इसमे सस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। नयचन्द्र का समय १४ वी शताब्दी का

जरि पेखिला मस्तकावरी केशकलापु।
तरी परिस्खलिला मयूराचे पिच्छप्रतापु॥
जरि नयनविषयु केला वेणीदडु।
तरि साक्षाज्जालाभ्रमण(र)श्रेणीदडु॥
जरि दृग्गोचरी आला विसाळ भालु।
तरि अर्द्धचन्द्रमडलु भइला ऊर्णायु जालु।
भ्रूयुगलु जाणु द्वैधीकृतकदर्पचापु।
नयननिर्जितु जाला पजनु नि प्रतापु॥
मुखमडलु जाणु शशांक देवताचे मडलु।
सर्वांगसुन्दरता मूर्त्तिमतुकामु॥
कल्पद्रुम जैसे सर्वलोकआशाविश्रामु। (जवनिकातर १)

—जब मस्तक के ऊपर केशकलाप देखा तो वह मयूर के पख की शोभा जान पडी। वेणीदड भ्रमरों की पक्ति की भाँति प्रतीत हुई। विशाल मस्तक अर्धचन्द्र के मडल की भाँति जान पडा। भ्रूयुगल कामदेव के टूटे हुए धनुष की भाँति जान पडा। तुम्हारे नयनों ने खजन पक्षियों को प्रतापहीन कर दिया। मुखमडल चन्द्रदेवता के मडल के समान जान पडा। सर्व अग की सुन्दरता मूर्तिमान काम के समान प्रतीत हुई। कल्पद्रुम की भाँति सब लोगों की आशा का विश्राम जान पडी।

अन्त माना जाता है।[1] इन्होंने हम्मीर महाकाव्य तथा अन्य अनेक जैनग्रन्थों की रचना की है।

एक उक्ति सुनिये—

रासहवसहतुरगा जूआरा पडिया डिभा।
न सहति इक्क इक्क इक्केण विणा ण चिट्ठति ।।

—रासभ, वृषभ, तुरग, द्यूतकार, पडित और बालक ये एक दूसरे के बिना अकेले नही रह सकते।

वसन्त के आगमन पर विरहिणियों की दशा देखिये—

मयको सप्पको मलयपवणा देहतवणा।
कहूसद्दो रुद्दो कुसुमसरसरा जीविदहरा ।।
वराईय राई उवजणइ णिद्दपि ण खण।
कह हा जीविस्से इह विरहिया दूरपहिया ।।

—वसन्त के आगमन पर जिसका पति विदेश गया हुआ है ऐसी विरहिणी कैसे जीवित रहेगी ? उसे मृगाक सर्पांक के समान प्रतीत होता है, मलय का शीतल पवन देह को सतप्त करता है, कोकिल की कुहू कुहू रौद्र मालूम होती है, कामदेव के बाण जीवन को अपहरण करने वाले जान पडते है,—उस बिचारी को रात्रि के समय एक क्षण भी नींद नहीं आती।



---

१ डा० पी० पीटर्सन और रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्री द्वारा सपादित तथा निर्णयसागर प्रेस, बम्बई द्वारा सन् १८८९ में प्रकाशित।

दसवाँ अध्याय

प्राकृतव्याकरण छन्द-कोष तथा अलंकार-ग्रन्थों में प्राकृत (ईसवी सन् की छठी शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी तक)

(क) प्राकृत व्याकरण

संस्कृत का उद्‌भव वेदपाठी पुरोहितों के यहाँ हुआ था जब कि वैदिक ऋचाओं को उनके मूल रूप में सुरक्षित रखने के लिये संस्कृत भाषा की शुद्धता पर जोर दिया गया। प्राकृत के सम्बन्ध में यह बात नहीं थी। वह बोलचाल की भाषा थी, इसलिये संस्कृत की भाँति इस पर नियन्त्रण रखना कठिन था। प्राकृत भाषा के व्याकरण सम्बन्धी नियम संस्कृत की देखा-देखी अपेक्षाकृत बहुत बाद में बने, इसलिये पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि जैसे वैयाकरणों का यहाँ अभाव ही रहा। प्राकृत के वैयाकरणों में चण्ड (ईसवी सन् की तीसरी-चौथी शताब्दी), वररुचि (ईसवी सन् की लगभग छठी शताब्दी) और हेमचन्द्र (ईसवी सन् ११००) मुख्य माने जाते हैं। इससे मालूम होता है कि प्राकृत भाषा को व्याकरणसम्मत व्यवस्थित रूप काफी बाद में मिला। यह भी ध्यान रखने की बात है कि जैसा प्रश्रय संस्कृत को ब्राह्मण विद्वानों से मिला, वैसा प्राकृत को नहीं मिल सका। उल्टे, प्राकृत को म्लेच्छों की भाषा उल्लिखित कर उसके पढ़ने और सुनने का निषेध ही किया गया।[1] वस्तुतः शिक्षा और व्याकरण की सहायता से जो सुनिश्चित और सुगठित

---

१ लोकायतम् कुतर्कम् च प्राकृत म्लेच्छभाषितम्।
श्रोतव्यं द्विजेनैतद् अधो नयति तद् द्विजम्॥
(गरुडपुराण, पूर्व० ९८, १७)

रूप सस्कृत को मिला, प्राकृत उससे वंचित रह गई। व्याकरणों मे वररुचि का प्राकृतव्याकरण सबसे अधिक व्यवस्थित और प्रामाणिक है। लेकिन इसके सूत्रो से अश्वघोष के नाटक, खरोष्ट्री लिपि के धम्मपद और अर्धमागधी मे लिखे हुए जैन आगमों आदि की भाषाओं पर कोई प्रकाश नहीं पडता। अवश्य ही पैशाची भाषा—जिसका कोई भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है—के नियमों का उल्लेख यहाँ मिलता है। इससे प्राकृत व्याकरणों की अपूर्णता का ही द्योतन होता है।[1]

प्राकृतप्रकाश

मार्कण्डेय ने अपने प्राकृतसर्वस्व के आरभ मे शाकल्य, भरत और कोहल नाम के प्राकृत व्याकरणकर्ताओं के नाम गिनाये है, इससे पता लगता है कि शाकल्य आदि ने भी प्राकृतव्याकरणों की रचना की है जिनसे मार्कण्डेय ने अपनी सामग्री ली है। वर्तमान लेखकों मे भरत ने ही सर्वप्रथम प्राकृत भाषाओं के सम्बन्ध मे विचार किया है।

वररुचि का प्राकृतप्रकाश[2] उपलब्ध व्याकरणों मे सबसे प्राचीन है। इस पर कात्यायन (ईसवी सन् की छठी-सातवी शताब्दी) कृत मानी जाने वाली प्राकृतमजरी और भामह

---

१ देखिये मनमोहनघोष, कर्पूरमजरी की भूमिका, पृ० १८।

२ डाक्टर सी० कुनहन राजा द्वारा सम्पादित, अडयार लाइब्रेरी, मद्रास द्वारा सन् १९४६ में प्रकाशित, भामह और कात्यायन की वृत्तियों और बगाली अनुवाद के साथ वसन्तकुमार शर्मा चट्टोपाध्याय द्वारा सम्पादित, सन् १९१४ में कलकत्ता से प्रकाशित। इसका प्रथम सस्करण हर्टफोर्ड से ईसवी सन् १८५४ में छपा था। दूसरा सस्करण कौवेल ने अपनी टिप्पणियों और अनुवाद के साथ भामह की टीका सहित सन् १८६८ में लदन से प्रकाशित कराया। इसका नया सस्करण रामशास्त्री तैलग ने सन् १८९९ में बनारस से निकाला। तत्पश्चात् वसतराज की प्राकृतसजीवनी और सदानन्द की सदानन्दा नाम की टीकाओं सहित सरस्वतीभवन सीरीज़, बनारस से सन् १९२७ में प्रकाशित। फिर

(ईसवी सन् की सातवीं-आठवीं शताब्दी) कृत मनोरमा, वसतराजकृत प्राकृतसजीवनी (ईसवी सन् की १४वीं–१५वी शताब्दी) तथा सदानन्दकृत सदानन्दा और नारायणविद्याविनोद-कृत प्राकृतपाद नाम की टीकाये लिखी गई है जिससे इस व्याकरण की लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है। कसवहो और उसाणिरुद्ध के रचयिता मलाबार के निवासी रामपाणिवाद ने भी इस पर टीका[1] लिखी है। केरलानिवासी कृष्णलीलाशुक ने इस के नियमो को समझाने के लिए सिरि-चिंधकव्व नाम का काव्य लिखा है। इससे पता लगता है कि प्राकृतप्रकाश का दक्षिण मे भी खूब प्रचार हुआ। इस ग्रन्थ मे १२ परिच्छेद हैं, इनमे नौ परिच्छेदों मे महाराष्ट्री प्राकृत के लक्षणो का वर्णन है, दसवे परिच्छेद मे पैशाची और ग्यारहवें मे मागधी के लक्षण बताये है। ये दोनों परिच्छेद बाद के माने जाते हैं, तथा भामह अथवा अन्य किसी टीकाकार के लिखे हुए बताये जाते है। १२वे परिच्छेद मे शौरसेनी का विवेचन है, इस पर भामह की टीका नही है, इससे यह परिच्छेद भी बाद का जान पडता है। प्राकृतसजीवनी और प्राकृतमजरी मे केवल महाराष्ट्री का ही वर्णन मिलता है। जान पडता है ये तीनों परिच्छेद हेमचन्द्र के समय से पहले ही सम्मिलित कर लिये गये थे। शौरसेनी को यहाँ प्रधान प्राकृत बताया है, महाराष्ट्री का उल्लेख नहीं है। इससे यही अनुमान किया जाता है कि वररुचि के समय तक महाराष्ट्री का उत्कर्ष नहीं हुआ था।

डाक्टर पी० एल० वैद्य द्वारा पूना ओरियण्टल सीरीज़ से सन् १९३१ में प्रकाशित। युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता द्वारा सन् १९४२ में प्रकाशित, दिनेशचन्द्र सरकार की 'ग्रामर ऑव द प्राकृत लैंग्वेज' में प्राकृतप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद दिया है। के० पी० त्रिवेदी ने इसे गुजराती अनुवाद के साथ नवसारी से सन् १९५७ में प्रकाशित किया है।

१ इस टीका में गाथासप्तशती, कर्पूरमजरी, सेतुबन्ध और कसवहो आदि से उद्धरण प्रस्तुत किये गए हैं।

प्राकृतलक्षण

प्राकृत का दूसरा व्याकरण चण्ड का प्राकृतलक्षण है जिसमे तीन अध्यायों मे ६६ सूत्रों में प्राकृत का विवेचन है।[1] वीर भगवान् को नमस्कार कर वृद्धमत का अनुसरण कर चण्ड ने इस व्याकरण की रचना की है। अपभ्रश, पैशाची और मागधी का यहाँ एक एक सूत्र मे उल्लेख कर उनकी सामान्य विशेषतायें बताई हैं। कुछ विद्वान् इस व्याकरण को प्राचीन कहते हैं, कुछ का मानना है कि अन्य ग्रथों के आधार से इसकी रचना हुई है।

प्राकृतकामधेनु

लकेश्वर ने प्राकृतकामधेनु अथवा प्राकृतलकेश्वररावण की रचना की है।[2] ग्रथ के मगलाचरण से मालूम होता है कि लकेश्वर के प्राकृतव्याकरण के ऊपर अन्य कोई विस्तृत ग्रन्थ था जिसे सक्षिप्त कर प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई है। यहाँ ३४ सूत्रों मे प्राकृत के नियमों का विवेचन है, बहुत से सूत्र अस्पष्ट है। ११वें सूत्र मे अ के स्थान मे उ का प्रतिपादन कर (जैसे गृह = घरु) अपभ्रश की ओर इगित किया है। अन्तिम सूत्र मे योषित् के स्थान मे महिला शब्द का प्रयोग स्वीकार किया है।

सक्षिप्तसार

हेमचन्द्र के सिद्धहेम की भाँति क्रमदीश्वर ने भी सक्षिप्तसार नाम के एक सस्कृत-प्राकृत व्याकरण की रचना की है,[3] इसके

---

१ भूमिका आदि सहित हार्नेल द्वारा सन् १८८० में कलकत्ता से प्रकाशित। सत्यविजय जैन ग्रथमाला की ओर से अहमदाबाद से भी सन् १९२९ में प्रकाशित।

२ डाक्टर मनोमोहनघोष द्वारा सपादित प्राकृतकल्पतरु के साथ परिशिष्ट नबर २ में पृष्ठ १७०–१७३ पर प्रकाशित।

३ सबसे पहले लास्सेन ने अपने इन्स्टीट्यूत्सीओनेस में इसके

प्राकृतपाद नाम के आठवें अध्याय मे प्राकृतव्याकरण लिखा गया है, शेष सामग्री की सजावट, पारिभाषिक शब्दो के नाम आदि मे दोनों मे कोई साम्य नही। क्रमदीश्वर ने भी वररुचि का ही अनुगमन किया है। इनके सक्षिप्तसार पर कई टीकायें लिखी गई है। स्वय क्रमदीश्वर की एक स्वोपज्ञ टीका है, इस टीका की एक व्याख्या भी है। केवल प्राकृतपाद की टीका चण्डीदेव-शर्मन् ने प्राकृतदीपिका नाम से की है। क्रमदीश्वर का समय ईसवी सन् की १२वी–१३वी शताब्दी माना गया है।

प्राकृतानुशासन

इसके कर्ता पुरुषोत्तम हैं जो ईसवी सन् की १२ वीं शताब्दी मे हुए है।[1] ये बगाल के निवासी थे। इसमे तीन से लगाकर बीस अध्याय है,—तीसरा अध्याय अपूर्ण है। नौवे अ याय मे शौरसेनी और दसवे मे प्राच्या के नियम दिये है। प्राच्या को लोकोक्ति बहुल बताया है,—इसके शेष रूप शोरसेनी के समान होते है। ग्यारहवे अध्याय मे अवन्ती और बारहवे मे मागधी का विवेचन है। तत्पश्चात् विभापाओ मे शाकारी, चाडाली, शाबरी और टक्कदेशी के नियम बताये हैं। शाकारी मे क और टक्की मे उद् की बहुलता पाई जाती है। इसके बाद अपभ्रश मे नागरक, ब्राचड, उपनागर आदि का विवेचन है। अन्त में कैकेय, पैशाचिक और शौरसेनी पैशाचिक के लक्षण दिये हैं।

सबध में विस्तारपूर्वक लिखा है। इनका 'राडिकेस प्राकृतिकायें' सन् १८३९ में लेलिउस द्वारा प्रकाशित हुआ है। फिर राजेन्द्रलाल मित्र ने प्राकृतपाद का सम्पूर्ण सस्करण बिब्लिओथिका इडिका में प्रकाशित कराया। इसका नया सस्करण सन् १८८९ में कलकत्ते से छपा था।

१ एल० निती डोलची द्वारा महत्त्वपूर्ण फ्रेञ्च की भूमिका सहित सन् १९३८ में पेरिस से प्रकाशित। डाक्टर मनोमोहनघोष द्वारा सपादित प्राकृतकल्पतरु के साथ परिशिष्ट १ में पृ० १५३-१६९ तक अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित।

प्राकृतकल्पतरु

प्राकृतकल्पतरु के कर्ता रामशर्मा तर्कवागीश भट्टाचार्य है जो बगाल के रहने वाले थे।[1] इनका समय ईसवी सन् की १७ वीं शताब्दी माना जाता है। रामशर्मा ने विषय के विवेचन मे पुरुषोत्तम के प्राकृतानुशासन का ही अनुगमन किया है। इस पर लेखक की स्वोपज्ञ टीका है। इसमे तीन शाखायें हैं। पहली शाखा मे दस स्तवक है जिनमे महाराष्ट्री के नियमो का प्रतिपादन है। दूसरी शाखा मे तीन स्तवक है जिनमे शौरसेनी, प्राच्या, आवन्ती, बाह्लीकी, मागधी, अर्धमागधी और दाक्षिणात्या का विवेचन है। प्राच्या का विदूषक आदि द्वारा बोले जाने का यहाँ उल्लेख है। आवन्ती की सिद्धि शौरसेनी और प्राच्या के समिश्रण से बताई गई है। आवन्ती और बाह्लीकी भाषाये नगराधिप, द्वारपाल, धूर्त, मध्यम पात्र, दण्डधारी और व्यापारियों द्वारा बोली जाती थी। मागधी राक्षस, भिक्षु और क्षपणक आदि द्वारा बोली जाती थी, तथा महाराष्ट्री और शौरसेनी इसका आधार था। दाक्षिणात्या के सम्बन्ध मे कहा है कि पदो से मिश्रित, सस्कृत आदि भाषाओं से युक्त इसका काव्य अमृत से भी अधिक सरस होता है। विभाषाओ मे शाकारिक, चाडालिका, शाबरी, आभीरिका और टक्की का विवेचन है। राजा के साले, मदोद्धत, चपल और अतिमूर्ख को शाकार कहा है। शाकार द्वारा बोली जानेवाली भाषा शाकारिका कही जाती है। इसको ग्राम्य, निरर्थक, क्रमविरुद्ध, न्याय आगम आदि विहीन, उपमानरहित और पुनरुक्तियों सहित कहा गया है। इस विभाषा के पदो के दोष को गुण माना गया है। चाण्डाली शौरसेनी और मागधी का मिश्रण है।

---

१ डाक्टर मनमोहनघोष द्वारा सपादित, एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता द्वारा १९५४ में प्रकाशित। इसी के साथ पुरुषोत्तम का प्राकृतानुशासन, लकेश्वर का प्राकृतकामधेनु और विष्णुधर्मोत्तर का प्राकृतलक्षण भी प्रकाशित है।

इसमे ग्राम्योक्तियों की बहुलता रहती है। शाबरी मागधी से बनी है। अगारिक (कोयला जलानेवाले), व्याध तथा नाव और काष्ठ उपजीवी इसका प्रयोग करते है। मागधी पात्रो के भेद से आभीरिका, द्राविडिका, औत्कली, वानौकसी और मान्दुरिका नाम की विभाषाओ मे विभाजित है। आभीरिका शाबरी से सिद्ध होती है। इस विभापा के यहाँ कुछ ही रूप लिये है, शेष रूपो को उनके प्रयोगो से जानने का आदेश है। टक्की भाषा जुआरी ओर धूर्तों के द्वारा बोली जाती थी। शाकारी, औड्री और द्राविडी विभापाओ के सबध मे कहा है कि यद्यपि ये अपभ्रश मे अन्तर्भूत होती है, लेकिन यदि नाटक आदि में इनका प्रयोग होता है तो वे अपभ्रश नही कही जाती। तीसरी शाखा मे नागर, अपभ्रश, व्राचड, अपभ्रश तथा पैशाचिक का विवेचन है। पैशाचिक के दो भेद है—एक शुद्ध, दूसरा सकीर्ण। कैकय, शौरसेन पाचाल, गोड, मागध और व्राचड पैशाचिक का यहाँ विवेचन किया है।

प्राकृतसर्वस्व

प्राकृतसर्वस्व के कर्ता मार्कण्डेय है जो उडीसा के रहनेवाले थे। मुकुन्ददेव के राज्य मे उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी।[1] इनका समय ईसवी सन् की १७वी शताब्दी है। मार्कण्डेय ने ग्रन्थ के आदि मे शाकल्य, भरत, कोहल, वररुचि, भामह, वसन्तराज आदि का नामोल्लेख किया है जिनके ग्रन्थो का अवलोकन कर उन्होंने प्राकृतसर्वस्व की रचना की। यहाँ अनिरुद्धभट्ट, भट्टिकाव्य, भोजदेव, दण्डी, हरिश्चन्द्र, कपिल, पिंगल, राजशेखर, वाक्पतिराज तथा सप्तशती ओर सेतुबन्ध का उल्लेख है। महाराष्ट्री, शौरसेनी और मागधी के सिवाय प्राकृत की अन्य बोलियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह

---

१ भट्टनाथस्वामि द्वारा सपादित, ग्रन्थप्रदर्शिनी, विज़गापट्टम से १९२७ में प्रकाशित।

व्याकरण अत्यन्त उपयोगी है। यहाँ २० पादो मे भाषा, विभाषा, अपभ्रश और पैशाची का वर्णन किया है। भाषाओ मे महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राच्या, आवन्ती और मागधी के नाम गिनाये गये है। महाराष्ट्री प्राकृत के नियम आठ पादो मे है, यह भाग वररुचि के आधार पर लिखा गया है। नौवे पाद मे शौरसेनी, दसवे मे प्राच्या, ग्यारहवे मे आवन्ती और बाह्लीकी तथा बारहवे मे मागधी और अर्धमागधी के नियम बताये हैं। अर्धमागधी के सबध मे कहा है कि यह शौरसेनी से दूर न रहनेवाली मागधी ही है। तेरहवे से सोलहवे पाद तक शाकारी, चाडाली, शाबरी, औढ्री, आभीरिका और टक्की नाम की पॉच विभाषाओ का वर्णन है। सतरहवे-अठारहवें पाद मे नागर, व्राचड और उपनागर इन तीन अपभ्रशों का विवेचन है। उन्नीसवे और बीसवे पाद मे पैशाची के नियम बताये है। कैकय, शौरसेन और पाचाल ये पैशाची के भेद है। इस प्रकार भाषा, विभाषा आदि के सब मिलाकर सोलह भेद होते है। मार्कण्डेय ने व्राचड को सिध की बोली माना है।

सिद्धहेमशब्दानुशासन (प्राकृतव्याकरण)

प्राकृत के पश्चिमी प्रदेश के विद्वानों मे आचार्य हेमचन्द्र (सन् १०८८–११७२) का नाम सर्वप्रथम है। उनका प्राकृत व्याकरण सिद्धहेमशब्दानुशासन का आठवॉ अध्याय है। सिद्धराज को अर्पित किये जाने और हेमचन्द्र द्वारा रचित होने के कारण इसे सिद्धहेम कहा गया है। हेमचन्द्र की इस पर प्रकाशिका नाम की[1] स्वोपज्ञ वृत्ति है। इस पर और भी टीकाये है। उदयसौभाग्य गणि ने हेमचन्द्रीय वृत्ति पर हेमप्राकृतवृत्तिढुढिका नामकी टीका

---

१ पिशल द्वारा सम्पादित, ईसवी सन् १८७७–८० में हाल्ले आमज़ार से प्रकाशित। पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित, सन् १९३६ में भडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इस्टिट्यूट, पूना से प्रकाशित, सशोधित सस्करण १९५८ में प्रकाशित।

लिखी है। नरचन्द्रसूरि ने भी हेमचन्द्र के प्राकृतव्याकरण की टीका बनाई है। इस व्याकरण मे चार पाद है। पहले तीन पादों मे और चौथे पाद के कुछ अश मे सामान्य प्राकृत, जिसे हेमचन्द्र ने आर्ष प्राकृत कहा है, के लक्षण बताये गये है। तत्पश्चात् चौथे पाद के अन्तिम भाग मे शौरसेनी (२६०–२८६ सूत्र), मागधी (२८७–३०२), पैशाची (३०३–२४), चूलिका पैशाची (३२५–३२८) और फिर अपभ्रश (३२९–४४६) का विवेचन किया गया है। 'कश्चित्', 'केचित्', 'अन्ये' आदि शब्दो के प्रयोगों से मालूम होता है कि हेमचन्द्र ने अपने से पहले के व्याकरणकारो से भी सामग्री ली है[1]। यहाँ मागधी का विवेचन करते हुए प्रसगवश एक नियम अर्धमागधी के लिये भी दे दिया है। इसके अनुसार अर्धमागधी मे पुल्लिग कर्ता के एक वचन मे अ के स्थान मे एकार हो जाता है (वस्तुत यह नियम मागधी भाषा के लिये लागू होता है)। जैन आगमो के प्राचीन सूत्रों को अर्धमागधी मे रचित कहा गया है (पोराणमद्धमागह-भासानियय हवइ सुत्त)। अपभ्रश का यहाँ विस्तृत विवेचन है। अपभ्रश के अनेक अज्ञात ग्रथो से शृङ्गार, नीति और वैराग्य-सम्बन्धी सरस दोहे उद्धृत किये गये है।

प्राकृतशब्दानुशासन

प्राकृतशब्दानुशासन के कर्ता त्रिविक्रम है।[2] इन्होने मङ्गला-चरण में वीर भगवान् को नमस्कार किया है तथा धवला के कर्ता वीरसेन और जिनसेन आदि आचार्यों का स्मरण किया है, इससे मालूम होता है कि वे दिगम्बर जैन थे। त्रैविद्यमुनि

१ देखिये पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ७७।

२ इसका प्रथम अध्याय ग्रथ प्रदर्शिनी, विज़गापट्टम से सन् १८९६ में प्रकाशित, टी० लड्डू द्वारा सन् १९१२ में प्रकाशित, डाक्टर पी० एल० वैद्य द्वारा सपादित, जीवराज जैन ग्रथमाला, शोलापुर की ओर से सन् १९५४ में प्रकाशित।

अर्हनन्दि के समीप बैठकर उन्होंने जैनशास्त्रों का अभ्यास किया था। उन्होंने अपने आपको सुकवि रूप मे उल्लिखित किया है, यद्यपि अभी तक उनका कोई काव्य ग्रथ प्रकाश मे नहीं आया। इनका समय ईसवी सन् की १३वीं शताब्दी माना जाता है। त्रिविक्रम ने साधारणतया हेमचन्द्र के सिद्धहेम (प्राकृतव्याकरण) का ही अनुगमन किया है। हेमचन्द्र की भाँति इन्होने भी आर्ष (प्राकृत) का उल्लेख किया है, लेकिन उनके अनुसार देश्य और आर्ष दोनों रूढ होने के कारण स्वतन्त्र है इसलिये उनके व्याकरण की आवश्यकता नही, सम्प्रदाय द्वारा ही उनके सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ उसी प्राकृत के व्याकरण के नियम दिये है जिनके शब्दो की खोज साध्यमान सस्कृत और सिद्ध सस्कृत से की जा सकती है।[1] त्रिविक्रम ने इस व्याकरण पर स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है। प्राकृत रूपों के विवेचन मे उन्होंने हेमचन्द्र का आश्रय लिया है। इसमे तीन अध्याय है,—प्रत्येक मे चार चार पाद है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्याय के प्रथम पाद मे प्राकृत का विवेचन है। तत्पश्चात् तृतीय अध्याय के दूसरे पाद मे शौरसेनी (१-२६), मागधी (२७-४२), पैशाची (४३-६३), और चूलिकापैशाची (६४-६७) के नियम दिये हुए है। तीसरे और चौथे पादों मे अपभ्रश का विवेचन है।

प्राकृतरूपावतार

इसके कर्ता समुद्रबधयज्वन् के पुत्र सिहराज है जो ईसवी सन् की १५वी शताब्दी के प्रथमार्ध के विद्वान् माने जाते है।[2]

---

१ तद्भव शब्द दो प्रकार के होते हैं—साध्यमान सस्कृतभव और सिद्ध सस्कृतभव। जो प्राकृत शब्द उन सस्कृत शब्दों का, बिना उपसर्ग और प्रत्यय क, मूलरूप बताते है जिनसे कि वे बने हैं, पहली श्रेणी में आते हैं। जो व्याकरण से सिद्ध सस्कृत रूपों से बने हैं ऐसे प्राकृत शब्द दूसरी श्रेणी म आते है (जैसे वन्दिता) सस्कृत वन्दित्वा से बना है।

२ हुल्त्श द्वारा सम्पादित, रॉयल एशियाटिक सोसायटी की ओर से सन् १९०९ में प्रकाशित।

परम्परा द्वारा इस व्याकरण के कर्ता वाल्मीकि कहे गये हैं। सिंहराज ने अपने ग्रन्थ में पूर्व (१२-४२), कौमार (कातन्त्र) और पाणिनीय (२-२) का उल्लेख किया है। वस्तुतः त्रिविक्रम का आधार मानकर यह व्याकरण लिखा गया है। इसके छह भाग हैं जो २२ अध्यायों में विभाजित हैं। प्राकृत शब्द तीन प्रकार के बताये हैं—संस्कृतसम, संस्कृतभव और देशी। १८वें अध्याय में शौरसेनी, १९वें में मागधी, २०वें में पैशाची, २१ वें में चूलिकापैशाची और २२वें अध्याय में अपभ्रंश का विवेचन है। संज्ञा और क्रियापदों की रूपावलि के ज्ञान के लिये यह व्याकरण बहुत उपयोगी है।

षड्भाषाचन्द्रिका

षड्भाषाचन्द्रिका[1] में लक्ष्मीधर ने प्राकृतों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्राकृत[2], शौरसेनी[3], मागधी,[4] पैशाची, चूलिकापैशाची[5] और अपभ्रंश[6] इन छह भाषाओं का

---

१ कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी द्वारा सम्पादित बाम्बे संस्कृत और प्राकृत सीरीज़ में सन् १९१६ में प्रकाशित।

२ लक्ष्मीधर ने प्राकृत को महाराष्ट्रोद्भव कहा है। इसके समर्थन में उन्होंने आचार्य दण्डी का प्रमाण दिया है। स्वोपज्ञवृत्ति में लेखक ने सब स्त्रियों और नीच जाति के लोगों द्वारा प्राकृत बोले जाने का निर्देश किया है (श्लोक ३२-३३)।

३ शौरसेनी छद्मवेषधारी साधुओं, किन्हीं के अनुसार जैनों तथा अधम और मध्यम लोगों द्वारा बोली जाती थी (श्लोक ३४)।

४ मागधी धीवर आदि अतिनीच पुरुषों द्वारा बोली जाती थी (श्लोक ३५)।

५ पैशाची और चूलिकापैशाची राक्षस, पिशाच और नीच व्यक्तियों द्वारा बोली जाती थी (श्लोक ३५)। यहाँ पर पाण्ड्य, केकय, बाह्लीक, सिंह, नेपाल, कुन्तल, सुधेष्ण, भोज, गांधार, हैव और कन्नौज देशों की गणना पिशाच देशों में की गई है। (श्लोक २९-३०)

६ अपभ्रंश आभीर आदि की बोली थी और कविप्रयोग के लिये

विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। जैसा हम ऊपर देख आये है आचार्य हेमचन्द्र ने भी भाषाओं का यही विभाग किया है।[1] अपभ्रंश का भी लक्ष्मीधर ने विस्तृत विवेचन किया है अन्तर इतना ही है कि हेमचन्द्र की भॉति उन्होने अपभ्रंश के ग्रन्थों मे से उदाहरण नही दिये। लक्ष्मीधर लक्ष्मणसूरि के नाम से भी कहे जाते थे, ये आध्रदेश के रहनेवाले शिवोपासक थे। त्रिविक्रम की वृत्ति के आधार पर उन्होंने षड्भाषाचन्द्रिका की रचना की है। त्रिविक्रम, हेमचन्द्र और भामह को गुरु मानकर प्रस्तुत ग्रन्थ मे इन्ही की रचनाओं को उन्होंने सक्षेप मे प्रस्तुत किया है। लक्ष्मीधर की अन्य रचनाओं मे गीतगोविन्द और प्रसन्नराघव की टीकायें मुख्य है।

प्राकृतमणिदीप

प्राकृतमणिदीप (अथवा प्राकृतमणिदीपिका) के कर्ता अप्पयदीक्षित है जो शैवधर्मानुयायी थे।[2] ईसवी सन् १५५३–१६३६ मे ये विद्यमान थे। उन्होंने शिवार्कमणिदीपिका आदि शैवधर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। कुवलयानन्द के भी ये कर्ता है। अप्पयदीक्षित ने त्रिविक्रम, हेमचन्द्र और लक्ष्मीधर का उल्लेख अपने ग्रन्थ मे किया है। ग्रन्थकार के कथनानुसार पुष्पवननाथ, वररुचि और अप्पयज्वन् ने जो

यह अयोग्य समझी जाती थी (श्लोक २१)। इसके समर्थन में लेखक ने दंडी का उद्धरण दिया है।

१ भामकवि की षड्भाषाचन्द्रिका, दुर्गणाचार्य की षड्भाषारूपमालिका तथा षड्भाषामजरी, षड्भाषासुबतादर्श और षड्भाषाविचार में भी इन्हीं छह भाषाओं का विवेचन है, देखिये षड्भाषाचन्द्रिका की भूमिका पृष्ठ ४।

२ श्रीनिवास गोपालाचार्य की टिप्पणी सहित ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पब्लिकेशन्स युनिवर्सिटी ऑव मैसूर की ओर से सन् १९५४ में प्रकाशित।

वार्तिकार्णवभाष्य आदि की रचना की वे बहुत विस्तृत थे, अतएव उन्होंने सक्षेप रुचिवाले पाठकों के लिये मणिदीपिका लिखी है। श्रीनिवासगोपालाचार्य ने इस व्याकरण पर सस्कृत मे टिप्पणी लिखी है।

प्राकृतानन्द

प्राकृतानन्द के रचयिता पडित रघुनाथ कवि ज्योतिर्वित सरस के पुत्र थे[1]। ये १८वी शताब्दी मे हुए है। इस ग्रन्थ मे ४१९ सूत्र है। प्रथम परिच्छेद मे शब्द और दूसरे मे धातु विचार किया गया है। जैसे सिहराज ने त्रिविक्रम के सूत्रो को प्राकृतरूपावतार मे सजाया है, वैसे ही रघुनाथ ने वररुचि के प्राकृतप्रकाश के सूत्रो को बडे ढग से प्राकृतानन्द मे सजाया है।

प्राकृत के अन्य व्याकरण

इसके सिवाय जैन और अजैन विद्वानों ने और भी प्राकृत के अनेक व्याकरण लिखे। शुभचन्द्र ने हेमचन्द्र का अनुकरण करके शब्दचितामणि,[2] श्रुतसागर ने औदार्यचिन्तामणि[3], समन्तभद्र ने प्राकृतव्याकरण और देवसुदर ने प्राकृतयुक्ति[4] की रचना की। धवला के टीकाकार वीरसेन ने भी किसी अज्ञात कर्तृक पद्यात्मक व्याकरण के सूत्रों का उल्लेख किया है। इस

1 यह ग्रथ सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहा है। मुनि जिनविजय जी की कृपा से इसकी मुद्रित प्रति मुझे देखने को मिली है।

2 देखिये डाक्टर ए० एन० उपाध्ये का एनल्स ऑव भडारकर ओरिएण्टल इस्टिट्यूट (जिल्द १३, पृ० ३७-३८) में 'शुभचन्द्र और उनका प्राकृत व्याकरण' नामक लेख।

3 भट्टनाथस्वामिन् (पृ० २९-४४) द्वारा प्रकाशित, प्रकाशन का समय नहीं दिया है।

4 देखिये जैन ग्रन्थावलि (पृष्ठ ३०७) में हस्तलिखित ग्रथों की सूची।

व्याकरणकार का समय ईसवी सन् की ८वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी के बीच माना गया[1] है। अजैन विद्वानों मे नरसिंह ने प्राकृतशब्दप्रदीपिका, कृष्णपंडित अथवा शेषकृष्ण ने प्राकृत चन्द्रिका[2] और प्राकृतपिंगल-टीका के रचयिता वामनाचार्य ने प्राकृतचन्द्रिका लिखी। इसी प्रकार प्राकृतकौमुदी, प्राकृतसाहित्य रत्नाकर,[3] षड्भाषासुबन्तादर्श, भाषार्णव आदि ग्रन्थ लिखे गये।[4]

यूरोप के विद्वानों ने प्राकृत के व्याकरणो का आधुनिक ढंग से सांगोपांग अध्ययन किया। सबसे पहले होएफर ने 'डे प्राकृत डिआलेक्टो लिब्रिदुओ' (बर्लिन से सन् १८३६ मे प्रकाशित) नामक पुस्तक लिखी। प्राय इसी समय लास्सन ने 'इन्स्टीट्यूत्सीओनेस लिंगुआए प्राकृतिकाए' (बौन से सन् १८३९ मे प्रकाशित) प्रकाशित की, जिसमे उन्होंने प्राकृतसम्बन्धी प्रचुर सामग्री एकत्रित कर दी। वेबर ने महाराष्ट्री और अर्धमागधी पर काम किया। एडवर्ड म्यूलर ने अर्धमागधी और हरमन याकोबी ने महाराष्ट्री का गम्भीर अध्ययन किया। कौवेल ने 'ए शार्ट इन्ट्रोडक्शन टू द आर्डिनरी प्राकृत ऑव द संस्कृत ड्रामाज़् विद् ए लिस्ट ऑव कॉमन इर्रेगुलर प्राकृत वर्ड्स' (लन्दन से १८७५ में प्रकाशित) पुस्तक लिखी। ह्येग ने 'फैरग्लाइशुंगडेस प्राकृता मित डेन रोमानिशन् श्प्राखन्' (बर्लिन से सन् १८६९— मे प्रकाशित) पुस्तक प्रकाशित की। होएर्नले ने भी प्राकृत व्युत्पत्तिशास्त्रों पर काम किया।[5] रिचर्ड पिशल का 'ग्रामेटिक डेर

---

१ देखिये डाक्टर हीरालाल जैन का भारतकौमुदी (पृष्ठ ३१५–२२) में 'ट्रेसेज़ ऑव ऐन ओल्ड मीट्रिकल ग्रामर' नामक लेख। भारतकौमुदी के इस अंक का समय नहीं ज्ञात हो सका।

२ यह श्लोकबद्ध है। पीटर्सन की थर्ड रिपोर्ट में पृष्ठ ३४२–४८ पर इसके उद्धरण दिये है।

३ शकुन्तलानाटक की चन्द्रशेखरकृत टीका में उल्लिखित।

४ देखिये पिशल, प्राकृतभाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ८८–९।

५ देखिये पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ९२–३।

प्राकृत श्प्राखेन' (स्ट्रैसवर्ग से सन् १६०० मे प्रकाशित) 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण' नाम से डाक्टर हेमचन्द्र जोशी द्वारा हिन्दी मे अनूदित होकर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हो चुका है।

(ख) छन्दोग्रन्थ

वृत्तजातिसमुच्चय

व्याकरण की भाँति काव्य को सार्थक बनाने के लिये छद की भी आवश्यकता होती है। छद के ऊपर भी प्राकृत मे ग्रन्थो की रचना हुई। वृत्तजातिसमुच्चय छदशास्त्र का प्राकृत मे लिखा हुआ एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रथ है जिसके कर्ता का नाम विरहाक है।[1] विरहाक जाति के ब्राह्मण थे तथा सस्कृत और प्राकृत के विद्वान् थे। दुर्भाग्य से ग्रन्थ के कर्ता का वास्तविक नाम जानने के हमारे पास साधन नहीं है। विरहाक ने अपनी प्रिया को लक्ष्य करके इस ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ के आदि मे ग्रन्थकर्ता ने सरस्वती को नमस्कार करने के पश्चात् गन्धहस्ति, सद्भावलाछन, पिंगल और अपलेपचिह्न को नमस्कार किया है। आगे चलकर विषधर (कम्बल और अश्वतर), सालाहण, भुजगाधिप और वृद्धकवि का भी उल्लेख किया है। दुर्भाग्य से विरहाक ने छन्दों का उदाहरण देने के लिये तत्कालीन प्राकृत और अपभ्रश के कवियों की रचनाओं का उपयोग अपने ग्रन्थ मे नहीं किया। उस समय अपभ्रश बोलियाँ प्राकृत भाषाओं के साथ स्थान प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हो रही थीं, इसके ऊपर से प्रोफेसर वेलेनकर ने कवि विरहाक का समय ईसवी सन् की छठी और आठवी शताब्दी के बीच स्वीकार किया है।

---

१ यह ग्रन्थ प्रोफेसर एच० डी० वेलेनकर द्वारा सपादित होकर उनकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना के साथ सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई से शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। मुनि जिनविजय जी की कृपा से यह मुद्रित ग्रन्थ मुझे देखने को मिला है।

वृत्तजातिसमुच्चय पद्यात्मक प्राकृत भाषा मे लिखा गया है जिसमे मात्राछद और वर्णछन्द के सम्बन्ध मे विचार किया गया है। यह ग्रन्थ छह नियमों मे विभक्त है। पहले नियम मे प्राकृत के समस्त छन्दो के नाम गिनाये है जिन्हें आगे के समयों मे समझाया गया है। तीसरे नियम मे द्विपदी छन्द के ५२ प्रकारो का प्रतिपादन है। चौथे नियम मे प्राकृत के सुप्रसिद्ध गाथा-छन्द का लक्षण बताया है, इसके २६ प्रकार है। पाँचवाँ नियम सस्कृत मे है, इसमे सस्कृत के ५० वर्णछन्दों का वर्णन है। छठे नियम मे प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, लघुक्रिया, सख्या और अध्वान नामके छह प्रत्ययो का लक्षण बताया है। विरहाक ने अडिला, ढोसा, मागधिका और मात्रा रड्डा को क्रम से आभीरी, मारुवाई (मारवाडी), मागधी और अपभ्रश से उपलक्षित कहा है (४-२८-३६) चक्रपाल के पुत्र गोपाल ने वृत्तजातिसमुच्चय की अनेक प्रतियों को देख कर उस पर टीका लिखी है। टीकाकारने पिगल, सैतव, कात्यायन, भरत, कबल और अश्वतर को नमस्कार किया है।

कविदर्पण

नन्दिषेणकृत अजितशान्तिस्तव के ऊपर लिखी हुई जिनप्रभ की टीका मे कविदर्पण का उल्लेख मिलता है। यह टीका सम्वत् १३६५ मे लिखी गई थी। दुर्भाग्य से कविदर्पण और उसके टीकाकार का नाम अज्ञात है[1]। मूल ग्रन्थकर्ता और टीकाकार

---

१ यह ग्रथ प्रोफेसर एच० डी० वेलेनकर द्वारा सपादित सिंघी जैनग्रन्थमाला बम्बई से प्रकाशित हो रहा है। मुद्रित ग्रथ मुझे मुनि जिनविजयजी की कृपा से देखने को मिला है। इसी के साथ नन्दिताढ्य का गाथालक्षण, रत्नशेखरसूरि का छन्द कोश और नन्दिषेण के अजित-शांतिस्तव की जिनप्रभीय टीका के अन्तर्गत छन्दोलक्षणानि भी प्रकाशित हो रहे हैं।

दोनों जैन थे और दोनों ने हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन के उद्धरण दिये है। जिनप्रभ के समय छन्द का यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध था, इसीलिये अजितशान्तिस्तव के छन्दों को समझाने के लिये जिन प्रभ ने हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन के स्थान पर कविदर्पण का ही उपयोग किया है। प्रोफेसर वेलेनकर ने कविदर्पण का रचनाकाल ईसवी सन् की १३ वी शताब्दी माना है। छन्दोनुशासन के अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे सिंहहर्ष की रत्नावलि नाटिका तथा जिनसूरि, सूरप्रभसूरि और तिलकसूरि की रचनाओ के उद्धरण दिये है। भीमदेव, कुमारपाल, जयसिंहदेव और शाकभरिराज नामके राजाओ का यहाँ उल्लेख है। स्वयभू, मनोरथ और पादलिप्त की कृतियो मे से भी यहाँ उद्धरण दिये गये है। टीकाकार ने छद कदली का उल्लेख किया है। वे मूल ग्रन्थकर्ता के समकालीन जान पडते है। कविदर्पण मे छह उद्देश है। पहले उद्देश मे मात्रा, वर्ण और उभय के भेद से तीन प्रकार के छन्द बताये है। दूसरे उद्देश मे मात्राछन्द के ११ प्रकारों का वर्णन है। तीसरे उद्देश मे सम, अर्धसम और विषम नामके वर्णछन्दो का स्वरूप है। चौथे उद्देश मे समचतुष्पदी, अर्धसमचतुष्पदी और विषमचतुष्पदी के वर्णछन्दो का विवेचन है। पाँचवे उद्देश मे उभयछन्दों और छठे उद्देश मे प्रस्तार और सख्या नाम के प्रत्ययों का प्रतिपादन है।

गाहालक्खण (गाथालक्षण)

गाथालक्षण प्राकृत छदों पर लिखी हुई एक अत्यन्त प्राचीन रचना है जिसके कर्ता नन्दिताढ्य हैं। इसमे ९७ गाथाओ मे गाथाछद का निर्देश है। नन्दिताढ्य ने ग्रन्थ के आदि मैं नेमिनाथ भगवान् को नमस्कार किया है जिससे उनका जैन धर्मानुयायी होना निश्चित है। ग्रन्थकार ने अपभ्रंश भाषा के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया है (गाथा ३१)। इससे अनुमान किया जाता है कि नन्दिताढ्य ईसवी सन् १००० के आसपास

मे मौजूद रहे होंगे। गाथालक्षण पर रत्नचन्द्र ने टीका लिखी है।[1]

छन्दःकोश

छन्द कोश मे ७४ गाथाओं मे अपभ्रश के कुछ छदों का विवेचन है। यह रचना प्राकृत और अपभ्रश दोनों मे लिखी गई है। इसके कर्ता वज्रसेनसूरि के शिष्य जैन विद्वान् रत्नशेखरसूरि है जो ईसवी सन् की १४वी शताब्दी के द्वितीयार्ध मे हुए है। इस रचना मे अर्जुन (अल्हु) और गोसल (गुल्हु) नामक छदशास्त्र के दो विद्वानों का उल्लेख मिलता है। चन्द्रकीत्ति सूरि ने इस पर १७वी शताब्दी मे टीका लिखी है।

छन्दोलक्षण (जिनप्रभीय टीका के अन्तर्गत)

नन्दिषेणकृत अजितशान्तिस्तव के ऊपर जिनप्रभ ने जो टीका लिखी है उसके अन्तर्गत छद के लक्षणों का प्रतिपादन किया है। इस टीका मे कविदर्पण का उल्लेख मिलता है, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। नन्दिषेण ने अजितशातिस्तव मे २५ विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है, इन्हीं का विवेचन जिनप्रभ की टीका मे किया गया है।

छंदःकंदली

कविदर्पण के टीकाकार ने अपनी टीका मे छद कदली का उल्लेख किया है। छदशास्त्र के ऊपर लिखी हुई प्राकृत की यह रचना थी। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। कविदर्पण के टीकाकार ने छद कदली मे से उद्धरण दिये है।

---

१ जैसलरमेर भांडागारीय ग्रन्थसूची (पृष्ठ ६१) के अनुसार भट्टमुकुल के पुत्र हर्षट ने इस पर विवृति लिखी है, देखिये प्रोफेसर हीरालाल कापडिया, पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृष्ठ ६२ फुटनोट।

प्राकृतपैंगल

प्राकृतपैंगल[1] मे भिन्न भिन्न ग्रन्थकारों की रचनाओ मे से प्राकृत छन्दों के उदाहरण दिये गये है। आरभ मे छन्दशास्त्र के प्रवर्तक पिगलनाग का स्मरण किया है। यहाँ मेवाड के राजपूत राजा हमीर (राज्यकाल का समय ईसवी सन् १३००) तथा सुलतान, खुरसाण, ओल्ला, साहि, आदि का उल्लेख पाया जाता है। हरिबभ, हरिहरबभ, विज्जाहर, जज्जल आदि कवियों का सग्रहकर्ता ने नाम निर्देश किया है। राजशेखर की कर्पूर मजरी मे से यहाँ कुछ पद्य उद्धृत हैं। इन सब उल्लेखो के ऊपर से प्राकृतपैंगल के सग्रहकर्ता का समय आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात ही स्वीकार किया जाता है। इस कृति पर ईसवी सन् की १६वीं अथवा १७वीं शताब्दी के आरभ मे टीकायें लिखी गई है। विश्वनाथपचानन की पिगलटीका, वशीधरकृत पिगल प्रकाश, कृष्णीयविवरण तथा यादवेन्द्रकृत पिगलतत्त्वप्रकाशिका नाम की टीकाये मूलग्रन्थ के साथ प्रकाशित हुई है। अवहट्ठ का प्रयोग यहाँ काफी मात्रा मे मिलता है।

स्वयंभूछन्द

यह छन्दोग्रन्थ[2] महाकवि स्वयभू का लिखा हुआ है जिसमे अपभ्रश छन्दो के उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। स्वयभू की पउमचरिय मे से यहाँ अनेक उदाहरण दिये है। स्वयभूछन्द के कितने ही छद के लक्षण और उदाहरण हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन मे पाये जाते है।

---

१ चन्द्रमोहनघोष द्वारा सपादित, द एशियाटिक सोसायटी ऑव बगाल, कलकत्ता द्वारा १९०२ में प्रकाशित।

२ यह ग्रथ प्रोफेसर एच० डी० वेलेनकर के सम्पादकत्व में सिन्धी जैन ग्रन्थमाला सीरीज में प्रकाशित हो रहा है। इसकी मुद्रित प्रति मुनि जिनविजय जी की कृपा से देखने को मुझे मिली है।

(ग) कोश

पाइयलच्छीनाममाला

सस्कृत मे जो स्थान, अमरकोश का है, वही स्थान प्राकृत मे धनपाल की पाइयलच्छीनाममाला का है। धनपाल ने अपनी छोटी बहन सुन्दरी के लिये विक्रम सवत् १०२९ (ईसवी सन् ९७२) मे धारानगरी मे इस कोश की रचना की थी। प्राकृत का यह एकमात्र कोश है। व्यूलर के अनुसार इसमे देशी शब्द कुल एक चौथाई है, बाकी तत्सम और तद्भव हैं।[1] इसमे २७९ गाथाये आर्या छद मे हैं जिनमे पर्यायवाची शब्द दिये गये है। हेमचन्द्र के अभिधानचिन्तामणि मे तथा शारगधरपद्धति मे धनपाल के पद्यो के उद्धरण मिलते है, इससे पता लगता है कि धनपाल ने और भी ग्रन्थों की रचना की होगी जो आजकल उपलब्ध नही है। ऋषभपचाशिका मे इन्होंने ऋषभनाथ भगवान् की स्तुति की है। इसके सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है।

हेमचन्द्रसूरि ने अपनी रयणावलि (रत्नावलि) नामकी देसीनाममाला मे धनपाल, देवराज, गोपाल, द्रोण, अभिमानचिह्न, पादलिप्ताचार्य और शीलाक नामक कोशकारो का उल्लेख किया है, अज्ञात कवियों के उद्धरण भी यहाॅ दिये गये है। दुर्भाग्य से इन कोशकारों की रचनाओं का अभीतक पता नहीं चला।

(घ) अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों मे प्राकृत

जैसे भाषा के अध्ययन के लिये व्याकरणशास्त्र की आवश्यकता होती है वैसे ही काव्य मे निपुणता प्राप्त करने के लिये

---

१ गेऑर्ग व्यूलर द्वारा सपादित होकर गोएटिंगन में सन् १८७९ में प्रकाशित। गुलाबचन्द लालुभाई द्वारा सवत् १९७३ में भावनगर से भी प्रकाशित। अभी हाल में पण्डित बेचरदास द्वारा सशोधित होकर बम्बई से प्रकाशित।

अलकारशास्त्र की आवश्यकता होती है। काव्य के स्वरूप, रस, दोष, गुण, रीति और अलकारो का निरूपण अलकारशास्त्र मे किया जाता है। वैदिक और लौकिक ग्रन्थो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये अलकारशास्त्र का ज्ञान नितान्त आवश्यक बताया है। राजशेखर ने तो इसे वेद का अग ही मान लिया है। अलकारशास्त्र के कितने ही प्राचीन और अर्वाचीन प्रणेता हुए है जिनमे भरत, भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तल, अभिनवगुप्त, वाग्भट, रुय्यक, भोजराज, मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित और पण्डितराज जगन्नाथ के नाम मुख्य है। अलकारशास्त्र के इन दिग्गज पडितो ने प्राकृत भाषाओं सबधी चर्चा करने के साथ-साथ ग्रन्थ मे प्रतिपादित विषय के उदाहरणस्वरूप प्राकृत के अनेक सरस पद्य उद्धृत किये है जिससे पता लगता है कि इन विद्वानो के समक्ष प्राकृत साहित्य का अनुपम भण्डार था। इनमे से बहुत से पद्य गाथासप्तशती, सेतुबन्ध, गउडवहो, रत्नावलि, कर्पूरमञ्जरी आदि से उद्धृत है, अनेक अज्ञातकर्तृक है। विश्वनाथ ने अपने कुवलयाश्वचरित से कुछ पद्य उद्धृत किये है। दुर्भाग्य से इन ग्रन्थो के प्राकृत अश का जैसा चाहिये वैसा आलोचनात्मक सपादन नहीं हुआ, इसलिये प्रकाशित सस्करणो पर ही अवलबित रहना पडता है।[1]

काव्यादर्श

काव्यादर्श के रचयिता दण्डी (ईसवी सन् ७-८वीं शताब्दी का मध्य) अलकारसम्प्रदाय के एक बहुत बड़े विद्वान् थे। उन्होने काव्य की शोभा बढ़ानेवाले अलकारों का अपने ग्रथ मे वर्णन किया है। काव्यादर्श[2] (१३२) मे सस्कृत, प्राकृत,

---

१ पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ ७५-७६।

२ आचार्य रामचन्द्र मिश्र द्वारा सपादित, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी से सवत् २०१७ में प्रकाशित।

अपभ्रंश और मिश्र के भेद से चार प्रकार की भाषाओं का उल्लेख है। यहाँ सूक्तियों का सागर होने के कारण महाराष्ट्र मे बोली जानेवाली भाषा को प्रकृष्ट प्राकृत माना है। शौरसेनी, गौडी, लाटी तथा अन्य देशों मे बोली जानेवाली भाषाओं को प्राकृत तथा गोप, चाण्डाल और शकार आदि द्वारा बोली जानेवाली भाषाओं को अपभ्रंश कहा है। बृहत्कथा को भूत भाषामयी और अद्भुत अर्थवाली बताया है।

काव्यालंकार

रुद्रट (ईसवी सन् की ९वीं शताब्दी के पूर्व) भी अलकार सप्रदाय के अनुयायी है। अलकारशास्त्रके समस्त सिद्धातों की इन्होंने अपने काव्यलकार मे विस्तृत समीक्षा की है। यद्यपि उन्होंने भाषा, रीति, रस, और वृत्ति का सम्यक् रूप से वर्णन किया है, लेकिन अलकारो का वर्णन इनके ग्रन्थ की विशेषता है। ग्रन्थ मे दिये हुए उदाहरण इनके अपने है। इनके काव्यालकार[1] मे प्राकृत, सस्कृत, मागधी, पैशाची, शौरसेनी और देशविशेष के भेदवाली अपभ्रंश—इस प्रकार भाषा के छह भेद बताये है। जैन पडित नमिसाधु ने काव्यालकार पर टिप्पणी लिखी है। रुद्रट ने उक्त छहो भाषाओ के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये सस्कृत-प्राकृत मिश्रित गाथाओं की रचना की है। इन गाथाओं के सस्कृत और प्राकृत मे अलग अलग अर्थ निकलते है। कहीं कही प्रश्नोत्तर के ढग की गाथाये पाई जाती हैं।

इसके सिवाय धनजय ने दशरूपक (२ ४६–७१), भोजराज ने सरस्वतीकठाभरण (२ ७–२९) और विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण (६ १५८–१६९) मे प्राकृत भाषाओं के सबध मे चर्चा की है।

---

१ पडित दुर्गाप्रसाद द्वारा सपादित, निर्णयसागर, बबई द्वारा सन् १९०९ में प्रकाशित।

ध्वन्यालोक

ध्वन्यालोक की मूलकारिका और उसकी विवृति के रचयिता आनन्दवर्धन काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा (ईसवी सन् ८५५-८८३) के सभापति थे। अभिनवगुप्त ने इस ग्रंथ पर टीका लिखी है। ध्वन्यालोक में ध्वनि को ही काव्य की आत्मा माना गया है। आनन्दवर्धन के समय से अलकार ग्रन्थों में महाराष्ट्री प्राकृत के पद्य बहुलता से उद्धृत किये जाने लगे। ध्वन्यालोक[1] और अभिनवगुप्त की टीका में प्राकृत की लगभग ४६ गाथायें मिलती है। नीति की एक उक्ति देखिये—

होइ ण गुणाणुराओ खलाण णवर पसिद्धिसरणाणम्।
किर पह्लवइ ससिमणी चन्दे ण पिआमुहे दिट्ठे॥
(११३ टीका)

—प्रसिद्धि को प्राप्त दुष्टजनो के प्रति गुणानुराग उत्पन्न नही होता। जैसे चन्द्रमणि चन्द्र को देखकर ही पसीजती है, प्रिया का मुख देखकर नही।

एक दूसरी उक्ति देखिये—

चन्दमऊएहिं णिसा णलिनी कमलेहि कुसुमगुच्छेहि लआ।
हसेहिं सरहसोहा कव्वकहा सज्जणेहिं करइ गरुइ॥
(२५० टीका)

—रात्रि चन्द्रमा की किरणो से, नलिनी कमलों से, लता पुष्प के गुच्छो से, शरद् हसो से और काव्यकथा सज्जनों से शोभा को प्राप्त होती है।

दशरूपक

दशरूपक (अथवा दशरूप) के कर्त्ता धनजय (ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी) मालवा के परमारवश के राजा मुञ्ज के राजकवि थे। दशरूपक भरत के नाट्यशास्त्र के ऊपर आधारित

---

१ पट्टाभिरामशास्त्री द्वारा सम्पादित, चौखबा संस्कृत सीरिज़, बनारस से सन् १९४० में प्रकाशित।

है, यह कारिकाओं में लिखा गया है। इसके ऊपर धनंजय के लघु भ्राता धनिक ने अवलोक नाम की वृत्ति लिखी है। दशरूपक[1] में प्राकृत के २६ पद्य उद्धृत हैं। कुछ पद्य गाथा सप्तशती, रत्नावलि और कर्पूरमंजरी से लिये हैं, कुछ स्वतंत्र हैं। धनिक के बनाये हुए पद्य भी यहाँ मिलते हैं। लज्जावती भार्या की प्रशंसा सुनिये—

लज्जापज्जत्तपसाहणाइ परतित्तिणिप्पिवासाइ।
अविणअदुम्मेहाइ धण्णाण घरे कलत्ताइ॥ (२ १५)

—लज्जा जिसका यथेष्ट प्रसाधन है, पर-पुरषों में निस्पृह और अविनय से अनभिज्ञ ऐसी कलत्र किसी भाग्यवान् के ही घर होती है।

वृत्तिकार धनिक द्वारा रचित एक पद्य देखिये—

त चिअ वअण ते च्चेअ लोअणे जोव्वण पि त च्चेअ।
अण्णा अणगलच्छी अण्ण चिअ किं पि साहेइ॥ २ ३३)

—वही वचन है, वही नेत्रों में मदमाता यौवन है, लेकिन कामदेव की शोभा कुछ निराली है और वह कुछ और ही बता रही है।

सरस्वतीकंठाभरण

भोजराज (ईसवी सन् ९९६–१०५१) मालव देश की धारा नगरी के निवासी थे। उन्होंने रामायणचम्पू, शृङ्गारप्रकाश आदि की रचना की है। शृंगारप्रकाश[2] और सरस्वतीकंठाभरण उनके अलंकारशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। शृंगारप्रकाश में कुल मिलाकर ३६ प्रकाश हैं, जिनमें से २६वाँ प्रकाश लुप्त हो गया है। इस ग्रन्थ में अनंगवती, इन्दुलेखा, चारुमती, बृहत्कथा, मलयवती,

---

१ वासुदेव लक्ष्मणशास्त्री पणसीकर द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई से सन् १९२८ में प्रकाशित।

२ प्रथम भाग के १–८ प्रकाश जी० आर० जोसयेर द्वारा संपादित, सन् १९५५ में मैसूर से प्रकाशित, प्रथम भाग के २२–२४ प्रकाश सन् १९२६ में मद्रास से प्रकाशित।

माधविका, शकुन्तिका आदि अनेक रचनाओं का उल्लेख है। ग्रन्थकर्ताओं के नामों में शाकल्य, वागुरि, त्रिकटनितबा आदि नाम मुख्य है। इन उल्लेखों से इस ग्रन्थ की महत्ता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। शृङ्गार रस प्रधान प्राकृत पद्यों का यहाँ विशेषरूप से उल्लेख किया गया है। भोजराज ने शृगार रस को सब रसों में प्रधान स्वीकार किया है। इन के सरस्वती-कठाभरण[1] मे ३३१ प्राकृत पद्य है, जिनमे अधिकाश गाथा-सप्तशती और रावणवहो मे से लिये गये है, कुछ कालिदास, श्रीहर्ष, राजशेखर आदि से लिये गये है, कुछ अज्ञातकर्तृक है।

किसी पथिक के प्रति नायिका की उक्ति है

कत्तो लभइ पत्थिअ! सत्थरअ एत्थ गामणिघरम्मि।
उण्णपओहरे पेक्खिअ उण जइ वससि ता वससु॥
(परिच्छेद १)

—हे पथिक! यहाँ ग्रामणी के घर मे तुझे निस्तरा कहाँ से मिलेगा? उन्नत पयोधर देखकर यदि तू यहाँ ठहरना चाहता है तो ठहर जा।

एक दूसरा सुभापित देखिये—

ण उणवर कोअण्डदण्डए पुत्ति! माणुसे वि एमेअ।
गुणवज्जिएण जाअइ वसुप्पण्णो वि टक्कारो॥ (परिच्छेद ३)

—हे पुत्रि! धनुप के दण्ड मे ही यह बात नहीं बल्कि मनुष्य के सबन्ध मे भी यही बात है कि सुवश (बाँस और अच्छा वश) मे उत्पन्न होने पर भी गुण (रस्सी और गुण) रहित होने पर उसमे टकार नहीं होती।

---

१ इसके प्रथम, द्वितीय, और तृतीय परिच्छेद पर रत्नेश्वर की व्याख्या है, चतुर्थ और पचम परिच्छेद पर जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य ने व्याख्या लिखी है। कलकत्ता से ईसवी सन् १८९४ में प्रकाशित। रत्नसिंह (१-३) और जगद्धर (४) की टीकासहित पण्डित केदारनाथ शर्मा द्वारा सम्पादित, बम्बई १९३४ में प्रकाशित।

कृषक वधुओं के स्वाभाविक सौन्दर्य पर दृष्टिपात कीजिये—

सालिवणगोविआए उड्डावन्तीअ पूसविन्दाइम्।
सव्वगसुन्दरीए वि पहिआ अच्छीइ पेच्छन्ति ॥ (परिच्छेद ३)

—पथिकगण शालिवन मे छिपी हुई शुकों को उडाती हुई सर्वांगसुन्दरियो के नयनो को ही देखते है।

धीर पुरुषों की महत्ता का वर्णन पढिये—

सच्च गरुआ गिरिणो को भणइ जलासआ ण गभीरा।
धीरेहि उवमाउ तहवि हु मह णात्थि उच्छाहो (परिच्छेद ४)

—यह सत्य है कि पर्वत महान् होते है और कौन कहता है कि तालाब गम्भीर नही होते ? फिर भी धीर पुरुषों के साथ उनकी उपमा देने के लिये उत्साह नही होता।

कौन सच्चा प्रेमी है और कौन स्वामी है ?

दूणन्ति जे मुहुत्त कुविआ दासव्विअ ते पसाअन्ति।
ते च्चिअ महिलाण पिआ सेसा सामिच्चिअ वराआ॥ (परिच्छेद ५)

—जो अल्पकाल के लिये भी कुपित अपनी प्रिया को देखकर दुखी होते है और उन्हें दास की भाँति प्रसन्न करते है, वे ही सचमुच महिलाओं के प्रिय कहलाते है, बाकी तो वेचारे स्वामी हैं।

अलंकारसर्वस्व

अलकारसर्वस्व के कर्ता राजानक रुय्यक काश्मीर के राजा जयसिह (ईसवी सन् ११२८-४६) के साधिविग्रहिक महाकवि मखुक के गुरु थे।[1] इस ग्रथ मे अलकारों का बडा पाडित्यपूर्ण वर्णन किया गया है। जयरथ ने इस पर विमर्शिनी नाम की व्याख्या लिखी है। अलकारसर्वस्व मे प्राकृत के लगभग १० पद्यों को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस सूत्र पर मखुक ने वृत्ति लिखी है।

---

१ टी० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज़ में सन् १९१५ में प्रकाशित।

एक उदाहरण देखिये—

रेहइ मिहिरेण णहं रसेण कव्वं सरेण जोव्वणणम् ।
अमएण धुणीधवओ तुमए णरणाह ! भुवणमिणम् ॥
(दीपकनिरूपण, पृ० ७४)

—चन्द्रमा से आकाश, रस से काव्य, कामदेव से यौवन और अमृत से समुद्र शोभा को प्राप्त होता है, लेकिन हे नरनाथ ! तुम से तो यह समस्त भुवन शोभित हो रहा है।

आक्षेपनिरूपण का उदाहरण—

सुहअ ! विलम्बसु थोअ जाव इम विरहकाअर हिअअ ।
सठाविऊण भणिस्स अहवा बोलेसु कि भणिमो ॥
(आक्षेपनिरूपण, पृ० १४०)

—हे सुभग ! जरा ठहर जाओ। विरह से कातर इस हृदय को जरा सभाल कर फिर बात करूँगी। अथवा फिर चले जाओ, बात ही क्या करूँ ?

काव्यप्रकाश

मम्मट (ईसवी सन् की १२वी शताब्दी) काश्मीर के निवासी थे और बनारस मे आकर उन्होंने अध्ययन किया था। उनका काव्यप्रकाश अलकारशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिस पर अनेक-अनेक टीकाये लिखी गई हैं। काव्यप्रकाश में प्राकृत की ४६ गाथाये उद्धृत है। एक सखी की किसी नायिका के प्रति उक्ति देखिये—

पविसती घरवारं विवलिअवअणा विलोइऊण पहम् ।
खधे घेत्तूण घड हाहा णट्ठोत्ति रुअसि सहि कि ति ॥ (४ ९०)

—हे सखि ! कधे पर घडा रखे घर के दरवाजे मे प्रवेश करती हुई पथ (सकेत स्थान) को देखकर तेरी आँखे उधर लग गईं, फिर यदि घड़ा फूट गया तो अब रोने से क्या लाभ ?

एक श्लेषोक्ति देखिये—

महदे सुरसन्धम्मे तमवसमासगमागमाहरणे ।
हरबहुसरणं त चित्तमोहमवसर उमे सहसा ॥ (९ ३७२)

(क) प्राकृत भाषा के श्लोक का अर्थ—

(मह देसु रस धम्मे, तमवसम् आसम् गमागमा हरणे। हरबहु ! सरण त चित्तमोह अवसरउ मे सहसा)

—हे हरवधु गौरि ! तुम्हीं एक मात्र शरण हो, धर्म मे मेरी प्रीति उत्पन्न करो, आवागमन के निदान इस ससार मे मेरी तामसी वृत्ति का नाश करो, और मेरे चित्त का मोह शीघ्र ही दूर करो !

(ख) सस्कृत भाषा के श्लोक का अर्थ—

(हे उमे ! मे महदे आगमाहरणे त सुरसन्ध समासग अव, अवसरे (च) बहुसरण चित्तमोह सहसा हर)

—हे उमे ! मेरे जीवन के महोत्सवरूप आगमविद्या के उपार्जन मे देवों द्वारा भी सदा अभीप्सित मेरे मनोयोग की निरन्तर रक्षा करो, और समय समय पर प्रसरणशील चित्तमोह को शीघ्र ही हटाओ।

प्रतीपालकार का उदाहरण देखिये—

ए एहि दाव सुन्दरि ! कण्ण दाऊण सुणसु वअणिज्जम् ।
तुज्झ मुहेण किसोअरि ! चन्दो उवमिज्जइ जणेण ॥ १० ५५४

—हे सुन्दरि ! हे कृशोदरि ! इधर आ, कान देकर अपनी इस निन्दा को सुन कि अब लोग तेरे मुख की उपमा चन्द्रमा से देने लगे है !

काव्यानुशासन

मम्मट के काव्यप्रकाश के आधार पर हेमचन्द्र, विश्वनाथ और पडितराज जगन्नाथ ने अपनी अपनी रचनाये प्रस्तुत की है। सर्वप्रथम कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन की रचना की। जैसे उन्होंने व्याकरण पर शब्दानुशासन (सिद्धहेम) और छन्दशास्त्र पर छन्दोनुशासन लिखा, वैसे ही काव्य के ऊपर काव्यानुशासन लिखकर उसमे काव्य समीक्षा की। हेमचन्द्र के

काव्यानुशासन[1] और उसकी स्वोपज्ञवृत्ति मे शृङ्गार और नीति सबधी ७८ प्राकृत पद्य सग्रहीत है जो गाथासप्तशती, सेतुबध, कर्पूरमजरी, रत्नावलि आदि से लिये गये है।

किसी नायिका की नाजुकता पर ध्यान दीजिये—

सणिय वच्च किसोयरि ! पए पयत्तेण ठवसु महिवट्ठे।
भज्जिहिसि वत्थ (ट्ट) यत्थणि विहिणा दुक्खेण निम्मविया॥
(१ १६ २१)

—हे किशोरि ! धीरे चल अपने पैरों को बडे हौले हौले पृथ्वी पर रख। हे गोलाकार स्तनवाली ! नहीं तो तू गिर जायेगी, विधि ने बडे कष्ट से तेरा सर्जन किया है।

युद्ध के लिये प्रस्थान करते हुए नायक की मनोदशा पर दृष्टिपात कीजिये—

एकत्तो रुअइ पिआ अण्णत्तो समरतूरनिग्घोसो।
नेहेण रणरसेण य भडरस दोलाइय हिअअम्॥
(३ २ टीका १८७)

एक ओर प्रिया रुदन कर रही है, दूसरी ओर रणभेरी बज रही है। इस प्रकार स्नेह और युद्धरस के बीच भट का हृदय दोलायमान हो रहा है।

का विसमा दिव्वगई किं लट्ठ ज जणो गुणग्गाही।
कि सुक्ख सुकलत्त किं दुग्गेज्झ खलो लोओ॥
६ २६ ६५०)

—विषम क्या है ? दैवगति। सुदर क्या है ? गुणग्राही जन। सुख क्या है ? अच्छी स्त्री। दुर्ग्राह्य क्या है ? दुष्टजन।

साहित्यदर्पण

मम्मट के काव्यप्रकाश के ढाँचे पर काव्यप्रकाश की आलोचना के रूप मे कविराज विश्वनाथ (ईसवी सन् की १४वीं

---

१ रसिकलाल सी० परीख द्वारा सम्पादित, श्रीमहावीर जैन विद्यालय, बबई द्वारा १९३८ में दो भागों में प्रकाशित।

शताब्दी का पूर्व भाग) ने साहित्यदर्पण की रचना की[1]। ये उत्कलदेश के रहनेवाले थे और सुलतान अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी के समकालीन थे। इन्होंने राघवविलास, कसवध, प्रभावतीपरिणय, चन्द्रकलानाटिका आदि के अतिरिक्त कुवलयाश्वचरित नाम के प्राकृत काव्य की भी रचना की थी। प्रशस्त रत्नावलि मे इन्होंने १६ भाषाओं का प्रयोग किया था। बहुभाषावित् होने के कारण ही ये 'अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजग' नाम से प्रख्यात थे। विश्वनाथ के पिता महाकवीश्वर चन्द्रशेखर भी चौदह भाषाओ के विद्वान् थे। इन्होंने भाषार्णव नामक ग्रन्थ मे प्राकृत और सस्कृत भाषाओं के लक्षणों का विवेचन किया है। साहित्यदर्पण मे प्राकृत के ७४ पद्य उद्धृत है, इनमे से अधिकाश गाथासप्तशती से लिये गये हैं, कुछ स्वय लेखक के है, कुछ रत्नावली से तथा कुछ काव्यप्रकाश, दशरूपक और ध्वन्यालोक से उद्धृत है। कुछ अज्ञात कवियों के है। निम्नलिखित पद्य 'यथा[2]मम' लिखकर उद्धृत किया गया है—

पन्थिअ ! पिआसिओ विअ लच्छीअसि जासि ता किमण्णत्तो।
ण मण वि वारओ इध अत्थि घरे घणरस पिअन्ताण॥
(३ १२८)

—हे पथिक ! तू प्यासा मालूम होता है, तू अन्यत्र कहाँ जाता हुआ दिखाई देता है। मेरे घर मे गाढ रस का पान करनेवालों को कोई रोक नहीं है।

किसी विरहिणी की दशा देखिये—

भिसणीअलसअणीए निहिअ सव्व सुणिच्चल अग।
दीहो णीसासहरो एसो साहेइ जीअइ त्ति पर॥
(३ १६२)

---

१ श्रीकृष्णमोहन शास्त्री द्वारा सपादित, चोखवा सस्कृत सीरीज़ द्वारा सन् १९४७ में प्रकाशित।

२ सातवें परिच्छेद में पृष्ठ ४९८ पर एक और गाथा 'ओवहइ उल्लहइ' आदि 'यथा मम' कह कर उद्धृत है।

—कमलिनीदल के शयनीय पर समस्त अग निश्चल रूप से स्थापित कर दिया गया (जिससे नायिका मृतक की भाँति जान पड़ने लगी), उसके दीर्घ निश्वास की बहुलता से ही पता लगता है कि वह अभी जीवित है।

रसगंगाधर

पडितराज जगन्नाथ को शाहजहाँ (ईसवी सन् १६२८-१६५७) ने अपने पुत्र दाराशिकोह को सस्कृत पढाने के लिये दिल्ली आमन्त्रित किया था। इनकी विद्वत्ता से प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने इन्हें पडितराज की पदवी से विभूषित किया। शाहजहाँ के दरबार मे रहते हुए पडितराज ने दाराशिकोह की प्रशस्ति मे 'जगदाभरण' और नवाब आसफ की प्रशस्ति मे 'आसफविलास' की रचना की। रसगगाधर[1] के अतिरिक्त इन्होंने गगालहरी, भामिनीविलास आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की है।

रसगगाधर मे उद्धृत एक गाथा देखिये—

ढुढुणन्तो हि मरीहिसि कटककलिआइ केअइवणाइ।
मालइ कुसुमसरिच्छ भमर ! भयन्तो न पाविहिमि॥

(पृ० १६४)

—हे भ्रमर ! तू ढूँढते ढूँढते मर जायेगा, केतकी के वन काँटो से भरे है। मालती के पुष्पों के समान इन्हें तू कभी भी प्राप्त न कर सकेगा।

---

१ पडित दुर्गाप्रसाद द्वारा सपादित, निर्णयसागर प्रेस, बबई से सन् १८८८ में प्रकाशित।

ग्यारहवाँ अध्याय

शास्त्रीय प्राकृत साहित्य

(ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर १४ वी शताब्दी तक)

धार्मिक, पौराणिक और लोकसाहित्य के अलावा अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, हस्तरेखा, मत्र त्रत्र और वैद्यक आदि शास्त्रीय (टेक्निकल) विषयों पर भी जैन अजैन विद्वानों ने प्राकृत भापा मे साहित्य की रचना की है। साधुजीवन मे इन सब विपयों के ज्ञान की आवश्यकता होती थी, तथा धर्म और लोकहित के लिये कितनी ही बार जैन साधुओं को ज्योतिष, वैद्यक, मत्र तत्र, आदि का प्रयोग आवश्यक हो जाता था। जैन शास्त्रों मे भद्रबाहु, कालक, खपुट, वज्र, पादलिप्त, विष्णुकुमार आदि कितने ही आचार्य और मुनियों का उल्लेख मिलता है जो धर्म और सघ पर सकट उपस्थित होने पर विद्या, मत्र, आदि का आश्रय लेने के लिये बाध्य हुए। यहाँ इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले प्राकृत साहित्य का परिचय दिया जाता है।

अत्थसत्थ (अर्थशास्त्र)

प्राचीन जैन ग्रन्थों मे अत्थसत्थ के नामोल्लेखपूर्वक प्राकृत की गाथाये उद्धृत मिलती है। चाणक्य के नाम से भी कुछ वाक्य उद्धृत है। इससे जान पडता है कि प्राकृत मे अर्थशास्त्र के नाम का कोई ग्रन्थ अवश्य रहा होगा। हरिभद्रसूरि ने धूर्ताख्यान मे खडपाणा को अर्थशास्त्र का निर्माता बताया है।

पादलिप्त की तरगवती के आधार पर लिखी गई नेमिचन्द्र-गणि की तरगलोला मे अत्थसत्थ की निम्नलिखित गाथाये उद्धृत है—

तो भणइ अत्थसत्थमि वण्णिय सुयुणु ! सत्थयारेहिं।
दूती परिभव दूती न होइ कज्जस्स सिद्धकरी॥

एत्तो हु मतभेओ दूतीओ होज्ज कामनेमुक्का।
महिला मुचरहस्सा रहस्सकाले न सठाइ॥
आभरणमवेलाया नीणति अवि य घेघति चिता।
होज्ज मतभेओ गमणविधाओ अनिव्राणी॥

सघदासगणि के वसुदेवहिण्डी मे भी अत्थसत्थ की एक गाथा का उल्लेख है—

विसेसेणमायाए सत्थेण य हतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु त्ति।

(अपने बढते हुए शत्रु का विशेष माया से या शस्त्र से सहार करना चाहिये)

इसी प्रकार ओघनिर्युक्ति (गाथा ४१८) की द्रोणसूरिकृत वृत्ति (पृष्ठ १५२) मे चाणक्य का निम्नलिखत अवतरण दिया गया है—

जइ काइय न वोसिरइ ततो अदोसो।
(यदि मल मूल का त्याग नहीं करता है तो दोष नहीं है।

राजनीति

इस ग्रथ के रचयिता का नाम देवीदास है। इसकी हस्त-लिखित प्रति डेक्कन कालेज भडार, पूना मे है।[1]

निमित्तशास्त्र

जैन ग्रन्थों मे निमित्तशास्त्र का बड़ा महत्त्व बताया है। विद्या, मत्र और चूर्ण आदि के साथ निमित्त का उल्लेख आता है। मखलिगोशाल निमित्तशास्त्र का महापडित था। आर्यकालक के शिष्य इस शास्त्र का अध्ययन करने के लिये आजीविक मत के अनुयायियों के समीप जाया करते थे। स्वय आर्यकालक निमित्तशास्त्र के वेत्ता थे।[2] आचार्य भद्रबाहु को भी निमित्तवेत्ता

१ देखिये जैन ग्रन्थावलि, पृष्ठ ३२९।

२ पंचकल्पचूर्णी; मुनि कल्याणविजय जी ने श्रमण भगवान् महावीर (पृ० ११०) में इस उद्धरण का उल्लेख किया है।

कहा गया है।[1] आचार्य धरसेन भी अष्टाग महानिमित्त के पारगामी माने जाते थे। उपाध्याय मेघविजय ने अपने वर्षप्रबोध मे भद्रबाहु के नाम से कतिपय प्राकृत गाथाये उद्धृत की है, इससे जान पडता है भद्रबाहु की निमित्तशास्त्र पर कोई रचना विद्यमान थी।[2]

प्राचीन जैन ग्रन्थों मे आठ महानिमित्त गिनाये हैं—भौम (भूकप आदि), उत्पात (रक्त की वर्षा आदि), स्वप्न, अन्तरिक्ष (आकाश मे ग्रहों का गमन उदय, अस्त, आदि) अग, (ऑख, भुजा का स्फुरण आदि), स्वर (पक्षियों का स्वर), लक्षण (शरीर के लक्षण) और व्यजन (तिल, मसा आदि)।[3] बृहत्कल्प-भाष्य (१ १३१३), गुणचन्द्रगणि के कहारयणकोस (पृष्ठ २२ अ, २३, और अभयदेव ने स्थानाग (४२८) की टीका मे चूडामणि नामक निमित्तशास्त्र का उल्लेख मिलता है। इसके द्वारा भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था।[4]

---

१ गच्छाचारवृत्ति पृष्ठ ९३–९६।

२ प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया, पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृष्ठ १६८।

३ ठाणाग ४०५–८ ६०८। कहीं इनके साथ छिन्न (मूषकछिन्न), दण्ड, वस्तुविद्या, और छींक आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। देखिये सूत्रकृताग १२ ९, उत्तराध्ययन टीका ८ १३, १५ ७। समवायाग की टीका (२९) के अनुसार इन आठों निमित्तों पर सूत्र, वृत्ति और वार्तिक मौजूद थे। अग को छोड़कर बाकी निमित्तों के सूत्र सहस्र-प्रमाण, वृत्ति लक्षप्रमाण और इनकी वार्तिक कोटिप्रमाण थी। अग के सूत्र लक्षप्रमाण, वृत्ति कोटिप्रमाण और वार्तिक अपरिमित बताई गई है।

४ तीतमणागतवट्टमाणत्थाणोपलब्धिकारण णिमित्त (निशीथचूर्णी, पृ० ८६२, साइक्लोस्टाइल प्रति)।

जयपाहुड निमित्तशास्त्र

इस ग्रन्थ[1] के कर्ता का नाम अज्ञात है, इसे जिनभाषित कहा गया है। यह ईसवी सन् की १०वीं शताब्दी के पूर्व की रचना है। निमित्तशास्त्र का यह ग्रन्थ अतीत, अनागत, वर्तमान, निमित्त आदि अनेक प्रकार के नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, विकल्प आदि अतिशय ज्ञान से पूर्ण है। इससे लाभालाभ का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसमे ३७८ गाथाये है जिनमे सकट विकट प्रकरण, उत्तराधरप्रकरण, अभिघात, जीवसमास, मनुष्यप्रकरण, पक्षिप्रकरण, चतुष्पद, धातुप्रकृति, धातुयोनि, मूलभेद, मुष्टिविभाग-प्रकरण, वर्ण रस-गध स्पर्शप्रकरण, नष्टिकाचक्र, चिन्ताभेदप्रकरण, तथा लेखगडिकाधिकार मे सख्याप्रमाण, कालप्रकरण, लाभ गडिका नक्षत्रगडिका, स्ववर्गसयोगकरण, परवर्गसयोगकरण, सिंहावलोकितकरण, गजविलुलित, गुणाकारप्रकरण, अक्षविभाग प्रकरण आदि का विवेचन है।

निमित्तशास्त्र

इसके कर्ता ऋषिपुत्र है।[2] इसके सिवाय ग्रन्थकर्ता के सबध मे और कुछ पता नही लगता। इसमे १८७ गाथाये है जिनमे निमित्त के भेद, आकाश प्रकरण, चद्रप्रकरण, उत्पातप्रकरण, वर्षा उत्पात, देव उत्पातयोग, राज उत्पातयोग और इन्द्र धनुष द्वारा शुभाशुभ ज्ञान, गधर्वनगर का फल, विद्युल्लतायोग और मेघयोग का वर्णन है।

चूडामणिसार शास्त्र

इसका दूसरा नाम ज्ञानदीपक है। यह भी जिनेन्द्र द्वारा

---

१ जयपाहुड और चूडामणिसार शास्त्र मुनि जिनविजयजी द्वारा सपादित होकर सिंघी जैन ग्रथमाला मे प्रकाशित हो रहे हैं। ये दोनों ग्रन्थ मुद्रितरूप में मुनि जी की कृपा से मुझे देखने को मिले हैं।

२ पडित लालारामशास्त्री द्वारा हिन्दी में अनूदित, वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर की ओर से सन् १९४१ में प्रकाशित।

प्रतिपादित बताया गया है। गुणचन्द्रगणि ने कहारयणकोस मे चूडामणिशास्त्र का उल्लेख किया है। चपकमाला चूडामणि शास्त्र की पडिता थी। वह जानती थी कौन उसका पति होगा और कितनी उसके सताने होंगी।[1] इसमे कुल मिलाकर ७३ गाथाये है।

निमित्तपाहुड

इसके द्वारा केवली, ज्योतिष और स्वप्न आदि निमित्त का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। भद्रेश्वर ने अपनी कहावली और शीलाक की सूत्रकृताग टीका मे निमित्तपाहुड का उल्लेख किया है।[2]

अंगविज्जा (अगविद्या)

अगविज्जा फलादेश का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है[3] जो सास्कृतिक सामग्री से भरपूर है। अगविद्या का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों मे मिलता है।[4] यह एक लोकप्रचलित विद्या थी जिससे शरीर के लक्षणों को देख कर अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या मनुष्य की विविध चेष्टाओं द्वारा शुभ-अशुभ फल का बखान किया जाता था। अगविद्या के अनुसार अग, स्वर, लक्षण, व्यजन, स्वप्न छींक, भौम, अतरिक्ष ये निमित्त कथा के आठ

---

१ देखिये लक्ष्मणगणि का सुपासनाहचरिय, दूसरा प्रस्ताव, सम्यक्त्वप्रशसाकथानक।

२ देखिये प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया, पाइयभाषाओ अने साहित्य पृष्ठ १६७–८।

३ मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सपादित, प्राकृत जैन टैक्स्ट सोसायटी द्वारा सन् १९५७ में प्रकाशित।

४ पिंडनिर्युक्ति टीका (४०८) में अगविद्या की निम्नलिखित गाथा उद्धृत है—

इदिएहिं दियत्थेहिं, समाधान च अप्पणो।
नाण पवत्तए जम्हा निमित्त तेण आहिय॥

आधार है और इन आठ महानिमित्तो द्वारा भूत और भविष्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इनमे अगविद्या को सर्वश्रेष्ठ बताया है। दृष्टिवाद नामक बारहवे अग मे महावीर भगवान् ने निमित्तज्ञान का उपदेश दिया था।

अगविद्या पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत है। इस ग्रथ मे ६० अध्याय हैं। आरम्भ मे अगविद्या की प्रशसा करते हुए उसके द्वारा जय-पराजय, आरोग्य, हानि लाभ, सुख दुख, जीवन मरण, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष आदि का ज्ञान होना बताया है। आठवाँ अध्याय ३० पाटलों मे विभक्त है। इसमे अनेक आसनों के भेद बताये हैं। नौवें अध्याय मे १८६८ गाथाओ मे २७० विविध विषयों का प्ररूपण है। यहाँ अनेक प्रकार की शय्या, आसन, यान, कुड्य, खभ, वृक्ष, वस्त्र, आभूषण, बर्तन, सिक्के आदि का वर्णन है। ग्यारहवे अध्याय मे स्थापत्यसबधी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो का प्ररूपण है। स्थापत्यसबधी शब्दो की यहाँ एक लम्बी सूची दी है। उन्नीसवे अध्याय मे राजोपजीवी शिल्पी और उनके उपकरणों के सबध मे उल्लेख है। विजयद्वार नामक इक्कीसवें अध्याय मे जय पराजय सम्बन्धी कथन है। बाइसवे अध्याय मे उत्तम फलो की सूची दी है। पच्चीसवें अध्याय मे गोत्रों का विशद वर्णन है जो बहुत महत्त्व का है। छब्बीसवें अध्याय मे नामों का वर्णन है। सत्ताइसवे अध्याय में राजा, अमात्य, नायक, आसनस्थ, भाण्डागारिक महाणसिक, गजाध्यक्ष आदि सरकारी अधिकारियों के पदों की सूची दी है। अट्ठाइसवें अध्याय मे पेशेवर लोगों की महत्त्वपूर्ण सूची है। नगरविजय नाम के उनतीसवें अध्याय मे प्राचीन भारतीय नगरों के सम्बन्ध मे बहुत सी सूचनाये मलती हैं। तीसवे अध्याय मे आभूषणो का वर्णन है। बत्तीसवे अध्याय में धान्यों और तेतीसवे अध्याय मे वाहनो के नाम गिनाये हैं। छत्तीसवे अध्याय में दोहदसबधी विचार है। सैंतीसवें अध्याय में १२ प्रकार के लक्षणों का प्रतिपादन है। चालीसवें अध्याय मे भोजन-सम्बन्धी विचार है। इकतालीसवें अध्याय में मूर्तियों के

प्रकार, आभरण और अनेक प्रकार की रत सुरत क्रीडाओं का वर्णन है। तेंतालीसवें अध्याय मे यात्रा का विचार है। छियालीसवे अध्याय मे गृहप्रवेशसम्बन्धी शुभाशुभ का विचार किया गया है। सैंतालीसवे अध्याय मे राजाओं की सैनिक यात्रा के फलाफ्ल का विचार है। चौवनवे अध्याय मे सार असार वस्तुओ का कथन है। पचपनवे अध्याय मे गडी हुई धनराशि का पता लगाने के सम्बन्ध मे कथन है। अट्ठावनवें अध्याय मे जैन धर्म सम्बन्धी जीव अजीव का विस्तार से विवेचन है। अन्तिम अध्याय मे पूर्वभव जानने की युक्ति बताई गई है।

जोणिपाहुड (योनिप्राभृत)

जोणिपाहुड निमित्तशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रथ था। इसके कर्ता धरसेन आचार्य (ईसवी सन् की प्रथम और द्वितीय शताब्दी का मध्य) है, वे प्रज्ञाश्रमण कहलाते थे। वि० स० १५५६ मे लिखी हुई बृहट्टिपणिका नाम की ग्रथसूची के अनुसार वीर निर्वाण के ६०० वर्ष पश्चात् धरसेन ने इस ग्रथ की रचना की थी।[1] ग्रथ को कूष्माडिनी देवी से प्राप्त कर धरसेन ने पुष्पदत और भूतबलि नामके अपने शिष्यो के लिये लिखा था। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी इस ग्रन्थ का उतना ही आदर था जितना दिगम्बर सम्प्रदाय मे। धवलाटीका के अनुसार इसमे मन्त्र-तन्त्र की शक्ति का वर्णन है और इसके द्वारा पुद्गलानुभाग जाना जा सकता है।[2] निशीथविशेषचूर्णी (४, पृष्ठ ३७५ साइक्लोस्टाइल प्रति) के कथनानुसार आचार्य सिद्धसेन ने जोणिपाहुड के आधार से अश्व

---

१ योनिप्राभृत वीरात् ६०० धारसेनम् (बृहट्टिपणिका जैन साहित्य सशोधक, १, २ परिशिष्ट), षट्खडागम की प्रस्तावना, पृष्ठ ३०, फुटनोट। इस सम्बन्ध में देखिये अनेकात, वर्ष २, किरण ९ में प० जुगलकिशोर मुख्तार का लेख। दुर्भाग्य से अनेकात का यह अङ्क मुझे नहीं मिल सका।

२ जोणिपाहुडे भणिदमसततसत्तीओ पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तव्वो। डाक्टर हीरालालजैन, षट्खडागम की प्रस्तावना, पृ ३०।

बनाये थे,[1] इसके बल से महिषो को अचेतन किया जा सकता था, और इससे धन पैदा कर सकते थे। प्रभावकचरित (५ ११५-१२७) मे इस ग्रथ के बल से मछली और सिह उत्पन्न करने की, तथा विशेषावश्यकभाष्य (गाथा १७७५) की हेमचन्द्रसूरिकृत टीका मे अनेक विजातीय द्रव्यों के सयोग से सर्प, सिह आदि प्राणी और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थों के पैदा करने का उल्लेख मिलता है। कुवलयमालाकार के कथनानुसार जोणिपाहुड मे कही हुई बात कभी असत्य नही होती। जिनेश्वरसूरि ने अपने कथाकोषप्रकरण मे भी इस शास्त्र का उल्लेख किया है। इस ग्रथ मे ८०० गाथाये है। कुलमण्डनसूरि द्वारा विक्रम सवत् १४७३ (ईसवी सन् १४१६) मे रचित विचारामृतसग्रह (पृष्ठ ६ आ) मे योनिप्राभृत को पूर्वश्रुत से चला आता हुआ स्वीकार किया है।[2]

अग्गेणिपुव्वनिग्गयपाहुडसत्थस्स मज्झयारम्मि।
किंचि उद्देसदेस धरसेणो वज्जिय भणइ ॥
गिरिउज्जितठिएण पच्छिमदेसे सुरट्ठगिरिनयरे।
बुड्डत उद्धरिय दूसमकालप्पयावम्मि ॥
प्रथम खण्डे—
अट्ठावीससहस्सा गाहाण जत्थवन्निया सत्थे।
अग्गेणिपुव्वमज्झे सखेव वित्थरे मुत्तु ॥
चतुर्थखण्डप्रान्ते योनिप्राभृते।

इस कथन से ज्ञात होता है कि अग्रायणीपूर्व का कुछ अंश लेकर धरसेन ने इस ग्रन्थ का उद्धार किया है, तथा इसमें पहले २८ हजार गाथायें थीं, उन्हीं को सक्षिप्त करके योनिप्राभृत में कहा है।

---

१ देखिये बृहत्कल्पभाष्य (१ १३०३; २ २६८१), व्यवहारभाष्य (१ पृष्ठ ५८), पिंडनिर्युक्तिभाष्य ४४ ४६; दशवैकालिकचूर्णी १ पृष्ठ ४४, ६१६, सूत्रकृतांगटीका ८ पृष्ठ १६५ अ; जिनेश्वरसूरि, कथाकोषप्रकरण।

२ देखिये प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया, आगमोनु दिग्दर्शन, पृष्ठ २२४ २५।

इसकी हस्तलिखित प्रति भाडारकर इस्टिट्यूट पूना मे मौजूद है।

वड्ढमाणविज्जाकप्प

जिनप्रभसूरि (विक्रम की १४ वीं शताब्दी) ने वर्धमान विद्याकल्प की रचना की है।[1] वाचक चन्द्रसेन ने इसका उद्धार किया है। इसमे १७ गाथाओं मे वर्धमानविद्या का स्तवन है। यहॉ बताया है कि जो २१ बार इसका जाप करके किसी ग्राम में प्रवेश करता है उसका समस्त कार्य सिद्ध होता है।

ज्योतिषसार

ज्योतिष का यह ग्रन्थ पूर्व शास्त्रों को देखकर लिखा गया है,[2] खासकर हरिभद्र, नारचद, पद्मप्रभसूरि, जउण, वाराह, लल्ल, पराशर, गर्ग आदि के ग्रन्थों का अवलोकन कर इसकी रचना की गई है। इसके चार भाग है। दिनशुद्धि नामक भाग मे ४२ गाथाये है जिनमे वार, तिथि और नक्षत्रों मे सिद्धियोग का प्रतिपादन है। व्यवहारद्वार मे ६० गाथाये है, इनमे ग्रहों की राशि, स्थिति, उदय, अस्त और वक्र दिन की सख्या का वर्णन है। गणितद्वार मे ३८ और लग्नद्वार मे ९८ गाथायें है।

विवाहपडल (विवाहपटल)

विवाहपडल का उल्लेख निशीथविशेषचूर्णी (१२, पृष्ठ ८५४ साइक्लोस्टाइल प्रति) मे मिलता है। यह एक ज्योतिष का ग्रन्थ था जो विवाहवेला के समय मे काम मे आता था।

---

१ बृहत्ह्रींकारकल्पविवरण के साथ डाह्याभाई मोहोकमलाल, अहमदाबाद की ओर से प्रकाशित। प्रकाशन का समय नहीं दिया है।

२ यह ग्रथ रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा और धातूत्पत्ति के साथ सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहा है।

लग्गसुद्धि

इस ग्रन्थ के कर्ता याकिनीसूनु हरिभद्र है।[1] इसे लग्न-कुडलिका नाम से भी कहा गया है। यह ज्योतिपशास्त्र का ग्रन्थ है। इसमे १३३ गाथाये है जिनमे शुभ लग्न का कथन है।

दिनसुद्धि

इसके कर्ता रत्नशेखरसूरि है।[2] इसमे १४४ गाथाओ मे रवि, सोम, मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि की शुद्धि का वर्णन करते हुए तिथि, लग्न, प्रहर, दिशा और नक्षत्र की शुद्धि बताई है।

जोइसहीर (जोइससार—ज्योतिपसार)

इस ग्रन्थ के कर्ता का नाम अज्ञात है।[3] ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है कि 'प्रथमप्रकीर्णं समाप्त' इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमे २८७ गाथाये है जिनमे शुभाशुभ तिथि, ग्रह की सबलता, शुभ घडियाँ, दिनशुद्धि, स्वरज्ञान, दिशाशूल, शुभाशुभयोग, व्रत आदि ग्रहण करने का मुहूर्त, क्षौरकर्म का मुहूर्त्त और ग्रहफल आदि का वर्णन है।

करलक्खण

यह सामुद्रिक शास्त्र का अज्ञातकर्तृक ग्रन्थ है।[4] इसमे ६१

---

१ उपाध्याय क्षमाविजयगणी द्वारा सपादित, शाह मूलचन्द बुलाखीदास की ओर से सन् १९३८ में बम्बई से प्रकाशित।

२ सम्पादक और प्रकाशक उपर्युक्त।

३ पडित भगवानदास जैन द्वारा हिन्दी में अनूदित; मैनेजर, नरसिंहप्रेस, हरिसन रोड कलकत्ता की ओर से सम्वत् १९२३ मे प्रकाशित। मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने अपने जैन साहित्य नो इतिहास (पृष्ठ ५८२) में बताया है कि हीरकलश ने वि० स० १६२१ (ईसवी सन् १५६४) में नागौर में जोइसहीर का उद्धार किया।

४ प्रोफेसर प्रफुल्लकुमार मोदी द्वारा सपादित और भारतीय ज्ञानपीठ, काशी द्वारा सन् १९५४ मे प्रकाशित (द्वितीय सस्करण)।

गाथाओं मे हस्तरेखाओं का महत्त्व, पुरुषों के लक्षण, पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बॉया हाथ देखकर भविष्यकथन आदि विषयो का वर्णन किया गया है। विद्या, कुल, धन, रूप और आयुसूचक पॉच रेखाये होती हैं। हस्तरेखाओं से भाई बहन, और सन्तानो की सख्या का भी पता चलता है। कुछ रेखाएँ धर्म और व्रत की सूचक मानी जाती है।

रिष्टसमुच्चय

रिष्टसमुच्चय के कर्ता आचार्य दुर्गदेव दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् थे। उन्होंने विक्रम सवत् १०८९ (ईसवी सन् १०३२) मे कुभनगर (कुभेरगढ, भरतपुर) मे इस ग्रन्थ को समाप्त किया था।[1] दुर्गदेव के गुरु का नाम सजयदेव था। उन्होंने पूर्व आचार्यों की परपरा से आगत मरणकरडिका के आधार पर रिष्टसमुच्चय मे रिष्टों का कथन किया है। रिष्टसमुच्चय मे २६१ गाथायें हैं जो प्रधानतया शौरसेनी प्राकृत मे लिखी गई है। इस ग्रन्थ मे तीन प्रकार के रिष्ट बताये गये है—पिडस्थ, पदस्थ और रूपस्थ। उगलियों का टूटना, नेत्रों का स्तब्ध होना, शरीर का विवर्ण हो जाना, नेत्रों से सतत जल का प्रवाहित होना आदि क्रियाये पिंडस्थ मे, सूर्य और चन्द्र का विविध रूपों मे दिखाई देना, दीपशिखा का अनेक रूप में देखना, रात का दिन के समान और दिन का रात के समान प्रतिभासित होना आदि क्रियायें पन्स्थ में, तथा अपनी छाया का दिखाई न देना, दो छायाओं, अथवा आधी छाया का दिखाई देना आदि क्रियायें रूपस्थ मे पाई जाती है। इसके पश्चात् स्वप्नों का वर्णन है। स्वप्न दो प्रकार के बताये गये है, एक देवेन्द्रकथित, और दूसरा सहज। मरणकडी का प्रमाण देते हुए दुर्गदेव ने लिखा है—

न हु सुणइ सतणुसद्द दीवयगध च णेव गिण्हेइ।
सो जियइ सत्तदियहे इय कहिअ मरणकडीए॥ १३९॥

---

1 डाक्टर ए० एस० गोपाणी द्वारा सपादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई से सन् १९४५ में प्रकाशित।

—जो अपने शरीर का शब्द नहीं सुनता, और दीपक की गध जिसे नहीं आती, वह सात दिन तक जीता है, ऐसा मरणकडी मे कहा है।

प्रश्नरिष्ट के आठ भेद बताये है—अगुलिप्रश्न, अलक्तप्रश्न, गोरोचनाप्रश्न, प्रश्नाक्षरप्रश्न, शकुनप्रश्न, अक्षरप्रश्न, होराप्रश्न और ज्ञानप्रश्न। इनका यहाँ विस्तार से वर्णन किया है।

अग्घकंड (अर्घकाण्ड)

दुर्गदेव की यह दूसरी कृति है। अग्घकड का उल्लेख विशेषनिशीथचूर्णी (१२, पृष्ठ ४५४) मे भी मिलता है। यह कोई प्राचीन कृति रही होगी जिसे देखकर दुर्गदेव ने प्रस्तुत ग्रथ की रचना की। इससे इस बात का पता लगाया जाता था कि कौन-सी वस्तु खरीदने और कौन-सी वस्तु बेचने से लाभ होगा।[1]

रत्नपरीक्षा

यह ग्रन्थ[2] श्रीचन्द्र के पुत्र श्रीमालवशीय ठक्कुरफेरु ने सवत् १३७२ (ईसवी सन् १३१५) में लिखा है। ठक्कुरफेरु जिनेन्द्र के भक्त थे और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के खजाची थे। सुरमिति, अगस्त्य और बुद्धभट्ट के द्वारा लिखित रत्नपरीक्षा को देखकर उन्होंने अपने पुत्र हेमपाल के लिये इस ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ मे कुल मिलाकर १३२ गाथायें है जिनमें रत्नों के उत्पत्तिस्थान, जाति और मूल्य आदि का विस्तार से वर्णन है। वज्र नामक रत्न शूर्पारक, कलिंग, कोशल और महाराष्ट्र मे, मुक्ताफल और पद्मराग मणि सिंघल और तुबरदेश आदि स्थानों मे, मरकत मणि मलयपर्वत और बर्बर देश में, इन्द्रनील सिंघल में, विद्रुम विन्ध्य पर्वत, चीन, महाचीन, और नैपाल मे, तथा लहसुनिया, वैडूर्य और स्फटिक नैपाल, काश्मीर और चीन आदि

---

१ इम दव्व विक्कीणाहि इम वा कीणाहि।

२ रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा, धातूत्पत्ति और ज्योतिषसार सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं। मुनि जिनविजयजी की कृपा से मुद्रितरूप में ये मुझे देखने को मिले हैं।

स्थानो में पाये जाते थे। रत्नों के परीक्षक को माडलिक कहा जाता था, ये लोग रत्नो का परस्पर मिलान कर उनकी परीक्षा करते थे।

द्रव्यपरीक्षा

यह ग्रथ विक्रम सवत् १३७५ (ईसवी सन् १३१८) मे लिखा गया। इसमे १४६ गाथाये है। इनमे द्रव्यपरीक्षा के प्रसग मे चासणिय, सुवर्णरूपशोधन, मौल्य, सुवर्ण रूप्यमुद्रा, खुरासानीमुद्रा, विक्रमार्कमुद्रा, गुर्जरीमुद्रा, मालवीमुद्रा, नलपुर-मुद्रा, जालधरीमुद्रा, ढिल्लिका, महमूदसाही, चउकडीया, फरीदी, अलाउद्दीनी, मोमिनी अलाई, मुलतानी, मुखतलफी और सीराजी आदि मुद्राओं का वर्णन है।

धातूत्पत्ति

इसमें ५७ गाथायें है। इन गाथाओं मे पीतल, ताँबा, सीसा, राँगा, काँसा, पारा हिंगुलक, सिन्दूर, कर्पूर, चदन, मृगनाभि आदि का विवेचन है।

वस्तुसार

इनके अतिरिक्त पूर्व शास्त्रों का अध्ययन कर सवत् १३७२ मे ठक्कुरफेरू ने वास्तुसार ग्रन्थ की रचना की।[1] इसमे गृहवास्तु-प्रकरण मे भूमिपरीक्षा, भूमिसाधना, भूमिलक्षण, मासफल, नींव-निवेसलग्न, गृहप्रवेशलग्न, और सूर्यादि ग्रहाष्टक का १५८ गाथाओं में वर्णन है। इसकी ५४ गाथाओ मे बिम्बपरीक्षा प्रकरण, और ६८ गाथाओं मे प्रासादकरण का वर्णन किया गया है।

शास्त्रीय विषयों पर प्राकृत मे अन्य भी अनेक ग्रथों की रचना हुई। उदाहरण के लिए सुमिणसित्तरि मे ७० गाथाओं में इष्ट-अनिष्ट स्वप्नों का फल बताया है।[2] जिनपाल ने स्वप्नविचार (सुविणविचार) और विनयकुशल ने ज्योतष्चक्रविचार (जोइस-

---

१ चन्दनसागर ज्ञानभडार वेजलपुर की ओर से वि० स० २००२ में प्रकाशित।

२ ऋषभदेव केशरीमल सस्था, रतलाम द्वारा प्रकाशित सिरि-पयरणसदोह में संग्रहीत।

चक्कविचार) की रचना की है। इसके अलावा पिपीलिकाज्ञान (पिपीलियानाण), अकालदत्तकप्प आदि ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थो की रचनाये हुई। जगसुन्दरीयोगमाल योनिप्राभृत का ही एक भाग था।[1] फिर वसुदेवहिण्डीकार ने पोरागम नाम के पाकशास्त्र-विषयक[2] ग्रंथ का और तरगलोलाकार ने पुप्फजोणिसत्थ (पुष्प योनिशास्त्र) का उल्लेख किया है। अनुयोगद्वारचूर्णी मे सगीत-सम्बन्धी प्राकृत के कुछ पद्य उद्धृत किये है, इससे मालूम होता है कि सगीत के ऊपर भी प्राकृत का कोई ग्रन्थ रहा होगा।[3]

इसके अलावा प्राकृत जैन ग्रन्थो मे सामुद्रिकशास्त्र,[4] मणि-शास्त्र,[5] गारुडशास्त्र[6] और वैशिक[7] (कामशास्त्र) आदि सस्कृत के श्लोक उद्धृत है। इससे पता लगता है कि सस्कृत मे भी शास्त्रीय विपयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये थे।



---

१ जैन ग्र थावलि, पृष्ठ ३४७, ३५५, ३५७, ३६१, ३६४। नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन की सस्कृत टीका (८ १३) में स्वप्नसबधी प्राकृत गाथाओं के अवतरण दिये है। जगद्देव क स्वप्नचिंतामणि से इन गाथाओं की तुलना की गई है।

२ वि० स० १४८३ में लिखी हुई सुरेश्वररचित पाकशास्त्र की हस्तलिखित प्रति पाटन के भडार में मौजूद है।

३ उदान की परमत्थदीपनी नामक अट्ठकथा में अलकारसत्थ का उल्लेख है जिसमें चौरकर्म की विधि बताई है।

४ गुणचन्द्रसूरि, कहारयणकोस, पृष्ठ ३४ अ, ५०।

५ वही, पृ० ४४।

६ जिनेश्वरसूरि, कथाकोषप्रकरण पृ० १२।

७ 'दुर्विज्ञेयो हि भाव प्रमदानाम्', सूत्रकृतागचूर्णि, पृ० १४०, समवयांग की टीका (२९) में हरमेखला नामक वशीकरणसबधी शास्त्र का उल्लेख है। प्रोफेसर कापडिया ने (पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृष्ठ १८४) मयणमउड नाम के कामशास्त्रविषयक ग्रन्थ का उल्लेख

प्राकृत शिलालेख

किसी साहित्य का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिये शिलालेख सर्वोत्तम साधन है। ताडपत्र या कागज पर लिखे हुए साहित्य मे सशोधन या परिवर्त्तन की गुञ्जायश रहती है जब कि पत्थर या धातु पर खुदे हुए लेख सैकडों हजारों वर्षों के पश्चात् भी उसी रूप मे मौजूद रहते है। भारतवर्ष मे सबसे प्राचीन शिलालेख प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के मिलते है। अपने राज्याभिषेक (ईसवी सन् पूर्व २६६) के १२ वर्ष पश्चात् उसने गिरनार, कालसी (जिला देहरादून), धौलि (जिला पुरी, उड़ीसा), जौगड (जिला गजम, उडीसा), मनसेहरा (जिला हजारा, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रदेश), शाहबाजगढी (जिला पेशावर, उत्तर पश्चिमी सीमाप्रदेश), येर्रगुडी (जिला करनूल, मद्रास) और सोपारा (जिला ठाणा) नामक स्थानो मे शिलालेखों मे धर्मलिपियों को उत्कीर्ण किया था। ये शिलालेख पालि भाषा मे तथा ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों मे विद्यमान है।

हाथीगुफा का शिलालेख

प्राकृत के शिलालेखों मे राजा खारवेल का हाथीगुफा का शिलालेख अत्यन्त प्राचीन है। यह पालि से मिलता जुलता है और ईसवी सन् के पूर्व लगभग प्रथम शताब्दी के अत मे ब्राह्मी लिपि मे भुवनेश्वर (जिला पुरी) के पास उदयगिरि नाम की पहाडी मे उत्कीर्ण किया गया था। अशोक के शिलालेखों की अपेक्षा इस शिलालेख मे भाषा का प्रवाह अधिक देखने मे आता है जिससे इस काल की प्राकृत की समृद्धता का अनुमान किया जा सकता है। इस शिलालेख मे खारवेल के राज्य के १३ वर्षों का वर्णन है—

किया है। इसकी रचना सिंधु नदी के तट पर स्थित माणिक्य महापुर के निवासी गोसद्द विप्र ने की थी।

नमो अरहंतानं। नमो सव-सिधानं॥ एरेण महाराजेन माहामेघ वाहनेन चेति राजव ( ) स वधनेन पसथ-सुभ लखनेन चतुरतलुठ (ण) गुण उपितेन कलिंगाधिपतिना सिरि-खारवेलेन

(प) दरस बसानि सीरि-(कडार) सरीरवता कीडिता कुमार-कीडिका॥

ततो लेखरूप गणना ववहार विधि विसारदेन।

सव-विजावदातेन नव वसानि योवरज (प) सासित॥

सपुण चतुवीसति-वसो तदानि वधमानसेसयो वेनाभिविजयो ततिये

कलिग-राज वसे पुरिस-युगे माहाराजाभिसेचन पापुनाति।

अभिसितमतो च पधमे वसे वात विहत-गोपुर पाकार निवेसनं पटिसखारयति। कलिग नगरि खबीर इसिताल तडाग-पाडियो च

बधापयति सवुयान प (टि) सठपन च

कारयति॥ पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रजयति॥[1]

(१) अर्हंतों को नमस्कार। सर्वसिद्धों को नमस्कार। वीर महाराज महामेघवाहन चेदि राजवश के वर्धक, प्रशस्त शुभलक्षण वाले, चारों दिशाओ मे व्याप्त गुणों से अलकृत कलिंगाधिपति श्री खारवेल ने

(२) १५ वर्ष तक शोभावाली अपनी गौरवयुक्त देह द्वारा बालक्रीड़ा की। उसके पश्चात् लेख्य, रूप, गणना, व्यवहार और धर्मविधि मे विशारद बन सर्व विद्याओं से सपन्न होकर नौ वर्ष तक उसने युवराज पद का उपभोग किया। फिर २४ वर्ष समाप्त होने पर, शैशवकाल से ही जो वर्धमान है और अभिविजय मे जो वेनराज के समान है, उसका तृनीय

(३) पुरुषयुग (पीढ़ी) मे कलिङ्ग राज्यवश मे महाराज्याभिषेक हुआ। अभिषिक्त होने के बाद वह प्रथम वर्ष में

१ दिनेसचन्द्र सरकार के सेलेक्टइन्स्क्रिप्शान्स, जिल्द १, युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता, १९४२, पृष्ठ २०६ से उद्धृत।

झंझावात से गिरे हुए गोपुर और प्राकार का निर्माण कराता हुआ। कलिङ्ग नगरी मे ऋषितडाग[1] की पैडियाँ उसने बँधवाई, सर्वप्रकार के उद्यानो का पुनरुद्धार किया।

(४) पैतीस शत शहस्र प्रजा का रजन किया।

नासिक का शिलालेख

वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि का नासिक गुफा का एक दूसरा शिलालेख है जो ईसवी सन् १४६ मे नासिक मे उत्कीर्ण किया गया था। इसमे राजा के भाट की मनोदशा का चित्रण किया है—

सिद्ध। रञो वासिठीपुतस पसरि पुलुमायिस सवछरे एकुनवीसे १०+६ गीम्हाण पखे बितीये २ दिवसे तेरसे १०+३ राजरञो गोतमीपुतस हिमव(त) मेरुमदर-पवत-सम सारस असिक असक मुलक-सुरठ-कुकुरापरत अनुपविदभ-आकरावति राजस विझ छवत पारिचात सय्ह (छ) कण्हगिरि मचसिरि टन-मलय-महिद्-सेटगिरि चकोरपवत-पतिस सवराज(लोक) म ( ) डलपति गहीत-सासनस दिवसकर (क)र विबोधित कमल-विमल सदिस वदनस तिसमुद तोय पीत वाहनस पटिपू( )ण चदमडल ससिरीक पियदसनस सिरि सातकणिसमातुय महादेवीय गोतमीय बलसिरीय सचवचन दान खमा हिसानिरताय तप दम नियमोपवास तपराय राजरिसिवधु सदमखिलमनुविधीयमानाय कारितदेयधम (केलासपवत) सिखर सदिसे (ति) रण्हु पवत सिखरे विम (ान) वरनिविसेस महिढीक लेण।[2]

—सिद्धि हो! राजा वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि के १६ वर्ष में ग्रीष्म के द्वितीय पक्ष के २ दिन बीतने पर चैत्रसुदी १३ के दिन राजराज गोतमीपुत्र, हिमवान्, मेरु और मन्दर पर्वत के समान श्रेष्ठ,

---

१ बृहत्कल्पभाष्य (१ ३१५०) इसका उल्लेख है। इसका इसिवाल नाम के वानमतर द्वारा निर्माण हुआ बताया गया है।

२. दिनेसचन्द्र सरकार, वही, पृ० १९६–९८।

ऋषिक, अश्मक, मूलक, सुराष्ट्र, कुकुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ और आकरावति के राजा, विन्ध्य, ऋक्षवत्, पारियात्र, सह्य, कृष्णगिरि, मर्त्यश्री, स्तन, मलय, महेन्द्र, श्रेष्ठगिरि और चकोर पर्वतों के स्वामी, सर्व राजलोकमंडल के ऊपर शासन करनेवाले, सूर्य की किरणों के द्वारा विबोधित निर्मल कमल के सदृश मुखवाले, तीन समुद्र के अधिपति, पूर्ण चन्द्रमंडल के समान शोभायुक्त प्रियदर्शन वाले ऐसे श्री शातकर्णि की माता महादेवी गौतमी बलश्री ने सत्यवचन, दान, क्षमा और अहिंसा में संलग्न रहते हुए, तप, दम, नियम, उपवास में तत्पर, राजर्षि वधू शब्द को धारण करती हुई गौतमी बलश्री ने कैलाश पर्वत के शिखर के सदृश त्रिरश्मिपर्वत के शिखर पर श्रेष्ठ विमान की भाँति महा समृद्धि युक्त एक गुफा (लयन) खुदवाई।



उपसंहार

मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओं मे पालि और प्राकृत दोनों का अन्तर्भाव होता है, लेकिन प्रस्तुत ग्रन्थ मे केवल प्राकृत भाषाओ के साहित्य के इतिहास पर ही प्रकाश डाला गया है। ईसवी सन् के पूर्व ५वीं शताब्दी मे मगध देश विशेषकर भगवान् महावीर और बुद्ध की प्रवृत्तियों का केन्द्र रहा, अतएव जिस जनसाधारण की बोली मे उन्होंने अपना लोकोपदेश दिया वह बोली सामान्यतया मागधी कहलाई। आगे चलकर यह भाषा केवल अपने मे ही सीमित न रही और मगध के आसपास के प्रदेशो की भाषा के साथ मिल जाने से अर्धमागधी कही जाने लगी। मागधी अथवा अर्धमागधी की भाँति पैशाची भी मध्ययुगीन आर्यभाषाओ की एक प्राचीन बोली है जो भारत के उत्तर पश्चिमी भागों मे बोली जाती थी। पैशाची मे गुणाढ्य ने बड्डकहा (बृहत्कथा) की रचना की थी, लेकिन दुर्भाग्य से यह रचना उपलब्ध नही है। पैशाची की भाँति शौरसेनी भी एक प्रादेशिक बोली थी जो शूरसेन (मथुरा के आसपास का प्रदेश) मे बोली जाने के कारण शौरसेनी कहलाई। क्रमश प्राकृत भाषाओं का रूप निखरता गया और हाल की सत्तसई, प्रवरसेन का सेतुबध और वाकपतिराज का गउडवहो आदि रचनाओं के रूप मे इसका सुगठित साहित्य रूप हमारे सामने आया।

ज्ञातृपुत्र श्रमण भगवान् महावीर ने मगध के आसपास बोली जानेवाली मिली जुली अर्धमागधी भाषा मे अपना प्रवचन दिया। सस्कृत की भाँति यह भाषा केवल सुशिक्षितों की भाषा नहीं थी, बल्कि बाल, वृद्ध, स्त्री और अनपढ सभी इसे समझ सकते थे। निस्सन्देह महावीर की यह बहुत बडी देन थी जिससे जनसाधारण के पास तक वे अपनी बात पहुँचा सके थे।

महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके गणधरों ने निर्ग्रन्थ प्रवचन का सकलन किया और यह सकलन आगम के नाम से कहा गया। अर्धमागधी मे सकलित यह आगम साहित्य अनेक दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्व का है। जब भारत के उत्तर, पश्चिमी और पूर्व के कुछ प्रदेशो मे ब्राह्मण धर्म का प्रचार हो चुका था, उस समय जैन श्रमणो ने मगध ओर उसके आसपास के क्षेत्रो मे ग्रामानुग्राम घूम घूम कर कितनी तत्परता से जैनसघ की स्थापना की, इसकी कुछ कल्पना इस विशाल साहित्य के अध्ययन से हो सकती है। इस साहित्य मे जैन उपासकों और मुनियो के आचार विचार, नियम, व्रत, सिद्धात, परमत खडन, स्वमतस्थापन आदि अनेक विषयो का विस्तृत विवेचन है। इन विषयों का यथासभव विविध आख्यान, चरित, उपमा, रूपक, दृष्टात आदि द्वारा सरल, और मार्मिक शैली मे प्रतिपादन किया गया है। वस्तुत यह साहित्य जैन सस्कृति और इतिहास का आधारस्तभ है, और इसके बिना जैनधर्म के वास्तविक रूप का सागोपाग ज्ञान नही हो सकता। आगे चलकर भिन्न भिन्न परिस्थितियो के अनुसार जैनधर्म के सिद्धातो मे सशोधन-परिवर्धन होते रहे, लेकिन आगम साहित्य मे वर्णित जैनधर्म के मूलरूप मे विशेष अतर नहीं आया। स्वय भगवान् महावीर के उपदेशों का सग्रह होने से आगम-साहित्य का प्राचीनतम समय ईसवी सन् के पूर्व पाँचवीं शताब्दी, तथा वलभी मे आगमों की अन्तिम वाचना होने से इसका अर्वाचीनतम समय ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी मानना होगा।

कालक्रम से आगम-साहित्य पुराना होता गया और शनै शनै इस साहित्य मे उल्लिखित अनेक परपरायें विस्मृत होती चली गईं। ऐसी हालत मे आगमों के विषय को स्पष्ट करने के लिये निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, टीका आदि अनेक व्याख्याओं द्वारा इस साहित्य को पुष्पित और पल्लवित किया गया। फल यह हुआ कि आगमों का व्याख्या-साहित्य प्राचीनकाल से चली आनेवाली अनेक अनुश्रुतियों, परपराओं, ऐतिहासिक और अर्ध-

ऐतिहासिक कथानकों तथा धार्मिक और लौकिक कथाओं का भंडार बन गया। इससे केवल व्याख्यात्मक होने पर भी यह साहित्य जैनधर्म और जैन संस्कृति के अभ्यासियों के लिये एक अत्यत आवश्यक स्वतंत्र साहित्य ही हो गया। इस साहित्य का निर्माण ईसवी सन् की लगभग दूसरी शताब्दी से आरंभ हुआ और ईसा की १६वी १७वीं शताब्दी तक चलता रहा। जैसे यह साहित्य आगमो को आधार मान कर लिखा गया, वैसे ही इस साहित्य के आधार से उत्तरवर्ती प्राकृत साहित्य की रचना होती रही।

दिगम्बर आचार्यों ने श्वेताम्बरसम्मत आगमों को प्रमाण रूप से स्वीकार नहीं किया। श्वेताबर परपरा के अनुसार केवल दृष्टिवाद नाम का बारहवॉ अग ही उच्छिन्न हुआ था, जबकि दिगम्बरों की मान्यता के अनुसार समस्त आगम नष्ट हो गये थे और केवल दृष्टिवाद का ही कुछ अश बाकी बचा था। इस अश को लेकर दिगम्बर सम्प्रदाय मे षट्खडागम की रचना की गई और इस पर अनेक आचार्यों ने टीका-टिप्पणियॉ लिखीं। २३ भागों मे प्रकाशित इस बृहदाकार विशाल ग्रथ मे खास तौर से कर्मसिद्धात की चर्चा ही प्रधान है जिससे प्रतिपाद्य विषय अत्यन्त जटिल और नीरस हो गया है। श्वेताबरीय आगमों की भॉति निर्ग्रन्थ प्रवचनसबधी विवधि विषयों की विशद और व्यापक चर्चा यहॉ नहीं मिलती। दिगबर साहित्य मे भगवती-आराधना और मूलाचार बहुत महत्त्व के है, इनकी विषयवस्तु श्वेताबरों के निर्युक्ति और भाष्य-साहित्य के साथ बहुत मिलती-जुलती है। श्वेताम्बर और दिगबरों के प्राचीन इतिहास के क्रमिक विकास को समझने के लिये दोनों के प्राचीन साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यत उपयोगी सिद्ध होगा। कुन्दकुन्दाचार्य का दिगम्बर सम्प्रदाय मे वही स्थान है जो श्वेताबर सम्प्रदाय मे भद्रबाहु का। इनके ग्रथों के अध्ययन से जान पडता है कि उन्होंने वेदान्त से मिलती जुलती अध्यात्म की एक विशिष्ट

शैली को जन्म दिया था, जो शैली जैन परपरा मे अन्यत्र देखने मे नही आती।

दिगबर आचार्यों की भॉति श्वेताबर विद्वानो ने भी आगमोत्तरकालीन जेनधर्मसबधी विपुल साहित्य का सर्जन किया। इसमे आचार विचार, कर्मसिद्धात, दर्शन, खडन मडन आदि सभी विषयो का समावेश किया गया। प्रकरण ग्रन्थो की रचना इस काल की विशेषता है। सरलता से कठस्थ किये जानेवाले इस प्रकार के लघुग्रथ की सैकडो की सख्या मे रचना की गई। विधि विधान और तीर्थसबधी प्राकृतग्रन्थो की रचना भी इस काल मे हुई। पट्टावलियो मे आचार्यों और गुरुओ की परपरा सग्रहीत की गई तथा प्रबध ग्रथो मे ऐतिहासिक प्रबधो की रचना हुई। इस प्रकार प्राकृत साहित्य केवल महावीर के उपदेशो तक ही सीमित न रहा, बल्कि वह उत्तरोत्तर व्यापक और समुन्नत होता गया।

प्राकृत जैन कथा साहित्य जेन विद्वानो की एक विशिष्ट देन है। उन्होंने धार्मिक और लौकिक आख्यानो की रचना कर प्राकृत साहित्य के भडार को समृद्ध किया। कथा, वार्ता, आख्यान, उपमा, दृष्टान्त सवाद, सुभाषित, प्रश्नोत्तर, समस्यापूर्ति और प्रहेलिका आदि द्वारा इन रचनाओं को सरस बनाया गया। संस्कृत साहित्य मे प्राय राजा, योद्धा और धनी मानी व्यक्तियों के ही जीवन का चित्रण किया जाता था, लेकिन इस साहित्य में जनसामान्य के चित्रण को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। जैन कथाकारों की रचनाओं में यद्यपि सामान्यतया धर्मदेशना की ही मुख्यता है, रीति प्रधान शृगारिक साहित्य की रचना उन्होंने नहीं की, फिर भी पादलिप्त, हरिभद्र, उद्योतनसूरि, नेमिचन्द्र, गुणचन्द्र, मलधारि हेमचन्द्र, लक्ष्मणगणि, देवेन्द्रसूरि आदि कथा लेखको ने इस कमी को बहुत कुछ पूरा किया। उधर ईसवी सन् की ११वीं १२वीं शताब्दी से लेकर १४वीं-१५वीं शताब्दी तक गुजरात, राजस्थान और मालवा में जैनधर्म का

प्रभाव उत्तरोत्तर बढता जा रहा था जिससे प्राकृत कथा-साहित्य को काफी बल मिला। इस समय केवल आगम अथवा उन पर लिखी हुई व्याख्याओं के आधार से ही कथा साहित्य का निर्माण नहीं हुआ, बल्कि अनेक अभिनव कथा-कहानियो की भी रचना की गई। अनेक कथाकोषों का सग्रह किया गया जिनमे चुनी हुई कथाओं को स्थान मिला। इस प्रकार प्राकृत कथा साहित्य मे तत्कालीन सामाजिक जीवन का विविध और विस्तृत चित्रण किया गया जो विशेषकर सस्कृत साहित्य मे दुर्लभ है। प्राचीन भारत के सास्कृतिक अध्ययन के लिये इस साहित्य का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। इसके सिवाय भिन्न-भिन्न देशों मे प्रचलित देशी शब्दों का यहाँ प्रचुर मात्रा मे स्वच्छद रूप से प्रयोग हुआ। ये शब्द भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं।

कथानक और आख्यानों की भाँति तीर्थंकर आदि महापुरुषों के जीवनचरित भी प्राकृत मे लिखे गये। राम और कृष्णचरित के अतिरिक्त यहाँ विशिष्ट यति-मुनि, सती-साध्वी, सेठ-साहुकार, मत्री-सार्थवाह आदि के शिक्षाप्रद चरित लिखे गये। इन चरितों में बीच बीच मे धार्मिक और लौकिक सरस कथाओं का समावेश किया गया।

सस्कृत की शैली के अनुकरण पर यद्यपि प्राकृत के कथाग्रथों में जहाँ तहाँ अलकारप्रधान समासात पदावलि मे नगर, वन, अटवी, ऋतु, वसत, जलक्रीडा आदि के वर्णन देखने मे आते हैं, फिर भी कथा साहित्य मे सस्कृत साहित्य जैसी प्रौढता न आ सकी। प्राकृत काव्य साहित्य के निर्माण से यह क्षति बहुत कुछ अश में पूरी हुई। इस काल मे सस्कृत महाकाव्यों की शैली पर शृगाररस प्रधान प्राकृत काव्यों की रचना हुई, और इन काव्यों की रचना प्राय. जैनेतर विद्वानों द्वारा की गई। गाथा-सप्तशती शृंगाररस प्रधान प्राकृत का एक अनुपम मुक्तक काव्य है जिसकी तुलना सस्कृत के किसी भी सर्वश्रेष्ठ काव्य से की

जा सकती है। ध्वनि और अलकार-प्रधान इस काव्य में तत्कालीन प्राकृत के सर्वश्रेष्ठ कवियों और कवयित्रियों की रचनायें सग्रहीत है जिससे पता लगता है कि ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व ही प्राकृत काव्य कला प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। उपमाओं और रूपक की नवीनता इस काव्यकला की विशेपता थी। आनन्दवर्धन, धनजय, भोज, मम्मट और विश्वनाथ आदि विद्वानो ने अपने अलकार ग्रथों मे जो अलकार और रस आदि के उदाहरणस्वरूप प्राकृत की अनेकानेक गाथायें उद्धृत की है उससे प्राकृत काव्य की समृद्धता का पता चलता है। इन गाथाओ मे अधिकाश गाथायें गाथासप्तशती और सेतुबन्ध मे से ली गई हैं। मुक्तक काव्य के अतिरिक्त महाकाव्य (सेतुबन्ध), प्रबन्धकाव्य (गउडवहो) और प्रेमकाव्य (लीलावई) की रचना भी प्राकृत साहित्य मे हुई। अत मे केरलनिवासी रामपाणिवाद (इसवी सन् की १८वी शताब्दी) ने कसवहो और उसाणिरुद्ध जैसे खडकाव्यों की रचना कर प्राकृत काव्य-साहित्य को समृद्ध किया।

सस्कृत के नाटकों मे भी प्राकृत को यथोचित स्थान मिला। यहाँ मनोरञ्जन के लिये भिन्न भिन्न पात्रों से मागधी, पैशाची, शौरसेनी और महाराष्ट्री बोलियों में भाषण कराये गये। मृच्छ-कटिक में अवन्ती, प्राच्या, शकारी, चाडाली आदि का भी समावेश किया गया। क्रमश प्राकृत की लोकप्रियता मे वृद्धि हुई और इसे सट्टकों में स्थान मिला। शृगाररसप्रधान प्राकृत के इन सट्टकों में किसी नायिका के प्रेमाख्यान का चित्रण किया गया और सट्टक का नाम भी नायिका के ऊपर ही रक्खा गया। प्राकृत भाषा की कोमल पदावलि के कारण ही राजशेखर अपनी कर्पूरमंजरी की रचना इस भाषा में करने के लिये प्रेरित हुए।

तत्पश्चात् प्राकृत भाषा को सुव्यवस्थित रूप देने के लिये प्राकृत के व्याकरण लिखे गये। प्राकृत भाषा इस समय बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी, इसलिये प्राकृत के उपलब्ध साहित्य

मे से उदाहरण चुन चुन कर उनके आधार से व्याकरण के नियम बने। व्याकरण के साथ-साथ छद और कोष भी तैयार हुए। गाथा छन्द प्राकृत का सर्वप्रिय छन्द माना गया है। इसमे और भी अनेक नये छदों का विकास हुआ, तथा मात्रिक अथवा तालवृत्तों को लोक काव्य से उठाकर काव्य मे उनका समावेश किया गया।

विद्वज्जनों मे प्राकृत का प्रचार होने से ज्योतिष, सामुद्रिकशास्त्र, और सगीत आदि पर प्राकृत ग्रथों की रचना हुई। रत्नपरीक्षा, द्रव्यपरीक्षा आदि विषयों पर विद्वानों ने लेखनी चलाई। प्राकृत का सबसे प्राचीन उपलब्ध शिलालेख हाथीगुफा का शिलालेख है जो ईसवी सन् के पूर्व लगभग प्रथम शताब्दी मे उदयगिरि पहाडी मे उत्कीर्ण किया गया था।

इस प्रकार ईसवी सन् के पूर्व ५ वीं शताब्दी से लगाकर ईसवी सन् की १८ वी शताब्दी तक प्राकृत भाषा का साहित्य बडे वेग से आगे बढता रहा। २३०० वर्षों के इस दीर्घकालीन इतिहास मे उसे भिन्न भिन्न अवस्थाओं से गुजरना पडा। उसमे धर्मोपदेश उद्धृत किये गये, लौकिक आख्यानों की रचना हुई, काव्यों का सर्जन हुआ, नाटक लिखे गये तथा व्याकरण, छद और कोशों का निर्माण हुआ। यदि प्राकृत सस्कृत की शैली आदि से प्रभावित हुई तो सस्कृत को भी उसने कम प्रभावित नहीं किया। दोनों मे वही सबध रहा जो दो बहनों में हुआ करता है। प्राकृत ने जब जब सस्कृत की देखा देखी साहित्यक रूप धारण करने का प्रयत्न किया तब तब वह जन-समाज से दूर हो गई। बोलचाल की वैदिक प्राकृत को जब साहित्यिक रूप मिला तो वह सस्कृत बन गई। आगे चलकर यही प्राकृत पालि और अर्धमागधी के रूप मे हमारे सामने उपस्थित हुई। जब उसका भी साहित्यिक रूप निर्माण होने लगा तो बोलचाल की प्राकृत भाषा अपभ्रश कही जाने लगी। अपभ्रश के पश्चात् देशी भाषाओं का उदय हुआ। तात्पर्य यह है कि प्राकृत ने जनसमुदाय का साथ नहीं छोड़ा।

परवर्ती भारतीय साहित्य को प्राकृत ने अनेक रूप में प्रभावित किया। मध्ययुगीन संत कवियों, वैष्णव भक्तों, सूफियों के प्रेमाख्यानों, सतसइयों, वैराग्य उक्तियों और नीति वाक्यों पर इस साहित्य की छाप पड़ी। अब तक संस्कृत साहित्य को ही विशेष महत्त्व दिया जाता था, लेकिन प्राकृत के विपुल साहित्य के प्रकाश में आने से अब इस साहित्य के अध्ययन की ओर भी विद्वानों की रुचि बढ़ेगी, ऐसी आशा है।



परिशिष्ट–१

कतिपय प्राकृत ग्रन्थों की शब्दसूची

(क) आचारासूत्र (प्राचीन आगम)

मइम = मतिमान्
असइ = अनेक बार
आहट्ट (आहृत्य) = रखकर
सगडब्भि (स्वकृतभित्) = अपने किये कर्म को भेदन करनेवाला
विण्णू = विद्वान्
अतिविज्जो = अति विद्वान्
लभो = लाभ
सागारिक = मैथुन
वुइया (उक्ता) = कहा
किट्टइ (कीर्तयति) = कहता है
हुरत्था = अन्यत्र
कुज्जा (कुर्यात्) = करे
हावए (स्थापयेत्) = स्थापना करे
अदक्खु = देखते थे
एलिक्खए = इस प्रकार की
घास = ग्रास
उक्खा = एक प्रकार का बर्तन
खद्धं खद्धं = जल्दी जल्दी
भिलुग = जहाँ की जमीन फट गई हो
दुरुक = थोडा पीसा हुआ
आएसग = अतिथि
णिणक्खु = बाहर निकलता है
ऊसढ = उत्सृष्ट
वच्च (वर्चस्) = रूप
वियड = प्रासुक जल
जुगमाय = युगमात्र
उत्तिंग = छिद्र
जवस = धान्य
पमेइल (प्रमेदस्वी) = बहुत चर्बीवाला
असथड = असमथ
अस्स पडियाए (अस्वप्रत्यय) = अपने लिये नहीं
विह = माग
णीहट्टु (निस्सार्य) = निकाल कर

सूत्रकृतागसूत्र (प्राचीन आगम)

णूम = माया
छन्न = माया
कण्हुई = कचित्
आघ (आ + ख्या) = आख्यातवान्
विभज्जवाय = स्याद्वाद
णीइए = नित्य
खेयन्न = निपुण
हण्णू = हन्यमान
हेच्च (हित्वा) = छोडकर
अन्दु = जजीर
मच्चिया = मर्त्या
घडदासी = पानी भरने वाली
वुसी (वृषी) = साधु
गारत्थ = गृहस्थ

भगवतीसूत्र (प्राचीन आगम)

आइल्ल = आदिम
मत्थुलुंग = मस्तकभेजम् (भेजा)
पोहत्त = पृथक्त्व
कोट्टकिरिया = एक देवी = चडी
बोंदि = शरीर
चुडिल्लव्व = जलते हुए घास के पूलों की भाँति
वेसालियसावय = वैशाली के रहनेवाले महावीर के श्रावक

कुत्तियावण = ऐसी दूकान जहाँ हर वस्तु मिलती हो।
चोप्पाल = चौपाल
पल्हत्थिअ = पलोथी
कासवग = नाई
वग्गू = वचन

ज्ञातृधर्मकथा (प्राचीन आगम)

अट्टणसाला = व्यायामशाला
जवणिया = यवनिका = परदा
अलकारियसभा = बाल काटने का सैलून
पोच्चड[1] = निस्सार
चप्पुडिया = ताली देना
पढमिल्लुग = प्रथम
भिसिया = आसन
झोड़ा = जाण
जीवविप्पजढ = जीव से वंचित = निश्चेतन
पायदद्दरिय = पाद का आघात
सवहसाविय = शपथशापित = शपथ दिलवाना
करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अंजलि कट्टु = दोनों हाथों की अंजलि करके मस्तक पर रखना
उदुंबरपुप्फ पिव दुल्लहे सवणयाए, किं पुण पासणयाए = उदुम्बर के पुष्प के समान श्रवण करना भी दुर्लभ है, देखने की तो बात दूर रही।
आसुरुत्ते तिवलियं भिउडिं निडाले कट्टु = क्रोध से भृकुटि चढ़ाकर
गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपगलया = पर्वत की गुफा में सुरक्षित चंपक की लता की भाँति
मारामुक्के विव काए = वधस्थान से मुक्त कौए की भाँति
दसद्ध = पाँच
भोयणपिडग = खाना भेजने का डिब्बा (टिफिन)
जाणुकोप्परमाया = केवल घोंटू और कोहनी की माता (वन्ध्या)
हत्थसंगल्लि = हाथ में हाथ डालकर घूमना
नट्टुलग = नृत्य
निप्पट्ठपसिणवागरण (निस् + स्पृष्ट प्रश्नव्याकरण) = निरुत्तर
मुहमक्कडिया = मुंह टेढ़ा करके चिढ़ाना
आघयण = वधस्थान
पाणियघरिया = पनिहारिन
चिल्लग = दैदीप्यमान = चिलकता हुआ
निंदूसक[2] = गेंद

उवासगदसाओ (प्राचीन आगम)

मेढी = आधार
भुमगाओ (भ्रुवौ) = भौं
पोट्ट[3] = पेट
अगुली = अंगुल
पेयाल = प्रधान
चाउरत = जिसके चार अन्त हों (संसार)
नत्थल्ल (नान्यत्र) = सिवाय
निडाल = ललाट
वेहास (विहायस) = आकाश
अल्लुलट्ठी (आर्द्र यष्टि) = मुलहठी
अमाघाय = जीवहिंसा न करने की घोषणा
मिसिमिसायमाण = क्रोध से दाँत पीसना

अन्तकृतदशा (प्राचीन आगम)

पिट्ठ = पीठ
वावत्ती (व्यापत्ति) = विपत्ति
पासादिय = प्रासादित = सुन्दर

---

१ पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पोचका २ मराठी में चेंडू
३ मराठी में पोट

निलुक्कइ[1] = लुक जाना = छिप जाना
डिंभ = शिशु
पत्थियपिडग = पिटारी = टोकरा
वेयालिं (वेलाया) = किनारे पर
महेलिया = महिला
परिपेरत (परिपर्यन्त) = आसपास
दवदव = शीघ्र
छल्लिया = छाल

प्रश्नव्याकरण (प्राचीन आगम)

अण्हय = आस्रव
एणी = मृगी
कलाय = सुनार
चगेरी = फूलों का डलिया
पेहुण = मोर का पख
पाठीन = एक प्रकार की मछली
मच्छडी (मत्स्यडी) = बूरा
सुसाण = श्मशान
हुंड = बेडौल
अचियत्त = अप्रीतिकारक
उदर[2] = चूहा
कच्छुल्ल = खुजली के रोग से पीडित
गोमिया = ग्वाला
धणिय = अत्यन्त
पडिग्गह = पात्र
भट्ठभजण = भाड में भूनना
विडग = कबूतरों का दडा
हत्थदुय = हथकडी
लडह = सुन्दर

विपाकसूत्र (प्राचीन आगम)

अङ्गपडाग = एक प्रकार की मछली
अड्ढाइज्ज = अर्धतृतीय = अढाई
आहेवच्च = आधिपत्य

कल्लाकल्लिं (कल्यम् कल्यम्) = रोज सुबह
गुडा = घोडे का बख्तर
ण = ननु
निव्वुड = निमग्न
वेसदार (वेश्या दारा) = वेश्या
हेट्ठा (अधस्तात्) = नीचे
उक्कुरुडिया = कचरा फेंकने का कूडी
आवसह = रहने का स्थान
अट्ठाए (अर्थाय) = के लिये
अप्पेगइय (अपि एकैक) = कुछ लोग
एगट्ठिया = एक नाव जिसमें एक ही आदमी बैठ सकता हो
खिप्पामेव (क्षिप्रम् एव) = शीघ्र ही
जन्नुपायवडिय (जानुपादपतित) = घुटने टेककर प्रणाम करना
देवाणुप्पिय = देवानांप्रिय (आदर वाचक शब्द)
पायरास (प्रातराश) = सुबह का कलेवा
हव्व = शीघ्र ही
हडाहड = बहुत अधिक
जिमियभुत्तुत्तरागया = भोजन करके आये हुए
वग्गुरा = समूह

निशीथसूत्र (छेदसूत्र)

माउग्गाम[3] = स्त्री
वेणूसूइय = बॉस की सूई
सुब्भि = शुभ = अच्छा
कोलुण = करुणा
लहुसग = लघु
पाहुड = कलह
दगवीणिय = पतनाला
अगादाण = जननेन्द्रिय

---

१ पश्चिमी उत्तरप्रदेश में लुकना २ मराठी में उन्दीर
३ भोजपुरी में मउगी

तुंडिय = थेगला
पालु = अपान
पडियाणिया = थेगली
बहियावासी = अन्य गच्छ का
वुग्गह = कलह

बृहत्कल्पसूत्र (छेदसूत्र)

बव्वा = बल्वज
हरियाहडिया = हृताहृतिका
पवत्तिणी = साध्वियों में प्रधान साध्वी
वगडा = बाड
सिहिरिणी = शिखरिणी = दही और चीनी से बना एक मिष्ट खाद्य (श्रीखंड)
तिरीडपट्ट = वृक्षविशेष की छाल का बना कपड़ा
सणय = सन
मेरा = मर्यादा
चिलियामिलिया = कनात = परदा
अहालन्दं = काल का एक परिमाण
सक्कुली = शष्कुली = तिलपापड़ी
नीहड (निर्हृत) = निर्गत
मोय = मूत्र

(ख) निशीथभाष्य (भाष्यों का समय ईसवी सन् की लगभग चौथी शताब्दी)

बाउल्ल[1] = गुड़िया
जड्ड = हाथी
उम्मुग = अलाय = जलता हुआ काष्ठ
छप्पत्ति = जूँ (छह पैरवाली)
दोगच्च = दारिद्र्य
कट्ठोल्ल = हल से तैयार की हुई भूमि
गड्डोल = एक प्रकार का पात्र
लाउणालो = अँगूठी
कोल्लुग = शृगाल
घडा = गोष्ठी
गंड = स्तन
वीरल्ल = श्येन पक्षी
उदद्दर = सुभिक्ष
फुट्टपत्थर = टूटे हुए पत्थर
केत्तडिय = कितना
वीसुंभण = जीव और शरीर का पृथक् होना
खोल = गोरस में भावित वस्त्र
छिहलि = शिखा
दगवारय = गडुआ
उसु = निलय
खरकम्मिय = राजपुरुष
चमढ = निष्कारण गण से बहिष्कृत संयमी
वट्टखुर = वृत्तखुर = श्रेष्ठ घोड़ा
कामजल = स्नान करने की चौकी
खोल्ल = कोटर
दमअ = दरिद्र
नेड्ड = घर
भोइया = पत्नी
मेहुणि (मैथुन के लिये ग्रहण योग्य) = मामा या फूआ की लड़की या साली
विग्गह = जननेन्द्रिय
अहिणव = अग्नि
ओम = दुर्भिक्ष
डउयर = जलोदर
लाया = लाजा
कुड्डमव = जल का मेंढक
कोणय = लाठी
अंचिय = दुर्भिक्ष
कमणी = जूते
मालवतेण = मालव पर्वत पर रहनेवाले चोर

---

१. मराठी में बाहुली ।

भंडी = गाड़ी
भदंत = आचार्य
धाय = सुभिक्ष
अणुरंगा = गाड़ी
मेतर = प्रासुक
वेतुलिया = नास्तित्ववादी
इत्थी (सागारिय) = योनि
फेल्ल = दरिद्र
आयमणी = लुटिया
घोडा = चट्ट
दिट्ठपाठी = वैद्यक जाननेवाला
अप्पाहे = सकारण
खलुग = घुण्टी
मन्नु = क्रोध
दीणार = दीनार
सरडु = जिस फल में गुठली न हो।
वियरग = कूपिका
कोनाली = गोष्ठी
अलित्त = नौकादंड
गुंठ = घोड़ा
दंतिक्क = लड्डू आदि जो दाँत से तोड़ कर खाया जाता है।

व्यवहारभाष्य

संगार = संकेत
वाडु = नाश
कडिल्ल = महागहन
विकरिय = जलाशय
सिग्ग = परिश्रम
खरिका = गर्दभी
संभलि = दूती
बोद = मूर्ख
रकडुय = मृतक भोजन
केव = डिप = प्रपातं कुरु (टीका)
सुइंग = मकोड़ा
संगिल्ल = समुदाय
सासेरा = यंत्रमयी नर्तकी
मयूरांगचूलिका = एक आभरण
मडप्फर = गमनोत्साह
खरिकामुखी = दासी
च्छेवग = मारी
किढग = वृद्ध
कासइ = कस्यचित्

बृहत्कल्पभाष्य (ईसवी सन् की लगभग चौथी शताब्दी)

मद्गु = जलकाक
कुड = घट
खउर = एक भाजन
वालुंक = चिर्भटिका = फूट
संडासग = संडसी
असंखड = कलह
साभरग = रूपक
कोत्थु = कौस्तुभ मणि
मोग्गरग = मोंगरे का पुष्प
मरुग = ब्राह्मण
सागारिय = मैथुनस्थान = योनि
किढी = स्थविर
चाड = पलायन
खुल = दुर्बल
तुप्प[1] = घी
सोलग = घोड़े का साईस
उंडिका = मुद्रा
चालिणि = चालनी = छलनी
डंडणया = भेरी
चोप्प = चोक्ष = मूर्खः
जक्खुल्लिहण = यक्ष अर्थात् कुत्ते की जीभ से चाटा हुआ
उड्डंचक = याचक
कोल्लुपरंपर = कोल्लुकचक्रन्याय
तालायर = नट

१. मराठी में तूप।

डहर = बालक
कुवणय = लगुड
खोड = काष्ठमय
कलम = शालिविशेष
खग्गूड = आलसी = निद्रालु = अश्रद्धालु
काहीए = काथिक=कथा कहने में तल्लीन
धंतं = अतिशय
सागारिक = शय्यातर = वसति आदि देने वाला।
घाडिय = मित्र
साही = पंक्ति
छिन्ना = छिन्नाल = छिनाल
रुंद = विस्तीर्ण
ओवग = गर्त्त
खरय = दास
वेंटल = वशीकरणप्रयोग
वियरग = कूपिका
एरंडइय = जिसे हड़क उठी हो
सेडुग = कपास
दसा = किनारी
गोर = गोधूम
अवसावण = कांजी
डगण = एक यान
फिल्लसिया = फिसल गई
तर्सि = व्यापार
पव्वावी = प्रव्रजित
वसधि = वसति
जाधे = यदा
अहवण = अथवा
विगड = मद्य
सगल[1] = समस्त
भोइय = ग्रामस्वामी
सोट्टा[2] = सूखी लकड़ी
अइम = अक्षणिक
गोणी = बोरी
खउरियाओ = कलुषित चित्तवाला
णंतग = वस्त्र
खउर = चिकना पदार्थ
पिट्ठस्स पीसणं णिरत्थं = पीसे हुए को पीसना निरर्थक है
थाइणि = वडवा = घोड़ी
ओलि[3] = पंक्ति
पेलव = निःसत्व
मत्तग = मूत्र
कडहू = एक वृक्ष
कोंचवीरग = एक जलयान
उज्जल्ल = अत्यन्त मलिन
खट्टामल = पूपलिकाखादक = सौ वर्ष का बूढ़ा जो स्वयं खाट से उठने में असमर्थ हो।
नवरंग = दृतिका = मशक
मक्कोडग = मकोड़ा
पेलू = पूर्नी
बहिलग = करभी, वेसर, बैल आदि
अगंठिक = केला=(जिसमें गाँठ न हो)
चोल्लय = भोजन
उअपोत = आकीर्ण
गाध = कथ् = कहना
सेडग = श्वेत
खेरि = परिशाटी
गंधसाली = गंधशालि
अधव = अथवा
छुड्डगुल = गीला गुड़
सिण्हा = अवश्याय
काइय = कायिकी = दीर्घशंका, लघुशंका
सीताजन्न = हलपूजा
घरासे = गृहवासे
रट्ठउड = राठौड़

१. मराठी में सगळा
२. हिन्दी में सोंटा
३. मराठी में ओळी

सहु = सहिष्णु
अतर = ग्लान = रुग्ण
उद्‌दुंडुग = उपहास्य
पप्पा = प्राप्य = प्राप्त करके
डगलक = शौच के समय टट्टी पोंछने के लिये जैन साधुओं द्वारा काम में लाये जानेवाले मिट्टी के ढेले
संख = संग्राम
फुंफुका = कंडे की आग
फरुससाल = कुम्भकारशाला
वलिट्ठ = वरिष्ठ
लिसी = ऋषि
तलु = तरु
चुडुलि = उल्का
काणिट्ट = पत्थर की ईंटें
सज्झिल्लक = सगा भाई
मुहणंतक = मुखवस्त्रिका
मोरग = कुण्डल
भच्चक = भानजा
डव्वहत्थ[1] = बायाँ हाथ
गुज्झक्खिणी = स्वामिनी
होठ = अलीक
वेस्सा = अनिष्टा
वोगड = व्याकृत = स्फुट
तच्चण्णिय = बौद्ध भिक्षु
डिंडिम = गर्भ
एत्थ जती आसि = यहाँ कल यति था
तेण मि न आतो = इसलिये मैं नहीं आया
गुलु = गुरु
अंबल = अंबर
केलिस = कीदृश
कट्ठसिव = काठ का शिव
भूणय = पुत्र
उम्मरी = देहली
वेट्टिका = राजकन्या
आसिआवण = अपहरण
बोह = तरुण
कउय = एक नट
सारवण = प्रमार्जन
पुताई = उद्भ्रामिका
कुडंड = बाँस की टोकरी
खद्ध = प्रचुर

(ग) निशीथचूर्णी (चूर्णियों का काल ईसवी सन् की लगभग ६ ठी शताब्दी)

सइज्झिय = पड़ोसी
वुक्कण्णय = पासे
गोधम्म = मैथुन
सीता = श्मशान
खट्टिक = जाति का खटीक
मडह = लघु
वग्गलि=बारबार वमन करने की व्याधि
लोमसी = ककड़ी
हंसोलीणं = कंधे पर चढ़ना
इलय = छुरी
रिणकंठ = पानी का किनारा
पाइल्लग = मिट्टी खोदने का फावड़ा
चिलिचिल = आर्द्र
दोद्धिअ = वर्त्तन
सिग्गुण = शतद्रु वृक्ष
अद्धाणकप्प = रात्रिभोजन

वसुदेवहिण्डी (ईसवी सन् की लगभग पांचवीं शताब्दी

सस्सू = सास
कव्वडदेवया = कर्बटदेवता
वंठाण = अविवाहित
डिंडी (बंध) = गर्भसम्भव

१. गुजराती में डावो हाथ

गामेल्लअ = ग्रामीण
सूयरपिल्लअ = सूअर का पिल्ला
वितड्डि = वेदिका
चोप्पड = चुपड़ा हुआ
रहिय = रथिक
कल्लाण = विवाह
सरीरोवरोह = शौच

उपदेशपद (ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी)

छोयर[1] = छोकरा (लड़का)
लिंडी = लेंडी
अवाउडवसही (अव्यापृतवसही)= दिगंबर साधुओं की वसति
छोल्लिय = छोलना (छिलका उतारना)
आलुका = एक प्रकार का बर्तन
पिट्टण = पीटना
छुंटणक = एक पशु
अंगोहलि[2] = सिर छोड़ कर गले तक का स्नान
खाडहिला = गिलहरी
टार = छोटा घोड़ा
ढंगिगाय = गाय-बैलों का मुखिया
समर = कामदेव का आयतन
दोसकी = दुष्ट नदी
विच्छुं[3] = बिच्छु

धर्मोपदेशमालाविवरण (ईसवी सन् की ६ वीं शताब्दी)

भोज्झ = युद्ध
चच्छर (?)
अहव्वा = असती = कुलटा
वयर = पिशाच
कयवर = कचरा
टिविडिक्किय = विभूषित
अनाड = जार
पुट्टालिया = पोटली
जोहार = जुहार
बरुअ = तृण

ज्ञानपंचमी (ईसवी सन् की ११ वीं शताब्दी से पूर्व)

छेली[4] = बकरी
गड्डुरिय = भेड़
माइण्हिअ = मृगतृष्णा
संभालइ = संभालना
मक्कडय = बंदर
चरड = चरट (लुटेरों की एक जाति)
चिडय = चिड़िया
लत्त = लात
जोडिय = जोड़ना
सुघरी = बया
घाल्लिया = डाल देना

सुरसुंदरीचरिअ (ईसवी सन् की ११ वीं शताब्दी)

जुयारि = जंवार
देक्खलियं = देखा
वारहडी = युद्ध
डोलिया = डोली
सिलिंब = शिशु
ढुंबय[5] = टक्कर मारना
बेडय = बेड़ा
तरिहि = तर्हि = तो
रोल[6] = आवाज
भंभला = मूर्ख
तुक्खार = घोड़े
टक्कर = टक्कर मारना
मेत्तल = कामदेव

---

१. गुजराती में छोकरा
२. मराठी में आंघोळ
३. हिन्दी में बिच्छू
४. मराठी में शेळी
५. गुजराती ढुम्बा
६. रौला पश्चिमी हिन्दी में

भवभावना (ईसवी सन् की १२ वीं शताब्दी)

काणवराड = कानी कौड़ी
चल्लुअतिग = तीन चुल्लू
गंदलीभूअ = गंदला
कंखणरोलो (?)
बंदुरा = अश्वशाला
गावीचुंखणडिंभ = कृष्ण का संबोधन
कुट्टए = कूटता है
डोय[1] = लकड़ी की डोई
कच्छोट्ट[2] = कछोटा
फाडए = फाड़ता है
ठिक्करियाओ = ठीकरियाँ
वाणिजाराय = बनजारे
चिंगिया (?)
रसोइ = रसोई
चुंटिऊण = चूंटकर
लूइआ = लू
छंटेइ = छींटता है
बुंबाओ[3] = चिल्लाना
लूडइ = लूटता है
बहिणी = बहन
रंडोल्लउ (?)
भेट्टिओ = भेंट की
कप्पासपूणी = कपास की पूनी
अंबिली = इमली
पोत्ते[4] = कपड़े
घरगोज्झरी = छिपकली
द्रम्म = द्रम्म
कण्णकडुय = कान को कड़ुआ लगने वाला
बडुय = बटुक
चक्खुलिंडि = आख का मैल(?)

पासनाहचरिय (ईसवी सन् की १२ वीं शताब्दी)

बेडिला = नौका, जहाज
कंडवडी (?)
तंबोलबीडओ = पान का बीड़ा
करवती[5] = करवा
रंधयारीहर = रसोईघर
आलपाल (?)
अराडी[6] = कोलाहल
कुसी = लोहे का हथियार
पेडा = मंजूषा, पेटी
तलहट्टी = सिंचन
टालिअ = भ्रष्ट
खोट्टिगा = खोटा सिक्का
गालिदाण = गाली देना

सुदंसणाचरिय (ईसवी सन् की १३ वीं शताब्दी)

नाहर = सिंह
रीठा = निन्दा
बइट्ठो = बैठा
गब्भिल्ल = कर्णधार (नाव का)
भाइणेयी = भागिनेयी
सुक्काण[7] = सुकान
दोसियहट्ट = कपड़े की दुकान
मुरुक्ख = मूर्ख

सुपासनाहचरिय (ईसवी सन् की १२ वीं शताब्दी)

निक्कालेउं = निकालने के लिये

---

१. गुजराती में डोयो
२. मराठी में कासोटा
३. गुजराती में बूम मारना
४. पश्चिमी हिन्दी में पोत
५. मराठी में करवत
६. पश्चिमी उत्तर प्रदेश में राड
७. सुकान गुजराती में

चिंचिणीगा = घरट्टिका
दि्ज्जउ = दो
पुक्करइ = पुकारता है
डाल = शाखा
खिलियं = खरीदा
टोपी = टोपी
झुल्लंति = झूलते हैं
थुक्किऊण = थूककर
हेडाउ = दासी (?)
मंड = मांटा
उंडा[1] = गहरा
सिद्धिवधूपरिरंभ = सिद्धिरूपी वधू का आलिंगन
लिज्जउ = लो
ठगिओ = ठगा गया
झिलिओ = झेल लिया
साहुलि = एक वस्त्र
गड्डय = गाड़ी

<u>सिरिवालकहा</u> (ईसवी सन् की १४ वीं शताब्दी)

पेडय = समूह
मुक्कलपय = मुक्तपद = अकेले
आमूलचूल = अथ से इति तक
ढिंकली = एक पात्र
वेसरी = खच्चर
लाग = चुंगी
गुडूडर = खेमा
भुंगल = एक वाद्य

<u>गाथासप्तशती</u> (ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी)

ढिंबईउ = निंबकीट
छेप्प[2] = पूँछ
वोडही = कुमारी या तरुणी
चंदिल = नापित
वोड = दुष्ट अथवा कनछिदा
छीओल्लक = मुखविकार
अडअणा = असती
पाउहारी = खेत में भोजन ले जानेवाली स्त्री
करिमरि = बन्दी
पाडी = भैंस
भोण्डी = सूकरी
तउसी = खीरा
वेल्लहल = सुन्दर
लेहल = लंपट
मंडल = कुत्ता
कुडंग = लताद्रिप
चिरडी = वर्णमाला
कुद्दंति = कूदते हैं
चुंटंतो = चुनते हुए
पट्टइल = पटेल
खिल्लेइ = खेलता है
हुड्डरीय = हड्डली (एक प्रकार की मिठाई)

<u>लीलावती</u> (ईसवी सन् की ८वीं शताब्दी

हलब्बोल = कोलाहल
अज्झा = नवपरिणीता
खोर = अधम स्त्री, वेश्या
पोरत्थ = दुर्जन
गुड्डिया[3]
पुल्ली = व्याघ्री
उत्तावल = उतावला

---

१. ऊण्डा गुजराती में
२. मराठी में शेपटी
३. मराठी में गुढीतोरण

परिशिष्ट—२

अलंकार ग्रन्थों में प्राकृत पद्यों की सूची

[गा० स० = गाथासप्तशती (बंबई, १९३३), सेतु = सेतुबन्ध (बंबई, १९३५), काव्या = काव्यादर्श, काव्यालं = काव्यालंकार (बंबई, १९०९), ध्वन्या० = ध्वन्यालोक (बनारस, १९५३), दश० = दशरूपक (बनारस, १९५५), स० कं० = सरस्वतीकंठाभरण (बंबई, १९३४), अलंकार = अलंकारसर्वस्व (बंबई, १८९३), का० प्र० = काव्यप्रकाश (बनारस, १९५५), काव्यानु० = काव्यानुशासन (बंबई, १९३८), साहित्य० = साहित्यदर्पण (बनारस, १९५५), रस० = रसगंगाधर (बंबई, १८८८), शृङ्गार० = शृङ्गार-प्रकाश (मद्रास, १९२६; मैसूर १९५५; इस ग्रन्थ के समस्त पद्य उद्धृत नहीं हैं]

अइकोवणा वि सासू रुआविआ गअवईअ सोण्हाए।
पाअपडणोण्णआए दोसु विगलिएसु बलएसु॥

(गा० स० ५, ९३; स० कं० ५, ३३९)

प्रोषितभर्तृका (जिस स्त्री का पति परदेश गया है) पुत्रवधू जब अपनी सास के पादवंदन के लिए गई तो उसके हाथ के दोनों कंकण निकल कर गिर पड़े, यह देखकर बहुत गुस्सेवाली सास भी रो पड़ी।

अइ दिअर ! किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पलोएसि।
जाआइ बाहुमूलंमि अद्धअन्दाणँ पारिवाडिम्॥

(गा० स० ६।७०; काव्या० पृ० ३६८, ५६८)

(भाभी अपने देवर से परिहास करती हुई कह रही है) हे देवर ! आकाश की ओर व्यर्थ ही क्या ताक रहे हो ? क्या अपनी प्रिया के वक्षःस्थल पर बने हुए नखक्षतों को नहीं देखते ? (अतिशयोक्ति अलंकार)

अइ दुम्मणआ ! अज्ज किणो पुच्छामि तुमं।
जेण जिविजइ जेण विलासो पलिहिजइ कीस जणो॥

(सं० कं० २, ३९५)

हे दुर्मनस्क ! आज मैं तुमसे पूछती हूँ कि जिसके कारण जीते हैं और जिससे आमोद-प्रमोद करते हैं, उस जन का क्यों परिहास किया जाता है ?

(रास का उदाहरण)

अइपिहुलं जलकुम्भं घेत्तूण समागदह्मि सहि ! तुरिअम्।
समसेअसलिलणीसासणीसहा वीसमामि खणम्॥ (का० प्र० ३, १३)

हे सखि ! मैं बहुत बड़ा जल का घड़ा लेकर जल्दी-जल्दी आई हूँ इससे श्रम के कारण पसीना बहने लगा है और मेरी साँस चलने लगी है जिसे मैं सहन नहीं

कर सकती, अतएव क्षण भर के लिए मैं विश्राम ले रही हूँ । (यहाँ चोरी-चोरी की हुई रति की ध्वनि व्यक्त की गई है)। (आर्थी व्यञ्जना)

अइ सहि ! वक्कुल्लाविरि च्छुहिहिसि गोत्तस्स मत्थए छारम् ।
अच्चन्तवृत्तदिट्ठेण सामि (?) बलिएण हसिएण ॥

(स० कं० ३, १५५)

हे सखि ! वक्र आलापों के द्वारा अतिशय रूप से देखती हुई, वक्र हास्य द्वारा तू गोत्र के मस्तक पर राख लगायेगी (अर्थात् नाम दूषित करेगी)।

(पूर्ववत् का उदाहरण)

अगणिअसेसजुआणा बालअ ! वोलीणलोअमज्जाआ ।
अइ सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥

(गा० स० ११५६; स० कं० ५, ३४१)

अरे नादान ! तुम्हारे सिवाय और सब नवयुवकों की अवगणना करके लोक-मर्यादा की परवा न करती हुई वह तुम्हें चारों तरफ आँखें खोल-खोलकर देखती फिरती है ।

अच्छउ ताव मणहरं पिआए मुहदंसणं अइमहग्घं ।
तग्गामखेत्तसीमा वि झत्ति दिठ्ठा सुहावेइ ॥

(शृंगार० १३, ६०; गा० स० २, ९८)

प्रिया के अतिमहार्घ मनोहर मुखदर्शन की क्या बात कहें, उसके गाँव के खेत की सीमा देखकर भी अतिशय सुख प्राप्त होता है । (आह्लाद का उदाहरण)

अच्छेरं व णिहिं विअ सग्गे रज्जं व अमअपाणं व ।
आसि म्ह तं मुहुत्तं विणिअंसणदसणं तिस्सा ॥

(शृङ्गार० १०-४४; गा० स० २, २५)

एक क्षण भर के लिये उसे वस्त्रविहीन देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया, मानों कोई निधि मिल गई हो, स्वर्ग का राज्य प्राप्त हो गया हो, या फिर अमृत का पान कर लिया हो । (रति का उदाहरण)

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥

(गा० स० ३, ४९; स० कं० ५, १२७)

(रात्रि के समय) घोर अन्धकार होने पर भी आज मुझे उस सुभग के पास अवश्य जाना है, यह सोचकर नायिका अपने घर में आँख मींचकर चलने का अभ्यास करने लगी ।

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाइं संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ॥

(गा० स० १, २९; स० कं० ५ १२८)

आज उसकी अनुपस्थिति में अनुभव किए हुए सुखों को स्मरण करते हुए मैंने

वध्यस्थान को ले जाते समय बजाये जाने वाले पटह के समान नूतन मेघों की गर्जना का शब्द सुना है।

अज्ज वि ताव एक्कं मा मं वारेहि पिअसहि ! रुअन्तिम् ।
कल्लि उण तम्मि गए जइ ण मरिस्सं ण रोइस्सम् ॥

(स० कं० ५, ३४५; गा० स० ५, २)

हे प्रियसखि ! आज केवल एक दिन के लिए रोती हुई मुझे मत रोको; कल उसके चले जाने पर, यदि मैं जीवित रही तो फिर कभी न रोऊंगी।

अज्ज वि सेअजलोल्लं पव्वाइ ण तीअ हलिअसोण्हाए।
फग्गुच्छणचिक्खिल्लं जं तइ दिण्णं थणुच्छंगे ॥

(स० कं० ५, २२६)

उस कृषक-वधू के स्तनों पर फाग खेलने (फग्गुच्छण) के अवसर पर लगाया हुआ कादों स्वेदजल से गीला होने पर आज भी नहीं छूटता।

अजवि हरि चमकइ कहकहवि न मंदरेण दलिआइं।
चन्दकलाकंदलसच्छहाइं लच्छीइ अंगाइं ॥

(काव्यानु०, पृ० ९९, १५९)

चन्द्रकला के अंकुर के समान लक्ष्मी का शरीर किसी भी कारण से मंदर पर्वत से दलित नहीं हुआ, यह देखकर विष्णु भगवान् आज भी आश्चर्यचकित होते हैं।

अज्ज वि बालो दामोअरो त्ति इअ जंपिए जसोआए।
कण्हमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं वअबहूहिं ॥

(गा० स० २, १२; स० कं० ४, २१९)

अभी तो कृष्ण बालक ही है, इस प्रकार यशोदा के कहने पर कृष्ण के मुँह को टकटकी लगाकर देखती हुई व्रजवनितायें छिप-छिपकर हँसने लगीं।

(पर्याय अलंकार)

अज्ज सुरअंमि पिअसहि ! तस्स विलक्खत्तणं हरंतीए।
अकअत्थाए कअत्थो पिओ मए उणिअ मवऊढो ॥

(शृङ्गार ४७, २२९)

हे प्रिय सखि ! आज सुरत के समय उसकी लज्जा अपहरण करते हुए मुझ अकृतार्थ द्वारा कृतार्थ किया हुआ प्रियतम पुनः-पुनः मेरे द्वारा आलिंगन किया गया।

(नित्यानुकारी का उदाहरण।

अज्जाए णवणहक्खअणिक्खणे गरुअजोव्वणुत्तुंगम् ।
पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ थणवट्टम् ॥

(स० कं० ५, २२१; गा० स० २, ५०)

गुरु यौवन से उभरे अपने स्तनों पर बने हुए नूतन नखक्षतों को देखते समय नायिका के नेत्रों का (उसके स्तनों पर) जो प्रतिबिम्ब पड़ा, उससे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों नील कमलों से वह पूजा कर रही है।

अज्जाए पहारो णवलदाए दिण्णो पिएण थणवट्टे।
मिउओ वि दूसहो व्विअ जाओ हिअए सवत्तीणम् ॥
(ध्वन्या० उ० १, पृ० ७५)

प्रियतम ने अपनी प्रेयसी के स्तनों पर नई लता द्वारा जो प्रहार किया, वह कोमल होते हुए भी सौतों के हृदय को असह्य हो उठा। (लक्षणा का उदाहरण)

अणुणिअखणलद्धसुहे पुणोवि सम्भरिअमण्णुदूमिअविहले।
हिअए माणवईणं चिरेण पणअगरुओ पसम्मई रोसो ॥
(स० कं० ५, २७७)

मनुहार के कारण क्षण भर के लिए सुख को प्राप्त और स्मरण किए हुए क्रोध के कारण विह्वल ऐसी मानवती नायिकाओं के हृदय का प्रणयजन्य गंभीर रोष बहुत देर में शांत होता है।

अणुमरणपत्थिआए पच्चागअजीविए पिअअमम्मि।
वेहव्वमंडणं कुलवहूअ सोहग्गअं जाअम् ॥
(स० कं० ५, २७५; गा० स० ७, ३२)

कोई कुलवधू अपने पति के मर जाने पर सती होने जा रही थी कि इतने में उसका प्रियतम जी उठा। (ऐसे समय) उसने जो वैधव्यसूचक अलंकार धारण किये थे वे सौभाग्यसूचक हो गये।

अण्णत्थ वच्च बालय ! ण्हायंतिं कीस मं पुलोएसि।
एयं भो जायाभीरुयाणत्तहं चिय न होइ ॥
(काव्यानु० पृ० ८५, ८५)

हे नादान ! स्नान करती हुई मुझे तू क्यों देख रहा है ? यहाँ से चला जा। जो अपनी पत्नी से डरते हैं उनके लिए यह स्थान नहीं (ईर्ष्या के कारण प्रच्छन्न-कामिनी की यह उक्ति है)।

अण्णमहिलापसंगं दे देव ! करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥
(स० कं० ५, ३८८; गा० स० १, ४८)

हे देव ! हमारे प्रियतम को अन्य महिलाओं का भी साथ हो, क्योंकि एकनिष्ठ पुरुष स्त्रियों के गुण-दोषों को नहीं समझ पाते।

(परभाग अलंकार का उदाहरण)

अण्णाइ ण सीरइ च्चिअ परिवड्ढंतअगरुअसंतावम्।
मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥
(सं० कं० ५, ३४२; गा० स० ४, ४१)

(प्रियतम के) विरह का दुख दिन प्रतिदिन बढ़ता हुआ घोर संताप उत्पन्न करता है; मरण-क्रीड़ा के बिना उसे शान्त करने का और कोई उपाय नहीं।

अण्णुअ ! णाहं कुविआ, उवऊहसु, किं मुहा पसाएसि।
तुह मण्णुसमुप्पण्णेण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥
(स० कं० ५, २४८)

हे नादान ! मैं गुस्सा नहीं हूँ। (नायक उत्तर देता है) तो फिर मेरा तू आलिंगन कर, मैं व्यर्थ ही तुझे मना रहा हूँ; तेरे क्रोध से उत्पन्न मान से मुझे प्रयोजन नहीं।

अण्णे वि हु होन्ति छणा ण उणो दीआलिआसरिच्छा दे।
जत्थ जहिच्छं गम्मइ पिअवसही दीवअमिसेण॥
(स० कं ५, ३१५)

उत्सव बहुत से हैं लेकिन दिवाली के समान कोई उत्सव नहीं। इस अवसर पर इच्छानुसार कहीं भी जा सकते हैं और दीपक जलाने के बहाने अपने प्रिय की वसति में प्रवेश कर सकते हैं।

अण्णं लडहत्तणयं अण्ण च्चिय कावि वत्तणच्छाया।
सामा सामण्णपयावइस्स रेह च्चिय न होइ॥
(काव्यानु० पृ० ३६८, ५६९; का० प्र० २०, ४५०)

इस नवयौवना की सुकुमारता कुछ और है और लावण्य कुछ और; किसी सामान्य प्रजापति की रचना यह कदापि नहीं हो सकती। (अतिशयोक्ति का उदाहरण)

अतहट्ठिए वि तहसट्ठिए व्व हिअअम्मि जा णिवेसेइ।
अत्थविसेसे सा जअइ विकडकइगोअरा वाणी॥
(ध्वन्या० उ० ४, पृ० ५९८)

अर्थ विशेष में अविद्यमान अर्थ को जो विद्यमान की भाँति हृदय में बैठा देती है, ऐसी कवियों की उत्कृष्ट वाणी की विजय हो।

अत्तन्तहरमणिज्जं अम्हं गामस्स मंडणीहूअम्।
लुअतिलवाडिसरिच्छं सिसिरेण कअं भिसिणिसंडम्॥
(स० कं० २, ७७)

हमारे गाँव की एकमात्र शोभा अत्यन्त रमणीय कमलिनी के वन को शिशिर ऋतु ने काटे हुए तिल के खेत के समान बना दिया!

अत्ता एत्थ तु मजइ एत्थ अहं दियसयं पुलोएसु।
मा पहिय रत्तिअंधय ! सेजाए महं तु मज्जिहसि॥
(काव्यानु० पृ० ५३, १४; साहित्य, पृ० १७; काव्य० प्र० ५ १३६; गा० स० ७, ६७)

हे रतौंधी वाले पथिक ! तू दिन में ही देख ले कि मेरी सास यहाँ सोती है और मैं वहाँ, कहीं ऐसा न हो कि तू मेरी खाट पर गिर पड़े। (अभिनय और नियम अलंकार का उदाहरण)

अत्थक्कागअहिअए बहुआ दइअम्मि गुरुपुरओ।
जूरइ विअलंताणं हरिसविसट्टाण बलआणम्॥ (स० कं० ५, २४१)

(प्रवास पर गये हुए) प्रियतम के अकस्मात् लौट आने पर हर्ष से स्खलित हुए कंकणों वाली वधू गुरुजनों को सामने देखकर झुर रही है।

अत्थक्करूसणं खणपसिज्जणं अलिअवअणणिब्बन्धो।
उम्मच्छरसन्तावो पुत्तअ! पअवी सिणेहस्स॥
(स० कं० ५, १७८; गा० स० ७, ७५)

हे पुत्र! अचानक रूठ जाना, क्षणभर में प्रसन्न हो जाना, मिथ्या वचन कहकर किसी बात का आग्रह करना और ईर्ष्या से संताप करना—यह स्नेह का मार्ग है।

अद्दंसणेण पुत्तअ! सुट्ठु वि णेहाणुबन्धगहिआइं।
हत्थउडपाणिआइं व कालेण गलन्ति पेम्माइं॥
(स० कं० ५, २२८; गा० स० ३, ३६)

हे पुत्र! हस्तपुट में रखे हुए जल की भाँति स्नेहानुबंध से गृहीत सुदृढ़ प्रेम दीर्घकाल तक दर्शन के अभाव में क्षीण होने लगता है।

अप्फन्दन्तेण णहं महिं च तडिउद्दमाइअदिसेण।
दुन्दहिगम्भीररवं दुन्दुहिअं अंबुवाहेण॥
(स० कं० २, १९०)

आकाश और पृथ्वी पर फैल जानेवाला तथा बिजली से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला मेघ दुंदुभि की भाँति गंभीर शब्द करने लगा।

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्द! दे छिवसु।
छिक्को जेहिं पिअअमो ममं वि तेहिं चिअ करेहिं॥
(स० कं० ५, ३३७; गा० स० १, १६)

जिन किरणों द्वारा तू ने मेरे प्रियतम का स्पर्श किया है, उन्हीं किरणों से अमृत रूप, आकाश के मुकुट और रजनीमुख के तिलक, हे चन्द्रमा! तू मुझे भी स्पर्श कर। (परिकर अलंकार का उदाहरण)

अम्हारिसा वि कइणो कइणो हलिवुड्ढहालपमुहा वि।
मण्डुक्कमक्कडा वि हु होन्ति हरीसप्पसिहा वि॥
(स० कं० १, १३३)

कहाँ हमारे जैसे और कहाँ हरिवृद्ध और हाल इत्यादि (असाधारण प्रतिभावान) कवि? कहाँ मेढक और बंदर तथा कहाँ सर्प और सिंह?

अलससिरोमणि धुत्ताणं अग्गिमो पुत्ति! धणसमिद्धिमओ।
इअ भणिएण णअंगी पप्फुल्लविलोअणा जाआ॥
(काव्य० ४, ६०)

हे पुत्रि! (जिससे तुम प्रेम करती हो) वह आलसियों का शिरोमणि, धूर्तों का अगुआ और धन-सम्पत्तिवाला है। इतना सुनते ही उसकी आँखें खिल उठीं और उसका शरीर झुक गया। (अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ! देसु सुहअ! मज्झ ओआसं।
गण्डपरिउंबणापुलइअङ्ग ण पुणो चिराइस्सं॥
(स० कं० ५, १६९; सा०, पृ० १९४; गा० स० १, २०)

झूठ-मूठ सोने का बहाना बनाकर अपनी आँखें मींचनेवाले हे सुभग ! मुझे (अपने बिस्तरे पर) जगह दे। तुम्हारे कपोल का चुंबन लेने से तुम्हें पुलकित होते हुए मैंने देखा है। सच कहती हूँ, अब कभी इतनी देर न लगाऊँगी (उद्भेद और व्याज अलंकार का उदाहरण)

अवसर रोउं चिअ णिम्मिआइं मा पुससु मे हअच्छीइं।
दंसणमेत्तुम्मत्तेहिं जेहि हिअअं तुह ण णाअम् ॥

(ध्वन्या० उ० ३, पृ० ३३१)

(हे शठ नायक !) यहाँ से दूर हो, मेरी अभागी आँखें (विधाता ने) रोने के लिए ही बनाई हैं, इन्हें मत पोंछ; तेरे दर्शन मात्र से उन्मत्त हुई ये आँखें तेरे हृदय को न पहचान सकीं।

अवऊहिअपुव्वदिसे समअं जोण्हाए सेविअपओसमुहे।
माइ ! ण झिज्जउ रअणी वरदिसाइतपच्छिअम्मि मिअंके ॥

(स० कं० ५, ३५६)

अपनी ज्योत्स्ना से जिसने पूर्व दिशा का आलिंगन किया है और प्रदोषमुख का जिसने पान किया है ऐसा चन्द्रमा पश्चिम दिशा की ओर जा रहा है। हे माई ! रात नहीं कटती।

अवरण्हाअअजाभाउअस्स विउणेइ मोहणुक्कंठं।
बहुआए घरपलोहरमज्जणमुहलो वलअसद्दो ॥ (शृंगार २२, ९८)

दामाद का अपराह्नकाल में आगमन सुरत की उत्कंठा को दुगुना कर देता है। उस समय घर के पिछवाड़े स्नान में संलग्न वधू के कंकड़ों का शब्द सुनाई देने लगा।

अवलम्बिअमाणपरम्मुहीअ एंतस्स माणिणी ! पिअस्स।
पुट्ठपुलउग्गमो तुह कहेइ संमुहठिअं हिअअं ॥

(स० कं० ५, ३८१; गा० स० १, ८७)

हे मानिनि ! प्रियतम के आने पर तू मान करके बैठ गई, किन्तु तेरी पीठ के रोमांच से मालूम होता है कि तेरा हृदय उसमें लगा है।[1] (विरोध अलंकार का उदाहरण)

अवलम्बह मा संकह ण इमा गहलंघिया परिब्भमइ।
अत्थक्कगज्जिउब्भंतहित्थहिअआ पहिअजाआ ॥

(स० कं० ५, ३४३; गा० स० ४, ८६)

सहसा बादलों के गर्जन से त्रस्त हुई प्रवास पर गये हुए पथिक की प्रियतमा घर छोड़कर भटकती फिरती है। किसी भूत-प्रेत की बाधा से वह पीड़ित नहीं, डरो मत। सहारा देकर इसे बाहर जाने से रोको।

---

१. मिलाइये—रही फेरि मुख हेरि इत हितसमुहे चित नारि।
दीठि परत उठि पीठि के पुलकैं कहत पुकारि ॥
(बिहारीसतसई ५६७)

अवसहिअजणो पइणा सलाहमाणेण एच्चिरं हसिओ।
चन्दो त्ति तुज्झ मुहसंमुहदिण्णकुसुमंजलिविलक्खो॥
(स० कं० ५, २९८; गा० स० ४, ४६)

तुम्हारे रूप के प्रशंसक तुम्हारे पति के द्वारा, तुम्हारे मुख को चन्द्रोदय समझकर उसे कुसुमांजलि प्रदान करने के कारण लज्जित जन परिहास का पात्र हुआ।[1] (भ्रान्तिमान अलंकार का उदाहरण)

अविअह्णपेच्छणिज्जेण तक्खणं मामि! तेण दिट्ठेण।
सिविणअपीएण व पाणिएण तण्हच्चिअ ण फिट्टा॥ (शृंगार ४, ५)

हे मामी! उस क्षण अवितृष्ण नयनों से उसे देखने से ऐसा मालूम हुआ जैसे स्वप्न में जल का पान किया है और उससे तृष्णा ही नहीं बुझी।

अविभाविअरअणिमुहं तस्स अ सच्चरिअविमलचन्दुज्जोअम्।
जाअं पिआविरोहे वड्ढन्ताणुसअमूढलक्खं हिअअम्॥
(स० कं० ५, २०३)

सन्ध्याकाल बीत जाने पर, सच्चरित्र रूपी निर्मल चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित उस (नायिका) का हृदय, अपने प्रियतम के पास रहने पर, वृद्धि को प्राप्त अतिशय प्रेम के कारण विक्षिप्त जैसा दिखाई दिया।

अव्वोच्छिण्णपसरिओ अहिअं उद्धाइ फुरिअसूरच्छाओ।
उच्छाहो सुहडाणं विसमक्खलिओ महाणईणं सोत्तो॥
(स० कं ४, ५२; सेतुबंध ३, १७)

महानदियों के प्रवाह की भाँति विषम संकट में स्खलित (प्रवाह के पक्ष में विषम भूमि पर स्खलित), अव्यवच्छिन्न रूप से फैलने वाला और शूरवीरों की मुखश्री बढ़ाने वाला (प्रवाह के पक्ष में सूर्य की छाया के प्रतिबिम्ब से युक्त) ऐसा सुभटों का उत्साह अधिकाधिक तीव्रता से अग्रसर होता है।

अव्वो दुक्करआरअ! पुणो वि तत्ति करेसि गमणस्स।
अज्ज वि ण होंति सरला वेणीअ तरंगिणो चिउरा॥
(सं० कं० ५, २९१; गा० स० ३, ७३)

हे निर्दयी! अभी तो मेरी वेणी के केश भी सीधे नहीं हुए और तू फिर से जाने की बात करने लगा।[2]

असईण णमो ताणं दप्पणसरिसेसु जाण हिअएसु।
सोच्चेअ ठाइ पुरओ सहसा सोच्चेअ संकमइ॥ (शृंगार ४२, २०७)

---

१. मिलाइये—तू रहि हौंही ससि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल।
सबहिनु बिनु ही ससि उदै देहैं अरघ अकाल॥
(बिहारीसतसई २८४)

२. मिलाइये—अज्यौं न आये सहज रंग बिरह दूबरे गात।
अबही कहा चलाइयत ललन चलन की बात॥
(बिहारीसतसई ६)

कुलटा स्त्रियों को नमस्कार है, जिनके दर्पण के समान हृदयों में जो सामने उपस्थित है, वही हूबहू प्रतिबिंबित भी होता है।

असमत्तो वि समप्पइ अपरिग्गहिअलहुओ परगुणालावो।
तस्स पिआपडिवद्धा ण समप्पइ रइसुहासमत्ता वि कहा॥

(स० कं० ५, ३४०)

अतिशय महान् दूसरे के गुणों की प्रशंसा असमाप्त होकर भी समाप्त हो जाती है, लेकिन उसकी प्रियतमा के रतिसुख की कथा कभी समाप्त नहीं होती।

असमत्तमण्डणा च्चिअ वच्च घरं से सकोउहल्लस्स।
बोलाविअहलहलअस्स पुत्ति! चित्ते ण लग्गिहिसि॥

(स० कं० ५, १७४; गा० स० १, २१)

हे पुत्रि! तू अपने साज-शृङ्गार के पूर्ण हुए बिना ही (तेरी प्रतीक्षा में) उत्सुकता से बैठे हुए अपने प्रिय के घर जा। उसकी उत्सुकता शिथिल हो जाने पर फिर तू उसके मन न भायेगी।

अह तइ सहत्थदिण्णो कह वि खलन्तमत्तजणमज्झे।
तिस्सा थणेसु जाओ विलेवणं कोमुईवासो॥

(स० कं० ५, ३१४)

पूर्णिमा की ज्योत्स्ना किसी नायिका के स्तनपृष्ठ पर पड़ रही है, मालूम होता है कि स्खलित होते हुए मदोन्मत्त लोगों के बीच में किसी नायक ने अपने हाथों से उसके स्तनों पर लेप कर दिया है।

अह धाविऊण संगमएण सव्वंगिअं पडिच्छन्ति।
फग्गुमहे तरुणीओ गहवइसुअहत्थचिक्खिल्लं॥

(स० कं० ५, ३०४)

एक साथ दौड़कर युवतियाँ, फाग के उत्सव पर, गृहपति के पुत्र के हाथ की कीचड़ को अपने समस्त अङ्ग में लगवाने के लिए उत्सुक हो रही है।

अहयं लज्जालुइणी तस्सवि उम्मन्थराइं पिम्माइं।
सहिआअणो अ निउणो अलाहि किं पायराएण॥

(काव्यानु० पृ० १५५, १७५; गा० स० २, २७)

मै तो शरमीली हूँ, और उसका प्रेम उत्कट है; मेरी सखियाँ (जरा से निशान से) सब कुछ समझ जाती हैं; फिर भला मेरे चरणों के रंगने से क्या लाभ? (रतिक्रीड़ा के समय पुरुष के समान आचरण करने वाली नायिका की यह उक्ति है।) (व्याजोक्ति अलंकार का उदाहरण)

अह सा तहिं तहिं व्विअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ।
तुह दंसणं विमग्गइ पब्भट्ठणिहाणठाणं व॥

(स० कं० ५, ४००; गा० स० ४, १८)

उसी बेंत के वन में दिये हुए संकेत को भूलकर वह, निधिस्थल को भूले हुए व्यक्ति की भाँति, तुम्हारे दर्शन के लिए इधर-उधर भटकती फिर रही है।

अह सो विलक्खहिअओ मए अहव्वाइ अगणिअप्पणओ।
परवज्जणच्चिरीहिं तुम्हेहिं उवेक्खिओ जंतो ॥

(स० कं ५, ३९९; गा० स० ५, २०)

हे सखियो! उसके प्रणय की परवा न कर मुझ अभागिनी ने उसे लज्जित कर दिया और परपुरुष को वाद्यपूर्वक नचाते हुए तुम लोगों ने बाहर जाते समय उसकी उपेक्षा की।

अहिणवपओअरसिएसु सोहइ सामाइएसु दिअहेसु।
रहसपसारिअगीआणं णच्चिअं मोरविन्दाणं ॥

(साहित्य० पृ० ८४९; ध्वन्या उ० ३, पृ० ५७४; गा० स० ६, ५९)

अभिनव मेघों की गर्जना से युक्त रात्रि की भाँति दिखाई देने वाले दिनों में (मेघ को देखने के लिए) शीघ्रता से अपनी गर्दन उठाने वाले मोरों का नाच कितना सुन्दर लगता है! (उपमा और रूपक का उदाहरण)

अहिणवमणहरविरइअवलयविहूसा विहाइ णववहुआ।
कुंदलयव्व समुप्फुल्लगुच्छपरिलितभमरगणा ॥

(काव्यानु० पृ० २०७, २२५; स० कं० १, ३७)

अभिनव सुन्दर कंकणों के आभूषणों से नववधू शोभित हो रही है, मानों फूलों के गुच्छों पर मड़राते हुए भौंरों से वेष्टित कुंदपुष्प की लता हो।

(अधिक उपमा का उदाहरण)

आअम्बलोअणाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणं।
अवरण्हमज्जिरीणं कए ण कामो धणुं वहइ ॥

(स० कं० ५, १३५; गा० स० ५, ७३)

(सद्यः स्नान करने से) जिसके नेत्र ललौहें हो गये हैं, और गीले वस्त्र होने से जिसके उरु और जघन दिखाई पड़ रहे हैं, अपराह्न काल में स्नात ऐसी नायिका के लिए कामदेव को धनुष धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती (ऐसी नायिका तो स्वयं ही कामीजनों के मन में क्षोभ उत्पन्न कर देती है)।

आअरपणमिओट्ठं अघडिअणासं असंघडिअणिलाडम्।
वण्णग्घअलिप्पमुहीअ तीअ परिउम्बणं मरिमो ॥

(स० कं ५, २१२; गा० स० १, २२)

हल्दीमिश्रित घी से लिप्त मुँहवाली (रजस्वला स्त्री ने) अपनी नासिका और ललाट के स्पर्श को बचाते हुए बड़े आदर से अपने अधरोष्ठ को झुकाकर जो चुंबन दिया वह हमें आज भी याद है।

आउज्झिअ पिट्टिअए जह कुक्कुलि णाम मज्झ भत्तारे।
पेक्खन्तह लाउलकण्णिआह हा कस्स कन्देमि ॥

(स० कं० १, ३१)

कुक्कुर की भाँति मेरे भर्ता को डाँट-फटकार कर पीटा गया। हे राजकुल के कर्मचारियो! देखो, अब मैं किसके आगे रोऊँ?

आणासआइ देंती तह सुरए हरिसविअसिअकवोला।
गोसे वि ओणअमुही असस्रोत्ति पिआं ण सद्दहिमो ॥

(शृङ्गार ५३, १)

हर्ष से विकसित कपोलवाली और सुरत के समय सैंकड़ों आज्ञायें देनेवाली वही प्रिया प्रभात कालमें मुंह नीचा करके चलती है, यह विश्वास नहीं होता।

आणिअपुलउब्भेओ सवत्तिपणअपरिधूसरम्मि वि गुरुए।
पिअदंसणे पवड्ढइ मण्णुट्ठाणे वि रूप्पिणीअ पहरिसो ॥

(स० कं० ५, ३३०)

सपत्नी के प्रणय से अत्यधिक धूसरित और रोष के स्थान ऐसे प्रिय का दर्शन होने पर पुलकित हुई रुक्मिणी का हर्ष बढ़ने लगा।

आम ! असइओ ओरम पइव्वए ण तुए मलिणिअं सीलम्।
किं उण जणस्स जाअव्व चन्दिलं तं ण कामेमो ॥

(ध्वन्या० उ० ३, पृ० ५१८; गा० स० ५, १७)

अच्छा मैं कुलटा हूं और तू है पतिव्रता ! तू मुझसे दूर रह। कहीं तेरा शील तो दूषित नहीं हो गया ? एक साधारण वेश्या की भाँति उस नाई पर तो मेरा दिल नहीं चला गया ?

आलाओ मा दिज्जउ लोअविरुद्धंति णाम काऊण।
समुहापडिए को वेरिए वि दिट्ठिं ण पाडेइ ॥

(स० कं० ५, १४६)

लोकविरुद्ध समझकर इसके संबंध में चर्चा मत करो। सामने आये हुए शत्रु के ऊपर भला कौन नजर नहीं डालता ?

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्भन्त गन्त रोअन्त।
मुज्झन्त पडन्त हसन्त पहिअ किं ते पउत्थेण ॥

(स० कं० ५, २६६; गा० स० ६, ४६)

हे पथिक ! अभी से जब तेरी यह दशा है कि तू इधर-उधर देख रहा है, तेरी साँस चलने लगी है, तू जम्हाई ले रहा है, कभी तू गाता है, कभी रोता है, कभी बेहोश हो जाता है, कभी गिर पड़ता है और कभी हँसने लगता है, तो फिर तेरे प्रवास पर जाने से क्या लाभ ?

आवाअभअअरं चिअ ण होइ दुक्खस्स दारुणं णिव्वहणम्।
णाह ! जिअन्तीअ मए दिट्ठं सहिअं अ तुह इमं अवसाणम् ॥

(सं० क० ५, २५५)

दुख का दारुण निर्वाह अन्ततः भयंकर नहीं होता। हे नाथ ! जीवित अवस्था में मैंने तुम्हारे इस अन्त को देखा और सहन किया है। (सीता की रामचन्द्र के प्रति उक्ति)।

आसाइयं अणाएण जेत्तियं तेत्तिअं च्चिअ विहीणं।
ओरमसु वसह! इण्हिं रक्खिज्जइ गहवईच्छित्तं॥

(काव्या० पृ० ५४, १६)

हे बैल! तूने बिना जाने खेत के कितने ही धान खा लिए, तू अब ठहर जा, क्योंकि गृहपति अब अपने खेत की रखवाली करने आ गया है।

(भाविक अलंकार का उदाहरण)

इमिणा सरएण ससी ससिणा वि णिसा णिसाइ कुमुअवणम्।
कुमुअवणेण अ पुलिणं पुलिणेण अ सोहए हंसउलम्॥

(स० कं० ४, २०५)

इस शरद् से चन्द्रमा, चन्द्रमा से रात्रि, रात्रि से कुमुदवन, कुमुदवन से नदीतट और नदीतट से हंस शोभा को प्राप्त होते हैं। (माला का उदाहरण)

ईसाकलुसस्स वि तुह मुहस्स णणु एस पुण्णिमायंदो।
अज्ज सरिसत्तणं पाविऊण अंगे च्चिय न माइ॥

(काव्यानु० पृ० ७६, १४५; ध्वन्या० उ० २ पृ० २०८)

(हे मनस्विनि!) देखो पूनो का यह चाँद ईर्ष्या से कलुषित तुम्हारे मुख की समानता पाकर फूला नहीं समाता।

उअहिस्स जसेण जसं धीरं धीरेण गरुअआइ वि गरुअम्।
रामो ठिएअ वि ठिइं भणइ रवेण अ रवं समुप्फुदन्तो॥

(स० कं० २, २४०; सेतुबंध ४, ४२)

(रामचन्द्र) अपने यश से समुद्र के यश, अपने धैर्य से उसके धैर्य, अपनी गम्भीरता से उसकी गम्भीरता, अपनी मर्यादा से उसकी मर्यादा और अपनी ध्वनि से उसकी ध्वनि को आक्रान्त करते हुए कहने लगे।

उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाआ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संखसुत्ति व्व॥

(साहित्य० पृ० ६३; गा० स० १, ४; काव्यप्रकाश २, ८)

(अरे प्रियतम!) देखो कमलिनियों के पत्तों पर निश्चल और स्थिर बगुलों की पंक्ति ऐसी शोभित हो रही है मानो किसी निर्मल नीलम के पात्र में शंख की सीपी रक्खी हो। (धर्मोक्ति, व्यंग्योक्ति और स्वभावोक्ति अलंकार का उदाहरण)

उच्चिणसु पडियकुसुमं मा धुण सेहालियं हलियसुण्हे।
एस अवसाणविरसो ससुरेण सुओ वलयसद्दो॥

(ध्वन्या० उ० २, पृ० २२३; काव्यानु० पृ० ५५, २०)

हे हलवाहे की पतोहू! भूमि पर स्वयं गिरे हुए पारिजात के पुष्पों को चुन ले, उसकी टहनियाँ मत हिला, कारण कि तेरे कंकणों के अप्रीतिकर शब्द को तेरे श्वसुर ने सुन लिया है।

उज्झसि पिआइ समअं तहवि हु रे ण भणसि कीस किसिअं ति।
उवरिभरेण अ अण्णुअ! मुअइ बइल्लोवि अंगाइम् ॥
(सं० कं० ४, १३०; गा० स० ३, ७५)

प्रिया के द्वारा तू वहन किया जाता है और फिर भी तू उसी से पूछता है कि तू कृश क्यों हो गई है! हे नादान! अपने ऊपर भार लादने से तो बैल भी कृश हो जाता है। (सहोक्ति अलंकार का उदाहरण)

उद्दन्तमहारम्भे थणए दट्ठूण मुद्धवहुआए।
ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए॥
(स० कं ५ ३८७; गा० स० ४, ८२)

मुग्धा वधू के आरम्भ से ही उठावदार स्तनों को देखकर सूखे कपोल वाली पहली पत्नी सांस मारने लगी।[1]

उत्तंसिऊण दोहलविअसिआसो अमिन्दुवदणाए।
विरहिणो णिप्फलकंकेल्लिकरणसद्दो समुप्पुसिओ॥(स० कं० ५, ३०५)

चन्द्रमुखी ने अपने पाद के आघात से अशोक को विकसित करके मानो ब्रह्मा के फलविहीन अशोक वृक्ष के सर्जन को ही निरर्थक कर दिया है।

उदित्तरकआभोआ जह जह थणआ विणन्ति बालाणम्।
तह तह लद्धावासो व्व मम्महो हिअअमाविसइ॥
(ध्वन्या० ३, ४, पृ० ६०४)

फैले हुए केशों के विस्तार से आच्छादित बालिकाओं के स्तन जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे मानो अवसर पाकर कामदेव हृदय में प्रवेश करता है।

उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलंगुली चिरं पहिओ।
पाआवलिआ वि तह तह धारं तणुअंपि तणुएइ॥
(स० कं० ३, ७३; गा० स० २, ६१)

जैसे-जैसे पथिक अपनी उंगलियों को विरल करके आँखों को ऊपर उठाकर (पानी पिलाने वाली को देखने के लिए) बहुत देर तक पानी पीता है, वैसे-वैसे प्याऊ पर बैठकर पानी पिलाने वाली भी पानी की धार को कम-कम करती जाती है। (अन्योन्य और प्रतीयमान अलंकार का उदाहरण)

उप्पहजायाए असोहिणीए फलकुसुमपत्तरहिआए।
बोरीए वइं देन्तो पामर! हो हो हसिज्जिहसि॥
(काव्यानु० पृ० ३६०, ५४७; ध्वन्या० उ० ३, पृ० ५४२)

हे पामर! कुमार्ग (अधम कुल) में उत्पन्न, अशोभनीय (कुरूप) तथा फल, पुष्प और पत्तों (संतान) से रहित ऐसी बेरी (स्त्री) की बाड़ लगाने (स्त्री को अपने घर में बसाने) वाले पुरुष का लोग उपहास करेंगे।
(अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण)

---

१. बाढ़तु तो उर उरज भर भरि तरुनई विकास।
बोझनु सौतिनु कैं हियैं आवति रूँधि उसास॥ (बिहारीसतसई ४४९)

उम्मूलिआण खुडिआ उक्खिप्पंताण उज्जुअं ओसरिआ।
णिज्जंताण णिराआ गिरीण मग्गेण पत्थिआ णइसोत्ता॥

(स० कं ४, १७२; सेतुबंध ६, ८१)

उन्मूलित होकर खंडित, उत्क्षिप्त होकर सरल भाव से बहने वाले और टेढ़े मार्ग से ले जाये जाकर दीर्घ बने ऐसे नदी के प्रवाह पहाड़ी रास्तों से बहते हैं। (संबंधिपरिकर अलंकार का उदाहरण)

उरपेल्लिअवइकारिल्लआइं उच्चेसि दइअबच्छलिए।
कण्टअविलिहिअपीणुण्णअत्थणि उत्तम्मसु एत्ताहे॥ (स० कं० ४ ८४)

हे अपने प्रियतम की लाड़ली! तू ही अपने वक्षस्थल से बाड़ को मर्दन कर करवेल्ली के फल तोड़ने गई थी जिससे तेरे पीन और उन्मत्त स्तन काँटों से क्षत हो गये हैं, अब तू संताप को प्राप्त हो (इसमें दूसरे किसी का क्या दोष ?)

उल्लाअइ से अंगं ऊरु वेवन्ति कूवलो गलइ।
ऊच्छुच्छुलेइ हिअअं पिआअमे पुप्फवइआइ॥ (स० कं० ५, २४५)

प्रिय के आने पर पुष्पवती (रजस्वला) का अंग स्वेदयुक्त होने लगता है, जंघा कंपित होने लगती है, जघन का वस्त्र गलित हो जाता है और हृदय थरथर काँपने लगता है।

उव्वहइ णवतिणंकुररोमञ्चपसाहिआइं अंगाइं।
पाउसलच्छीए पओहरेहिं पडिवेल्लिओ विंज्झो॥

(स० कं ५, १४; गा० स० ६, ७७)

प्रावृट् शोभा (वर्षा ऋतु) के पयोधरों (स्तन अथवा बादल) से पीड़ित विन्ध्य पर्वत नूतन तृणांकुर रूपी रोमांचों से मंडित शरीर को धारण करता है। (रूपक अलंकार का उदाहरण)

उव्वहइ दइअगहिआहरोट्ठझिज्जन्तरोसपडिराअम्।
पाणोसरन्तमइरं चसअं व णिअं मुहं बाला॥

(स० कं ५, १८९; गउड० ६९०)

प्रीतम के द्वारा अधरोष्ठ ग्रहण करने से जिसके रोष की लाली फीकी पड़ गई है ऐसी नायिका का मुख मदिरा से आरक्त मदिरा-पात्र की भाँति प्रतीत हो रहा है।

ए एहि किंपि कीएवि कएण णिक्किव! भणामि अलमहवा।
अविआरिअकज्जारंभआरिणी मरउ ण भणिस्सम्॥

(काव्य० प्र० १०, ४७१)

अरे निष्ठुर! जरा यहाँ तो आ, मुझे उसके बारे में तुझसे कुछ कहना है; अथवा रहने दे, क्या कहूँ! बिना विचारे मनमाना करने वाली यदि वह मर जाय तो अच्छा है, अब मैं कुछ न कहूँगी। (आक्षेप अलंकार का उदाहरण)

ए एहि दाव सुन्दरि! कण्णं दाऊण सुणसु वअणिज्जम्।
तुज्झ मुहेण किसोअरि! चन्दो उअमिज्जइ जणेण॥

हे सुन्दरि ! जरा इधर आ, कान लगाकर अपनी निन्दा सुन। हे कृशोदरि ! लोग अब तेरे मुख के साथ चन्द्रमा की उपमा देने लगे हैं।

(प्रतीप अलंकार का उदाहरण)

एकत्तो रुअइ पिया अण्णत्तो समरतूरनिग्घोसो।
नेहेण रणरसेण य भडस्स दोलाइयं हिअअम् ॥

(काव्यानु० पृ० १६८, १८७; दशरू० ४ पृ० २१२)

एक ओर प्रिया रुदन कर रही है, दूसरी ओर युद्ध की भेरी का घोष सुनाई दे रहा है, इस प्रकार स्नेह और युद्धरस के बीच योद्धा का हृदय डोलायमान हो रहा है। (रति और उत्साह नामक स्थायी भावों का चित्रण)

एक्को वि कालसारो ण देइ गन्तुं पआहिण वलन्तो।
किं उण बाहाउलिअं लोअणजुअलं मिअच्छीए ॥

(स० कं० ५, २४४; गा० स० १, २५)

दाहिनी ओर से बाईं ओर को जाता हुआ हरिण प्रवास के समय अपशकुन माना जाता है, फिर भला अश्रुपूर्ण नेत्रवाली मृगाक्षी (प्रियतमा) को देखकर तो और भी अपशकुन मानना चाहिये। (अर्थापत्ति अलंकार का उदाहरण)

एक्कं पहरुव्विण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो।
सोवि हसन्तीए मए गहीओ बीएण कण्ठम्मि ॥

(स० कं० पृ० १७१; गा० स० १, ८६)

मेरे प्रहार से उद्विग्न, (मेरे) एक हाथ में अपने मुंह से फूँक मारते हुए अपने प्रियतम को मैंने हँसते-हँसते दूसरे हाथ से अपने कंठ से लगा लिया।

एत्तो वि ण सच्चविओ गोसे पसरत्तपल्लवारुणच्छाओ।
मज्जणतंबेसु मओ तह मअतंबेसु लोअणेसु अमरिसो ॥

(स० कं० ३ पृ० १२६; काव्या० पृ० ३६९, ५७२)

प्रभातकाल में जिसके स्नान के पश्चात् ललौहें नेत्रों में फैलते हुए पल्लवों का अरुण राग रूपी मद, तथा मद से ललौहे नेत्रों में अमर्ष (क्रोध) आता हुआ भी दिखाई नहीं दिया। (यह अतिशयोक्ति का उदाहरण है। यहाँ नेत्रों के दोनों प्रकार के अरुण राग में अभिन्नता दिखाई है)।

एद्दहमित्तत्थणिया एद्दहमित्तेहिं अच्छिवत्तेहिं।
एयावत्थं पत्ता एत्तियमित्तेहिं दियहेहिं ॥

(काव्या० पृ० ६५, ५२; स० कं० २, ८२; काव्य० २, ११)

इतने थोड़े से ही दिनों में यह सुन्दरी इतने बड़े-बड़े स्तनों वाली और इतनी बड़ी आँखों वाली हो गई ! (अभिनय अलंकार का उदाहरण)

एमेअ अकअउण्णा अप्पत्तमणोरहा विवज्जिस्सं।
जणवाओ वि ण जाओ तेण समं हलिअउत्तेण ॥ (स० कं० ५, १४१)

उस हलवाहे के साथ मेरी बदनामी भी न हुई, इस प्रकार मैं अभागी अपना मनोरथ पूरा न होने से विपद में पड़ गई हूं।

एमेअ जणो तिस्सा देइ कवोलोवमाइ ससिबिम्बम्।
परमत्थविआरे उण चन्दो चन्दो च्चिय वराओ॥
(काव्यानु पृ० २१६, ३४२; ध्वन्या० उ० ३, पृ० २३२)

उस सुन्दरी के कपोलों की उपमा लोग व्यर्थ ही चन्द्रमा से देते हैं, वास्तव में देखा जाय तो चन्द्रमा विचारा चन्द्रमा है (उसके साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती)।

एसा कुडिलघणेण चिउरकडप्पेण तुह णिबद्धा वेणी।
मह सहि! दारइ दंसइ आअसजट्ठिव्व कालउरइव्व हिअअं॥
(साहित्य पृ० १७७)

हे मेरी सखि! कुटिल और घने केशकलाप से बद्ध तुम्हारी यह वेणी लोहे की यष्टि की भाँति हृदय में घाव करती है और कालसर्पिणी की भाँति डस लेती है।

एसो ससहरविम्बो दीसइ हेअंगवीणपिंडो व्व।
एदे अअस्स मोहा पडंति आसासु दुद्धधार व्व॥ (साहित्य पृ० ५६०)

यह चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब घृतपिण्ड की भाँति मालूम होता है और इसकी दूध की धार के समान किरणें चारों दिशाओं में फैल रही हैं।

एहिइ पिओ त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमद्धं।
सेसं संतावपरव्वसाए वरिसं व वोलीणं॥ (स० कं० ५, ४०१)

प्रियतम आयेगा, यह सोचकर रात के पहले पहर में एक क्षण भर के लिये मैं जाग गई, उसके बाद बाकी रात संताप की दशा में एक वर्ष के समान बीती।

एहिइ सो वि पउत्थो अहअं कुप्पेज्ज सो वि अणुणेज्ज।
इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणं माला पिअअमम्मि॥
(स० कं० ५, २४९; गा० स० १, १७)

प्रवास पर गया हुआ प्रियतम वापिस लौटेगा, मैं कोप करके बैठ जाऊंगी, फिर वह मेरी मनुहार करेगा—मनोरथों की यह अभिलाषा किसी भाग्यशालिनी की ही पूरी होती है।

ओणिद्दं दोब्बल्लं चिंता अलसंतणं सणीससिअम्।
मह मंदभाइणीए केरं सहि! तुहवि अहह परिभवइ॥
(काव्य० प्र० ३, १४ रसगंगा १, पृ० १६)

हे सखि! कितने दुःख की बात है कि मुझ अभागी के कारण तुझे भी अब नींद नहीं आती, तू दुर्बल हो गई है, चिन्ता से व्याकुल है, थकावट का अनुभव करने लगी है और लम्बी साँसों से कष्ट पा रही है। (यहाँ दूती नायिका के प्रेमी के साथ रति-सुख का उपभोग करने लगी है, उसी की व्यंजना है)।

(आर्थी व्यंजना का उदाहरण)

ओरत्तपंकअमुहिं वम्महणडिअं व सलिलसअणणिसण्णम्।
अल्लिअइ तीरणलिणिं वाआइ गमेइ सहचरिं चक्काओ॥
(स० कं० ५, ६५७)

कमल को मुख में धारण करके विरक्त हुई (तीरनलिनी के पक्ष में रक्त वर्ण वाली), कामदेव के द्वारा नर्तित (अथवा इधर-उधर हिलने वाली) और जलरूपी शयन पर सोती हुई (जल में स्थित) ऐसी अपनी सहचरी चकवी के पास चकवा अपने कूजन द्वारा प्राप्त होता है और तट की कमलिनी का आलिंगन करता है।

(तिर्यगाभास का उदाहरण)

ओल्लोल्लकरअरअणक्खएहिं तुह लोअणेसु मह दिण्णं।
रत्तंसुअं पआओ कोवेण पुणो इमे ण अक्कमिआ॥

(काव्य० प्र० ४. ७०)

हे प्रियतम ! मेरे इन नेत्रों में क्रोध नहीं है। यह तो तुम्हारी (किसी सुंदरी के) दन्तक्षत और नखक्षत के द्वारा तुम्हें प्रसाद स्वरूप दिया हुआ एक रक्त अंशुक (वस्त्र) है। (नायक के प्रश्न करने पर कि तुम्हारे नेत्रों में क्रोध क्यों है, उत्तर में नायिका की यह उक्ति है)। (उत्तर अलंकार का उदाहरण)

ओवट्टइ उल्लट्टइ परिवट्टइ सअणे कहिंपि।
हिअएण फिट्टइ लज्जाइ खुट्टइ दिहीए सा॥ (साहित्य० पृ० ४९८)

वह (कोई विरहिणी) शय्या पर कभी नीचे मुँह करके लेट जाती है, कभी ऊपर को मुँह कर लेती है और कभी इधर-उधर करवट बदलती है। उसके मन को जरा भी चैन नहीं, लज्जा से वह खेद को प्राप्त होती है और उसका धीरज टूटने लगता है।

ओसुअइ दिण्णपडिवक्खवेअणं पसिढिलेहिं अंगेहिं।
णिव्वत्तिअसुरअरसाणुबन्धसुहणिब्भरं सोण्हा ॥ (स० कं० ५, ६४)

सुरत समाप्त होने के पश्चात् जिसे अतिशय सुख प्राप्त हुआ है, और जिसने अपनी सौतों के हृदय में वेदना उत्पन्न की है, ऐसी शिथिल अंगों वाली पुत्रवधु (आराम से) शयन कर रही है।[1] (रसप्रकर्ष का उदाहरण)

अंतोहुत्तं डज्झइ जाआसुण्णे घरे हलिअउत्तो।
उक्खित्तणिहाणाइं व रमिअट्ठाणाइं पेच्छन्तो॥

(स० कं ५, २०७; गा० स० ४, ७३)

हलवाहे का पुत्र अपनी प्रियतमा से शून्य घर में, जमीन खोदकर ले जाये गये खजाने की भाँति, (पूर्वकाल में) रमण के स्थानों को देखकर मन ही मन झुर रहा है।

अंदोलणक्खणोट्ठिआए दिट्ठे तुमम्मि मुद्धाए।
आसंधिज्जइ काउं करपेल्लणणिच्चला दोला॥

(स० कं० ५, २०१)

---

१. मिलाइये—रँगी सुरत-रँग पिय हियैं लगी जगी सब राति।
पैंड-पैंड पर ठठुकि कै ऐंड भरी ऐंडाति॥
(बिहारीसतसई १८३)

झूला झूलते समय ऊपर चढ़ी हुई मुग्धा की नजर जब तुम पर पड़ी तो वह अपने हाथों से झूले को थामने का प्रयत्न करने लगी।[1]

कअलीगब्भसरिच्छे ऊरु दट्ठूण हलिअसोण्हाए।
उल्लइ णहरंजणं चंदिलस्स सेउल्लिअकरस्स॥
(स० कं० ५, १८४)

हलवाहे की पुत्रवधू की कदली की भाँति कोमल जंघाएं देखकर स्वेद से गीले हाथ वाले नाई के द्वारा नखों का रंगना भी गीला हो गया।[2]

कइआ गओ पिओ अज्ज पुत्ति अज्जेण कइ दिणा होन्ति।
एक्को एद्दहमेत्ते भणिए मोहं गआ बाला॥
(स० कं०, ५, २५४; शृङ्गारप्रकाश २३, ७१)

किसी नायिका ने प्रश्न किया कि प्रियतम कब गया है? उत्तर मिला—आज। नायिका ने पूछा—आज कितने दिन हो गये? उत्तर—एक। यह सुनते ही नायिका मूर्छित हो गई।

कडुए धूमंधारे अब्भुत्तणमग्गिणो समप्पिहिइ।
मुहकमलचुम्बणलेहलम्मि पासट्ठिए दिअरे॥ (स० कं० ५, ३९२)

मुखरूपी कमल के चुम्बन के अभिलाषी देवर के पास बैठने पर, कडुए धुंए से अंधेरा हो जाने पर (आग जलाने के लिए) आग में फूँक मारना भी बन्द हो गया। (सामान्य नायिका का उदाहरण)

कणइल्लि च्चिअ जाणइ कुन्तपलत्ताइ कीरसंलविरी।
पूसअभासं मुंचसु ण हु रे हं धिट्ठवाआडी॥
(स० कं० २, ६८)

शुक का वार्तालाप शुकी ही समझ सकती है, अतएव अरे! तू शुक की भाषा बोलना छोड़ दे, मैं धृष्ट शुकी नहीं हूँ (कोई विट शुक की बोली में अपनी प्रिया का उपहास कर रहा है, उसी के उत्तर में यह उक्ति है। यहाँ कुन्त, कीर और पूस शब्द शुक तथा कणइल्ली और वाआड़ी शब्द शुकी के पर्यायवाची हैं)।

कण्डुज्जुआ वराई सा अज्ज तए कआवराहेण।
अलसाइअरुण्णविअंभिआइं दिअहेण सिक्खविया॥
(स० कं० ५, २०२; गा० स० ४, ५२)

---

१. मिलाइये—हेरि हिंडोरे गगन तैं, परी परी सी टूटि।
धरी धाय पिय बीच हीं करी खरी रस लूटि॥
(बिहारीसतसई ७०५)

२. मिलाइये—नैंक उतै उठि बैठिये कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जाति नहँ-दी छिनकु महदी सूखन देहु॥ (वही २७४)

वह बिचारी सरकंडे के समान सरल है, दिनभर आलस्य में बैठी हुई रोती है और जंभाई लेती रहती है। अपराधी तू है और दण्ड उसे भुगतना पड़ रहा है! (अन्यासक्त नायक के प्रति यह उक्ति है)। (संचारीभावों में अमर्ष का उदाहरण)

कत्तो सम्पडइ मह पिअसहि! पिअसंगमो पओसे वि।
जं जिअजइ गहिअकरणिअरखिंखिरी चन्दचण्डालो॥

(स० कं० ५, १५१)

हे प्रिय सखि! जब तक कि यह दुष्ट चन्द्रमा अपने हाथ में खिंखरी (एक प्रकार का वाद्य) लिये जीवित है, तब तक प्रदोष के समय भी प्रियतम के साथ मिलाप कैसे हो सकता है?

कमलकरा रंभोरू कुवलअणअणा मिअंकवअणा सा।
कहं णु णवचंपअंगी मुणालबाहू पिआ तवइ॥

(स० कं० ४, ३)

कमल के समान हाथ वाली, कदली के समान ऊरु वाली, कुवलय के समान नेत्र वाली, चन्द्रमा के समान मुख वाली, नव चंपक कली के समान अंग वाली और मृणाल के समान बाहुवाली प्रिया भला क्यों संताप सहन नहीं करती? (अर्थात् करती ही है)

कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्डाविआ ण अ पिउच्छा!
केण वि गामतडाए अब्भं उत्ताणअं वूढम्॥

(ध्वन्यालोक उ० २ पृ० २१९; गा० स० २, १०)

हे बुआ जी! गांव के इस तालाब में न तो कमल ही खंडित हुए हैं, न हंस ही उड़े हैं, जान पड़ता है किसी ने आकाश को खींच-तान कर फैला दिया है। (तालाब में मेघ के प्रतिबिंब को देखकर किसी मुग्धा नायिका की यह उक्ति है)।

कमलेण विअसिएण संजोएन्ती विरोहिणं ससिबिम्बं।
करअलपल्लत्थमुही किं चिन्तसि सुमुहि! अन्तराहिअहिअआ॥

(साहित्य, पृ० १७९)

अपने विकसित कमल (करतल) के साथ विरोधी चन्द्रबिंब (मुख) को संयुक्त करती हुई हे सुमुखि! अपने करतल पर मुख को रखकर मन ही मन तू क्या सोच रही है?

करजुअगहिअजसोआत्थणमुहविणिवेसिआहरपुडस्स।
संभरिअपंचजण्णस्स णमह कण्हस्स रोमञ्चं॥

(काव्य० प्र० १०, ५५१)

दोनों हाथों से पकड़कर यशोदा के स्तनों पर अपने ओठों को लगाये पांचजन्य शंख का स्मरण करते हुए कृष्ण भगवान् के रोमांच को प्रणाम करो।

(स्मरण अलंकार का उदाहरण)

करिणीवेहव्वअरो मह पुत्तो एक्ककाण्डविणिवाई।
हअसोह्लाए तह कहो जह कण्डकरण्डअं वहइ॥

(ध्वन्यालोक ३, ४ पृ० ६०५)

केवल एक बाण से हथिनियों को विधवा बना देने वाले मेरे पुत्र को उस अभागिनी पुत्रवधु ने ऐसा कमजोर बना दिया है कि अब वह केवल बाणों का तरकस लिये घूमता है।

करिमरि! अआलगज्जिरजलदासणिपउणपडिरओ एसो।
पइणो धणुरवकंखिणि रोमञ्चं किं मुहा वहसि॥

(स० कं० ५, २५; गा० स० १, ५७)

हे बंदिनी! अकाल में गरजने वाले मेघ से वज्र के गिरने की यह आवाज़ है। अपने पति के धनुष की टंकार सुनने की इच्छा रखने वाली तू वृथा ही क्यों पुलकित होती है।

कलहोओज्जलगोरं कलहोअसिआसु सरअराईसु।
चुंबंति विअसिअच्छं विअड्ढजुवईमुहं धण्णा॥

(शृंगार ५६, १५)

चांदी के समान स्वच्छ शरद्काल की रात्रियों में उज्ज्वल, गौरवर्ण और विकसित नयन वाली ऐसी विदग्ध युवतियों के मुख का जो चुंबन करते हैं वे धन्य हैं।

कल्लं किर खरहिअओ पवसिहिइ पिओत्ति सुव्वइ जणम्मि।
तह वड्ढ भअवइ णिसे! जह से कल्लं चिअ ण होइ॥

(शृंगार २०, ८९)

कल वह निर्दय प्रियतम प्रवास पर जायेगा, ऐसा सुना जाता है। हे भगवति रात्रि! तू बढ़ जा जिससे कल कभी हो ही नहीं।

कस्स करो बहुपुण्णफलेक्कतरुणो तुहं विसम्मिहिइ।
थणपरिणाहे मम्महणिहाणकलसे व्व पारोहो॥

(स०कं० ५, ३८५; गा० स० ६, ७५)

बहुपूर्ण फल वाले वृक्ष के नवपल्लव की भाँति न जाने किसका हाथ (हे कुमारी!) कामदेव के निधि-कलश रूपी तुम्हारे विस्तृत स्तनों पर विश्राम को प्राप्त होगा?

कस्स वि न होइ रोसो दट्ठूण पिआए सव्वणं अहरं।
सभमरपउमग्घाइणि! वारिअवामे! सहसु इण्हिं॥

(ध्वन्या० उ० १, पृ० २३; काव्या०, पृ० ५७, २५; साहित्य०, पृ० ३०२)

हे सखि! अपनी प्रिया के ओष्ठ को क्षत देखकर किसे रोष नहीं होता? इसलिए भौंरे समेत फूल को सूँघने वाली और मना करने पर भी न मानने वाली! अब तू अपनी करतूत का फल भोग। (अपह्नुति और व्याजोक्ति अलंकार का उदाहरण)

कह कह विरएइ पअं मग्गं पुलएइ छेज्जमाविसइ।
चोरव्व कई अत्थं लद्धुं दुक्खेण णिव्वहइ॥
(स० कं० ४, १८९; वज्जालग्गं २२)

कवि किसी न किसी प्रकार पद (चोर के पक्ष में पैर) की रचना करता है, मार्ग (कविशैली) का अवलोकन करता है, छेद (छेक अलंकार अथवा छिद्र) में प्रवेश करता है, इस प्रकार वह चोर की भाँति महान् कष्टपूर्वक अर्थ (चोर के पक्ष में धन) को प्राप्त करने में समर्थ होता है। (उपमा अलंकार का उदाहरण)

कह णु गआ कह दिट्ठा किं भणिआ किं च तेण पडिवण्णं।
एअं चिअ ण समप्पइ पुणरुत्तं जम्पमाणीए॥ (स० कं० ५, २३२)

कैसे वह गई, कैसे उसने देखा, क्या कहा और क्या स्वीकार किया, इस बात को बारबार कहते हुए भी वह बात समाप्त नहीं होती।

कहं मा झिज्जउ मज्झो इमीअ कन्दोट्टदलसरिच्छेहिं।
अच्छीहिं जो ण दीसइ घणथणभररुद्धपसरेहिं॥
(स० कं० ४, १५५; ५, ३५४)

विशाल स्तनों के कारण जिनकी गति अवरुद्ध हो गई है ऐसे कुवलयदल के समान नेत्रों के द्वारा जो दिखाई नहीं देता, ऐसा इस नायिका का मध्य भाग कहीं क्षीण न हो जाये!

काअं खाअइ खुहिओ कूरं फेल्लेइ णिब्भरं रुट्ठो।
सुणअं गेण्हइ कण्ठे हक्केइ अ णत्तिअं थेरो॥
(स० कं० १, ३०; काव्या० पृ० २१५, २५४)

रूठा हुआ कोई भूखा वृद्ध पुरुष कौए को खा लेता है, चावल फेंक देता है, कुत्ते को डराता है और अपनी नातिन को कण्ठ से लगा लेता है।
(संकीर्ण वाक्यदोष का उदाहरण)

कारणगहिओ वि मए माणो एमेअ जं समोसरिओ।
अत्थक्कप्फुल्लिअंकोल्ल तुज्झ तं मत्थए पडउ॥
(स० कं० ५, २६१)

मैंने किसी कारण से मान किया था, लेकिन अकस्मात् ही अशोक की कली दिखाई दी और मेरा मान नष्ट हो गया; हे अशोक की कली! इसका दोष तेरे सिर पर है।

काराविऊण खउरं गामउलो मज्जिओ अ जिमिओ अ।
णक्खत्ततिहिवारे जोइसिअं पच्छिउं चलिओ॥
(स० कं० १, ५५; काव्या० पृ० २६४, ३७९)

ग्रामीण पुरुष ने क्षौरकर्म के बाद स्नान और भोजन किया, फिर ज्योतिषी से नक्षत्र, तिथि और दिन पूछ कर वह चल दिया (उसने क्षौरकर्म आदि के पश्चात् तिथि के संबंध में प्रश्न किया, जब कि होना चाहिये था इससे उल्टा)।
(अपक्रम दोष का उदाहरण)

कालक्खरदुस्सिक्खिअ बालअ ! रे लग्ग मज्झ कंठम्मि ।
दोंण्ह वि णरअणिवासो समअं जइ होइ ता होउ ॥
(स० कं० ४, ११२)

काले अक्षर की कुशिक्षा पाने वाले हे नादान ! मेरे कण्ठ का आलिङ्गन कर। फिर यदि दोनों को साथ-साथ नरक में भी निवास करना पड़े तो कोई बात नहीं (नरक भी स्वर्ग की भाँति हो जायेगा)। (किसी नायिका की यह उक्ति है।)

(अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार का उदाहरण)

का विसमा दिव्वगई किं लद्धं जं जणो गुणग्गाही ।
किं सुक्खं सुकलत्तं किं दुग्गेज्झं खलो लोओ ॥
(काव्या, पृ० २९५, ६५०; साहित्य, पृ० ८१५; काव्य प्र० १०, ५२९)

विषम वस्तु कौन सी है ? भाग्य की गति। दुर्लभ वस्तु कौनसी है ? गुणग्राहक व्यक्ति। सुख क्या है ? अच्छी स्त्री। दुःख क्या है ? दुष्टजनों की संगति।

(उत्तर, नियम और परिसंख्या अलंकार का उदाहरण)

किवणाणं धणं णाआणं फणमणी केसराई सीहाणं ।
कुलवालिआणं थणआ कुत्तो छिप्पन्ति अमुआणम् ॥
(काव्य० प्र० १०, ४५७)

कृपणों का धन, सर्पों के फण में लगे हुए रत्न, सिंहों की जटा और कुल-बालिकाओं के स्तनों को जीते जी कोई हाथ तो लगा ले ?

(दीपक अलंकार का उदाहरण)

किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआइ मुद्धाइ ।
पढमुग्गअदोहलिणीअ णवरि दइअं गआ दिट्ठी ॥
(स० कं० ५, २३६; गा० स० १, १५)

(गर्भधारण के पश्चात्) प्रथम दोहद वाली कोई मुग्धा नायिका अपनी सखियों से पूछे जाने पर कि तुझे क्या चीज़ अच्छी लगती है, केवल अपने प्रियतम की ओर देखने लगी।

किं गुरुजहणं अह थणभरोत्ति भाअकरअलग्गतुलिआए ।
विहिणो खुत्तङ्गुलिमग्गविब्भमं वहइ से तिवली ॥
(स० कं० ५, ४८७)

नायिका का जघन बड़ा है अथवा स्तनभार ? इसका निश्चय करतल के अग्रभाग से किया गया। उसकी त्रिवली मानो ब्रह्मा द्वारा उङ्गलियों को दबाकर बनाये हुए मार्ग का अनुकरण कर रही है। (रसालंकार संकर का उदाहरण)

किं जम्पिएण दहमुह ! जम्पिअसरिसं अणिव्वहन्तस्स भरं ।
एत्तिअ जम्पिअसारं णिहणं अप्पणे वि वज्जधारासु गआ ॥
(स० कं० ४, १५१)

हे रावण ! ज्यादा बोलने से क्या प्रयोजन ? बोलने के समान दृढ़ संकल्प का

निर्वाह न करने वाले को मात्र इतना ही कहना है कि और भी बहुत से योद्धा वज्रधारा के प्रवाह में नष्ट हो गये हैं।

किं तस्स पावरेणं किमग्गिणा किं व गब्भघरएण।
जस्स उरम्मि णिसम्मइ उम्हाअंतत्थणी जाआ॥

(शृंगार ५६, १७)

गर्म चादर या अग्नि की उसे क्या जरूरत है, गर्भभवन में बैठने की भी उसे आवश्यकता नहीं जिसके हृदय में ऊष्मस्तनवाली नायिका विराजमान है।

किं धरणीए मिअङ्को आआसे महिहरो जले जलणो।
मज्झण्हम्मि पओसो दाविज्जउ देहि आणत्तिम्॥

(दशरूपक १ पृ० ५१; रत्नावलि ४, ८)

आज्ञा दो कि मैं पृथ्वी पर चन्द्रमा, आकाश में पर्वत, जल में अग्नि और मध्याह्न में संध्या लाकर दिखा दूँ। (भैरवानंद की उक्ति)।

किं भणिओसि ण बालअ! गामणिधूआइ गुरुअणसमक्खम्।
अणिमिसवंकवलन्तअआणणणअणद्धदिट्ठेहिं॥

(स० कं० ५, २४७; गा० स० ४, ७०)

हे नादान! गांव के पटेल की पुत्री ने निमेषरहित मुँह को जरा घुमाकर कटाक्षयुक्त नयनों से गुरुजनों के सामने क्या नहीं कह दिया?

कुत्तो लंभइ पन्थिअ! सत्थरअं एत्थ गामणिघरम्मि।
उण्णअपओहरे पेक्खिऊण जइ वससि ता वससु॥

(स० कं० १, १८१)

हे पथिक! यहाँ गाँव के पटेल के घर में तू (सोने के लिये) बिस्तरा कहाँ पायेगा? हाँ यदि, उन्नत स्तनों को देख कर यहाँ ठहरना चाहता है तो ठहर जा।

(संदिग्ध वाक्य गुण का उदाहरण)

कुलबालिआए पेच्छह जोव्वणलायन्नविब्भमविलासा।
पवसंति व्व पवसिए एन्ति व्व पिए घरमइंते॥

(काव्या० पृ० ४१२, ६९२; दशरू० २ पृ० ९६)

कुलीन महिलाओं के यौवन, लावण्य और शृङ्गार की चेष्टाओं को देखो जो प्रिय के प्रवास पर चले जाने पर चली जाती हैं और उसके लौट आने पर लौट आती हैं। (स्वीया नायिका का उदाहरण)

कुविआ अ सच्चहामा समेवि बहुआण णवर माणक्खलणे।
पाअडिअहिअअसारो पेम्मासंघसरिसो पअट्टइ मण्णू॥

(स० कं० ५, २६३)

सब पत्नियों का मान-स्खलन समान होने पर केवल सत्यभामा ही कोप करती हैं। हृदय से प्रकट होने वाले सार तथा प्रेम के आश्वास की भाँति उसका कोप प्रकट होता है।

कुविआओ वि पसण्णाओ ओरण्णमुहीओ विहसमाणीओ।
जह गहिआ तह हिअअं हरंति उच्छिन्नमहिलाओ॥
(स० कं० ५, ३२४; ध्वन्या० १ पृ० ७४)

स्वैर विहार करने वाली महिलायें कुपित हों या प्रसन्न, रोती हुई हों या हँसती हुईं, किसी भी हालत में युवकों का मन वश में कर लेती हैं। (लक्षणा का उदाहरण)

केलीगोत्तक्खलणे वरस्स पप्फुल्लइ दिहिं देहि।
बहुवासअवासहरे बहुए बाहोल्लिया दिट्ठी॥ (स० कं० ५, १७२)

क्रीड़ा करते हुए गोत्र-स्खलन (किसी दूसरी नायिका का नामोल्लेख) से वर को आनन्ददायी संतोष प्राप्त होता है, जब कि वधू अत्यन्त सुगंधित वासगृह में अश्रुपूर्ण दृष्टि से देख रही है।

केली गोत्तक्खलणे विकुप्पए केअवं अआणन्ती।
दुट्ठ! उअसु परिहासं जाआ सच्चं विअ परुण्णा॥
(दशरूपक० अ० ४, पृ० २६५)

हे दुष्ट! मजाक तो देखो, मालूम होता है तुम्हारी पत्नी जैसे सचमुच ही रो रही है। क्रीड़ा के समय गोत्र-स्खलन (किसी दूसरी नायिका का नाम लेना) के छल को न जानती हुई वह कोप किये बैठी है।

(नायक ने नायिका का गोत्र-स्खलन किया था जिसे वह समझ नहीं सकी)।

केसेसु बलामोडिअ तेण अ समरम्मि जअसिरी गहिआ।
जह कंदराहि विहुरा तस्स दढं कंठअम्मि सठविआ॥
(काव्य० ४, ६५)

उसने जैसे ही युद्धभूमि में केशों को पकड़ कर जयश्री को अपनी ओर खींचा, वैसे ही कन्दराओं ने अपने शत्रुओं (प्रेमियों) को जोर से अपने कंठ से लगा लिया। (अपह्नुति, उत्प्रेक्षा का उदाहरण)

को एसोत्ति पलोट्टुं सिंवलिवलिअं पिअं परिक्खसइ।
हलिअसुअं मुद्धवहू सेअजलोल्लेण हत्थेण॥
(स० कं० ५, ३०२)

यह कौन? (यह कहकर) मुग्धा वधू सेंमल के पेड़ के पीछे छिपे हुए अपने प्रिय हलवाहे के पुत्र को, स्वेद से गीले अपने हाथ से पकड़ कर बैठा लेती है। (सेंमल के पेड़ के नीचे खेल हो रहा है)

कोला खणन्ति मोरत्थं गिद्धा खाअन्ति मउअमंसाइम्।
उलुआ हणन्ति काए काआ उलुए वि वाअन्ति॥
(स० कं० १, ६४)

सूअर नागरमोथे को खोदते हैं, गीध मृतक का मांस खाते हैं, उल्लू कौओं को मारते हैं और कौए उल्लुओं को खाते हैं।

(यह निरलंकार—अलंकार विहीन—का उदाहरण है)

खणपाहुणिआ देअर ! जाआए सुहअ किंपि दे भणिआ।
रूअइ पडोहरवलहीघरम्मि अणुणिज्जउ वराई॥
(काव्य० प्र० ४, १११; ध्वन्या० ३ पृ० ५५८; साहित्य० ४)

हे सुन्दर देवर ! जाओ उस बिचारी को मना लो। वह यहाँ जरा सी देर के लिये पाहुनी बनकर आई थी, किन्तु तुम्हारी बहू के कुछ कह देने पर घर के पिछवाड़े छज्जे पर बैठी हुई वह रो रही है। (ध्वनिसांकर्य का उदाहरण)

खणमेत्तं पि ण फिट्टइ अणुदिअहं दिण्णगरुअसन्तावा।
पच्छण्णपावसंकव्व सामली मज्झ हिअआहि॥
(स० कं० ५, १४०; गा० स० २, ८३)

प्रतिदिन अत्यधिक सन्ताप देनेवाली श्यामा प्रच्छन्न पापशंका की भाँति क्षण भर के लिये भी मेरे हृदय से दूर नहीं होती।

खलववहारा दीसंति दारुणा जहवि तहवि धीराणम्।
हिअवअस्स बहुमआ ण्ड हु ववसाआ विमुज्झंति॥
(काव्य० ४, ७४)

यद्यपि दुष्ट लोगों के व्यवहार बहुत दुखदायी होते हैं, फिर भी धीर पुरुषों के कार्य जो उनके हृदयरूपी मित्र द्वारा बहुत सम्मान से देखे जाते हैं, कभी नहीं रुकते। (अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य नामक ध्वनिभेद का उदाहरण)

खाहि विसं पिअ मुत्तं णिज्जसु मारीअ पडउ दे वज्जम्।
दन्तक्खण्डिअथणआ खिविऊण सुअं सवइ माआ॥
(स० कं० १, ५८)

(स्तनपान के समय) अपने शिशु के दाँतों से अपने स्तन काटे जाने पर 'तू जहर खा ले, मूत पी ले, तुझे मारी ले जाए, तेरे ऊपर पहाड़ गिर पड़े'—कहती हुई माँ शिशु को एक ओर पटक कर शाप दे रही है।
(क्रूरार्थ का उदाहरण)

खिण्णस्स ठवेइ उरे पइणो गिम्हावरण्हरमिअस्स।
ओल्लं गलन्तउप्फं ण्हाणसुअन्धं चिउरभारम्॥
(स० कं० ५, ३७९; गा० सा० ३, ९९)

कोई नायिका ग्रीष्मऋतु की दुपहर में रमण करने के पश्चात् थके हुए पति के वक्षस्थल पर स्नान से सुगंधित, गीले और फूल झड़ते हुए अपने केशपाश फैला रही है। (संपूर्ण प्रगल्भा का उदाहरण)

गअणं च मत्तमेहं धारालुलिअज्जुणाइं अ वणाइं।
निरहंकारमिअंका हरन्ति नीलाओ वि णिसाओ॥
(ध्वन्या० उ० २ पृष्ठ ९२)

मतवाले मेघों वाला आकाश, वृष्टिधारा के कारण चंचल अर्जुन वृक्षों वाले वन, तथा निस्तेज चन्द्रमा वाली नीली रातें (चित को) लुभा रही है।
(तिरस्कृत वाच्यध्वनि का वाक्यगत उदाहरण)

गज्जन्ते खे मेहा फुल्ला णीवा पणच्चिया मोरा।
णट्ठो चन्दुज्जोओ वासारत्तो हला पत्तो॥ (स० कं० ३, १५३)

मेघ गरज रहे हैं; नीप पुष्प फूल गये हैं, मोर नाच रहे हैं, चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई नहीं देता। हे सखि! वर्षा ऋतु आ गई है।

(सामान्यतोदृष्ट का उदाहरण)

गज्ज महच्चिअ उअरिं सव्वत्थामेण लोहहिअअस्स।
जलहर! लंबालइअं मा रे मारेहिसि वराइं॥

(शृंगार ११, १९)

हे मेघ! कठोर हृदय वाले मेरे ऊपर ही अपनी सारी शक्ति लगाकर बरस, लंबे केशवाली उस बिचारी को क्यों मारे डाल रहा है? (विधि अलंकार का उदाहरण)

गमिआ कदम्बवाआ दिट्ठं मेहंधआरिअं गअणअलं।
सहिओ गज्जिअसद्दो तह वि हु से णत्थि जीविए आसंगो॥

(स० कं० ४, १५७; सेतुबंध १, १५)

कदंब के पुष्पों का स्पर्श करके वायु बहती है, आकाशमंडल में मेघ का अंधकार छाया हुआ है, गर्जन का शब्द सुनाई पड़ रहा है, फिर भी (राम के) जीवन में उत्साह नहीं।

गम्मिहिसि तस्स पासं मा जूरसु तरुणि! वड्ढउ मिअंको।
दुद्धे दुद्धम्मिव चन्दिआए को पेच्छइ मुहं ते॥

(स० कं० ५, ४०३; गा० सा० ७, ७)

हे तरुणि! तू उसके पास पहुँचेगी, तू दुखी मत हो, ज़रा चन्द्रमा को ऊपर पहुँच जाने दे। जैसे दूध में दूध मिल जाने से उसका पता नहीं लगता, वैसे ही चाँदनी में तेरे मुँह को कौन देख सकेगा?[1] (सामान्य अलंकार का उदाहरण)

गहवइसुएण समअं सच्चं अलिअं व किं विआरेण।
धण्णाइ हलिअकुमारिआइ जणम्मि जणवाओ॥

(स० कं० ५, २५९)

उस भाग्यशाली हलवाहे की कन्या का गृहपति के पुत्र के साथ लोकापवाद फैल गया है; अब यह अपवाद सच्चा है या झूठा, यह सोचने से क्या लाभ?

गाढालिंगणरहसुज्जुअम्मि दइए लहुं समोसरइ।
माणंसिणीण माणो पीलणभीअव्व हिअआहिं॥

(ध्वन्या० २ पृ० १८६)

हे सखि! उस मनस्विनी के मान के विषय में क्या कहूँ? वह तो प्रियतम के वेगपूर्वक गाढ़ आलिंगन के लिये उद्यत होते ही (दोनों के बीच में) दब जाने के भय से शीघ्र ही भाग खड़ा हुआ! (उत्प्रेक्षा का उदाहरण)

---

१. मिलाइये—जुवति जोन्हमें मिलि गई नैक न होति लखाय।
सौंधे के डोरनि लगी अली चली संग जाय॥
(बिहारी सतसई २२८)

गामतरुणीओ हिअं हरन्ति पोढ़ाण थणहरिल्लीओ।
मअणूसअम्मि कोसुम्भरंजिअकञ्चुआहरणमेत्ताओ॥
(स० कं० ५, ३०३; गा० स० ६, ४५)

मदन उत्सव के अवसर पर पुष्ट स्तनवाली और केवल कुसुंबी रंग की कंचुकी पहनने वाली गाँव की तरुणियाँ विदग्धजनों का मन हरण करती हैं।

गामारुहम्मि गामे वसामि णअरट्ठिइं ण जाणामि।
णाअरिआणं पइणो हरेमि जा होमि सा होमि॥
(काव्य० प्र० ४, १०१)

हे नागरि! मैं गाँव में ही जन्मी हूँ, गाँव की ही रहने वाली हूँ, नगर की स्थिति को मैं नहीं जानती। मैं कुछ भी होऊँ लेकिन इतना बताये देती हूँ कि नागरिकाओं के प्राणप्रिय पतियों को मैं हर लेती हूँ।

गिम्हे दवग्गिमसिमइलिआइं दीसन्ति विञ्झसिहराइं।
आससु पउत्थवइए! ण होन्ति णवपाउसब्भाइं॥
(स० कं० ४, ८०; ५, ४०४; गा० स० १, ७०)

ग्रीष्मकाल में विन्ध्य पर्वत के शिखर दावानल से मलिन दिखाई देते हैं, वर्षाकाल के नूतन मेघ वे कदापि नहीं हैं, अतएव हे प्रोषितभर्तृके! तू धीरज रख। (अपह्नुति अलंकार का उदाहरण)

गिम्हं गमेइ कह कह वि विरहसिहितापिआपि पहिअवहू।
अविरलपडंतणिब्भरवाहजलोल्लोवरिल्लेण॥ (श्रृंगार ५९, २९)

विरह-अग्नि से संतप्त पथिकवधू निरंतर गिरते हुए अतिशय वाष्पजल से आर्द्र उत्तरीय वस्त्र पहन कर किसी तरह ग्रीष्मऋतु बिताती है।

गुरुयणपरवसप्पिय! किं भणामि तुह मन्दभाइणी अहयं।
अज्ज पवासं वच्चसि वच्च सयं च्चेव सुणसि करणिज्जं॥
(काव्या० पृ० ६१, ३४; काव्य० प्र० ३, २१)

हे गुरुजनों के आधीन प्रियतम! तुमसे क्या कहूँ, मैं बड़ी अभागिन हूँ। तुम आज प्रवास पर जा रहे हो, जाओ; तुम स्वयं सुन लेना कि तुम्हारे चले जाने पर मेरा क्या हुआ। (कालाधिष्ठित अर्थ व्यंजना का उदाहरण)

गेण्हन्ति पिअअमा पिअअमाण वअणाहि विसलअद्धाइं।
हिअआइं वि कुसुमाउहबाणकआणेअरन्धाइं॥
(स० कं० ५, ३१२)

प्रियतमायें अपने प्रियतमों के मुख से कामदेव के बाग द्वारा बींधे हुए हृदयों की भाँति अभिनव कमलनाल के अंकुर ग्रहण कर रही हैं। (पक्षिमिथुन की क्रीड़ा का वर्णन है)।

गेण्हइ कंठम्मि बला चुंबइ णअणाइ हरइ मे सिअअं।
पढमसुरअम्मि रअणी परस्स एमेअ बोलेइ॥ (श्रृंगार ६, २०)

वह कंठ को पकड़ता है नयनों का जोर से चुम्बन लेता है, वस्त्र का अपहरण कर लेता है—इस प्रकार प्रथम सुरत में रजनी अपने आप ही बीत जाती है।

गेण्हह पलोएह इमं विअसिअवअणा पिअस्स अप्पेइ।
घरणी सुअस्स पढमुब्भिण्णदन्तजुअलंकिअं बोरं॥

(स० कं० ३, १२८; गा० स० २, १००)

यह लो और देखो, यह कह कर हँसमुख नायिका अपने बालक के नये-नये दांतों द्वारा चिह्नित बेर को अपने पति को देती है (इसमें प्रसव के पश्चात् संभोग-सुख की योग्यता का सूचन होता है)। (भावअलंकार का उदाहरण)

गोत्तक्खलणं सोऊण पिअअमे अज्ज मामि छणदिअहे।
वज्झमहिसस्स माल व्व मण्डणं उअह पडिहाइ॥

(स० कं० ५, १४२; गा० स० ५, ९६)

आज उत्सव के दिन अपने प्रियतम के मुख से अपने नाम की जगह किसी दूसरी नायिका का नाम सुनकर, देखो, उसके आभूषण, वध को ले जाये जाते हुए भैंसे की माला के समान, प्रतीत होने लगे।

गोलानटट्ठिअं पेच्छिऊण गहवइसुअं हलिअसोण्हा।
आढत्ता उत्तरिउं दुक्खुत्ताराइ पअवीए॥

(स० कं० ३, १४१, गा० स० २, ७)

गोदावरी नदी के तट पर गृहपतिपुत्र को देख कर हलवाहे की पतोहू कठिन मार्ग से जाने के लिए उद्यत हो गई।

(इस आशा से कि अपने हाथ का अवलंबन देकर वह उसे रोकेगा)

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा उरम्मि से मुक्को।
अणुअम्पाणिद्दोसं तेण वि सा गाढमुअऊढा॥

(स० कं० ३, ७४; ५, २२५; गा० स० २, ९३)

गोदावरी का यह उतार विषम है, इस बहाने से नायिका ने अपने शरीर का भार नायक के वक्षस्थल पर रख दिया; नायक ने भी अनुकम्पा के बहाने उसका गाढ़ आलिंगन किया। (अन्योन्य अलंकार का उदाहरण)

घडिऊरुसंपुडं णववहूए जहणं वरो पुलोएइ।
संदट्ठणवकवाडं दारं पिव सग्गणअरस्स॥ **(शृंगार ४, ७)**

वर नववधू के उरुद्वय से संपुट जघन का अवलोकन कर रहा है, मानो बन्द किया हुआ स्वर्गनगर का द्वार हो।

घरिणीए महाणसकम्मलग्गमसिमइलिएण हत्थेण।
छित्तं मुहं हसिज्जइ चन्दावत्थं गअं पइणा॥

(स० कं० ४, ६१; ५, ३८२; गा० स० १, १३)

रसोई के काम में लगी हुई किसी नायिका ने अपने मैले हाथ अपने मुंह पर लगा लिए जिससे चन्द्रावस्था को प्राप्त अपनी प्रिया को देख कर उसका प्रियतम

हँसने लगा।[१] (निदर्शना, विकृत प्रपह्नोक्ति और संकर अलंकार का उदाहरण)

घरिणिघणत्थणपेल्लणसुहेल्लिपडिअस्स होन्ति पहिअस्स।
अवसउणंगारअवारविट्टिदिअसा सुहावेन्ति ॥

(स० कं० ५, ६२; गा० स० ३, ६१)

गृहिणी के घन स्तनों के पीड़न की सुखक्रीड़ा से युक्त प्रवास करने के लिये प्रस्तुत पथिक को अपशकुनरूप मंगलवार और शुक्लपक्ष के द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी के दिन सुख प्रदान करते हैं। (रूप द्वारा रसनिष्पत्ति का उदाहरण)

वेत्तुं मुच्चइ अहरे अण्णत्तो वलइ पेक्खिउं दिट्ठी।
घडिदुं विहडन्ति भुआ रअम्मि सुरआअ वीसामो ॥

(अलंकारसर्वस्व, पृ० १६५)

(नायिका के) अधर का पान कर उसे छोड़ दिया जाता है, जब कि (नायिका) अपनी दृष्टि को दूसरी ओर फेर लेती है, भुजाएँ आलिंगन से विघटित हो जाती हैं—इस प्रकार सुरत में विश्राम प्राप्त होता है।

चत्तरघारिणी पिअंदसणा अ बाला पउत्थवइआ अ।
असई सअज्झिआ दुग्गआअ ण हु खण्डिअं सीलं ॥

(स० कं० ५, ४३७; गा० स० १, ३६)

चौराहे पर रहने वाली सुंदरी तरुणी प्रोषितभर्तृका का शील कुलटा के पड़ोस में रहने और अत्यंत दरिद्र होने पर भी खंडित नहीं होता!

(विशेषोक्ति, समुच्चय अलंकार का उदाहरण)

चित्ते विहट्टदि ण टुट्टदि सा गुणेसुं सेज्जासु लोट्टदि विसट्टदि दिम्मुहेसुं।
बोलम्मि वट्टदि पुपवट्टदि कव्वबंधे झाणे ण टुट्टदि चिरं तरुणी तरट्टी ॥

(काव्य प्र० ८, ३४३; कर्पूर मं० २, ४)

जितनी ही गुणों में (वह कर्पूरमंजरी) पूर्ण है, उतनी ही चित्र में भी दिखाई दे रही है। कभी वह (मेरी) शय्या पर लोटती हुई जान पड़ती है, कभी चारों दिशाओं में वही-वही दिखाई देती है। कभी वह मेरी वाणी में आ जाती है और कभी काव्यप्रबंध में दिखाई देने लगती है। वह चिरतरुणी प्रगल्भा कभी भी मेरे मन से नहीं हटती।

चमढियमाणसकञ्चणपंकयनिम्महियपरिमला जस्स।
अक्खुडियदाणपसरा वाहुप्फलिह च्चिय गयन्दा ॥

(काव्या० पृ० ७९, १५०)

उसके हाथी, मानसरोवर के सुवर्णकमलों के मर्दित होने से (कमलों की) सुगंध को मथने वाले, और अखंडित रूप से दान (हाथी के पक्ष में मदजल) देने वाले ऐसे भुजादंड की भाँति दिखाई देते हैं। (रूपक का उदाहरण)

---

१. पिय तिय सो हँसिकै कह्यौ लख्यौ डिठोना दीन।
चन्द्रमुखी मुखचन्द्र सों भलो चन्द्रसम कीन ॥ (बिहारीसतसई ४९१)

चूयंकुरावयंसं छणपसरमहग्घमणहरसुरामोअं।
अवणामियं पि गहियं कुसुमसरेण महुमासलच्छीए मुहं॥
(काव्या० पृ० ७९, ७४; धन्या० उ० ३, पृ० २३९)

आम्रमंजरी के कर्ण-आभूषणों से अलंकृत और वसन्तोत्सव के महासमारोह के कारण सुंदर तथा सुगंधि से पूर्ण ऐसे वसन्तलक्ष्मी के बिना झुकाए हुए मुख को कामदेव ने ज़बर्दस्ती पकड़ लिया। (अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

चंदणधूसरअं आउलिअलोअणअं हासपरम्मुहअं णीसासकिलालिअअं।
दुम्मणदुम्मणअं संकामिअमण्डणअं माणिणि! आणणअं किं तुज्झ करट्ठिअअं॥
(स० कं० २, ३९४)

चन्दन के समान धूसरित, व्याकुल लोचनों से युक्त, हास्यविहीन, निश्वास से खेदखिन्न, दुष्ट चित्त वालों के लिये दुखरूप तथा शोभाविहीन ऐसा तुम्हारा यह मुखड़ा हे मानिनि! तुम्हारे हाथ पर क्यों रक्खा है?

(दृश्य काव्य में हल्लीसक का उदाहरण)

चंदमऊहेहिं निसा णलिणी कमलेहिं कुसुमगुच्छेहिं लया।
हंसेहिं सरयसोहा कव्वकहा सज्जणेहि कीरई गरुई॥
(काव्या० ३५५, ५५१)

जैसे रात्रि चन्द्रमा की किरणों से, कमलिनी कमलों से, लता पुष्पों के गुच्छों से और शरद् हंसों से शोभित होती है, वैसे ही काव्यकथा सज्जनों के साथ अच्छी लगती है। (दीपक अलंकार का उदाहरण)

चंदसरिसं मुहं से अमअसरिच्छो अ मुहरसो तिस्सा।
सकअग्गहरहसुज्जल चुंबणअं कस्स सरिसं से॥
(स० कं० ४, २; ५, १४४; गा० स० ३, १३)

उसका मुख चन्द्रमा के समान है और मुख का रस अमृत के समान, फिर बताओ, उसके केशों को पकड़ कर झट से उसका चुंबन लेना किसके समान होगा?
(उपमान लुप्तोपमा और संकर अलंकार का उदाहरण)

चिंताणिअदइअसमागमम्मि किदमण्णुआइं सरिऊण।
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहि रुण्णा ण ओहसिया॥
(स० कं० ५, ३५; गा० स० १, ९०)

ध्यान में बैठे-बैठे प्रियतम का समागम होने पर कोप के कारणों को स्मरण करके व्यर्थ ही कलह करती हुई नायिका को देखकर उसकी सखियाँ न रो सकीं और न हँस सकीं।

चुंबिज्जइ सअहुत्तं अवरुन्धिज्जइ सहस्सहुत्तम्मि।
विरमिअ पुणो रमिज्जइ पिओ जणो णत्थि पुनरुत्तम्॥
(ध्वन्या उ० १ पृ० ७४)

(रसिक नायक) नायिका को सैकड़ों बार चूमता है, हजारों बार आलिंगन

करता है, रह-रह कर वह फिर-फिर उसके साथ रमण करता है, फिर भी उसका मन नहीं भरता। (लक्षणा का उदाहरण)

चोरा सभअसतण्हं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ।
अहिरक्खिअणिहिकलसे व्व पोढमहिलाथणुच्छंगे॥

(सं० कं० ५, ४९४; गा० स० ६, ७६)

जैसे सर्प से रक्षित खजाने के कलश को चोर भय और तृष्णा से बार-बार देखता है, वैसे ही (कामुक पुरुष) प्रौढ़ महिलाओं के स्तनों पर बार-बार दृष्टि डालता है। (संकर अलंकार का उदाहरण)

छणपिट्ठधूसरत्थणि महुमअतंबच्छि कुवलआहरणे।
कण्णकअचूअमंजरि पुत्ति! तुए मण्डिओ गामो॥

(स० कं० ३, ३; ५, ३००)

वसन्तोत्सव पर चन्दन के लेपयुक्त स्तनवाली, मधुमद के समान ताम्रवर्ण की आँखों वाली, कुवलय के आभरण वाली और कानों में आम्रमंजरी धारण करने वाली हे पुत्रि! तूने इस गाँव की शोभा बढ़ा दी है।

जइआ पिओ ण दीसइ भणह हला कस्स कीरए माणो।
अह दिट्ठम्मि वि माणो ता तस्स पिअत्तणं कत्तो॥

(स० कं० ५, ३९०)

हे सुंदरि! यदि प्रियतम नहीं हैं तो मान किसके लिये करती हो? और यदि प्रियतम के होने पर भी मान करती हो तो फिर वह प्रिय कैसे कहा जायेगा?

(शान्ता नायिका का उदाहरण)

जइ इच्छा तह रमिअं जाआ पत्ता पइं गआ धूआ।
घरसामिअस्स अज्ज वि सो कोउहल्लाइं अच्छीइं॥

(स० कं० ५, ४४३)

कन्या (बड़ी होने पर) पत्नी बन कर अपने पति के पास चली गई और यथेच्छ रमण करने लगी, (यह देख कर) आज भी गृहस्वामी के नेत्र कौतूहल से पूर्ण हैं।

जइ जइ से परिउम्बइ मण्णुभरिआइं णिहुवणे दइओ।
अच्छीइं उवरि उवरि तह तह भिण्णाइं विगलन्ति॥

(स० कं० ५, २१४)

रतिक्रीड़ा के समय जैसे-जैसे नायक कोपयुक्त प्रिया के नयनों को चूमता है, वैसे-वैसे वे खुलते जाते हैं।

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस वारिओ ठासि?
छित्तोसि चुलुचुलन्तेहिं पहाविऊण मह हत्थेहिं॥

(स० कं० ५, १६६; गा० स० ५, ८१)

यदि तू मुझ रजस्वला को नहीं छूता तो फिर मना किये जाने पर भी सामने

क्यों खड़ा है ? तेरे स्पर्श के लिये खुजलाने वाले मेरे हाथों ने दौड़कर तुझे छू लिया है (मैंने नहीं छुआ)।

जइ देअरेण भणिआ खग्गं वेत्तूण राउलं वच्च।
तं किं सेवअबहुए हसिऊण वलोइअं सअणं॥ (स० कं० २, ३७०)

जब देवर ने उससे कहा कि तू खड्ग लेकर राजकुल में जा तो यह सुनकर सेवक की वधू हँस कर शयन की ओर देखने लगी।

(अभिप्राय गूढ़ का उदाहरण)

जइ सो ण वल्लह च्चिअ णामग्गहणेण तस्स सहि! कीस।
होइ मुहं ते रविअरफंसविसट्टं व्व तामरसम्॥
(स० कं० ५, २३०; गा० स० ४, ४३)

यदि वह तुम्हारा प्रिय नहीं तो जैसे सूर्य की किरणों के स्पर्श से कमल विकसित होता है, वैसे ही हे सखि! उसका नाम भर लेने से तुम्हारा मुख क्यों खिल उठता है?[1]

जइ होसि ण तस्स पिआ अणुदिअहं णीसहेहिं अंगेहिं।
णवसूअपीअपेऊसमत्तपाडि व्व किं सुवसि॥
(स० कं० ५, ३२७; गा० स० १, ६५)

यदि तू उसकी प्रिया नहीं तो प्रतिदिन (सुरत के परिश्रम से) थक कर खीस पीकर सोई हुई नवप्रसूत महिषा की भाँति मस्त होकर क्यों सोती है?

जत्थ ण उज्जागरओ जत्थ ण ईसा विसूरणं माणम्।
सब्भावचाटुअं जत्थ णत्थि णेहो तहिं णत्थि॥
(स० कं० ५, २६२)

जहाँ उजागरता नहीं, ईर्ष्या नहीं, रोष नहीं, मान नहीं और सद्भावपूर्ण चाटुकारिता नहीं, वहाँ कभी स्नेह नहीं हो सकता।

जस्स जहिं चिअ पढमं तिस्सा अंगंमि णिवडिआ दिट्ठी।
तस्स तहिं चेय ठिआ सव्वंगं तेण वि ण दिट्ठं॥
(शृंगार ३२, १५६)

उसके अंग पर जहाँ जिस जगह पहले दृष्टि पड़ी वह उसी जगह रह गई, इससे उसके सारे अंग का दर्शन ही न हो सका।

जस्स रणंतेउरए करे कुणंतस्स मंडलग्गलयं।
रससंमुही वि सहसा परम्मुही होइ रिउसेणा॥
(काव्या० पृ० ३५२, ५३८; साहित्य, पृ० ७५७; काव्यप्र० १०, ४२२)

रणरूपी अंतः पुर में खड्गलता (प्रिया) का पाणिग्रहण करने वाले उस

---

१. मिलाइये—नाम सुनत ही ह्वै गयो तन औरे मन और।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यौ कहा चढ़ाये त्यौर॥
(बिहारीसतसई)

(राजा) की शत्रुसेना (प्रतिनायिका), रस (वीररस) में पगी होने पर भी सहसा परांमुख हो गई। (रूपक का उदाहरण)

जस्सेअ वणो तस्सेअ वेअणा भणइ तं जणो अंलिअम्।
दंतक्खअं कवोले वहूए वेअणा सवत्तीणम् ॥

(काव्य० प्र० १०, ५३३)

लोगों का यह कथन झूठ है कि जिसे चोट लगती है पीड़ा उसी को होनी है। क्योंकि दंतक्षत तो वधू के कपोल पर दिखाई दे रहा है और पीड़ा हो रही है उसकी सौतों को। (असंगति अलंकार का उदाहरण)

जह गहिरो जह रअणणिब्भरो जह अ णिम्मलच्छाओ।
तह किं विहिणा एसो सरसपाणीओ जलणिही ण किओ ॥

(काव्य० प्र० १०, ५७३)

विधाता ने जैसा यह समुद्र गहरा, रत्नों से पूर्ण तथा स्वच्छ और निर्मल बनाया है, वैसा ही मीठे पानी वाला क्यों नहीं बनाया ? (संकर का उदाहरण)

जह जह जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरूओ वि।
कुलवालिआइं तह तह अहिअअरं वल्लहो होइ ॥

(स० कं० ५, ३२९; गा० स० ३, ९३)

दरिद्र और कुरूप पति जैसे-जैसे वृद्धावस्था को प्राप्त होता जाता है, वैसे-वैसे कुलीन पत्नियों का वह अधिक प्रिय होता है।

जह जह णिसा समप्पइ तह तह वेविरतरंगपडिमापडिअं।
किंकाअव्वविमूढं वेवइ हिअअं व्व उअहिणो ससिबिंबं ॥

(स० कं० ४, १८२; सेतुबंध ५, १०)

जैसे-जैसे रात बीतती है, वैसे-वैसे कंपित तरंगों में प्रतिबिंबित चन्द्रबिंब, समुद्र के हृदय की भाँति किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मानों कांपने लगता है।

(परिकर अलंकार का उदाहरण)

जइ ण्हाउं ओइण्णे उब्भन्तमुल्हासिअमंसुअद्धन्तम्।
तह य ण्हाआसि तुमं सच्छे गोलानईतूहे ॥

(स० कं० १, १६६)

स्वच्छ गोदावरी नदी के किनारे स्नान करने के लिये अवतीर्ण तुम्हारे गीले हुए वस्त्र का अर्धभाग जब उद्‌भ्रष्ट हो जायेगा तभी समझा जायेगा कि तुमने स्नान किया है।

जाइ वअणाइ अह्मे वि जम्पिमो जाइ जप्पइ जणो वि।
ताइ च्चिअ तेण पअम्पिआइ हिअअं सुहावेंति ॥

(शृंगार २९, १४०)

जो वचन हम बोलते हैं और जिन्हें सब बोलते हैं, वे ही यदि उसके द्वारा बोले जायें तो हृदय को सुख देते हैं।

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुवगूढो।
पढमोवसरिअस्स णिअंसणस्स गंठिं विमग्गन्तो॥

(स० कं० ५, १७०; गा० स० ४, ५१)

(संभोग के समय) पहले ही खुली हुई नाड़े की गांठ को टटोलता हुआ वह लज्जित हो गया, यह देख, हँस कर मैंने उसे आलिंगनपाश में बाँध लिया।

(आक्षेप अलंकार का उदाहरण)

जाएज्ज वणुद्देसे खुज्जो च्चिअ पायवो झडिअपत्तो।
मा माणुसम्मि लोए चाई रसिओ दरिद्दो अ॥

(काव्या० पृ० ७८, १४९; ध्वन्या० उ० २ पृ० २०४; गा० स० ३, ३०)

किसी जंगल में पत्तों के बिना कोई बौना वृक्ष होकर मैं जन्म लूँ तो यह अच्छा है, लेकिन मनुष्यलोक में दानशील और रसिक हो कर, दरिद्र बन कर जन्म लेना मैं नहीं चाहता। (विध्याभास और व्यतिरेक अलंकार का उदाहरण)

जाणइ जाणावेउं अणुणअविहुरीअमाणपरिसेसं।
रइविक्कमम्मि विणआवलम्बणं स च्चिअ कुणन्ती॥

(स० कं० ५, ३८९; गा० स० १, ८८)

मनुहार द्वारा (अपने प्रियतम के) समस्त मान को द्रवित करके एकान्त में (सुरतक्रीड़ा के समय) विनय व्यक्त करना केवल वही जानती है। (अन्य युवतियाँ नहीं)। (उदात्ता नायिका का उदाहरण)

जाणइ ! सिणेहभणिअं मा रअणिअरित्ति मे जुउच्छसु वअणम्।
उज्जाणम्मि वणम्मि अ जं सुरहिं तं लआण घेप्पइ कुसुमं॥

(स० कं० ५, ४१७; सेतुबंध ११, ११९)

हे जानकि ! मुझे राक्षसी समझ कर स्नेहपूर्वक कहे हुए मेरे वचनों के प्रति जुगुप्सा मत करो। उद्यान अथवा वन में लताओं के सुगंधित पुष्प ही ग्रहण किये जाते हैं (अन्य वस्तुएँ नहीं)।

जा थेरं व हसन्ती कइवअणंबुरुहबद्धविणिवेसा।
दावेइ भुअणमंडलमण्णं विअ जअइ सा वाणी॥

(काव्य प्र० ४, ९७)

कवियों के मुखकमल पर विराजमान सरस्वती मानो बूढ़े ब्रह्मा का उपहास कर रही है; किसी विलक्षण भुवनमंडल का मानो वह प्रदर्शन कर रही है। उसकी विजय हो। (व्यतिरेक ध्वनि का उदाहरण)

जो जस्सहिअअदइओ दुक्खं देन्तो वि सो सुहं देइ।
दइअणहदूमिआणं वि वड्ढीइ त्थणआणं रोमञ्चो॥

(स० कं० ४, १६१)

जो जिसके हृदय को प्रिय है वह उसे दुख देता हुआ भी सुख ही देता है। पति के नखक्षत से क्लेश को प्राप्त स्तनों में रोमांच ही पैदा होता है।

जोण्हाइ महुरसेण अ विइण्णतारुण्णउस्सुअमणा सा ।
बुड्ढा वि णवोणव्विअ परवहुआ अहह हरइ तुह हिअअम् ॥

(काव्य प्र० ४, ९२)

तुम्हें तो कोई परकीया चाहिये चाहे वह वृद्धा ही क्यों न हो, जो ज्योत्स्ना तथा मदिरा के रस से अपना तारुण्य अर्पित कर उत्कंठित हो उठी हो; नववधू के समान वही तुम्हारे हृदय को आनन्द देगी।

(अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

जो तीएँ अहरराओ रत्तिं उव्वासिओ पिअअमेण ।
सो व्विअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥

(स० कं० ३, ७९; गा० स० २, ६; काव्या० पृ० ३८९, ६३१)

प्रियतमा के ओठों में जो लाल रंग लगा था वह प्रियतम के द्वारा रात्रि के समय पोंछ डाला गया; जान पड़ता है प्रातः काल में वही रंग सौतों के नेत्रों में प्रतिबिंबित हो रहा है। (परिवृत्ति और पर्याय अलंकार का उदाहरण)

जं किं पि पेच्छमाणं भणमाणं रे जहा तहच्चेव ।
णिज्झाअ णेहमुद्धं वअस्स ! मुद्धं णिअच्छेह ॥

(दशरूपक प्र० २, पृ० १२०)

हे मित्र ! चाहे तुम स्नेहमुग्ध भोली नायिका को दृष्टिपात करती हुई देखो या बोलती हुई को, बात एक ही है। (हाव का उदाहरण)

जं जस्स होइ सारं तं सो देइत्ति किमत्थ अच्छेरं ।
अणहोत्तं पि हु दिण्णं तइ दोहग्गं सवत्तीणम् ॥

(स०कं० ३, १८०)

इसमें कौनसा आश्चर्य है कि जो जिसके योग्य होता है वह उसे दिया जाता है, लेकिन आश्चर्य है कि उसने अनहोने दुर्भाग्य को अपनी सौतों को दे दिया !

(अत्यन्ताभाव का उदाहरण)

जं जं करेसि जं जं च जंपसे जह तुमं नियंसेसि ।
तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो न संपडइ ॥

(काव्या० पृ० ४२५, ७२३; स० कं० ५, १५२; गा० स० ४, ७८)

जैसे-जैसे तू करता है, बोलता है और देखता है, वैसे-वैसे मैं भी उसका अनुकरण करती हूँ, लेकिन दिन बड़ा है और वह समाप्त होने में नहीं आता।

(दूती की नायक के प्रति उक्ति)

जं जं सो णिज्झाअइ अंगोआसं महं अणिमिसच्छो ।
पच्छाएमि अ तं तं इच्छामि अ तेण दीसंतं ॥

(शृंगार० ३, ४; गा० स० १, ७३)

मेरे जिस-जिस अंग को निर्निमेष नयन से वह ध्यान पूर्वक देखता है उसका मैं प्रच्छादन कर लेती हूँ; चाहती हूँ वह देखता ही रहे।

जं परिहरिउं तीरइ मणअं पि ण सुन्दरत्तणगुणेण ।
अह णवरं जस्स दोसो पडिपक्खेहिं पि पडिवण्णो ॥

(काव्य० प्र० ७,-२१६ । यह गाथा आनन्दवर्धन के विषमबाणलीला की कही गई है)

(कामविलास ऐसी वस्तु है कि) इसकी सुंदरता के कारण इससे दूर रहना कभी संभव नहीं, क्योंकि विरोधी भी इसके दोषों का ही बखान करते हैं, इसका परिहार वे भी नहीं कर सकते ।

जं भणह तं सहीओ ! आम करेहामि तं तहा सव्वं ।
जइ तरइ रुंभिउं मे धीरं समुहागए तम्मि ॥

(काव्या० पृ० ३९६, ६५७)

हे सखियो ! जो-जो तुम कहोगी मैं सब कुछ करूंगी, बशर्ते कि उसके सामने आने पर मैं अपने आपको वश में रख सकूं । (अनुमान अलंकार का उदाहरण)

जं मुच्छिआ ण अ सुओ कलम्बगन्धेण तं गुणे पडिअं ।
इअरह गज्जिअसद्दो जीएण विणा न बोलिन्तो ॥

(स० कं० ५, ३४४)

कदंब की सुगंधि पाकर वह मूर्च्छित हो गई और मूर्च्छा के कारण वह मेघ की गर्जना न सुन सकी । यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो गर्जना सुन कर उसके प्राणों का ही अंत हो जाता (कदंब की मादक सुगंध दोष माना जाता है, लेकिन यहाँ वह गुण सिद्ध हुआ है) । (मूर्च्छा का उदाहरण)

ढुंढुल्लिंतु मरीह सि कंटयकलिआइं केअइवणाइं ।
मालइकुसुमेण समं भमर ! भमंतो न पाविहिसि ॥

(काव्या० पृ० २४३, ५०५; ध्वन्या० पृ० २१३; काव्य० प्र० १०, ४०७)

हे भ्रमर ! काँटों वाले केतकी के बन में भटकते-फिरते तुम भले ही मर जाओ, लेकिन मालती का-सा पुष्प तुम्हें कहीं न मिलेगा । (उपमा अलंकार का उदाहरण)

णअणब्भन्तरघोलन्तबाहभरमन्थराइ दिट्ठीए ।
पुणरुत्तपेच्छिरीए बालअ ! किं जं ण भणिओ सि ॥

(स० कं० ५, १४९; गा० स० ४, ७१)

नयनों के अश्रुभार से जड़ हुई दृष्टि से हे नादान ! बार-बार बिलोकन करने वाली उस नायिका ने ऐसी कौन-सी बात है जो न कह दी हो ।

(संचारिभावों में अश्रु का उदाहरण)

ण अ ताण घडइ ओही ण ते दीसन्ति कह वि पुणरुत्ता ।
जे विब्भमा पिआणं अत्था व सुकइवाणीणम् ॥

(ध्वन्या० ४, पृ० ६३५)

प्रियतमों के हाव-भाव और सुकवियों की वाणी के अर्थ की न कोई सीमा है और न वे पुनरुक्त जैसे दिखाई देते हैं ।

ण उण वरकोदण्डदण्डए पुत्ति ! माणुसेवि एमेअ ।
गुणवज्जिएण जाअइ वंसुप्पण्णे वि टंकारो ॥ (स० कं० ३, ८९)

हे पुत्रि ! यह उक्ति केवल श्रेष्ठ धनुष के संबंध में ही नहीं, बल्कि मनुष्य के संबंध में भी ठीक है कि सुवंश (बांस, वंश) में उत्पन्न होने पर भी गुणों (रस्सी, गुण) के बिना टंकार का शब्द नहीं होता। (निदर्शन अलङ्कार का उदाहरण)

णच्चिहिइ णडो पेच्छिहिइ जणवओ भोइओ नायओ ।
सो वि दूसिहिइ जइ रंगविहडणअरी गहवइधूआ ण वच्चिहिइ ॥
(स० कं० ५, ३१९)

नट नृत्य करेगा, लोग उसे देखेंगे, नायक भोगी है। लेकिन यदि गृहपति की पुत्री वहाँ न जायेगी तो वह नायक दूषित होगा और रंग में भंग पड जायेगा।

णमह अवट्ठिअतुंगं अविसारिअवित्थअं अणोणअं गहिरं ।
अप्पलहुअपरिसण्हं अण्णाअपरमत्थपाअडं महुमहणं ॥
(स० कं० ३, १६; सेतु १, १)

जिसकी ऊँचाई आकाशव्यापी है, मध्य मे विस्तार बहुत फैला हुआ है और गहराई अधोलोक में बहुत दूर तक चली गई है तथा जो महान् है, सूक्ष्म है और जो परमार्थ से अज्ञात होकर भी (घट, पट आदि रूप में) प्रकट है, ऐसे मधुमथन (विष्णु) को नमस्कार करो। (विभावना अलङ्कार का उदाहरण)

णमह हरं रोसाणलणिद्दड्ढमुद्धमम्महसरीरम् ।
वित्थअणिअम्बणिग्गअगंगासोत्तं व हिमवंतम् ॥ (स० कं० १, ६२)

जिसने अपनी क्रोधाग्नि से मुग्ध मन्मथ के शरीर को दग्ध कर दिया है और जो विस्तृत नितंब से निकली हुई गंगा के प्रवाह वाले हिमालय पर्वत के समान है, ऐसे शिवजी को नमस्कार करो। (असदृशोपम वाक्यार्थ दोष का उदाहरण)

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति ण होन्ति विरहकिसिआओ ।
धण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह ! वल्लहो ण तुमं ॥
(स० कं० ४, ११५; गा० स० २, ४७)

हे बहुवल्लभ (जिसे बहुत-सी महिलायें प्रिय हैं) ! जिनका तू प्रिय नहीं ऐसी जो नायिकायें (तेरे विरह में) न दीर्घ श्वास छोड़ती हैं, न बहुत काल तक रुदन करती हैं और न कृश ही होती है, वे धन्य हैं। (अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार का उदाहरण)

ण मुअम्मि मुए वि पिए दिट्ठो पिअअमो जिअन्तीए ।
इह लज्जा अ पहरिसो तीए हिअए ण संमाइ ॥
(स० कं० ५, १९१)

प्रियतम के मर जाने पर मैं न मरी, और फिर जीती हुई मैंने उसे देखा— इस प्रकार लज्जा और हर्ष के भाव उसके मन में नहीं समाते।

णवपल्लवेसु लोलइ घोलइ विडवेसु चलइ सिहरेसु ।
थवइ थवएसु चलणे वसंतलच्छी असोअस्स ॥
(स० कं० ४, २०३; ५, ४५५)

वसंतशोभा अशोक के नव पल्लवों में चंचल होती है, वृक्षों के शिखरों पर चलायमान होती है और उनके पुष्पगुच्छों पर अपने चरण रखती है।

(दीपक अलङ्कार का उदाहरण)

णवपुण्णिमामिअङ्कस्स सुहअ ! को तं सि भणसु मह सच्चम्।
का सोहग्गसमग्गा पओसरअणि व्व तुह अज्ज ॥

(काव्य० प्र० ४, ८८)

हे सुभग ! सच-सच बताओ, नवोदित पूर्णिमा के चन्द्र के तुम कौन लगते हो ? क्या आज प्रदोषरात्रि की भाँति तुम्हारी कोई सौभाग्य सुन्दरी मौजूद है ?

(प्रतिमा अलङ्कार का उदाहरण)

णवरिअ तं जुअजुअलं अण्णोण्णं णिहिदसजलमंथरदिट्ठिं।
आलेक्खआपिअं विअ खणमेत्थं तत्थ संठिअं मुअसण्णं ॥

(साहित्य०, पृ० १६४; कुवलयाश्वचरित)

उन दोनों की जोड़ी परस्पर अश्रुपूर्ण निश्चल दृष्टि से देखती हुई, संज्ञा से शून्य केवल चित्रलिखित की भाँति वहाँ क्षण भर के लिये खड़ी रही।

णवरि अ पसारिअंगी रअभरिउप्पहपइण्णवेणीबन्धा ।
पडिआ उरसन्दाणिअमहिअलचक्कलइअत्थणी जणअसुआ ॥

(स० कं० ५, २०६; सेतु० ११, ६८)

(तत्पश्चात्) अपने अंगों को फैला कर, धूलि से भरे हुए उन्मार्ग में जिसकी वेणी खुल गई है, तथा (नीचे की ओर मुंह करके गिरने से) छाती के जमीन से लगने के कारण जिसके स्तनों पर चक्र की भाँति मंडल बन गये हैं, ऐसी जनकसुता (सीता) भूमि पर गिर पड़ी।

णवलइपहारतुट्ठाइ तं कअं किंपि हलिअसोण्हाए।
जं अज्जवि जुअइजणो घरे घरे सिक्खिउं भमइ ॥

(स० कं० ५, १७५)

नवलता के प्रहार से संतुष्ट हलवाहे की पतोहू ने जो कुछ किया उसे आज भी घर-घर की युवतियाँ सीखने की इच्छा रखती हैं।

णवलइ पहारमंगे,जहिं जहिं महइ देअरो दाउं।
रोमंचदंडराई तहिं तहिं दीसइ बहूए ॥

(स० कं० ५, २०८; गा० स० १, २८)

देवर जहाँ-जहाँ शरीर पर नवलता से प्रहार करने की इच्छा करता है, वहाँ-वहाँ वधू के (शरीर पर) रोमान्चपंक्ति दिखाई देने लगती है।

ण वि तह अणालवन्ती हिअअं दूमेइ माणिणी अहिअम्।
जइ दूरविअम्भिअगरुअरोसमज्झत्थभणिएहिं ॥

(स० कं० ५, ३२५, ३८०; गा० स० ६, ६४)

मानिनी यदि मौन धारण कर लेती है तो वह इतना अधिक हृदय को कष्ट नहीं पहुँचाती जितना कि वह अत्यधिक रोषपूर्ण स्नेहशून्य उदासीन वचनों द्वारा।

ण वि तह छेअरआइं हरन्ति पुणरुत्तराअरमिआइं।
जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सब्भावरमिआइं॥
(स० कं० ५, ३३३; गा० स० ३, ७४)

पुनः-पुनः परिशीलित, रति-व्यापार में अनुभव वाला ऐसा कामशास्त्रोक्त रति-व्यापार इतना आकर्षक नहीं होता जितना कि किसी भी स्थान पर और किसी भी प्रकार से अन्तःकरण के स्नेहपूर्वक किया हुआ समागम।

णहमुहपसाहिअंगो निद्दाघुम्मंतलोअणो न तहा।
जह निव्वणाहरो सामलंग ! दूमेसि मह हिअयं॥
(काव्या० पृ० ५६, २३)

हे श्यामलांगी प्रियतमे ! नखक्षत द्वारा शोभायमान तुम्हारा शरीर और निद्रा से घूर्णित तुम्हारे नेत्र मुझे इतने व्याकुल नहीं करते जितना कि दन्तक्षत बिना तुम्हारा अधरोष्ठ।

ण हु णवरं दीवसिहासारिच्छं चम्पएहिं पडिवण्णम्।
कज्जलकज्जं पि कअं उअरि भमन्तेहिं भमरेहिं॥
(स० कं० ५, ४६२)

केवल चंपक के फूल ही दीपक की शिखा की भाँति प्रतीत नहीं होते, किंतु ऊपर उड़ने वाले भौंरे भी काजल जैसे लगते हैं। (अलङ्कार सङ्कर का उदाहरण)

णाराअणो त्ति परिणअपराहिं सिरिवल्लहो त्ति तरुणीहिं।
बालाहिं उण कोदूहलेण एमेअ सच्चविओ॥
(अलङ्कार स०, पृ० ४८)

परिणीत स्त्रियों की रुचि नारायण में, तरुणियों की श्रीवल्लभ में और बालाओं की केवल कुतूहल में रहती है, यही देखा गया है।

णासं व सा कवोले अज्ज वि तुह दन्तमण्डलं बाला।
उब्भिण्णपुलअवइवेढपरिगअं रक्खइ वराई॥
(स० कं० ५, २१८; गा० स० १, ९६)

वह बिचारी बाला रोमांचरूपी बाड़ से युक्त अपने कपोल पर तुम्हारे द्वारा किये हुए दन्तक्षत की धरोहर की भाँति आज भी रक्षा कर रही है।

णिग्गंडदुरारोहं मा पुत्तय ! पाडलं समारुहसु।
आरूढनिवाडिया के इमीए न कया इहग्गामे॥
(काव्या०, पृ० ४००, ६६६; गा० सं० ५, ६८)

हे पुत्र ! गाँठ रहित और मुश्किल से चढ़े जाने योग्य पाटल वृक्ष के ऊपर मत चढ़। इस गाँव में ऐसे कौन है जिन्हें (ऊपर चढ़े हुओं को) इस (नायिका) ने नीचे नहीं गिरा दिया। (सङ्कर अलङ्कार का उदाहरण)

णिद्दालसपरिघुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ।
कामस्सवि दुव्विसहा दिट्ठिणिवाआ ससिमुहीए॥
(स० कं० ५, ६३; गा० स० २, ४८)

(सुरत-जागरण के कारण) निद्रा से अलसाये और झूमते हुए, तथा (अतिशय अनुराग से) पुतलियों को तिरछे फिराते हुए चन्द्रवदना के दृष्टिबाण कामदेव के लिये भी असह्य हैं।

णियदइयदंसणुक्खित्त पहिय ! अन्नेण वच्चसु पहेण ।
गहवइधूआ दुल्लंघवाउरा इह हयग्गामे ॥

(काव्या०, पृ० ५५, १९; स० कं० ५, ३७५)

अपनी प्रियतमा के दर्शन के लिये उत्सुक हे पथिक ! तू और किसी रास्ते से जा। इस अभागे ग्राम में गृहपति की कन्या कहीं इधर-उधर जाने में असमर्थ है।

(मध्यमा नायिका का उदाहरण)

णिहुअरमणम्मि लोअणपहंपि पडिए गुरुअणमज्झंमि ।
सअलपरिहारहिअआ वणगमणं एव्व महइ वहू ॥

(काव्य० प्र० ७, ३२८; काव्या० पृ० १६१, १८७)

अपने प्रेमी के साथ एकान्त में रमण करने वाली कोई वधू अपने गुरुजनो द्वारा देख लिये जाने पर, घर का सब काम-काज छोड़ कर केवल वनगमन की ही इच्छा करती है ! (शृङ्गाररस के निर्वेद से बाधित होने का उदाहरण)

णेउरकोडिविलग्गं चिहुरं दइअस्स पाअपडिअस्स ।
हिअअं माणपउत्थं उम्मोअंत्ति च्चिअ कहेइ ॥

(दशरूपक, पृ० ४; पृ० २३७; गा० स० २, ८८)

प्रिया के पैरों में गिरने वाले प्रियतम के केश प्रिया के नूपुरों मे उलझ गये हैं जो इस बात की सूचना दे रहे है कि नायिका के मानों हृदय को अब मान से छुटकारा मिल गया है।

णोल्लेइ अणोल्लमणा अत्ता मं घरभरंमि सयलंमि ।
खणमेत्तं जइ संझाए होइ न व होइ वीसामो ॥

(काव्या०, पृ० ६०, २१; काव्य० प्र० ३, १८)

हे प्रियतम ! मेरी निष्ठुर सास दिन भर मुझे घर के काम में लगाये रखती है। मुझे तो केवल सांझ के समय क्षण भर के लिये विश्राम मिलता है, या फिर वह भी नहीं मिलता। (यहाँ नायिका अपने पास खड़े प्रेमी को दिन भर काम में लगे रहने की बात सुनाकर उससे सांझ के समय मिलने की ओर इंगित कर रही है)।

(सूक्ष्म अलङ्कार का उदाहरण)

तइआ मह गंडत्थलणिमिअं दिट्ठिं ण णेसि अण्णत्तो ।
एण्हिं सच्चेअ अहं तेअ कवोला ण सा दिट्ठी ॥

(काव्य० प्र० ३, १६)

हे प्रियतम ! उस समय तो मेरे कपोलों में निमग्न तेरी दृष्टि कहीं दूसरी जगह जाने का नाम भी न लेती थी, और अब यद्यपि मैं वही हूँ, वे ही मेरे कपोल हैं, फिर भी तुम्हारी वह दृष्टि नहीं रही (यहाँ प्रियतम के प्रच्छन्न कामुक होने की ध्वनि व्यक्त होती है)। (वाक्य वैशिष्ट्य से वाच्य रूप अर्थ की व्यंजना का उदाहरण)

तत्तो च्चिअ णेन्ति कहा विअसन्ति तहिं समप्पन्ति ।
किं मण्णे माउच्छा ! एक्कजुआणो इमो गामो ॥

(स० कं० ५, २२७; गा० स० ७, ४८)

उसी से कहानियाँ आरंभ होती हैं, उसी से बढ़ती हैं और वहीं पर समाप्त हो जाती हैं। हे मौसी ! क्या कहूँ, इस गाँव में केवल वही एक छैलछबीला रहता है।

तरलच्छि ! चंदवअणे ! पीणत्थणि ! करिकरोरु ! तणुमज्झे !
दीहा वि समप्पइ सिसिरजामिणी कह णु दे माणे ॥

(श्रृंगार०, ५९, ३३)

हे चंचल नेत्रों वाली ! चन्द्रवदने ! पीन स्तनवाली ! हाथी के शुंडादंड के समान उरुवाली ! कृशोदरि ! शिशिर ऋतु की सारी रात बीत गई, और तेरा मान अभी भी पूरा नहीं हुआ !

तह वलिअं णअणजुअं गहवइधूआए रंगमज्झंमि ।
जह ते वि णडा णडपेच्छआ वि मुहपेच्छआ जाआ ॥

(श्रृंगार० २९, १३५)

जैसे नट और नटों के प्रेक्षक उसके मुख की ओर देखने लगे, वैसे ही रंगस्थली में उस गृहपति की पतोहू के नेत्रयुगल घूम गये ।

तह झत्ति से पअत्ता सव्वंगं विब्भमा थणुब्भेए ।
संसइअबालभावा होइ चिरं जह सहीणं पि ॥

(दशरूपक २, पृ० १२०)

जैसे-जैसे उसके स्तनों में वृद्धि होने लगी वैसे-वैसे उसके समस्त अंगों में विलास दिखाई देने लगा, यहाँ तक कि उसकी सखियाँ भी एकबारगी उसके बाल्य-भाव के बारे में संदेह करने लग गईं। (हेला का उदाहरण)

तह दिट्ठं तह भणिअं ताए णिअदं तहा तहासीणम् ।
अवलोइअं सअण्हं सविब्भमं जह सवत्तीहिं ॥

(दशरूपक, प्र० २, पृ० १२४)

उस नायिका का देखना, बोलना, स्थित होना और बैठना इस ढंग का है कि उसकी सौतें भी उसे तृष्णा और विलासपूर्वक देखती हैं। (भाव का उदाहरण)

तह सा जाणइ पावा लोए पच्छण्णमविणअं काउं ।
जह पढमं चिअ स च्चिअ लिक्खइ मज्झे चरितवंतीणं ॥

(स० कं० ५, ३९४)

जैसे वह पहले चरितवंतियों के बीच प्रधान गिनी जाती थी, वैसे ही अब वह कुलटा लोक में प्रच्छन्न अविनय करने वालों में सर्वप्रथम है।

(स्वैरिणी का उदाहरण)

ता कुणह कालहरणं तुवरंतम्मि विवरे विवाहस्स ।
जाव पण्डुणहवणाइं होन्ति कुमारीअ अंगाइम् ॥

(स० कं० ५,

विवाह के लिये वर के द्वारा शीघ्रता करने पर भी तब तक समय यापन करो जब तक कि कुमारी के अंग पाण्डु नखक्षतों से युक्त न हो जायँ।

(विवाह के समय परिहास का उदाहरण)

ताणं गुणग्गहणाणं ताणुक्कंठाणं तस्स पेम्मस्स।
ताणं भणिआणं सुन्दर ! एरिसिअं जाअमवसाणम् ॥

(काव्य० प्र० ४, १०२)

हे सुन्दर ! क्या उन गुणों के वर्णन का, उन उत्कंठाओं का, उस प्रेम का और तुम्हारी उन प्रेमपगी बातों का यही अन्त होना था ?

(वचन की रसव्यंजकता का उदाहरण)

ताला जायन्ति गुणा जाला ते सहिअएहिं घिप्पंति।
रविकिरणाणुग्गहिआइं हुंति कमलाइं कमलाइं ॥

(अलङ्कार० पृ० २३; काव्या० पृ० २०९, २३५; विषमबाणलीला; काव्य० प्र० ७, ३१५)

गुण उस समय उत्पन्न होते हैं जब वे सहृदय पुरुषों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। सूर्य की किरणों से अनुगृहीत विकसित कमल ही कमल कहे जाते हैं।

(लाटानुप्रास का उदाहरण)

ताव च्चिअ रइसमए महिलाणं विब्भमा विराअन्ति।
जाव ण कुवलयदलसच्छहाइं मउलेन्ति णअणाइं ॥

(सं० कं० ५, १६८; दशरूपक २, पृ० १००; गा० स० १, ५)

रति के समय स्त्रियों की शृंगार-चेष्टाएँ तभी तक शोभित होती हैं जब तक कि कमलों के समान उनके नयन मुकुलित नहीं हो जाते।

(रसाश्रित भाव का उदाहरण)

तावमवणेइ ण तहा चन्दनपंको वि कामिमिहुणाणम्।
जइ दूसहे वि गिम्हे अण्णोण्णालिंगणसुहेल्ली ॥

(स० कं० ५, २१३; गा० स० ३, ८८)

असह्य ग्रीष्मकाल में भी कामीजनों का ताप, जैसा परस्पर आलिंगन-सुख की क्रीड़ा से शान्त होता है, वैसा चन्दन के लेप से भी नहीं होता।

(सङ्कर अलङ्कार का उदाहरण)

तीए दंसणसुहए पणअक्खलणजणिओ मुहम्मि मणहरे।
रोसो वि हरइ हिअअं मअअंको व्व मिअलंछणम्मि णिसण्णो ॥

(स० कं० ५, ४८५)

उसके दर्शनीय सुंदर मुख पर प्रणय के स्खलन के कारण जो रोष दिखाई देता है वह भी चन्द्रमा में बैठे हुए मृग के चिह्न की भाँति मनोहर जान पड़ता है।

(सङ्कर अलङ्कार का उदाहरण)

तीए सविसेसदूमिअसवत्तिहिअआइं णिव्वलणान्तसिणेहं।
पिअगरुइआइ णिमिअं सोहग्गगुणाण अग्गभूमीअ पअं ॥

(स० कं० ५, ३५०)

विशेष रूप से अपनी सौतों के हृदय को दुखी करने वाली अपने प्रिय की लाड़ली उस (नायिका) ने सौभाग्य-गुणों की अग्रभूमि में स्नेहयुक्त स्थान बनाया है।

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो दिआअ रत्तिं अ।
णिक्किव! तवेइ वलिअं तुह जुत्तमणोरहाइं अंगाइं॥

(स० कं० २, २; अ० शाकुन्तल ३, १९)

मैं तेरे हृदय को नहीं जानती लेकिन हे निर्दय! जिसके मनोरथ तुम पर केन्द्रित हैं ऐसी मुझ जैसी के अंगों को दिन और रात अतिशय रूप से काम सताता है। (शुद्ध प्राकृत का उदाहरण)

तुह वल्लहस्स गोसम्मि आसि अहरो मिलाणकमलदलं।
इय नववहुआ सोऊण कुणइ वयणं महीसमुहं॥

(काव्या० पृ० ८०, ७६; काव्यप्रकाश ४, ८३)

आज प्रभात में तुम्हारे प्रियतम का अधरोष्ठ किसी मसले हुए कमलपत्र की भाँति दिखाई दे रहा था, यह सुनते ही नववधू का मुँह जमीन में गड़ गया।

(रूपक का उदाहरण)

तुह विरहुज्जागरओ सिविणे वि ण देइ दंसणसुहाइं।
बाहेण जहालोअणविणोअणं पि से विहअम्॥

(स० कं० ५, ३३८; गा० स० ५, ८७)

तुम्हारे विरह के जागृत रहने से स्वप्न में भी तुम्हारे दर्शन का सुख उसे प्राप्त नहीं होता तथा आँखों के अश्रुओं से पूर्ण होने से तुम्हें देखने का आनंद नहीं मिलता, यह उस बेचारी का बड़ा दुर्भाग्य है!

तेण इर णवलआए दिण्णो पहरो इमीअ थणवट्ठे।
गामतरुणीहिं अज्ज वि दिअहं परिवालिआ भमइ॥

(स० कं० ५, २२८)

उसने उस नायिका के स्तनों पर नवलता से प्रहार किया जिससे वह अभी भी गाँव की तरुणियों द्वारा रक्षित इधर-उधर घूम रही है।

ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घडेन्ति कज्जलावे।
थोअच्चिअ ते वि दुमा जे अमुणिअकुसुमणिग्गमा देन्ति फलं॥

(स० कं० ४, १६२; सेतु० ३, ९)

जो बिना कुछ कहे ही काम बना देते हैं ऐसे सत्पुरुष विरले हैं। उदाहरण के लिये, ऐसे वृक्ष थोड़े ही होते हैं जो फूलों के बिना ही फल देते हैं।

(अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का उदाहरण)

तो कुम्भअण्णपडिवअणदण्डपडिघट्टिआमरिसघोरविसो।
गलिअंसुअणिमोओ जाओ भीसणनरो दसाणणभुअओ॥

(स० कं० ४, ३८)

तत्पश्चात् कुंभकर्ण के प्रत्युत्तर रूपी दंड से जिसका क्रोध रूपी उग्र विष

जागृत हो गया है, तथा जिसकी वस्त्ररूपी केंचुली स्खलित हो गई है ऐसा रावणरूपी सर्प अति भयानक दिखाई देने लगा। (रूपक अलङ्कार का उदाहरण)

तो ताण हअच्छाअं णिच्चललोअणसिहं पउत्थपआवम्।
आलेक्खपईवाणं व णिअअं पइइचडुलत्तणं पि विअलिअम्॥
(स० कं० ४, ५६; ५, २४; सेतुबंध २, ४५; काव्या० पृ० १४५, १७०; विषमबाणलीला)

शोभा-विहीन निश्चल लोचनरूपी शिखा से युक्त और प्रतापरहित ऐसे चित्रलिखित दीपकों की भाँति उन वानरों की स्वाभाविक चंचलता नष्ट हो गई।
(साम्य अलङ्कार का उदाहरण)

तं किर खणा विरज्जसि तं किर उवहससि सअलमहिलाओ।
एहेहि वारवालिइ! अंसू मइलं समुप्पिसिमो॥
(स० कं० ५, ३७६)

तू क्षण भर में उदास हो जाती है, फिर तू सब महिलाओं का उपहास करने लगती है। हे द्वारपालिके! इधर आ, हम तेरे मलिन आँसुओं को पोंछ देंगे।
(अधमा नायिका का उदाहरण)

तं चिअ वअणं ते च्चेअ लोअणे जोव्वणं पि तं च्चेअ।
अण्णा अणंगलच्छी अण्णं चिअ किं पि साहेइ॥
(दशरूपक प्र० २, पृ० १२०)

उस नायिका का वही मुख है, वे ही नेत्र हैं, और वही उसका यौवन है, लेकिन उसके शरीर में एक विचित्र ही कमनीयता दिखाई देती है जो कुछ और ही कह रही है। (भाव का उदाहरण)

तं णत्थि किंपि पइणो पकप्पिअं जं ण णिअइघरणीए।
अणवरअगमणसीलस्स कालपहिअस्स पाहिज्जम्॥
(अलङ्कार० पृ० १२३)

नियतिरूपी गृहिणी ने सतत गमनशील काल-पथिकरूप अपने पति के लिये कौनसा पाथेय तैयार नहीं किया?

तं ताण सिरिसहोअररयणाहरणम्मि हिअयमिक्करसं।
बिंबाहरे पिआणं निवेसियं कुसुमबाणेण॥
(ध्वन्या० उ० २ पृ० २००; काव्या० पृ० ७४, ७०; विषमबाणलीला)

कौस्तुभमणि को प्राप्त करने के लिये तत्पर असुरों का मन जो अत्यन्त तन्मय हो गया था, उसे कामदेव ने (कौस्तुभमणि से खींच कर) प्रेयसी के अधरबिंब में निवेशित कर दिया। (पर्याय अलङ्कार का उदाहरण)

तं तिअसकुसुमदामं हरिणा णिम्महिअसुरहिगन्धामोअं।
अप्पणइअं पि दूमिअपणइणिहिअएण रुप्पिणीअ विइण्णम्॥
(स० कं० ५, ३५१)

सुगंध से परिपूर्ण और स्वयं लाई हुई देवों की पुष्पमाला को, प्रणयिनी के हृदय को कष्ट पहुँचाने वाले कृष्ण ने बिना माँगे ही रुक्मिणी को दे दी।

(प्रतिनायिका का उदाहरण)

तं तिअसबन्दिमोक्खं समत्तलोअस्स हिअसल्लुद्धरणम् ।
सुणह अणुरायइण्हं सीयादुक्खक्खयं दसमुहस्स वहम् ॥

(काव्या० पृ० ४५६, ६१२; सेतुबन्ध १, १२)

बंदी किए हुए देवताओं को छुटकारा देने वाले, समस्त लोक के हृदयों में से शल्य को निकालने वाले, (सीता के प्रति राम के) अनुराग के चिह्न रूप तथा सीता के दुख का हरण करने वाले ऐसे रावणवध को सुनो।

तं दइआचिण्णाणं जम्मि वि अंगम्मि राहवेण ण णिमिअं ।
सीआपरिमट्ठेण व ऊढो तेणवि निरन्तरं रोमञ्चो ॥

(स० कं० ४, २२३; सेतुबंध १, ४२)

उस प्रिया के चिह्न (मणि) को रामचन्द्र ने जिस अंग पर नहीं रखा वह भी मानों सीता द्वारा चारों ओर से स्पृष्ट होकर पुलकित हो उठा।

(अतिशयोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

तं पुलइअं पि पेच्छइ तं चिअ णिज्झाइ तीअ गेणहइ गोत्तं।
ठाइअ तस्स समअणे अण्णं वि विचिंतअम्मि स च्चिअ हिअए ॥

(स० कं० ५, ३३६)

हृदय में किसी अन्य का विचार करते हुए, वह पुलकित हुई उसी नायिका को देखता है, उसी का ध्यान करता है, उसी का नाम लेता है और वही उसके हृदय में वास करती है।

तंवमुहकआहोआ जइ जइ थणआ किलेन्ति कुमरीणम् ।
तह तह लद्धावासोव्व वम्महो हिअअमाविसइ ॥

(स० कं० ५, ३३२)

विस्तार वाले कुमारियों के ताम्रमुख स्तन जैसे-जैसे क्लांति उत्पन्न करते हैं, वैसे-वैसे मानो कामदेव स्थान पाकर हृदय में प्रवेश करता है।

(यौवनज का उदाहरण)

तं सि मए चूअंकर ! दिण्णो कामस्स गहिदधणुअस्स ।
जुवइमणमोहणसहो पञ्चब्भहिओ सरो होहि ॥

(स० कं० २, ५; अ० शाकुन्तल ६, ३)

हे आम्रमंजरी ! हाथ मे धनुष लेने वाले कामदेव को मैंने तुझे दिया है, अब तू युवतियों के मन को मोहित करने में समर्थ पाँच से अधिक बाणरूप बन जा (कामदेव को पंचशर कहा गया है)। (शुद्ध शौरसेनी का उदाहरण)

थोआरूढमहुमआ खणपम्हट्ठावराहदिण्णुल्लावा ।
हसिऊण संठविज्जइ पिएण संभरिअलज्जिआ कावि पिआ ॥

(स० कं० ५, ३२१)

जिसे मदिरा का थोड़ा-सा नशा चढ़ा हुआ है और जो क्षण भर के लिए अपराधों को भूल कर उल्लास कर रही है, लज्जा को स्मरण करती हुई ऐसी प्रिया को उसका प्रियतम हँस कर बैठा रहा है।

थोओ सरंतरोसं थोअत्थोअपरिवड्ढमाणपहरिसम्।
होइ अ दूरपआसं उअहरसाअंतविब्भमं तीअ मुखम्॥

(स० कं० ५, ४९१)

धीरे-धीरे जिसका रोष दूर हो रहा है और जिस पर धीरे-धीरे हर्ष के चिह्न दिखाई दे रहे हैं ऐसा दूर से प्रकाशित और उभय रस के हाव-भाव से युक्त उस (नायिका) का मुख दिखाई दे रहा है। (स्वभावोक्ति का उदाहरण)

दइअस्स गिम्मवम्महसंदावं दो वि झत्ति अवणेइ।
मज्जणजलद्दचंदणसिसिरा आलिंगणेण वहू ॥ (शृंगार० ५५, १३)

स्नान के जल से आर्द्र और चन्दन से शिशिर वधू अपने आलिंगन से दयिता के ग्रीष्म और काम संताप दोनों को झट से दूर कर देती है।

दट्ठुं चिरं ण लद्धो मामि ! पिओ दिट्ठिगोअरगओ वि।
दंडाहअवलिअभुअंगवक्करच्छे हअग्गामे ॥

(शृंगार ४१, २०३)

हे मामी ! दंड से आहत, घूमे हुए, और भुजंग के समान टेढ़े-मेढ़े रास्ते वाले इस अभागे गाँव में दृष्टिगोचर होते हुए भी उस अपने प्रिय को बहुत देर तक मैं न देख सकी।

दट्ठोट्ठ हो! असिलअघाओ दे वि मउलावइ लोअणअउहो बे।
सुपओहरकुवलयपत्तलच्छि कह मोहण जणइ ण लग्गवच्छि॥

(स० कं० ५, ४९८)

हे अधरामृत के पान करने वाले ! तेरा नखाघात (उसके) दोनों लोचनों को मुकुलित कर देता है, फिर वह सुंदर स्तनों वाली और कमल के समान नयनों वाली वक्षस्थल से लगी हुई किसके हृदय में मोह उत्पन्न नहीं करती ? (वीर रस सूचक अर्थ : ओठों को डस कर तुम्हारे खड्ग का प्रहार किये जाने पर उसके दोनों नेत्र मुकुलित हो जाते हैं, फिर वक्षस्थल से लग्न समस्त पृथ्वी मंडल को प्राप्त लक्ष्मी योद्धाओं के हृदय में क्यों मोह उत्पन्न नहीं करती ?) (श्लेष का उदाहरण)

दढमूढबद्धगंठिं व मोइआ कहवि तेण मे बाहू।
अह्मे विअ तस्स उरे खत्तव्व समुक्खआ थणआ ॥ (शृंगार० ७, २८)

दृढ़ बँधी हुई गाँठ की भाँति उसने किसी तरह मेरी दोनों बाहुओं को छुड़ाया, फिर तो हमने भी गड्ढे की भाँति उसके वक्षस्थल पर अपने स्तन गड़ा दिये।

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिउरासु।
पुरुसाइअसीरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ ॥

(स० कं० ५; २२२; गा० स० ७, १४)

जिसके उरुयुगल कुछ कंपित हो रहे हैं, जिसके नेत्र मुकुलित हैं, केशपाश

चंचल हो रहा है ऐसी पुरुषायित (रति के समय पुरुष की भाँति आचरण करने वाली) प्रिया में कामदेव मानों समस्त शस्त्रों से सज्जित होकर उपस्थित हुआ है।

दिअहे दिअहे सूसइ संकेअअभंगवड्ढिआसंका।
आपाण्डुरावणमुही कलमेण समं कलमगोवी॥

(स० कं० ५, ३२६; गा० स० ७, ९१)

जैसे कलम (एक प्रकार का धान) पक जाने पर पीला पड़ कर दिन प्रतिदिन सूखने लगता है, वैसे ही (धान के खेत सूख जाने पर) संकेत-स्थल के नष्ट हो जाने की चिन्ता से पीली पड़ी हुई, नीचे मुंह किये धान की रखवाली करने वाली (कृषक वधु) दिन पर दिन सूखती जाती है। (सहोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

दिअहं खु दुक्खिआए सअलं काऊण गेहवावारम्।
गरुएव मण्णुदुक्खे भरिमो पाअन्तसुत्तस्स॥

(दशरूपक प्र० २, पृ० १२३; गा० स० ३, २६)

दिन भर घर के कामकाज में लगी रहने के कारण दुःखो नायिका का भारी क्रोध एवं दुःख प्रिय के पाँयतो की तरफ सो जाने से शांत हो गया।

(औदार्य का उदाहरण)

दिट्ठाइ जं ण दिट्ठो आलविआए वि जं ण आलत्तो।
उवआरो जं ण कओ तं चिअ कलिअं छइल्लेहिं॥

(स० कं० ५, २५२; ३, १२९)

उस (नायिका) के द्वारा देखे जाते हुए भी जिसने उसकी ओर नही देखा, भाषण किये जाते हुए भी भाषण नहीं किया, और जिसने उसका स्वागत तक नहीं किया, उसे विदग्ध लोग ही समझ सकते है।

(विचित्र, विषम अलङ्कार का उदाहरण)

दिट्ठा कुविआणुणआ पिआ सहस्सजणपेल्लणं पि विसहिअं।
जस्स णिसण्णाइ उरे सिरीए पेम्मेण लहुइओ अप्पाणो॥

(स० कं० ५, ३२२)

सहस्रजनों की प्रेरणा को सहन करके भी कुपित प्रियतमा को मनाया, (तत्पश्चात्) जिसके वक्षस्थल पर आसीन लक्ष्मी के प्रेम से उसकी आत्मा कोमल हो गई।

दिट्ठे जं पुलइज्जसि थरहरसि पिअम्मि जं समासण्णे।
तुह सम्भासणसेउल्लि फंसणे किं वि लज्जिहिसि॥

(स० कं० ५, १४८)

जिस प्रियतम को देखने पर तू पुलकित होती है, जिसके पास आने पर कंपित होने लगती है और जिसके साथ वार्तालाप करने से पसीना-पसीना हो जाती है, उसके स्पर्श से तू भला क्यों लजाती है ?

(संचारी भावों में स्वेद, रोमांच और वेपथु का उदाहरण)

दियरस्स सरअमउअं अंसुमइलेण देइ हत्थेण ।
पढमं हिअअं बहुआ पच्छा गण्डं सदन्तवणम् ॥ (स० कं० ५, ३१७)

पहले बहू अपने देवर को अपना हृदय सौंपती है, तत्पश्चात् आँसुओं से मलिन हाथ से शरद् ऋतु में होने वाले अपने दाँत-कटे गंड को देती है ।

दीसइ ण चूअमउलं अज्ज ण अ वाइ मलअगन्धवहो ।
एइ वसन्तमासो सहि ! जं उक्कण्ठिअं चेअं ॥
(स० कं० ३, १५६; गा० स० ६, ४२)

हे सखि ! अभी आम्रवृक्ष पर मौर लगा नहीं और मलय का सुगंध पवन बहता नहीं, फिर भी मेरा उत्कंठित मन कह रहा है कि वसन्त आ गया है ।
(शेषवत् का उदाहरण)

दीहो दिअहभुअंगो रइबिंबफणामणिप्पहं विअसन्तो ।
अवरसमुद्दमुवगओ मुंचंतो कंचुअंबघम्मअणिवहम् ॥
(स० कं० ४, ४६)

दीर्घ सूर्य बिंबरूपी फण की मणि को विकसित करता हुआ और आतपरूपी केंचुली छोड़ता हुआ ऐसा दिवस रूपी सर्प पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुआ (सूर्यास्त का वर्णन) । (रूपक अलङ्कार का उदाहरण)

दुल्लहजणाणुराओ लज्जा गरुई परव्वसो अप्पा ।
पिअसहि ! विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवर एक्कं ॥
(स० कं० ५, १७७; साहित्य० पृ० ३६८; दशरूपक १, पृ० २९; रत्नावलि २, १)

दुर्लभ जन के प्रति प्रेम, गंभीर लज्जा और पराधीन आत्मा, हे प्रिय सखि ! ऐसा यह विषम प्रेम है, अब तो मृत्यु ही एक मात्र शरण है ।

दूमेन्ति जे मुहुत्तं कुविअं दास व्व जे पसाएन्ति ।
ते च्चिअ महिलाणं पिआ सेसा सामि च्चिअ वराआ ॥
(स० कं ५, २८६)

जो थोड़ी देर के लिए (क्रीड़ा, गोत्र-स्खलन आदि द्वारा) अपनी प्रिया को कष्ट देते हैं और कुपित हुई को दास की भाँति प्रसन्न करते हैं, वास्तव में वे ही महिलाओं के प्रिय हैं, बाकी तो विचारे स्वामी कहे जाने योग्य हैं ।

दूरपडिबद्धराए अवऊहन्तम्मि दिणअरे अवरदिसम् ।
असहन्ति व्व किलिम्मइ पिअअमपच्चक्खदूसणं दिणलच्छी ॥
(स० कं० ४, ८६)

अत्यन्त रागयुक्त सूर्य के द्वारा पश्चिम दिशा (अपर नायिका) के आलिंगन किये जाने पर, दिवस-शोभा अपने प्रियतम के प्रत्यक्ष दूषण को सहन न कर सकने के कारण ही मानों म्लान हो चली है । (समाधि अलङ्कार का उदाहरण)

दे आ पसिअ णिअत्तसु मुहससिजोह्णाविलुत्ततमणिवहे ।
अहिसारिआण विग्घं करेसि अण्णाण वि हआसे ॥
(ध्वन्या० उ० १, पृ० २२; काव्या० पृ० ५५, २२; दशरूपक २, पृ० १२३)

अपने मुखरूपी चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से अंधकार को दूर करने वाली हे प्रिये ! तुम प्रसन्न हो कर घर लौटो । नहीं तो हे अभागिनी ! तुम अन्य अभिसारिकाओं के मार्ग में भी बाधा बन जाओगी । (दीप्तिभाव का उदाहरण).

देव्वाएत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो भणिमो ।
कंकेल्लिपल्लवाणं ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥
(ध्वन्या० उ० २, पृ० २०१; गा० स० ३, ७९)

फल सदा भाग्य के अधीन रहता है, इसमें कोई क्या कर सकता है ? हम तो इतना ही कहते हैं कि अशोक के पत्ते अन्य पत्तों के समान नहीं होते ।

(अप्रस्तुतप्रशंसा, सङ्कर अलङ्कार का उदाहरण)

देहोव्व पडइ दिअहो कण्ठच्छेओ व्व लोहिओ होइ रई ।
गलइ रुहिरं व्व संझा घोलइ केसकसणं सिरम्मि अ तिमिरं ॥
(स० कं० ४, ९१)

देह की भाँति दिवस गिर रहा है, कंठच्छेद की भाँति सूर्य लाल हो रहा है, रुधिर की भाँति संध्या गल रही है और कृष्ण केशों वाले सिर की भाँति अन्धकार इधर-उधर घूर्णित हो रहा है । (समाधि अलङ्कार का उदाहरण)

दंतभवअं कवोले कअग्गहोवेल्लिओ अ धम्मिल्लो ।
पडिघुम्मिरा अ दिट्ठी पिआगमं साहइ बहूए ॥ (स० कं० ५, २२०)

कपोल पर दाँतों के चिह्नों का दिखाई देना, केशग्रहण करने से छितराया हुआ केशों का जूड़ा और इधर-उधर घूमने वाली दृष्टि—ये नायिका के प्रियतम के आगमन को सूचित करते हैं ।

दंसणवलिअं दढकं विबंधणं दीहरं सुपरिणाहम् ।
होइ घरे साहीणं मुसलं धरणाणं महिलाणम् ॥ (स० कं० ४, २३३)

धान कूटने वाला, दृढ़, बन्धन रहित, दीर्घ और अति स्थूल मूसल उत्तम महिलाओं के घर सदा रहता है (यहाँ मूसल शब्द में श्लेष है) ।

(भाविक अलङ्कार का उदाहरण)

दंसेमि तं पि ससिणं वसुहावइण्णं, थंभेमि तस्स वि रइस्स रहं णहद्धे ।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ, तं णत्थि भूमिवलए मह जं ण सज्झम् ॥
(स० कं० ५, ४०९; कर्पूर मं० १, २५)

मैं उस चन्द्रमा को पृथ्वी पर लाकर दिखा दूंगा, उस सूर्य के रथ को आकाश के बीच ठहरा दूंगा, तथा यक्ष, सुर और सिद्धांगनाओं को यहाँ ले आऊँगा । इस भूमंडल पर ऐसा कोई भी कार्य नहीं जिसे मैं सिद्ध न कर सकूँ (भैरवानंद की उक्ति)।

धणुओवप्पणवल्लरिविरइअकण्णावअंसदुप्पेच्छे ।
वाहगुरुआ णिसम्मइ वाहीएअ बहुमुहे दिट्ठी ॥ (स०कं० ५, १०८)

प्रियंगुलता से विरचित कर्ण-आभूषणों के कारण दुष्प्रेक्ष्य और शांत ऐसे वधू के मुख पर अश्रुपूर्ण दृष्टि आगे जाने से रुक जाती है ।

धरहरइ ऊरूजुअलं झिज्जइ वअणं ससज्झसं हिअअं।
बालाए पढमसुरए किं किं ण कुणंति अंगाइं॥

(शृंगार० २०, ९१)

उरुयुगल कंपित हो रहा है, मुख झीज रहा है, हृदय में भय उत्पन्न हो रहा है, प्रथम सुरत के प्रसंग में बाला के अंग क्या-क्या नहीं करते ?

धवलो सि जइ वि सुन्दर ! तहवि तए मज्झ रंजिअं हिअअं।
रायभरिए वि हियए सुहय ! निहित्तो न रत्तोसि॥

(काव्या० पृ० ३७७, ६०६; काव्यप्रकाश १०, ५६४; गा० स० ७, ६५)

हे सुंदर ! यद्यपि तू धवल (श्रेष्ठ) है, फिर भी तूने मेरा हृदय रंग दिया है। लेकिन हे सुभग ! अनुराग पूर्ण मेरे हृदय में रहते हुए भी तू रक्त नहीं होता।

(अतद्गुण अलङ्कार का उदाहरण)

धीराण रमइ घुसिणारुणम्मि न तहावि या थणुच्छंगे।
दिट्ठी रिउगयकुंभत्थलम्मि जह बहलसिंदूरे॥

(काव्या० पृ० ७५, ७२; ध्वन्या० २, पृ० १९९)

धीर पुरुषों की दृष्टि जितनी सिंदूर से पूर्ण शत्रुओं के हाथियों के गंडस्थल को देखने में रमती है, उतनी कुंकुम से रक्त अपनी प्रिया के स्तनों में नहीं।

(उपमाध्वनि का उदाहरण)

धीरेण माणभंगो माणक्खलणेण गरुअधीरारम्भो।
उल्ललइ तुलिज्जन्ते एक्कम्मि वि से थिरं न लग्गइ हिअअं॥

(स० कं० ५, ४९२)

धीरज से मान भंग हो जाता है और मान भंग होने से फिर महान् धीरज आरंभ होता है, इस प्रकार उस (मानिनी) का हृदय तराजू की भाँति ऊपर-नीचे जा रहा है, वह एक जगह स्थिर नहीं रहता।

(स्वभावोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

धीरेण समं जामा हिअएण समं अणिट्ठिआ उवएसा।
उच्छाहेण सह भुआ बाहेण समं गलन्ति से उल्लावा॥

(स० कं० ४, १३२; सेतुबंध ५, ७)

(राम के) धैर्य के साथ रात्रि के पहर, उसके हृदय के साथ अनिश्चित उपदेश, उत्साह के साथ भुजायें और अश्रुओं के साथ वचन विगलित होते हैं।

(सहोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

धीरं व जलसमूहं तिमिणिवहं विअ सपक्खपव्वअलोअम्।
णइसोत्तेव तरंगे रअणाइं व गुरुअगुणसआइं वहन्तम्॥

(स० कं० ४, १३३; सेतु० २, १४)

धैर्य की भाँति जलसमूह को, तिमिंगल मत्स्यों की भाँति पक्षसहित पर्वतलोक को, नदी के स्रोत की भाँति तरंगों को और रत्नों की भाँति सैकड़ों महान् गुणों को धारण करता हुआ (समुद्र दिखाई दे रहा है)। (सहोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

धीरं हरइ विसाओ विणअं जोव्वणमदो अणंगो लज्जं।
एक्कंतगहिअवक्खो किं सेसउ जं ठवेइ वअपरिणामो॥
(स० कं० ४, १७४; सेतु० ४, २३)

. विषाद धैर्य का, यौवनमद विनय का और कामदेव लज्जा का अपहरण करता है, फिर एकान्तपक्ष निर्णय बुद्धि वाले बुढ़ापे के पास बचता ही क्या है जिसे वह स्थापित करे ? (अर्थात् बुढापा सर्वहारी है)। (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

धुअमेहमहुअराओ घणसमआअड्ढिओणअविमुक्काओ।
णहपाअवसाहाओ णिअअट्ठाणं व पडिगआओ दिसाओ॥
(स० कं० ४, ४७; सेतु० बं० १, १९)

इधर-उधर उड़ने वाले मेघरूपी भौरों से युक्त (नायिका के पक्ष में बुद्धि नष्ट करने वाले मधु को हाथ में धारण किये हुए) वर्षाऋतु में घन आवरण के कारण आकृष्ट, अवनत और फिर त्यक्त (नायिका के पक्ष में अत्यंत मदपूर्वक नायक के द्वारा आकृष्ट, वशीकृत और उपभोग के पश्चात् त्यक्त) ऐसे आकाशरूपी वृक्षों की शाखारूपी दिशायें (नायिका के पक्ष में नखक्षत के प्रसाधन से युक्त) अपने-अपने स्थान पर चली गईं (नायिकाओं के पक्ष में अभिसरण के पश्चात् प्रातःकाल के समय)। (रूपक अलङ्कार का उदाहरण)

धूमाइ धूमकलुसे जलइ जलंता रुहन्तजीआबन्धे।
पडिरअपडिउण्णदिसे रसइ रसन्तसिहरे धणुम्मि णहअलं॥
(स० कं० २, २२७; सेतुबंध ५, १९)

राम के धनुष से उठे हुए धुएँ की कालिमा से आकाश धुएँ से भर गया, अग्निबाण को चढ़ाते समय प्रत्यंचा की ज्वाला से आकाश प्रज्वलित हो गया और कोटि की टंकार से प्रतिध्वनित होकर दिशाओं को गुंजित करने लगा।
(अनुप्रास का उदाहरण)

पअडिअसणेहसंभावविब्भमंतिअ जह तुमं दिट्ठो।
संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह च्चेव॥
(स० कं० ३, १२८; गा० स० २, ९९)

अपने स्नेह का सद्भाव प्रकट करके जैसे उसने तुम्हारी ओर दृष्टिपात किया, वैसे ही अपने प्रेम-संबंध को गोपन करने की दृष्टि से उसने अन्य जन को देखा।

पअपीडिअमहिसासुरदेहेहिं, भुअणभअलुआव(?)ससिलेहिं।
सुरसुहदेत्तवलिअधवलच्छिहिं, जअइ सहासं वअणु महलच्छीए॥
(स० कं० २, ३८८)

अपने चरणों द्वारा जिसने महिषासुर को मर्दन कर रक्खा है, चन्द्रमा की किरणों से जिसने संसार में भय उत्पन्न किया है, तथा देवताओं को सुखकर गोलाकार धवल नेत्रों वाला ऐसा महालक्ष्मी का हास्ययुक्त मुख विजयी हो।
(आक्षिप्तिका का उदाहरण)

पइपुरओ च्चिअ णिज्जइ विंछुअदट्ठेत्ति जारवेज्जघरं।
सहिआसएण करधरिअजुअलअंदोलिरी मुद्धा ॥

(शृंगार० ४०, १९५)

बिच्छू से काटी हुई, भुजाओं को हाथ से पकड़े हुए, कंपनशीला मुग्धा नायिका अपनी सखी के सहारे पति के सामने ही जार-वैद्य के घर ले जाई जा रही है !

पउरजुआणो गामो महुमासो जोव्वणं पई ठेरो।
जुण्णसुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥

(स० कं० ४, १५४; गा० स० २, ९७)

इस गाँव में बहुत से जवान पुरुष हैं, वसन्त की बहार है, जवानी अपनी छटा दिखा रही है, पति खूसट है, पुरानी सुरा पास में है, फिर भला ऐसी हालत में कोई कुलटा न बने तो क्या प्राण त्याद दे ?

(आक्षेप, तुल्ययोगिता अलङ्कार का उदाहरण)

पच्चूसागअ ! रंजियदेह ! पिआलोअ ! लोअणाणन्द !
अण्णत्त खविअसव्वरि ! णहभूसण ! दिणवइ ! णमो दे ॥

(स० कं० ५, ३९८; गा० स० ७, ५३)

प्रत्यूषकाल में दूसरे द्वीप से (दूसरे पक्ष में सौत के घर से) आगत, अरुण देह से युक्त (दूसरे पक्ष में सौत के अलक्त आदि से रंजित), प्रिय आलोक वाले, लोचनों को आनन्ददायी, अन्यत्र रात्रि बिताने वाले (अन्य स्त्रियों के साथ रात बिताने वाले) और आकाश के भूषण (नखक्षत आदि आभूषण से युक्त) हे सूर्य ! तुझे नमस्कार हो। (खंडिता नायिका का उदाहरण)

पज्जत्तंमि वि सुरए विअलिअबंधं अ संजमंतीए।
विब्भमहसिएहिं कओ पुणो वि मअणाउरो दइओ ॥

(शृंगार० ५४, ६)

सुरत के समाप्त होने पर, अपने खुले हुए नाड़े के बंधन को ठीक करती हुई नायिका ने अपने विलासपूर्ण हास्य द्वारा अपने दयिता को पुनः काम से व्याकुल कर दिया।

पट्टंसुउत्तरिज्जेण पामरो पामरीए परिपुसइ।
अइगुरुअकूरकुम्भीभरेण सेउल्लिअं वअणम् ॥ **(स० कं १, ७०)**

बहुत भारी चावलों की कलसी के भार के कारण पसीने से गीले हुए पामरी के मुँह को पामर उसके रेशमी उत्तरीय से पोंछ रहा है।

(औचित्यविरुद्ध का उदाहरण)

पडिआ अ हत्थसिढिलिअणिरोहपण्डुरसमूससन्तकवोला।
पेल्लिअवामपओहरविसमुण्णअदाहिणत्थणी जणअसुआ ॥

(स० कं० ४, १७२; सेतु० ११, ५४)

हाथ के शिथिल होकर खिसक जाने से जिसके पांडुर कपोल (हस्तपीडन के त्याग के कारण) उच्छ्वास ले रहे हैं, तथा वाम पयोधर के पीड़ित होने से

जिसका दक्षिण पयोधर विषम और उन्नत हो गया है ऐसी सीता (केवल मूर्च्छित ही नहीं हुई बल्कि) गिर भी पड़ी। (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

पडिउच्छिआ ण जंपइ गहिआ वि प्फुरइ चुम्बिआ रुसइ।
तुण्हिक्का णववहुआ कआवराहेण दइएण॥

(स० कं० ५, १७९)

अपराधी पति द्वारा प्रश्न किये जाने पर चुपचाप रहने वाली नववधू बोलती नहीं, पकड़ लेने पर चंचल होती है और चुम्बन लेने पर नाराज हो जाती है।

पडिवक्खमण्णुपुंजे लावण्णउडे अणंगगअकुम्भे।
पुरिससअहिअअधरिए कीस थणंती थणे वहसि॥

(स० कं० ५, ३७८; गा० स० ३, ६०)

सपत्नियों के क्रोध के पुंजस्वरूप, सौन्दर्य के आवास, अनंगरूपी हस्ती के गंडस्थल, सैकड़ों पुरुषों द्वारा हृदय में धारण किये जाते हुए तथा सौन्दर्य की गर्जना करने वाले ऐसे इन स्तनों को तू किसके लिए धारण करती है?

(मध्यमा नायिका का उदाहरण)

पढमघरिणीअ समअं उअ पिंडारे दरं कुणन्तम्मि।
णववहुआइ सरोसं सव्व च्चिअ वच्छला मुक्का॥

(स० कं० ५, १८५)

देखो, प्रथम गृहिणी से ग्वाले (पिंडार) के डर जाने पर, उसकी नववधू ने रोष में आकर सभी बछड़ों को मुक्त कर दिया। (स्त्री के मान का उदाहरण)

पणअं पढमपिआए रक्खिउकामो वि महुरमहुरेहिं।
छेअवरो विणडिज्जइ अहिणववहुआविलासेहिं॥(स०कं० ५, ३८६)

मधुर-मधुर रूपों से प्रथम प्रिया के प्रणय की रक्षा करने का अभिलाषी विदग्ध पुरुष नववधू के अभिनव विलासों के द्वारा सुख को प्राप्त होता है।

(ज्येष्ठा नायिका का उदाहरण)

पणमत पणअपकुप्पिअगोलीचलणग्गलग्गपडिबिंबम्।
दससु णहदप्पणेसु एआदसतणुधलं लुद्दं॥ (स० कं० २, ४)

प्रणय से कुपित पार्वती के चरणों के अग्रभाग में जिसका प्रतिबिंब दिखाई दे रहा है, ऐसे दस नखरूपी दर्पणों में ग्यारह शरीर के धारी शिव भगवान् को प्रणाम करो। (शुद्ध पैशाची का उदाहरण)

पणयकुवियाण दुण्ह वि अलियपसुत्ताण माणइल्लाणं।
निच्चलनिरुद्धणीसासदिण्णकण्णाण को मल्लो॥

(काव्या० पृ० ११२, १०५; गा० स० १, २७; दशरूपक पृ० ४; पृ० २६३; साहित्य पृ० १९५)

प्रणय से कुपित, झूठ-मूठ सोए हुए, मानी, बिना हिले-डुले जिन्होंने अपनी सांस रोक रक्खी है और अपने कान एक दूसरे की सांस सुनने के लिये खड़े कर रक्खे हैं, ऐसे प्रिय और प्रिया दोनों में देखें कौन मल्ल है?

पत्तनिअंबप्फंसा ण्हाणुत्तिण्णाए सामलंगीए।
त्रिहुरा रुअंति जलबिन्दुएहिं बंधस्स व भएण॥
(काव्या० पृ० २१२, २४३; गा० स० ६, ५५)

स्नान करके आई हुई किसी श्यामलाङ्गी के नितंबों को स्पर्श करने वाले केशों में से जो जल की बूंदें चू रही हैं, उनसे लगता है कि केश मानों फिर से बाँधे जाने के भय से रुदन कर रहे हैं। (उत्प्रेक्षा अलङ्कार का उदाहरण)

पत्ता अ सीकराहअधाउसिलाजलणिसण्णराइअजलअं।
सज्झं ओज्झरपहसिददरिमुहणिम्महिअवउलमइरामोअं॥
(स० कं० २, १९१; सेतुबंध १, ५६)

जिसके जल-बिन्दुओं से आहत धातुशिला-तल पर आसीन मेघों से शोभायमान तथा जिसके निर्झर रूप में हंसती हुई कन्दराओं से बकुल पुष्प की गंध के रूप में मदिरा का आमोद फैल रहा है, ऐसे सह्य पर्वत पर (वीर, वानर) पहुंच गये। (ओजस्विनी नायिका का उदाहरण)

पप्फुरिअउट्ठदलअं तक्खणविगलिअरुहिरमहुविच्छड्डम्।
उक्खडिअकण्ठणालं पडिअं फुडदसणकेसरं मुहकमलम्॥
(स० कं० ४, ३७)

हिलते हुए ओष्ठरूपी दल, तत्क्षण गिरते हुए रुधिर रूपी मधुप्रवाह, खंडित कंठ रूपी कमलनाल, और स्फुट दाँत रूपी केसर से युक्त मुखरूपी कमल नीचे लुढ़क गया। (रूपक का उदाहरण)

परिवट्टंतिव णिसंस (म)इ मण्डलिअकुसुमाउहं अणंगम्।
विरहम्मि मण्णइ हरीणहे(?) अणत्थपडिउट्ठिअं व मिअंकम्॥
(स० कं० ५, १४५)

अपने कुसुमायुध को बटोरकर कामदेव मानो निश्शंक होकर लौट रहा है; विरह-काल में मनोहर लगने वाले नखक्षत, व्यर्थ ही उठे हुए चन्द्रमा की भाँति जान पड़ रहे हैं।

परिवड्ढइ विन्नाणं संभाविज्जइ जसो विढप्पन्ति गुणा।
सुव्वइ सुपुरिसचरिअं किन्तं जेण न हरन्ति कहालावा॥
(काव्या० पृ० ४५६, ६१३; सेतुबंध १, १०)

उससे विज्ञान की वृद्धि होती है, यश संभावित होता है, गुणों का अर्जन होता है, सुपुरुषों का चरित सुना जाता है, इस प्रकार काव्यकथा की वह कौनसी बात है जो मन को आकृष्ट न करती हो।

परं जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चन्दणरसो।
खदक्खारो हारो मलअपवणा देहतवणा॥
मुणाली बाणाली जलदि अ जलद्दा तणुलदा।
वरिट्ठा जं दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा॥
(स० कं० २, २२३; कर्पूरमं० २, ११)

जब से उस कमलनयनी सुन्दरी सुवदना को देखा है तब से ज्योत्स्ना उष्ण मालूम देने लगी है, चन्दन का रस विष के समान लगने लगा है, हार क्षारयुक्त मालूम देता है, मलय का पवन शरीर को संतप्त करने लगा है, मृणाल बाणों के समान मालूम देता है और जल से आर्द्र शरीर तपने लगा है।

(पदानुप्रास का उदाहरण)

पलिच्चले लम्बदशाकलाअं पावालअं शुत्तशदेण छुत्तं।
मंशं च खादुं तुह ओट्ठिकाहिं चकुश्चुकुश्चुक्कुचुकुश्चुकुं ति॥

(स० कं० ५, ४०६; मृच्छकटिक ८, २१)

अरे! सैकड़ों धागों से बनी लंबी किनारी वाली चादर को स्वीकार कर चुक-चुक करती हुई अपने ओठों से यदि मांस खाने की इच्छा है तो ··· ·······
(मागधी की उक्ति)

पल्लविअं विअ करपल्लवेहिं पप्फुल्लिअं विअ णअणेहिं।
फलिअं वि अ पीणपओहरेहिं अज्जाए लावण्णं॥(स०कं० ४, ९०)

आर्या का लावण्य हस्तरूपी पल्लवों से पल्लवित, नयनों से प्रफुल्लित और पीन पयोधरों से फलित जान पड़ता है। (समाधि अलङ्कार का उदाहरण)

पवणुवेल्लिअसाहुलि ठएसु ठिअदण्डमण्डले ऊरू।
चडुआरअं पइं मा हु पुत्ति! जणहासणं कुणसु॥ (स०कं० ५, २१९)

वायु के द्वारा चंचल वस्त्र के आँचल में दंडमंडल की भाँति दिखाई देने वाले जो तुम्हारे (कम्पमान) उरु हैं उन्हें तू निश्चल कर। हे पुत्रि! नहीं तो तुम्हारा चाटुकारी पति उपहास का भाजन होगा। (मान के पश्चात् अनुराग का उदाहरण)

पविसन्ती घरवारं विवलिअवअणा विलोइऊण पहम्।
खंधे घेत्तूण घडं हाहा णट्ठो त्ति रुअसि सहि! किं ति॥

(काव्य० प्र० ४, ९०)

हे सखि! कंधे पर घड़ा रक्खे घर के द्वार में प्रवेश करती हुई रास्ते की ओर देख कर तूने उधर ही आँखें जमा लीं, और जब घड़ा फूट गया तो फिर हा-हा करके रोती है? (हेतु अलङ्कार का उदाहरण)

पहवन्ति च्चिअ पुरिसा महिलाणं किं खु सुहअ! विहिओसि।
अणुराअणोल्लिआए को दोसो आहिजाईए॥

(स० कं० ५, १०९)

पुरुष ही सामर्थ्यवान् होते हैं, हे सुभग! तुम तो जानते हो, महिलाओं के संबंध में क्या कहा जाये? अनुराग से प्रेरित कुलीन महिलाओं का इसमें क्या दोष?

पाअपडणाणं मुद्धे! रहसबलामोडिचुंबिअव्वाणम्।
दंसणमेत्तपसिज्जिरि चुक्का बहुआण सोक्खाणं॥

(स० कं० ५, २६०; गा० स० ५, ६५)

अपने प्रियतम के दर्शन मात्र से प्रसन्न हुई हे मुग्धे! तू (मनुहार के कारण) पांव पड़ने तथा जबर्दस्ती चुम्बन लेने आदि अनेक सुखों से वंचित ही रह गई।

पाअडिअं सोहग्गं तंबाएउ अह गोट्ठमज्झम्मि ।
दुट्ठविसहस्स सिंगे अच्छिउडं कण्डुअन्तीए ॥
(स० कं ५, १२; गा० स० ५, ६०)

देखो, गोठ में ताम्रवर्ण की गाय दुष्ट बैल के सींग में अपनी आँख को खुजलाती हुई अपना सौभाग्य प्रकट कर रही है ।

पाणउडी अवि जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।
ण हु ते परिहरिअव्वा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥
(स० कं० ३, ८५; गा० स० ३ २७)

मधुपान की कुटिया को जलाकर अग्नि यज्ञवाटिका को भी भस्म कर देती है । विषमदशा में स्थित पुरुषों को त्याग देना ठीक नहीं ।

(निदर्शना अलंकार का उदाहरण)

पाअपडिअं अहव्वे किं दाणिं ण उट्ठवेसि भत्तारं ।
एवं विअ अवसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥
(श्रृंगार० ४६, २२८; गा० स० ४, ९०)

हे अभव्ये ! क्या तू अब चरणों में गिरे हुए अपने पति को नहीं उठायेगी ? क्या दूरगत प्रेम का यही अन्त है ?

पाणिग्गहणे च्चिअ पव्वईअ णाअं सहीहिं सोहग्गम् ।
पसुवइणा वासुइकंकणम्मि ओसारिए दूरम् ॥
(स० कं० ५, १८८; गा० स० १, ६९)

पशुपति ने अपने वासुकिरूप कंकण को दूर हटा दिया, यह देखकर पाणिग्रहण के समय ही पार्वती की सखियों को उसके सौभाग्य का पता लग गया ।

पिअंदसणेण सुहरसमुउलिअ जइ से ण होन्ति णअणाइं ।
ता केण कण्णरइअं लक्खिज्जइ कुवलअं तिस्सा ॥
(स० कं० ३, १२७; गा० स० ४, २३)

यदि उसके नयन प्रियदर्शन के सुखरस से मुकुलित न हों तो उसके कानों में सजे हुए कमलों की ओर किसका ध्यान पहुँचेगा (इससे नयनों का सौन्दर्य सूचित किया गया है) ? (तद्गुण, मीलित और विवेक अलङ्कार का उदाहरण)

पिअलंभेण पओसो जाआ दिण्णप्फला रइसुहेण णिसा ।
आणिअविरहुक्कंठो गलइ अ णिव्विण्णवम्महो पच्चूसो ॥
(श्रृङ्गार० २१, ९४)

प्रिय को पाकर प्रदोष हो गया, रात्रि में रतिसुख का फल प्राप्त हुआ और अब विरह की उत्कंठा लाने वाला खेदखिन्न कामदेव से युक्त प्रभात काल बीत रहा है ।

पिअसम्भरणपल्लोट्टंतवाहधाराणिवाअभीआए ।
दिज्जइ वंकग्गीवाइ दीवओ पहिअजाआए ॥
(स० कं० ५, २०४; गा० स० ३, २२)

प्रिय के स्मरण से बहती हुई अश्रुधारा के गिरने के भय से पथिक की पत्नी ने गर्दन टेढ़ी करके उसे दीपक प्रदान किया (जिससे उसके अश्रु नेत्रों मे ही रह जायें, बाहर न आयें)।

पिसुणेन्ति कामिणीणं जलल्लुक्कपिआवऊहणसुहेल्लिं ।
कण्डइअकवोलुफुल्लणिच्चलच्छीइं वअणाइं ॥
(स० कं० ५, ३१८; गा० स० ६, ५८)

(प्रिय के अंगस्पर्श से) पुलकित कपोल तथा विकसित और निश्चल आँखों वाली कामिनियों के मुख जल में छिपे हुए प्रिय के आलिंगन-सुख की क्रीड़ा को सूचित कर रहे है (जलक्रीड़ा का वर्णन)।

पीणथणएसु केसरदोहलदाणुम्मुहीअ णिवलन्तो ।
तुंगसिहरग्गपडणस्स जं फलं तं तुए पत्तं ॥ (स० कं० ५, ३०७)

हे बकुल के पुष्प ! किसी युवती के मदिरा के कुल्ले से विकसित होकर उसके पीन स्तनों पर गिर कर तूने पहाड़ के किसी ऊँचे शिखर से गिरने के पुण्य को प्राप्त किया है ।

पीणपओहरलग्गं दिसाणं पवसन्तजलअसमअविइण्णम् ।
सोहग्गपढमइण्हं पम्माअइ सरसणहवअं इन्दधणुं ॥
(स० कं० ४, ४८; सेतुबंध १, २४)

प्रवास को जाते समय जलदरूपी (जड़ता प्रदान करने वाले) नायक ने दिशाओं के मेघरूपी पीन पयोधरों में इन्द्रधनुष के रूप में प्रथम सौभाग्य-चिह्न स्वरूप जो सुंदर नखक्षत (इन्द्रधनुष के पक्ष मे सरस आकाश-मंडल में स्थानयुक्त) वितीर्ण (इन्द्रधनुष के पक्ष में जाते हुए वर्षाकाल के द्वारा वितीर्ण) किये थे वे अब अधिक मलिन हो रहे हैं । (रूपक का उदाहरण)

पीणुत्तणदुग्गेज्झं जस्स भुआअन्तणिट्ठुरपरिग्गहिअं ।
रिट्ठस्स विसमवलिअं कंठं दुक्खेण जीविअं वोलीणं ॥
(स० कं० ३, ४८; सेतु० बं० १, ३)

(मधुमथन की) भुजाओं से निष्ठुरता से पकड़ा गया और अपनी मोटाई के कारण कठिनता से पकड़े जाने योग्य ऐसा अरिष्टासुर का कंठ टेढ़ा करके मरोड़े जाने से क्लेश के साथ प्राणविहीन हो गया । (व्याहत का उदाहरण)

पुरिससरिसं तुह इमं रक्खससरिसं कअं णिसाअरवइणा ।
कह ता चिन्तिज्जंतं महिलासरिसं ण संपडइ मे मरणं ॥
(स० कं० ५, ४४३; सेतु० ११, १०५)

तुम्हारा यह (निधन) पुरुषों के सदृश है और रावण ने राक्षसों के समान ही काम किया है, किंतु चिन्तामात्र से सुलभ महिलाओं के समान मेरा मरण क्यों सिद्ध नहीं हो रहा है (यह सीता की उक्ति है) ?

पुलअं जणेंति दहकन्धरस्स राहवसरा सरीरम्मि ।
जणअसुआफंसमहग्घविअ करअलाअट्ठिअविमुक्का ॥
(स० कं० ५, १३)

जनकसुता के स्पर्श से मानो बहुमूल्य बने, और हाथ से खींच कर छोड़े हुए रामचन्द्र के बाण रावण के शरीर में रोमांच पैदा कर रहे हैं।

पुहवीअ होहिइ पई बहुपुरिसविसेसचञ्चला राअसिरी।
कह ता महच्चिअ इमं णीसामण्णं उवट्ठिअं वेहव्वम्॥

(स० कं० ५, २६९; सेतु० ११, ७८)

पृथ्वी का अन्य कोई पति होगा और राज्यश्री अनेक असाधारण पुरुषों के विषय में चंचल रहती है, इस प्रकार असाधारण वैधव्य मेरे ही हिस्से में पड़ा है (यह सीता की विलापोक्ति है)।

पेच्छइ अलद्धलक्खं दीहं णीससइ सुण्णअं हसइ।
जह जंपइ अफुडत्थं तह से हिअअट्ठिअं किं वि॥

(स० कं० २००; गा० स० ३, ९६)

वह निरुद्देश्य दृष्टि से देख रही है, दीर्घश्वास ले रही है, शून्य मुद्रा से हँस रही है और असंबद्ध प्रलाप कर रही है; उसके मन में कुछ और ही है।

पोढमहिलाण जं सुट्ठं सिक्खिअं तं रए सुहावेइ।
जं जं असिक्खिअं नववहूण तं तं रइं देइ॥

(स० कं० ३, ५६; ५, २२३; काव्या० पृ० २९५, ६५५)

रतिक्रीड़ा के समय प्रौढ़ महिलाओं ने जो कुछ सीखा है वह सुख देता है, और नवोढ़ाओं ने जो नहीं सीखा वह सुखदायी है। (उत्तर अलङ्कार का उदाहरण)

पंथिय ! न एत्थ सत्थरमत्थि मणं पत्थरत्थले गामे।
उन्नयपओहरं पेक्खिऊण जइ वससि ता वससु॥

(धन्या० २, १५५; काव्यप्रकाश ४, ५८; साहित्य० पृ० २३७)

हे पथिक ! इस पथरीले गाँव में सोने के लिये तुम्हें कहीं विस्तर नहीं मिलेगा, हाँ यदि उन्नत पयोधर (स्तन; मेघ) देखकर ठहरना चाहो तो ठहर जाओ।

(शब्दशक्ति मूलव्यञ्जना का उदाहरण)

पंथिअ ! पिपासिओ विअ लच्छीअसि जासि ता किमण्णत्तो।
ण मणं वि वारओ इध अत्थि घरे घणरसं पिअन्ताणं॥

(साहित्य० पृ० १५४)

हे पथिक ! तू प्यासा जैसा मालूम होता है, अन्यत्र कहाँ जा रहा है ? यहाँ घर में जी भर कर रस पीने वालों को कोई बिलकुल भी रोकने वाला नहीं है।

फुल्लुक्करं कलमकूरसमं वहन्ति, जे सिंदुवारविडवा मह वल्लहा ते।
जे गालिदस्स महिसीदहिणो सरिच्छा ते किंपि मुद्धवियइल्लपसूणपुञ्जा॥

(काव्या० पृ० २२७, २८८; काव्यप्र० ७, ३०९; कर्पूरमञ्जरी १ श्लो० १९)

वे सिंधुवार के वृक्ष मुझे कितने प्रिय लगते हैं जो कलम धान के समान पुष्पों से भरे हुए हैं, और वे मल्लिका के पुष्पपुंज भी कितने प्यारे लगते हैं जो जमाये हुये भैंस के दही के समान जान पड़ते हैं। (ग्राम्यत्व गुण का उदाहरण)

बहलतमा हयराई अज्ज पउत्थो पई घरं सुन्नं।
तह जग्गिज्ज सयज्झय ! न जहा अम्हे मुसिज्जामो ॥

(काव्या० पृ० ५३, १५; गा० स० ४, ३५)

अभागी रात घोर अंधकारमय है, पति आज परदेश गया है, घर सूना पड़ा है। हे पड़ोसिन ! तू जागते रहना जिससे घर में चोरी न हो जाये ! (नायिका के पड़ोस में रहने वाले उपपति के प्रति यह उक्ति है ।)

बहुवल्लहस्स जा होइ वल्लहा कह वि पञ्चदिअहाइं।
सा किं छट्ठं मग्गइ कत्तो मिट्ठं च बहुअं च ॥

(स० कं० ५, ४४६; गा० स० १,७२)

जो अनेक स्त्रियों का प्रिय है उसका प्रेम किसी वल्लभा पर अधिक से अधिक पाँच दिन तक हो सकता है। क्या वह वल्लभा उससे छठे दिन का (प्रेम) मांग सकती है ? ठीक है, मीठी चीज बहुत नहीं मिलती। (समुच्चय अलङ्कार का उदाहरण)

बालअ ! णाहं दूती तुअ पिओसि त्ति ण मह वावारो।
सा मरइ तुज्झ अअसो एअं धम्मक्खरं भणिमो ॥

(साहित्य० पृ० ७९०; अलंकारसर्वस्व ११५)

हे नादान ! मैं दूती नहीं हूँ। तुम उसके प्रिय हो, इसलिये भी मेरा उद्यम नहीं है। मैं केवल यही धर्माक्षर कहने आई हूँ कि वह मर जायेगी और तुम अपयश के भागी होगे।

बालत्तणदुल्ललिआए अज्ज अणज्जं किं अ णववहूए।
भाआमि घरे एआइणि त्ति णिंतो पई रुद्धो ॥ (स० कं० ५, ३८४)

बालत्व के कारण दुर्ललित नववधू ने आज अनार्योचित कार्य किया। उसने यह कह कर जाते हुए पति को रोक दिया कि मुझ अकेली को घर में डर लगता है। (परिणीत ऊढ़ा का उदाहरण)

भद्दं भोदु सरस्सईअ कइणो नन्दन्तु वासाइणो।
अण्णाणंपि परं पअट्टदु वरा वाणी छइल्लप्पिया ॥
वच्छोभी तह माअही फुरदु णो सा किं अ पंचालिआ।
रीदियो विलहन्तु कव्वकुसला जोण्हं चओरा विव ॥

(स० कं० २, ३८५; कर्पूर० १-१)

सरस्वती का कल्याण हो, व्यास आदि कवि आनंदित हों, कुशल जनों के लिये श्रेष्ठ वाणी दूसरों के लिये भी प्रवृत्त हो, वैदर्भी और मागधी हम में स्फुरायमान हो, तथा जैसे चकोर ज्योत्स्ना को चाहता है वैसे ही काव्यकुशल लोग पांचालिका रीति का प्रयोग करें।

भम धम्मिय ! वीसत्थो सो सुणओ अज्ज मारिओ तेणं।
गोलाणइकच्छकुडंगवासिना दरियसीहेण ॥

(काव्या० पृ० ४७, १३; साहित्य पृ० २४२; ध्वन्या० उ० १ पृ० १९; काव्यप्रकाश ५, १३८; रस गं० १ पृ० १५; गा० स० २, ७५; दशरूपक प्र० ४ पृ० २२८)

हे धार्मिक ! गोदावरी नदी के किनारे निकुंज में रहने वाले विकराल सिंह ने उस कुत्ते को मार डाला है, इसलिये अब तू निश्चिन्त होकर भ्रमण कर !

(व्यंजना का उदाहरण)

भरिमो स सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराए।
केअचसुत्तुव्वत्तणथणहरपेल्लणसुहेल्लिम् ॥

(स० कं० ५, २३८; गा० स० ४. ६८)

(मान के कारण) वह बिस्तर पर मुँह फिरा कर लेट गई (तत्पश्चात् अनुराग की उत्कंठा से) उसका मन शान्त होने लगा। ऐसे समय बहाना बना कर सोये हुए मुझे उसने एकाएक करवट लेकर अपने स्तनकलश के मर्दन से जो सुख दिया वह आज तक स्मरण है। (विचित्र क्षेपक अलङ्कार का उदाहरण)

भिउडीअ पुलोइस्सं णिब्भच्छिस्सं परम्मुही होस्सम्।
जं भणह तं करिस्सं सहिओ जइ तं ण पेच्छिस्सम् ॥

(स० कं० ५, २३९)

मै भौं चढ़ा कर देखूँगी, उसकी भर्त्सना करूंगी, उससे मुह फिरा लूँगी, हे सखियो ! जो कहोगी वह करूँगी बशर्ते कि उसे न देखूँ।

भिसणीअलसअणीए निहिअं सव्वं सुणिच्चलं अंगं।
दीहो णीसासहरो एसो साहेइ जोअइत्ति परं ॥

(साहित्य०, पृ० १९०)

कमल दल की शय्या पर उस विरहिणी का निश्चल अङ्ग रख दिया गया है, उसका दीर्घ निश्वास बता रहा है कि वह अभी जीवित है।

मअवहणिमित्तणिग्गअमइंदसुण्णं गुहं णिएऊग ।
लद्धावसरो गहिऊण मोत्तिआइं गओ वाहो ॥ (स० कं० २, ३८९)

मृग को मारने के लिये गये हुए मृगेन्द्र से शून्य गुफा को देख, अवसर पाकर मोतियों को लेता हुआ शिकारी वहाँ से चला गया।

मग्गिअलद्धम्मि बलामोडिअचुंबिए अप्पणा अ उवणमिए।
एक्कम्मि पिआहरए अण्णोण्णा होन्ति रसभेआ ॥

(अलङ्कार० ६७)

इच्छा करने से प्राप्त, बलपूर्वक चुम्बित तथा स्वयं झुके हुए ऐसे प्रिया के एक ही अधरोष्ठ में अनेक रसभेद होते हैं।

मज्झट्ठिअधरणिहरं झिज्जइ अ समुद्दमण्डलं उव्वेलं।
रइरहवेअविअलिअं पडिअं विअ उक्खडक्खकोडिं चक्कं ॥

(स० कं० ४, १७५)

मध्य में मन्दर पर्वत होने के कारण जिसका जल बाहर निकलने लगा है तथा सूर्य के वेग से उद्भड अक्षकोटि वाला चक्र मानों गिर पड़ा है, ऐसा समुद्रमंडल क्षय को प्राप्त होता है। (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

मज्झण्णपत्थिअस्स वि गिम्हे पहिअस्स हरइ सन्तावम्।
हिअअट्ठिअजाआमुहमिअंकजोण्हाजलप्पवहो ॥

हृदय में स्थित प्रिया के मुख रूपी ज्योत्स्ना का जलप्रवाह ग्रीष्म के मध्याह्न-काल में प्रस्थान करने वाले पथिक के संताप को दूर करता है।

मज्झ पइण्णा एसा भणामि हिअएण जं महसिब्दट्ठुम् ।
तं ते दावेमि फुडं गुरुणो मन्तप्पहावेण ॥
(दशरूपक प्र० १, ५१; रत्नावलि ४, ९)

मेरी यह प्रतिज्ञा है, मैं हृदय से कहता हूँ, जो कुछ आप देखना चाहें, गुरु के मंत्र के प्रभाव से मैं आपको दिखा सकता हू। (कालभैरव की उक्ति)

मसिणवसणाण कअवेणिआण आपंडुगंडवासाणं ।
पुप्फवइआण कामो अंगेसु कआउहो वसइ ॥
(शृंगार० २७, १३०)

मलिन वस्त्रवाली, वेणीवाली और पाण्डु कपोलवाली ऐसी रजस्वला स्त्रियों में कामदेव आयुध के साथ सज्जित रहता है।

मह देसु रसं धम्मे तमवसमासं गमागमाहरणे ।
हरबहु ! सरणं तं चित्तमोहमवसरउ मे सहसा ॥
(काव्य० प्र० ९, ३७२; साहित्य १०)

हे गौरि ! तुम्हीं एक मात्र शरण हो, धर्म में मेरी प्रीति उत्पन्न करो, मेरे गमनागमन (जन्म-मरण) की तामसी प्रवृत्ति का नाश करो, और मेरे चित्त के मोह को शीघ्र ही दूर करो। (भाषाश्लेष का उदाहरण)

महमहइन्ति भणिन्तउ वज्जइ कालो जणस्स तेइ ।
ण देओ जणद्दणो गोअरो होदि मणसो महुमहणो ॥
(ध्वन्या० उ० ४ पृ०, ६४८)

'मेरा'-'मेरा' कहते-कहते मनुष्य का सारा जीवन बीत जाता है, लेकिन हृदय में मधुमथन जनार्दन का साक्षात्कार नहीं होता।

महिलासहस्सभरिए तुह हिअए सुहय ! सा अमायन्ती ।
अणुदिणमणण्णकम्मा अंगं तणुअं पि तणुएइ ॥
(ध्वन्या० उ० २, पृ० १८६; काव्या० पृ० १५५, १७७; अलंकारसर्वस्व ६०; साहित्य० पृ० २५६; गा० स० श० २, ८२)

हे सुभग ! हजारों सुन्दरियों से पूर्ण तुम्हारे इस हृदय में न समा सकने के कारण वह अनन्यकर्मा प्रतिदिन अपनी दुर्बल देह को और भी क्षीण बना रही है। (आर्थ शक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

महु(?) एहि किं णिवालअ हरसि णिअंबाउ जइ वि मे सिचयम् ।
साहेमि कस्स सुन्दर ! दूरे गामो अहं एक्का ॥
(काव्या० पृ० ५४, १७; दशरूपक २ पृ० ११८)

हे निगोड़ी वायु ! तुम बार-बार आकर नितंब से मेरे अञ्चल को हटा देती हो, फिर भी हे सुंदर ! मैं किसे प्रसन्न करूँ, गाँव दूर है और मैं अकेली हूँ।

माए ! घरोवअरणं अज्ज हु णत्थि त्ति साहिअं तुमए ।
ता भण किं करणिज्जं एमेअ ण वासरो ठाइ ॥
(काव्य० प्र० २, ६)

हे माँ ! तुम्हीं ने तो कहा था आज घर में सामान नहीं है, इसलिये बता कि मैं क्या करूँ ? दिन ढलता जा रहा है (यहाँ नायिका के स्वैरविहार की इच्छा सूचित होती है)। (वाच्यरूप अर्थ की व्यंजना का उदाहरण)

माणदुमपरुसपवणस्स मामि ! सव्वंगणिव्वुदिअरस्स ।
उवऊहणस्स भद्दं रइणाडअपुव्वरंगस्स ॥

(स० कं० ५ २१५; गा० स० ४,४४)

हे मामी ! मानरूपी वृक्ष के लिये कठोर पवन, समस्त अङ्ग को सुखकारक और रतिरूपी नाटक के पूर्वरङ्ग ऐसे आलिङ्गन का कल्याण हो। (रूपक का उदाहरण)

मा पंथ रुंध महं अवेहि बालय ! अहो सि अहिरीओ ।
अम्हे अणिरिक्काओ सुण्णहरं रक्खियव्वं णो ॥

(काव्य० पृ० ८४, ८२; ध्वन्या० ३, पृ० ३२२)

हे नादान ! मेरा रास्ता मत रोक, दूर हट, तू कितना निर्लज्ज मालूम देता है ! मैं पराधीन हूँ और अपने शून्य गृह की मुझे रक्षा करनी है।

मामि ! हिअअं व पीअं तेण जुआणेण मज्जमाणाए ।
ण्हाणहलिद्दाकडुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण ॥

(स० कं० ५, २५७; गा० स० ३, ४६)

हे मामी ! मेरे स्नान करते समय प्रवाह में बहने वाले मेरे स्नान की हल्दी से कडुए जल का पान करने वाले उस युवक ने मानो मेरे हृदय का ही पान कर लिया। (तद्गुण अलंकार का उदाहरण)

मुण्डइआचुण्णकसाअसाहिअं पाणणावणविइण्णम् ।
तेल्लं पलिअत्थणीणं वि कुणेइ पीणुण्णए थणए ॥

(स० कं० ३, १६२)

गोरखमुंडी के चूर्ण के काढ़े के द्वारा तैयार किया हुआ और जल के नस्य से युक्त तेल लघु स्तनवाली नायिकाओं के स्तनों को भी पीन और उन्नत बना देता है। (काम्य का उदाहरण)

मुण्डसिरे बोरफलं बोरोवरि बोरअं थिरं धरसि ।
विग्गुच्छाअइ अप्पा णालिअछेआ छलिज्जन्ति ॥

(अलंकार० पृ० ८३)

जैसे मुंडित सिर पर बेर रख कर उस बेर के ऊपर दूसरा बेर रखना संभव नहीं, उसी प्रकार अपने आपको छिपाये हुए धूर्त पुरुषों को छलना संभव नहीं।

मुद्धे ! गहणअं गेण्हउ तं धरि मुद्दं णिए हत्थे ।
णिच्छउ सुन्दरि ! तुह उवरि मम सुरअप्पहा अत्थि ॥

(स० कं २, १२)

हे मुग्धे ! अपनी फीस ले ले, तू इस मुद्रा को अपने हाथ में रख। हे सुन्दरि ! निश्चय ही तुमसे सुरत-व्यवहार करना चाहता हूँ। (अपभ्रष्टा नायिका का उदाहरण)

मुहपेच्छओ पई से सा वि हु पिअरूअदंसणुम्मइआ ।
दो वि कअत्था पुहविं अपुरिसमहिलं ति मण्णन्ति ॥

(स० कं० ५, २८०; गा० स० ५, ९८)

मुख को देखते रहनेवाला पति और पति के सुन्दर रूप देखने में उन्मत्त पत्नी ये दोनों ही बड़भागी हैं और वे समझते हैं कि इस पृथ्वी पर वैसा और कोई पुरुष और स्त्री नहीं है ।

मुहविज्झाविअपईवं ऊससिअणिरुद्धसंकिउल्लावं ।
सवहसअरक्खिओट्ठं चोरिअरमिअं सुहावेइ ॥

(शृंगार० ५४, २; गा० स० ४, ३३)

जिसमें दीपक को मुँह से बुझा दिया है, उच्छ्वास और शंकित उल्लाप बन्द कर दिया है, सैकड़ों शपथ देकर ओठ को सुरक्षित रक्खा है, ऐसा चोरी-चोरी रमण कितना सुख देता है !

मोहविरमे सरोसं थोरत्थणमण्डले सुरवहूणम् ।
जेग करिकुम्भसंभावणाइ दिट्ठी परिट्ठविआ ॥

(स० कं० ३, १०८)

मोह के शान्त होने पर जिसने रोषपूर्वक हाथियों के गण्डस्थल की संभावना से सुरवधुओं के स्थूल स्तनमंडल पर दृष्टि स्थापित की ।

(भ्रांति अलङ्कार का उदाहरण)

मंगलवलअं जीअं व रक्खिअं जं पउत्थवइआइ ।
पत्तपिअदंसणूससिअबाहुलइआइं तं भिण्णम् ॥

(स० कं० ५. १९०)

प्रोषितपतिका ने जिस मंगलकंकण की अपने जीवन की भांति रक्षा की थी वह प्रिय के दर्शन से उच्छ्वसित बाहुओं में पहना जाकर टूट गया !

मंतेसि महुमहपणअं सन्दाणेसि तिदसेसपाअवरअणम् ।
ओज(उज्झ)सु मुद्धसहावं सम्भावेसु सुरणाह ! जाअवलोअम् ॥

(स० कं० ४, २३५)

हे इन्द्र ! यदि तू कृष्ण के प्रति प्रेम स्वीकार करता है तो देवों को पारिजात देने में अपने मुग्ध स्वभाव का त्याग कर, और यादवों को प्रसन्न कर ।

(भाविक अलङ्कार का उदाहरण)

रइअमुणालाहरणो णलिणिदलत्थइअपीवरत्थणअलसो ।
वहइ पिअसंगमम्मिवि मअणाअप्पप्पसाहणं जुवइजणो ॥

(स० कं० ४, १९१)

जिन्होंने मृणाल को आभूषण बनाया है और कमलिनियों के पत्तों से पीन स्तनकलश को आवृत किया है, ऐसी युवतियाँ प्रिय के सङ्गम के समय भी कामदेव की उत्कंठा के लिये अलङ्कार धारण करती है । (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

रइअरकेसरणिवहं सोहइ धवलब्भदलसहस्सपरिगअम्।
महुमहदंसणजोग्गं पिआमहुप्पत्तिपंकअं व णहअलम्॥
(स० कं० ४, ४५; सेतु० बं० १, १७)

सूर्य की किरणरूपी केसर के समूहवाला, श्वेत मेघरूपी सहस्रदल वाला और विष्णु के दर्शन योग्य (शरद्काल में विष्णु जागरण करते हैं और आकाश रमणीय दिखाई देता है) ऐसा आकाशमंडल ब्रह्माजी के उत्पत्ति-कमल के समान शोभित हो रहा है। (रूपक अलङ्कार का उदाहरण)

रइअं पि ता ण सोहइ रइजोग्गं कामिणीण छणणेवच्छं।
कण्णे जा ण रइज्जइ कवोलघोणन्तसहआरं॥
(स० कं० ५, २०६)

कामिनियों के रतियोग्य उत्सव के अवसर पर धारण की हुई वेशभूषा तब तक शोभित नहीं होती जबतक कि वे कानों में कपोलों तक झूलती हुई आम्रमजरी नहीं धारण करतीं।

रइकेलिहियनियंसणकरकिसलयरुद्धनयणजुयलस्स।
रूद्दस्स तइ्यनयणं पव्वइ परिचुवियं जयइ॥
(काव्या० पृ० ८७, ९२; गा० स० ५, ५५; काव्य प्र० ४, ९७)

रतिक्रीड़ा के समय महादेव जी द्वारा पार्वती के निर्वस्त्र कर दिये जाने पर पार्वती ने अपने करकमलों से महादेवजी की दोनों आँखें बन्द कर दीं। (तत्पश्चात् महादेव अपने तृतीय नेत्र से पार्वती को देखने लगे)। पार्वती ने उनके इस तृतीय नेत्र का चुम्बन ले लिया, इस नेत्र की विजय हो!

रइविग्गहम्मि कुण्ठीकआओ धाराओ पेम्मखग्गस्स।
अण्णमआइं व्व सिज्झन्ति (?खिज्जन्ति) माणसाइं णाइ मिहुणाणम्॥
(स० कं० ५, १९२)

सुरत-युद्ध के समय प्रेमरूपी खङ्ग की धार कुंठित हो जाने से मानों एक दूसरे से पृथक् हो गये हैं ऐसे कामी-मिथुन के हृदय खेद को प्राप्त होते हैं।

(मान का उदाहरण)

रणदुज्जओ दहमुहो सुरा अवज्झा अ तिहुअणस्स इमे।
पडइ अणत्थोत्ति फुडं विहीसणेण फुडिआहरं णीससिअं॥
(स० कं० ४, २२५)

रावण युद्ध में दुर्जय है, और देवताओं का वध नहीं किया जा सकता, इसलिये त्रिभुवन के लिये बड़ा संकट उपस्थित हो गया है, यह जानकर विभीषण ने अपने स्फुटित अधर द्वारा श्वास लिया। (अतिशयोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

रत्तुप्पलदलसोहा तीअ वि चसअम्मि सुरहिवारुणीभरिए।
मअतंबेहिं मणहरा पडिमापडिएहिं लोअणेहिं लहुइआ॥
(स० कं० ४, ९२)

सुगंधित वारुणी से भरे हुए पानपात्र में किसी नायिका के मद से रक्त हुए नेत्रों

का प्रतिबिंब पड़ रहा था, जिससे सुंदर रक्त कमलदल की शोभा उसके सामने फीकी पड़ गई है। (साम्य अलङ्कार का उदाहरण)

रमिऊण पइम्मि गए जाहे अवऊहिअं पडिनिवुत्तो।
अहहं पउत्थपइअव्व तक्खणं सो पवासिव्व ॥

(स० कं० ५, २४२; गा० स० १, ९८)

रमण करने के पश्चात् पति प्रवास को चला गया, लेकिन कुछ समय बाद आलिंगन करने के लिये वह फिर लौट कर आया। इस बीच में उसी क्षण में प्रोषितभर्तृका और वह प्रवासी बन गया!

राईसु चंदधवलासु ललिअमप्फालिऊण जो चावम्।
एकच्छत्तं विअ कुणइ भुअणरज्जं विजंभंतो ॥

(काव्य० प्र० ४. ८४)

चन्द्रमा से श्वेत हुई रातों में कामदेव अपने धनुष की टंकार द्वारा सारे संसार के राज्य को मानों एकछत्र साम्राज्य बना कर विचरण करता हुआ दिखाई देने लगता है। (अर्थशक्ति मूल ध्वनि का उदाहरण)

रेहइ पिअपरिरंभणपसारिअं सुरअमन्दिरद्दारे।
हेलाहलहलिअथोरथणहरं भुअलआजुअलं ॥ (स० कं० ५, १६४)

अपने प्रिय का आलिंगन करने के लिये फैलायी हुई, और वेग से कौतूहल को प्राप्त स्थूल स्तनभार से युक्त (नायिका की) दोनों भुजायें सुरतमंदिर के द्वार पर शोभित हो रही हैं। (हेला का उदाहरण)

रेहइ मिहिरेण णहं रसेण कव्वं सरेण जोव्वणअम्।
अमएण धुणीधवओ तुमए णरणाह ! भुवणमिणम् ॥

(अलङ्कार० पृ० ७४)

सूर्य से आकाश, रस से काव्य, कामदेव से यौवन, अमृत से समुद्र और हे नरनाथ ! तुमसे यह भुवन शोभित होता है।

रंडा चण्डा दिक्खिदा धम्मदारा मज्जं मंसं पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्जं चम्मखण्डे च सेजा कोलो धम्मो कस्स णो होइ रम्मो ॥

(दशरूपक प्र० २ पृ० १५१; कर्पूरमंजरी १, २३)

जहाँ चंड रंडाएँ दीक्षित हो कर धर्मपत्नियाँ बनती हैं, मद्य-पान और मांस-भक्षण किया जाता है, भिक्षा द्वारा भोजन प्राप्त किया जाता है, और सोने के लिये चर्म की शय्या होती है, ऐसा कौलधर्म किसे प्रिय न होगा ?

रंधणकम्मणिउणिए मा जूरसु रत्तपाडलसुअन्धम्।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिही ण पज्जलइ ॥

(स० कं० ५, ९१; गा० स० १, १४)

रसोई बनाने में निपुण नायिका पर गुस्सा मत हो। रक्तपाटल की सुगन्धि उसके मुख की वायु का पान करके धूम बन जाती है, इसलिये आग नहीं जलती (इसलिये वह बिचारी लाचार है)!

लच्छी दुहिदा जामाउओ हरी तंस घरिणिआ गंगा।
अमिअमिअंका अ सुआ अहो कुडुम्बं महोअहिणो॥

(ध्वन्या० उ० ३, पृ० ४९९)

समुद्र की लक्ष्मी कन्या है, विष्णु दामाद हैं, गंगा उसकी पत्नी है, अमृत और चन्द्रमा पुत्र हैं, समुद्र का कितना बड़ा कुटुम्ब-कबीला है!

(परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

लज्जा चत्ता सीलं च खंडिअं अजसघोसणा दिण्णा।
जस्स कएणं पिअसहि! सो च्चेअ जणो जणो जाओ॥

(शृङ्गार० ४३, २१३; गा० स० ६, २४)

जिसके कारण लज्जा त्याग दी, शील खंडित कर दिया, और अपयश मिला, हे प्रियसखि! वही जन अब दूसरे का हो गया!

लज्जापज्जत्तपसाहणाइं परभत्तिणिप्पिवासाइं।
अविणअदुम्मेधाइं धण्णाण घरे कलत्ताइं॥

(साहित्य० पृ० १११; दशरूपक प्र० २; पृ० ९६)

भाग्यशाली व्यक्तियों के घरों की स्त्रियाँ पर्याप्त लज्जा वाली होती हैं, पर पुरुष की इच्छा वे नहीं रखतीं और विनयशील होती हैं।

लहिऊण तुज्झ बाहुप्फंसं जीए स कोवि उल्लासो।
जअलच्छी तुह विरहे हुज्जला दुब्बला णं सा॥

(काव्य० १०, ४३४)

तुम्हारी भुजाओं का स्पर्श पाकर जिसके हृदय में कभी एक अपूर्व उल्लास पैदा होता था, वह उज्वल जयलक्ष्मी तुम्हारे विरह में कितनी दुर्बल होती जा रही है!

(समासोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

लीलाइओ णिअसणे रक्खिउ तं राहिआइ थणवट्टे।
हरिणो पढमसमागमसज्झसवसरेहिं वेविरो हत्थो॥

(स० कं० ५, २३५)

राधिका के स्तनों पर प्रथम समागम के समय भय से कम्पनशील और उसके वस्त्र पर क्रीड़ा करने वाला ऐसा कृष्ण का हाथ तेरी रक्षा करे!

लीलादाढग्गुव्वूढसयलमहिमण्डलस्स चिअ अज्ज।
कीसमुणालाहरणं पि तुज्झ गुरुआइ अंगम्मि॥

(काव्या० पृ० ८१, १५१)

जिसने लीला से अपनी दाढ़ के अग्र भाग से समस्त पृथ्वीमंडल को ऊपर उठा लिया है (वराह अवतार धारण करने के समय), ऐसे तुम्हारे शरीर में कमल-नाल का आभरण भी क्यों भारी मालूम दे रहा है?

('मधुमथनविजय' में पाञ्चजन्य की उक्ति)

लुलिआ गहवइधूआ दिण्णं व फलं जवेहिं सविसेसं।
पुप्फिह अणिवारिअमेव गोहणं चरउ छेत्तम्मि॥

(स० कं० ५, २९९)

जौ के खेत में खूब अच्छी फसल हुई है इसलिये गृहपति की पुत्री चंचल हो उठी है। अब गायें खेत में बिना किसी रोक-टोक के चर सकेंगी।

लोओ जूरइ जूरउ वअणिज्जं होइ, होउ तं णाम।
एहि! णिमज्जसु पासे पुप्फवइ! ण एइ मे निद्दा॥

(स० कं० ५, १६७; गा० स० ६, २९)

लोगों को बुरा लगता हो तो लगे, यह निन्ध हो तो हो, हे पुष्पवती! आकर मेरे पास सो जा, मुझे नींद नहीं आ रही है।[1]

वइविवरणिग्गअदलो एरण्डो साहइव्व तरुणाणम्।
एत्थ घरे हलिअवहू एद्दहमेत्तत्थणी वसइ॥

(स० कं० ३, १६६; गा० स० ३, ५७)

बाड़ के छिद्र में से जिसके पत्ते बाहर निकल रहे हैं ऐसा एरण्ड का वृक्ष तरुण जनों को घोषित कर कह रहा है कि इन पत्रों की भाँति विशाल स्तनवाली हलवाहे की वधू इस घर में वास करती है। (अभिनय अलङ्कार का उदाहरण)

वच्च महं चिअ एक्काए होंतु नीसासरोइअव्वाइं।
मा तुज्झ वि तीए विणा दक्खिण्णहयस्स जायंतु॥

(काव्या० पृ० ५६, २३; ध्वन्या० १ पृ० २१)

हे प्रिय! तुम उसके पास जाओ। मैं अकेली तुम्हारे विरह में श्वास छोड़ती हुई अश्रुपात करूँ यह अच्छा है, लेकिन उसके विरह में तुम्हारे दाक्षिण्य का नष्ट होना ठीक नहीं। (विध्याभास अलङ्कार का उदाहरण)

वणराइकेसहत्था कुसुमाउहसुरहिसंचरन्तधअवडा।
ससिअरमुहुत्तमेहा तमपडिहत्था विणेत्ति धूमुप्पीडा॥ (स०कं० ४,४२)

वनपंक्ति के केशकलाप, कामदेव की सुगंधित चंचल ध्वजा का पट, चन्द्रमा की किरणों को मुहूर्त्त भर के लिये आच्छादित करनेवाला मेघ तथा अंधकार के प्रतिनिधि की भाँति धूमसमूह शोभायमान हो रहा है।

(रूपक अलंकार का उदाहरण)

वण्णसि एव विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ।
ण हु होन्ति तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाइं अंगाइं॥

(गा० स० ५, ७८; काव्या०, पृ० ३९०, ५६२)

केवल उसके गुण सुन कर उसके वश में हो जाने वाली! तूने उसे देखा है, इसकी तू व्यर्थ ही शेखी मारती है। यदि तूने उसे सचमुच देखा होता तो तेरा शरीर स्वस्थ रहने वाला नहीं था। (अनुमान अलंकार का उदाहरण)

---

१. मिलाइये—सोएवा पर वारिआ पुप्फवईहिं समाणु।
जग्गे वा पुणु को धरइ जइ सो वेउ पमाणु॥

(हेमचन्द्र, प्राकृतव्याकरण ८, ४, ४३८)

—पुष्पवतियों के साथ सोना मना है, लेकिन उनके साथ जागने को कौन रोकता है, यदि वेद प्रमाण है।

ववसाअरइप्पओसो रोसगइन्दद्दिढसिंखलापडिबन्धो ।
कह कह वि दासरहिणो जयकेसरिपञ्जरो गओ घणसमओ ॥
(स० कं० ४, २९; से० बं० १, १४)

राम के उद्यम रूपी सूर्य के लिये रात्रि के समान, उनके रोष रूपी महागज के लिये दृढ़ शृंखलाबंध के समान, तथा उनके विजय रूपी सिंह के लिये पिंजड़े के समान वर्षाकाल किसी प्रकार व्यतीत हुआ। (रूपक अलङ्कार का उदाहरण)

ववसिअणिवेइअत्थो सो मारुइलद्धपच्चआगअहरिसं।
सुग्गीवेण उरत्थलवणमालामलिअमहुअरं उवऊढो ॥
(स० कं० ४, १७१)

जिसने संकल्प के अर्थ का निवेदन किया है ऐसे (विभीषण) का हनुमान द्वारा विश्वास प्राप्त करने पर हर्षित हुए, तथा वक्षःस्थल में पहनी हुई वनमाला के भ्रमरों का मर्दन कर सुग्रीव ने आलिंगन किया। (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

वाअग्गिणा करो मे दड्ढो त्ति पुणो पुणो च्चिअ कहेइ।
हालिअसुआ मलिअच्छुसदोहली पामरजुआणे ॥
(स० कं० ५, ३१६)

'बुझी हुई आग से मेरा हाथ जल गया'—इस प्रकार पामर युवा द्वारा कृषक-कन्या को बार-बार संबोधित किये जाने पर उसका दोहद दलित हो गया।

वाणिअय ! हत्थिदंता कुत्तो अम्हाण वग्घकित्तीओ ।
जाव लुलियालयमुही घरंमि परिसक्कए सुण्हा ॥
(ध्वन्या० उ० ३ पृ० २४२; काव्या० पृ० ६३, ३७; काव्य प्र० १०, ५२८)

हे वणिक् ! हमारे घर में हाथीदांत और व्याघ्रचर्म कहाँ से आया जब कि चंचल केशों से शोभायमान मुख वाली पुत्रवधू घर में अनवरत क्रीड़ा में रत रहती है ! (उत्तर और नियम अलङ्कार का उदाहरण)

वाणीरकुडंगुड्डीणसउणिकोलाहलं सुणंतीए।
घरकम्मवावडाए वहूए सीयंति अंगाइं ॥
(काव्या०, पृ० १५२, १७१; काव्यप्रकाश ५, १३२; साहित्य०, पृ० २८७; ध्वन्या० उ० २ पृ० २२१)

बेंत के कुंज से उड़ते हुए पक्षियों का कोलाहल सुनती हुई, घर के काम-काज में लगी वधू के अंग शिथिल हो रहे हैं। (असुंदर व्यंग्य का उदाहरण)

वारिज्जन्तो वि पुणो सन्दावकदत्थिएण हिअएण ।
थणहरवअस्सएण विसुद्धजाई ण चलइ से हारो ॥
(काव्य० प्र० ४, ८९)

संतप्त हृदय द्वारा रोका जाता हुआ भी विशुद्ध जाति के मोतियों से गूंथा हुआ हार अपने परम मित्र कुचद्वय से अलग नहीं होता है (पुंरुषायित रति के प्रसंग की यह उक्ति है)।

वाहित्ता पडिवअणं ण देइ रूसेइ एक्कमेक्कम्मि ।
असती कज्जेण विणा पइप्पमाणे णईकच्छे ॥
(स० कं० ३, ५१; गा० स० ५, १६)

. (जंगल की आग से) प्रदीप्यमान नदी के तट पर बिना काम के इधर-उधर भटकने वाली कुलटा बुलाई जाने पर भी प्रत्युत्तर नहीं देती, और प्रत्येक पुरुष को देख कर रोष करती है । (सूक्ष्म अलङ्कार का उदाहरण)

विअडे गअणसमुद्दे दिअसे सूरेण मन्दरेण व महिए ।
णीइ मइरव्व संज्झा तिस्सा मग्गेण अमुअकलसो व्व ससी ॥
(स० कं० ४, १९०)

महान् आकाशरूपी समुद्र में मन्दर गिरि की भाँति सूर्य के द्वारा दिवस के पूजित (अथवा मथित) होने पर, जैसे मदिरा निकलती है वैसे ही संध्या के मार्ग से अमृतकलश की भाँति चन्द्रमा उदित हो रहा है । (परिकर अलङ्कार का उदाहरण)

विअलिअविओअविअणं तक्खणपब्भट्टराममरणाआसम् ।
जनअतणआइ णवरं लद्धं मुच्छाणिमीलिअच्छीअ सुहं ॥
(स० कं० ५, २६८; सेतु० ११, ५८)

मूर्च्छा के कारण जिसकी आँखें मुंद गई हैं ऐसी जानकी ने वियोगजनित पीड़ा को भुला कर राममरण के महाकष्ट से तत्क्षण मुक्ति पाकर सुख ही प्राप्त किया ।

विअसन्तरअक्खउरं मअरन्दरसुद्धमायमुहलमहुअरम् ।
उउणा दुमाण दिज्जइ हीरइ न उणाइ अप्पण च्चिअ कुसुमम् ॥
(काव्या० पृ० ३६१, ५५०)

विकसित पराग से विचित्र और मकरंद रस की सुगंध से आकृष्ट हुए गुंजन करने वाले भौरों से युक्त ऐसे पुष्प वसंतऋतु द्वारा वृक्षों को प्रदान किये जाते हैं, उनका अपहरण नहीं किया जाता । (निदर्शन अलङ्कार का उदाहरण)

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पारडिं बइल्लेण ।
णिद्धूममुम्मुरे सामलीए थणए णिअच्छन्तो ॥
(स० कं० ५, ११; गा० स० ३, ३८)

षोडशी नववधू के निर्धूम तुष-अग्नि की भाँति ऊष्मा वाले स्तनों पर दृष्टिपात करता हुआ पामर कृषक माघ महीने में अपनी चादर बेच कर बैल खरीदता है ।
(परिवृत्ति अलङ्कार का उदाहरण)

विमलिअरसाअलेण वि विसहरवइणा अदिट्ठमूलच्छेअं ।
अप्पत्ततुंगसिहरं तिहुअणहरणे पवड्ढिएण वि हरिणा ॥
(स० कं० ४, २२४; सेतु० ९, ७)

पाताल तक संचार करने पर भी उसके (सुवेल पर्वत के) मूल भाग को शेषनाग ने नहीं देखा, और उसका उच्च शिखर तीनों लोकों को मापने के लिये बढ़े हुए त्रिविक्रम द्वारा भी स्पर्श नहीं किया गया ।
(अतिशयोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

विरला उवआरिच्चिअ णिरवेक्खा जलहरव्व वट्टन्ति।
झिज्जन्ति ताण विरहे विरलच्चिअ सरिप्पवाह व्व॥

(स० कं० ४, १६३)

मेघों के समान ऐसे पुरुष विरले ही होते है जो उपकार करके भी निरपेक्ष रहते हैं। इसी प्रकार नदी के प्रवाह की भाँति ऐसे लोग भी विरले ही होते हैं जो उपकार करने वालों के विरह में क्षीण होते है।

(अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का उदाहरण)

विरहाणलो सहिज्जइ आसाबन्धेण वल्लहजणस्स।
एक्कग्गामपवासो माए! मरणं विसेसेइ॥

(स० कं० ५, २६५; गा० स० १, ४३)

हे मा! प्रियजन की (प्रवास से लौट कर आने की) आशा से तो विरहाग्नि किसी प्रकार सहन की जा सकती है, किंतु यदि वह एक ही गाँव में प्रवास करता है तो मरण से भी अधिक दुख होता है।

विवरीयरए लच्छी बम्भं दट्ठूण णाहिकमलत्थम्।
हरिणो दाहिणणयणं रसाउला झत्ति ढक्केइ॥

(काव्या०, पृ० ५२, १३८; काव्य० प्र० ५, १३७)

रति में पुरुष के समान आचरण करने वाली रसावेश से युक्त लक्ष्मी नाभि-कमल पर विराजमान ब्रह्मा को देखकर अपने प्रियतम विष्णु का दाहिना नेत्र झट से बंद कर देती है (इससे सूर्यास्त की ध्वनि व्यक्त होती है)।

विसमअओ विअ काणवि काणवि बोलेइ अमिअणिम्माओ।
काणवि विसामिअमओ काणवि अविसामिअमअओ कालो॥

(ध्वन्या० उ० ३, पृ० २३५)

किन्हीं के लिये काल विषरूप प्रतीत होता है, किन्हीं के लिए अमृतरूप, किन्हीं के लिये विष-अमृतरूप और किन्हीं के लिये न विषरूप और न अमृतरूप।

विसवेओ व्व पसरिओ जं जं अहिलेइ वहलधूमुप्पीडो।
सामलइज्जइ तं तं रुहिरं व महोअहिस्स विद्दुमवेण्टम्॥

(स० कं० ४, ५३; सेतु० ५, ५०)

विषवेग की भाँति फैला हुआ महाधूम का समूह जिस-जिस महासमुद्र के रुधिर की भाँति प्रवालमंडल के पास पहुँचता है उसे काला कर देता है (जैसे विष शरीर में प्रविष्ट होकर रुधिर को काला कर देता है)।

(साम्य अलङ्कार का उदाहरण)

विह(अ)लइ से णेवच्छं पम्माअइ मंडणं गई खलइ।
भूअच्छणणच्चणअम्मि सुहअ! मा णं पुलोएसु॥ (स० कं० ५, ३०९)

भूत-उत्सव के नृत्य के अवसर पर इसका वस्त्र विगलित हो उठता है, आभूषण मलिन हो जाता है और गति स्खलित हो जाती है, अतएव हे सुभग! इसे न देख।

विहलंखलं तुमं सहि ! दट्ठूण कुडेण तरलतरदिट्ठिम् ।
वारप्फंसमिसेण अ अप्पा गुरुओत्ति पाडिअ विहिण्णो ॥ •

(काव्य० प्र० ४, ९१)

हे सखि ! तुम्हारे घडे ने, विश्रृंखल अवस्था में अपनी दृष्टि को चंचल करती हुई तुम्हें देखकर, दरवाजे की ठेस के बहाने अपने आपको गुरु समझकर गिराते हुए टुकड़े-टुकड़े कर दिया । (अपह्नुति, उत्प्रेक्षा अलङ्कार का उदाहरण)

वेवइ जस्स सविडिअं वलिउं महइ पुलआइअत्थणअलसं ।
पेम्मसहावविमुहिअं बीआवासगमणूसुअं वामद्धम् ॥

(स० कं० ५, ४४७; सेतु० १, ६)

जिस अर्धनारीश्वर का रोमांचित स्तन-कलशों वाला, प्रेमानुराग से किंकर्तव्य-विमूढ़ तथा लज्जासहित वामांग, दक्षिण के अर्धभाग (नरभाग) की ओर जाने के लिये उत्सुक, कंपित होकर (आलिंगन करने के लिये) मुड़ना चाहता है ।

वेवइ सेअदवदनी रोमञ्चिअगत्तिए ववइ ।
विलुलुल्लु तु वलअ लहु बाहोअल्लीए रणेत्ति ॥
मुहऊ सामलि होई खणे विमुच्छइ विअग्गेण ।
मुद्धा मुहअल्ली तुअ पेम्मेण सा वि ण धिज्जइ ॥

(दशरूपक प्र० ४ पृ० १८२)

हे युवक ! तेरे प्रेम के कारण वह नायिका काँपने लगती है, उसके चेहरे पर पसीना आ जाता है, शरीर में रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उसका चंचल वलय बाहुरूपी लता में मंद-मंद शब्द करता है । उसका मुँह श्याम पड़ जाता है, क्षण भर के लिये व्यग्र होकर वह मूर्च्छित हो जाती है, और तुम्हारे प्रेम से उसकी मुग्ध मुखवल्ली थोड़ा भी धीरज धारण नहीं कर पाती । (स्तंभ आदि सात्त्विक भावों का उदाहरण)

वेवाहिऊण बहुआ सासुरअं दोलिआइ णिज्जन्ती ।
रोअइ दिअरो तां सण्ठवेइ पासेण वच्चन्तो ॥ (स० कं० १, ५६)

विवाह के पश्चात् डोली में बैठा कर श्वसुरगृह को ले जाई जाती हुई वधू रुदन कर रही है, उसका देवर उसके पास पहुँच कर उसे सांत्वना देता है ।

वेविरसिण्णकरंगुलिपरिग्गहक्खलिअलेहणीमग्गे ।
सोत्थि च्चिअ ण समप्पइ पिअसहि ! लेहम्मि किं लिहिमो ॥

(स० कं० ५, २२३; गा० स० ३, ४४)

काँपती हुई, स्वेदयुक्त हाथ की उंगलियों से पकड़ी हुई स्खलित लेखनी स्वस्ति भी पूरी तौर से न लिख सकी, फिर भला हे सखि ! पत्र तो मैं क्या लिखती !

शदमाणशमंशभालके कुम्भशहश्श वशाहि शञ्चिदे ।
अणिशं च पिआमि शोणिदे वलिशशदे शमले हुवीअदि ॥

(स० कं० २, ३)

एक हजार कुंभ चरवी से संचित मनुष्य मांस के सौ भारक का यदि मैं भक्षण करूँ और अनवरत शोणित का पान करूँ तो सौ वर्ष तक युद्ध होगा ।

(मागधी का उदाहरण)

सअणे चिंतामइअं काऊण पिअं णिमीलअच्छीए।
अप्पाणो उवऊढो पसिढिलवलआहि बाहेहिं॥

(शृङ्गार० ५८, २५)

निमीलित नेत्रों वाली प्रिया ने अपने प्रियतम को शयन के ऊपर चितामग्रस्त बना कर, शिथिल कंकणों वाली अपनी भुजाओं से उसे आलिंगन में बाँध लिया।

सअलुज्जोइअवसुहे समत्थजिअलोअवित्थरन्तपआवे।
ठाइ ण चिरं रविम्मि व विहाण पडिदा वि मइलदा सप्पुरिसे॥

(स० कं० ४, ५०; सेतु० ३, ३१)

समस्त पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले, समस्त मनुष्यलोक में अपने प्रताप को फैलाने वाले ऐसे सूर्यरूपी सत्पुरुष में विधि के द्वारा उत्पादित (प्रभातकाल में पड़ी हुई) मलिनता चिरकाल तक नहीं ठहरती। (साम्य अलङ्कार का उदाहरण)

सकअग्गहरहसुण्णामिआणणा पिअइ पिअअमविइण्णम्।
थोअं थोअं रोसोसहं व उअ! माणिणी मइरम्॥

(स० कं० ५, २८८; गा० स० ६, ५०)

देखो, केशों को पकड़ कर जिसका मुख झट से ऊपर की ओर उठा दिया गया है ऐसी मानिनी अपने प्रियतम के द्वारा दी हुई मदिरा को मानो मान की औषधि के रूप में थोड़ा-थोड़ा करके पान कर रही है!

सग्गं अपारिजाअं कुत्थुहलच्छीविरहिअं महुमहस्स उरं।
सुमरामि महणपुरओ अमुद्धयंदं च हरजडापब्भारं॥

(सं० कं० ३,१७७; काव्या० पृ० ३६५, ५६०; सेतु० ४, २०)

समुद्रमंथन के पूर्व स्वर्ग को पारिजात पुष्प से शून्य, विष्णु के वक्षस्थल को कौस्तुभ मणि से रहित तथा शिवजी के जटाजूट को चन्द्रमा के खंड से शून्य स्मरण करता हूँ। (प्रागभाव का उदाहरण)

सच्चं गरुओ गिरिणो को भणइ जलासआ ण गंभीरा।
धीरेहिं उवमाउं तहवि हु मह णत्थि उच्छाहो॥

(स० कं० ४, १५०)

पर्वत गुरु है, यह सत्य है, और कौन कहता है कि समुद्र गंभीर नहीं है। फिर भी धीर पुरुषों के साथ पर्वत और समुद्र की उपमा देने का मेरा उत्साह नहीं होता। (आक्षेप अलङ्कार का उदाहरण)

सच्चं चिअ कट्ठमओ सुरणाहो जेण हलिअधूआए।
हत्थेहिं कमलदलकोमलेहिं छित्तो ण पल्लविओ॥

(स० कं० ५, ३१३)

यह सत्य है कि इन्द्र केवल लकड़ी का ठूंठ है, नहीं तो हलवाहे की पुत्री के कोमल हस्तकमल से स्पर्श किये जाने पर भी वह क्यों पल्लवित नहीं हुआ?

सच्चं जाणइ दट्ठुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए राओ।
मरउ ण तुमं भणिस्सं मरणं पि सलाहणिज्जं से॥

(स० कं० ५, २५८; दशरूपक प्र० २, ११७; गा० स० १, १२)

यह देखने में ठीक है कि समान व्यक्तियों में ही अनुराग करना उचित है। यदि उसका मरण भी हो जाय तो मैं तुझे कुछ न कहूंगी, क्योंकि विरह में उसका मरण भी प्रशंसनीय है। (आक्षेप, व्यत्यास अलङ्कार का उदाहरण)

सच्छन्दरमणदंसणरसवड्ढिअगरुअवम्महविलासं।
सुविअड्ढवेसवणिआरमिअं को वण्णिउं तरइ॥
(स० कं० ५, ३९५)

जिसके साथ स्वच्छन्द रमण होता है, जिसके दर्शन के रस से कामदेव का विलास वृद्धिंगत होता है, सुविदग्ध पुरुषों के ऐसे वेश्या-रमण का कौन वर्णन कर सकता है? (गणिका का उदाहरण)

सज्जेहि सुरहिमासो ण दाव अप्पेइ जुअइजणलक्खमुहे।
अहिणवसहआरमुहे णवपल्लवपत्तले अणंगस्स सरे॥
(ध्वन्या० उ० २, पृ० १८७)

वसंत मास युवतियों को लक्ष्य करके नवीन पल्लवों की पत्ररचना से युक्त नूतन आम्रमञ्जरी रूपी कामबाणों को सज्जित करता है, लेकिन उन्हें छोड़ने के लिये कामदेव को अर्पित नहीं करता। (अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

सणियं वच्च किसोयरि! पए पयत्तेण ठवसु महिवट्ठे।
भज्जिहिसि वत्थयत्थणि! विहिणा दुक्खेण णिम्मविया॥
(काव्या० पृ० ५५, २१)

हे कृशोदरि! जरा धीरे चल, अपने पैरों को जमीन पर संभाल कर रख। हे सुंदर स्तनों वाली! तुझे कहीं ठोकर न लग जाये, बड़ी कठिनता से विधाता ने तुझे सिरजा है!

सद्धा मे तुज्झ पिअत्तणस्स कह तं तु ण याणामो।
दे पसिअ तुमं चिअ सिक्खवेसु जह ते पिआ होमि॥ (शृङ्गार ४,११)

तेरे प्रियत्व में मेरी श्रद्धा है, इसे हम कैसे नहीं जानते? इसलिये प्रसन्न हो, तू ही इस प्रकार शिक्षा दे जिससे मैं तुम्हारी प्रिया बन सकूं।

समसोक्खदुक्खपरिवड्ढिआणं कालेण रूढपेम्माणम्।
मिहुणाणं मरइ जं, तं खु जिअइ, इअरं मुअं होइ॥
(स० कं० ५, २५०; गा० स० २, ४२)

समान सुख-दुख में परिवर्धित होने के कारण कालांतर में जिनका प्रेम स्थिर हो गया है ऐसे दम्पति में से जो पहले मरता है वह जीता है, और जो जीता है वह मर चुका है।

सयलं चेव निबन्धं दोहिं पणहिं कलुसं पसण्णं च ठिअं।
जाणन्ति कईण कई सुद्धसहावेहिं लोअणेहिं च हिअअम्॥
(काव्या० पृ० ४५६, ६१४; रावणविजय)

समस्त रचना केवल दो बातों से कलुष और प्रसन्न होती है। शुद्ध स्वभाव और लोचनों द्वारा ही कवियों के कवि हृदय को समझते हैं।

('रावणविजय' में कविप्रशंसा)

सरअं मउअसहावं विमलगुणं मित्तसंगमोल्लसिअम् ।
कमलं णट्ठच्छायं कुणन्त दोसायर ! णमो दे ॥
(काव्या० ६९, १३९)

सरस, मृदुस्वभाववाले, निर्मल गुणों से युक्त, मित्र के संगम से शोभायमान ऐसे कमल (महापुरुष) को नाश करनेवाले हे दोषाकर (चन्द्रमा, दुष्टजन)! तुझे नमस्कार है। (अप्रस्तुत प्रशंसा का उदाहरण)

सव्वस्सम्मि वि दड्ढे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुदि च्चेअ ।
जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थिं कुडो गहिओ ॥
(स० कं० ५, १५०; गा० स० ३, २९)

गाँव में आग लगने पर सब कुछ जल गया, फिर भी मेरे प्रियतम ने जब मेरे हाथ से घड़ा लिया तो मेरे हृदय को सुख ही प्राप्त हुआ ! (हर्ष का उदाहरण)

सह दिअसनिसाहिं दीहरा सासदण्डा, सह मणिवलएहिं वाहधारा गलन्ति।
तुह सुहअ! विओए तीए उव्वेविरीए, सह य तणुलदाए दुब्बला जीविदासा॥
(काव्यप्रकाश १०, ४९५; कर्पूर मं० २, ९)

हे सुभग ! तुम्हारे वियोग में उद्विग्न उस नायिका की साँसें दिन और रात के साथ-साथ लम्बी होती जा रही हैं, आँसुओं की धारा मणि-कंकणों के साथ नीचे गिरा करती है और उसके जीवन की आशा उसकी तनुलता के साथ-साथ दुर्बल होती जा रही है। (सहोक्ति अलङ्कार का उदाहरण)

सहसा मा साहिज्जउ पिआगमो तीअ विरहकिसिआए ।
अच्चंतपहरिसेण वि जा अ मुआ सा मुआ च्चेअ ॥
(स० कं० ५, ५४)

विरह से कृश हुई उस नायिका को सहसा प्रिय के आगमन का समाचार न कहना, क्योंकि अतिशय हर्ष के कारण यदि वह कदाचित् मर गई तो फिर मर ही जायगी।

सहिआहिं पिअविसज्जिअकदम्बरअभरिअणिब्भरुच्छसिओ ।
दीसइ कलंबथवओव्व थणहरो हलिअसोण्हाए ॥
(स० कं० ५, ३१०)

प्रियतम द्वारा प्रदत्त कदंब की रज से पूर्ण अत्यधिक श्वास वाली हलवाहे की पतोहु का स्तनभार सखियों को कदंब के गुच्छे की भाँति प्रतीत हुआ।

सहिआहिं भण्णमाणा थणए लग्गं कुसुम्भपुप्फं त्ति ।
मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइं ॥
(स० कं० ३, ५; ५, ३७७; गा० स० २, ७५)

मुग्धवधू के स्तनों पर लगे हुए नखक्षतों को देखकर सखियों ने हँसी में कहा कि देख तेरे स्तनों पर कुसुंबे के फूल लग रहे हैं, यह सुनकर वह मुग्धवधू उन्हें लगी ! (अभिनय, स्वाभावोक्ति और हेतु अलङ्कार का उदाहरण)

सहि ! णवणिहुणवणसमरम्मि अंकवाली सहीए णिविडाए ।
हारो णिवारिओ विअ उच्छेरंतो तदो कहं रमिअम् ?॥
(काव्य० प्र० ४, ८९)

हे सखि ! तुम्हारे नवसुरत-संग्राम के समय तुम्हारी एक मात्र सखी अङ्कपाली (आलिंगन-लीला) ने तुम्हारे उछलते हुए हार को रोक दिया, उस समय तुमने कैसा रमण किया ! (व्यतिरेक अलङ्कार का उदाहरण)

सहि ! विरइऊणमाणस्स मज्झ धीरत्तणेण आसासम् ।
पिअदंसणविहलंखलखणम्मि सहसत्ति तेण ओसरिअम् ॥
(काव्य० प्र० ४, ६९)

हे सखि ! तेरे धैर्य ने विराम को प्राप्त मेरे मन को बहुत आश्वासन दिया, किंतु प्रियदर्शन के विश्रृङ्खल क्षण में वह धैर्य सहसा ही भाग खड़ा हुआ।
(उत्प्रेक्षा, विभावना अलङ्कार का उदाहरण)

सहि ! साहसु सब्भावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलाणं ।
वड्ढंति करट्ठिअ च्चिअ वलआ दइए पउत्थंमि ॥
(शृङ्गार० ७१, ८९; गा० स० ५, ५३)

हे सखि ! बता, हम सरल भाव से पूछ रहे हैं, क्या दयिता के प्रवास में जाने पर सभी महिलाओं के हाथ के कंकण बढ़ जाते हैं ?

सहि ! साहसु तेण समं अहंपि किं णिग्गआ पहाअम्मि ।
अण्णच्चिअ दीसइ जेण दप्पणे कावि सा सुमुही ॥
(स० कं० ५, २९)

हे सखि ! बता क्या उसके साथ प्रभात में मैं भी गई थी ? क्योंकि वह सुन्दरी दर्पण में कुछ और ही दिखाई दे रही है।

साअरविइण्णजोव्वणहत्थालम्बं समुण्णमन्तेहिं ।
अब्भुट्ठाणं विअ मम्महस्स दिण्णं थणेहिं ॥
(ध्वन्या० उ० २, पृ० १८८)

हे बाले ! (यौवन द्वारा) आदरपूर्वक आगे बढ़ाये हुए यौवनरूपी हाथों का अवलंबन लेकर उठते हुए तुम्हारे दोनों उन्नत स्तन मानों कामदेव का स्वागत कर रहे हैं। (अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

सा तइ सहत्थदिण्णं अज्ज वि ओ सुहअ ! गंधरहिअं पि ।
उव्वसिअणअरघरदेवद व्व णोमालिअं वहइ ॥
(शृङ्गार० १४, ६६; गा० स० २, ९४)

हे सुन्दर ! वह तुम्हारे द्वारा दी हुई गंधविहीन नवमालिका को भी, नगर से निष्कासित गृहदेवता की भाँति, धारण कर रही है।

सा तइ सहत्थदिण्णं फग्गुच्छणकद्दमं थणुच्छंगे ।
परिकुविआ इव साहइ सलाहिरी गामतरुणीणम् ॥
(स० कं ५, २२९)

गाँव की युवतियों द्वारा प्रशंसनीय वह तुम्हारे द्वारा अपने हाथ से उसके स्तनों पर लगाई हुई फाग-उत्सव की कीचड़ को मानो कुपित होकर लगवा रही है।

सामण्णसुन्दरीणं विब्भममावहइ अविणओ च्चेअ।
धूम च्चिअ पज्जलिआणं बहुमओ सुरहिदारूण॥
(स० कं० ५, ३९७)

सामान्य सुन्दरियों का अविनय भी प्रीतिद्योतक हावभाव को उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिये, जलाये हुए सुंगन्धित काष्ठ के धूएँ का भी बहुत आदर किया जाता है। (विलासिनी का उदाहरण)

सा महइ तस्स ण्हाउं अणुसोत्ते सोवि से समुव्वहइ।
थणवट्टभिडणविलुलिअकल्लोलमहग्घिए सलिले॥
(स० कं ५, २५६)

वह उसके स्तनों को स्पर्श करनेवाली चञ्चल तरङ्गों से बहुमूल्य बने ऐसे जल के स्रोत में स्नान करने की इच्छा करता है।

सामाइ सामलीए अद्धच्छिपलोइरीअ मुहसोहा।
जम्बूदलकअकण्णावअंसे भमदि हलिअउत्ते॥
(स० कं० ३, ५२; गा० स० २, ८०)

हलवाहे का पुत्र जम्बूपत्रको अपने कानों का आभूषण बना कर घूम रहा है; अर्धनिमीलित नेत्रों से उसे देखती हुई श्यामा के मुख की शोभा मलिन हो जाती है।
(गूढ़, सूक्ष्म अलंकार का उदाहरण)

सालिवणगोविआए उड्डीयन्तीअ पूसविन्दाइं।
सव्वंगसुन्दरीएवि पहिआ अच्छीइ पेच्छन्ती॥ (स० कं० ३, १४०)

शालिवन में छिपकर तोतों को उड़ाती हुई सर्वांग सुंदरियों की केवल आँखों पर ही पथिक दृष्टिपात करते हैं। (भाव अलङ्कार का उदाहरण)

सालोए च्चिय सूरे घरिणी घरसामियस्स घेत्तूण।
नेच्छंतस्स य चलणे धुयइ हसन्ती हसंतस्स॥
(काव्या० पृ० ४१८, ७११; स० कं० ३, १३९; गा० स० २, ३०
दशरूपक प्र० २, पृ० १२२)

सूर्य का प्रकाश रहते हुए भी, गृहिणी हँसते हुए गृहस्वामी के पैरों को पकड़ कर, उसकी इच्छा न रहते हुए भी हँसती हुई उन्हें हिला रही है।
(भाव अलङ्कार का उदाहरण)

सा वसइ तुज्झ हिअए सा च्चिअ अच्छीसु सा अ वअणेसु।
अह्मारिसाण सुन्दर! ओआसो कत्थ पावाणम्॥
(काव्य० प्र० १०, ५६०)

हे सुन्दर! जब वही तुम्हारे हृदय में, तुम्हारी आँखों में और तुम्हारी वाणी में निवास करती है तो फिर हमारे जैसी पापिनियों के लिये तुम्हारे पास स्थान कहाँ?
(विशेष अलङ्कार का उदाहरण)

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि खणे ण मण्डिओ अप्पा ।
दुक्खिअपउत्थवइअं सअज्झिअं सण्ठवन्तीए ॥

(स० कं० ५, २६४; गा० स० १, ३९)

प्रियतम के पास रहने और उत्सव आने पर भी उस नायिका ने वेशभूषा धारण नहीं की, क्योंकि उसे प्रोषितभर्तृका अपनी दुखी पड़ोसिन को सान्त्वना देनी थी।

साहंती सहि ! सुहयं खणे खणे दुम्मिया सि मज्झकए ।
सब्भावनेहकरणिज्जसरिसयं दाव विरइयं तुमए ॥

(काव्या० पृ० ६२, ३६; काव्य प्र० २, ७)

हे सखि ! मेरे लिये उस सुभग को क्षण-क्षण में मनाती हुई तुम कितनी विह्वल हो उठती हो ! मेरे साथ जैसा सद्भाव, स्नेह और कर्तव्यनिष्ठा तुमने निभायी है, वैसी और कोई निभा सकती है ? (यहाँ अपने प्रिय के साथ रमण करती हुई सखि के प्रति नायिका की यह व्यंग्योक्ति है) ।

(लक्ष्य रूप अर्थ की व्यंजना का उदाहरण)

सिज्जइ रोमञ्चिज्जइ वेवइ रच्छातुलग्गपडिलग्गो ।
सो पासो अज्ज वि सुहअ ! तीइ जेणसि बोलीणो ॥

(ध्वन्या० उ० ४, पृ० ६२७)

हे सुभग ! उस सकरी गली में अकस्मात् उस मेरी सखी के जिस पार्श्व से लग कर तुम निकल गये थे, वह पार्श्व अब भी स्वेदयुक्त, पुलकित और कंपित हो रहा है । (विभावना अलङ्कार का उदाहरण)

सिहिपिच्छकण्णऊरा जाया वाहस्स गव्विरी भमइ ।
मुत्ताहलरइअपसाहणाणं मज्झे सवत्तीण ॥

(काव्या० पृ० ४२५, ७२५; ध्वन्या० उ० २, पृ० १९०)

मोरपंख को कानों में पहन शिकारी की वधू बहुमूल्य मोतियों के आभूषणों से अलंकृत अपनी सौतों के बीच गर्व से इठलाती फिरती है ।

(अर्थशक्ति उद्भव ध्वनि का उदाहरण)

सुप्पउ तइओ पि गओ जामोत्ति सहीओ कीस मं भणह ?
सेहालिआण गंधो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे ॥

(शृङ्गार० ५९, ३१; गा० स० ५, १२)

(रात्रि का) तीसरा पहर बीत गया है, अब तू सो जा—इस प्रकार सखियाँ क्यों कह रही है ? मुझे पारिजात के फूलों की गंध सोने नहीं देती; जाओ तुम सो जाओ ।

सुप्पं दड्ढं चणआ ण भज्जिआ पंथिओ अ बोलीणो ।
अत्ता घरंमि कुविआ भूआणं वाइओ वंसो ॥

(शृङ्गार० ४०, १९४; गा० स० ६, ५७)

सूप जल गया लेकिन चने नहीं भुने; पथिक ने अपना रास्ता लिया । सास घर में गुस्सा होने लगी । यह भूतों के आगे वंशी बजाने वाली बात हुई ।

सुरआवसाणविलिओणआओ सेउल्लवअणकमलाओ।
अद्धच्छिपेच्छिरीओ पिआओ धण्णा पुलोअंति॥

(शृङ्गार० ५४, ५)

सुरत के अन्त में जिन्होंने अपने लोचनों को बन्द कर लिया है, जिनका मुखकमल स्वेद से आर्द्र हो गया है और अर्ध नेत्रां से जो देख रही हैं ऐसी प्रियाओं को भाग्यशाली पुरुष ही देखते हैं।

सुहअ! विलम्बसु थोअं जाव इमं विरहकाअरं हिअअं।
संठविऊण भणिस्सं अहवा बोलेसु किं भणिमो॥

(अलङ्कार० पृ० १४०)

हे सुभग! जरा ठहर जा, विरह से कातर इस हृदय को संभाल कर कुछ कहूँगी, अथवा जाओ, अब कहूँ ही क्या?

सुरकुसुमेहिं कलुसिअं जइ तेहिं चिअ पुणो पसाएमि तुमं।
तो पेम्मस्स किसोअरि! अवराहस्सं अ ण मे कअं अणुरूअं॥

(स० कं० ५, २८७)

देवताओं के पुष्पों द्वारा कलुषित तुझे यदि मैं फिर से उन्हीं के द्वारा प्रसन्न करूँ तो हे कृशोदरि! यह न तो प्रेम के ही अनुरूप होगा और न अपराध के ही।

सुरहिमहुपाणलम्पडभमरगणाबद्धमण्डलीवन्धम्।
कस्स मणं णाणन्दइ कुम्मीपुट्ठट्ठिअं कमलम्॥ (स० सं० १, ६९)

सुगंधित मधुपान से लंपट भौंरों के समूह से जिसका मंडल आबद्ध है ऐसा कछुए के पृष्ठ पर स्थित कमल किसके मन को आनंदित नहीं करता? (युक्तिविरुद्ध का उदाहरण)

सुव्वइ समागमिस्सइ तुज्झ पिओ अज्ज पहरमित्तेण।
एमेय किमिति चिट्ठसि सा सहि! सज्जेसु करणिज्जं॥

(काव्या०, पृ० ६१, ३२; काव्य० प्र० ३, १९)

हे सखि! सुनते हैं कि तुम्हारा पति पहर भर में आने वाला है; फिर तुम इस तरह क्यों बैठी हो? जो करना हो झट कर डालो।

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं वि दूराहि अम्ह आणन्त।
उअआरअ जर! जीअं वि णेन्त ण कआवराहोसि॥

(स० कं० ४, ११६; गा० स० १, ५०)

कुशल पूछने वाले दुर्लभ जन को दूर से मेरे पास लाने वाले हे उपकारक ज्वर! अब यदि तू मेरे जीवन का भी अपहरण कर ले तो भी तू अपराधी नहीं समझा जायेगा! (अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार का उदाहरण)

सेउल्लिअसव्वंगी णामग्गहणेण तस्स सुहअस्स।
दूइं अप्पाहेन्ती तस्सेअ घरं गणं पत्ता॥

(स० कं० ५, २३१; गा० स० ५, ४०)

उस सुभग का नाममात्र लेने से उसका समस्त अंग स्वेद से गीला हो गया। उसके पास संदेश लेकर दूती को भेजती हुई वह स्वयं ही उसके घर के आंगन में जा पहुँची !

सेलसुआरुद्धद्धं मुद्धाणा बद्धमुद्धससिलेहम् ।
सीसपरिट्ठिअगङ्गं संझापणअं पमहणाहम् ॥ (स० कं० १, ४०)

जिसका अर्ध भाग पार्वती से रुद्ध है, जिसके मस्तक पर चन्द्रमा की मुग्ध रेखा है, जिसके सिर पर गंगा स्थापित है, संध्या के लिये प्रणत ऐसे गणों के नाथ शिवजी को (नमस्कार हो) ! (क्रियापदविहीन का उदाहरण)

सो तुह कएण सुन्दरि ! तह झीणो सुमहिलो हलिअउत्तो ।
जह से मच्छरिणीअ वि दोच्चं जाआए पडिवण्णम् ॥
(स० कं० ५, २०१; गा० स० १, ८४)

हे सुन्दरि ! रूपवती भार्या के रहते हुए भी तेरे कारण हलवाहे का पुत्र इतना दुर्बल हो गया है कि उसकी ईर्ष्यालु भार्या ने उसका दूतीकर्म स्वीकार कर लिया। (अर्थावलि अलंकार का उदाहरण)

सो नत्थि एत्थ गामे जो एयं महमहन्तलायण्णम् ।
तरुणाण हिअयलूडिं परिसक्कन्तिं निवारेइ ॥
(काव्या० पृ० ३९८, ६६१; काव्य० प्र० १०, ५६९)

इस गाँव में ऐसा कोई युवक नहीं जो इस सौन्दर्य की कस्तूरी से मतवाली, तरुणों के हृदय को लूटनेवाली और इधर-उधर घूमने वाली (नायिका) को रोक सके ! (रूपक, संकर, संसृष्टि अलंकार का उदाहरण)

सो मुद्धमिओ मिअतण्हिआहिं तह दूणो तुह आसाहिम् ।
जह संभावमईणवि णईणं परम्मुहो जाओ ॥
(सं० क० ३, १११)

वह भोला मृग मृगतृष्णा से ठगा जाकर इतना खिन्न हो गया कि अब वह जलसंपन्न नदियों का जल पीने से भी परांमुख हो गया है ! (भ्रांति अलंकार का उदाहरण)

सो मुद्धसामलंगो धम्मिल्लो कलिअ ललिअणिअदेहो ।
तीए खंधाहि बलं गहिअ सरो सुरअसंगरे जअइ ॥
(काव्य० ४, ८७)

मुग्धा के श्यामल केशों का जूड़ा किसी सुन्दर कामदेव के समान प्रतीत होता है जो उस सुन्दरी के कन्धों पर फैलकर (केशाकर्षण के समय) रतिरूपी युद्ध में कामीजन को अपने वश में रखता है।

सोहइ विसुद्धकिरणो गअणसमुद्दम्मि रअणिवेलालग्गो ।
तारामुत्तावअरो फुडविहडिअमेहसिप्पिसम्पुडविमुक्को ॥
(स० कं० ४, ४१; सेतु० १, २२)

आकाशरूपी समुद्र में शुभकिरणों से युक्त, रात्रिरूपी तट में लग्न तथा स्फुट और विघटित मेघरूपी सीपी के संपुट में से प्रकीर्ण, ऐसा तारे रूपी मोतियों का समूह शोभित हो रहा है। (रूपक अलंकार का उदाहरण)

सोह व्व लक्खणमुहं वणमाल व्व विअडं हरिवइस्स उरं।
कित्तिव्व पवणतणयं आण व्व बलाइ से वलग्गए दिट्ठी॥

(काव्या० पृ० २४६, ५१७; सेतु० १, ४८; सं० क० ४, १९)

राम की दृष्टि शोभा की भाँति लक्ष्मण के मुख पर, वनमाला की भाँति सुग्रीव के निकट वक्षस्थल पर, कीर्ति की भाँति हनुमान पर और आशा की भाँति सेनाओं पर जा गिरी। (मालोपमा अलंकार का उदाहरण)

संजीवणोसहिम्मिव सुअस्स रक्खेइ अणण्णवावारा।
सासू णवब्भदंसणकण्ठागअजीविअं सोह्नम्॥

(सं० कं० ५, २६७; गा० स० ४, ३६)

नूतन मेघों को देखकर कंठगत प्राणवाली अपनी पतोहू को अपने पुत्र की संजीवनी औषधि समझ, सब कुछ छोड़कर सास उसकी रक्षा में तत्पर है।

(हेतु अलंकार का उदाहरण)

संहअचक्कवाअजुआ विअसिअकमला मुणालसंच्छण्णा।
वावी वहु व्व रोअणविलित्तथणआ सुहावेइ॥

(स० कं० १, ३६; काव्या०, पृ० २०५, २१२)

गोरोचना से विलिप्त स्तनयुगल धारण करती हुई वधू की भाँति चक्रवाक के युगलवाली, विकसित कमलवाली (वधू के पक्ष में नेत्र) और कमलनाल से युक्त (वधू के पक्ष में बाहु) वापी सुख देती है। (न्यून उपमा का उदाहरण)

हरिसुल्लावा कुलवालिआणं लज्जाकडच्छिए सुरए।
कंठब्भंतरभमिआ अहरे च्चिअ हुहुहुराअंति॥ (श्रृङ्गार० ५४, ४)

लज्जा से कदर्थित सुरत के समय कंठ के भीतर भ्रमण करने वाले कुलबालिकाओं के हर्षोल्लास मानो अधर के ऊपर घूर-घूर कर रहे हैं।

हसिअमविआरमुद्धं भमिअं विरहिअविलाससुच्छाअम्।
भणिअं सहावसरलं धण्णाण घरे कलत्ताणम्॥

(दशरूपक प्र० २; पृ० ९६)

भाग्यवान व्यक्तियों के घरों की स्त्रियाँ स्वाभाविक मुग्ध हँसी हसती हैं, उनकी चेष्टायें विलास से रहित होती हैं और बोलचाल उनकी स्वभाव से सरल होती है।

हसिआइं समंसलकोमलाइं वीसंभकोमलं वअणं।
सब्भावकोमलं पुलइअं च णमिमो सुमहिलाणं॥

(स० कं० ५, ३७४)

श्रेष्ठ महिलाओं के गंभीर और कोमल हास्य, विश्वस्त और कोमल वचन और सद्भावपूर्ण कोमल रोमांच को हम नमस्कार करते हैं।

(उत्तमा नायिका का उदाहरण)

हसिअं सहत्थतालं सुक्खवडं उवगएहि पहिएहिं।
पत्तप्फलसारिच्छे उड्डीणे पूसवन्दम्मि॥
(स० कं० ३, १०९; गा० स० ३, ६३)

पत्र और फल के समान शुकसमूह के उड़ जाने पर सूखे वटवृक्ष के समीप आये हुए पथिकजन हाथ से ताली बजाकर हँसने लगे।
(भ्रांति अलंकार का उदाहरण)

हसिएहिं उवालम्भा अच्चुवआरेहिं रूसिअव्वाइं।
अंसूहिं भण्डणाहिं एसो मग्गो सुमहिलाणं॥
(स० कं० ५, ३९१; गा० स० ६, १३)

हँसकर उपालंभ देना, विशेष आदर से रोष व्यक्त करना और आंसू बहा कर प्रणय-कलह करना यह सुमहिलाओं की रीति है। (ललिता का उदाहरण)

हिअअट्ठियमन्नुं खुअ अणरुट्ठमुहं पि मं पसायन्त।
अवरद्धस्स वि ण हु दे बहुजाणय! रूसिउं सक्कम्॥
(काव्या०, पृ० ७५, १४३; ध्वन्या० २, पृ० २०३)

हे बहुज्ञ प्रियतम! अन्दर क्रोध से जलनेवाली और ऊपर से प्रसन्नता दिखाने वाली मुझको प्रसन्न करते हुए, तुम्हारे अपराधी होते हुए भी मैं तुम्हारे ऊपर रोष करने में असमर्थ हूँ। (अर्थशक्ति-मूल अर्थान्तरन्यास ध्वनि का उदाहरण)

हिअए रोसुग्भिण्णं पाअप्पहरं सिरेण पत्थन्तो।
ण हओ दइओ माणंसिणीए अ थोरं सुअं रुण्णम्॥
(स० कं० ३, १४२)

हृदय के रोष के कारण पादप्रहार की सिर से इच्छा करते हुए प्रियतम की उस मनस्विनी ने ताड़ना नहीं की, बल्कि वह बड़े-बड़े आंसू गिराने लगी।
(भाव अलङ्कार का उदाहरण)

हुमि अवहत्थिअरेहो णिरंकुसो अह विवेकरहिओ वि।
सिविणे वि तुमम्मि पुणो पत्तिअभत्तिं न पुप्फुसिमि॥
(काव्या० पृ० ८२, १५२; काव्यप्रकाश ७, ३२०; विषमबाणलीला)

हे भगवन्! भले ही मैं मर्यादारहित हो जाऊँ, निरङ्कुश हो जाऊँ, विवेकहीन बन जाऊँ, फिर भी स्वप्न में भी मैं तुम्हारी भक्ति को विस्मृत नहीं कर सकता।
(गर्भितत्व गुण का उदाहरण)

हेमंते हिमरअधूसरस्स ओअसरणस्स पहिअस्स।
सुमरिअजाआमुहसिज्जिरस्स सीअं चिअ पणट्ठं॥
(शृङ्गार० ५६, १६)

हेमंतऋतु में हिमरज से धूसरित, चादर से रहित और अपनी प्रिया के मुख का स्मरण करके जिसे पसीना आ गया है ऐसे पथिक की सर्दी नष्ट हो गयी!

होइ न गुणाणुराओ जडाण णवरं पसिद्धिसरणाणं।
किर पण्हुवइ ससिमणी चंदे ण पियामुहे दिट्ठे॥
(काव्या०, पृ० ३५३, ५४४; ध्वन्या० उ० १ पृ० ५७)

यश के पीछे दौड़ने वाले जड़ पुरुषों का गुणों में अनुराग नहीं होता। चन्द्रकांत मणि चन्द्रमा को देखकर ही पिघलता है, प्रिया का मुख देखकर नहीं।

(निदर्शना अलङ्कार का उदाहरण)

होन्तपहिअस्स जाआ आउच्छणजीअधारणरहस्सम् ।
पुच्छन्ती भमइ घरं घरेसु पिअविरहसहिरीआ ॥

(स० कं० ५, २४३; गा० स० १, ४७; दशरूपक ४, पृ० २६९)

प्रिय के भावी विरह की आशङ्का से दुखी पथिक की पत्नी, पड़ोस के लोगों से, पति के चले जाने पर प्राणधारण के रहस्य के बारे में पूछती हुई घर-घर घूम रही है।

हंतुं विमग्गमाणो हन्तुं तुरिअस्स अप्पणा दहवअणं।
किं इच्छसि काउं जे पवअवइ ! पिअं ति विप्पिअं रहुवइणो ॥

(स० कं० ४, १५२; सेतु० ४, ३६)

हे सुग्रीव ! रावण का वध करने की इच्छा करता हुआ तू, स्वयं रावण का वध करने की शीघ्रता करने वाले राम को यह प्रिय है, ऐसा मान कर तू उनका अप्रिय ही कर रहा है। (आक्षेप अलङ्कार का उदाहरण)

हंसाण सरेहिं सिरी सारिज्जइ अह सराण हंसेहिं ।
अण्णोण्णं च्चिअ एए अप्पाणं नवर गरुएत्ति ॥

(काव्या० पृ० ३५७, ५५४; काव्यप्रकाश १०, ५२७)

हंसों की शोभा तालाब से और तालाबों की हंसों से बढ़ती है, वास्तव में दोनों ही एक दूसरे के महत्त्व को बढ़ाते है। (अन्योन्य अलङ्कार का उदाहरण)

हंहो कण्णुल्लीणा भणामि रे सुहअ ! किम्पि मा जूर ।
णिज्जणपारद्धीसु कहं पि पुण्णेहिं लद्धोसि ॥

(स० कं० ५, २२४)

हे सुभग ! तेरे कान के पास चुपके से मैं कह रही हूँ तू जरा भी खेद मत कर; निर्जन गलियों में तू बड़े पुण्य से मिला है।

हुं णिल्लज्ज ! समोसर तं च्चिअ अणुणेसु जाइ दे एअम् ।
पाअंगुट्ठालत्तएण तिलअं विणिम्मविअम् ॥

(स० कं० ५, ४९)

अरे निर्लज्ज ! दूर हो। जिसके पैर के अंगूठे के महावर ने तेरे मस्तक पर यह तिलक लगाया है, जा तू उसी की मनुहार कर।

हुं हुं हे भणसु पुणो ण सुअन्ति (? सुअइ) करेइ कालविक्खेअं ।
घरिणी हिअअसुहाइं पइणो कण्णे भणन्तस्स ॥

(स० कं० ५, २३७)

पति अपने हृदय के सुख को अपनी पत्नी के कान में धीरे-धीरे कह रहा है। उसे सुन कर पत्नी अपने पति को बार-बार कहने का आग्रह कर रही है; उसे नींद नहीं आ रही है, इसी तरह वह समय यापन कर रही है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण; अनुवादक, हेमचन्द्र जोशी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९५८।

पतंजलि : महाभाष्य, भार्गवशास्त्री, निर्णयसागर, बम्बई, सन् १९५१।

पी० एल० वैद्य : प्राकृत शब्दानुशासन की भूमिका, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, १९५४।

ए० एन० उपाध्ये : लीलावईकहा की भूमिका, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९४९। 'पैशाची लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर,' एनल्स ऑव भांडारकर ओरिंटिएल इन्स्टिट्यूट, जिल्द २१, १९३९–४०।

बृहत्कथाकोश (हरिषेण), बम्बई, १९४३।

भरतसिंह उपाध्याय : पालि साहित्य का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, वि० सं० २००८।

बरुआ और मित्र : प्राकृतधम्मपद, युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता, १९२१।

हरदेव बाहरी : प्राकृत और उसका साहित्य, राजकमल प्रकाशन दिल्ली (प्रकाशन का समय नहीं दिया)।

एस० के० कत्रे : प्राकृत लैंग्वेजेज् एण्ड देअर कॉन्ट्रीब्यूशन टू इण्डियन कल्चर, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४५।

ए० एम० घाटगे : 'शौरसेनी प्राकृत,' जरनल ऑव द युनिवर्सिटी ऑव बम्बई, मई, १९३५। 'महाराष्ट्री लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर,' वही, जिल्द, ४, भाग ६।

मनमोहन घोष : कर्पूरमंजरी की भूमिका, युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता, १९३९।

'महाराष्ट्री ए लेटर फ़ेज़ ऑव शौरसेनी,' जरनल ऑव डिपार्टमैण्ट ऑव लेटर्स, जिल्द २३, कलकत्ता, १९३३।

ग्रामर ऑफ मिडिल इण्डो-आर्यन, कलकत्ता, १९५१।

एस० के० चटर्जी : 'द स्टडी ऑव न्यू इण्डो-आर्यन,' जरनल ऑव डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स, जिल्द २९, कलकत्ता, १९३६ ।

सुकुमार सेन : ग्रामर ऑव मिडिल इण्डो-आर्यन, कलकत्ता, १९५१ ।

पं० हरगोविन्ददास सेठ : पाइयसद्दमहण्णव, कलकत्ता, वि० सं० १९८५ ।

जैन ग्रंथावलि : श्री जैन श्वेतांबर कन्फरेंस, मुम्बई, वि० सं० १९६५ ।

जगदीशचन्द्र जैन : लाइफ़ इन ऐंशियेण्ट इण्डिया ऐज़ डिपिक्टेड इन जैन कैनन्स, बंबई, १९४७ ।

दो हजार बरस पुरानी कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९४६ ।

भारत के प्राचीन जैन तीर्थ, जैन संस्कृति संशोधन, मंडल, बनारस, १९५२ ।

प्राचीन भारत की कहानियां, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बंबई, १९४६ ।

हीरालाल रसिकदास कापडिया : हिस्ट्री ऑव द कैनोनिकल लिटरेचर ऑव द जैन्स बंबई, १९४१ । पाइय भाषाओ अने साहित्य, वही, १९५० ।

आगमो नुं दिग्दर्शन, विनयचंद गुलाबचंद, शाह, भावनगर, १९४८ ।

मोहनलाल दलीचंद देसाई : जैन साहित्य नो इतिहास, श्री श्वेतांबर जैन कान्फरेंस, बम्बई, १९३३ ।

मौरिस विण्टरनीज़ : हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर, जिल्द, २, कलकत्ता, १९३३

मुनि कल्याणविजय : नागरीप्रचारिणी पत्रिका, जिल्द १०–११ में 'वीर निर्वाणसंवत्' नामक लेख ।

मुनि पुण्यविजय : बृहत्कल्पसूत्र छठे भाग की प्रस्तावना, आत्मानंद जैन सभा भावनगर १९४२ ।

अंगविज्जा की प्रस्तावना, प्राकृत जैन टैक्स्ट सोसायटी १९५७ ।

कल्पसूत्र (साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद, वि. सं. २००८) की प्रस्तावना ।

दीघनिकाय, राइस डैविड्स, पालि टैक्स्ट सोसायटी, लंदन १८८९–१९११; राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी अनुवाद, सारनाथ, १९३६ ।

मज्झिमनिकाय, पालि टैक्स्ट सोसाइटी, १८८८-१८९९; राहुल• सांकृत्यायन, सारनाथ, १९३३।

विनयपिटक, लंदन, १८७९-१८८३; राहुल सांकृत्यायन, १९३५।

विनयवस्तु, गिलगिट मैनुस्क्रिप्ट, जिल्द ३, भाग २, श्रीनगर-काश्मीर, १९४२।

धम्मपद अट्ठकथा, पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९०६-१९१५।

मलालसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रौपर नेम्स, १-२, लंदन; १९३७-८।

सुत्तनिपात, राहुल सांकृत्यायन, रंगून, १९३७।

जातक, आनन्दकौसल्यायन का हिन्दी अनुवाद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

मिलिन्दपण्ह, भिक्षु जगदीश काश्यप बम्बई, १९४०।

याज्ञवल्क्य : याज्ञवल्क्यस्मृति, चौथा संस्करण, बम्बई, १९३६।

मनु : मनुस्मृति, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४६।

ए० एल० बाशम : हिस्ट्री एण्ड डॉक्ट्रीन्स ऑव द आजीविकाज़।

हीरालाल जैन : षट्खडागम की प्रस्तावना, सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र जैन साहित्योद्धारक फंड, अमरावती, १९३९-५८।

बी० सी० लाहा : इंडिया एज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट ऑव बुद्धिज़्म एण्ड जैनिज़्म, लंदन, १९४१।

ब्यूलर : द इण्डियन सैक्ट ऑव द जैन्स, लंदन, १९०३।

नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५८।

जान हर्टल : ऑन द लिटरेचर ऑव श्वेतांबर जैन्स, लीप्जिंग, १९२२।

मेयर जे० जे० : हिन्दू टेल्स, लंदन, १९०९।

पेन्ज़र : कथासरित्सागर (सोमदेव), टॉनी का अंग्रेज़ी अनुवाद, लंदन, १९२४-२८।

आल्सडोर्फ : बुलेटिन ऑव द स्कूल ऑव द स्कूल ऑव ओरिंटिएल स्टडीज़ जिल्द ८।

हर्मन जैकोबी : परिशिष्ट पर्व, कलकत्ता, १९३२।

स० आ० जोगलेकर : हाल सातवाहनाची गाथासप्तशती, प्रसादप्रकाशन, पुणें, १९५६।

बिहारी : बिहारीसतसई, देवेन्द्र शर्मा, आगरा, १९५८।

ए० बी० कीथ : द संस्कृत ड्रामा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, १९४५।

भरत : नाट्यशास्त्र, गायकवाड ओरिंटिएल सीरीज़, १९३६।

कोनो : कर्पूरमंजरी, हार्वर्ड युनिवर्सिटी, १९०१।

मानकड डी० आर : टाइप्स ऑव संस्कृत ड्रामा, करांची, १९३६।

दिनेशचन्द्र सरकार : ग्रामर आव द प्राकृत लैंग्वैज, युनिवर्सिटी ऑव कलकत्ता, १९४३।

सेलेक्ट इंस्क्रिशन्स, जिल्द १, कलकत्ता, १९४२।



अनुक्रमणिका

प

फ

ब

य

—:o:—